॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भक्तमालहरिभक्तिप्रकाशिका।

यह उलथा खेतडीनिवासी दासानुदास हरिप्रपन्न रामानुजदास उपनाम हरिवर ज्ञाति कायस्थ माथुरमाणिक्य भंडारीने किया और श्रीयुत देवराज रामानुजदास श्रीनिवासदासजीके मार्फत छापनेको दिया.

जिसको

मुरादाबादनिवासी पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रने हरिभक्तमहात्माओंके चित्तविनोदार्थ स्पष्ट भाषामें दोहे कवित्तादि समावेशपूर्वक सर्वसाधारणके पढने योग्य संकलित किया.

उसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें
मैनेजर पं० शिवदुलारे वाजपेयीने मालिकके लिये
छापकर प्रकाशित किया.

संवत् १९८१, शके १८४६.

कल्याण-मुंबई.

राधाकृष्णाभ्यां नमः ।

भूमिका.

सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराण तथा सज्जन महात्माओंका यह सिद्धांत है कि, ईश्वरकी भक्तिही संसारसे तरनेका सहज उपाय है. उस भक्तिको धारण करनेसे यह प्राणी भक्त कहलाता है. यद्यपि ज्ञान वैराग्यादि अनेक साधन हैं, परन्तु भक्तिकी समान सहज उपाय दूसरा नहीं है. जिस प्रकार संयम नियम आदि ज्ञानके साधन हैं, इसी प्रकार श्रवण कीर्तन तथा भक्तोंके चरित्र भक्तिके साधन हैं इसमें भक्तोंके चारित्रही विशेषकर भक्तिके साधन हैं और भक्ति होनेसे मुक्ति करतलमें स्थित होती है. इस कारण भक्तोंके चारित्रभी मुक्तिके कारण हैं, यही विचार कर नाभाजीने पुराणोंसे और उस समयतकके और भक्तोंके चरित्रोंसे एक भक्तमाल नामक ग्रंथ निर्माण किया, जिसका कई भांतिसे विस्तार हो गया है. यदि यह कहे कि भक्तमाल क्या इतनीही है इसके आगे क्या भक्त नहीं हुए, बराबर होते रहते हैं. यदि इस प्रकारसे उनके चारित्र बढाते जांय तौ भक्तोंकी मालिका कभी पूर्ण नहीं हो सकती और न यह कह सकते हैं कि यह भक्तमाल पूर्ण है, परन्तु हां यह बात है कि मनुष्योंको भक्ति उत्पन्न करनेके लिये यही बहुत है, इस कारण इस समयकी प्रचलित भक्तमालकाभी प्रचार सर्वसाधारणके बहुत उपयोगी है. उर्दू भाषा, संस्कृत, छन्दोबद्ध आदि कई प्रकारकी भक्तमाल इस समय मिलती है तथा एक इसी भक्तमालको दोहे चौपाईमें मैंनेभी रचना किया है जो अभीतक प्रकाशित नहीं हुई है, इतना तो अववश्य है कि, इस ग्रंथका एकवार मन लगाकर पाठ करनेसे अवश्य भगवान्के चरणारविन्दमें प्रीति उत्पन्न हो जाती है. ऐसे गुणसम्पन्न ग्रंथको यथायोग्य भाषा और उचित स्थानोंपर दोहे कवित्तादि भगवदुक्तिसम्पन्न होनेकी इच्छासे "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" यंत्रालयाध्यक्ष गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी महाशयने वार्तिक भक्तमालके छापनेकी इच्छा प्रकाशित कर शोधनेके लिये मेरे पास भेज दी, परन्तु उस ग्रंथको देखा तौ वह महा अशुद्धिपूर्ण पाया गया. जिसका शोधन मानो एक नवीन ग्रंथही निर्माण करना था और फिरभी भाषाकी शैली यथोचित न होती, इस कारण ग्रंथकी नवीन रचना करनीही उचित जानी और सबके समझने योग्य सरल भाषामें इस ग्रन्थको करके यथास्थानमें पद दोहे समावेश कर सब प्रकार भक्तजनोंके मनका रमानेवाला कर दिया है. आशा है सज्जन महात्मा इसको देखकर प्रसन्न होंगे.

भक्तमालमें बहुतसी ऐसी बातोंका वर्णन है कि जिससे सर्वसाधारणको साहित्यशास्त्रमें बहुत कुछ विज्ञता प्राप्त हो सकती है और दूसरे सम्पूर्ण सम्प्रदायोंके

वृत्तान्त गुरुद्वारे तथा श्रवण कीर्तन आदिके व्याख्यानसे धर्मकी मीमांसा विदित होती है, इसके पाठसे भक्तजनोंको ब्रह्मानंदकी प्राप्ति और साधारणोंको भक्तिके अधिकारकी योग्यता प्राप्त होती है.

पाठकमहाशयोंसे निवेदन है कि, इस ग्रंथमें भगवान्‌में प्रेमभक्तिका वर्णन किया गया है और प्रेमी पुरुषही इस बातका अनुभव कर सकता है कि प्रेममें कैसी २ अवस्था बीचती है उसमें असंभव संभव होता है. कोई नियम मर्यादा, नहीं रहती. अनिर्वचनीय भाव उदय होता है. लोककी रीतिसे उनका सम्बन्ध न्यून हो जाता है, इस कारण उनके चरित्रोंमें भेद दीखता है और ईश्वरसे प्रेममें तो कहनाही क्या है "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।" प्राणियोंकी रातमें योगी जागते हैं. प्राणियोंके जागरणमें वह सोते हैं इसका आशय यह है कि उनको जगत्‌के व्यवहारसे उपराम हो जाता है. ईश्वरके भक्तोंका जब उसमें अलौकिक प्रेम होता है तब अलौकिकही चरित्र हो जाते हैं, इस कारण उनके चरित्रोंमें लोकबुद्धिसे शंका न करनी चाहिये. हां, यदि उनकी जांच करनी होय तौ स्वयं प्रथम उनके चरणारविंदमें भक्ति कीजिये, हृदयमें उसकी भक्ति होनेसे उसका भेद खुल जायगा.

"करिये न संशय अस जिय जानी। सुनिये कथा सादर रति मानी॥"

सुहृद् पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि इस ग्रंथको सब प्रकार सुन्दर कर दिया है, तथापि यदि कहीं भूल चूक रह गई होय तौ अपनी ओर देखकर क्षमा करना, कारण कि सर्वज्ञ तौ वही नन्दनन्दन है और भक्तजनोंको तौ इसका एक २ अक्षर रत्नरूप है, वे तौ भगवान्‌के चरित्रोंको जीवनमूल जानते हैं.

हरिभक्तोंका चरणरज,

ज्वालाप्रसाद मिश्र,

दीनदारपुरा,

मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

अथ

भक्तमालकी विषयानुक्रमणिका.

इति विषयानुक्रमणिका समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण—मुंबई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भक्तमाल हरिभक्तिप्रकाशिका ।
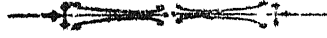
श्लोकाः—ऊर्जस्वलं देवगणाधिसेवितं नारायणं ब्रह्म सनातनं प्रभुम् ।
भूताधिवासं सकलार्थसिद्धिदं वन्दे रमालालितपादपंकजम् ॥ १ ॥
विघ्नवल्लीकुठाराय शिवपुत्राय धीमते ।
वक्रतुण्डाय देवाय गणानां पतये नमः ॥ २ ॥

वदहासहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे ।
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ॥
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुतं तत्वं मुनीन्द्रैः परम् ।
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥ ३ ॥

रामं रत्नकिरीटकुन्तलयुतं केयूरहारान्वितम् ।
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम् ॥
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा ।
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संस्तूयमानं प्रभुम् ॥ ४ ॥

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदनजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तम् ।
मन्दं मन्दं हसन्तं मधुमधुरवचो मेति वेति ब्रुवन्तम् ॥
गोपालीपाणितालीतरलितवलयध्वानमुग्धान्तरालम् ।
वन्दे तं देवमिन्दीवरविमलदलश्यामलं नन्दबालम् ॥ ५ ॥

दोहा—गौरीशंकरपदकमल, गिरा गणेश मनाय ।
भक्तमाल भाषा करत, यदुपति करहिं सहाय ॥ १ ॥

ब्रह्म सच्चिदानंदमय, राम भानुकुलकेतु ।
तिनके पग वंदन करहूं, संसृतिसागरसेतु ॥ २ ॥
ब्रजजीवन जनमनसदन, करत सदा विश्राम ।
द्विज ज्वालाप्रसादके, सदा सँवारत काम ॥ ३ ॥
श्रीयुत गंगाविष्णुकी, निर्मल इच्छा भाय ।
भक्तमालको करत हूं, संस्कार सुखदाय ॥ ४ ॥
हरिभक्तनकी कथाको, पढि है जो कर नेम ।
प्रेमभक्ति प्रभु पावहीं, बढहि नित्य गृह क्षेम ॥ ५ ॥

ग्रंथारंभमें निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त प्रथम श्रीअवधविहारी, भक्तनसुखकारी, श्रीसीतापति, रामचंद्रजीके पदकमलका ध्यान करता हूं कि, जिनकी अपार महिमासे सारा जंगमस्थावररूप जगत् सत्य प्रतीत होता है, शारदा शेष महेश विधि आगम निगम पुराण जिसके गुणोंको नेति २ कहकर वर्णन करते हैं, जिनका रूप मन बुद्धि इन्द्रियादिसे परे है, इसपरभी प्रभुता करुणा दया ऐसी है कि जब जब भक्तोंके ऊपर भीर पडी तब तब अनेक रूप धारण कर अपने दासोंका दुःख दूर किया और इस प्रकार अपनी लीला फैलाई कि जिसको श्रवण कर उनके कीर्तन करनेसे अधमभी संसारसागरसे पार हो जाते हैं, उनकी भक्तिमें उत्तम कुल और जातिकीही आवश्यकता नहीं कैसेभी नीच पतित क्यों न हों उनके प्रेमसे तर जाता है. राक्षस, दैत्य, नीच, शठ उनके नामसे तरते हैं.

चौपाई—अपर अजामिल गज गणिकाऊ । भये मुक्त हरिनाम प्रभाऊ ॥

इत्यादि अनेक पुरुष उसके नामस्मरणसे योगियोंको अतिक्रमण कर उस पदको प्राप्त हो गये हैं, जन्ममरणके रोगसे मुक्त करनेको हरिनामही परमौषधी है. यही नाम काशीमें मुक्ति देता है. यथा,—

चौपाई—महामंत्र जोइ जपत महेशू । काशी मुक्ति हेतु उपदेशू ॥

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीने बहुत कुछ बालकाण्डके आदिमें लिखा है कि नामरूपमें कौन बडा कौन छोटा है सो नहीं कह सकते.

चौपाई—देखिये रूप नाम आधीना । रूपज्ञान नहिं नाम विहीना ॥
रूपविशेष नामविनु जाने । करतलगत न परहिं पहिचाने ॥
सुमरिये नाम रूप विनु देखे । आवत हृदय सनेह विशेषे ॥

रूप तो नामके आधीन देखा जाता है, नामके विना रूपका ज्ञान नहीं होता, रूपविशेष कहने परभी नामके विना हाथमें स्थित वस्तुभी नहीं जानी जाती और विना रूपके देखेभी यदि नामस्मरण करो तो मनमें सनेह अधिक प्राप्त होता है, और नामस्मरण कर उसे खोजो तो नामी शीघ्र प्राप्त हो सकता है, विना नामके पुकारे घोरे स्थित पुरुषभी प्राप्त नहीं हो सकता, इससे सगुण निर्गुण दोनोंके बीचमें नामही साधन है, और दोनोंसे बडा है, निर्गुण अवस्थामें सच्चिदानंद पूर्णघन सबके घट २ में व्यापक है तथापि सब जीव दीन दुखारी रहते हैं, परन्तु जब नामसे उनका रूप निरूपण किया जाय तो वह पुरुष सच्चिदानंदमय परमानंदरूप हो जाता है, इससे निर्गुण ब्रह्मसे भी नाम बडा है, सगुण अवतारमें उसने अनेक तन धारण कर साधुओंको सुखी किया, और नामके जपसे अपरिमित संसारसे पार हो गये, रामने स्वयं भवचापको तोडा, परन्तु नामके प्रतापसे संसारका भय दूर हो जाता है.

दोहा—शबरी गीध सुसेवकन, सुगति दीन रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, वेदविदित गुण गाथ ॥

नाम चारों पदार्थोंका देनेवाला है कलियुगमें केवल नामही आधार है. वामनपुराणमें लिखा है कि जिसने भगवत नामको जपा उसने

सब अश्वमेधादि यज्ञ कर लिये. भागवतमें कहा है कि जो संसारसे डरते हैं उनको भगवान्के नाम जपनेसेही निस्तारा प्राप्त हो सकता है. स्कंद पुराणमें कहा है कि, उसका नाम पापोंको खण्ड २ कर देता है. नारदपुराणमें लिखा है कि जो नारायणके नामको नित्य नया जान-कर कहते सुनते हैं अमृत जानकर जप करते हैं वे जीतेही मुक्त हैं. सब वेद शास्त्र पुराण इसी प्रकार भगवन्नामकी महिमा कथन करते हैं, उसी नामका बल हृदयमें धारण करके भक्तमाल वर्णन करता हूं.

श्रीगुरुमहिमाकथन ।

श्लोकः—अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

जिन्होंने अज्ञानके तिमिरसे आच्छादित नेत्रोंको ज्ञानांजन शला-कासे खोल दिया है, उन गुरुके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूं. गुरु-की महिमा शास्त्रोंमें बडे विस्तारसे लिखी है संसारसागरसे पार करनेको गुरुके चरणही आधार हैं ज्ञानका प्रकाश करनेको गुरुका उपदेशही सूर्य है, मुक्ति पानेको गुरुके वचनोंपर विश्वास करनाही परम आधार है, गुरुसे अधिक और तत्व नहीं है.

भगवद्भक्तिकी महिमा ।

भगवान् और भक्तिमें यद्यपि अन्तर नहीं है तथापि भक्ति विशेष है कारण कि भगवान् तो कर्मानुसार फल देते हैं, परन्तु भक्ति दुःखों-को दूर करके केवल सुखही देती है. इसकी महिमा शास्त्रोंमें विस्तारसे लिखी है. पद्मपुराणमें लिखा है कि जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि सब प्रकारके ईंधनको भस्म कर देती है, इसी प्रकार भक्ति सब जन्मोंके पापोंको भस्म कर देती है, देवता इच्छा करते हैं कि हमारे पुण्यफलसे भारतवर्षमें हमको जन्म मिले, तो हम हरिभक्ति करें. नारदपुराणमें

लिखा है कि, भगवान् केवल भक्तिसेही प्राप्त होते हैं, और प्रकारसे नहीं, जो भक्तिसे पूजन करते हैं, उनके सब मनोरथ पूरे होते हैं, जिन की शंखचक्रगदापद्मधारी नारायणमें प्रीति है, वे अवश्य नारायणको प्राप्त होते हैं. महाभारतमें लिखा है कि अनेक जन्मोंमें जप तप कर नेसे जिनके पाप दूर हो गये हैं उनकी भक्ति हरिचरणोंमें होती है. वैशाखमाहात्म्यमें लिखा है कि प्रथम भरतखण्डमें जन्म होना कठिन है उसमेंभी मनुष्य देह उसमेंभी कर्मनिष्ठ और उसमेंभी भक्ति होनी बडी कठिन है. पद्मपुराणमें लिखा है कि जिनके मनमें हरिभक्ति और प्रभुका प्रेम है उनको स्वप्नमेंभी यमराजका दर्शन नहीं होता, हरिभक्तोंकी प्रेम पिशाचादि कोईभी हानि नहीं कर सकते. नारदपुराणमें लिखा है कि धर्म अर्थ काम मोक्षके लिये पृथक् २ यत्न करना पडता है, परन्तु हरिभक्तिसे विना परिश्रम चारों पदार्थ सुलभ होते हैं, पद्मपुराण० हरिभक्तोंको मुक्तिका द्वार खुला है भक्तिको छोडकर मुक्तिका साधन और नहीं है. ब्रह्माण्डपुराण० हरिभक्ति किये विना कोटिकल्पतक मुक्ति नहीं है, न ज्ञान प्राप्त हो सक्ता है. भागवत० भक्तिके निमित्त द्विजकुलमें जन्म देवत्व ऋषिदेह व्रत दान यज्ञकी आवश्यकता नहीं केवल प्रेमसेही भगवान् प्रसन्न होते हैं. भागवत० हे उद्धव ! वेद सांख्य पाठ वैराग्य मुझको वश नहीं कर सकता, केवल भक्तिके आधीन होता हूं. स्कन्दपुराण० भक्तिसे अधिक कोई मार्ग नहीं है. भागवत० भक्तिके द्वाराही गोपी वृक्ष चौपाये सर्प शुद्ध होकर मुझको प्राप्त हुए, तथा कर्म ज्ञान वैराग्य दान धर्मसे जो फल होता है वह एक भक्तिसे प्राप्त हो जाता है. बृहन्नारदीयपुराण० मुक्ति ज्ञानसे कहते हैं परन्तु उस ज्ञानका भक्तिसेही सम्बन्ध है, तथा हरिभक्तिके विना यज्ञादि अनन्त फलदायक नहीं होते. स्कन्दपुराण० जहां हरिभक्त निवास करते हैं, वहां सब देवता और ऋद्धि निवास करती हैं. गीतामें लिखा

है कि, मैं केवल भक्तिसे जाना जाता हूं, तथा अर्जुनके ज्ञानभक्तिमें विशेषता विधायक प्रश्न करनेपर भगवान्ने भक्तिको सर्वश्रेष्ठ कही, ज्ञानसे प्राप्त होनेमें श्रम अधिक होता है और भक्तिसे विना क्लेश प्राप्त होता है.

भक्तिका विवरण वा स्वरूपवर्णन ।

भक्ति क्या है इसका निरूपणभी संक्षेपसे करना उचित है, भक्तिसूत्रमें शांडिल्य ऋषि कहते हैं" सा परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् ईश्वरमें परम प्रेमका होनाही भक्ति है; आगे प्रेमनिष्ठामें इसका विवरण भली प्रकार किया जायगा, गीतादी ग्रंथोंमें नैष्ठिक भजन और ध्यान हरिभक्तोंकी सेवा, मन चित्तको हरिचरणोंमें समर्पण, केवल भगवतकोही समझना, उसीका वर्णन करना भक्ति कहा है तथा रामानुज माधवाचार्य निम्बार्क विष्णुस्वामी आदि आचार्योंने गंगाप्रवाहकी समान सदैव हरिका ध्यान करनाही भक्तिका लक्षण कहा है; भगवान्ने कहा है" ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् । " जो जिस प्रकार मुझको प्राप्त होते हैं वैसाही मैं उनको भजन करता हूं. लिंगपुराणमें मन वचन कर्मसे सेवा करनेकोही भक्ति कहा है. तंत्रशास्त्रमें कहा है भ–भवसागरके आवागमनरूप दुःखको दूर करता है क–कल्याण करता, ति–ज्ञान देती है. यही भक्तिका अर्थ है. सनत्कुमारसंहितामें लिखा है कि सब दुःख जो दूर करे वह भक्ति है, कहीं सेव्यसेवकभावको भक्ति लिखा है. भागवत० भावभेदके प्रकारसे भक्ति कई प्रकार की है इससे भावही भक्ति है. विष्णुपुराण० शास्त्रविहित कर्म करना, निषेधका त्याग करना, हरिकी आज्ञानुसार रहनाही भक्ति है. साहित्यशास्त्र० प्रीति कवितारसके वर्णनमें कहा है, सात्विकभावसे शुद्ध हुई बुद्धिको भक्ति कहते हैं, इत्यादि वचनोंसे भक्तिके अनेक प्रकार पाये जाते हैं परन्तु इन सबका सार यही है कि भगवत्में परम प्रेम

करनाही भक्ति कहलाती है. जिस २ प्रकार जिसको हरिभक्ति प्राप्त हुई वह उसने लिखा परन्तु हम उस प्रीतिका वर्णन करते हैं कि जिसमें उपासक ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय शत्रु मित्र विधि निषेध निगम आगम, भिन्न श्रवण दर्शन आदिसे पृथक् होकर उसमें लवलीन होकर अखण्डाकार वृत्तिको प्राप्त हो जाय वही भक्ति है, उसके विहित अविहित दो भेद हैं. शास्त्रकी आज्ञानुसार करनेको विहित कहते हैं इसके चार प्रकार हैं, जैसे गोपी ध्रुव आदि यह कामनायुक्त है. दूसरी द्वेषसे जैसे रावण शिशुपालादि. तीसरी भय-कंस मारीचादी. चौथी स्नेह-जैसे नारद सनकादि, इनमें द्वेष और भयसे उपासना करनेकी विधि नहीं है. अविहित वह है, जो शास्त्र अभ्यासज्ञानके विना स्वाभाविकही मनमें प्रगट हो यह पद परिणामका है, कोई २ इसकोभी दो प्रकारका कहते हैं एक ज्ञानांग अर्थात् ज्ञान देकर मोक्षकी दाता है, दूसरी स्वतंत्र अर्थात् स्वयं मुक्तिकी दाता है, ज्ञान उसका एक प्रभाव है. जैसा गीतामें कहा है, मेरे भक्त मेरी मायाको तरते, मुझको प्राप्त होते हैं, फिर अन्तमें कहा संसारसे तरनेकी इच्छा हो तो मेरी शरण हो यही वेदपुराणोंमें कहा है. भक्तिके औरभी तीन प्रकार हैं; उत्तम, मध्यम, प्राकृत, जो भगवान्को सबमें व्यापक और स्थित देखता है सबको भगवत मय जानता है जैसे लहर और जल एकही है वह उत्तम है. जिस मनुष्यकी भगवान्में प्रीति है भगवद्भक्तोंको मित्ररूप जानता, समानतासे भक्तोंपर दया और भक्तोंसे प्रेम तथा शत्रुओंसे पृथक् रहता है वह सामान्य भक्त है और जो केवल प्रतिमार्चनही करत्ता तथा हरिभक्तोंसे प्रीति नहीं करता वह प्राकृत भक्ति है, फिर वह भक्ति सात्विक राजस तामसके भेदसे तीन प्रकारकी है निष्काम भक्ति सात्विक है जैसे प्रह्लादकी भक्ति हुई, मनोरथ अर्थात् कामनापूर्वक राजसी भक्ति है जैसे ध्रुव गज इत्यादि की और शत्रु जीतनेको जो की जाय

वह तामसी है, जैसे इन्द्रने वत्र असुरके मारनेको की. भागवतमें औरभी तीन प्रकार लिखे हैं, मानसी जो मनसे की जाय, वाचक जो वाणीसे की जाय, कायिक जो कायासे की जाय, फिर उसके करनेके चार प्रकार हैं, आर्त-जो दुःखके समय की जाय जैसे द्रौपदी और गजने आराधना की, दूसरी जिज्ञासु परलोककी कामनासे यथा परीक्षित इत्यादि. तीसरी अर्थार्थी संसारके मनोरथोंकी इच्छासे करनी जैसे ध्रुव. चौथी ज्ञानयुक्त जैसे सनकादि. फिरभी उसके तीन प्रकार हैं, एक वह जो स्वयं करे, दूसरी वह जो कहकर करावे, तीसरी वह जो दूसरोंकी भक्ति देखकर प्रसन्न होना. फिर नौ प्रकारकी भक्ति करनी भागवतमें लिखी है, यथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चा, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन. इनमेंसे सबही प्रायः २४ निष्ठाओंमें आ गई हैं, फिर वही क्रमसे ग्यारह प्रकारकी है. सत्संग, भक्तोंपर दया, करुणाकी योग्यता, भक्तोंके कर्मोंपर शान्ति, दया, श्रद्धा, विश्वासका ग्रहण, चौथे हरिचरित्रोंका श्रवण, सुने हुए हरिचरित्रमें प्रीति करना, हरिभगवान् और अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होना, तथा ज्ञान अद्वैतवादका विचार करना, सातवें हरिस्वरूपमें प्रीतिकी अधिकाई, आठवें भगवान्के तेजका प्रतिदिन मनमें अधिक होना, नवमें दया आदि हरिके गुणोंका अपनेमें आरोपण करना, दशमें ईश्वरता सर्वज्ञता आदि ईश्वरीय धर्मका भक्तोंमें होना. अपने आत्माकी जो प्रीति है उससे अधिक भगवान्में होनी चाहिये, कभीभी मन भगवान्के ध्यानसे पृथक् न हो, फिर यही दान इत्यादिसे बढकर तान प्रकारकी होती है, यह स्वरूपभेद इस कारण कहे हैं कि जिस प्रकार मनुष्यका मन लगे वही एक प्रकार वर्णन करके लिखा है, जिस प्रकार उद्धवने पूछा कि भगवन्! तत्वोंके भेदमें क्या कारण है? कोई २४ कोई १७ कोई १६ कोई ८ कोइ ७ कोई ५ कोई ३ कहते हैं. तब

भगवान्‌ने कहा कि वास्तवमें कोई भेद नहीं है जिसने अन्तरभाव माना है उसने न्यून और जिसने पृथक् माना उसने अधिक तत्व लिखे हैं. जिसने जीव ईश्वर माया भिन्न जानी उसने तीन, जिसने मायाको उसकी आज्ञा माना उसने दो और जिसने उसमें महत्तत्व और अहंकार पांच तत्व बढाये उसने दस और इसी प्रकार तन्मात्रा आदि कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय रूपसे २४ । २५ तत्व कहे, मूल सबकी एक भगवान् हैं, किसीने वृक्षकी दो शाखा देखकर दो गुद्दे कहे, जिसने चार देखे उसने चार कहे, पत्ते आदिसे और गणना विशेष हो गई परन्तु वास्तवमें एक वृक्षही है, इसी प्रकार भक्ति एकही है. सार यही है जैसे हो सके वैसे भगवान्‌का आराधन करे, भगवान्‌में प्रीति होनी अवश्य है, जबतक वह प्रीति अत्यन्त अधिकाईको प्राप्त न हो तबतक साधनरूप है, और जब स्थाईभावको प्राप्त हो गई अर्थात् स्थिति हो गई वही स्थाईभाव फल है, उसमें और किसी वस्तुका साधन नहीं, इसीकी प्राप्तिमें जीवन्मुक्त कहते हैं, विशेष विवरण इसका मुक्तिप्रकरणमें करेंगे.

भगवद्भक्तोंकी महिमा ।

उन भक्तोंको जो भक्तिके करनेवाले हुए वा आगे होंगे और हैं उनको भगवद्रूप जानकर प्रणाम करता हूं, यद्यपि उनका वर्णन साधुसेवानिष्ठामें किया जायगा परन्तु यहां मंगलाचरणरूपसे लिखते हैं. भागवतमें लिखा है कि जिनके स्मरण करनेसे लोग कुटुम्बसहित तर जाते हैं, उनके दर्शन मिलाप और सेवा करनेसे तो क्या वर्णन करें. एकादशमें कहा है संसारसागरमें डूबते हुओंको हरिभक्त नौका है. भागवतमें भगवान्‌ने यहभी कहा है कि मैं भक्तोंके वश हूं और भक्त स्वतंत्र हैं. पद्मपुराणमें लिखा है जो मेरे भक्तोंके भक्त हैं वे मेरेही भक्त हैं, गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं.

चौपाई—विधि हरिहर कवि कोविद वानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥

अर्थात् महात्माओंके यश कथनमें सब देवताओंकी वाणी सकुचाती है. कारण कि भक्तोंकी सत्संगतिसे मनुष्योंको ब्रह्मा विष्णु शंकरका पद प्राप्त हो जाता है, इस कारण उनकी वाणी सकुचाती है कि हम हरिभक्तोंके बनाये हैं हम क्या उनकी महिमा वर्णन करें जिसको उच्चपद प्राप्त हुआ है सत्संगतिसे प्राप्त हुआ है, एक समय विश्वामित्र और पर्वतऋषिमें विचार हुआ कि तप बडा है या सत्संग ? विश्वामित्र तप और पर्वत सत्संगको बडा कहते थे, न्यायके निमित्त शेषजीपर गये शेषजीने कहा जो एक पलको पृथ्वी धारण किये रहो तौ मैं उत्तर दूं, विश्वामित्रने सम्पूर्ण तपका फल लगा दिया परन्तु भूमि न ठहरी, पर्वतऋषिने एक पलमात्र सत्संगतका फल लगाया जिससे भूमि ठहर गई और इसीसे विश्वामित्रने सत्संगको बडा माना, सत्संग आनंदका वृक्ष है सत्संगप्राप्ति फल साधन फूल है.

चौपाई—सत्संगत मुदमंगलमूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

सत्संगति मुद और मंगलकी मूल है. अब विचार लीजिये कि सत्संगतिकी कितनी बडी महिमा है जो भक्तोंको सबका आधिपति जानकर पूजते हैं, वे कल्याणभागी होते हैं, कारण कि भगवान् भक्तोंके आधीन होकर उसका कथन मानते हैं कीसी कविने सबसे बडेकी प्रशंसा करनेका विचार किया, तब पृथ्वी, शेष, ब्रह्मा, विष्णु, शिवजीकी अधिकाई मानकर फिर इनको भक्तोंके आधीन जानकर भक्तोंकोही बडा जाना, जिन्होंने दृढतासे भगवान्‌को अपने वशमें किया है, अपने मनमें वशीभूत कर रक्खा है उससे बडा और कौन है ?

चौपाई—मोहिसन कही जात सो नाहीं। वसत श्याम जिनके उरमाहीं॥

पुस्तकके संचयका कारण ।

यह रीति है कि मनुष्य किसी न किसी भांति अपने समयको व्यातीत करता है, सत्पुरुषोंका समय हरिचर्चामें व्यतीत होता है, भक्तमालके उल्थाकार कहते हैं कि स्वामी मानगिरिमहाराज जो इस समयके आचार्य हैं शास्त्रोंके ज्ञाता वेदान्त तथा उपासनामें निपुण हैं उनसे मुझको शुद्धताकी प्राप्ति हुई, उनका प्रेरणा टीका रचनेमें हुई तब मैंने अपनी शक्तिके अनुसार भाषाग्रन्थका टीका करना सुगम समझा, श्रीरघुनंदन स्वामीकी प्रेरणासे भक्तमालके उल्थेकी इच्छा की, तब असल भक्तमाल और उसकी टीका स्वामी प्रियादासकी बनाई हुई जो सबकी समझमें आती है उसीके अनुसार उर्दूभाषामें टीका करना सुलभ जाना, कारण कि-

दोहा-अति अपार जे सरितवर, जो नृप सेतु कराहिं ।
चढ पिपीलिका परम लघु, विनु श्रम पारहिं जाहिं ॥

सिद्धान्तसे उल्था लिखा, दूसरे मुक्तिका होना भक्तिपर है भक्तमालमें विस्तारके साथ भक्तिका वर्णन किया गया है, तीसरे इसमें हरिभक्तोंका वर्णन है उसके प्रसादसे भगवत् और भक्ति दोनों प्राप्त होती हैं. भागवतमें लिखा है भक्तोंका चरित्र वर्णन करना मुख्य बात है. रामायणमें कहा है कि, "मोरे मन प्रभु अस विश्वासा । रामसे अधिक रामकर दासा ॥" इस कारण हरिभक्तोंका चरित्र लिखना मुख्य जाना.

भक्तमालके प्रथम कवि और उनके उल्थका वृत्तान्त ।

नारायणदास प्रसिद्ध नाभाजी भक्तमालके प्रथम कवि हुए. इनका जन्म हनुमानवंशमें हुआ, तैलंग देशके निकट गोदावरी नदीके उत्तर एक भद्राचल पर्वत है, वहां श्रीरघुनंदनस्वामीने जाते समय थोडे दिनतक निवास किया, वह स्थान अबभी प्रतापी है,

यहां रामदासजी ब्राह्मण महाराष्ट्र हनुमान्जीके अंशसे जन्म लेते हुए उनकी पृष्ठपर छोटासा लांगूलभी था, रघुनंदन स्वामीके अनन्य भक्त थे. उन्होंने पचास सहस्र रामचरित्र मरहटी भाषामें रचा, जो उस देशमें प्रसिद्ध है, और प्रत्येक श्लोककी आदिमें गायत्रीका प्रथम अक्षर लिखकर, चौबीस अक्षर गायत्रीके चौबीस श्लोकोंमें पूर्ण किये, इसी क्रमसे रचना कर अपनी कविता गायत्रीरूपसे प्रतिपन्न की. सहस्रों मनुष्य रामभक्तिमें लीन हुए और अन्तमें भगवद्रूपको प्राप्त हुए, उनकी और उनके भाइयोंकी संतान रामदासजीके हनुमानअवतारके कारण हनुमान वंश कहकर प्रसिद्ध है. यह वंश गानविद्यामेंभी प्रसिद्ध है, गानेपर राजदरबारमें इस वंशवाले वेतन पाते हैं नाभाजी नेत्रहीन थे जब इनक पिताका देवलोक हुआ तो माता इस बालकको जंगलमें डाल कहींको चल दी. संयोगवश उधर स्वामी बांकेलालजी और अग्रदासजी आ निकले, और दयाकर मंत्रपूर्वक इनकी आंखोंपर जल छिडका तो इनको दिखाई देने लगा; तब पूछा तू कौन है नाभाजी बोले एक तो यह पंचतत्वका देह दूसरा आत्मा है, इनमें तुम किसको पूछते हो, यह सुन स्वामी अग्रदासजी उसे अपने साथ गलताजीमें जो जैपुरमें अमेरके निकट है ले आये और अपना चेला करके नारायणदास नाम रक्खा. ठाकुरद्वारा और वैष्णवोंकी टहल सौंपकर साधुओंके उच्छिष्ट खानेकी आज्ञा दी, एक दिन स्वामी अग्रदास मानसी पूजनमें थे कि उस समय उनके एक सेवककी नाव समुद्रमें डूबने लगी, तब उसने स्वामी अग्रदासजीका स्मरण किया स्वामीजीका चित्त उस ओर गयाही था कि नाभाजीने नाव जोडी और उस समय स्वामीजीकी टहलमें थे कहा कि महाराज! नौका बच गइ चलने लगी आप पूजा करें स्वामीजी बोले जो तुम्हारा मनोरथ था प्राप्त हुआ; अब ठाकुर वैष्ण-

वोंकी टहलसे छुटकारा दिया, उचित है कि जिन भक्तोंके प्रसादसे यह मनकी शुद्धता प्राप्त हुई है उनका वृत्तान्त विस्तारके साथ लिखो नाभाजी बोले मेरी क्या सामर्थ्य है जो भक्तोंके वृत्तान्तको लिख सकूं कारण कि हरिचरित्रसेभी भक्तोंके चरित्र अगम्य हैं. स्वामी बोले जिस भगवत् और भक्तिके प्रतापसे तुमको यह पद मिला है उनके प्रतापसे भक्तोंका वृत्तान्तभी तुम जान जाओगे, नाभाजीने अपने गुरुकी आज्ञा मानकर भाषामें छप्पै और छन्दोंमें भक्तोंका नाम और उनके चरित्र लिखकर भक्तमाल नाम रक्खा, अर्थात् भगवद्भक्त तो रत्न और यह उनकी माला है इस मालाका बडप्पन इस कारण है कि दूसरी माला भजन और शरीर शोभाके निमित्त होती तथा जपसे दीर्घ कालमें मनोरथ पूर्ण करती है, और इसके धारण करतेही दोनों मनोरथ सिद्ध होते हैं, इसके पढनेवाला ऐसा नहीं हो सक्ता जो परमेश्वरको न जाने और देहकी शोभा इस कारणसे है कि वह सब छोटे बडोंमें प्रधान हो जाता है, मालाओंमें एक सौ आठ दाने होते हैं, वैसेही नाभाजीकी भक्तमालमें एक सौ आठ छप्पै छन्द इत्यादिक हैं, स्वामी प्रियादासने उसकी टीका भाषा कवितामें बनाई यह स्वामी माधवीसंप्रदायके वैष्णव प्रेम और भजनमें प्रसिद्ध वृन्दावनमें रहते थे उसके पीछे लालजीदासने वैष्णवदास प्रियादासके पोतेसे निश्चय करके उसका टीका किया, उसका नाम भक्तउरवसी रक्खा, यह लालजीदास कांधलेके रहनेवाले थे और लक्ष्मणदास नामसे मथुराके आसपास चकलेदारीमें थे जब इनको सत्संग हुआ तब हित हरिवंशजीकी गद्दीके उरपास करधा वल्लभलालजीके सेवक हुए और गुरुसे लालजीदास नाम पाया, यह उल्था बहुत शुद्ध समझके योग्य उपासनाकी रीतिपर है, और अनुवादककी भक्तिभी उनके अक्षरोंसे पाई जाती है दूसरा अनुवाद किसी औरकाभी है परन्तु

आदि अन्तके पत्रे जाते रहनेसे अनुवादकका नाम विदित नहीं हुआ तीसरा उल्था लाला गुमानीलाल रोहतकके रहनेवाले कायस्थ जातीयने संवत् १८९८ में किया और उल्था करनेमें बहुत परिश्रम किया, इसमें द्वापर और कलिके भक्तोंको पृथक् पृथक् लिखा. पण्डिताई और भक्ति भरे अक्षरोंसे यह ग्रंथ उत्तम है, चौथा अनुवाद लाला तुलसीरामपुत्र लाला रामप्रसाद अग्रवाल मीरापुरवासीने संवत् १९११ में किया और जो जो भक्तिकी आवश्यक रीति है वहभी इस पुस्तकमें लिखी है, सर्व साधारणके उपयोगी बनानेमें इन्होंने इस ग्रंथको निर्मित करनेमें बडा परिश्रम किया. इन्होंने विचारा कि कोई बात धर्मशास्त्रोंसे विरुद्ध न हो इस कारण जो स्वयं नहीं जानते थे वह बात पंडितोंसे निश्चय कराई परन्तु विस्तारभयसे सब नहीं लिखा, वेदशास्त्रादिके जो वचन संग्रह किये थे कहीं उनका अर्थ और कहीं आशय मात्र लिखा, और चौबीस निष्ठा नियत करके जिस भक्तकी जो निष्ठा थी उसी निष्ठामें उस भक्तका चरित्र सन्निविष्ट किया और लिखते समय नीचे लिखी बातोंपर ध्यान रक्खा, प्रथम भक्तकी संप्रदायपर, दूसरे उसके इष्टपर कि जिस निष्ठाके कारण वह अपने मनोरथको प्राप्त हुए, तीसरे मनोरथको प्राप्त होनेमें जिस निष्ठाकी ओर उनका मन लगा, चौथे कुछ भक्तोंका नाम उस निष्ठामें लिखा गया, जिस निष्ठासे उस भक्तकी कथा, पुराण वा भक्तमालसे सम्बन्ध रखती है. यद्यपि इसमें कवितादि नहीं है परन्तु भगवत् भक्तोंके चरित्र तथा उनकी महिमा इसमें लिखी है, इस कारण मुझे आशा है कि सज्जनपुरुष इसको सुनकर सराहेंगे. मैं यद्यपि इस योग्य नहीं हूं कि हरिभक्तिका वर्णन करूं कारण कि मेरे पापोंकी गणना चित्रगुप्तभी नहीं कर सकते केवल इसी विश्वासपर कि यदि सत्संगकी महिमा वेदशास्त्रके अनुसार महान् है तो यह मेरा उल्था भगवत् और भक्तोंके

नाम तथा उनके चरित्रका सत्संगी है, इस कारण हरिभक्त इसका अवश्य आदर करेंगे, यह मुझे आशा है. भागवतमें लिखा है कि जो कविता अलंकारादिसे युक्त है और उसमें भगवान्का यश नहीं कहा हो तो वह साधुओंने वायसतीथ कहा है, और जिसमें कविताके भावभेद रसभेद न होकर नारायणकी भक्ति वा उनक चरित्र वर्णन किये हैं, तो हंसोंकी समान हरिभक्त उसको मानससरोवर जानकर सेवन करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं.

चौपाई–सब गुणरहित कुकविकृत वानी । रामनामयश आंकित जानी॥
सादर कहैं सुनै बुध ताही । मधुकरसारिस सन्त गुणग्राही॥

अर्थात् सब गुणोंसे रहित कुकविकी वानी, रामनामके यशसे आंकित हो तो बुधजन उसको आदरपूर्वक सुनते कहते हैं भ्रमरकी समान सन्त गुणोंको ग्रहण करते हैं.

इस कारण भूलके निमित्त क्या कहूं यह मनुष्य भूलका भंडार है मेरी समान पापात्मा न कोई हुआ है न होगा, कर जोड दीनतासे सबसे प्रार्थना करता हूं कि, चाहे तो इसको अपने लाभके लिये उत्तम समझकर और चाहे मेरी अज्ञानताका हास्य करनेके निमित्त इसके पाठमें रुचि करे, प्रायः बुद्धिमानोंकी इच्छा रहती है कि समझके योग्य पाठ होना चाहिये, इसका नाम दो तीन भक्तोंकी सम्मतिसे भक्तमालप्रदीपन रक्खा गया, प्रदीपनका अर्थ प्रकाश है; अर्थात् यह आत्मामें तेजकी देनेवाली है, चौवीस निष्ठा जो भक्तोंने मुझको आज्ञा देकर नियत कराई, इसका कारण यह विदित होता है कि चौबीस तत्वोंसे ब्रह्माण्डकी रचना है, भगवान्ने जगत्के उद्धारके २४ अवतार धारण किये हैं, इसी प्रकार उनके आश्रयसे जगत्के उद्धारके लिये २४ निष्ठा हैं.

प्रथम निष्ठा, धर्म और कर्मकी प्रशंसामें, इसमें ७ भक्तोंकी कथा है,

दूसरी निष्ठा, भागवतधर्मप्रचारक जिनसे हरिभक्तिका प्रचार हुआ, इसमें २० भक्तोंकी कथा है.

तीसरी साधुसेवा और सत्संगतिके वर्णनमें, इसमें ३० भक्तोंकी कथा है.

चौथी श्रवण, इसमें चार भक्तोंकी कथा है.

पांचवीं कीर्तन, इसमें उन्नीस भक्तोंकी कथा है.

छठी भेषनिष्टा है, इसमें आठ भक्तोंका वर्णन है.

सातवीं गुरुमहिमा निष्टा है, इसमें ग्यारह भक्तोंकी कथा है.

आठवीं प्रतिमार्चन निष्टा, इसमें १९ भक्तोंकी कथा है.

नवमी लीलानुकरण निष्टा, इसमें ६ भक्तोंकी कथा है.

दशमी दया अहिंसा निष्टा, इसमें ६ भक्तोंकी कथा है.

ग्यारहवीं व्रतनिष्टा, इसमें २ भक्तोंकी कथा है.

बारहवीं प्रसादनिष्टा, इसमें चार भक्तोंकी कथा है.

तेरहवीं धामनिष्टा, इसमें आठ भक्तोंकी कथा है.

चौदहवीं नामनिष्टा, इसमें पांच भक्तोंकी कथा है.

पन्द्रहवीं ज्ञाननिष्टा, इसमें बारह भक्तोंकी कथा है.

सोलहवीं मूल वैराग्य और शान्ति, इसमें १४ भक्तोंकी कथा है.

सत्रहवीं सेवानिष्टा, इसमें दश भक्तोंकी कथा है.

अठारहवीं सौहार्दनिष्टा, इसमें छः भक्तोंकी कथा है.

उन्नीसवीं शृंगारमाधुर्य्यनिष्टा, इसमें वीस भक्तोंकी कथा है.

बीसवीं वात्सल्यनिष्टा है, इसमें नौ भक्तोंकी कथा है.

इक्कीसवीं दासनिष्टा, इसमें १६ भक्तोंकी कथा है.

बाईसवीं सख्यनिष्टा, इसमें पांच भक्तोंकी कथा है.

तेईसवीं शरणागति वा आत्मनिवेदन, इसमें दश भक्तोंकी कथा है.

चौबीसवीं प्रेमनिष्टा, इसमें १६ भक्तोंकी कथा है.

भक्तमालके उल्थेका कारण ।

यह दासानुदास हरिप्रपन्न रामानुजदास उपनाम हरिवर ज्ञाति कायस्थ माथुरमाणिक्य भंडारी रहनेवाले खेतडी हैं संवत् १९१४ में समयकी कठिनतासे जब खेतडीमें निवास कठिन हो गया तौ बडे भाई पन्नालालकी आज्ञासे पहले तो कुछ समयतक तीर्थ लोहार्गलजीमें रहा, फिर अपने पितरोंके स्थान लालसोठमें रहा, वहां राजधानी न होनेके कारण अपना निर्वाह न जानकर सवाई जैपुरमें ठहरा, और सवाई जैपुरमें न होनेके कारणसे वहां चला आया, वहां भगवद्भक्ति-परायण लाला जानकीदासजी मुनीम कोठी लक्ष्मीचन्द राधाकृष्णजी मथुरावालोंने सहायता कर पहले तो साभर भेज दिया, उस इला-केका कामकाज करता रहा, फिर जैपुरमें वकालतपर रक्खा, वहां श्रील-क्ष्मीनारायण और स्वामी श्रीरंग रामानुजदासजीके अनुग्रहके फलसे परमभागवत क्षत्रियवंशावतंस, रामसिंहजीके पुत्र राव हनुमंतसिंह-जीसे सतसंग हुआ तौ चित्तको श्रीरामानुजसंप्रदायकी रीति और वैभव उत्तम विदित हुआ, तब उन्होंने भाष्यकार श्रीस्वामी रामानु-जसिद्धान्तनिर्द्धारक श्रीबद्रीनारायण तोताद्रीजी स्वामीसे प्रार्थना करके इस महापापीकी प्राप्ति उनकी तीरुडिके निकट करवाई, तौ उन श्रीमहाराजकी चरणसरोजकी कृपासे इस लोकके दुःखोंकी निवृत्ति परलोकके सुखोंकी प्राप्ति शास्त्रद्वारा सुगमदृष्टि आई, और लाला जान-कीदासजी द्वारा भक्तउर्वशी पुस्तक मेरे देखनेमें आई, इस पुस्तक और इसके निर्माताओंकी महिमा कहांतक कहूं, जो ज्ञान बहुत शास्त्रोंके देखनेसे दीर्घ कालमें होता है, वह इसके अवलोकनसे थोडे ही कालमें होता है और परमानंदकी प्राप्ति होती है, परन्तु यह पुस्तक उर्दूकी शब्दरचना और उर्दूमेंही लिखी थी, इस कारण बहुतसे महात्माओंकी यह इच्छा हुई कि यदि यह पुस्तक देशभाषामें

होकर नागरीके अक्षरोंमें छपे तो बडा उपकार हो. मेरीभी इच्छा ऐसाही करनेकी हुई, परन्तु उस समय यह नहीं हो सकी, फिर संवत् १९२१ में श्रीमान् राजा फतहसिंहजी साहब बहादुर अधीश खेतडीने दया उदारतासे इस आधीनकी गुणग्राहकता और कार्य-ग्राहीसे अपनेमें संयुक्त करनेके निमित्त शेठजीको लिखा, और इस आधीनको अपनी समीपताका अधिकारी किया; फिर यहां मनीषी ज्वालासहायजी, मीर मुंशीसे सन्मैत्री होनेके कारण उनकी सम्मतिसे इसका उलथा करना निश्चय हुआ. वेषनिष्ठावालोंमें सब संप्रदाय-वालोंकी वंशपरंपरा लिखी है, जिसमें श्रीरामानुजदाससंप्रदायमें अग्रजी किल्हजीसे उत्तरादी वैष्णवोंके नाम तो लिखे हैं, परन्तु प्रथमसे नहीं इससे मनमें इच्छा हुई कि इस संप्रदायके आचार्योंकी दाक्षिणात्य वंश-परंपरा भली भांति लिखूं. परन्तु वह सम्पूर्ण वंशपरंपरा अतिविस्तृत होनेके कारण केवल गुरजीरस्वामीकी परंपरा प्रमाण आज्ञानुसार संयुक्त की गई; और श्रीमान् पण्डित रामकरणजीकी सम्मतिसे इस उलथेका नाम हरिभक्तिप्रकाशिका रक्खा. आचार्योंकी वंशपरंपरा लिखनेको दो पृष्ठ छोड दिये हैं; जिन्हें स्मरण हो लिख लें, इस पुस्त-कके पाठ करनेसे हृदयमें परम आनंद होकर दोनों लोक सुधरते हैं. तथा भक्ति उत्पन्न होती है; यह दास दो भाई हैं; परन्तु दोनोंहीके सन्तान नहीं थी, इस पुस्तकके प्राप्त होने और अवलोकन करनेके पीछे रघुनन्दनस्वामीकी कृपासे थोडेही कालमें पुत्रप्राप्ति हुई, इस लोकका सुखभी प्राप्त हुआ इसी प्रकार दीनबंधु दीनानाथ अपनी दयालुतासे परलोक सुखभी देंगे, कारण कि मैंने उनको पतितपावन सुना है, वे पुरुष धन्य हैं जिनपर गुरुकी कृपासे रघुनंदनस्वामीके चरणोंमें भक्ति होती है उनके चरणोंको कोटि कोटि दंडवत् कर प्रार्थना करता हूं कि करुणा और दयालुतासे दासको अपना जानते रहें.

भक्तमालके पुनः संस्कारका कारण ।

पूर्वमें जो भक्तमाल मुम्बईमें छपी थी उसकी शब्दरचना और भाषा कुछ इस प्रकारकी मिश्रित थी, कि सर्व साधारणके उपयोगी नहीं थी. पढनेमें भी उलझता था तथा अशुद्धता बहुत थी, इस कारण परोपकारनिरत हरिभक्त परमोदार सेठजी श्रीगंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजी महाशयकी यह इच्छा हुई कि अबकी वार यह ग्रन्थ इस देशकी शुद्ध भाषामें छपे तो पाठकोंको अति उपकारी होगा उन्होंने मुझे लिखा, मैंने इस कार्यका भार लेना मानो अपनेको कृतार्थही होना निश्चित किया, कारण कि ऐसा कौन आस्तिक पुरुष है, जो हरिलीला वा उनके भक्तोंकी लीलासे विमुख हो, मैंने इस ग्रंथको सर्वथा इस देशकी भाषामें करके यथोचित स्थानपर दोहे और भजनभी सन्निवेशित कर दिये हैं, यहां यह बातभी प्रगट करनी कुछ अनुचित न होगी कि आदिमें मैंने दोही ग्रंथोंका मनन किया था भक्तमाल, और गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण, और इन ग्रंथके अवलोकनसे ऐसी प्रीति हुई कि स्वयं बिना कुछ कहे न रहा गया, इसमें मेरा कुछभी कर्तव्य नहीं है, केवल "जेहिपर कृपा करहिं जन जानी । कवि उर अजिर नचावहि बानी ॥" जिसपर कृपा करते हैं उसके हृदयमें मतिकी प्रेरणा करते हैं. उन्होंकी प्रेरणासे प्रथम संवत् १९४० में मैंने इसी वार्तिक भक्तमालको दोहे चौपाई और कहीं २ छन्दोंमें लिखकर २४ निष्ठाओंमें पूर्ण कर दिया परन्तु अभीतक वह ग्रंथ प्रकाश नहीं हुआ, मुम्बई प्रेसमें मौजूद है. दूसरा तुलसीकृत रामायणका टीका लिखा वह इस समय सर्वसाधारणके दृष्टिगोचर है. यह सब हरिभक्तों और रघुनंदनलालकी कृपाका प्रताप है, मेरा इतना साहस नहीं था. एक वार प्रथम छन्द चौपाईमें रचना करने और फिर इसके वार्तिक संस्कार करनेमें मैंने अपने मनका उत्साह प्रगट किया है इसके अवलोकनसे पाठ-

कोंको विदित होगा कि हरिभक्तिका प्रताप कैसा है और इसके पाठसे हरिभक्तिका प्रवाह उमडता है, और प्रेम दृढ होता है. इसमें सन्देह नहीं मुझे अपना नाम ठाम बतानेकी बडी आवश्यकता नहीं केवल इतनाही कहना मेरे निमित्त बहुत है, कि पश्चिमोत्तर मुरादाबादनिवासी ज्वाला प्रसाद मिश्र नामसे इस समय परिचित हूं. भक्तमालके संस्कार करनेसे हरिभक्तोंकी दृष्टि इसपर पडेगी, और उनके मुखसे मेरा नाम निकलेगा तौ मैं पवित्र हो जाऊंगा ऐसी मुझे पूर्ण आशा है.

छन्दबद्ध एक दूसरी भक्तमाल रीवांधिपति महाराज रघुराजसिंह-निर्मित इस समय छपी हुई मिलती है, इसकी कविताभी परमोत्तम है, इसका क्रम इस भक्तमालकी समान नहीं है किन्तु उसमें चारों युगोंके भक्तोंकी कथाका युगोंके क्रमपर वर्णन किया है.

भक्तमालकी महिमा और प्रशंसा ।

भक्तमालकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है; यह दोनों लोकके हितके निमित्त कल्पवृक्ष और कामधेनु है, जो इसको सदैव पढते हैं. सदा उनको भक्तिकी प्राप्ति अवश्य होती है बहुत दूसरे महात्माओंको तथा इस दासकोभी इसकी बहुधा परीक्षा हुई है जो तीर्थोंके स्नान दानका फल होता है, वह इस भक्तमालके पढनेसे प्राप्त होता है. संसारमें तीन प्रकारके मनुष्य हैं मुक्त, मुमुक्षु और विषयी. मुक्त और साधकोंको तौ यह प्राणाधार है, उनको इससे पूर्णानंद और मनोरथ प्राप्ति होती है, विषयी पुरुषोंको इस कारण उत्तम है कि इससे संसारी मनोरथभी प्राप्त होते हैं, और निश्चय है कि भगवत्‌की ओर उनका मन लग जाय, तथा इसमें बहुतसे भक्तोंकी कथा ऐसी है जिनमें अनेक प्रकारके रस झलकते हैं, यद्यपि यह भगवत् सम्बन्धी प्रेमकी कथा है, परन्तु हरिका प्रेम और संसारी प्रेमरीति दोनोंकी प्रायः एकसी है इस कारण वे इन रीतियोंको संसारसम्बन्धी जान-

कर आनंदको प्राप्त होंगे निदान तीनों प्रकारके मनुष्योंको यह आनंद-की देनेवाली है, और भगवान्‌को भक्तोंकी समान यह प्यारी है, और स्वयं इसको सुनते हैं, एक वैष्णव गोवर्द्धनदास व्रजभूमिकाके रहने-वाले जैपुरमें गये, राधारमण नाम गोविन्दजीके पूजारीने उसने भक्त-मालकी कथा सुननी प्रारंभ की कथा पूर्ण न होने पाई थी कि साम्भरकी ओर चले गये, जब लौटकर आये तो लोगोंसे पूछा कि कथा कहांतक हो चुकी है, किसीने न बताया, तब कि गोविन्ददेवजीने बता दिया कि उस भक्ततक हो चुकी है, इससे प्रगट है भगवान् स्वयं सुनते हैं दूसरी कथा इस प्रकार है कि भक्तमालके टीकाकार स्वामी प्रियादा-सजी कसबे स्वेहोमें जो मथुरासे बीस कोसके अन्तरपर है आये और ठाकुरद्वारेके महन्त लालदासको कथा सुनाई, संयोगवश मंदिरमें चोरी हो गई और अज्ञानी लोगोंने चोरीका कारण कथाको बताया परन्तु महन्तजीने कुछ ध्यान न दिया और स्वामी प्रियादासजीसे कथाके लिये कहा, स्वामीजीने आज्ञा की कि इस कथाके श्रोता भगवंत हैं, जबतक भगवतका सिंहासन न आवेगा तब तक कथाका विश्राम रहेगा, और ठाकुरद्वारेके सब लोग भगवत्‌के जानेसे उस दिन विना अन्न जलके रह गये जब रात हुई तब भगवान्‌ने चोरोंको ऐसा भय दिया कि प्रातःकालही भगवान्‌के सिंहासनको शिरपर रखकर सब सामग्रीके साहित महन्तजीकी शरणमें आये, तो सबको भक्तमालकी महिमापर विश्वास हुआ दुराग्रही पुरुषोंपर धूल पडी. कथाका प्रारंभ हुआ, यह बात कुछ कठिन नहीं है, कारण कि जिस अवस्थामें आप भगवान् भक्तोंकी सहायता करनेकी अपना धाम त्यागकर आते हैं, अवतार लेते हैं, उन्हें यह बात करना क्या कठिन है,अब वह चरित्रभी लिखते हैं कि इस पोथीके प्रभावसे भक्तोंके मनोरथ पूरे हुए. गलताजीमें समीरदेव ब्राह्मणने जो नर्मदाके तटपर कोडीनकेका नि-

वासी था उसने भक्तमालकी कथाको बडे प्रेमसे सुना, और पुस्तककी लिपी कर घरको चला, मार्गमें चोर संहार कर पोथी और सब सामान ले गये, परन्तु जहां यह पोथी रहती है वहां मनके विकार दूर हो जाते हैं इस कारण चोरोंको अपने कर्मपर पश्चात्ताप हुआ और भक्तमालने स्वप्नमें भय दिया कि समीरदेवके देहको उसके घर पहुँचा दो और पोथीको उसके शिरपर रक्खो वह जी जायगा, चोरोंने उसी प्रकार किया और उसके कुटुम्बियोंने उसके शिरपर पोथी रखाई वह तत्काल जी उठा, जैसे कोई सोकर उठ बैठता है, यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ, और भक्तमालपर विश्वास लाकर भगवान्के शरण हुए, विष्णुभक्त होकर कृतार्थ हो गये, इसी प्रकार एक व्यापारीने इस पुस्तकको प्रियादाससे सुना, और विश्वास कर उसकी प्रति लिखाकर ले गया, थोडे दिनों उपरान्त उसे मृत्युने आन घेरा, तब अन्तसमय यमदूतोंसे डरकर उसने कुटुम्बियोंसे कहा, इस पुस्तकको मेरी छातीपर रख दो, अभीतक पोथी नहीं आई थी कि, उसके प्राण निकल गये, परन्तु कुटुम्बियोंने उसके ऊपर पुस्तक रख दी जिसके प्रसादसे यमदूत भाग गये, और वह उठकर कहने लगा कि यमदूत तौ यमलोकको लिये जाते थे भगवद्भक्तोंने छुडाया है, अब वैकुंठको जाता हूं और यह कहे जाता हूं जो मेरी सन्तान हो इस पुस्तकको पढती सुनती रहे, अन्तसमय इसको अपनी छातीपर रक्खे यह कहकर वह परम धामको गया, जो कुछ वह कह गया था उसकी सन्तानमें अबतक वह रीति चली आती है. रायगुमानीलाल साहब तीसरे उल्थाकारने अपना वृत्तान्त लिखा था, कि बडी बडी अभिलाषाओंसे एक पुत्र उनके हुआ, उसको कुछ पवनबाधा रहा करती थी एक दिन लालसाहब उल्था कर रहे थे कि घरमेंसे रोने पीटनेका शब्द सुनाई आया, जब उठकर उसे देखा तौ पुत्रको मूर्च्छित पाया,

और उसकी माता रोरोकर दो चार शब्द पुस्तककोभी क्षुभित करने वाले कहने लगी, जो कि उनको पुस्तकपर विश्वास था अब उसके निमित्त बुरे शब्द सुने तौ न सह सके, और कहा पोथीको बालकके शिरपर रख दो भगवद्भक्त और पोथीका प्रताप विदित हो जायगा. उसने पुस्तकको ज्योंही बालकके शिरपर रक्खा मानो उसमें प्राण आ गये, उसी समय वह बालक उठ बैठा, और फिर वह बाधा कभी न हुई. जो कुछ महिमा प्रताप इस पोथीका लिखा जाय थोडा है, इसमें आश्चर्य नहीं है. इस पुस्तककी महिमासे संसारके दुःख दूर होकर मनुष्य परमपदका अधिकारी होता है.

रसभेदका वर्णन ।

यद्यपि भूमिका हो चुकी, परन्तु चौबीस निष्ठा लिखी जांयगी वह रसोंसे सम्बन्ध रखती हैं प्रथम भक्तमालमें भक्तिमें पांच रस लिखे हैं परन्तु यह किसी टीकेमें नहीं मिलते इस कारण मैं निश्चय करके लिखता हूं. रसोंका मूल श्रुतिमें है ' रसो वै रसः ' यह श्रुति है ईश्वर परमात्मा रसरूप है रसका अर्थ यह है कि एकाग्र चित्तकी वृत्ति जिस आनंदरूपको पहुँचकर लीन हो जाय अर्थात् सच्चिदानंद-घन परब्रह्म अपने स्वामीके और उस स्वरूपमें जो ध्यान करनेमें आता है स्थायीभावको पहुँच जाय, अर्थात् उस स्वरूपमें ठहर जाय, वह रस है. फिर उसीका दूसरा वर्णन है, कि जो भगवत्का स्वरूप शृंगार वात्सल्य इत्यादि रसोंकी सामग्रीसे जो अपने स्थानपर लिखी जायगी, साधुके चित्तमें प्रगट हो, उस स्वरूपमें मन स्थिर हो जाय, उसको रस कहते हैं और किसी २ रसभेदको उस प्रगट स्वरूपका नाम भाव लिखा है, और उस भावसे चित्तका स्थायीभाव हो जाना रस कहा है. सो वह रस एक और व्यापक पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघन है उसके प्रगट होनेकी जो पृथक् सामग्री

है, उस कारण पृथक् २ नाम हैं, यथार्थमें रस एक और व्यापक है. जैसे सिद्धिके अनेक प्रकारके भांड बनते हैं मृत्तिका सबमें एक और व्यापक है, इसी प्रकार जल एक है परन्तु उसमें जैसा रंग डालोगे वैसा दीखने लगेगा. इसी प्रकार वह जिस स्थानमें स्वरूप बनावट और हावभावकी सामग्रीसे प्रगट हो उसको शृंगार रस कहते हैं. जहां वीरता बल उमंग इत्यादिकी सामग्रीसे प्रगट हो उसे वीररस कहते हैं, इसी प्रकार और सामान्य वात्सल्य इत्यादिके पृथक् २ स्वरूप हैं. निदान रस एक है, पृथक् २ सामग्रीके कारण अनेक नाम हो गये हैं यहां यह शंका होती है कि प्रथम तो चित्तके स्थायीभावको रस लिखा; फिर रसको व्यापक सच्चिदानंद ईश्वर लिखा; इन दोनोंमें यथार्थ क्या है, तो यह जानना कि रस भगवत्स्वरूप व्यापक है. चित्तकी स्थिरताके लिखनेका कारण यह कि जैसे कहनेमें आता है कि भोजन वा घृत आयु है सो निश्चयार्थमें आयु नहीं किन्तु आयुका हितकारक है. इसी प्रकार मनकी स्थिरता रसकी सामग्री है, और उसकोही रस कहते हैं. शृंगार उपासक कहते हैं कि आनंदस्वरूप केवल शृंगारसेही प्राप्त होता है, और रस तुच्छ है इसका उत्तर यह है कि यदि आनंदका मूल केवल शृंगारही है तो सिंह मेंढा हाथीकी लडाई वा मल्लयुद्ध देखनेसे वा रामवनगमनकी करुणा सुननेसे आनन्द और अश्रुप्रवाह क्यों होता है ? यदि करुणामें आनंद न हो तो कोई उसके सन्मुख नहीं, इत्यादिक जिसका शृंगारसे सम्बन्ध नहीं उनसे आनन्द न होना चाहिये; कोशवाले आठ रस कहते हैं. शान्तरसका वर्णन नहीं करते. वेदान्तशास्त्रवाले शान्त रसको मूल और दूसरे रसोंको उसकी शाखा बतलाते हैं. साहित्यशास्त्रवाले कि वह शास्त्र प्रेम काव्य और रसभेदादिसे संयुक्त

है नव रस कहते हैं. यथा शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त यह नौ रस हैं. भगवतउपासक किसीकी हानि नहीं करते परन्तु उपासनाके योग्य नौ रसोंमेंसे दो रस शृंगार और शान्त तीसरा अधिक उसमें एक सखाभाव दूसरा दास्यभाव और वात्सल्य यह पांच रस अंगीकार करते हैं. यद्यपि सम्पूर्ण रसोंके अवलम्बनसे भगवान्का चिन्तवन हो सकता है, कारण कि वह सब रसोंमें व्याप्त है परन्तु उपासनावाले केवल पांच रसको अंगीकार करते हैं उसका कारण यह है कि उन पांचों रसोंको भगवत्के अवश्य और शीघ्र प्राप्त करानेमें विशेषता है. दूसरे रसोंसे ऐसी शीघ्र भगवत्की प्राप्ति नहीं हो सकती, उन नौ रसोंमेंसे जैसे भयंकर और बीभत्स कोई कोई ऐसे हैं कि कोई उपासक उनके द्वारा उपासना नहीं करना चाहता. हिरण्यकश्यप रावण कंस इत्यादिको उस स्वरूपसे उद्धार कर भगवान्ने मुक्ति दी, इस हेतु उनकीभी रसोंमें गिनती हुई परन्तु सिद्धान्त उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले पांचही रस हैं. इस ग्रंथमें पांचों रस निष्ठा नामसे लिखे जांयगे, और दूसरी सब निष्ठा उन रसोंके अंगभूत हैं, कोई किसी और कोई किसी प्रकार विश्वासकी रीति और भावसे भगवान्की उपासना करें, रसका व्यतिक्रम नहीं होता उसमें रस रहताही है. अब यहां रसोंके सम्बन्धकी बातें लिखी जाती हैं, और मुख्यरससम्बन्धी निज २ स्थानपर लिखी जांयगी, परन्तु भली प्रकार ध्यानमें आनेके निमित्त शृंगाररसके सम्बन्धके दृष्टान्त यहां लिखे जांयगे, वह रस जिसका ऊपर वर्णन हुआ है, चार सामग्रीसे प्रगट होता है. विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्याभिचारी. विभाव उसको कहते हैं जो कारण और मूल उस रसके प्रगट होनेका हो, उसके आलम्बन विभाव, और उद्दीपन विभाव यह दो भेद हैं. आलम्बन विभावभी दो प्रकारका है, एक आश्रयावलम्बन जो रसके रह-

नेका स्थान, अथवा रसकी उत्पत्तिका स्थान, सो वह ध्यान करनेवाले हरिभक्त अर्थात् स्नेहासक्त इसका आश्रित है. दूसरा विषयावलम्बन अर्थात् मूर्तिशृंगार रसिक जिसका ध्यान किया जाय. तात्पर्य्य भगवत्स्वरूप और जिसपर सनेह होय, दूसरा उद्दीपन चार प्रकारका है पहले गुण यह कि सुन्दरता स्वरूपकी लावण्यता, नवयौवन मनमोहन किशोर अथवा बालक स्वरूप सुन्दर बोलन,प्रीति इत्यादि, दूसरी चेष्टा यह कि कान्ति झलक सुकुमारताका गर्व हावभाव कटाक्ष कोमलता, तीसरा अलंकार यह कि वस्त्राभूषणकी सजावट आदि. चौथा तटस्थ यह कि अतर पान फूलका सेवन, यह विभावका वर्णन हुआ. दूसरी सामग्री अनुभाव यह है कि स्नेह करनेवाला और जिसपर स्नेह है दोनोंके एकत्र होनेसे जो बात प्रगटमें आवे और उससे जो रस प्रत्यक्ष हो उसको अनुभाव कहते हैं, जैसे परस्पर मिलना, गले लगाना खेलना शयन हँसी चुम्बन आलिंगन यह अनुभाव है, अब तीसरी और चौथी सामग्री सात्विक और व्यभिचारीका वृत्तान्त यह है कि प्राचीन आचार्योंने उन दोनोंको प्रीति करनेवालेकी चंचल दशा समझकर, केवल एक व्यभिचारीही नाम लिखा है, उसका वणन निर्मूल नहीं है. भरतऋषिने अपने सूत्रोंमें लिखा है, परन्तु नवीनोंने यह सूक्ष्मता निकाली है कि जो सब रसोंमें एक दशा व्यापक रहता हो उसका नाम सात्विक है, और जो दशा एक रसमें व्यापक होकर दूसरेमें व्यापक न हो वह व्यभिचारी है. दशरूपक आदि रसभेदके शास्त्रमें सात्विक व्यभिचारि पृथक् २ लिखे हैं. सात्विक उसको कहते हैं, कि अपने प्रीतमको देखकर अथवा उसकी ओरसे सुख दुःखके पहुँचनेसे जो मनकी दशा प्राप्त होती है, वह आठ प्रकारकी है जिस प्रकार सामग्री पहली और दूसरी जैसे विभाव और अनुभाव सब रसोंके पृथक् पृथक् हैं इस प्रकार सात्विक तीसरी सामग्री सब रसोंकी पृथक् पृथक् नहीं

एकही भांति सब रसोंमें प्राप्त है. प्रथम दशा अर्थात् निश्चल हो जाना, स्तंभ दूसरी प्रलय मूर्च्छा होना, तीसरी रोमांच शरीरके रुयें खडे हो जाना, चौथी स्वेद पसीना आना, पांचवीं विवर्ण मुखका रंग बदल जाना, छठी कम्प शरीरका कांपना, सातवीं अश्रुपात, आंसूं बहाना आठवीं स्वरभंग स्वर बदल जाना. यह आठों दशा और एक दशा मरण कि उसको व्यभिचारीके वर्णनमें लिखेंगे सो अत्यन्त हर्ष वा अत्यन्त शोक अथवा संयोग वियोगमें एकही भांति बराबर होती है और यदि मृत्युदशा सब रसोंमें बराबर व्यापक नहीं होती है इस कारण आचार्योंने उसको व्यभिचारीके सम्बन्धमें लिखा है. चौथी सामग्री व्यभिचारी उसको कहते हैं. जो दशा रसके दृढ होनेसे प्रथम अथवा पीछे प्रगट होकर फिर जाती रहे वह दशा ३३ हैं और सब रसोंमें बराबर उनकी व्यापकता नहीं है. निर्वेद–प्रीतमके वियोग वा दूसरेके साथ प्यारेकी प्रीति वा विपरीत बात होनेका दुःख १ ग्लानि–बल घटना और उमंगका न रहना २ शंका–प्यारेके मिलनेमें विघ्न होनेका संदेह होना ३ श्रम–पंथ चलने वा संभोगसे थक जाना ४ धृति–मनमें संतोष होना ५–जडता–वियोगादि व्यथासे स्तंभी-त होजाना ६ हर्ष–प्रीतमको देखकर वा और किसी कारणसे प्रसन्न होना ७ दीनता–व्याकुलतासे मनमें लघुता होनी वा वियोगको न सह सकना ८ उग्रता–प्यारेके अवज्ञा होनेसे क्रोधित होना ९ चिन्ता–प्रीतमके मिलनेके निमित्त शोच करना १० त्रास–अचानक भयका होना ११ ईर्षा–प्रीतमकी प्रीतिमें दूसरेकी प्रीति न सहना १२ अमर्ष–प्यारेकी की हुई अवज्ञाका दुःख होना और उसको न सहारना, इसमें और नम्रतामें भेद है १३ गर्व–यह कि अपनेसे दूसरेको अधिक न जानना १४ अपने प्यारे वा उसके गुणोंका स्मरण करना १५ मरण–मरनेका उपाय करना वा मर जाना

१६ मद–हर्ष और गर्वके एकत्र होनेसे जो दशा होती है अर्थात् कार्य अकार्यका विवेक न रहना १७ निद्रा–बाहरके अनुसंधानसे अन्तरकी वृत्तिमें एकाग्र चित्तका होना यथा स्वप्न देखना १८ सुशुप्ति–घोर निद्रा १९ अवबोध–बेसुध होनेके पश्चात् सुध होनी, २० व्रीडा–लज्जा २१ अपस्मार–दुःख आशा आदिसे मनको ताप होना २२ मोह–मनके चंचल होनेसे दुःख भयसे अनवधानता होनी २३ मति–सिद्धान्तमार्गको विचार कर निश्चय करना २४ आलस्य–कार्यमें उपाय न करना २५ आवेश–मनकी रुचि वा अरुचिका अचानक प्रगट होना और उससे मन डिग जाना २६ वितर्क–संदेहसे नाना प्रकारका ध्यान होना २७ अवहित्था–हर्ष शोकके कारण जाने हुएको छिपाना २८ व्याधि–वियोगमें शरीरसे दुःखी हो जाना २९ उन्माद–मतवाला होकर जड चैतन्यको बराबर जानना ३० विषाद–मनविरुद्ध वार्ताके दूर न होनेके कारण दुःखि होना ३१ औत्सुक्य–प्रीतमके मिलनेमें विलम्बका न सहारना ३२ चपलता–मित्र और शत्रुके कारण मनका स्थिर न होना ३३ चारों सामग्रीका वर्णन हो चुका. अब स्थायीभावको वर्णन करते हैं कि जो रस अपने सजातीय और विजातीयसे दूर न हो सके और बराबर अपनी दशापर बना रहे वह स्थायीभाव है. वर्णनके प्रारंभमें जिसका वर्णन आया है. सजातीय यह कि रससे रसका मिट जाना, जैसे कहीं बालक हास्यरसमें मग्न है किसी उनके बडेने उसको क्रोध और रौद्र रससे निवृत्त कर दिया और विजातीय यह कि बालक हास्यरसमें मग्न है और फिर भोजन करने चले गये तौ वह रस निवृत्त हो गया आशय यह कि इससे रस निवृत्त न हुआ, दूसरी वस्तुसे निवृत्त हुआ आशय यह कि किसी प्रकारसे मन भगवत्स्वरूपके ध्यान और चिन्तवनसे न हटे वह अन्तकी पदवी और दृढ भाव है.

ग्रंथकर्ताकी प्रार्थना ।

हे रघुनंदन हे कृपासिन्धु दीनवत्सल करुणाकर पतितपावन अधम उधारण ! मैं कैसा अधम और मतिमंद हूं कि आप तौ निरन्तर एकरस रहते हो और मैं अपनेको दास मानकर क्रोध ईर्षा कपट अभिमान मिथ्याप्रपंचादि सहस्रों अपराधोंमें रत रहता हूं भूलकरभी आपकी ओर मन नहीं लगाता, दूसरे महात्माओंके कर्म और आचरणोंपर व्यंग और द्वेश कर उनके निमित्त शिक्षा लिखता हूं मेरी यह दशा है.

आप आपके नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ।

जो यह विनती करूं कि कुछ मेरे ऊपरभी कृपादृष्टिकी वृष्टि हो तौ क्या मुख लेकर विनती करूं. मेरेमें एक बातभी विनती करने योग्य नहीं दूसरा कोई तरनेका उपायभी नहीं है सो एक बात समझमें आई है कि मैं सब पापियोंमें शिरोमणी हूं और राजदरबारमें सब प्रकारकी कला जाननेवालोंका प्रयोजन पडता है, सो मैं इस कलामें चतुर होकर उस द्वारपर पडा रहूं यह प्रार्थना है कि यदि कहीं मेरा जन्म हो और नरकमें जाऊं अथवा स्वर्गमें परन्तु यह स्वरूप आपका सदैव मेरे ध्यानमें बसा रहे कि सरयूके निकट अयोध्याके बीच महलोंमें सभामंदिर शोभायमान है जिसका द्वार और प्राकारभूमि भांति २ की मणियोंसे जटित है, और उसके मध्य एक सुवर्णमय मण्डप है जिसकी झालरोंमें दिव्य सुवर्णसूत्रोंके गुच्छे और मोती टके हुए हैं उसके नीचे रत्नसिंहासन है कि जिसके जडाऊ मणिगणको देखकर नेत्र चकाचौंध हो जाते हैं उस सिंहासनके ऊपर आप इस शोभासे कि किशोर अवस्था, मुखकी अलौकिक सुन्दरताई किरीट मुकुट धारण किये कानोंमें कुण्डल जिनमें महरानीजीने अपने हाथसे फूलोंके गुच्छे गूंथकर डाले हैं. बडी शोभाके वस्त्र और आभूषण पहरे हुए उसपर फूलों और मणियोंकी माला पडी हुई गलेमें मोतियोंके कण्ठे हाथोंमें कडे और पहुँची अंगुलियोंमें अंगूठी चरणकमलोंमें घूंघरू और कडे विराजमान हैं.

ऐसी शोभाके साथ श्रीजनकनंदिनी अखिल ब्रह्माण्डेश्वरी वाम अंगमें शोभायमान हैं और मुखकी झलक जो आभूषणोंपर पडती है और आभूषणोंकी मुखपर पडती है इससे इस प्रकार शोभाकी छटाका प्रवाह हो रहा है कि सभासदोंको अपनी कुछ सुध नहीं रही है, आनंदमें मग्न हो रहे हैं वसिष्ठजी राजतिलक करते हैं. भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न छत्र चँवर धनुष बाण लिये हुए हनुमान्‌जी सन्मुख हाथ जोडे सेवामें खडे हैं ब्रह्मादिक देवता आनन्द देख पुष्पवृष्टि करते हैं देश २ के राजा भेंट लिये प्राप्त हैं और भक्तजन ध्यानमें मग्न हैं. यह दास उपानत्‌सेवामें अपने अधिकारपर स्थित है.

दोहा–कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि जिमि प्रिय दाम ।
ऐसे हुइके लागहूं, तुलसीके मन राम ॥

कवित्त–इन्द्रियनके भोग सारे भारी रोग देनवारे ताको कीजे हेय मत श्रेयपथ तज रे । पापअद्रि नाशनको वज्र पाकशासनको दाहै दोष घासनको मोक्ष शिखी सज रे ॥ हूजे शान्त भव बीच प्रात ना कदापि नीच आपनी कलोल लोल गतते न लज रे । क्षणभंग भवराग ताको मन करो त्याग मोषको वैराग सहकारी तास भज रे ॥ १ ॥ देवहू भयेतें कहा इन्द्रहू भयेतें कहा विधिहूके लोकतें बहुत आइयत है । मानुष भयेतें कहा भूपति भयेतें कहा द्विजहू भयेतें कहा पार जाइयत है ॥ पशुहू भयेतें कहा पंछीहू भयेतें कहा पन्नग भयेतें कहा क्यों अघाइयत है । छूटवेको सुन्दर उपाय एक साधुसंग जिनकी कृपातें अतिसुख पाइयत है ॥ २ ॥

दोहा–प्रेमसहित अँसुअन ढरे, धरे जुगलको ध्यान ।
नारायण ता भक्तको, जगमें दुर्लभ जान ॥
नारायण दो बातसे, अधिक और नहिं बात ।
रसिकनको सत्संग नित, युगल ध्यान दिन रात ॥

अथ

पहिली निष्ठा धर्मकर्म।

(जिसमें सात भक्तोंकी कथा है.)

श्रीकृष्णस्वामीके चरणकमलोंकी अंकुशरेखाको प्रणाम है. जिसका ध्यान करनेसे मनमतंग शीघ्र वशमें हो जाता है और भगवतके मीन अवतारको दंडवत् है कि जगतकी शिक्षाके निमित्त राजा श्रुतदेवको धर्म उपदेश किया, और उसको अपनी माया दिखलाकर रक्षा की वेद और सूत्र तथा स्मृतियोंने जिन कार्योंके करनेका विधान किया है उसको धर्म कहते हैं, और जिसका निषेध है वह अधर्म है, शुभ आचरणोंका अंगीकार और निषिद्धका त्यागही सदा उचित है. जो कोई वेद शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करते हैं वे नरकगामी होते हैं और वारंवार चौरासी लाख योनियोंमें उसको पचना पडता है. यद्यपि नरकसे उद्धारकाभी समय है. परन्तु इस आवागमनसे छूटनेका कोईभी समय नहीं है. यह चक्रकी समान घूमता रहता है कभी संयोगवश यह मनुष्यशरिर इसको प्राप्त होता है तो इसको नौकाकी समान जानना. इसको पाकर जिसने छूटनेका उपाय न किया तो उसको फिर चौरासी भुगतनी पडती हैं इसमें उपाय किया तो बेडा पार है. कर्मशास्त्रकी आज्ञासे युक्त रहना सीढीके समान है कि इसके द्वारा विना परिश्रमही अनिर्वचनीय पदको प्राप्त होता है. जो कर्म नहीं करते वह अन्तःकरण शुद्ध न होनेसे उस पदतक नहीं पहुँच सकते. बहुत ऐसे हैं कर्म तो करते नहीं पर उत्तम पदकी बातें बताते हैं वे कभीभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होंगे. विचारना चाहिये कि स्वयं भगवान् वेद आज्ञा और कर्मकी प्रवृत्तिके

निमित्त अवतार धारण करते हैं तो फिर विना प्रथम कर्मके सेवन किये किस प्रकार उद्धार हो सक्ता है. "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः" वेद कहता है जबतक ज्ञान न हो बराबर कर्म करते रहो. गीतामें भगवान् कहते हैं यद्यपि मुझको आवश्याकता नहीं है पर तौभी मैं कर्म करता हूं कारण कि यदि मैं कर्म न करूं तो दूसरेभी कर्मका त्याग कर देंगे तो मैही जगत्के नाश और वर्णसंकरका कारण हो जाऊं. भगवान् रामचंद्रने रावणका जयकर उसे ब्राह्मण जानकर इस वधके निमित्त अश्वमेधयज्ञ किया, और धर्मशास्त्रकी मर्यादासे बाहर चरण न रक्खा तो फिर मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है, जो कर्मानुष्ठानके विना संसारके आवागमनसे छूट जाय. यदि शंका हो कि जड कर्म चैतन्य मनुष्यको किस प्रकार बांध और छुडा सकता है तो उत्तर यह है कि नौका जड है परन्तु मल्लाहके सहारेसे सहस्रोंको पार उतार देती है अथवा सीढी जड है परन्तु उसके विना कोई अटारीपर नहीं जा सकता, इसी प्रकार कर्म हैं, संसारसागरसे पार उतारनेके निमित्त सहाय हैं उत्तम पदको पहुँचा देते हैं. यदि कहो कि शुभ कर्म करेंगे तो उनके भोगनेके निमित्त शरीर धारण करना होगा, शरीर धारणसे मृत्यु अवश्य होगी तो, शुभ कर्मसेभी जन्म मरणसे छुट्टी न होगी' उसपर कहते हैं कि शुभ कर्म दो प्रकारके एक सकाम जो फल पानेकी इच्छासे किये जांय, दूसरे निष्कामह. जो जिनका फल भगवत्के अर्पण किया जाय, उनमें सकाम तो आवागमनके हेतु होते हैं, स्वर्गादिमें फल भोगकर भूमिमें जन्म लेना पडता है, और निष्काम कर्मका फल भगवत्के अर्पण करनेसे अविनाशी हो जाता है, उस प्रसन्नतासे भगवान् अपना स्वरूप उस मनुष्यके हृदयमें प्रकाश करते हैं जिससे उसकी प्रीति भगवान्के चरणकमलोंमें हो जाती है. जैसे कोई निर्धन महाराजकी सेवामें चार पैसेका

गोला ले जाय तौ राजा उसको उस वस्तुका मोल विचारकर अथवा उस वस्तुकी मर्यादाके योग्यका द्रव्य नहीं देता, किन्तु अपनी ओर देखकर इतना द्रव्य देता है जिससे उसका दरिद्र दूर हो जाता है और लोकमेंभी रीति है कि यदि कोई किसीको विना मूल्य कोई वस्तु देता है तो उसके उपकारके निमित्त दूसरे वैसेही उसका कार्य कर देते हैं. इसी प्रकार भगवान् सबके भावको जानते हैं कृतज्ञोंके मुकुटमणि हैं सो वह भक्तोंके पूर्ण मनोरथ क्यौं न करेंगे. आशय यह कि जब मनुष्यकी भगवान्में प्रीति हुई और नित्यकर्म संध्या अग्निहोत्रादि सहायक हुए तो दिन २ भगवत्की प्रीति बढानेवाले अनन्त हो जाते हैं. जिससे हृदय निर्मल होकर भगवत्की प्रीति दृढ हो जाती है, और उस भक्तिकी कृपासे कृतार्थ होकर भगवत्पदको प्राप्त हो जाता है फिर जन्म नहीं होता यह कर्मशास्त्र भगवत्की आज्ञा और रीति है जो सेवक अपने प्रभुकी आज्ञा पालनमें तत्पर होता है तो स्वामी उस भक्तपर प्रसन्न होकर उसके सब मनोरथ पूरे कर देता है, तो भगवान् जो सब प्रभुओंके प्रभु हैं जो सेवक उनकी आज्ञा पालन करेगा वह उसके सम्पूर्ण मनोरथ क्यों न सिद्ध करेंगे, अवश्य आवागमन छुडा देंगे और निष्काम कर्म करनेके कारण वह संसारी कामना स्वयंही पूर्ण कर देता है प्रह्लाद अर्जुन युधिष्ठिर ध्रुव इत्यादि भक्तोंकी कथासे यह बात प्रगट है. यदि कहो कि शुभ कर्म तो भगवत्के अर्पण कर देनेके कारण न रहे और अशुभ कर्म तो भोगनेही पडेंगे इसका उत्तर यह है कि कर्म दो प्रकारके हैं. एक अज्ञात दूसरा ज्ञात. अज्ञात कर्म तो संध्या बलि वैश्वदेव श्राद्ध अभ्यागत अतिथिके पूजन करनेसे दूर हो जाते हैं और वही भगवत्को पहुँचकर अनन्त फल देनेवाले हो जाते हैं. ज्ञात कर्मकी यह बात है कि जिसकी निष्ठा शुभ कर्मोंमें है उसको महापातक होताही नहीं और

जो दैवात् होभी गया तो भगवान् शुभ कर्मोंके स्वीकारसे अशुभ कर्मोंको नष्ट कर देते हैं. यह बात वेदसम्मत और न्यायसेभी जानने योग्य है कि जिसने शुभ कर्मोंका फल भगवत्को दिया फिर अशुभ कर्म उसके किस प्रकार रहेंगे ? सकाम और निष्काम कर्मके ऊपर एक दृष्टान्त स्मरण हो आया है कि जो कोई किसीका चाकर या ठेकेदार होता है, यदि उससे किसी वस्तुकी हानि हो जाय तो उसीके ऊपर देना उतरता है, और जो घरके दासी पुत्रसे हानि हो जाय तो हानि स्वामीपर पडती है, दाससे कुछ सम्बन्ध नहीं. आशय यह है कि सकामकर्म करनेवाला चाकर ठेकेदारकी समान है और निष्काम कर्म करनेवाला निज दासी पुत्रकी समान है. सिद्धान्त यह है कि निष्काम कर्मका करना वेदकी आज्ञानुसार उचित है. जो ज्ञानी और भक्त पूर्व कालमें हुए और अब हैं तथा आगे होंगे केवल कर्मोंके प्रभावसेही उत्तम पदको प्राप्त हुए होते हैं और होंगे. जैसे भगवद्गीतामें कहा है, कर्मसेही जनक आदि सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, कर्म किये विना दुःख कभी नहीं छूटता. सब शास्त्र इस बातमें सहमत हैं कि विना कर्मके उद्धार नहीं होता यह वेदकी आज्ञा किस आस्तिकका प्रमाण न होगी ? स्मृतियोंमेंभी कर्मके बडे विस्तार लिखे हैं. वेद आज्ञा जगत्के शुभ मार्गमें प्राप्त करनेहीके निमित्त है, यथा प्रभातमें उठना जागकर स्नानादिसे निश्चिन्त हो देव गुरुका पूजन कर फिर सरलतापूर्वक अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होना, सत्संग विद्या शुभ कर्मोंमें समय बिताना, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको यज्ञोपवीत गायत्रीसंध्याके विना किसी प्रकारसेभी न रहना, यदि तीन वर्ण गायत्री संध्यासे रहित होंगे तो पतित हो जांयगे, कभी मुक्ति न होगी. वैदिकसंस्कारयुक्त धर्म करना, परोपकार करना, मित्रसे कपटतारहित वर्तना, जो कोई कुछ विद्या सि-

खावे वा भगवत्की ओर लगावे उसको गुरु मानना; गुरुकी सदैव सेवा करना गुरुको छिपानेसे नरककी प्राप्ति होति है. गुरुके प्रति कटूक्ति प्रयोग करना दुःखका कारण है. भगवद्भजन सत्य भाषण आदि सहस्रों प्रकारके शुभ कर्मोंका अंगीकार करना प्रणाम आशीर्वादादि परिपाटीका जानना उत्तम कर्म है. इन्हें अंगीकार करे. मिथ्याभाषण, चोरी, परस्त्रीगमन, हिंसा, द्यूत, मद्यपान, असाधुसंग, मिथ्या उत्पात, कपट, मिताई, मूर्खता, अकृतज्ञता, नदीमें स्नान करते पिशाब करना, गुरुनिंदा, द्वेष, स्नानमें गमन, वर्षामें चलते दूसरी ओर मन लगाना जूंठा, खारी, अतिकटु भोजन करना, गुरुजनोंपर आक्षेप करना यह सब बातें त्याग देनी चाहिये. स्निग्ध स्वादु मिष्ट कोमल ताजा भोजन करना, रातको पर्वतपर न चलना इत्यादि सहस्रों आज्ञा माननेकी हैं, इनके अनुसार वर्तनेसे मनुष्यका कल्याण होता है.

कर्म जिनकी शास्त्रने करनेकी आज्ञा दी है उनके न करनेसे प्राणी धर्मसे पतित हो जाता है. और जो कहते हैं अजी ! शास्त्रके अनुसार कर्म करें तो पांव धरनेकोही ठिकाना नहीं है उनकी बातका क्या ठिकाना है, करनेकी कौन कहे उन्होंने कभी कर्मको श्रवणभी नहीं किया, कारण कि शास्त्रमें जो लिखा है सो करनेहीके निमित्त है. जहां कठिन विधान लिखा है वहां असमर्थको सरलभी लिख दिया है जैसे तेलके दीपकको हाथमें लेकर इतनी मट्टीसे हाथ धोवे कि उसकी दुर्गन्धि जाती रहे, न हो सके तो धरतीसे हाथ रगडकर धो डाले पापके प्रायश्चित्तमें बहुत जगह चान्द्रायण व्रत लिखे हैं. असमर्थको तीन अथवा एकही दिनका व्रत लिखा है, आशय यह है कि शास्त्रमें सब प्रकारके विधान लिखे हैं पर समझना और जानना कठिन हो रहा है, यहभी तो समझना चाहिये यदि उन आज्ञाओंका पालन करना अशक्य होता तो शास्त्रमें वे बातें क्यों लिखी जातीं ? बहुतसे पुरुष जो

समय प्रायः नास्तिक हो रहे हैं वे कर्मोंके न करनेसेही वेदशास्त्रसे वैमुख हुए हैं जो वेदविरुद्ध आचरण करते हैं वेही नास्तिक और म्लेच्छ हैं. जो कोई वेदशास्त्रको मिथ्या कहते अथवा दूसरी सामान्य विद्याओंकी समान समझते हैं उनकी दुर्गति होनेमें कुछभी सन्देह नहीं है. यह वचन स्मृतियोंके अनुवाद कर लिखे गये हैं अब उन महात्माओंकी कथा संक्षेपसे लिखी जाती है जो इस निष्ठामें दृढ होकर भगवत्को प्राप्त हुए.

दोहा–रूपराशि आनंदघन, गौर श्याम कमनीय ।
युगलकिशोर वसो सदा, जन प्रतापके हीय ॥

राजा हरिश्चन्द्रकी कथा १.

सूर्यवंशके धर्मात्मा ऐश्वर्यवान् राजाओंमें राजा हरिश्चन्द्र ऐसे धर्मात्मा और यशस्वी हुए कि उनकी कथा शास्त्र और पुराणोंमें बडी श्लाघाके साथ लिखी है. सब धर्मात्माओंकी जिह्वापर उनका नाम वर्तमान है. जिनका यह प्रण था कि–

दोहा–चन्द्र मिटै दिनकर मिटै, मिटै त्रिगुणविस्तार ।
दृढ व्रत श्रीहरिवंशको; मिटै न सत्य विचार ॥

जब राजा हरिश्चन्द्रकी कीर्ति इन्द्रलोकतक पहुँची जिसको महर्षि विश्वामित्रजी सहन न कर सके और वसिष्ठका शिष्य होनेके कारण राजासे द्वेष करके यह प्रतिज्ञा की, कि मैं हरिश्चन्द्रको सत्यधर्मसे रहित कर दूंगा और राजाके पास आय बातों २ में उसका सब राज्य मांग लिया, तब राज्य लेकर कहने लगे इसकी दानप्रतिष्ठाकी दक्षिणा लाओ, यह कोष हमारा है इसमें तुम्हारा अधिकार नहीं है, तब राजाने कहा अभी तो मैं मेरी स्त्री और पुत्र विद्यमान् हैं इनको बेचकर तुम्हारी दक्षिणा चुका देंगे विश्वामित्र बोले, मेरे राज्यमें तुम

विकभी नहीं सकते. तब राजा बोले " येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः । " अर्थात् जिनको कहीं गति नहीं उनको भगवान् भूतभावन श्रीशंकरकी काशीपुरी शरण देनेवाली है. यह कह काशीमें गमन किया; और काशी पहुँचकर संध्यासमयतक विश्वामित्रकी दक्षिणा देनेको कहा. दुपहरके समय १। भार सुवर्णपर रानी और राजकुमारको एक ब्राह्मणने खरीद लिया, और राजाको संध्याकालतक किसीने न लिया. विश्वामित्र बोले यदि सूर्य छिपनेतक दक्षिणा न दोगे तौ मैं शाप दे दूंगा. अथवा कह दो कि मैंने सत्य छोडा राजाने कहा ऐसा नहीं होगा, मैं सूर्यास्तसे प्रथमही आपकी दक्षिणा दूंगा. विश्वामित्रके जानेपर राजा बडा व्याकुल हुआ उस समय डोमका रूप धारण किये धर्मने राजाको १॥ भार सुवर्णपर मोल लिया. तब राजाने ३ भार सुवर्ण देकर मुनिराजसे आशीर्वाद लिया. डोमने राजाको मर्घटमें मृतकके वस्त्र लेनेका काम सौंपा. विश्वामित्रने राजाको सत्यधर्मसे डिगानेके निमित्त रोहिताश्व कुँवरको जो बगीचेमें फूल लेनेके निमित्त गया था, सर्प बनकर डसा जिससे वह कुमार मर गया. पुत्रकी दशा सुन रानी महारुदन करने लगी, और अपने ओढनेके वस्त्रमेंसे आधा फाडकर उसमें कुँवरको लपेट दाहके निमित्त मृतकस्थानमें जाकर इस प्रकार विलाप करने लगी.

रागनी ।

थे प्राणोंके प्यारे हमारे । हाय बेटा किधरको सिधारे ॥
दूध अबही तौ मुझसे पिया था । फूल लेने गुरुके गया था ॥
सांपने हां तुझे डस लिया था । कहां काटा मुझे तू बता रे॥ हाय०॥१॥
कोई दौडो गुणीको बुलाओ । मेरे बच्चेको जल्दी बचाओ ॥
सांप हैगा कहां सो बताओ । इसके बदले मुझे काट खा रे ॥ २ ॥

लाल ह्यां तौ नहीं सांप दीखे । बोलना झूंठ तुम कबसे सीखे ॥
दुख दिखाते नहीं तुम सरीखे । उठके लग जा गलेसे हमारे ॥ ३ ॥
बेटा संध्या हुई पुत्र प्रियवर । सब विद्यार्थी आये घरपर ॥
तुम अबतक न आये मेरे घर । हाय सचमुच डसा तुझको कारे ॥ ४ ॥
उड गया बोलता तोता मेरा । वज्र किसने कठिन मुझपै गेरा ॥
हाय होता चला अब सवेरा । छिप गये मेरी आंखोंके तारे ॥ ५ ॥
उठके बोल तौ मेरे कन्हैया । साथी है बाप और न भैया ॥
एक रोती है यह तेरी मैया । दी बुढापे मुझको दगा रे ॥ ६ ॥
हा ? नाथ कहां क्यों न आते । यह दशा पुत्रकी देख जाते ॥
तुमने सौंपा हमें कहके बातें । पुत्रको पालियो धीर धारे ॥ ७ ॥
मैंने ऐसी दशा कर दी आओ । वार एक पुत्रको देख जाओ ॥
इस समयमें तौ आकर बुझाओ । बेटा जाता है ये माको मारे ॥ ८ ॥
जिसको हँस २ के गोदी खिलाया । रेशम अतलसपै जिसको सुलाया ॥
फूंककर दूध जिसको पिलाया । मरघटमें पडा सब विसारे ॥ ९ ॥
ज्वाला उठती है अब लालतनमें । और करूंगी न कोई जतनमें ॥
दुख होता अधिक मेरे मनमें । मैं चलूंगी स्वर्ग संग तुम्हारे ॥ १० ॥

इस प्रकार रानीके विलापको सुनकर राजा उसके निकट गये, और अपनी स्त्री तथा पुत्रको पहँचानकर अधिक दुःख माना, परन्तु फिर विचारा कि मैं तो पराधीन हूं, मुझे अब इससे क्या सम्बन्ध यह विचार रानीसे कर मांगा उस समय रानीने कहा नाथ ! क्या तुम नहीं देखते कि इस समय मेरे पास देनेको कुछ नहीं है, परन्तु राजाने कहा कहींसे लाओ मैं अपने धर्मको नहीं छोडूंगा. इस धर्मके निमित्त तौ इतने कष्टही सहन किये हैं. रानी बैठकर रोने लगी, उस समय विश्वामित्रने अपनी मायासे नगरके राजाके पुत्रको मृतक कर रानीके निकट डाल दिया, और राजासे कहा गंगाकि-

नारे एक डांकनी स्त्री तुम्हारे पुत्रको भक्षण करती है, उसने तुम्हारे पुत्रको मार दिया है, राजाने उसी समय रानीको पकडवा मंगाया और पुत्रवधसे दुःखी हो डोमके सरदारको उसके मारनेको सौंप दिया. उसने वध करनेके निमित्त मरघटमें हरिश्चन्द्रके निकट भेज दिया, राजाके स्वामीकी आज्ञा पाकर रानीके मारनेको खड्ग उठाया, उस समय राजाने इस सत्यधर्मसे स्वर्ग और पृथ्वी कम्पायमान होने लगी. तथा आकाशसे हाहाकारका शब्द हो उठा- उस समय जगत्की त्रिमूर्ति ब्रह्मा विष्णु और शंकरने धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य हरिश्चन्द्र! कहकर राजाका हाथ पकड लिया. भगवान् बोले हे राजन्! तुम्हारे सत्यधर्मसे हम प्रसन्न हुए, जो इच्छा हो सो वर मांगो. राजाने कहा मेरे स्वामीका कल्याण हो और आपके चरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे. भगवान्ने तथास्तु कहकर कुँवर रोहिताश्व और नगरके राजाके पुत्रको जीवित कर दिया, और राजाको सेवकाईसे छुडाय धर्महीन डोम बनकर तुमको मोल लिया था यह कह धर्मका दर्शन कराय कहा अपने नगरको जाओ, राज्य करो. विश्वामित्र बोले हमने राज्य नहीं लिया परीक्षा ली थी, तब कठिनतासे राजाने राज्य अंगीकार कर नगरमें जाय धर्मसे प्रजा पालन करने लगे. अन्तसमय रोहिताश्वको कौशलदेशका राज्य दे राजा प्रजासहित स्वर्गको गये. अब विचारिये कि धर्मसे किस प्रकार भगवत्की प्राप्ति होती है. कर्मसे कैसे २ कठिन कार्य सुगम होते हैं जिनका दर्शन दुर्लभ है वह कर्मके कारण देवतोंसहित दृष्टिगोचर हुए. कर्मकी बडी महिमा है.

राजा बलिकी कथा २.

राजा बलि विरोचनके पुत्र और प्रह्लादके प्रपौत्र भगवत्के परम भक्त हुए. कहीं २ उनको आत्मनिवेदननिष्ठामें गिना है, परन्तु दान-

धर्मकी दृढताका अधिकारी आत्माको निवेदन किया, इस कारण उनको धर्मनिष्ठामें लिखा है. जब इन्द्रलोक और समस्त पृथ्वीका राज्य राजाको मिल गया, तौ भगवान्‌की प्रसन्नताके कारण शत (१००) अश्वमेध यज्ञ किये अंतका यज्ञ सम्पूर्ण होनेको था, जब इन्द्र घब-राया कि मेरा राज्य भ्रष्ट हो जायगा इस कारण यज्ञभ्रष्ट करनेके पीछे लगा, और इन्द्रादिक देवतोंकी माता आदिति अपने पुत्रके लिये भगवत्‌का आराधन करने लगी. भगवान् वामन अवतार धारण करके ब्रह्मचारीके स्वरूपमें राजा बलिके पास गये. राजाने दंडवत् प्रणाम करके कहा कि महाराज ! जो इच्छा हो सो मुझे आज्ञा करो मैं पूर्ण करूंगा. तब भगवान्‌ने कहा कि मेरी तीन पद पृथ्वी लेनेकी इच्छा है; इतनेहीमें राजाके गुरु शुक्रजीने राजासे कहा कि हे राजन् ! यह ब्रह्मचारी विष्णु नारायण हैं तेरा राज्य छीनकर तेरा अपमान करेंगे यह वचन सुन राजाने अत्यन्त प्रसन्नतासे उत्तर दिया कि मेरा महान् यश होगा जो अपना राज्य दान करूंगा. मुझको उचित नहीं कि अपने वचनसे फिर जाऊं. इसके उपरान्त मैंने यज्ञ, दानादिक, जप, तप, इसी निमित्त किये हैं कि उनका फल भगवत्‌के अर्पण करके भगवत्‌को प्राप्त हो जाऊं जब यह स्वयं देह धारण कर मेरे द्वारपर भिक्षुक बनकर आये हैं तौ इससे उत्तम और क्या है, कि इनको दान दिया जाय, और जब उनको दान दिया तौ यह राज्य द्रव्या-दिक जो अबतक भगवत्‌के काममें नहीं आया सो सब सुफल हो जायगा. यह कहकर संकल्पके लिये तैयार हुआ. शुक्रने राजाके शुभचिंतकके अर्थ कमंडलके छिद्रमें बैठकर जलके आने जानेका मार्ग रोक दिया; भगवान्‌ने कुशाका एक तिनका कमंडलके छिद्रमेंसे शुक्रजीके नेत्रमें मारा तो वह कमंडलके जलका मार्ग छोडकर चले गये. तब राजाने कमंडलमेंसे जल लेकर संकल्प किया, जब संकल्प हो

चुका तौ भगवान्‌ने अपना विराट्स्वरूप प्रगट किया; दो पैरसे त्रिलोकीको नाप लिया, और तीसरे पैरके लिये राजाको बांधकर कहा कि हे राजन्! दो पगसे तो त्रिलोकी नाप ली अब तीसरे चरणके लिये जगह बताओ? यह वचन सुन राजाने कहा कि धर्मशास्त्रकी रीतिसे मेरा शरीर सारे राज्यसे दुगुने मोलका है सो एक पैर पृथ्वीके बदलेमें यह शरीर है. भगवान्‌ने विचारा कि यह विश्वास और भक्तिसे अपने धर्ममें स्थिर रहा तब अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि यज्ञ और तेरे सब धर्म कर्म सुफल हुए अब तू पाताललोकका राज्य कर. अगले मन्वन्तरमें इन्द्रलोकका राज्य निश्चय तुझको मिलेगा; यह वचन सुन राजा बलिने प्रार्थना करके कहा कि हे कृपासिंधो! यह राज्यादिक संसारका बखेडा है मेरी तौ यही इच्छा है कि आपके चरणारविंदमें रहकर सदैव दर्शनोंका अधिकारी रहूं यह वचन राजा बलिका सुन भगवान्‌ने आग्रह किया, और अबतक राजा बलिके द्वारपर विराजमान रहे. यद्यपि भगवान्‌ने इस चरित्रमेंभी वेदमर्यादाको स्थापित रक्खा अर्थात् देवतोंने पूजा करके इन्द्रलोकका राज्य उसको दिलाया, और अंतमें अपमान कर राजाको पकड लिया, परन्तु तौभी भगवत्में कृपालुता और भक्तवत्सलताको अपने हाथसे न जाने दिया, क्योंकि और किसी रीतिसे देवतोंका ध्यान करते तौ कहनेको जगह होती कि एक भक्तके हाथसे दूसरेका अपमान कराया, इसलिये आपही अवतार धारण किया, और अपनी अभिलाषा पूर्ण होनेके निमित्त अपनेही भक्तसे भिक्षा मांगी, और अपने पराक्रमसे कुछभी न किया. कारण कि भक्तके मनको दुःख प्राप्त होगा और इसपरभी मनको संतोष न हुआ, तौ सब धर्म कर्म और यज्ञ सुफल करके इन्द्रलोकका स्थित राज्य अगले मन्वन्तरमें दान किया और फिर यहभी थोडा जाना तौ इसके अतिरिक्त कुछभी चित्तमें न

आया कि मेरे भक्तोंको मेरा दर्शनही जीवन धन है; इसलिये आपही राजाके द्वारपाल हो गये. भगवान्‌की इस कृपालुता और दयालुता-परभी यह कठोरता और अभागी मन चितवन करके और कोमल होकर चरणकमलोंमें न लगे और तत्पर न हो तौ निश्चय वज्रपाषा-णसेभी अधिक कठोर है. इस चरित्रसे कितनीही शिक्षा प्राप्त होती हैं; प्रथम जो कोई दानादिकमें निषेध करेगा उसकी शुक्रजीकी समान दशा होगी, किसी कविका वचन है कि "दे कोई, ले कोई इसपै शुक्रजीने आंख वृथा खोई" दूसरे साक्षात् भगवत्‌के सन्मुख होनेसे गुरुभी निषेध करे तौ उसका कहना नहीं मानना चाहिये. जैसे राजा बलिने शुक्रजीका कहना नहीं माना; तीसरे भगवत आत्मनिवेदनकी महिमा सर्वांग करते हैं कि देखो कि आत्मनिवेदनके प्रतापसे मैं कैसा राजाके वशवर्ती हो गया चौथे कर्मोंकी बडाई दिखाई कि कर्मोंकी स्थिरता कैसे अलभ्य पदार्थ प्राप्त करती है. पांचवें भगवान् समझाते हैं कि राजा बलिकी कुछ हानि नहीं करी परन्तु किंचित् हानि देखी. यद्यपि आप ईश्वर और स्वामी होकर भक्तकी हानि और इसके साथ कपट करनेसे अपने आपको दंड दिया, अर्थात् सदैवको राजाके द्वारपाल हो गये, फिर क्या जाने और कोई भक्तकी हानि, और इसके साथ कपट करता उसको कितना भारी दंड दूंगा और किस कर्ममें पहुँचाऊंगा.

दधीचजीकी कथा ३.

दधीचि ऋषि एक बडे ज्ञानी भक्त थे; परन्तु परम उपकारी और धर्मपालनके अर्थ धर्मशास्त्रके अनुसार भिक्षुकोंको न देना निषेध है इस कारण जीव देनेमेंभी न हटे, और कर्मशास्त्रको सर्वोपरि दिखाया इस लिये इस निष्ठामें उनको लिखा. जब वृत्रासुर और इन्द्रराजकी

आपसमें शत्रुता थी, और वृत्रासुरने विजय प्राप्त की थी तब इन्द्रने भगवान्का आराधन किया, वहांसे आज्ञा हुई कि दधीचऋषिकी अस्थिसे शस्त्र बनाया जायगा तो वृत्रासुरकी सरलतासे पराजय हो जायगी. यह वचन सुन राजा इन्द्र ऋषिके पास गये, और विनय नम्रताके साथ अपना दुःख निवेदन किया. ऋषिने परम उपकारहीको मोक्ष जानकर विचारा कि मांगनेवालेको न देना धर्मशास्त्रके विरुद्ध है; इसलिये प्रार्थनाको ग्रहण कर योगाभ्याससे अपनी आत्माको भगवान्के धाममें पहुँचाया, और अपना शरीर राजा इन्द्रको दे दिया. इन्द्र राजाने उसके शरीरकी अस्थियोंसे वज्र बनवाकर अपना काम चलाया. अब विचारना चाहिये कि जो लोग उत्तम पदवीको प्राप्त हो गये थे और कर्म करने और न करनेसे उनको कुछ सम्बन्ध नहीं रहा उनको कर्मशास्त्रका कितना पक्ष था, अब हमारी यह दशा है कि शास्त्रकी आज्ञानुसार चलना एक ओर है यहभी नहीं जानते कि धर्मशास्त्र किसको कहते हैं.

महाराज दशरथकी कथा ४.

दशरथ महाराजाधिराज परम भगवद्भक्त हुए परन्तु कोई २ यह कहते हैं कि सूक्ष्म धर्म अर्थात् स्त्रीको वचन दिया था उसके निर्वाह करनेको जो सब धर्मोंका सार और सब वेदशास्त्रोंका तत्त्व और ब्रह्मा शिव इत्यादिक योगेश्वरोंको ध्येय है उन श्रीरघुनंदन स्वामीको छोड दिया, अर्थात् प्रिय पुत्रको वनवास दिया. इसका कारण राजा दशरथ कर्मशास्त्रके अनुसार भक्त है सो उनके वचन निर्वाह करके इस निष्ठामें लिखे गये हैं, और जो अच्छी तरह विचारा जाय तो कर्ममें और भगवत्धर्ममें कुछभी अंतर नहीं है; कारण कि दोनोंका तात्पर्य और अभिप्राय एकही है। निष्काम कर्म जो भगवत्के अर्पण किया जाय वही भगवत्धर्म है. इन महाराजाधिराजकी बडाई

शेष और नारदभी नहीं कर सकते. मुझ पापी और मंदबुद्धिमें तो क्या सामर्थ्य है । और जिस पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघनको कोई निर्गुण और कोई सगुण रूपसे अनेक प्रकारकी समाधि लगाकर ध्यान करते हैं वह इन महाराजकी भक्ति और प्रेमके वश होकर अवतार ले नाना प्रकारके बालचरित्रोंसे पूर्ण सुख करते हुए. फिर किसकी सामर्थ्य है कि उनकी भक्ति और भाग्यकी बडाई कर सके. पहले जन्ममें यह महाराजा स्वायंभू मनु थे; उनके और उनकी शतरूपा स्त्रीके तपसे ब्रह्मा और शिवजी प्रसन्न होकर आये; परन्तु राजाने किसीसे कुछ वांछा न करी, और वही इच्छा रक्खी कि जो सबका स्वामी है उसके हमें दर्शन हों. यही हमें अभिलाषा है. वह विश्वनाथ भक्तानुकूल धनुर्बाणधारी महाराज सीतापति सकलगुणग्राही अखिल ब्रह्मांडेश्वरी सीतासहित प्रगट हुए. राजा और रानी परम मनोहर रूप देखकर लोभायमान हुए; और यह अभिलाषा प्रगट की कि हे महाराज ! तुम तद्वत हमारे पुत्र हो. और राजाने यहभी कहा कि मेरा जीवन आपके दर्शनोंसे लगा हो. भक्तसुखदायक महाराजने उनके भावसे आनंद होकर इच्छाके अनुसार वरदान दिया, सो वह राजा अयोध्याजीमें दशरथ महाराज हुए और वही सिद्ध सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्म वचनोंका प्रतिपालन करके पुत्ररूप होकर महाराज दशरथके घर प्रगट हुए और जो जो चरित्र किये सो वाल्मीकिऋषिने शतकोटी श्लोकमें लिखे हैं और फिरभी पार नहीं पाया. इसका वर्णन ब्रह्माजी और नारद, सनकादिक; शिव; शेष इत्यादिक और ऋषि अबतक कीर्तन करते हैं; परन्तु पार न पाते, जब महाराजाधिराज दशरथजीने यह विचारा कि श्रीरघुनंदन रामचंद्रको राजतिलक अपने जीते जी दे दूं तब कैकेयीने पहले अपने दो वरोंको मांगनेकी अभिलाषा की. राजन् ! एक वरसे तो आपके

प्यारे रामचंद्रको चौदह वर्षका वनवास हो, और दूसरेसे मेरे पुत्र भरतको राज्य मिले. इस वचनसे श्रीरघुनंदन रामचंद्र महारानी जानकी और भ्राता लक्ष्मणके सहित वनको सिधारे, और राजाधिराज- दशरथजीने चार दिनतक रामचंद्रके लौटनेकी बाट देखी; जब सुमंत्र मंत्री उलटा फिर आया, और श्रीरामचंद्रका संदेशा सुनाया, उस संदेशेको सुनकर रामचंद्रके लौटनेसे निराश हुए. तब महाराज दशरथजीने व्याकुल होकर अपने प्राण इस प्रकार छोड दिये कि जैसे निर्भय होकर तृण तोडते हैं, और स्वर्गलोकको चले गये. बहुधा मनुष्य इस स्थानपर यह शंका करते हैं कि जिस समय महाराज दशरथजीने देहको त्याग किया तो, उस समय उनकी जिह्वापर रामनाम और मनमें भगवत्स्वरूपका चिंतवन था, और शास्त्रकी रीतिसेभी यह बात निश्चय है कि इन दोनोंमेंसे कोई एक अर्थात् या तो भगवत्स्वरूपका चिंतवन या रामनाम जिह्वापर हो तो वह पुरुष निश्चय मोक्षको प्राप्त हो जाता है, और नाममहीमें यहांतक लिखा है कि जो कोई भ्रमसेभी रामनाम ले लेगा तो वह निःसंदेह मोक्षको प्राप्त होगा, और भागवतादि पुराण शास्त्र स्मृतिशास्त्र, वेद सबका अभिप्राय यही है और अजामिलका यही उदाहरण है कि भ्रमसे रामनाम लेकर मोक्ष प्राप्त हो गई, फिर क्या कारण है कि राजा दशरथकी मोक्ष नहीं हुई और स्वर्गको गये; सो इसका उत्तर खिसी २ ने रामायणमें यह लिखा है; और टीकाकारोंनेभी चर्चा तर्क करके सुन्दर १ लिखा है वह सब सत्य है. परन्तु यहां केवल दो उत्तर लिखता हूं एक तो यह है कि राजाको मोक्षकी इच्छा नहीं थी; उनको यही इच्छा थी मुझको भगवत्की भक्ति होती रहे, और भक्तिका होना देहके साथ होता है, इस कारण राजा स्वर्गलोकको गये. दूसरा उत्तर यह है कि मरनेके समय राजाको भगवान्के दर्शनोंकी इच्छा और वासना थी. नाम

लेना, और स्वरूपका चिंतवन करना उस दर्शनकी वांछासे संयुक्त हो रहा था, इस कारण राजाकी मुक्ती नहीं हुई, और रावणके मारनेके उपरान्त इच्छापूर्वक रामचंद्रके दर्शन राजाको प्राप्त हुए. निश्चय है कि जिनको भगवत्स्वरूपकी वह सुन्दर मनमोहनी मूर्तिका दर्शन प्राप्त हुआ, उनके आगे मुक्तिभी तुच्छ है.

चौपाई–जे हरमें हरिभक्त सियाने। मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने॥
दशरथप्रेम भक्ति मनमानी। उनके चरितमांहि मति ठानी॥
भाग्यवान दशरथसम कोई। एहि जगवीच कबहुँ नाहिं होई॥
सकल लोकसुखदायक जोई। तिनके भवन प्रगट भये सोई॥

भीष्मपितामहकी कथा ९,

श्रीमान् भीष्मजी भगवान्के परम भक्त हुए थे, बारह महाभागवतोंमें उनकी गणना है. इस कर्मनिष्ठामें मिलानेका यह कारण है कि भक्ति और ज्ञान यदि प्राप्त हो गया तो कर्मशास्त्रके अनुसार चलना मुख्य समझते थे; श्राद्धके समय उनके पिताने स्वयं आकर अपना हाथ पसारा, परन्तु तौभी पिंड उनके हाथमें न दिया. और वेदीपर रख दिया, फिर कहा कि पिंडके रखनेकी आज्ञा वेदीपर है. जब महाभारतका आरंभ हुआ, यद्यपि श्रीकृष्ण युधिष्ठिरकी ओर थे और भीष्मजीकोभी दुर्योधनसे युधिष्ठिर अति प्यारे थे परन्तु कर्मशास्त्रके अनुसार दुर्योधनका लवण ग्रहण किया था, इससे दुर्योधनकी ओर रहे, और युधिष्ठिरकी ओर न हुए, फिर भगवतकी प्रसन्नता धर्मशास्त्रको माननेमें जानी, इस कारण उनको इस निष्ठामें लिखा है. भीष्मजी दुर्योधन आदि कौरव, और युधिष्ठिर आदि पांडवोंके दादाके बडे भ्राता थे, इसलिये पितामह करके विख्यात हुए. आठ वसुओंमेंसे एक वसुका अवतार है गंगाजीकी कुक्षीसे उत्पन्न हुए. राजा शंतनुने गंगाजीसे यह वचन कहा था कि मैं जो कर्म करूं उसमें

कोई दूषण न पकडे, सो गंगाजीसे सात पुत्र जन्में. गंगाजीनें अपने जलमें उनको प्रवाह कर दिया. भीष्मजीके जन्मपर राजाने निषेध किया तब गंगाजी चली गई राजाको उनके वियोगमें महाक्लेश हुआ. भीष्मजी अपने पिताके निमित्त सत्यवतीको जिसे योजनगंधाभी कहते हैं, और जिसके उदरमें व्यासजी उत्पन्न हुए; पिताके निमित्त लाये उसके पालकने यह वचन मांगा था कि राज्य इसकी संतानको मिले, इसके उपरान्त शंतनु राजाकी मृत्युके पीछे उस वचनका यहांतक निर्वाह किया कि अपना विवाहही नहीं किया; इस भयसे कि ऐसा न हो, कि जो संतान हो वही राज्य करने लगे, और सत्यवतीके बडे पुत्रको राज्यपै बैठाया और आप नौकरोंकी समान उसके पुत्रोंके समीप काम करते रहे, बनारसके राजाकी पुत्री जिसका नाम अंबा था, उसके ग्रहणके निमित्त परशुरामजीसे युद्धभी हुआ परन्तु स्त्रीके साथ विवाह न किया, और परशुरामजीके साथ ऐसी तर्ज्जना की कि उनसे कर लेनेके सिवाय और कुछ न बन पडा. दया और उपकारताकी कथा कहांतक कहूं ? उन्होंने अपने जीवन देनेमेंभी विलम्ब न किया; अर्थात् महाभारतके युद्धमें दुर्योधनकी सेनामें सबसे आगे भीष्मजी थे. जब राजा युधिष्ठिरने देखा कि भीष्मजीके जीते रहते हुए तौ विजय प्राप्त होनेकी संभावना नहीं. यह विचार कर रात्रिके समय भीष्मजीके पास आये, और अपने मनका दुःख कहकर सुनाया; उनके वचन सुन भीष्मजीको दया आई, और अपने मरनेका उपाय बताया. अगले दिन अर्जुनने उनकी आज्ञानुसार उनके शिखंडीको बीचमें खडा करके एक ऐसा बाण मारा कि उनका शरीर शरशय्या अर्थात् बाणोंके बिछौनेपर शयन करने लगा. भगवत्को भीष्मजीकी प्रसन्नता इतनी प्रिय थी कि उनकी भक्तिके वश होकर उन्होंने अपने वचनको त्याग कर दिया, और उनके वचनको पालन

कर दिया, अर्थात् कौरव और पांडवोंके युद्धके समय भगवान्ने एक अक्षौहिणी सेना दुर्योधनकी ओर भेज दी थी; और उसके बदले पांडवोंकी ओर आप अकेले रहे थे; पर दुर्योधनसे यह वचन कहा था कि मैं अपने हाथमें शस्त्र न लूंगा. भीष्मजीने जो यह वार्ता सुनी कि श्रीकृष्ण केवल उनकी भक्तिके वश होकर उनकी ओर रहे हैं, तो प्रेमके वशीभूत होकर अनायास यह कह उठे कि यदि जो श्रीकृष्णको चक्र न पकडा दूं तो अपनी माता गंगाजीको लजाऊं और फिर शंतनु राजाका पुत्र नहीं कहलाऊंगा. इसके उपरान्त जब युद्ध होने लगा तो एक दिन भीष्मजीने पांडवोंकी सेनाको नीचे ऊपर कर अर्जुनको अपने बाणोंसे ऐसा दबाया कि वह तो निर्बल और निर्जीव होकर मर जाते परन्तु श्रीकृष्ण स्वयं रथवान् थे, वह अपने भक्तकी यह दुर्दशा नहीं देख सके और अपने भक्तके रक्षाके लिये चक्र हाथमें लेकर भीष्मजीकी ओर दौडे भीष्मजी श्रीकृष्णको आता देखकर और उनकी भक्तवत्सलता विचार कर परम आनंदित हुए और उनका शूर वीर स्वरूप देखकर इतने मोहित हुए कि अपनी और अपने धनुषबाणकी सुध उन्हें तनकभी न रही. जब श्रीकृष्ण निकट आये और भीष्मजीकी यह दशा देखी तब अपना और उनका वचन याद आया तो हँसकर फिर लौट आये. इससे यह विचारमें नहीं आता कि भगवान् एक भक्तके कारण दूसरे भक्तको ताडना करें, परन्तु यह निश्चय होता है कि श्रीभगवान् अपने भक्तोंकी दृढता बंधाते हैं और समझाते हैं कि मैं अपने भक्तोंकी सहायता या उनका वचन पूर्ण करनेके निमित्त अपने वचन और वेदमर्यादापरभी दृष्टि नहीं रखता. एक शंका यहभी होती है कि जैसे पतिव्रता स्त्री भगवत्भक्तिकी अधिकारी है, उसीके समान अपने स्वामीकी भक्तिकीभी अधिकारी है. भीष्मजीने जो यह

हठ किया था कि श्रीकृष्णके हाथमें चक्र पकडा दूंगा. इसका कारण क्या है सो जानना उचित है. भगवत्के चरित्रोंकी समान भक्तोंके चरित्रोंमेंभी दूषण निकालनेका अधिकार नहीं. कौन जाने उस समय क्या था परन्तु प्रगट तौ दो कारण दीखते हैं; प्रथम तौ भीष्मजीने यह शास्त्रोंसे जाना था कि जो भगवत्के चक्रसे मारा जायगा उसको फिर आवागमन नहीं रहेगा, इसलिये भीष्मजीने यह शोचा था, कि अंतमें इस युद्धमें दुर्योधनकी सेना नाशको प्राप्त होगी परन्तु जो श्रीकृष्णके चक्रसे मारा जायगा वही श्रेष्ठ है. इस कारण श्रीकृष्णको चक्र पकडवा देनेका नियम किया था. दूसरे भगवत्भक्तोंकी यही रीति है की किसी रूप अथवा किसी दशामें हो भगवत्के ध्यानके विना नहीं रहे, सो भीष्मजीने ऐसा शोचा था कि कदाचित् युद्धके समयमें मेरे हृदयसे श्रीकृष्णका ध्यान निकल जाय, क्योंकि मैंने भगवान्का स्वरूप वैरभावका कभी नहीं देखा था, इसीलिये हृदयमें धैर्य्यको धारण कर वैरस्वरूप देखनेहीके कारण यह उपाय करा था, और यह बात उन श्लोकोंके देखनेसे जानी जाती है, जो कि भीष्मजीके परम धाम प्राप्त होनेके समयमें भगवान्के ध्यानके विषयमें लिखे गये हैं. फिर सूरदासजीका पदभी तौ साक्षी देता है.

पद—वा पटपीतकी फहरान ॥
कर ग्रह चक्र चरणकी धावन, बिसरत नहीं वो बान ॥
रथतें उतर अवनि आतुर ह्वै, कच रजकी लिपटान ॥
जिन गोपाल मेरो पन राखो, मेट वेदकी कान ॥
सोइ अब सूर सहाय हमारी, प्रगट भये हरि आन ॥

शरशय्यापर रहनेका कारण महाभारतके लेखमें यह लिखा है कि उनके पिताने यमदूतोंपर चढे रहनेका आशीर्वाद दिया था सो

अपने पिताकी बडाई और सिद्धिता विख्यात होनेके कारण बावन (५२) दिनतक बाणोंकी शेजपर रहे और उन्होंने अपनीही इच्छासे देहको त्याग कर दिया और वास्तविक कारण यह है कि भीष्मजीकी इच्छा यह थी कि श्रीकृष्णके स्वरूपका ध्यान करते २ प्राण छोड दूं. यद्यपि इन दिनोंके बीचमें भीष्मजीको श्रीकृष्णके दर्शन एक दो बार हुए; परन्तु जिस प्रकार उन्होंने अपने मनमें शोचा था उस तरहके दर्शन न हुए. इसी कारण वह बावन दिनतक बाणोंकी शय्यापर रहे, जब सुअवसरमें श्रीकृष्णजीका दर्शन भीष्मजीको हुआ तभी वह श्रीकृष्ण जगत्पिताके धामको गये. भीष्मजीने देखा कि नेत्रोंके सामने सम्पूर्ण शोभाकी खान श्रीकृष्ण खडे हैं, तब मनमें भगवान्के चरित्रोंका स्मरण करते जिह्वासे रामनाम लेते भगवत्के धामको भीष्मजी चले गये.

सुरथसुधन्वाकी कथा ६.

नीलध्वज राजाके पुत्र सुरथ और सुधन्वा दो सहोदर भ्राता थे वे शास्त्रोंमें निपुण, कर्मादिकमें चतुर और परमभक्त थे. जब उनको भगवान्ने दर्शन दिया, तब वह उनका परम-सुन्दर स्वरूप देखतेही तत्क्षण परम धामको चले गये. जब राजा युधिष्ठिरके यज्ञका अश्व नीलध्वज राजाके देशमें पहुँचा तो राजाने उनके घोडेको पकड लिया, और फिर रखवालेंको युद्धके निमित्त यह आज्ञा सुनाई कि जो कोई प्रातः कालही समरभूमिमें नहीं आवेगा उसीको औटते हुए तेलकी कढाहीमें गेर दिया जायगा. यह वचन राजाका सुन आज्ञानुसारही प्रभातको समस्त सेना समरभूमिमें आई और राजाका पुत्र सुधन्वा तैयार होकर चला. उसकी स्त्री उसी दिन मासिक धर्मसे निवृत्त हुई थी, उसने अपने स्वामीसे कहा कि हे स्वामिन्! मुझे रतिदान दो. सुधन्वा स्त्रीका यह वचन सुन धर्मको विचार

शास्त्रकी आज्ञानुसार स्त्रीको रतिदान देकर युद्धभूमिमें आया; और राजाके मंत्री शंख और लिखितकी सुधन्वाके साथ शत्रुता थी इसी कारण उन्होंने सुधन्वाके देरमें आने और आज्ञा-भंग करनेकी निन्दा की. सुधन्वाके बहुतसी विनती करनेपरभी अन-रीति होनेकी व्यवस्था दी और उसको गरम तेलकी कढाहीमें गेर दिया. भक्तोंके रक्षा करनेवाले श्रीभगवान्ने जैसे प्रह्लादजीकी प्रज्व-लित अग्निको शीतल करा था, उसी प्रकार उस जलते हुए तेलको बर्फकी समान शीतल कर दिया, और सुधन्वा उसमें आनंदसहित स्नान करने लगा. देखनेवालोंने मनमें विचार किया कि तेल अच्छी तरह गरम नहीं हुआ होगा, इसीसे यह इसमें जीवित है. तब फिर उसकी परीक्षाके लिये उसमें एक नारियल गेरा, वह नारियल उसमें गिरतेही तत्क्षणात् भस्म हो गया और फट गया. उसका एक टुकडा तो शंखके मस्तकपर और दूसरा लिखितके मस्तकपर इस प्रकार जाकर लगा जैसे वज्रका प्रहार लगता हो. उसके आघातसे दोनों यमलोकको गये और अपने कियेका फल पाया. उन्होंने भक्तसे द्रोह करनेका परिणाम नहीं शोचा था भक्तोंके प्रिय कृपासिंधुने भक्तसे वैर करनेका फल दिखाया. इसके उपरान्त फिर सुधन्वा अर्जुनसे युद्ध करने लगा, और ऐसा युद्ध किया कि अर्जुनको निर्बल कर दिया. श्रीकृष्ण स्वयं आप उस समय अर्जुनके रथवान् थे, उसके एक २ बाणोंके बलोंको देकर धन्य २ कह रहे थे, अर्जुन इस प्रसंशाको श्रवण नहीं कर सका और एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण निकालकर कहने लगा कि हे सुधन्वा! देख, इस बाणसे मैं तेरा प्राणनाश करूंगा. यह गर्वभरा अर्जुनका वचन सुन सुधन्वाने उत्तर दिया कि मैं इस बाणको मार्गमेंही खंड २ कर दूंगा, तत्पश्चात् फिर अर्जुनने बाण छोडा, तो सुधन्वाने एक ऐसा बाण चलाया कि अर्जु-

नके उस बाणके मार्गमेंही खंड २ हो गये, परन्तु अर्जुन परम भक्त था इसी कारण उस बाणके खंड २ हो जानेपरभी जिस टुकडेमें भाल लगी हुई थी वही टुकडा सुधन्वाके शीशपर जाकर गिरा और उसका प्राण देहसे निकल गया. अपने भाईका मरना सुन फिर उसका बडा भ्राता सुरथ युद्धभूमिमें आया और उसनेभी सुधन्वाकी समान अर्जुनसे अधिक युद्ध करा. फिर अर्जुनने एक बाण निकाल-कर यह प्रतिज्ञा करी कि हे सुरथ! देख, मैं इसी बाणसे तुझे मारूंगा अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा सुनकर सुरथने उत्तर दिया कि हे अर्जुन! मैं आज तुझको रथसे उलट दूंगा, जब अर्जुनने बाण छोडा तो सुरथ-का शीश धडसे अलग हो गया, वही बाण वहांसे उछलकर इस प्रकार उलटा आया कि अर्जुनका रथ उलट गया; अर्जुन और श्रीकृष्ण महाराज पृथ्वीपर गिर पडे, और फिर इन दोंनो भ्राताओंका शीश शिवजीकी रुंडमालमें पहुँचा और प्राण भगवान्‌में लय हो गये. शीशका शिवजीकी रुंडमालमें रहनेका तात्पर्य यह है, भगव-द्भक्तोंका मान इतना बडा है कि जिनका शीश ईश्वरका आभूषण होता है. शिवजीने यह बात समझी कि यह दोनों भ्राता भगवान्‌के ऐसे परम भक्त थे, कि जिनका दर्शन करना सर्वदा उत्तम है. इसी कारण उनका शीश मालामें रक्खा और यह विचारा कि निश्चय इनका प्राण भगवान्‌के स्वरूपमें मिल गया इसी कारण भगवद्भक्तोंको सब सामर्थ्य है जो कुछ कहा जाय सो थोडा है.

हरिदासकी कथा ७,

राजा हरिदास परमभक्त और साधुओंकी सेवा करनेमें चतुर हुए और धर्मशास्त्र और उसकी आधीन मर्यादाको अत्यन्त उचित और आवश्यक समझते थे इसी कारण इस निष्ठामें लिखे गये. यह राजा

पाटनगृहके तंवर राजपूत थे, और रक्षाकर्म करनेमें राजा शिविकी समान थे, दानमें दधीचिकी समान, और वचन निर्वाहमें राजा बलि-की सदृश और भक्तिमें प्रह्लादकी समान थे. इन सबका वर्णन इस भक्तमालमें है; और रिझवार निष्ठामें राजा जगदेव उनकी समान हुए. उनका वर्णन इस जगह किया जायगा. राजा जगदेव बडा शूर वीर पुण्यात्मा, न्यायी और रिझवारनिष्ठामें इतना प्रतापी था कि एक नट-नीने अपना कर्तव्य राजाके आगे किया, इसका राग और नृत्यकी चतुरताको देखकर राजा प्रसन्न होकर दान देनेकी चिन्ता करने लगे, परन्तु उसके गुणोंकी तुल्य उसको देनेके लिये कोई वस्तु उस-के विचारमें न आई. फिर राजाने विचारा कि इसे अपना शीशही दे दूं, इसके उपरान्त नटनीने प्रार्थना करी कि जब मुझे दान लेनेकी आवश्यकता होगी तभी मैं आनकर ले जाऊंगी, और उसने यह प्रतिज्ञा करी कि अब किसीके आगे अपना दाहिना हाथ दान लेनेके लिये नहीं पसारूंगी क्योंकि दान देना इसी राजापर समाप्त हुआ, फिर दूसरे राजाके सन्मुख उसी नटनीका तमाशा हुआ, और वह राजा दान देनेको तैयार हुआ तो नटनीने बांया हाथ पसारा राजा क्रोधमें आकर बांये हाथ पसारनेका कारण पूछने लगा, तो नटनीने राजाका यह क्रोधभरा वचन सुनकर कहा कि हे महाराज ! दांया हाथ राजा जगदेवके अर्पन कर चुकी, उससे ज्यादे और कोई दानी नहीं है जिसके आगे हाथ पसारूं, यह नटनीकी वार्ता सुन राजाने कहा कि मैं जगदेव राजासे दशगुणा अधिक हूं अर्थात् उससे दशगुणा अधिक दान दे सक्ता हूं, सत्य कह उसने क्या दिया है. फिर बहुत वादानुवाद होनेके उपरान्त राजाने प्रतिज्ञा करी कि राजा जगदेवने जो कुछ तुझे दिया है उससे दशगुणा अधिक अवश्य मैं तुझे दे सक्ता हूं. तब नटनी राजा जगदेवके पास गई और उसका शीश

लेकर राजाके पास गई, और आगे रखकर कहा कि हे राजन्! राजा जगदेवने अपना शीश मुझको दान किया है अब तूभी अपना शीश दे. तू अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर राजा लज्जामान होकर उठ गया और फिर नटनीको मुख नहीं दिखाया, फिर नटनीने राजा जगदेवका शीश उसके धडपर रखकर वही गान गाना प्रारंभ किया. कि जिसको सुन-कर राजा जगदेव प्रसन्न हुआ था, उसके गानको श्रवण कर तत्कालही राजाका शिर जुड गया, उसकी रिझवारनिष्ठा सारे संसारमें आजतक प्रचलित है. दूसरी राजा जगदेवकी यह कथा है कि किसी राजाकी पुत्री उसके स्नेहमें व्याकुल थी, और उसके पास विवाहका संदेशा भेजा था. राजा जगदेवने उसका संदेशा अंगिकार न किया, तब लडकीके पिताने राजा जगदेवको कपट करके अपने नगरमें बुलाया और मंत्रियोंके द्वारा उसको बहुत कुछ समझाया, और लड-कीनेभी अपनी प्रीतिकी चतुरता दिखाई, परन्तु राजा जगदेवने नहीं माना. अन्तमें यह विचार हुआ कि उस लडकीने अत्यन्त व्याकुल होकर राजा जगदेवका शीश देखनेके लिये कटवा मंगाया. उस समयमेंभी भगवान्ने राजा जगदेवकी प्रतिज्ञा पूर्ण करी कि जिस काल वह लडकी सन्मुख आती तब राजाका मुख दूसरी ओर हो जाता. तात्पर्य यह है कि स्त्रियोंसे वचना हो तो इतनाही हो. निःसन्देह स्त्रियोंका संयोग तपस्वी पुरुषोंको ऐसाही दुःखदाई है. कि जो भगवत्सम्बन्धी परम आनंद निकट नहीं आने देता. इस विषयमें भागवतादि पुराणोंमें हजारों स्थानोंपर शिक्षा लिखी है. निदान यह राजा हरिदासभी रिझवारनिष्ठामें ऐसेही थे मानो तंवर-कुलमें सूर्य हुए. अर्जुनके पीछे यह राजा धर्मात्मा और बडे सज्जन हुए और तिलक मालादिक भगवान्के भेषमें उसकी अत्यन्त प्रीति थी उसका वर्णन नहीं हो सकता, सहस्रोंमेंसे एक यही है,

एक समय अर्धरात्रिको लघुशंका निवृत्त करनेको ऊपरके स्थानपर गये तो वहां अपनी पुत्रीको एक भिक्षुक बैरागीके साथ गलबांही डाले नग्न शयन करते देख उनपर अपना वस्त्र डालकर चले आये. प्रभातको जब दोनों उठे तो उठकर वस्त्रको देखकर बहुतही भय माना, और भिक्षुक बैरागीने भागनेका मनमें विचार किया. राजाने वैष्णवधर्मको विचार कुछ न कहा वरन जब उस बैरागीको लज्जामान और पछताता हुआ देखा तो उसके चरणोंपर अपना शिश रख दिया. केवल इतनीही शिक्षा देनी अवश्य समझी कि इस कामके करनेसे तुम्हारे भेषकी निन्दा होती है इस कारण मुझसे नहीं सुनी जाती, इसलिये ऐसे कामको गुप्त करनाही उचित है; जैसे कि राजा भगवान्‌का भक्त था उसको इतनीही शिक्षा परम हितकारी हुई; और जिस कर्मको राजाने उस बैरागीसे निषेध किया था उसने उस कर्मको छोडकर भगवान्‌के भजनमें चित्त लगाया. अब विचारनेका स्थान है कि इतनी गंभीरता, कुकर्मसहनता और विश्वास करना यह हरिभक्तोंके अतिरिक्त और किसको सामर्थ्य है ।

अथ

दूसरी निष्ठा भागवतधर्मप्रचारक।

(जिसमें बीस भक्तोंकी कथा है.)
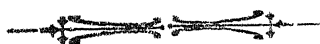
श्रीरघुनंदन स्वामीके व्यास अवतारको दंडवत् है कि जिन्होंने जगत्‌के उद्धारके निमित्त वेदोंको संग्रह कर ब्रह्मसूत्र, महाभारत, अठारह पुराण स्मृति आदिकको रचकर भागवतधर्मका प्रचार

किया, और उनके चरणकमलोंकी कुलिश रेखाको दंडवत् है जो कि महामोह वृत्रासुर और पापके पहाडोंको नाश करनेवाली है भागवतधर्म उसको कहते हैं. जो भगवान्की भक्तिके सम्बन्धमें किया जाय जैसे सेवा, पूजन, भजन, स्मरण कीर्तन इत्यादिक प्रचारक प्रचार करनेवालेको कहते हैं इसमें किसीको जो यह संदेह हो कि धर्मनिष्ठा जो आदिमें लिखी गई है उसमें और भागवतधर्ममें क्या भेद है ? इसमें यह जानो कि धर्मनिष्ठाका प्रयोजन कर्म है, वह कर्म सकाम हो अथवा निष्काम और भागवतधर्म उसको कहते हैं जो निष्काम कर्म इस जन्म अथवा पूर्व जन्मोंका किया हुआ हो उनको भगवान्के अर्पण करके भक्ति मिली हो, उसके सम्बन्धमें जो कुछ करना उचित है वही भागवतधर्म है. जब भागवतधर्ममें साधकका मन लग गया और सदैव काल उसी ओर चिंतवन रहा तो कर्म करने न करनेका उसको अधिकार है. बहुधा आचार्योंका यही विचार है कि कर्मद्वाराही भक्ति प्राप्त होती है जबतक तन्मय और मग्नताके अधिकारको प्राप्त नहीं हो तबतक संध्यादिक कर्मोंको करता रहे. जानना चाहिये कि प्रत्यक्ष ये दोनों बात परस्पर विरुद्ध दिखाई देती हैं, परन्तु मूल उनमें कुछ विरुद्ध नहीं. जो भागवतधर्ममें अंतःकरणसे चित्त लगावे, वह जो कर्म करे वह सब भगवद्भक्तिके सम्बन्धमें है उनको कर्ममेंही समझना चाहिये. सोही ऊपर वर्णन किये हुए भगवद्धर्मप्रचारकके समान है, आप पार हो जाय. औरोंकोभी पार ले जाय, तरणतारण शब्द इन साधकोंके लिये है. भागवतधर्मके प्रचारक भगवान् आपही हैं ब्रह्माजीको वेदका उपदेश दिया, और वेदके अनुसार भागवतधर्मका प्रचार हुआ; परन्तु अपनी कृपालुतासे उस धर्मके प्रचार करनेमें इतना चित्त लगाया कि वेद और ब्रह्माजीकीभी आज्ञामें न रहे. इसके उपरान्त कितनेही उपाय किये. अर्थात् भक्त और

ऋषियोंके मुखारविंदसे निकले हुए सूत्र और तंत्र, स्मृति, वेदांत, पातंजल, मीमांसा इत्यादिक षट् शास्त्र और वाल्मीकिरामायण और महाभारत आदि इतिहास और पुराण उत्पन्न हुए. उन्हींके अनुसार भागवतधर्मका प्रचार हुआ और समस्त मनुष्य उनके श्रवण और कीर्तन कहकरके कृतार्थ हुए और होते हैं. इसके उपरान्त भगवान्ने देखा कि लोगोंको काव्यका रस जाननेकी अत्यन्त रुचि है, यह विचार नाटक, चंपू, काव्य, साहित्यशास्त्रोंकी रचना करके शिक्षा की. जब कि लोगोंकी बुद्धि उनके समझनेके योग्य नहीं समझी तो उन्होंने टीका लिखनेकी रीति निकाली और जब टीकेकोभी लोग सरलतासे न समझ सके तो पहले गुसाई तुलसीदास, सूरदास, नाभा, अग्रदास, नंददास और कृष्णदास आदि आचार्योंके स्वरूप कलियुगमें उत्पन्न किये और उनका प्रचार किया, और फिर शेष दूसरे भागवतधर्मका प्रचार इस प्रकार किया कि उन्होंने अपनेही मुखारविंदसे इन धर्मोंकी शिक्षा करी, और फिर लक्ष्मीजी और अपने पार्षद, ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, नारद, शुक्राचार्य, बृहस्पति, वसिष्ठ, व्यास इत्यादि सहस्रों ऋषियोंको गुरु बनाकर उन भागवतधर्मोंकी वृद्धि करी. और कलियुगमें शंकरस्वामी, रामानुजस्वामी, निंबार्कस्वामी, माधवाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य और हितहरिवंशजी इत्यादि सैकडों आचार्य अपनी विभूति कला अंश, और आवेश अवतारसे उत्पन्न किये, कि जिनकी कृपासे सैकडों जीव महापापियोंका उद्धार होता है और तीसरी विधि यह है कि अपने धाम जैसे मथुरा अयोध्या आदि और तीर्थ गंगा यमुना, पुष्कर इत्यादिक प्रगट किये उन्हींसे भक्तिका प्रचार हुआ. इस कथाका तात्पर्य यह है कि भगवत्को अपने भागवत धर्मका प्रचार और स्थिरता इतनी मनको प्रिय है कि जब किंचित्भी अटक हो जाती है तो वह स्वयं अवतार

लेकर धर्मका लोप करनेवालेका वध करते हैं और फिर अपने धर्मको स्थिर रखते हैं. निदान फिर गीतामेंभी भगवान्ने आज्ञा करी है कि हे अर्जुन ! कि जब २ धर्ममें हानि होती है और अधर्मका प्रचार होता है तब २ मैं अपने आप अवतार लेकर धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका नाश करनेहीके कारण अवतार लेता हूं इस कारण उचित है कि भागवतधर्मके प्रचारमें परिश्रम करे इसीमें भगवान्की प्रसन्नता है. और समस्त पदार्थोंसे वह उत्तम है, और प्रचारके भगवान्की विभूति और अवतार समझा जाता है, शास्त्रमें एक स्थानपर ऐसा लिखा है कि जो पुरुष विमुख हुए व्यक्तिको भगवान्के सन्मुख करता है उसको एक सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है. भगवान्की कथा करानी, ठाकुरद्वारा, देवताका मंदिर, पूजास्थान, धर्मशाला, बाग, तालव, पाठशाला, कुआ आदि ऐसे स्थान जिनसे भगवान्का भजन करनेवालोंको सुख प्राप्त हो ऐसे बनाना योग्य है. भगवान्के चरित्रोंके ग्रंथोंका रचना प्राचीन पुस्तकोंका टीका करना अधर्मकी ओरसे हटाकर भगवान्के धर्ममें लगा देना, अनेक स्थानोंपर जैसे कि बद्रिकाश्रम, अयोध्या, हरिद्वार आदि बडे २ स्थानों पर सदावर्त देना. एकादशी और भगवान्के व्रतोंके दिन जागरण करना और भगवान्का कीर्तन होना, जिस २ दिन भगवान्का अवतार हुआ है उस २ दिन अति धूम धामसे भगवान्का उत्सव करना, और विद्याके पढनेमें परिश्रम करना, जिससे मनुष्योंका मन भगवान्की ओर लगे ऐसा काम करना. यह जो रीति लिखी है सोई समस्त भागवतधर्मकी वृद्धि करनेवाली है जो पुरुष भगवान्के भक्त हैं और केवल लोगोंके उद्धार करने और परोपकारकेही निमित्त अपना मनोरथ रखते हैं उनकी तो महिमा और प्रशंसा किससे हो सकती है वेही कृतार्थ हैं; परन्तु जो पुरुष अपना यश दिखाने और

संसारके दिखानेके लिये भागवतधर्मका प्रचार करता है वहभी भगवा-न्को प्यारा है उससेभी सहस्रोंका उद्धार होता है. निश्चयही उस भक्तकी समान कोई नहीं किसी अन्य भक्तकी प्रेरणासे उनका मन भागवत-धर्ममें लग जाय तो उसकी समान प्रतापी अन्य कोई नहीं; भागवत धर्मप्रचारकी महिमामें अत्यन्त विस्तारसे लिखा है उसका वर्णन नहीं हो सकता, और एक कथा अनंताचार्यकी पुस्तकमें लिखी है सो याद आ गई कि उसमें ऐसे भक्तोंकी कथा प्रगट होती है ठाकुरद्वारे या नगरके बीचमें एक खँडर पडा है, या रस्ता बिगड रहा है सो अनंता-चार्य अपने आप टोकरी और फावडा लेकर उस खँडरको भरने लगे कारण कि लोगोंको रास्तेमें आते जाते दुःख न हो उनकी स्त्री गर्भ-वती थी उसकोभी इसी काम करनेको अपने साथ लिया. जब गर्भकी अवधि पूरी होनेको आई, और स्त्रीको टोकरी ढोनेका कष्ट होने लगा तौ भगवान्ने मँजूरका रूप धारण करके स्त्रीकी रक्षा करी कि तुम्हारे बदले मैं टोकरी ढोऊंगा तुम आराम करो. थोडी देर पश्चात् अनंता-चार्यने कहा कि स्त्रीकी जगह कोई मंजूर टोकरी धरता है सो उसके पीछे सोटा लेकर दौडे और कहा कि तू कौन है जो हमारे कार्यमें साझी होता है. यह कहकर उसके समीप पहुँचे तब तौ भगवान्को भाग-नेके अतिरिक्त और कोई उपाय दृष्टि न आया और झट मंदिरके भीतर जा घुसे अनंताचार्यजीभी सोंटा लिये हुए उनके पीछे २ गये तौ भगवान्की देहको मट्टीमें सनी देखकर जान गये कि भग-वान् स्त्रीपर दया करके स्वयंही टोकरी ढोते थे तब तौ अनंता-चार्यजीने हाथ जोड प्रेममें मग्न हो भगवान्से यह प्रार्थना करी कि हे महाराज! नौकरी करना तो दासोंका काम होता है स्वामीका नहीं इसी कारण सबको अपनी शक्ति और विश्वास अनुसार धर्म

करना अवश्य है कि इस परम धर्मको विचार तन मनसे श्रम करे. जिस किसीको जिस भाषामें बोध हो और कवितामें मन लगा हो उसको उचित है कि भगवान्के चरित्रोंकी कथा कहे, परन्तु सैकडों कवियोंको देखा कि अनर्थ बकनेके अतिरिक्त भगवानकी तरफ किंचित्भी मन नहीं लगाते कई एक कवियोंसे जो वार्ता हुई कि तुम भगवान्के चरित्रोंका आख्यान करो, और अपनी जिह्वा और अंतःकरणको निर्मल क्यों नहीं करते, तौ इसके उत्तरमें कोई तौ कहता है कि हम एकत्वता वर्णन करते हैं कोई कहता है कि काव्यका जोड इसी प्रकार अच्छा होता है, किसीका कथन है कि कवियोंका चित्त प्रचारनेके सिवाय और किसी कार्यमें नहीं लगता यहभी तौ एक प्रकारकी पूजा है. इसी प्रकार औरोंमेंभी ऐसेही अयोग्य और अन्यथा उत्तर दिये हैं कि उनको वर्णन करनाभी उनकी कविताकी समान निष्फल है. सारांश यह है कि जिस कविताका ग्रंथ बनानेमें भगवान्के चरित्रोंका कीर्तन नहीं, वे ग्रंथ किसीभी योग्य नहीं, उनमें चाहे जितने गुण दिखाये हों परन्तु भगवान्के चरित्रोंके विना तुच्छ हैं. गोसाई तुलसीदासजीने ऐसे कविताके विषयमें लिखा है कि—

चौ०—विधुवदनी सब भांति सँवारी । सोह न वसन विना वर नारी ॥

अर्थात् भगवान्के चरित्रोंके विना कोई वर्णन चाहे जितना सुन्दर क्यों न हो जिस प्रकार कोई सुन्दर स्त्री विना वस्त्रोंके शोभित नहीं होती है. शोभाको प्राप्त नहीं होती. बहुधा कार्योंका धन लक्ष्मीके आश्रित है; सो धनवान् पुरुष भली प्रकार जानते हैं, कि लक्ष्मी सर्वदा तो किसीके पास रही नहीं और न आगेको रहेगी; जिस प्रकार खाली हाथों आये उसी प्रकार जायंगे इसीका नाम माया है और लक्ष्मी भगवान्की पतिव्रता स्त्री है. जहां उसका पति

निवास करेगा वहांही वह रहेगी; नहीं तो उसी समय चली जायगी. इसका प्रयोजन यह है कि जो कोई लक्ष्मीको रखना चाहे तो भगवान्के मार्गमें खर्च करे, सर्वदा भजन और सेवामें मग्न रहे, सैकडों साहूकार और ऐश्वर्यशाली पुरुष हो गये कोई उनका नामतकभी नहीं जानता, परन्तु जिन लोगोंने देवता-ओंके मंदिर. तालाव, धर्मशाला इत्यादिक पूजाके स्थान बनवाये हैं उनका नाम आजतक प्रगट है और आगेको रहेगा. फिर बडे संदेहकी वार्ता है कि लोग द्रव्य पाकरभी भगवत्के धर्मका प्रचार क्यों नहीं करते ? ईश्वर और जीव, स्वर्ग और नरक, ज्ञान और वैराग्य और धर्मके अन्य आधिकारोंका प्राप्त होना विद्याके आधीन है. जबसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य शूद्रोंमेंसे शास्त्रके पढनेकी रीति उठाई है तभीसे धर्मोंका नाश हो गया. दाक्षिणके चीना-पट्टण, तैलंग, द्रविड, बारह,मल्हार देशोंमें ऐसी रीति है कि किसीभी गांवका लडका शास्त्रके पढनेमें यदि कुटिलता करता है तो उसके माता पिता राजाकी आज्ञासे उसके पैरोंमें बेडी डालकर उसको पाठशालामें पढनेके लिये भेज देते हैं, और जबतक शास्त्र पढ नहीं लेता है तबतक बेडी नहीं निकालते हैं इस कारण उस देशके समस्त लोग अपने धर्ममें स्थिर हैं यहांतक है कि ब्राह्मणसे लेकर नीच जातितक कोईभी इष्ट उपासनाके विना नहीं; और ज्ञानी हैं, इसी कारण वह शत्रुओंके जालमें नहीं फँसते. जहांतक हो सके अपने और परायेको शास्त्रके पढानेमें परिश्रम करें, और किसी कारणसे संस्कृत नहीं पढ सके तो भाषाके पढनेसभी काम निकल सकता है. और ग्रंथोंमेंसे तुलसीदासजीकी रामायण और सूरसागरको भागव-तने यह प्रताप और चमत्कार कर दिया है कि जो कोई नेमके साथ पढता है, उसको अवश्य भगवान्की प्राप्ति होती है. इसी प्रकार नंद-

दास, कृष्णदास, अग्रदास, छीतरस्वामी, परमानंद आदि ग्रंथोंके मतमें हैं और भक्तमालका वर्णन पहले हो चुका है. भगवान्‌की कथा करना और उसके सुननेकी इच्छा करना और जिस प्रकार अपने सम्बन्धी और बेटे पोते संसारके पदार्थ प्राप्त होनेके निमित्त संसारी विद्या पढते हैं उसी प्रकार उनको भगवान्‌की ओरभी फेरना उचित है. विष्णुसहस्रनाम, गीता, स्तवराज, भगवान्‌के स्तोत्रोंका पढना बहुतही आवश्यक है. जो पुरुष अपनी संतान और सम्बन्धियोंको भगवद्धर्मकी ओर नहीं लगाते हैं, और धर्मशास्त्रसम्बन्धी विद्या नहीं पढाते हैं, तो उनकी संतान और कुटुम्बियोंके करे हुए पाप उन्हींके शिर होते हैं, क्योंकि शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार उन विद्याओंका पढना आवश्यक कर्म है, और जो संतान भगवान्‌की भक्ति करती है, वह अपने पितरोंको नरकमेंसे निकालकर मुक्ति कर देती है. प्रह्लाद आदि भक्तोंकी वार्ता इसकी साक्षी देती है, हे कृपासिंधो ! जगत्‌हितकारी रघुनंदन महाराज ! कुछ इस दासकी ओरभी दृष्टि है कि जिसको आपके चरणकमलोंके सिवाय कोई शरण देनेवाला और मेरा आश्रयदाता नहीं. यदि आप मेरे पाप और अधमोंपर दृष्टि करेंगे तौ जन्मजन्मतक मेरा ठिकाना नहीं लगेगा. इस कारण केवल आपकी कृपालुताकी इच्छा रखता हूं. यह तो जानता हूं कि जितने विमुख और संसारी लोगोंके सामने अपनी दीनताका वर्णन कर उनसे प्रार्थना करता हूं और भयके मारे घबराकर झट उनकी प्रसन्नताको सबसे अवश्य समझता हूं. जो इससे हजार भाग कमतीभी आपसे डरके भजन स्मरण करता रहूं तो क्षणमात्रमें मेरा बेडा पार हो जाय, परन्तु यह अभागी और कुटिल मन ऐसा पापी और बली है; कि भ्रमसेभी उस

ओरको ध्यान नहीं करता. जो अबभी यह मंदमति अज्ञानी मन आपका चिंतवन करे तौ अतिशीघ्र मन इच्छित पदार्थ पा सक्ता है. यमुनाजीके तटपर एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है उसमें अति निर्मल जलकी धारा चलती है, अत्यन्त सुन्दर उसकी रौसबंदी हो रही है; अनेक प्रकारके फल और पुष्पोंके वृक्षोंपर सघन लता छा रही हैं, और बीचमें भांति २ के पुष्पोंकी पंक्ति शोभा दे रही हैं, मोर नृत्य कर रहे हैं. सारस सारिका हंसादिक पक्षी अपनी २ वाणीसे मधुर २ बोली बोल रहे हैं; इस बगीचेमें श्रीयदुनंदन श्रीकृष्णचंद्र सम्पूर्ण शोभाके धाम अपने सखाओंके साथ अनेक प्रकारके चरित्रोंके करनेमें रत हो रहे हैं. उनके मुखारविंदकी शोभाकी उपमा सूर्य, चंद्र-रत्न वा कमल , गुलाब आदि पुष्पोंकीभी दी जाय तौ इनमें एक तरहकी शोभा है पर इस मनोहर मुखारविंदमें इन सबका, रूप और सुन्दरता इकट्ठी है. मोरपक्षसे जटित मुकुट शीशपर शोभा पा रहा है, कानोंमें कुंडल जिनमें फूलोंके गुच्छे गुंथे हैं, नाकमें लटकन शोभित है, जिसमें मोती लटक रहे हैं; मोतियोंकी कंठी और पन्ना आदि रत्नोंकी माला और उसपर फूलोंकी माला गलेमें पडी है. पहुँची हाथमें, चिकने बागेपर डुपट्टा जैसा कि खेलके समय बांधना चाहिये वैसा बांधा है. पीतांबरी धोती पहरे हुए हैं; चरणमलोंमें कडे और झांझन शोभायमान हैं; और खेल करनेके परिश्रममें जो पसीना आया है उसकी छोटी २ बूंदें मुखपर मोतीयोंकी समान शोभा दे रही हैं, और घूंघुरवाले बालोंकी अलकें हवाके लगनेसे बिखरकर गालोंपर आ गई है, उस समयकी शोभा और उपमाका वर्णन कौन कर सकता है ? देखनेवालेभी ठगे हुएकी समान चकित रह जाते हैं.

ब्रह्माजीकी कथा १.

ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं; भगवान्के भक्त और समस्त धर्मके प्रचार करनेवालोंमें यही प्रथम गिनतीके योग्य हैं. जब नाभिकमलमेंसे इनका जन्म हुआ और तपके बलसे अपनी और संसारके उत्पन्न करनेकी सुधि आई और इसके जाननेको शक्ति हुई तो भगवान्ने इनको वेद दिये. उनके अनुसार पहले तो सनकादिक मरीचि आदि ऋषियोंको शिक्षा करी और फिर उन भागवतधर्मका प्रचार किया वरन उनका उपदेश आजतक चला जाता है अर्थात् ब्रह्मलोकमें नारद और सनकादिकोंको उपदेश देते हैं; जो कोई उत्तम कर्म करके उनके लोकमें जाता है उसको भक्ति और ज्ञानका उपदेश देते हैं, फिर उसी उपदेशके प्रतापसे मुक्ति हो जाती है. यह बात सब पुराणोंमें विदित है कि जब कभी उस भागवतधर्ममें विघ्न पडता है. देवता और भगवान्के भक्तोंको दुःख होता है तभी ब्रह्माजी भगवान्के अवतार होनेका उपाय करते हैं, तब दुष्टोंका नाश होकर भगवान्की भक्तिका प्रचार होता है. ब्रह्माजीकी कथा पुराणोंमें विस्तारपूर्वक लिखी है यहां इतनीही बहुत है.

शिवजीकी कथा २.

शिवजी महाराजका अधिकार भगवान्के भक्तोंमें और भागवतधर्मके प्रचार करनेवालोंमें सबसे प्रथम गिना जाता है. भक्तराज पदवी शास्त्रोंमें केवल शिवजी महाराजके लिये लिखी है; भगवान्की भक्तिके प्रचलित होनेमें इतनी सरल रीति है, कि कैलाससे आकर अनेक स्थानोंपर ऋषियोंको उपदेश देते हैं. वरन बहुधा आप आचार्य और गुरु हुए ऐसे एक विष्णुस्वामी संप्रदायके आचार्य शिवजी महाराज हैं; और स्मार्त संप्रदाय जो सेवडोंकी विरुद्धता तथा कुटिलतासे घट

गई थी सो उसे शंकरस्वामीका अवतार लेकर जगत्में फिर प्रचार किया. जो संप्रदाय संसारमें यशवंत और नामी है, उसको प्रथम शिवजी महाराजनेही अत्यन्त प्रसन्नतासे शास्त्रोंमें वर्णन किया है कि उसके अनुसार ऋषि और आचार्योंके अधीन रहे. भगवान्के नाममें इतना विश्वास है, कि काशीमें केवल उसीके आधारसे मुक्ति होती है. जिस समय समुद्रसे हलाहल विष निकला था और उसके तेजसे देवता भस्म होने लगे थे तो समस्त देवता शिवजीकी शरण गये, फिर शिवजी महाराजने अपनी कृपालुतासे भगवान्के रामनामका स्मरण कर उस विषको अति शीघ्र पान कर लिया, और सम्पूर्ण देवताओंको उस महा-विपत्तिसे छुटाया, आजतक जो शिवजीके कंठमें उस विषका चिह्न है सो उसी शिक्षाके निमित्त है कि भगवद्भजनका इतना महत्प्रताप है और इसी प्रतापसे हलाहल विषभी अमृतकी समान फल देता है, अर्थात् वही विष अपना स्वभाव छोडकर शिवजीके कंठका आभू-षण हो गया है. भगवान्की भक्तिके रसिक और विश्वासी ऐसे हैं कि एक वार परम प्रिया सतीजीसे किंचित् अपराध हो गया था तो तत्कालही उनको त्याग कर दिया; और उनसे प्रीति अथवा मेल करना अपने स्वामीके धर्मकी रीतिसे विरुद्ध समझा. इसकी थोडीसी वार्ता यह है कि एक समय शिवजी महाराज दक्षनंदिनी सतीके साथ पृथ्वीपर आनंद करनेको आये तो ऋषियोंको भगवा-न्की भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया और उनसे कहा कि तुमने रामचरित्र सुना यह कहकर भ्रमण करते हुए कैलासपर्वतको चले गये. तब जाना कि रामचंद्रजीने अवतार लेकर राजा दशरथजीकी आज्ञासे वनवास जानेके लिये इसी ओर आते हैं यह विचार दर्शन-की अत्यन्त अभिलाषा हुई, और तत्क्षण उसी समयमें दर्शन किये कि जिस समय रामचंद्रजी जगज्जननी माता जानकीजीके ढूंढनेको

जा रहे थे और पहाड और जंगलोंमें वियोगियोंकी तुल्य ढूंढते फिरते थे; उनके चरण छूनेके लिये उनके पास जाना तो उचित न समझा इस कारण दूरसेही प्रणाम करके "जय जय सच्चिदानंदकी" ऐसा अत्यन्त प्रेमसे कहकर आगेको चले, सतीजीने शिवजीके प्रेमकी यह दशा देखी तो बहुतही आश्चर्य माना और विचार किया कि यह तो आप ईश्वर हैं इन्होंने राजाके पुत्रको प्रणाम क्यों किया और विचार किया कि इसका क्या कारण है यही विष्णु अवतार होते तो अज्ञानियोंकी समान स्त्रीकी खोजमें क्यों फिरते ? यह शंका सतीजीके मनमें हुई. तब शिवजीने बहुत समझाया कि यह राजपुत्र नहीं है वही ईश्वर हैं जिनका भक्तिकी मैंने ऋषियोंको उपदेश करा था जिसकी भक्तिका पंडित, मुनीश्वर, योगी और संत सच्चे मनसे ध्यान करते हैं वही पूर्ण ब्रह्म सर्वव्यापी और समस्त ब्रह्मांड और मायाके स्वामी हैं परन्तु शिवजीकी इन बातोंको सुन सतीजीको कुछभी ध्यान न हुआ और सीता महारानीका ध्यान करके श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख गईं, तो रामचंद्रजीने सतीका कपट जान लिया और प्रणाम करके पूंछा कि धर्मकी मर्यादाको शिवजीने कहा है, और तुम अकेली जंगलमें किस कारण फिरती हो ? सतीजी इस वचनके परिणामको जानकर लज्जायमान हुई और शिवजीकी ओर चली गई. मार्गमें कुछ औरभी चरित्र देखा श्रीरामचंद्रजीकी मायासे अनेक रूप दीखे. शिवजीने ध्यान करके सब वृत्तान्त सतीका जान लिया और मनमें विचार किया कि सतीने मेरी माता सीताका रूप बनाया फिर उसकी देहसे प्रीति और स्नेह करना उचित नहीं समझा, यह विचार कर सतीजीको त्याग दिया, और फिर सतीकी देहके साथ योग नहीं किया. तब इस शरीरको छोडकर सतीजी हिमाचलके घर पार्वती नामसे हुईं; तब श्रीरघुनंदनकी आज्ञानुसार बहुतसे तप और

परिश्रमके पीछे शिवजीको मिली. फिर श्रीरघुनंदन स्वामीजीका चरित्र शिवजीके मुखसे श्रवण कर अत्यन्त भक्ति हुई. भगवान्के सहस्र नाम लेकर भोजन किया करती थी. एक वार शिवजीने पार्वतीको बुलाया, पार्वतीजीने आनेसे मना किया कि अभी भगवान्के सहस्र नाम नहीं लिये हैं तब शिवजीने कहा कि एक रामनामही सहस्र नामका फल देता है सो रामनाम लेकर चली आओ. पार्वतीजीने शिवजीकी आज्ञानुसार विश्वास करके वैसाही किया और शिवजी महाराज उस विश्वाससे अति प्रसन्न हुए और अपने अर्द्धांगमें उनको जगह दी. एक समय शिवजीके लिये भगवान्ने अपना प्रसाद भेजा था शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रेमके वश होकर पार्वतीजीको भूल गये, और आपही उस महाप्रसादको भोजन कर गये. जब पार्वतीजीने यह बात विचारी तो उनको महाक्रोध आया और कहा कि जो कोई तुम्हारी उच्छिष्ट खायगा वह नरकको जायगा, इस कारण उसी दिनसे शिवनिर्माल्य खानेका निषेध है. एक समय शिवजी महाराज विचरते हुए जा रहे थे मार्गमें दो खेडे देखे. सवारीसे उतरकर दोनोंको पृथक् २ साष्टांग दंडवत् करी. यह देख पार्वतीजीको बडा आश्चर्य हुआ पूछा कि दंडवत् करनेका क्या कारण है? तब शिवजीने कहा कि दश हजार वर्ष हुए तब एक खेडेमें एक हरिभक्त हुआ था इस कारण यह दोनों खेडे पूजा और दंडवत्के योग्य हैं, इसी कारण शिवजी महाराजके चरित्र अनंत और अगणित हैं, शेष और शारदाभी उसका वर्णन नहीं कर सकते- कितनेही मनुष्य ऐसा कहते हैं कि शिवजी महाराज श्रीकृष्णके बालरूपके उपासक हैं सो यह बात सत्य है परन्तु और निष्ठाओंमेंभी वैसीही प्रीति है; क्योंकि श्रीकृष्णके अवतारमें रासविलासके समय सखीका रूप बन उनमें आ मिले, और इसी प्रकार वीररस आदि चरि-

त्रोंको अति अभिलाषासे जाकर देखा, इसी कारण शिवजी महाराज भगवान्‌के ज्ञानी भक्त हुए. वास्तवमें ईश्वरहीकारूप हैं. किसी कल्पमें विष्णु और किसीमें यह उनके भक्त होते हैं पर विचारसे एक हैं.

अगस्त्यजीकी कथा ३.

श्रीमान् अगस्त्यजी ऋषि विद्या और धर्मके आचार्य और भगवान्‌के परम भक्त हुए, और भगवान्‌की भक्तिके प्रचलित करनेमें इतना परिश्रम करा कि जिसका वर्णन नहीं हो सक्ता. उन्हींके प्रचारसे जो यह रीति संसारमें प्रचलित हुई है सो अबतक महापापी और पातकियोंको संसारके काठिन समुद्रसे तारती है और दक्षिणदेशमें जो भक्तिका प्रचार है सो उन्हींके चरणारविन्दकी कृपासे है. नहीं तौ इस देशवालोंको जो कुछ शास्त्रोंमें लिखा है सबको विदित है. अगस्त्यसंहिता नाम जो ग्रंथ है सभी ऋषियोंको उसका विश्वास है और मानते हैं. उसके आचार्य अगस्त्यजी महाराज हुए. उपासनाकी रीति तथा अवश्य करके राममंत्र और भक्तिकी प्रभुता उसमें विस्तारपूर्वक लिखी है. उनके जन्मका वृत्तान्त शास्त्रोंमें इस प्रकार लिखा है. किसी राजाने पुत्रकामनासे यज्ञ कराया उसकी स्त्री बीमार हो गई थी, इस कारण उस खीरको हांडीमें भरकर रख दिया, उसी हांडीमेंसे अगस्त्य-जीका जन्म हुआ. तब यह वनमें जाकर भगवान्‌का भजन और उनकी सेवा करने लगे. थोडे दिनमें राममंत्रके प्रतापसे सिद्धि और सर्वज्ञताको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त हुए, और इतने प्रतापशाली हुए कि किंचित्‌ही क्रोधपर तीन आचमन करके समुद्रको सुखा दिया. समुद्रके

---

१ पुराणोंमें लिखा है कि अप्सराको देख मित्रावरुणका वीर्य स्खलित हुआ, वह उन्होंने घटमें रख दिया उससे अगस्त्यजी हुए.

सुखानेकी कथा कई प्रकारसे लिखी गई है. एक जगह तो ऐसा लिखा है कि ढिठाईके कारण सुखा दिया, दूसरी जगह ऐसा लिखा है कि किसी पक्षीके पुकारनेसे सुखा दिया, तीसरी जगह इस प्रकार लिखा है कि वृत्रासुरके मारे जानेके उपरान्त उसके सहचर समुद्रमें जा छिपे; इस कारण अगस्त्यजीने समुद्रको सुखाकर उनको मारा. और एक रामायणमें लेख इस प्रकारसे लिखा देखा है कि परीक्षाके कारण सुखा दिया; परन्तु समुद्रके सुखाने और उसके फिर भर देनेका मेरी मंद बुद्धिमें ऐसा आता है कि अगस्त्यजी परम भक्त और त्रिकालदर्शी थे. उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि भगवान्‌को रावणके मारनके लिये लंका जानेके समय अवश्यही समुद्र उतरना होगा सो अभी पहलेसेही कुछ सेवा करनी चाहिये इस कारण उसको सुखा दिया कि महाराजाधिराज रामचंद्रजीकी सेना उतरनेके समय कुछ विलम्ब न हो. परन्तु फिर जो विचारा कि वह तो ईश्वर हैं क्षणभरमें करोडों ब्रह्मांडोंको उत्पन्न कर फिर नाश कर सक्ते हैं, तो मेरा यह विचार कि उन सृष्टिके उत्पन्न करनेहारे भक्तहितकारी श्रीरामचंद्रजीकी सेना समुद्रके सुखानेके सरलतासे उतर जायगी, सो यह निष्फल है, इस कारण फिर समुद्रको भर दिया; फिर जब शिवजी महाराजका विवाह हुआ, और वरात हिमाचलके द्वारपर आई तो सब देवता और ऋषि आदिके एक स्थानपर इकट्ठे होनेसे उत्तर दिशाकी पृथ्वी बोझके मारे समुद्रमें डूबने लगी और दक्षिण ओरकी पृथ्वी ऊंची हो गई, तब समस्त देवताओंको अत्यन्त भय हुआ तब श्रीमान् अगस्त्यजीने ब्रह्मा और शिवजीकी आज्ञाके अनुसार दक्षिणमें आकर अपने चरणसे पृथ्वीको इस तरह जोरसे दबाया कि उत्तरकी भूमि ऊंची और दक्षिणकी नीची हो गई, सो आजतक इसी तरहकी है. अगस्त्यजी सदा दक्षिणमें रहते हैं

और उत्तरमें नहीं आते तो इसका कारण यही है कि एक दफे मंदरा-चलने विचार किया कि सूर्य सुमेरु पर्वतकी परिक्रमा करता है परन्तु मेरी नहीं करता इस कारण सूर्यके आने जानेका मार्ग रोक दिया. इसी कारण अपनी देह बढाई तब सब देवताओंको अत्यन्त चिन्ता हुई तो फिर अगस्त्यजीकी शरणमें आये उनकी विनती मान अगस्त्यजी मंदराचलके पास गये. इनको आता हुआ देख मंदराचलने साष्टांग दंडवत् करी और कहा कि हे स्वामिन् ! मुझे जो आज्ञा करो सोई करनेको उपस्थित हूं. अगस्त्यजीने कहा कि जबतक मैं लौटकर न आऊं तबतक तू इसी तरह पडा रहना. जैसे कि अब पडा है, सो आजतक अगस्त्यजी दक्षिण दिशासे उत्तरमें नहीं आते और मंदराचलपर्वत उसी प्रकार पडा है.

रामानुजस्वामीकी कथा । ४.

श्रीमान् रामानुजस्वामी महाराजकी कथा लिखनेसे प्रथम उनका वर्णन विस्तारपूर्वक किया जाय कि जिस तरह भगवान्‌ने संसारके उद्धारके निमित्त चौवीस अवतार धारण करे उसी प्रकार कलियुगमें चार अवतार धारण करके भगवद्धर्मका प्रचार किया और चार संप्रदाय बनाये. एक श्रीसंप्रदाय जिसके आचार्य और प्रचारक रामानुजस्वामी हुए, दूसरे शिवसंप्रदाय इसके आचार्य विष्णुस्वामी हैं, तीसरे ब्रह्मसंप्रदाय उसके आचार्य माधवाचार्य हैं, चौथे सनकादिसं-प्रदाय उसके आचार्य निंबार्कस्वामी हैं कि एक २ संप्रदायका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जायगा. रामानंद व्यास हितहरिवंश आदिने जो संप्रदाय निकाला सो चारों प्रथम लिखे हुए संप्रदायोंकी साक्षी देता है कि उनमेंसे मर्याद वा सूत्र संग्रह किये गये हैं, चारों संप्रदाय भक्तिभूमिके स्थिर रखनेके निमित्त जगत्‌में विख्यात हैं सो चारों

संप्रदायोंमेंसे श्रीसंप्रदायके आचार्य जैसे ऊपर लिखे हुए रामानुजस्वामीके हैं कि जिनके प्रतापसे करोडों महापापी इस कठिन संसारसमुद्रके पार सरलतासे हो गये और होते चले जाते हैं. उनकी भक्ति और प्रताप उनकी महिमा सूर्यकी समान प्रज्वलित है. यह कथा सबमें प्रचलित है कुछ गुप्त नहीं है, और प्रपन्नामृत पुस्तकमें स्वामीजीका वर्णन विस्तारपूर्वक लिखा है. जन्मसे लेकर मरणपर्यन्ततकका लिखा है, उसमेंसे दो चार बातें लिखी जाती हैं. जब भगवान्‌का धर्म संसारमें न्यून हो गया तब भगवान्‌ने शिवजीको धर्मके प्रचार करनेकी आज्ञा की. उस समय हारीत ऋषिने केशवब्राह्मणके घर कांतिमातिकी कुक्षिमें जन्म लिया, द्रविडदेशमें कांचीपुरीसे पूर्व दक्षिणके कोनेमें भूतनगरीमें इनका जन्म हुआ ८०० वर्षसे अधिक हुए,जादु नाम पंडित स्मार्तके पास जब वेद पढते थे उस समय स्मृतिकी कथामें एक शब्द आया उसका अर्थ पंडितोंने यह बताया कि भगवान्‌की आंख ऐसी है जैसा कि बंदरका आसन होता है; और उसका सारांश आंखोंकी ललाई अथवा चंचलतासे समझ लेना उचित है. फिर स्वामी रामानुजदासने इस अर्थको नहीं माना और व्याकरणकी रीतिसे कमलका अर्थ निकाला, यह सत्य बात थी इस कारण पंडितने प्रत्यक्षतामें तो कुछ नहीं कहा पर मनमें दुःख माना. इसी कालमें नगरके राजाकी पुत्रीपर एक प्रेत आसक्त हो गया था और उसको अनेक प्रकारके दुःख देने लगा. उस पिशाचको दूर करनेके लिये हजारों मंत्र जाननेवाले लोग राजाके घर गये. पंडितजीने भी अपनी पंडिताई भली भांति दिखाई, परन्तु उस पिशाचका बल कुछभी न घटा. फिर राजाने किसीके कहेसे रामानुज स्वामीकी प्रार्थना और विनती की तब स्वामीजी गये, उनके जातेही उनके चरणोंके प्रतापसे वह प्रेत चला गया. स्वामीजीने राजासे कहकर पंडितोंको

बहुतसा धन द्रव्य दिलाया. अपने आप कुछभी न लिया. पंडितजी तौभी कुछ प्रसन्न नहीं हुए और रामानुजस्वामीके महाशत्रु हो गये; और प्रगटमें तो उनके मारनेके निमित्त शस्त्रका प्रहार न किया परन्तु उनको गंगाजीमें प्रवाह करनेके निमित्त प्रयागराजको गये. रामानुजस्वामीके मौसेरे भाई गोविंददासको यह भेद प्रगट हो गया, उसने स्वामीजीको भली प्रकार समझा दिया. यह सुन स्वामीजी एक घने जंगलमें छिप गये, और समस्त रात्रि उसी जंगलमें बिताई. उसी समय लक्ष्मीजी और भगवान् भील भीलनीका स्वरूप धारण करके आये. रात्रिके समय अकेले जंगलमें रहनेसे कुछ भय न माने फिर स्वामीजीसे जल मांगा, प्रभातही स्वामीने जल पिलाया, और फिर कांचीपुरीको उलटे चले गये. फिर यामुनाचार्यजीके शिष्यने काचीपुरीसे यह वार्ता कही उसने कहा कि भगवान्को इस कुएका जल जो तुमने पिलाया था सो उनको बहुतही स्वादिष्ठ लगा है इससे इनको बडी रुचि है. जो कोई उस कुएके जलसे भगवान्का पूजन करता है वह मनइच्छित फलको प्राप्त होता है. सो भगवान्ने तुमको शिक्षा दी है कि तुम उस कुएके जलसे भगवान्की पूजा करो. रामानुजस्वामी कितनेही समयतक वरदराजमहाराजकी सेवा करते रहे. कांचीपुरीमें रहकर फिर यामुनाचार्यसे मंत्रका उपदेश लेनेके लिये श्रीरंगनाथजीको गये. वहां पहुँचेही थे कि इसी समय यामुनाचार्य वैकुंठवासी हुए, उनके हाथकी तीन अंगुली मूंदी थीं. रामानुजजीने कहा कि शिक्षाके लिये तीन अंगुली मूंदी हैं, प्रथम यह कि श्रीसंप्रदाय संसारमें नामी और प्रचरित हो जाय, दूसरे ब्रह्मसूत्रोंपर भाष्य बनाया जाय, तीसरे ईश्वर जीव मायाका विवरण, तथा मंत्रादिका टीका किया जाय यदि ऐसा हो तौ खुल जांय, यह कहनेपर अंगुली खुल गईं. फिर यामुनाचार्यके शिष्य महात्मासे मंत्रका उपदेश हुआ. यामुनाचार्यके

पांच शिष्य थे. पांचोंसे एक २ बातका उपदेश हुआ अर्थात् कांची-पूर्ण शिष्यसे तो वरदराजकी पूजाका, और महापूर्ण शिष्यसे भगवा-न्के मंत्रका और गोष्टीपूर्णसे मंत्रके अर्थादिकका और शैलपूर्णसे रामायणके अर्थका और मालाधरसे सहस्त्रगीताके अर्थका उपदेश मिला. इसके उपरान्त स्वामीजीने कुटुम्बका त्याग किया और संन्या-स लेकर रंगनाथपुरीमें रहने लगे. यामुनाचार्यकी इच्छानुसार तीनों कार्य सुधारे; स्वामी रामानुजजीने जो उपकार संसारके हितके लिये किये हैं, सो लेखसे बाहर हैं. मनमें सर्वदा यही चिन्ता रहती थी कि किसी कारण मनुष्य भगवान्के सन्मुख हो जाय. जब उनके गुरुने शरणमें आये हुएको मंत्रका उपदेश किया और यह शिक्षा का कि यह मंत्र जो कोई सुनता है फिर उसको जन्म नहीं मिलता. तुम कदापि किसीसे इस मंत्रको न कहना; तब स्वामीजीने विचार किया कि यदि गुरुकी आज्ञा भंग करता हूं तो इस पापसे जन्मभरतक नरकमें रहना होगा, इससे यह उचित नहीं. फिर विचार करने लगे कि किसी प्रकार संसारका भला हो वह उपाय शोचना चाहिये इसलिये उस मंत्रको अत्यन्त उच्च स्वरके शब्दसे सुनाया. उस मंत्रको जिस २ ने सुना वे सब निःसन्देह भगवान्को प्राप्त हो गये. दिग्विजयके समय हजारों और लाखोंको भगवान्ने शरण दी; और छिपे हुए मंदिर और तीर्थोंको स्थिर किया. एक राजा जैनियोंका प्रती-तिवान् था उसको शास्त्रके बलसे धर्ममें लाये और दस हजार सेवड़े उस राजाके पास रहते थे उसमेंसे बहुतसे भागकर भगवान्की शरणमें हुए और जो शेष बाकी रहे थे वे नरक-गामी हुए. एक समय चूलदेशके राजाने धर्मके विरुद्ध चलनेवाले गुरु और कूरेश शिष्यकी आंख निकलवा ली थी, सो महापूर्ण गुरु तो दो तीन दिन पीछे परमधामको चले गये, और कूरेश स्वामीजीकी

सेवामें रहे. थोड़े दिनोंके उपरान्त फिर उनके नेत्र प्रकाशित हो गये, समस्त जगह भगवद्धर्मका प्रचार किया, इसके होनेसे पुरुषोत्तमपुरीमेंभी वैसाही होनेको था परन्तु जगन्नाथस्वामीजीकी यह इच्छा हुई कि पुराचीनही रीति यहांपर प्रचलित रहे, इसलिये भगवान्‌ने स्वामी रामानुजसे यह बात प्रचार न होनेकी इच्छा प्रगट की, और फिर एक रात्रिके मध्यमेंही जगन्नाथपुरीसे रंगनाथपुरीको भेज दिया, जिनका ऊपर वर्णन कर आये हैं. वहां दो पंडित पराजित होकर भगवान्‌की शरण हुए. उन स्वामीजीके वचनसे कितनेही मनुष्य सुमार्गमें चलने लगे. जिस २ प्रकार दासथीं महापूर्णके पुत्र शैलपूर्ण आदि सैकडों इस प्रकारके पुरुष भगवान्‌की शरणमें गये कि उनके कर्मोंको अपने पराक्रमसे भगवद्भक्ति और तपके मार्गपर लाये. जैसे धनुर्दास कनकांगा इत्यादि देश २ के सेवकोंमेंसे बारह हजार तो ऐसे थे कि सदा साथ रहते थे, और उनमें १४ ऐसे थे जो इस प्रकारके सेवकोंमें निज और उत्तम थे. स्वामीजीकी आयु १२० वर्षकी थी. शरणागति श्रीसंप्रदायकी निष्ठा है कि उसकी रीति विस्तारपूर्वक शरणागति निष्ठामें लिखी है, और पंचसंस्कार तिलकका वर्णन भेषनिष्ठामें किया जायगा. जिन २ को संप्रदाय है उन २ के सैकडों स्थान और गुरुद्वारे देशदेशांतरोंमें नामी और आजतक प्रचलित हैं. जिस प्रकार गलताजीमें पीडोरी, काशी, गोवर्धन इत्यादि. परन्तु कोई २ स्थान अत्यन्त अधिकारके हैं, जैसे रंगनाथस्वामी जहां यामुनाचार्य रहते थे, दूसरा यादवाचल जो कि पुराचीन तीर्थ है, पर वह लोप हो गया था. रामानुजस्वामीने उसको फिर प्रगट किया. और अत्यन्त परिश्रम करके युद्ध करा और एक मूर्त्ति दीह्लीके राजासे ली; और उसका संपत्ति पुत्र नाम रखकर उसको स्थापित किया. तीसरे तोताद्री; चौथे भूतनगर जहां रामानुजस्वामीका जन्म हुआ था, पांचवें वेंक-

टाद्रि, छठे वह स्थान जहां कि शठकोपस्वामीने तप किया था; श्री-संप्रदाय इसी कारण प्रचलित है कि प्रथम नारायणने इसकी उपासनाकी रीतिसे श्रीलक्ष्मीजीको उपदेश दिया था, और लक्ष्मीजीसे विष्वक्सेन महाराजको और विष्वक्सेनसे पुरुषवृक्षमें लिखे हुए परंपरासे जगत्में प्रचार हुआ. रामानुजस्वामीको भगवान्की सदृश अपने गुरुका विश्वास था. प्रपन्नामृतमें कितनीही कथा लिखी हैं उनमेंसे दो पुरुषोंका आख्यान यहां कीर्तन करता हूं. धनुर्दास नाम एक पुरुष कामी और घोरी मतका रंगनाथजीके मेलेको अपनी प्यारी कनकांगा स्त्रीके साथ आता था. रामानुजस्वामीने देखा कि हजारों मनुष्योंकी भीड उसके साथ चली आ रही है, और उसकी स्त्रीके ऊपर सेवक लोग छत्री लगा रहे हैं. और उसकी स्त्रीके सिवाय मनुष्योंका मन और किसी तरफ नहीं लगता, और न किसीकी उसे लज्जा आती है, तब स्वामीजीको उसके ऊपर दया आई और अपने आगे बुलाकर उसको ऐसी दृष्टिसे देखा कि वह ततकाल भगवान्की शरणमें हो गया, और अपने घरको छोंडकर रंगनाथपुरीमें अपने गुरुकी सेवा करने लगा. फिर गुरु और भगवान्में उनका प्रेम इतना अधिक हुआ कि स्वामीजी उससे प्रसन्न होकर धनुर्दासका हाथ पकडकर भ्रमण किया करते थे. यह उनका चरित्र देख स्वामीजीके और सेवकोंको यह ईर्षा उत्पन्न हुई. कि यह पुरुष दश दिनका आया हुआ तो इतना अधिक प्रिय होगया कि सब प्रकारसे यही कृपाका पात्र है, और हम पुराचीन सेवकोंको बात चीत करनेकाभी अवकाश नहीं मिलता. यह वार्ता स्वामीजीकेभी पास पहुँची, और उन्होंने उनकी ईर्षा निवारण करनेके लिये एक दिन किसी वैष्णवको इशारा किया कि सब वैष्णवोंके धोती और अंगोछे किसी स्थानपर छिपा दो, उस वैष्णवने वैसाही किया अर्थात् धोती

और अंगोछे छिपा दिये और थोडे २ फाड डाले. जब प्रभातको उनकी आवश्यकता हुई तो बहुत विलम्बके पश्चात् खोज करनेसे उनको मिले तो उनको फटा हुआ देखकर परस्पर विरोध होने लगा, और ऐसे २ कठोर वचन कहकर लडने लगे कि स्वामीजीको विरोधका निवारण करतेही बना. फिर स्वामीजीने आज्ञा की कि धनुर्दास धनवान् है, उसके आभूषण और समस्त धन चुराकर ले आओ! तुम्हारे काममें आवेगा. तब वे लोग उनकी आज्ञाको मान धन और आभूषणोंके हरण करनेको चले, वहांपर जाकर समस्त धन प्रथम तो निकाला फिर कनकांगा स्त्री अचेत सोती थी उसका जभी आभूषण उतारा कि इतनेमें उसकी आंख खुल गई, और उसने विचार लिया कि ये पुरुष स्वामीजीके सेवक हैं यह समझा कि धन और आभूषण यदि इनके काममें आवें तो इससे उत्तम क्या है? परन्तु दूसरी करवटके आभूषणभी इनके हाथ जाय तो औरभी उत्तम हो इस कारण उसने दूसरी ओरकी करवट ले ली तभी सब वैष्णव भाग गये. प्रातः कालही उस स्त्रीने धनुर्दाससे यह समस्त वृत्तान्त कहा, धनुर्दासने स्त्रीके वचन सुन उसे बहुत क्रोध कर मारा और उसे घरसे निकाल दिया. वह स्त्री रोती हुई स्वामीजीके पास आई और अपना सम्पूर्ण समाचार वर्णन करा. तब स्वामीजीने धनुर्दाससे कहा कि इसका विश्वास और भाव तो उत्तम था तैंने इसको किस कारण मारा? तब धनुर्दासने कहा कि महाराज! यह बात तो सब सत्य है परन्तु इसने जो करवट ले ली इस कारण मैंने इसको मारा क्योंकि इसके करवट लेतेही वह सब भक्त भय मान गये. जो यह करवट न लेती तो वह न भागते. इसको ऐसा उचित था कि यह उसी प्रकार पडी रहती, तो उनके मनकी अभिलाषा पूरी होती. इसके अतिरिक्त जितनी देरतक भगवान्‌के भक्त घरमें रहते उतनी देरतक मेरा घर सौभाग्य

वान् और पवित्र रहता. इसके उपरान्त उन ईर्षा करनेवालोंका स्वामी-जीने बुलाया और कहा कि तुम यती, संन्यासी और वैष्णव कहे जाते हो, सुख दुःखको बराबर मानना और त्यागी होनाही तुम्हारा आभूषण है, सो तुम्हारी किंचित् वस्त्रके कारण यह दशा हुई और महान् झगडा करा, फिर यह धनुर्दास तो गृहस्थी है कि धनसंपत्तिके विना उसका काम नहीं चल सकता. इसका यह वृत्तान्त है सो तुमने सुना और देख लिया. अब विचारना चाहिये कि दया और कृपाका पात्र यह है अथवा तुम ? एक समय स्वामीजीको गांवमें जानेका काम हुआ वहां उनके दो सेवक रहते थे, एक तो बडा धनाढ्य बनिया था उसके घर तो इस कारण नहीं गये कि वह बडा अभि-मानी और घमंडी था, और दूसरा वरदाचार्य ब्राह्मण निर्धन था, उस ब्राह्मणके घरपर गये. उस समय वरदाचार्य भिक्षाके लिये गया था और उसकी स्त्री घरपर थी. वह स्वामीजीको आता हुआ देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुई, परन्तु गरीब ऐसी थी कि शरीरपर वस्त्रभी न था इस कारण लज्जायमान होकर घरमें छिप गई, जब स्वामीजीने उसकी यह दशा देखी तो अपना वस्त्र उसके घरमें फेंक दिया उस वस्त्रको पहरक वह स्त्री घरमेंसे बाहर निकली; और स्वामीजीको दंडवत् करके इतनी प्रसन्न हुई मानो उसे तीनों लोकोंका धन प्राप्त हुआ. फिर यह विचार करने लगी कि रसोईकी सामग्री कहांसे आवेगी. इतनेहीमें उसका पतिभी आ गया उसनेभी स्वामीजीको दंडवत् करी और रसोईकी सामग्रीका विचार करने लगा परन्तु कोई उपाय उसे दृष्टि न आया तब उसकी स्त्रीने कहा कि एक पापी बनिया मुझको अत्यन्त बुरी दृष्टिसे देखा करता है उसने एक समय मुझको एक आभूषण भेजा था सो मैंने उलटा फेर दिया जो यदि आज्ञा हो तो उसके पाससे कुछ द्रव्य ले आऊं. वरदाचार्यने आज्ञा

दी कि जैसे बने वैसे अतिशीघ्र ला. यह बात सुन ब्राह्मणी उस बनि-येके पास गई और उससे कहा कि मैं आज रात्रिमें तेरे पास आऊंगी तू मुझे रसोईकी सामग्री दे दे तब यह वचन सुन उस बनियेने समस्त सामग्री दे दी, और वह सब लेकर घरपर आई फिर उसने रसोई कर भली प्रकार स्वामीजीके साथियोंके साथ उनको भोजन कराया. जब रात्रि हुई तो स्वामीजीको सब भेद खुल गया, और ब्राह्मणीको थोडासा भगवान्का प्रसाद दिया कि यह प्रसाद उस बनियेको दीजे. ब्राह्मणी जब बनियेके पास गई और भगवान्का वह महाप्रसाद उस बनियेको दिया तो वह अपने कर्मोंसे कांपने लगा और ब्राह्मणीके चरणोंमें गिरा और उनको माताकी समान मानकर क्षमाकी प्रार्थना करने लगा. फिर भगवान्की शरणमें जानेकी अभि-लाषा करी तो ब्राह्मणीको उसपर दया आई और उसने स्वामीजीसे आनकर कहा. उसका वचन मान स्वामीजीने उसको अपना भक्त कर लिया. संप्रदायके प्रारंभसे रामानुजस्वामीतकका पुरुषवृक्ष इस स्थानपर लिखा है, और आगे केवल एक गद्दीका रामानंदजीकी कथामें लिखा जायगा.

नाम.

नारायण । लक्ष्मीजी । विष्वक्सेन । शठकोप । श्रीनाथ । पुण्डरी-काक्ष । राममिश्र । यामुनाचार्य । पूर्णाचार्य । रामानुजाचार्य १० ।

स्वामी रामानंदकी कथा ५.

स्वामी रामानंदजी सिद्ध परम भक्त और आचार्य अथवा भक्तिके प्रचारक ऐसे हुए कि जिस प्रकार श्रीरामचंद्रजीने सेना उतरनेको सागरमें सेतु बांधा था वैसा इन्होंने संसारसमुद्रसे पार उतरनेके लिये अपनी कृपासे संप्रदायका सेतु बांधा. अनंतानंद, सुरीश्वरानंद, सुखानंद, भावानंद, पीपावसेन, धनाजाट, रैदास, कबीर आदि उनकेही अनुग्रह और उनकेही उपदेशसे एक २ ने लाखों और करोडोंको उद्धार किया था, और सभी नामी कवि हुए हैं. रामानंदकी संप्रदाय जो आजतक प्रचलित है उसके आचार्य और उत्पन्न करनेवाले स्वामीजी हुए हैं. यह स्वामीजी दक्षिणदेशमें स्मार्त संप्रदायकी रीतिसे एक संन्यासीके उपदेशसे भगवान्का स्मरण किया करते

थे. एक दिन बागमें फूल तोडनेको गये थे, वहां राघवानंदस्वामीके दर्शन हुए. जो रामानुजसंप्रदायमें थे. उन्होंने रामानंदजीसे कहा कि तुम अपनी दशाभी जानते हो कि तुम्हारी आयु कुछ नहीं रही है. अब इस अंतसमयमें भगवान्‌की शरण होना उचित है. यह वार्ता सुन रामानंदजी अपने गुरुके पास गये और वह वचन कहा कि संन्यासीजीने हृदयकी वार्ता चैतन्यताके बलसे जान ली कि वास्तवमें इसकी आयु पूर्ण हो गई, परन्तु कुछभी उपाय नहीं कर सके और दोनों जने राघवानंदजीके आश्रममें आकर दोनों लोकोंकी फलकी प्राप्तिके लिये उनकी शरणमें हुए जो कि निर्बल पुरुषोंके कारण भगवान्‌के भक्तकी उनकी समान उनकी सहायता करते हैं. और पराया दुःख देखकर मक्खनकी तरह नम्र हो जाते हैं. इसी कारण राघवानंदजीने उनपर दया करके मंत्रका उपदेश किया और राघवानंदजीकी आत्मा योगाभ्याससे दशवें द्वार अर्थात् तारक सरपर पहुँचा दी. जब मृत्युका समय बीत गया तब फिर चैतन्य कर लिया उसके उपरान्त रामानंदजी बहुत दिनोंतक गुरुकी सेवा करते रहे, और फिर तीर्थ करनेके लिये बद्रिकाश्रमकी ओर आये. कितने एक दिनोंतक काशीजीमें गंगाके घाटपर रहे, आजतक खडाऊं उनकी उसी स्थानपर हैं. जब वहांसे लौटकर गुरुजीकी सेवा करनेको आये तो उनके देशवाले और सुधर्मियोंने उनकी क्रिया और आचारकी व्यवस्था पूंछी, तो समझ गये कि कभी २ उनके परमधर्म आचारमें कुछ भेद आ गया है, सो जानना योग्य है. रामानुज संप्रदायमें रसोई आदिका आचार बहुत है, कारण यह है कि चौका देना, जल लाना, रसोई बनाना और इसी प्रकार नित्य कर्म करना, यह सब लोग अपनी स्वात्माके निमित्त नहीं समझ सकते किन्तु भगवान् ये सब काम करते हैं, जैसे भगवान्‌का जब भोग लग जाय फिर रसोईका कुछ विचार नहीं रखते, और भोग

लगानेसे प्रथम जो कोई रसोईको देखभी लेता है तो फिर उसको छोड देते हैं. यद्यपि इस विषयमें सब संप्रदायके मनुष्य एकही हैं तथापि श्रीसंप्रदायवाले कृपा और आचार्यमें भगवान्की सेवाको आवश्यकीय समझते हैं. निदान जब रामानंदजीकी यह व्यवस्था उनके धर्म करनेवालोंने जानी कि उनकी क्रिया और आचार निर्भंग नहीं है तो उनको अलग कर दिया. तब उनके गुरु राघवाचार्यने कहा कि तुम अपना पृथक् मार्ग चलाओ, उन्होंने उसी प्रकार किया. रामानंदी संप्रदाय आजतक प्रचलित है और उनकी रीति और तत्व व इष्ट बंध इसी श्रीसंप्रदायसे मिला हुआ है, परन्तु बहुधा रामउपासक होते हैं. क्रिया और आचारादिकका जितना विषय श्रीसंप्रदायमें है उतना इस संप्रदायमें नहीं तिलक इत्यादिकका कीर्तन भेषनिष्ठामें होगा; फिर स्वामीजीने शास्त्रकी रीतिसे यही निश्चय किया कि जो पुरुष भगवान्की शरण होकर भगवान्की भक्तिका आचरण करेगा उसको वर्णाश्रमका बंधन वृथा है इसलिये रीति प्रगट की कि जो कोई चारों वर्णोंवाला किसी संप्रदायमें भगवान्की शरण होकर भक्तिका आचरण करे वह सबके साथ खाने पीनेमें एक हो. यद्यपि इस विषयमें बहुतसे वाक्य मिलते हैं, परन्तु दो एकका उलथा किया जाता है, नारदपंचरात्रमें लिखा है कि जिस प्रकार ऋषियोंसे वर्णोंके गोत्र प्रचलित होते हैं इसी प्रकार भगवद्भक्तिका आचरण करनेसे अच्युत अर्थात् भगवान्का गोत्र हो जाता है, सो सब भक्त आपसमें एक भ्राता हैं. अगस्त्यसंहितामें इस प्रकार लिखा है कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास चार आश्रम हैं, इसी प्रकार भगवान्की भक्तिका आश्रम है अर्थात् भगवद्भक्त सब एक जाती हैं. भागवतमें लिखा है कि जो ब्राह्मण अपने कर्मोंसे समाधान हैं परन्तु भक्ति नहीं है, उससे जो कोईभी नीचजातिका

मनुष्य भगवद्भक्त होगा वही उत्तम है, और एक प्रमाण यह है कि भगवान्ने युधिष्ठिरका यज्ञ समाप्त होनेके पीछे वाल्मीकजी जो कि नीचजातिके मनुष्य थे परन्तु भगवान्की भक्तिके होनेके कारण सब वर्णोंमें विशेष आदरके पात्र हुए, और युधिष्ठिरजीकी निज रसोईमें बैठकर द्रौपदीके हाथसे भोजन खाया. निदान इसी प्रकारके बहुतसे प्रमाण हैं, सो यह रीति रामानंदजीकी चलाई हुई उन जातोंमें नहीं है जो कि गृहस्थी हैं, परन्तु जो जातिगृहस्थीको तजकर किसी संप्रदायमें भगवान्की शरण हुए हैं. अर्थात् विरक्त हो गये, उनमें अबतक यह प्रचलित है. जिस स्थानपर गंगासंगम हुआ है और कपिलदेवजीका जहां स्थान है वह जगह किसी कारणसे बहुत कालसे लुप्त हो गई थी; रामानंदजीने उसे प्रगट किया जो आजतक समस्त छोटे बडोंकी पूजाका स्थान है और वहांके पुजारी बैरागी और संन्यासी हैं. किसी २ ने ऐसा कहा है कि शंकरस्वामीने वह स्थान प्रगट करा था रामानुजस्वामीसे भक्तमालके प्रचार करनेवाले गोविन्ददासका और गलतारामगढकी दो गद्दियोंका पुरुषवृक्ष लिखा जाता है.

अथ आचार्यपरंपरा लिख्यते.

१ रामानुजस्वामी, २ गोविंदस्वामी, ३ भट्टार्कस्वामी, ४ वेदांतीस्वामी, ५ कलिवैरस्वामी, ६ वृद्धकृष्णदेशिकस्वामी, ७ उत्तरवीथीकृष्णदेशिकस्वामी, ८ लोकाचार्यस्वामी, ९ श्रीकुरुकुलोत्तमस्वामी, १० श्रीशैलेशस्वामी, ११ वरवरमुनिस्वामी, १२ तोताद्रिस्वामी, १३ वरददेशिकस्वामी, १४ वृद्धरंगस्वामी, १५ त्रिवडाचार्यस्वामी, १६ रामानुजाचार्यस्वामी, १७ वृद्धवेंकटस्वामी, १८ श्रीनिवासस्वामी, १९ कनिष्ठरंगस्वामी, २० कनिष्ठवेंकटस्वामी, २१ वृद्धदेवनायकस्वामी, २२ मध्यवेंकटस्वामी, २३ कनिष्ठदेवनायकस्वामी,

२४ कूरेशस्वामी, २५ श्रीवत्सचिह्नस्वामी, २६ कुरुकेशस्वामी, २७ श्रीरंगस्वामी, २८ शठकोपरामानुजस्वामी, २९ विष्णुचित्तस्वामी, ३० बद्रिनारायणतोताद्रिरामानुजस्वामी.

हरिप्रसाद संवत् १९१२ में जैपुरके निकट गलताजीमें विद्यमान थे. नारायणदास भक्तमालके निर्माता और गोविंददास प्रचारक हैं.

कृष्णदासकी कथा ६.

श्रीमान् कृष्णदासजी पयाहारी जिनका नाम इस पुरुषवृक्षमें है ऐसे भक्त और भगवान्की भक्तिके प्रचार करनेवाले हुए. जिनकी कृपा

और विश्वासकी दृढताने सैकडों पापियोंको इस कठिन संसारसमुद्रसे पार कर दिया है. उन्होंने जिसके शिरपर हाथ धरा वह धरा वह दोनों लोकोंसे छूटकर निश्चिन्ततासे धनाढ्य हो गया. फिर कभी किसीके सामने हाथ न फैलाया, फिर वह मुक्तिको प्राप्त हो गया. भगवान्‌की भक्तिके प्रतापसे कलियुगमें महानेश्वर और ऋषीश्वरोंको अधिकार कृष्णदासजीको प्राप्त हुआ और जिनके चरणोंकी कृपासे देश २ के राजा और राणा सब कोई मनवांछित पदार्थको प्राप्त हुए. दाहमा ब्राह्मण जो अबतक विख्यात हैं उन्हींके वंशमें सूर्यकी समान तेजस्वी हुए. और भगवान्‌के भक्तोंके मनको कमलकी समान प्रफुल्लित किया और अज्ञानरूपी महान् अंधकारका नाश किया. केला, अग्रदास, केवलराम, हरिनारायण, पद्मनाभ, गदाधर, देवादास और कल्याण आदि सैकडों शिष्य ऐसे सिद्ध हुए कि प्रत्येकने लक्षोंका उद्धार किया. यही महाराज अनंतानंदजी चेले रामानंदजीके थे. आमेरके निकट गलतामें जो उनका स्थापित किया हुआ गुरुद्वारा आजतक प्रचलित है, और पिडोरीका गुरुद्वारा पंजाबमें है. और उस गादीके सेवक वहभी कृष्णदासके चेलोंका बनाया हुआ है. प्रथम गलताजीमें जोगी रहा करते थे, वहां भ्रमण करते २ कृष्णदासजीभी आये, तब जोगियोंके आधिष्ठाताने स्थानपर नहीं ठहरने दिया, तब कृष्णदासजी महाराज वहांसे दूर जा बैठे और धूनीकी अग्नि जल रही थी वहभी उसके मिथ्या बकनेके कारण कपडेमें उठाकर ले गये, तो जोगी यह वृत्तान्त जानकर बडाई और सिद्धिता दिखानेके लिये सिंहका स्वरूप धारण करके कृष्णदासजीको डरानेके लिये आया; तब कृष्णदासजीने इसको शिक्षा देना उचित समझा, कहने लगे कि यह पुरुष निर्बुद्धि कैसा गधा है जो विना कारणके दुःख दे रहा है. यह वचन सुन जोगी तत्कालही गधा हो गया, और जो उनके सेवक

थे. उनके कानोंमें जो मुंदरे थे जो कि उनके जोग और भेषमें मुद्राही बडी उत्तम वस्तु है, निकालकर कृष्णदासजीके पास आ गये. राजा अमेरका पृथ्वीराज उस जोगीका चेला था वहभी दर्शनके लिये आया तो उसको न देखा; और जोगियोंके कानोंमें मुद्राको न देखकर इसका वृत्तान्त पूछने लगा; फिर विचारसे निश्चय कर कृष्णदासजीके चरणोंमें जा पडा, तब सब जोगी आनकर हाथ जोड खडे हो गये और दंडवत् कर क्षमाकी प्रार्थना करने लगे, जो कि भगवान्के भक्त प्रत्यक्षही दयावान् होते हैं इसी कारण कृष्णदासजीने उनका अपराध क्षमा कर दिया, और फिर उनको सबमें प्रथम गिननेके योग्य मनुष्य बनाकर आज्ञा करी कि इस स्थानपर भगवान्के भक्त रहा करेंगे तुम अपने रहनेका कुछ और उपाय विचारो और जहां तुम भगवान्की सेवा करते हो सो जोगियोंने वह जगह तो छोड दी परन्तु वैष्णवोंका गुरुद्वारा स्थापित किया है सो आजतक प्रतिष्ठित है और जोगी वहांपर निवास कर भगवान्की सेवा करते हैं. यह वृत्तान्त और महिमा कृष्णदासजीकी जो राजा पृथ्वीराजने देखी तो उसका शिष्य हो गया, और कृष्णदासकी भक्तिकी उसपर ऐसी कृपा हुई कि साक्षात् उसे भगवान्के दर्शन हुए. इसका विस्तारसहित वर्णन गुरुनिष्ठामें लिखा जायगा. कुल्लदेश जो पर्वतोंके मध्यमें है वहांही कृष्णदासजीका जन्म हुआ. किसी एक निर्धन मनुष्यके लडकेने उनकी सेवा करी और वह बालक गौका दुग्ध लाया; कृष्णदासजीको उसका यह चरित्र अतिप्रिय लगा, उसपर दया कर प्रसन्न हो बोले कि हे बालक! तू ऊंचेपर चढकर चारों तरफको देख; जितनी दूरतक तेरी दृष्टि जायगी उतनीही दूरतक तेरा राज्य होगा; सो वहां दुर्गा महारानीका एक अत्यन्त ऊंचा मंदिर था सो उसपर उस लडकेको चढाया; जहांतक उस बालककी दृष्टि पहुँची वहांतकका उसका

राज्य हो गया. फिर इसके उपरान्त कृष्णदासजीने उसपर दया कर उसे अपना चेला बना लिया, और भगवान्का भक्त उसको ऐसा बनाया कि थोडेही दिनोंमें वह समस्त भक्तोंमें प्रथम गिना जाने लगा. सूक्ष्म रीतिसे इसका वर्णन यह है कि एक समय भगवान्के भोगके लिये जलेबी आई थी, सो उनमेंसे एक जलेबी पृथ्वीपर गिर पडी तो उसके पुत्र बालकने उठाकर अपनी जिह्वासे लगाई, उसका यह चरित्र देखकर राजाको अत्यन्तही क्रोध आया और उसने विचारा कि इस अभाग्य निर्बुद्धिकी भगवान्में किंचित्भी प्रीति नहीं है कि भगवान्को विनाही भोग लगे जलेबी खा गया, इस कारण मारने योग्य है, यह विचार कर खड्ग लेकर मारनेको उपस्थित हुए. जो साधु महात्मा वहां उपस्थित थे उन्होंने उसे अपना लडका बताकर उसको बचा लिया और फिर राजाको समझा बुझाकर उसके हाथ बेच दिया और राजाके मरण पश्चात् वही लडका राजा हुआ और भगवान्की भक्तिमें उसकी इतनी प्रीति हुई कि समस्त राज्यमें उसकी भक्तिका प्रचार हो गया, और आजतक उसकी संतान श्रीकृष्णदासजीके दिये हुए राज्यपर सुशोभित है. एक समय कृष्ण दासजीने भंडारा किया उस समय साधुकी स्त्री जो गर्भवती थी उसको इन्होंने दो पान दिये और कहा कि तेरी कोखमें तेरा इष्ट देव अर्थात् भगवान्का भक्त जन्म लेगा. इस कारण इसकी अभीसे सेवा करनी उचित है. कोई मनुष्य साधुका भेष कर जूते बेचा करता था एक समय कृष्णदासजीके पास आया तो कृष्णदासजीने उसको भगवान्की भक्तिका उपदेश किया और कहा कि तुम्हारे भेषसे जूते बेचना अनुचित है, और फिर उसको भगवान्की शरणमें किया. यह साधु भगवान्के भजन और स्मरणमें तो रहता था परन्तु बहुधा उसे उद्यमके और धन इत्यादिकके पानेकी इच्छा रहती थी कृष्ण-

दासजीने अपनी निर्मल बुद्धिसे उसके अंतःकरणका समस्त वृत्तान्त जाना तो उसको इतना धन दिया कि वह धनाढ्य हो गया और सम्पूर्ण दुष्कर्मोंको तजकर अंतसमयमें भगवान्की शरणमें प्राप्त हो गया.

गोविन्ददासकी कथा ७.

श्रीमान् नारायणदासजी प्रसिद्ध भक्तमालके बनानेवालेके शिष्य गोविंददासजी परम भक्त सुन्दर और दयायुक्त कृपाकी दृष्टिसे देखनेवाले मेघकी घटाकी समान मित्र शत्रुको समान जाननेवाले हुए. अत्यन्त आनंदके देनेवाले भगवान्के चरित्रोंकी खान, भक्ति और पंचरसके उपासक जो भक्त हैं उनकी कथाके समझनेमें अत्यन्तही चतुर हुए. जो भगवान्के भक्तोंको दुर्लभ अमूल्य रत्नकी समान भक्तमाल जब तैयार हुई तो प्रत्यकको अक्षय धर्मकी प्राप्ति हुई, संसार और परलोक दोनों सरलतासे प्राप्त हो गये. जितने इसके सुनने और पढनेमें चित्त लगाना है उतनीही शीघ्र उत्तम पदको प्राप्त होता है. यह भक्तमाल सबसे प्रथम गोविंददासजीको मिली अर्थात् नाभाजीने उनको पढाई तब उन्होंने सारे संसारमें उसका प्रचार करा, पढने सुननेके समय अक्षर और मात्राको शुद्धता नहीं होती थी; विश्वनाथ जो रघुनंदन स्वामी हैं, उसकी भक्तिका विश्वास और दासभावकी प्रशंसा और भक्तोंकी महिमा और उनके चमत्कारोंके चरित्र इस प्रकार वर्णन करते थे कि श्रोतागण श्रवण कर भगवान्की शरणमें हो कृतार्थ हो जाते थे. इन्होंने मनुष्योंके उद्धार करनेके निमित्त तनमनसे परिश्रम किया संसारमें आजतक दातृत्वकी नदी वहती है. यह भक्तमाल अत्यन्त भागवत धर्म है इस कारण इन महाराजकी कथा भगवान्का धर्म प्रचार करनेमें लिखी गई है.

विष्णुस्वामीकी कथा ८.

ब्राह्मणके वंशमें विष्णुस्वामीजी महाराज भगवान्के परम भक्त और भगवान्की भक्तिके प्रचार करनेवाले दक्षिणदेशमें उत्पन्न हुए. चारों संप्रदायोंमें जो संप्रदाय प्रचलित है उसीके आचार्य स्वामीजी हुये यद्यपि यह संप्रदाय प्राचीन है परन्तु स्वामीजीसे उनका नाम बहुत विख्यात है और शिवजी महाराजके नामसे प्रचलित होनेका यह कारण है कि संप्रदायके आचार्य और निजकर्ता शिवजी महाराज हैं, अर्थात् इसकी उपासनाका प्रथम उपदेश मनको आनंद देनेवाला शिवजी महाराजनेही किया था. परमानंदजी विष्णुकाञ्चीमें हुए और वरदराजजी ठाकुरद्वारेमें भगवान्का आराधन किया करते थे, उनकी भक्तिसे वरदराज महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और शिवजीको मंत्रका उपदेश करनेकी आज्ञा करी. शिवजीनेभी दर्शन देकर मंत्रका उपदेश किया और उपासना करनेकी सब रीतियें बताईं. शिवजी महाराजको बालचरित्रोंकी विशेष उत्कंठा थी, इस कारण श्रीकृष्णमहाराजके बालरूपका स्मरण कर श्रीकृष्णको शरणागति मंत्रका उपदेश किया. इस संप्रदायमें ईश्वरको शुद्ध और अद्वितीय मानते हैं अर्थात् वह ईश्वर सच्चिदानंद पूर्णब्रह्म सबसे भिन्न है, वरन उसको मायाभी चलायमान नहीं करसकती; और उसके आगे वह माया ब्रह्मांडके उत्पन्न आदिका सब काम करती है. जिस प्रकारसे चुम्बक पत्थर लोहेको हटानेके लिये आपभी नहीं हलता परन्तु लोहा जब उसके पास जाता है तो आप हलता है, और वह ईश्वर नंदनंदन वृन्दावनचंद्र गोलोकनिवासी सर्वदा सात वर्षके बालककी समान अपने सखाओंके सहित विहार करते हैं. व्रजभूमि और गोलोकमें कुछभी भेद नहीं. तिलक और संन्यासका वृत्तान्त भेषनिष्ठामें लिखा जायगा. इस संप्रदायवालोंकी जो रीति है उसके विश्वासी और कामी बहुधा

गुर्जरदेशमें रहते हैं. परन्तु वल्लभाचार्यकी रीतियोंके अनुसार इस संप्रदायका प्रचार अधिक है. यद्यपि पहले आचार्य और वल्लभाचार्यकी रीतियोंमें कुछभी भेद नहीं कि सब बालस्वरूपकेही उपासक हैं, परन्तु वल्लभाचार्यजीने अपनी अंतःकरणकी प्रीतिकी व्याकुलताके वश होकर ऐसी रीति निकाली है जो आपही आप मनको हरणकर लेती है सो उनका संक्षेपसे वृतान्त वल्लभाचार्यकी कथामें और वत्सलनिष्ठामें लिखा जायगा. और बाबालाल जिसका आलमगीरके भाई दाराशिकोहको विश्वास था, इस संप्रदाय और निष्ठामें था; यद्यपि कोई २ इन्हें माधवीसंप्रदायमें बताते, परन्तु वह निश्चयही इसी संप्रदायके शिष्य थे; उसने एक दो रीतियोंको घटा बढाकर अपनीही संप्रदायका प्रचार किया. अब विचारना चाहिये कि विष्णुस्वामी महाराजका यह संप्रदाय ऐसा पवित्र और भगवान्में चित्त लगानेवाला है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, करोडों भक्त इस उपासनाके प्रतापसे मनइच्छित पदार्थको प्राप्त हुए, इस संप्रदायके बडे प्रतिष्ठित और विख्यात गुरुद्वारे गोकुलमें आजतक हैं, जिनका वर्णन श्रीयुत वल्लभाचार्यकी कथामें होगा, और शेष गुरुद्वारे गुजरातमें हैं, परंतु गोकुल और नाथद्वारेकी तुल्य नाथद्वारा गोकुलमें स्थित अर्थात् वल्लभाचार्यके कुटुम्बका गुरुद्वारा है. नामी और प्रचलित नहीं है, परन्तु पंढरपुरका जो गुरुद्वारा है वहभी प्राचीन रीतियोंके अनुसार बना है, इस संप्रदायके माहात्मा पुरुष उसको स्थापित कर आये हैं. गुजरातमें अधिक नामी है अब शिवजीसे विष्णुस्वामीजीतकका पुरुषवृक्ष लिखा जायगा; और आगेका वल्लभाचार्यकी कथामें लिखा जायगा. यह पुरुषवृक्ष जो नीचे लिखते हैं सो गुरुचेलेकी रीतिसे लिखा गया है.

१६ कृष्णभट्ट	१७ दिवाकरभट्ट	५० लक्ष्मीभट्ट
१५ सेतुभट्ट	१८ कृपालभट्ट	४९ विष्णुस्वामी
१४ रामभट्ट	१९ विद्याधरभट्ट	४८ नामदेवतिलोचनदेव
१३ श्यामभट्ट	२० दिनकरभट्ट	४७ ज्ञानदेव
१२ श्रीधरभट्ट	२१ बुद्धिनिधानभट्ट	४६ लक्ष्मीनारायणाचार्य
११ गोपालभट्ट	२२ विद्यानिधानभट्ट	४५ सुदयाचार्य
१० परमभट्ट	२३ ज्ञानभट्ट	४४ ब्रह्मपदचर्याचार्य
९ शंकरभट्ट	२४ सुखदेवभट्ट	४३ रामाश्वराचार्य
८ श्रीमुनी	२५ शिवदेवभट्ट	४२ भगवताचार्य
७ जयमुनि	२६ प्रश्नतदेवभट्ट	४१ रुद्राचार्य
६ नारायणमुनि	२७ दयालदेव	४० असूर्याचार्य
५ श्रीकृष्णमुनि	२८ क्षमादेव	३९ प्रबोधाचार्य
४ प्रकाशमुनि	२९ संतोषदेव	३८ प्रबुद्धाचार्य
३ आनंदमुनि	३० धीरजदेव	३७ सुबुद्धाचार्य
२ परमानंदमुनि	३१ ध्यानदेव	३६ सुवाचार्य
१ शिवजा	३२ बीजानदेव	३५ नृसिंहाचार्य
	३३ महाचार्य	३४ निताचार्य

वल्लभाचार्यकी कथा ९.

श्रीमान् वल्लभाचार्य्यजी भगवान्‌की भक्तिके प्रेमी और संप्रदायके आचार्य संसारसमुद्रमें डूबनेवालोंको नौकाकी समान हुए. विष्णु स्वामीजीकी संप्रदायमें यद्यपि आचार्य और भक्त बहुतसे हुए और वह अपने स्थानको त्यागकर गोलोकसे फिर वृन्दावनमें आये और भगवान्‌का स्मरण करने लगे, तब भगवान्‌की यह इच्छा हुई कि वात्सल्यनिष्ठाका प्रचार इस संसारमें भली प्रकारसे हो तो महापापियोंका उद्धार होगा; इस कारण फिर वृन्दावनसे गोकुलमें आये और भगवान्‌ने इसके प्रचार होनेकी आज्ञा स्वप्नमें करी. प्रथम तो भगवान्‌की मूर्तिको स्थापित कर मनुष्योंको उपदेश दिया, और फिर भगवान्‌की सेवाका एक ऐसा मार्ग चलाया कि आपही आप मन मोहित हो जाय. जो कि वात्सल्यनिष्ठामें भगवान्‌के बालस्वरूपके शृंगारकी वस्तुभोगकी तैयारीके समय २ की न्यारी २ भांतिसे अवश्य उचित थी; इसी कारण भगवान्‌ने उसपर हठ करा; और हठ करनेका कारण यह है कि जो कोई जिस रीतिसे भगवान्‌की पूजा करता है वह भगवान् अपने भक्तको उसी रीतिसे अपनी परम पदवीको पहुँचाते हैं; इसलिये भगवान्‌ने विचारा कि बाबानंदजीकी जगह तो वल्लभाचार्य हैं; परन्तु यशोदा महारानीकी जगह माता किसको कहूंगा, इसी कारण हठ करा, और एक ब्राह्मणके मनको प्रेरण कर उसकी कन्या भेंट करा दी; फिर तो इस वात्सल्यभावका प्रचार और आराधन इस प्रकार फैला कि मानो भगवान्‌ने फिर अवतार धारण किया है. इसके उपरान्त कुछ दिनोंमें विट्ठलनाथ प्रगट हुए उनका वर्णन वात्सल्यनिष्ठामें होगा. उनके सात पुत्र हुए; एक २ के नामसे ७ गद्दी गोकुलमें आजतक प्रतिष्ठित हैं, किसी गद्दीमें सात वार किसीमें पांच वार पूजा होती है. यद्यपि राधिका महारानीको भगवान्‌की परम प्यारी जानकर उनका पूजन करते हैं; परन्तु फिरभी पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंद श्रीकृष्ण महाराजको मानते हैं. इस संप्रदायके अलौकिक भाव-

की कुछभी महिमा नहीं हो सकती; जो नंदबावा और यशोदा महरानीके लाड लडाये होंगे; उतनीही गोकुलके गुसांइयोंको अभिलाषा है. आंगनसे घरको बहुत ऊंचा नहीं करते इस कारण कि लडका घुटनोंसे चलते समय कहीं गिर न जाय; भगवान्‌के शयन करनेके समय जोरसे नहीं बोलते कारण कि अत्यन्त सुकुमार बालक कहीं कच्ची नींदमें न जाग पडे, इसी प्रकार हजारों अलौकिक चरित्र हैं और अपनी निष्ठामें इतने दृढ और विश्वासी हैं कि जिस समय भगवान् शयन करते हैं या किसी काममें होते हैं, कोई त्रिलोकीका धन चढानेवालाभी आवे तोभी नहीं खोलते. एक समय जैपुरके राजाने उनकी परीक्षाभी ली, थी और आजतक वही प्रथा प्रचलित है. किसी गद्दीमें पचास हजारकी किसी गद्दीमें चालीस हजार वार्षिकायकी प्राप्ति है; वह जो प्राप्ति है सो सब भगवान्‌की पूजाकी तैयारी और शृंगारादिकमें व्यय कर देते हैं. जिस प्रकारका श्रेष्ठ भाव इन गोकुलमें स्थित गुसाइयोंका देखा और श्रवण करा सो लिखनेमें असमर्थ हैं; और इनके चेलोंकी भक्ति जितनी गुरुमें करते हैं वहभी वर्णन नहीं हो सकती; निःसन्देह अन्य किसी संप्रदायमें इतना विश्वास और भक्ति गुरुओंमें नहीं देखी गुजरात और मारवाडमें इस संप्रदायके सेवक बहुत हैं; वल्लभाचार्यके कुलमें बहुधा पूर्ण भक्त और सिद्ध हुए हैं, जो उनकी कृपासे भगवान्‌की शरणमें हुए उनकी गिनती तो किससे हो सकती है ? अब वल्लभाचार्य स्वामीका भाव विचारनेके योग्य है कि जिन्होंने अपने भावके अनुसार अपना नामभी प्रगट किया, अर्थात् वल्लभ गोप उस जातिका नाम था जिसमें नंदबाबा थे, सो इन्होंने अपने कुलको वल्लभ विख्यात किया, अर्थात् एक समय गोकुलसे एक साधु ब्रजमें आया और जिस बटुयेमें शालिग्राम थे उसको वृक्षकी डालीमें लटकाकर वल्लभाचार्यके पास मिलनेको गया; और जब फिर मिलकर आया तो वहां उसमें बटुयेको न पाया, फिर उसने आकर वल्लभाचार्यसे कहा तब उन्होंने इससे कहा कि तुम कैसे सेवक हो जो स्वामीको छोडकर जगह २ धरते फिरते हो. यह वचन सुन साधुने हाथ जोड

दंडवत् कर क्षमा प्रार्थना करी; और कहा कि अब जाकर देख, फिर उसमें जाकर देखा तो एकही भांतिके हजारों बटुये उस वृक्षमें लटक रहे थे. यह देख आश्चर्य मान फिर आचार्यजीके पास आया; और जो वृत्तान्त देखा था सब कह सुनाया. आचार्यजीने उससे पूछा कि तुम अपने स्वामीको क्यों नहीं पहिंचानते. यह वार्ता सुनकर साधु चुप होकर और उनका तात्पर्य समझकर उनके चरणोंमें गिर पडा और अपना शालिग्रामजीका बटुआ लेकर फिर भगवान्‌की पूजामें मन लगाता हुआ. विचार लो कि भगवान्‌के उपासकको भगवान्‌में ऐसी निष्ठा होनी चाहिये जैसी कि मूर्खको अपनी देहमें होती है. ऐसा नहीं कि स्वामी तो वृक्षके डुग्गेपर लटक रहे हैं और आप सैर करते फिरते हैं. अब वल्लभाचार्यजीके कुलका पुरुषवृक्ष जन्म पीढियोंकी रितिसे लिखा जाता है. इन सातों गद्दियोंमेंसे कई एक गद्दी तो पुरुष संतानके न होनेसे धेओतोंके पास है और तीन चार गद्दियोंका मालिक विठ्ठलनाथजीकी संतान है; उनमेंसे एक गद्दीका पुरुषवृक्ष लिखना उचित समझकर लिखा जाता है.
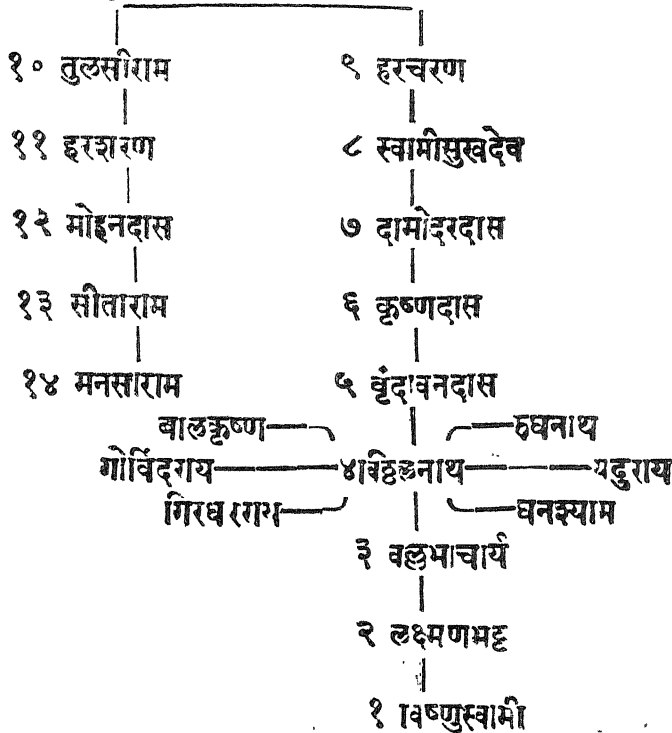
माधवाचार्यकी कथा १०.

ब्रह्मसंप्रदायमें परम भक्त आचार्य, इस संप्रदायके प्रचारक माधवाचार्य स्वामी हुए इस कारण माधवीसंप्रदायके नामसे प्रचलित है जो रीति ब्रह्माजीसे ब्रह्मसंप्रदायकी वर्णन करी थी, सो ब्रह्माजीमें परंपरासे चले आये पुरुषवृक्षकी लिखी हुई रीतिके अनुसारसे भक्तोंको उपदेश किया और इसका प्रचार किया. कोई २ इसे गौडया और महाप्रभु संप्रदाय कहते हैं तो इसका कारण यह है कि महाप्रभु नित्यानंद श्रीकृष्णचैतन्य गौडदेशके वासी इसी संप्रदायमें आचार्य और नामी भक्त हुए. भगवान्‌का अवतार गौड बंगाले देशकी शिक्षाके निमित्त इसी कारणसे हुआ; इस कारण महाप्रभु गौडिया नामसे प्रचारित हुए. और ब्रह्मवंशमें उडपी कृष्णागांवमें जो कांचीपुरीसे पश्चिम दक्षिणके कोनेमें है वहांपर माधवाचार्यजी हुए. इन्होंने ब्रह्मसूत्र और गीतापर भाष्य रचा, इसमें उपासनावालोंका ऐसा विश्वास है कि ईश्वर तटस्थ हैं, उसकीही प्रेरणासे माया संसारको उत्पन्न करती है. यद्यपि इस निष्ठामें प्राचीन रीतिसे विष्णुजीका ध्यान और पूजा करनेकी पाई जाती है, परन्तु वर्ण माधवाचार्यजीके आगेसभी श्रीकृष्ण अवतारकी उपासना इस संप्रदायमें चली आती है और पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंद श्रीकृष्णजी गोलोकनिवासीको मानते हैं; और माधवनिष्ठासे कि उसका वर्णन उन्नीसवीं निष्ठामें होगा यद्यपि माधुर्यनिष्ठामें अवश्यही जुगलस्वरूपका ध्यान और चिंतवन है और जुगलस्वरूपकीही पूजा और सेवा इस संप्रदायमें प्रचारित है, यद्यपि श्रीराधिकाजीमें परकीया भाव रखते हैं परन्तु श्रीकृष्णमें ईश्वरता और एकत्वताका भाव रखते हैं कि उसके भाष्य और ग्रंथोंसे यह बात प्रत्यक्ष है. इस संप्रदायमें लाखों नामी और सिद्ध हुए और भक्तभी हुए और होते हैं. आवागमनका दुःख निवारण करनेके लिये भगवान्‌ने एक ऐसा उपाय किया है कि विनाही परिश्रमके सैकडों पापी इस संप्रदायके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त होते हैं. यद्यपि दक्षिणमें

इस उपासनाका प्रचार बहुत है और गुरुद्वारेभी वहांपर हैं किन्तु आजकल व्रज और वृन्दावनमें कितने गुरुद्वारे नामी मदनमोहन गोविन्ददेव श्रृंगार आदिके हैं भगवान्‌के दर्शनोंकी सबको इच्छा होती है; माधवाचार्यकी रीतिके लिखनेके अनुसार कुछभी चलनेसे करोडों पापा भगवान्‌के भक्त होकर अपने मनइच्छित पदार्थको प्राप्त हुए. अब एक दो गुरुद्वारेका पुरुषवृक्ष गुरुचेलेकी रीतिके अनुसार लिखा जाता है. इस संप्रदायमें सैकडों और हजारों गुरुद्वारे हैं; उनका पुरुषवृक्ष मिलना और लिखना तो अत्यन्तही काठिन है.

१५ अद्वैतप्रभु	१४ बेनीमाधवपुरी	१५ नित्यानंदश्रीकृष्णचैतन्यप्रभु	
१६ मिश्रबलराम	१३ ईश्वरपुरी	१६ रूपसनातन	
१७ रघुनंदन	१२ जयधर्ममुनि	१७ कृष्णब्रह्मचारी	
१८ मधुरामिश्र	११ राजेन्द्रमणी	१८ नारायणभट्ट	
१९ मधुसूदनदास	१० महानंदतीर्थ	१९ महाभट्ट	१९ बलभद्र
२० कृष्णदास	९ विद्यामुनी	२० मोहनसदा	२० रामायण
२१ लक्ष्मीराम	८ जाह्नवीतीर्थ	२१ गरीबदास	२१ नंदकिशोर
२२ प्रेमदास	७ माधवाचार्य	२२ टीकमदास	२२ हरिकिशोर
२३ जयकृष्णदास	६ महराचार्य	२३ रामकृष्णदास	२३ मानकिशोर
२४ योधानंद	५ सुबुद्धाचार्य	२४ क्षेमदास	२४ रामकिशोर
२५ नियमानंद	४ वेदव्यास	२५ केशवदास	२५ नृसिंहकिशोर
२६ पूर्णानंद	३ नारद	२६ चैतन्यदास	२६ मंगलकिशोर
श्रृंगारवटमें गुरुद्वारा	२ ब्रह्माजी	गुरुद्वारा मारवाडमें.	गुरुद्वारा करौलीमें
संवत् १९१३ में था	१ श्रीनारायण		संवत् १९१३.

नित्यानंदजीकी कथा ११,

श्रीमान् नित्यानंदजी महाराज भगवान्के भक्त और धर्मके प्रचार करनेवाले हुए कि जिनकी महिमा और कीर्ति संसारमें आजतक प्रचलित है. जिन्होंने गौडदेश बंगालेमें अपनी महिमाके प्रतापसे अधर्म और पापका नाश कर दिया और सैकडों पापी और हत्यारोंको भगवान्की शरणमें कर दिया. वे अजामेलसेभी अधिक पापी थे. जिस प्रकार बलदेवजी महाराज अपने हलमें प्रसन्न थे इसी प्रकार यह महाराजभी बलदेवजीका अवतार हुए; वह भगवान्के मोहनरूप और प्रेमके आनंदमें मग्न थे और उसीमें उन्मत्त रहते थे. जिसके प्रभावको देख और अवज्ञा करतेही बहुतसे मनुष्य परमानंदके रसमें मग्न हुए और इनका जन्म नादिया शांतीपुर बंगाल देशमें हुआ था, और चैतन्य महाप्रभुके श्रीकृष्ण ज्येष्ठ भ्राता थे. जब उन्होंने विचारा कि गौडदेशके मनुष्य भगवान्की भक्तिसे विमुख हैं तो उनपर दया आई. और कितनी समयतक महाकठिन तप करके भगवान्को प्रसन्न किया, भगवान्ने उनकी इच्छाके अनुसार वर दिया और उसके उपरान्त महाराजने गुरुमहंतका रूप होकर भक्तिका प्रचार किया, सो आजतक इस देशमें भक्तिका प्रचार है और बहुतहा भगवान्के भक्त हैं और अपने घरको छोडकर श्रीवृन्दावनमें वास करते हैं. उन्हींका प्रेमभाव और भक्ति वृन्दावन और श्रीवृन्दावनचंद्रमें देखी जो कि वृन्दावनमें रहते हैं सो लिखने और वर्णनमें नहीं आ सकती. उनकी यही रीति है वह नित्यप्रति भगवान्के गुणानुवाद गान करते रहते हैं.

श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुकी कथा १२.

नित्यानंदजीके छोटे भाई श्रीचैतन्यजी श्रीकृष्ण महाराजके अंश अवतार हुए भगवान्की यही आज्ञा और वृत्ति है कि जब

धर्म घट जाता है, तब अधर्मके नाश करने और वेदकी मर्यादाके स्थापन करनेको अवतार लेते हैं, यह बात गीतामें लिखी है, गौड़देश बंगालेमें भगवान्‌की भक्तिका प्रचार न्यून होकर अधर्म प्रचार हो रहा था. इस कारण भगवान्‌ने वेदमर्यादाको स्थापित कर जिस प्रकार ब्रजमें अवतार लिया था इसी प्रकार बंगाले देशमें शचीजीके उदरमें अवतार लिया, जो किसीको यह संदेह हो कि भगवान्‌का श्यामवर्ण शास्त्रोंमें लिखा है, यह महाराज गौर वर्ण कैसे हुए सो जानना उचित है सो जब यह गोपियोंके साथ विहार करते थे तो श्रीराधिकाजी अपने प्रीतमको ताना दिया करती थी कि तुम काले हो और हम गोरी हैं इस कारण मेरे रूपकी कांति तुम्हारे रूपकी कांतिको लजाती है; इसी कारण शचीके घर श्रीकृष्णचैतन्य महाराजने गौर वर्ण धारण किया. जिस प्रकार महाराज श्रीकृष्णजीने प्रेमका प्रवाह चलाया था, इसी प्रकार श्रीकृष्णचैतन्य महाराजने उस परमानंदके प्रेम और रसको जुगलस्वरूपकी इच्छासे पहलेके अनुसार मग्न होकर अपने सेवकोंके चित्तमें प्रगट किया; यह महाराज बालकपनसेही भगवान्‌के रूपका ध्यान कर उनकी भक्तिमें रहते थे जब इनकी आयु सात वर्षकी हुई तब काश्मीरी केशवभट्ट समस्त पृथ्वीके ब्राह्मणोंसे शास्त्रार्थ करते हुए इनके स्थानपर गये; औरभी बहुतसे पंडित उनके साथ थे. श्रीकृष्णचैतन्यजीने एक निमिषमेंही उनका घमंड दूर कर दिया और इतनी कृपा करी कि वह तत्काल भगवान्‌के भक्त हो गये. यह कथा विस्तारपूर्वक लिखी हुई निष्ठामें प्रत्यक्ष होगी.

एक समय महाराज जगन्नाथराय स्वामीके समीप इस कथाको कह रहे थे. सो भगवान्‌के चरित्रोंको कहते २ उनके प्रेममें इतने मग्न हुए कि तद्रूपतामें जा पहुँचे; और जो लोग वहां उपस्थित थे

उनको चतुर्भुज रूपसे दर्शन दिया तो उन लोगोंने अपने मनमें विचारा कि जब पुरुषोत्तमपुरीमें समस्त जीवमात्र चतुर्भुजहैं. और श्रीकृष्णचैतन्यजीभी चतुर्भुजरूप दिखाई दिये तो कितनी प्रशंसा और आश्चर्यकी बात है, महाराजको यह समाचार विदित हुआ, और विचारा कि इनमेंसे अधिक हमारे सेवक हैं, जो इनके मन भली प्रकारसे पूरा विश्वास न होगा तो इनको मेरी भक्ति प्राप्त न होगी इस कारण छः भुजा धारण कर दर्शन दिया और सबके मनमें निश्चय कर दिया सो आजतक षट्भुजी मूर्त्ति उनका पुरुषोत्तम-पुरीमें विराजमान है और उनके दर्शन होते हैं और महाप्रभुजीको उनका कनिष्ठ भ्राता बताते हैं वेभी इस संप्रदायके आचार्य और परम भक्त हुए हैं.

रूपसनातनकी कथा १२.

भगवान्‌को परम भक्त और सनातन धर्मका प्रचार करनेवाले रूप और सनातनजी दो भ्राता हुए और इन्होंने इस जगत्‌का ऐसा उपकार किया कि संसारके समुद्रसे पार होना बहुत सरल हो गया. यह दोनों गौडदेश बंगालेमें रहनेवाले बादशाहीमें सबसे अधिक अधिकारी थे और बहुत द्रव्य रखते थे. एक रात्रिको कोट पारका लेखा गिनती करते २ दिन निकल आया उसको देखकर बहुत दुःख माना और सोच करते हुए कहने लगे कि सारी रात्रि निकम्मे काममें वृथा गई. यदि जो भगवान्‌की समाजमें बैठते तो जरा २ देरमें यह समाचार मँगाते कि कितनी रात्रि गई परन्तु आज कुछभी सोच न हुआ, यह आयु भगवान्‌के भजन विना वृथाही गई और चली जा रही. क्षणमें संसारी उसी पदार्थको धूलका समान त्यागनकर नित्यानंदक श्रीकृष्णचैतन्य और महाप्रभुजी अपने गुरुके पास आ-

कर शिक्षा मांगने लगे. उनकी प्रार्थनाको श्रवण कर उन्होंने कहा कि तुम ब्रजभूमिमें जाओ; और वहांके वन जो बहुत समयसे छिपे पडे हैं उन श्रीकृष्णके विहारस्थानोंको प्रगट करो, और उनके चरित्र जो ग्रंथोंमें लिख रहे हैं उनको प्रचारित करो, तब उनका यह वचन सुन दोनों जने उनकी आज्ञानुसार वहांसे चले. और जब यह व्रजभूमिमें पहुँचे तौ वहां सुगंधित पवनके व मनोहर हरियालीसे माधुरीरूपमें मग्न हो गये. और प्रिया प्रीतमके प्रेमकी सुगंध ऐसी फैली कि दुःख सुख भले बुरे सबको भूलकर परम आनंदमें मग्न हो गये. और जब किंचित्भी सुधि आई तौ खेतवालोंसे पूछने लगे कि व्रज कहां है; यह वार्ता सुन एक मनुष्यने कहा कि तेरा उत्पन्न करनेवाला अंधा हो गया है. यह व्रज नहीं है तौ और है क्या, गुसांईजी महाराज इस गालीको श्रवण कर इतने प्रसन्न हुए कि जिस प्रकार कोई ब्रह्मके शुभ उपदेशसे प्रसन्न होता है. फिर प्रथम तौ मथुराजीमें गये और फिर वृन्दावन पहुँचे; वहां जाकर देखा कि यमुनाजी बह रही हैं इनके विस्तारसे सूर्यका उदय अस्तभी नहीं जाना जाता. ढूंढते २ दो चार घर मिले तौ जाना गया कि इस वस्तीके रहनेवाले वृन्दावनदेवीजीकी पूजा करनेको गये हैं. तौ वहांसे वृन्दावनदेवीजीको ढूंढनेको चले तौ क्या देखते हैं, कि वे लोग एक स्थानपर दूध दही चढाते हुए चले जा रहे हैं सो उसी जगह ठहर गये और रात्रिको वृन्दावनदेवीने उनको दर्शन दिया. और आज्ञा दी कि हमारी मूर्ति इसी स्थानपर है तुम हमें निकालकर स्थापित करो; सो गुसांईजीने उनकी आज्ञाके अनुसार वैसाही किया आजतक वृन्दादेवी विद्यमान हैं; और जिस किसीके घर गौ व्याती है उसका दुग्ध प्रथम श्रीदुर्गाजीको चढता है; फिर श्रीगोविंदजीने गुसांईजीको स्वप्नमें वह आज्ञा करी कि उचितस्थानपर हमारा स्वरूप है; और

एक गौ वहां अपना दूध चढाती है सो तुम वहां हमें प्रगट करो गुसांईजीने यह वचन सुन उनकी मूर्तिको निकालकर वहां स्थापित किया. और उनके भतीजे जीव जो गृहस्थीको त्यागन कर गुसांईजीका भेष लेकर आये थे उनसे कहा कि तुम इनकी पूजा करे करना और यहांके राजा जो बडे हैं वह पूजाकी सामग्री देते रहेंगे. एक समय आमेरका राजा मानसिंह गुसांईजीके दर्शनको आया और जानेके समय विनती कर हाथ जोड कहने लगा कि हे स्वामिन् ! मुझे किसी वस्तुकी आज्ञा दो, महाराजने कहा कि हमें कुछभी इच्छा नहीं है यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम गोविंदजीका मंदिर बना दो राजाने यह उनका वचन स्वीकार किया. इन्हीं दिनोंमें आगरेमेंभी अकबरका कोट बना था. और वहांसे लाल पत्थर लेकर गोविंदजीका मंदिर बनवाया; उसकी तैयारीमें तेरह लाख रुपया खर्च हुआ सो आजतक वह मंदिर श्रीवृन्दावनमें बडा नामी है, उसकी बराबर दूसरा नहीं. परन्तु मोहम्मदशाह बादशाहके राज्यमें जैसिंह राजाने वाराहपुराणमें यह कथा सुनी थी कि जो कोई गोविंददेवका दर्शन करता है, उसको फिर इस संसारमें आवागमन नहीं होता. इस कारण यह गोविंदजीके स्वरूपको अत्यन्त अभिलाषासे जैपुरको ले गया और वहां विराजमान हैं और श्रीवृन्दावनमें दूसरी मूर्ति स्थापन हुई. गुसांई रूपजीको जानेके समय उनके गुरुने आज्ञा दी थी कि रसप्रकाश ग्रंथ रचना; परन्तु गोसांईजीसे यह काम इस कारण न हो सका कि कलम दवात कागज इत्यादिका संग्रह करना पडेगा और वैराग्यके त्यागनमें विघ्न पडेगा. शिवजीमहाराजने गुसांई भक्तराजजीको स्वप्नमें कहा कि गुरुदेवकी आज्ञाको मानो, गुरुकी आज्ञाको उल्लंघन करना धर्मके विरुद्ध है. गुसांईजीने उनकी आज्ञासे ग्रंथ रससिद्धांत, उज्ज्वल नीलमन, भक्तरसअमृत, भागवतामृत

आदि सब पांच लाख श्लोकोंमें बनाकर विख्यात किये और वही ग्रंथ भक्तोंको प्रेमके रससे पूर्ण करते हैं. एक स्थानपर श्रीलाडली. जीकी चोटीको नागनीकी समान लिखा है; गुसांई सनातनजीको यह विचार उत्पन्न हुआ कि गुसाई रूपकी कविता बहुतही उत्तम है- परन्तु प्रिया प्रीतमका भाव अच्छी तरह नहीं समझ सके. कहां तो लाडलीजी अत्यन्त सुकुमार जिनकी कोमलताके आगे कल्पवृक्षका पुष्पभी कठोर ज्ञात हो; और जिनकी शोभापर शोभाभी लज्जित हो जाती है और कहां यह दुःखदाई उपमा सर्पकी जो सुकुमारी सर्पको देखेभी तो भय करे, यही सोच गुसांई सनातनजीको सर्वदा रहा करता. एक समय भ्रमण करते थे कि एक वृक्षके नीचे अत्यन्त सुन्दर लडका और व्रजकी बहुतसी लडकियोंको देखा कि झूला डालकर झूला रही थीं. और आपसमें किलोलें कर रही थीं यद्यपि इनमें सभी लडकी सुन्दर हैं परन्तु एक लडकी इस सबोंमेंसे इतनी सुन्दर और कोमल है कि ऐसी सुन्दर बालिका अपनी अवस्थामें कभी नहीं देखी थी. वह कुमारी एक महीन चुंदरी ओढ रही थी और उसमें उसकी चोटी नागिनीकी समान लहलहाती हुई ऐसी दृष्टि आती थी कि उसमें और नागिनीमें कुछभी भेद नहीं था गुसांई सनातनजी यह देखकर एकाएकी पुकार कर चिल्ला उठे कि इस नागिनीको मारो जो इस परम सुन्दरीके शिरपर चढी जा रही है. यह कहकर बेसुध हो गये; और जब चैतन्य हुए और सुधि आई तो गुसांई रूपजीका श्लोक याद आया; और विचारा कि श्रीलाड- लीजीने इस श्लोकका भ्रम निवारणकेही लिये यह चरित्र किया है; और यह गुसांई रूपजीके पास आये और उनकी परिक्रमा कर यह वार्त्ता उनसे कही. अब विचारना चाहिये कि गुसांई सनातनजी गुसांई रूपजीके बडे भ्राता थे, परन्तु भक्तिमें उनको बडा जानकर

दंडवत् आदि और परिक्रमा करी गुसांई रूपजीका शरीर पुष्ट था, और गुसांई सनातनजी सुकुमार थे वह सर्वदा व्रजकी परिक्रमा किया करते थे, एक दिन जो परिक्रमा कर गुसांई रूपजीके पास गये, तौ गुसांई रूपजीको यह विचार हुआ कि यह सनातनजी अपने घर बहुत उत्तम भोजन खाया करते होंगे जो कि हर एकको नहीं मिल सकता है. इनका भिक्षाकी सूखी रोटीसे कैसे पेट भरेगा इसी शोच विचारमें थे कि इतनेहीमें श्रीलाडलीजी दूध चावल इत्यादिक उत्तम रसोईकी सामग्री लेकर व्रजवासीकी लडकीके भेषमें आई और अत्यन्त मीठी वाणीसे बोली कि आज हमारी गौ व्याई है सो मेरी माताने यह रसोईकी सामग्री तुम्हारे लिये भेजी है, तौ दोनों गुसांईजीने उसका भोजन तैयार करके भोग लगाया तौ उस भोजनमें इतना स्वाद आया कि ऐसा स्वाद सारी अवस्थामें कभी न आया था. सनातनजीने इसका कारण गुसांई रूपजीसे पूंछा उन्होंने अपने सब शोच विचारकी व्यवस्था वर्णन करी. सनातनजीने कहा कि समस्त संसारके धन दौलतको त्यागन कर दिया परन्तु तौभी जिह्वाका स्वाद रह गया कि जिस कारण लाडलीजीको श्रम हुआ जब रूप गुसांई और सनातनजीके गुरु नित्यानंद श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुजी संसारको त्यागन कर परम धामको गये तौ गुरु-महाराजके ठाकुरद्वारोंको अत्यन्तही शोक हुआ, और विचारा कि अब रूप गुसांई और सनातनजीके सिवाय भगवान्के गुणोंका कोई ग्राही नहीं, इस कारण वृन्दावनमें आये; और एक दिन बडी भारी सभा हुई. ऐसे प्रेमके साथ भजन और कीर्तन हुआ कि सभाके सभासद् प्रिया प्रीतमके प्रेममें ऐसे मग्न हो गये कि उनका वर्णन नहीं हो सकता, परन्तु गुसांईजी अपने मनको दृढ कर खडे रहे. गुसांई कर्णपुरीने विचारा कि रूपजी सब प्रेमियोंके शिरोमणि हैं वह

भगवान्के प्रेमसे प्रफुल्ल न हुए, और जब समीप गये तौ उनके श्वासकी गरम हवा गुसांई कर्णपुरीके अंगको लगी उसके लगनेसे उनके अंगमें फफोले पड गये. गुसांईजीने कहा कि जिनको अंगका सम्बन्ध औरभी कुछ है, उनकोही मग्नता है, और जिनको अंगसे सम्बन्ध नहीं रहा उनका मन देखना चाहिये यहां रूप गुसांईजीकी कथा समाप्त हुई.

सनातनजीकी कथा १४.

सनातनजीकी कमंडलु और कौपीनके सिवाय अपने पास कुछ नहीं रखते थे, और विचरण करते हुए भाटके घर पहुँचे; उसके घरपर श्रीमदनमोहनजीका स्वरूप विराजमान था उनके दर्शन कर सनातनजी मोहित हो गये; और नित्यप्रति उसके घर जाने लगे. उनकी आंखोंसे प्रेमका जल बहने लगा, पहले वह भाट साहूकार था फिर वह दारिद्री हो गया था. उसने विचारा कि जैसा इस मूर्तिने मुझको दुःख दिया है इस पुरुषकोभी ज्ञात होता है ऐसाही दुःख दिया है इसको देखकर रोता है, यह विचार कर फिर गुसांईजीसे पूछा कि महाराज ! क्या तुमकोभी इस मूर्तिने धन दौलत घरबारसे दुःखी कर दिया है ? गुसांईजीने इस भाटकी मूर्खताको विचार कर उत्तर दिया कि भाई ! तेरे साथ तौ इस मूर्तिने कुछभी नहीं किया परन्तु मेरे साथ बहुत कुछ किया है. उसने कहा कि महाराज ! फिर मैं इसका क्या उपाय करूं, गुसांईजीने कहा कि इस मूर्तिको अपने घरसे अतिशीघ्र तू निकाल दे, नहीं तो क्या जाने आगेको यह क्या करेगी. उसने कहा कि जब इसमें ऐसा अशुभ लक्षण है तौ इसे कौन लेगा. तब गुसांईजी बोले कि मूर्तिको जो कुछ मेरे साथ करना था सो तौ कर चुकी अब इसका कुछभी फल मेरे ऊपर न चलेगा, इस

कारण इसको तू मेरे साथ कर दे मैं ले जाऊंगा; यह वचन इनका सुन उस भाटने वह मूर्ति इनको दे दी और फिर वृन्दावनमें उस मूर्तिको स्थापित कर उसकी पूजा आरंभ की, और जो कुछ भिक्षा मांगकर लाते उसीसे भगवान्‌को भोग लगाते. एक दिन भगवान्‌ने स्वप्नमें गुसांईजीसे कहा कि थोडासा नमकभी चाहिये गुसांईजी उनकी आज्ञानुसार नित्यप्रति नमकभी लाने लगे फिर एक दिन स्वप्नमें कहा कि घृतकीभी आवश्यकता है; फिर इन्होंने घृतकीभी भिक्षा करी वहभी लाये. फिर एक दिन कहा जंगली तरकारीभी जंगलसे लाया करो वह तरकारीभी लाने लगे, तब सनातनजीने अपने निर्मल अंतः कारणकी प्रीतिसे विचारा कि मदनमोहनजा चटोरे हो गये. यह मेरे वैराग्यको धूलमें मिलाकर मुझकोभी चटोरा किया चाहते हैं, यह विचार कर बोले कि हे महाराज ! यदि ऐसाही जिह्वाका स्वाद है तो कोई दौलतवाला सेवक ढूंढना उचित है, यह कहकर बाहर आ बैठे. अकस्मात् उसी समय किसी साहूकारकी मालसे भरी हुई नाव आगरेको जाती थी जिस समय वह नाव वृन्दावनमें कालीदहके निकट पहुँची तो चलनेसे रुक गई. और साहूकारने घबडाकर अपने नौकरोंसे कहा कि चारों ओर जाकर देखो कि इस जंगलके चारों तरफ किसी जगहमें कोई साधु है यदि मिले तो इससे नावके चलनेका उपाय कराया जाय, यह सुन नौकर जंगलमें आये और उस साधुको बैठा देखकर उससे जाकर कहा कि महाराज ! एक साधु बैठा है, उसीके कारण नाव नहीं चलती. यह वचन सुन साहूकार आया और गुसांईजीके चरणोंपर गिर पडा, वह भगवान्‌के दर्शनके प्रतापसे श्रद्धावान् और विश्वासी हो गया था; सो हाथ जोडकर खडा हो गया, और कहा कि मुझे किसी कार्यकी आज्ञा करो, तब भगवान्‌ने उसकी श्रद्धा और भक्ति देखकर कहा कि हमारा मंदिर बहुत

सुन्दर पत्थरका तैयार हो जाय, राग भोगके लियेभी बहुत साधन हो जाय, साहूकारने यह सब स्वीकार किया, उसी क्षण नाव चल पडी और साहूकारने अत्यन्त भक्तिसे बड़ा शोभायमान मंदिर तैयार कराया और बहुतसा धन उस मंदिरमें कर दिया. जब भगवान्की सेवाकी समस्त सामग्री उस मंदिरमें पूर्ण हो गई, तौ गुसांईंजीने वहां-का अधिकार कृष्णदास ब्रह्मचारीको सौंप दिया, और आप व्रजकी परिक्रमा करनेके लिये गये. एक समय नंदगांवके निकट मानससरोव-रके तीरपर कदम्ब वृक्षके नीचे बैठकर तीन दिनतक भोजन पानके निमित्त न उठे भगवान्ने विचारा कि जो. कोई बडा पुरुष किसी कंगालके घरपर जाता है तौ यह उसका तनमनसे आदर सत्कार करता है, यह पुरुष मुझ विश्वेश्वरका अतिथि है बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह निराहार रहे, इस कारण आपही व्रजवासी बालकोंके भेषमें रेशमी महीन धोती पहरे पीला डुपट्टा कसे हुए लाल चीरा शिरपर बांधे रंगीन छडी बगलमें दबाये भोगकी थाली अपने हाथम लिये हुए आये, और गुसांईजीके निकट जाकर कहा है कि वस्तीमें जाकर क्यों नहीं बैठते जो लोग तेरे खाने पीनेकी खबर लेते. यहां जंगलमें कौन तेरी खबर लेनेको आवेगा. भगवान्ने तेरेभी हाथ पांव दिये हैं तैंने तो हरामखोरीपर कमर बांधी है. गुसांईजा इन बातोंको सुनकर अत्यन्त आनंदित हुए और कहा कि तुम्हारे हाथसे हरामखोरीभी लीन है. इसी प्रकार तीन दिनतक श्रीव्रजचंद भोजन पहुँचाते रहे इसके उपरान्त गुसांईंजीने अपने प्रीतम प्यारेको दुःख देना न विचारा और उस लडकेसे उसके घरका पता पूछने लगे अगले दिन उसी बालकको ढूंढा तौ उसका कुछभी पता न चला, तौ अत्यन्त व्याकुल होकर अपनी बुद्धिपर पछतावा करने लगे और अपनेको धिक्कार देने लगे; तब भगवान्ने उससे स्वप्नमें कहा कि खीरका लानेवाला बालक

मैं हूं जो तुम्हारी यहा इच्छा है तो मैं जाऊं. यह सुन गुसांईजीने क्षमाकी प्रार्थना करी और उस परम मनोहर मूर्तिका ध्यान करते हुए परम आनंदमें मग्न हो गये.

गुसांई नारायणभट्टकी कथा १९.

श्रीमान् गोसांई नारायणभट्ट परम भक्त थे, विज्ञान और स्मार्त्त धर्म इत्यादि भगवान्‌की भक्तिको श्रेष्ठ जानकर भागवत धर्मका प्रचार किया. संसारके उपकारके निमित्त भगवान्‌ने नारायणभट्टकी बराबर उन्होंको उत्पन्न करा था, उनकी समान दूसरा कोई नहीं होगा; जिनका उपकार आवागमनके अंधेरेके निमित्त सूर्यकी समान है. भगवान्‌की प्रेमभक्ति प्राप्त होनेके कारण गुसांईजी ब्रह्मचारी कृष्णदास मदनमोहनजीके मंदिरके पुजारीके सेवक हुए. श्रीमद्भागवतके दशम-स्कंधकी कथा अपने गुरुजीसे सुनी, और जो चरित्र भागवतमें भगवान्‌ने अपनी बाललीलाके बाबा नंद और माता यशोदाजीको दिखाये थे; और जो विहार गोपियोंके साथ जो खेल और सुख सुदामा आदि अपने सखाओंके साथ वृन्दावन आदिमें करे थे सो सब गुसांईजीके मनमें समा गये, और विचारा कि यह सब स्थान जहां जहां चरित्र किये हैं देखने उचित हैं; जो कि इन सबका मिलना कठिन था; क्योंकि भगवान्‌के अवतारको हुए पांच हजार वर्ष हुए, और उस समय अनेक उपद्रव हुए इसी कारण वह छिप गये इस कारण भगवान्‌के भजन और उनकी पूजामें लगे. फिर उनको खाने और पीनेका कुछभी सोच न रहा, जो भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं वही भगवान् गुसांईजीके अंतःकरणमें प्रगट हुए. जहां २ जो चरित्र किये थे वाराहसंहिताके अनुसार सभी दिये; उसी प्रकार गोसांईजीने वन और उपवन, स्थान, कुंज विहार आदि समस्त प्रकट करे. उनकी

गिनती किससे हो सकती है. उनमेंसे किसी २ नामी स्थान और मंदिरोंके स्थान लिखते हैं जो उनके नाम लेनेसेही लोगोंका उद्धार हुआ; और निश्चयही उनके दर्शनोंसे यात्राभी मिल जाय.

गोकुल और महावनस्थानोंका गिनती और वर्णन.

१ रोहिणीमंदिर और श्याममंदिर जहां भगवान्का जन्म हुआ वह महावनके गढमें विख्यात है; २ यशोदाजीके दही विलोनेके चौरासी खम्भ और आठ खम्भ हैं; ३ जहांपर श्रीकृष्णने मट्टी खाकर अपने मुखमें यशोदाजीको त्रिलोकीकी माया दिखाई थी वह ब्रह्मघाट स्थान बडा विख्यात है ४ खनरेतीमें यशोदानंदनने अपने सखाओंको साथ नाना प्रकारके चरित्र किये, ५ जहां श्रीकृष्णमहाराजने दूध पीनेके समय पूतनाको खैंचकर उसको स्वर्ग पठाया था वह स्थान पूतनाखालसे प्रतिष्ठित है, ६ यमलार्जुन कुबेरके पुत्र जहां यशोदाजीने भगवान्को उलूखलसे बांधा था और भगवान्ने उनका उद्धार किया, ७ जहां सोमवती अमावसको किनारेतक जल इकट्ठा होकर उतर जाता है वह स्थान गोपकूप कहा जाता है ८ गोकुलमें स्थित गुसांइयोंके सात मंदिरोंके दर्शन; जिनका वर्णन प्रथम वल्लभाचार्यकी कथामें कर आये हैं, ९ नंद बाबा और माता यशोदाजीके दर्शन. १० ठकुरानीघाट और वल्लभघाट इत्यादि.

मथुराजीके स्थानोंकी गिनती.

१ विश्राम जिसे विश्रांत घाट कहते हैं, जहांपर कंसको मारकर विश्राम किया था, २ केशोदेवजीका मंदिर जहां चतुर्भुजरूप होकर प्रगट हुए, ३ रंगभूमि, जहां कंसको मारा. ४ कंसखाल, जहां कंसको मारकर डाला, ५ सात समुद्रका कुआ, ६ ठाकुरवाराहजीके दर्शन, ७ दर्शन ठाकुर द्वारकाधीशके जो अब पारखनामी साहूकारने बनवाया है

क्षेत्र आदि स्थान मथुरादेवी, भूतेश्वर महादेव. सप्तऋषि; वटटीला, दशाश्वमेध, चक्रतीर्थ, ध्रुवक्षेत्र, सरस्वतीकुंड, जोगमार्ग, रावनकुटी; छाकविहारी, कृष्णगंगा. कंठाभरणघाट, जैसे वैरागघाट, रामघाट, वा कस्तूरघाट, वैकुंठघाट, बंगालीघाट सूर्यघाट इत्यादि.

श्रीवृन्दावनके स्थानोंकी गिनती।

गोविंददेवजीका मंदिर, गोपीनाथजी, मदनमोहन, राधावल्लभ, बांकेविहारी, अटलविहारी रसिकविहारी, राधारमण; अंगारवट, छीलछेकना मंदिर श्रीकृष्णका लाला बाबूका बनाया हुआ, दूसरा मंदिर रंगनाथका, पारखके बेटे राधाकिसनका बनाया इन दोनों पुरुषोंकी भक्ति और नाँवकी प्रशंसा बहुत सुनी, इसके अतिरिक्त और हजारों मंदिर हैं.

श्रीयमुनाजीके घाट वा तट।

कालीदहघाट, विष्णुघाट; लुकलुकघाट, विहारघाट, चीरघाट, केशीघाट, सूर्यघाट इत्यादि. निधवन, सेवाकुंज ये भगवान्के विहारकी कुंजे हैं, और जो राजा अमीर साहूकारोंने बनाई हैं सो अलग है. धीरसमीर, वंशीवट. ज्ञानगुदडी, मोतिदासजीकी टट्टी और साधुओंके स्थान प्रचलित हैं. ब्रह्मकुंड, गोविंदकुंड आदि ताल और मीनकूपसे सैकडों कुँये हैं. राधाबाग, माधवबाग, देवीशंकरवाला बाग बहुतही घने दर्शन और भ्रमण करनेके योग्य हैं. उन स्थान और वनोंकी गिनती उस समय हो सक्ती है कि जिस समय वनयात्राके दर्शनोंको जाते हैं. यात्रा करनेवाले भादों वदी ६ तक मथुराजीमें पहुँच जाते हैं. जिस किसीको जन्माष्टमी वृन्दावनमें करनी होती है वह घाटोंका स्थान और दर्शन करके वृन्दावनको चला जाता है, और जिस किसीको गोकुलमें जन्माष्टमी करनी होती

है वे गोकुलको जाते हैं, और कितनेही मथुरामें ठहरे रहते हैं सब लोग जन्माष्टमी करके दशमीके दिन सांझतक मथुराजीमें आ जाते हैं. एकादशीसे यात्राका आरंभ हो जाता है पंद्रह दिनमें सारी यात्रा और परिक्रमा व्रजमंडल चौरासी कोशकी करके भादौं सुदी दशमी या एकादशीतक मथुराजीमें आ जाते हैं और द्वादशीके दिन मथुराजीकी परिक्रमा होती है. दूसरी यात्रा वल्लभाचार्यके कुलवालोंकी अर्थात् गोकुलमें स्थित गुसांइयोंकी होती है, परन्तु प्रसन्नता नहीं होती. यह गुसांई आसोज वदी दोयजको यात्राके लिये उठते हैं, और दिवाली गोवर्धनमें करते हैं, और कार्तिक सुदी दोयजको मथुराजीके मेलेमें जा मिलते हैं. यह यात्रा बडी निश्चिन्तताईसे होती है; और संगमें बहुधा लोग गुसांइयोंके होते हैं. अब मंजिलोंकी गिनती और पंद्रह दिनके दर्शन और स्थानोंकी यात्राके नाम लिखे जाते हैं. पहले दिन प्रभातको विश्राम घाटपर स्नान करके पैदल और नंगे पैरही यात्राके लिये जाते हैं. और भगवान्‌के भजनका नेम व्रत करना उचित है. पहली मंजिलमें मधुवन, तालवन, कुमुदवनके दर्शन और यात्रा हो जाती है, कल्यान, नारायण, यशोदानंदन, कुपलमल और गिरधररायके दर्शन होते हैं, फिर सनातन कुंडपर आकर दूसरे दिन बहुलावनमें वास होता है और ठाकुरद्वारेमें मोहनलालजीके दर्शन होते हैं. तीसरे दिन गोवर्धनजीमें पहुँचते हैं, चौथे दिन वहां वास होते हैं, गिरराज अर्थात् गोवर्धनकी परिक्रमा होती है, हारिदेवनाथजी वहां विराजमान हैं और एक मंदिर श्रीसंप्रदायवालोंकाभी है, मानसीगंगा, संकर्षण, अप्सराकुंड, पूंछडी, रासोली गाभोली, गुलालकुंड, हरजीकुंड, कुसुमसरोवर, नारीकुंड, ईरादुतकुंड, सुरभीकुंड और अन्य तालाव और स्थान भरतपुर राजाके बनाये हुएके दर्शन होते हैं. दीपमालिकाको गोवर्धनजीमें वडी भीड

होती है. और समस्त गोवर्धनजीके ऊपर ऐसा रोशनी होती है कि और कहीं वैसी नहीं होती. कार्तिक सुदी पड़वा और गिरिराजकी पूजा और अन्नकूटका उत्सव बड़ी धूम धामसे होता है. छठे दिन काममें पहुँचते हैं, और वहां गोकुलचंद्रजीठाकुर, विजयगोविन्द, गोपीनाथजी, वृन्दादेवी, राधावल्लभ, सीतारामके दर्शन होते हैं और २ भी प्रसिद्ध मंदिर विराजमान हैं, सातवें दिन काममें वास होता है, और कामाजी व अन्य स्थानोंकी परिक्रमा, विमलकुंड और धर्म कुंडके स्नान होते हैं. और भोजनकी थाली और घीसी शिला परिक्रमामें आती है, आठवें दिन बरसानेमें पहुँचते कि हैं, श्रीलाड-लीजी वृषभानुनंदिनीजीकी जन्मभूमि है. श्रीलाड़लीजीका बड़ा ऊंचा मंदिर पहाडके ऊपर है, और श्रीवृषभानु माता कीरतजी श्रीदामा-जीके दर्शन होते हैं; और दानगढमें जहांपर दानलीला हुई, मान-गढ जहां वृषभानुकिशोरीने नंदकिशोरसे मान किया, और विलास-गढ जहां प्रिया प्रीतमने विहार विलास किया, मोरकुटी जहां मोर कासा शब्द कर श्रीलाडजीको बुलाया, सांकरीगली जहां नंद किशोरने लाडजीको अकेली देखकर पकड लिया और जो इच्छा हुई सो किया. और क्षीरवनका वहभी विहारस्थान है, और २ स्थान और मंदिरोंके दर्शन होते हैं. भानुरोसरीपोखरा प्रेमसरोवर इत्यादि कुंड और लाडलीके झूला झूलनेके स्थान हैं; और ऊंचे गांवमें जहांके श्रीगुसांईजी नारायणभट्टजी रहनेवाले हैं, और जिनकी कथामें श्रीगुसांईजी नारायणभट्टजी रहनेवाले हैं. और जिनकी कथामें यह समस्त वृत्तान्त लिखा जाता है, वह बरसानेके निकट है. और एक बलदेवजीके मंदिरकेभी दर्शन होते हैं, और वहां देहकुंड और त्रिवेनीभी है; नववें दिन नंदगावमें जहां नंदबाबा रहते थे वहां जाते हैं; वहां माता यशोदानंदन बलदेवजी विहा-रीके विहार करनेके मंदिर और मानससरोवर, ललताकुंड, विशाखा-

कुंड, यशोदाकुंड, मधुसूदनकुंड, मौनीकुंड, कृष्णकुंड, कदमखंडी तीर्थ है. मथानी जहां यशोदाजीने दूध बिलोया हाऊ जहां नंदनंदनको हाऊ कहकर डराया वह स्थान है, जावेत जहां लाडलीजीके चरणोंमें जावक लगाया, कोकलावन जहां कोकलाकी समान शब्दसे श्रीलाडलीजीको बुलाया था, रसौली जहां रास किया, ये वन जहां लाडलीजीकी चोटी गुंथी, रंगमहलमें संकेतविहारी और संकेतदेवी विराजमान है. दशवें दिन जहां शेषशायी हैं वहां जाते हैं जहांपर शेष शायी भगवान् विराजमान रहते हैं, लक्ष्मीनारायणका मंदिर, क्षीरसमुद्र तीर्थ है, मार्गमें कुंडेला और कदमखंडी क्षीर वनके दर्शन होते हैं, यहांसे बहुधा लोग तो जन्माष्टमी करनेको बरसानेको चले जाते हैं; और जन्माष्टमीकीही समान लाडलीके जन्मका उत्सव भादों सुदी आठैंको होता है, और कोई वृन्दावनको चले आते हैं, और शेष व्रजमंडलकी परिक्रमा पूरी करनेके निमित्त यमुनाके पार हो जाते हैं. ग्यारहवें दिन नंदघाटसे उतरकर शेरगढमें जाते हैं; उसी घाटके समीप चीरघरन कात्यायनीदेवीके दर्शन होते हैं, शेरगढमें भगवान्के मंदिरमें बेलवन, भांडीरवन, शरदवनकी, यात्रा होती है. बारहवें दिन माटवनमें निवास होता है वहांभी भगवान्के मंदिर हैं परन्तु पुराचीन और प्रतिष्ठित मंदिरोंमेंसे कोई नहीं, तेरहवें दिन लोहवनमें वास होता है, और रास्तेमें नंदी देवी और विंदादेवीके दर्शन होते हैं. चौदहवें दिन बलदेवजीमें जाते हैं, बलदेवजीके दर्शन होते हैं यह स्थान प्रतिष्ठित है एक तीर्थ और मंदिरभी भगवान्का वहां है पंद्रहवें दिन मथुराजीमें जाते हैं, मार्गमें गोकुल और महावनके दर्शन होते हैं, जो कि वहांके तीर्थ और स्थानोंकी गिनती वहां पहले लिखी गई है; इन वन और स्थानोंके सिवाय औरभी बहुतसे वन हैं, और स्थान यात्राकी

समीप मार्गमें नहीं आते हैं जब यह स्थान और वन प्रगट हुए तब नारायणभट्टको भगवान्के चरित्रोंसे अत्यन्त प्रेम हुआ, जिस प्रकार श्रीव्रजचंद्र महाराजने इन स्थानोंपर रासविलासादिक चरित्र किये हैं; वहभी साक्षात् प्रत्यक्ष देखे, सो भगवान्ने उनको देखकर कहा कि वल्लभ नाम नर्तक बादशाहकी नौकरी छोडकर वृन्दावनमें रहता है. तुम ब्राह्मणके लडके और ग्वालियोंका रूप धारण कर मेरे चरित्र देखो, फिर गुसांईजीने वल्लभसे कहा और उसने एक ब्राह्मणके बालकको व्रजचंद्रका रूप एकको लाडलीजीका रूप और आठ लडकोंको ललता और विशाखा आदि सखियोंका रूप बनाकर सब शिक्षा नृत्य और गान करनेकी सिखाई. जहां जहां जो जो चरित्र रासादिक भगवान्ने किये थे सो मानो उन्होंने श्रीकृष्ण अवतारको प्रत्यक्ष कर दिया और वही रीति रासकी आजतक चली आती है. जब वह उपकार संसारके लिये किया तब उनको परमधामके जानेकी इच्छा हुई; और अपने सेवकोंसे कहा कि यह हमारी देह त्रिवेनीपर ले जाना, उनके सेवकोंने कहा कि त्रिवेनी कहां है, तौ उन्होंने परिचय दिया कि बरसानेके निकट है सो जभीसे यह तीर्थ प्रगट हुआ, और आजतक गुसांईजीकी संतान वहां मौजूद है. जब रासादिकका समाज होता है तौ प्रथमही उनकी संतानको सरदार वा मुखिया बनाकर बैठते हैं.

निम्बार्कस्वामीकी कथा १६.

निम्बार्कस्वामी परम भक्त और ऋषि भगवान्की भक्तिके प्रचार करनेवाले हुए. वह महाराष्ट्र ब्राह्मण थे. मुंगेरमें गोदावरीके तीर अरण्यऋषिकी जयंती धर्मपत्नीके उदरसे इनका जन्म हुआ, और जो सनकादिक संप्रदाय आजतक प्रचलित है उसके प्रचार करनेवाले और आचार्य स्वामीजी हैं. यद्यपि इस संप्रदायका चलन भगवान्के

हंस अवतारसे है, परन्तु इस संसारमें निम्बार्कस्वामीसे चला इसी कारण स्वामीजीके नामसे प्रतिष्ठित हुआ; और महाराज हंसने प्रथम उपदेश सनकादिकोंको दिया था; इस कारण सनकादि संप्रदाय कहते हैं; गुरु चेलोंका हाल पुरुष वृक्षसे जाना जायगा. यद्यपि इस संप्रदायके सेवक ब्रह्मसूत्रोंपर निम्बार्कभाव बताते हैं, परन्तु इस देशसे नहीं मिलता; और उपासनाकी विधि और ईश्वर माया जीवका निर्धार जो स्तोत्रोंमें लिखा है और उनका टीका बडे विस्तारसे है. उनसेही विस्तारपूर्वक उपासनाकी रीति जानी जाती है, उनमेंसे बडे दशश्लोकी स्तोत्र हैं इन स्तोत्रोंमेंसे इस संप्रदायके विश्वास संक्षेप यह जाना गया कि ईश्वर द्वैताद्वैत है; अर्थात् जिस प्रकार सर्पका कुंडल सर्पसे पृथक् नहीं होता, इसी प्रकार यह संसार ईश्वरसे पृथक् नहीं परन्तु नामके लिये पृथक्सा दीखता है वही ईश्वर पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंद श्रीकृष्ण भगवान् गोलोकनिवासी हैं. माधुर्यकी रीतिके अनुसार जो शृंगारकी शाखा है उसका वर्णन इसकी उन्नीसवीं निष्ठामें होगा यद्यपि उस उपासनामें जुगुलस्वरूप श्रीराधाकृष्णकी मूर्तिका ध्यान और सेवा होती है, परन्तु आचार्यजीकीही कृपासे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण स्वामीका और उनका चिंतवन करना पाया जाता है. फिर निम्बार्कस्वामीके सिद्धांतका उल्था यह है कि श्रीकृष्णके चरणारविंदोंके सिवाय और गति नहीं दिखाई देती, वह चरण कैसे हैं कि जिन चरणोंको ब्रह्मा शिव इत्यादि देवता दंडवत् करते हैं और वे श्रीकृष्ण महाराज कैसे हैं, कि जो भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये अनेक प्रकारके अवतार धारण करते हैं, और जिसकी मूर्ति विचारमें नहीं आ सकती, और न उनके मनका भेद समझमें आ सकता है, और किसी मंत्रमेंभी राधिकाजीका वर्णन नहीं परन्तु ध्यानके श्लोक जो पढने और देखनेमें आये, एक जगह जुगल मूर्तिका ध्यान इस प्रकार

लिखा है और दूसरी जगह श्रीकृष्णका सो यह भेद कुछभी नहीं सो यही विचारना चाहिये कि जब गोलोकनिवासीहीकी उपासना करनेका निश्चय हुआ तौ जुगलस्वरूपका ध्यान और चिंतवन आपही आवश्यक है, तिलक इत्यादिका हाल वेषनिष्ठामें लिखा जायगा. यद्यपि निम्बार्कस्वामिके चमत्कार बहुतसे हैं; परन्तु उनमेंसे एकही कथाका वर्णन किया जाता है कि जिसके कारण निम्बार्कनाम प्रचलित हुआ. एक समय एक संन्यासी उनके स्थानपर आया; स्वामीजीने उनको निमंत्रण करा परंतु रसोईकी तयारीमें उनको सांझ हो गई, संन्यासीने कहा है अब हम भोजन नहीं पावेंगे क्योंकि अब सांझ हो गई, यह वार्ता संन्यासीकी सुनकर स्वामीजीको दया आई, उनके आंगनमें एक नीमका वृक्ष था और उसपर उस संन्यासीको चढाकर सूर्यको दिखा दिया, तब संन्यासीने निश्चिन्ततासे भोजन किया; और जब वह भोजन करके उठा तौ चार घडी रात्रि व्यतीत हुई, मालूम हुई उसी दिनसे आजतक स्वामीजीका नाम निम्बार्क प्रचलित हुआ; और कितनेही उनके नामके अर्थ बताते हैं, और महान् विख्यातपारकद्वारे दक्षिणमें है; और अरुणानगरमेंभी है और तीसरे सलेमाबाद. औरहै, इसके अतिरक्त औरभी सैकडों प्रचलित हैं.

१५ कृपाचार्य	१६ देवाचार्य	यह १९१३ में सलेमाबादकी
१४ गोपालाचार्य	१७ सुन्दरभट्ट	गद्दीपर विराजमान हुए.
१३ बलभद्राचार्य	१८ पद्मनाभभट्ट	४५ गोपीश्वरदेव
१२ श्यामाचार्य	१९ उपेन्द्रभट्ट	४४ व्रजराजशरणदेव
११ पद्माचार्य	२० चन्द्रभट्ट	४३ निम्बार्कशरणदेव
१० माधवाचार्य	२१ वामनभट्ट	४२ ईश्वरशरणदेव
९ स्वरूपाचार्य	२२ कृष्णभट्ट	४१ गोविन्दशरणदेव
८ श्रीविलासाचार्य	२३ पद्माकरभट्ट	४० गोविन्ददेव
७ पुरुषोत्तमाचार्य	२४ श्रवणभट्ट	३९ वृन्दावनदेव
६ विश्वाचार्य	२५ भूरभट्ट	३८ नारायणदेव
५ श्रीनिवासाचार्य	२६ माधवभट्ट	३७ हरिवंशदेव
४ निम्बार्कस्वामी	२७ श्यामभट्ट	३६ परशुरामदेव
३ नारद	२८ गोपालभट्ट	३५ हरिव्यासदेव
२ सनकादिक	२९ बलभद्रभट्ट	३४ श्रीभट्ट
१ हंसभगवान्	३० गोपीनाथभट्ट	३३ केशोकाश्मीरिभट्ट
	३१ केशोभट्ट	३२ कांगलभट्ट

हरिव्यासजीकी कथा १७.

हरिव्यास श्रीदेवजी सुमोखनशुकलब्राह्मणके पुत्र निम्बार्क संप्रदायमें ऐसे परम भक्त हुए कि जिनकी कृपासे आजतक हजारों लाखों

भगवत्भक्त प्राप्त होते हैं. जिस प्रकार भगवान्में अधिकतर भक्ति है उसीसे हरिभक्तोंको पूर्ण प्रीति होती है. उतनीही प्रीति भगवान्के भजनमें और तिलक मालामें हुई इनका निज नाम हरिराम था. यह वोडछेके रहनेवाले थे संवत् १६१२ में अपने गृहको त्यागकर ४९ वर्षकी अवस्थासे वृन्दावनमें आये; और समस्त कार्योंसे भागवत धर्मको उत्तम जानकर उसीका प्रचार किया. यद्यपि इन्होंने हजारोंको अपना सेवक बना भगवान्का भक्त कर दिया; परन्तु उनमेंसे बारह सेवक तो प्रसिद्ध भक्त और ऐसे प्रतापी हुए कि जिनके नामसे भिन्न २ गुरुद्वारे हैं और अबतक उन गुरुद्वारोंमेंसे भगवान्की भक्तिका पदार्थ मिलता है. यह गुरुद्वारे अपनी रीतिमें निम्बार्कसंप्रदायके नामसे प्रचलित हैं जो कितनी एक रीति व्यासजीने नवीन चलाई हैं वे गुरुद्वारे बारह गुरुद्वारोंमेंसे हैं, अर्थात् जो सनातन व्यासजीकी है उसीके अनुसार उनका गुरुद्वारा है और गुसांई वृन्दावनदासजीकी पदवीसे वोडछेमें विख्यात हैं; और इस गुरुद्वारेके सेवक हरिव्यासजी प्रतिष्ठित हैं. जब व्यासजीने वृन्दावनमें वास किया तो उनकी भगवान्में इतनी प्रीति हुई कि एक क्षणकोभी वृन्दावनसे अलग होना नहीं चाहते थे, वरन जो कोई उनसे जानेको कहता था, उसपर वह क्रोध करते थे. मुंदगरनाम उंदझका राजा व्यासजीको ले जानेकी इच्छासे वृन्दावनमें आया ; और अत्यन्त नम्रतासे उसने विनती करी, तब व्यासजीने राजासे कहा कि मैं समस्त वृन्दावनके वन, वृक्ष, शाखा और छायामें इनकी रक्षामें आकर बसा हूं सो इन सबसे विदा होकर चलूंगा. यह कहकर विदा होनेके लिये चले, इतनेहीमें एक भंगन गोविन्ददेवजीके मंदिरमेंसे हरिके भक्तोंकी खाई हुई पत्तलको उठाकर लिये जाती थी सो व्यासजीने उससे पूंछा कि इसमें क्या है ? भंगनने कहा कि महाप्रसाद है, व्यासजीने महाप्रसादका नाम सुनकर अतिशीघ्र उस पत्तलमेंसे एक फुलौरी लेकर भोजन कर ली. यह देखकर राजाने विचारा कि गुरुदेवको भ्रम हो गया. यदि अब यह

हमारे देशमें जाँयगे तो यह समस्त लोगोंको भ्रष्ट करेंगे; इस कारण वह राजा इनसे विदा होकर अपने घरको चला गया; और व्यास-जीने उसका जाना उत्तम समझ भगवान्‌का अपने ऊपर बडा अनुग्रह जाना. वह सर्वदा श्रीकिशोर किशोरीजीकी सेवा करते थे. एक समय भगवान्‌के शृंगार करनेके समय उनके शीशपर जरीका चीरा कसकर बांध रहे थे, उन्होंने कई वार बांधा परन्तु वह चिकना होनेके कारण ठीक नहीं बंधा तो व्यासजीने क्रोधमें आकर कहा कि महाराज ! तुम्हारे लडकपनमें तो यह चंचलता है तो बडे होनेमें तुम्हारी क्या दशा होगी. यदि मेरा बंधा हुआ पसंद न आवे तो आप बांध लो, यह कहकर कुंजसे बाहर चले गये. थोडी देरके पीछे जो लोग दर्शन करनेको गये थे उन्होंने व्यासजीसे कहा कि आज भग-वान्‌का चीरा बहुत सुन्दर बंधा है, तब व्यासजी अत्यन्त प्रीतिसे उठकर वहां गये और देखकर कहने लगे कि जहां आप ऐसी कारीगरी जानते हो तो दूसरेकी कैसे पसंद आवेगी. एक दिन भगवान्‌के भक्तोंका समाज भोजन करनेके लिये बैठा था और व्यासजीकी स्त्री भोजन परोस रही थी, दैवसंयोगसे दुग्धकी मलाई व्यासजीके कटोरेमें गिर पडी, व्यासजीने समझा कि इसने पतिकी प्रीतिके भावसे यह मलाई मुझको और साधुओंसे अधिक दी है, उसी समय अपनी स्त्रीको साधुओंकी पंगतिमेंसे निकाल दिया, और साधुओंकी सेवा उससे न कराई. उनकी स्त्रीने जोभी कुछ उनसे कहा उन्होंने कुछभी न सुना; तब स्त्रीको अत्यन्त दुःख हुआ और उसने तीन दिनतक कुछ भोजन न खाया, फिर सब भगवान्‌के भक्तोंने व्यास-जीको समझाया. तब व्यासजी अपनी स्त्रीके आनेकी आज्ञा दी, परन्तु उसको दंड इतना दिया कि उसके समस्त आभूषण देकर अंगारा किया था, उनकी पुत्रीका विवाह था विविध प्रकारके पकवान वरा-तके लिये बने थे. व्यासजीने वह श्रेष्ठ भोजन अपने कुटुम्बवालोंसे

छिपाकर भगवान्के भक्तोंको करा दिया, जब बरात आ गई और पकवानका कोठा खाली पाया तौ उनके कुटुम्बके लोगोंने तत्कालही पकवान तैयार कराया और समस्त बरातियोंकी ज्योनार करी, घरके लोग व्यासजीके इस आचरणसे अत्यन्त दुःखी हुए और उनकी निन्दा करने लगे, व्यासजीने तत्क्षण विष्णुपद भगवान्को समर्पण किया. इसका तात्पर्य यह है कि जिन लोगोंको समधी प्यारे हैं वे और जो भगवान्के भक्तोंको सूखा आटा देते हैं इस प्रकारके मनुष्योंको यमराजके दूत खैंचते २ भी हार जाते हैं एक समय व्यासजी भगवान्के शृंगारकी समय भगवान्के हाथमें चांदीकी बांसुरी देते थे; उससे भगवान्की अंगुली किंचित् छिल गई और लोहू निकल आया तौ व्यासजीको अत्यन्त दुःख हुआ, और भगवान्की अंगुलीपर कपडा भिगोकर बांधा, सोई रीति आजतक भगवान्के शृंगार करनेके समय चली आती है इस चरित्रसे भगवान् अपने भक्तके माधुर्य भावको विश्वासी जान उसको शिक्षा देते हैं कि मेरे भक्त जिस भावसे मेरा स्मरण करते हैं उसी भावसे मैं प्रगट होता हूं. एक समय उदंछका रहनेवाला ब्राह्मण व्यासजीके समीप आया, और जिस जगह हरिभक्तोंके लिये रसोई होती थी उसी जगह वह मिला; व्यासजीने उसको रसोईकी सूखी सामग्री दिला दी, और वह ब्राह्मण चर्मके छागलेमें पानी लाकर रसोई करने लगा, यह देख व्यासजीभी जूतेमें घृत ले गये, और उस ब्राह्मणकी रसोईमें रख दिया. व्यासजीके इस चरित्रसे ब्राह्मणको महान् दुःख हुआ और व्यासजीसे बुरे वचन कहने लगा; व्यासजीने कहा कि दुःख पानेकी कुछ आवश्यकता नहीं है. देखो जिस धातुका पात्र आप अपने पानीके लिये पास रखते हैं यह विचार कर उसी धातुके कटोरेमें मैं घृत लाया था. व्यासजीका यह वचन सुन ब्राह्मण लज्जायमान हो गया और व्यासजीके अंतःकरणकी

वृत्ति समझ गया; और भगवान्की शरण होकर उनका भक्त हो गया. एक साधु कितने एक दिनतक भगवान्की सेवामें रहा, और किशोर किशोरेजीके निकट सुन्दर गानका कीर्तन किया करता, जभी वह जानेका विचार करता तभी व्यासजी उसको समझा बुझाकर ठहरा लेते और कहते कि वृन्दावन छोडकर कहां जाते हो. एक दिन वह ब्राह्मण हठसे विदा हुआ और जो शालिग्रामजीका बटुवा मंदिरमें विराजमान कर दिया था सो व्यासजीसे मांगा; व्यासजीने शालिग्राम-जीके जगह उस डिबियामें एक चिडिया बंद कर दी और साधुको दे दिया, वह मंदबुद्धि साधु अपना बटुवा लेकर चल दिये; और जब यमुनाजीके किनारे आये तौ पूजन करनेके लिये डिबिया खोली तभी उसमेंसे वह चिडिया उड गई. वह साधु फिर व्यासजीके पास आया. और उसने कहा कि हे महाराज! मेरे स्वामी इस तरफको उड आये हैं अतिशीघ्र उनको ढूंढ दीजिये. व्यासजीने कहा कि तुम्हारे स्वामी और किशोरजीसे अवश्यही प्रीति हो गई है इसी कारण वह यहां आ गये, ढूंढ देंगे यह कहकर मंदिरमें गये. और भीतरसे आनकर कहा कि तुम्हारे स्वामी किशोरजीपर हैं, जब तुम्हारे स्वामी वृन्दावनसे जाना नहीं चाहते तब फिर तुम किस कारणके लिये जाते हो; साधुने व्यासजीका वचन सुनकर वृन्दावनमेंही वास किया एक समय शरदपूर्णिमाको भगवान्के रासविलासका समाज एकात्रित हुआ, उस समय समस्त जन प्रिया प्रीतमके प्रेममें मग्न थे, नृत्यके समय प्रियाजीके चरणसे नूपुर टूट गया और ताल बिगडी व्यासजीने तत्काल अपना यज्ञोपवीत तोडकर प्रियाजीके नूपुरको सुधार दिया और कहा कि सारी उमरसे इस यज्ञोपवीतको गरदनका भार समझता था परन्तु आज इसका रखना सुफल हुआ. भक्तमालमें जो व्यासजीकी महिमा नाभाजीने लिखी है कि व्यासजीका भक्तिका इष्ट

सुनकर एक महंत परीक्षाके लिये लाहौरसे आया, और उसके साथमें बडी जमात थी उसके साथके साधु क्षुधाके मारे व्याकुल होने लगे, तब व्यासजीने कहा कि अब रसोई तैयार होकर भगवान्को भोग लगाया जायगा कुछ देर नहीं है; परन्तु साधु इस वचनसे न माने. व्यासजीने जो भगवान्का भोग तैयार था सो ला दिया; उन्होंने दो चारही ग्रास खाये; फिर दर्दका मिसकर उठ खडे हुए. व्यासजीने उस बचे हुए भोजनको अच्छी तरह रख लिया और हाथ जोडकर विनती करी और कहा कि आपने बडा अनुग्रह किया जो जूंठ न दी है अब कई दिनका तोशा हो गया; अब आप कृपा करें और जो भोजन तैयार हो उसको प्रसाद पावे, व्यासजीके यह वचन सुनकर उस महंतको विश्वास आ गया और जाना कि इतनी श्रद्धा और विश्वास व्यासजीके सिवाय और किसीमें होनेवाला नहीं. व्यासजीने एक पद भगवान्को अर्पण किया उससे भगवान्के शीतप्रसादकी महिमा प्रगट होती है. जो भगवान्के भक्तोंकी झूंठन नहीं खाते उनके मुँह वराह और श्वानकी सदृश हैं; कारण कि जरासा बालक जिसकी गालोंतक रट बहती है, और सब मनुष्य उसका मुख चुम्बन करते हैं, और कामके वशीभूत होकर स्त्रीकी राल चाटते हैं, जब तो मनको घृणा नहीं आती, और भगवान्के भक्तोंके शीतप्रसादसे घृणा करते हैं वह पुरुष अवश्यही नरकको जायगे और उनका मुँह सूकर और श्वानके मुखकी समान होगा. व्यासजीके तीन पुत्र थे; झगडा मिटवानेके लिये सब माल असबाबका बाटही देना उचित समझा; यह विचार कर तीन भाग किये. एक हिस्सा तौ समस्त द्रव्य और दौलतकाही, और दूसरा श्रीकिशोर किशोरीजीका; और तीसरा हिस्सा तिलक छाप और आमदनीका; सो पहला और दूसरा हिस्सा तौ रामदास और विलासदास बडे पुत्रने लिया, और किशोरदासजीके बांटेमें तिलक

आदि आया उन्होंने वह तिलक और छापा लेकर स्वामी हरिदासजीसे धारण कर भगवान्के भजनका आरंभ किया; और थोडेही समयमें वह सिद्ध हो गया और वह पूर्ण भक्त हो गया. एक दिन किशोरदासजी और व्यासजी स्वामी हरिदासजीके साथ यमुनाजीपर गये, व्यासजीने उसी पदको भगवान्के निज रासके समयमें ललताजीके मुखसे सुना इसी कारण व्यासजीको किशोरदासजीकी भक्तिका विश्वास हुआ व्यासजीके बारह चेले सिद्ध और प्रतापी हुए, उसमेंसे परशुरामजीका पुरुषवृक्ष निम्बार्क स्वामीकी कथामें लिखा गया; और सोभूरामजीका उनकी कथामें लिखा जायगा. यद्यपि हरिव्यासजीके कुटुम्बका पुरुषवृक्ष मिला था परन्तु भ्रमिक होनेके कारण नहीं लिखा गया, ऊपर लिखे हुए दो पुरुषवृक्षही बहुत हैं.

सोभूरामकी कथा १८.

सोभूरामजी हरिव्यासदेवके चेले जिनकी कथा ऊपर लिखी है ब्राह्मण बूडियाके रहनेवाले परमभक्त निम्बार्क संप्रदायमें हुए. अबतक उनके रहनेका मंदिर और बगीचा बूडियामें जगाधरीके पास एक या दो कोसपर है; और ऐसा विख्यात और प्रतापी गुरुद्वारा है कि जिसके प्रतापसे लाखोंका उद्धार और भगवान्के भक्त होते हैं. जब महाराज सोभूरामजी अपने गुरुसे विदा होकर आये; तौ लोगोंको संसारके दुःखोंमें लिप्त देखकर दया कर इतना परिश्रम किया, कि थोडेही समयमें उस जिलेमें भगवान्की भक्तिका प्रचार हो गया. पहले यमुनाजी बूडियेके नीचे बहती थीं एक समय जब यमुनाजी चढी तौ शहर डूबने लगा, उस शहरके समस्त मनुष्योंने सोभूरामजीका आश्रय लिया; और शहरको बचानेके लिये प्रार्थना करी. उनकी प्रार्थनाको सुन सोभूरामजीने यमुनाजीसे प्रार्थना करी. और कहा की हे मातः! तू पुत्रोंको पालन करती है या उनको अपने प्रवाहमें डुबोती

है? यदि यही इच्छा है तो तुम्हारी सहायताके लिये मैंभी उपस्थित हूं निदान वह फावडा लेकर पानीके निकलनेकी राह बनाने लगे, तब यमुनाजी हट गई, और आजतक वहां नहीं गई; कई बार आरतीकी समय शंखध्वनि हुआ करती थी, धर्मविरुद्धी और हाकिमको बुरा मालूम हुआ और मनमें विचार किया कि सोभूरामजीको काला मुँह करके गधेपर चढाना चाहिये. सोभूरामजी प्रभातकोही वही रूप धारण कर हाकिमजीके दरवाजेपर जा पहुँचे, हाकिमजीने जो उनके इस भेषसे आनेका समाचार सुना तो उनपर विश्वास कर लज्जायमान हो चरणोंपर गिर पडा, और क्षमा मांगने लगा. उनके भाई आत्मारामजी उनकी कृपा और दीक्षामें ऐसे भक्त हुए कि कृष्णकी भक्तिका खंभ थे, और बुद्धिमान् ब्राह्मण कुलके प्रकाशित करनेवाले गंभीर समस्त गुणोंमें निपुण साधुसेवामें इतनी प्रीति रखते थे कि जो कुछ उनके पास होता समस्त साधुओंकी सेवामें लगा देते; और प्रजापर कृपा अनुग्रह करते थे, और उनके दो भाई जो संतदास और माधोदास थे उनकी भक्ति भगवान्‌में ऐसी हुई कि संतदासजीने तो गृहस्थीको त्याग वैरागका आश्रय लिया, और भगवान्‌की भक्तिपर विश्वास कर संसारके समस्त पदार्थोंको धूलकी समान जान त्याग दिया, और माधवदासजीने अपनी भक्तिके बलसे जोगियोंको विजय कर अपना चमत्कार दिखाया अर्थात् एक समय उनके मकानपर जोगी आये और अपने चारों तरफ अग्नि जलाकर बैठ गये उनमें जो जोगियोंका सरदार था वह क्रोध कर कठोर वचन कहने लगा; तब माधोदासजी जलती हुई अग्निको अपनी चादरमें बांधकर अलग जा बैठे जोगी विश्वासी होकर उनके चरणोंपर गिर पडा भक्तमालके कर्ता लिखते हैं कि यह दो पुरुष भगवान्‌की भक्तिके ऐसे प्रचार करनेवाले हुए कि मानों उन्होंने इसी कारण अवतार लिया था और उन्होंके चरणोंके प्रतापसे इस संसारको ज्ञान प्राप्त हुआ है.

हितहरिवंशजीकी कथा १९.

ऐसा कौन है जो हितहरिवंशके भजन और उनके भावका वर्णन कर सके. जिसने श्रीराधिकाजीके प्रेममें विश्वाससे मनको लगाया और प्रिया प्रीतमके सर्वदा विहार करने और कुंजमहलोंको मनमें विचार करनेसे मिलकर सखीभावसे शृंगारकी सेवा करी, उनको भगवान्के महाप्रसादमें इतना विश्वास था कि उनको अपना सर्वस्व जानते थे. और अहंकारकी रीतिसे विरक्त होकर अन्य भक्तका दृढतासे मग्न रहते थे. जो पुरुष व्यासजीके पुत्रपर विश्वास और धर्मसे उनकी सेवा करेगा वह अच्छी तरह समझ सकता है, लिखनेवालेने जो मूल भक्तमालमें व्याससुत लिखा; उनको समझनेवाले शुकदेवजी

भी कहते हैं कि उनका नाम व्यास था. यह गुसांई महाराज राधाव-
ल्लभी संप्रदायके आचार्य और उत्पन्न करनेवाले हुए कि जिनके प्रता-
पसे सैकडों भक्तमान्के सम्मुख होकर भगवान्की सद्गतिको पहुँचते
हैं, उनके पिता व्यास गौड ब्राह्मण देववंद इलाके सहारनपुरके रहने-
वाले थे और बादशाहके मंसवदार थे, परन्तु संतान न थी. नृसिंह
आश्रम उनके बडे भ्राता नृसिंह उपासककी आशीश और कृपासे
हरवंशजीका व्यासजीकी स्त्री ताराकी कुक्षिमें संवत् १५५९ में जन्म
हुआ. उनकी बाल अवस्थासे श्रीराधाकृष्णमें भक्ति थी श्रीराधाजीने
मंत्रका पत्ता पीपलके वृक्षपर स्वप्नमें दिया और भगवान्की मूर्तिको
कुयेमेंसे गुसांईजीने निकाल मंत्र और मूर्तिको लेकर मंत्रका तो जप
करना प्रारम्भ किया, और भगवान्की मूर्तिको श्रीराधाजीकी गद्दी-
पर विराजमान कर उनकी सेवा करने लगे. रुक्मिणी नाम स्त्रीकी
कुक्षिसे दो पुत्र और एक कन्या हुई. जब उनके विवाह इत्यादिक हो
गये तो वृन्दावनसे वनका मनोरथ किया. जब चरथावलनगरीमें पहुँचे
तो भगवान्की आज्ञासे एक ब्राह्मणने दो कन्या और श्रीराधावल्लभ-
जीकी मूर्ति भेंट करी, इन्होंने वृन्दावनमें जाकर मंदिर बनवाया; और
भगवान्की मूर्तिको राधाजीकी गद्दिकी जगह स्थापन करके राधाव-
ल्लभी संप्रदायका प्रचार किया इस संप्रदायमें राधाकृष्णजुगलस्वरू-
पकी उपासना है, परन्तु राधिकामहाराणीकी भावना श्रीकृष्णस्वामीसे
विशेष अपनेको श्रीराधाजीकी सखी और दासी जानकर जुगलस्वरू-
पके ध्यान और [illegible] ध्यान और शृंगारमें मग्न रहते हैं, और
यही कहते हैं कि श्रीराधिकाजीकी कृपा अनुग्रह होनी चाहिये. श्री-
कृष्णस्वामी स्वयंही कृपा करेंगे, शृंगार और तिलक इत्यादिका वर्णन
भेषानिष्ठामें लिखा जायगा. संस्कृतमें राधासुधानिधि ग्रंथ रचा कि उस
मनोहर और रसीली कविताका वर्णन नहीं हो सकता, और भाषामें

हितचौराशी गुसांईजी महाराजके बनाये हुए विख्यात हैं. गुसांई-जीको भगवान्‌के प्रसादमें इतनी प्रीति थी कि भगवत्प्रसादीके पानके बीडेको करोड एकादशीव्रतसेभी अधिक समझते थे. कोई माधवी संप्रदायवाले कहते हैं कि प्रथम गुसांईजी माध्वसंप्रदायके सेवक थे, एकादशीव्रतके दिन पानका बीडा खा लिया तौ उसपर कुछ तकरार हुई, इस कारण उन्होंने निरालाही मार्ग निकाला, परन्तु इसमें कुछभी संदेह नहीं कि निम्बार्क संप्रदाय और माध्वसंप्रदायसेही रीति ग्रहण करी है; और राधिका महारानीमें इस संप्रदायवालोंका परकीया भाव है; और गुसांईजीकी संतान देवबंद और वृंदावन दोनों जगह है. और राधावल्लभलालजीकी उपासनाका उपदेश और प्रताप सबके लिये प्रचलित है.

चतुर्भुजजीकी कथा २०.

चतुर्भुजजी जो हितहरिवंशजीके शिष्य ऐसे भगवान्‌के परम भक्त हुए कि समस्तके मनोंमें भगवान्‌की भक्तिका प्रचार उत्पन्न कर भगवान्‌की शरण किया, और श्रीराधावल्लभजीके पवित्र चरित्र ऐसी सुन्दर कवितामें वर्णन करे कि उनको श्रवण कर हजारों मनुष्य सद्गतिको प्राप्त हो गये और हरिभक्तोंकी ऐसी सेवा करी कि उनके चरणकी रजको अपने शीशका आभूषण समझा और सत्संगतिका इतना विश्वास था, कि उसमें मग्न रहते थे. जिन्होंने गुरुके चरणोंकी कृपासे गुडवाने देशको भगवान्‌का भक्त कर दिया, अर्थात् उस देशमें भगवान्‌की भक्तिका प्रचार किंचितभी न था, कालीजीकीही उपासना थी कि वहांके लोग मनुष्यको बलि किया करते थे. चतुर्भुजजीका इस देशमें जाना हुआ और यह दशा देखी तौ प्रथम कालीको भगवान्‌की शरण करना अवश्य समझकर भगवान्‌का मंत्र सुनाया. जब

कालो हरभक्त हुई तो लोगोंको स्वप्नमें शिक्षा करी कि तुम लोग शीघ्रही स्वामी चतुर्भुजजीके सेवक होकर भगवान्‌की भक्तिका आचरण करो, नहीं तो सबका नाश हो जायगा. तब सब लोग अति शीघ्र चतुर्भुजजीके शिष्य हो गये, और माला तिलक धारण करके भगवान्‌के भक्त हुए, और पहले संतापोंसे बचे स्वामीजीने कुछ काल वहां ठहरकर भगवान्‌की पूजाका आराधन उत्साहसहित साधुसेवाका विस्तारपूर्वक प्रचार किया; और श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाकर भगवान्‌के प्रेममें पूर्ण कर दिया.

एक समय कोई उचक्का किसी बनियेकी थैली उठाकर भागा, तो बनिया उसके पीछे २ दौडा उचक्केने जब कोइ जगह छिपनेकी न देखी तो वह स्वामीजीकी कथामें जा बैठा. इस समय यह कथा थी कि जो कोई रीतिके अनुसार दीक्षा लेता है तो उसका दूसरा जन्म हो जाता है. यह सुनकर उचक्काभी उसी समय स्वामीजीका शिष्य हो गया, इतनेहीमें थैलीका मालिकभी जा पहुँचा और उसने स्वामीजीसे कहा कि; स्वामीजीने साधुसे कहा कि इसने इस जन्ममें किसीका माल नहीं चुराया है इस बातकी शपथ ले लो. अंतमें यह झगडा राजाके पास पहुँचा, और साधुके हाथमें लाल लोहेका गोला रक्खा, और भगवान्‌की कृपासे साधुको कुछभी न हुआ. राजाने आज्ञा दी कि इस बनियेको सूली दे दो यह लोगोंको वृथा झूठा दूषण लगाता फिरता है. जब उस बनियेको राजाके नोकर सूली देनेको ले गये तो साधुको बनियेपर दया आई, और उसने राजासे कहा कि वास्तवमें थैली मैंने चुराई तो थी, राजाने कहा कि तेरी परीक्षा तो अब हो चुकी फिर तू किस कारण कहता है कि मैंने चुराई है. तब साधुने स्वामीजीकी महीमा और भगवान्‌की कृपाका समस्त वृतान्त वर्णन किया, तब राजा स्वामीजीका विश्वासी भक्त होकर भगवान्‌का

सेवक हो गया और बानियेको छोड दिया. एक दिन साधु आ रहे थे स्वामीजीका खेत पका खडा था उसमें घुस गये और बाल तोडकर खाने लगे, तब रखवालेने पुकारकर कहा कि अरे यह खेत चतुर्भुज स्वामीका है तुम इसको क्यों खाते जाते हो इसमसे निकल जाओ इसमें मत घुसो साधुने रखवालेके वचनको सुनकर कहा कि यह खेत स्वामी चतुर्भुजजीका है तौ तुम क्यों पुकारते हो, यह हमाराही है. स्वामीजीने यह समाचार सुना तौ अत्यन्त प्रसन्न हुए और विचारा कि आज हर भक्तोंने मेरे मालको अपना समझा, यह विचार शक्कर आदि लेकर आये और दंडवत् प्रणाम करके अपने स्थानपर ले गये, और बहुतही सेवा शुश्रूषा करी.

जगद्गुरु श्रीस्वामी शंकराचार्यजीका चरित्र २१.

श्रीशंकराचार्य स्वामी कलिमें धर्मके रक्षक भागवतधर्मके प्रवर्तक शिवजीका अवतार और आचार्य हुए. जितने अनीश्वरवादी जैनधर्मी पाखण्डी बौद्धधर्मके द्वेषी थे उन सबको तथा १०३२ दूसरे अवैदिक मतोंको निराकरण कर जगत्को वेदशास्त्रके मार्गपर दृढ किया. दक्षिण देशमें इनका अवतार हुआ, इनको प्रगट हुए चौबीस पच्चीस सौ वर्ष हुए हैं. यह वेदशास्त्रानुसार दण्ड धारण कर संन्यासी हुए और सनातन धर्मकी परिपाटी ग्रहण कर वेदधर्मको संसारमें प्रगट किया. सेवडोंको परास्त कर मण्डनमिश्रको मीमांसामें निरुत्तर कर वेदान्तशास्त्रका सिद्धान्त अचल और अपेल प्रतिपादन किया. पश्चात् मण्डनमिश्रकी भार्य्याने कामशास्त्रमें प्रश्न किये, और यह यती संन्यासी थे उस मार्गसे इनको क्या प्रयोजन था इस कारण राजा अमरूके शरीरमें जिसका उसी दिन देहान्त हुआ था प्रवेश कर छः महीने उस शरीरमें रहे, और अमरूशतकनामक एक

बहुत उत्तम ग्रंथ उस शरीरमें रचा राजा अमरूकी जितनी रानी थीं सबने जान लिया कि यह कोई योगी है इसका शरीर कहीं गुप्त होगा, सो उसको जला देना चाहिये. जिससे यह राज्य और हमारा सुहाग बना रहे, इस कारण उस शरीरको ढूंढवाकर जला देनेकी आज्ञा दी. आग देनेकी तैयारी होकर ज्योंही आग दी कि इनको समाचार विदित हुआ और योगसे वह शरीर छोड निज शरीरमें प्रवेश किया, और अग्निसे रक्षाके निमित्त नृसिंहजीका स्मरण किया, और तत्काल वह अग्नि शीतल हो गई, तब स्वामीने उस अग्निसे निकलकर मण्डनमिश्रकी भार्याको परास्त किया और मण्डनमिश्र इनके शिष्य हो गये फिर चार्वाकमतवालोंको परास्त करके धर्ममें प्रवृत्त किया. चार्वाकमत और बौद्धमतको भारतवर्षसे सर्वथा उन्मूलन कर दिया. सांख्य और हठयोगियोंकोभी स्वामीने शिक्षा की, और फिर सेवडोंसे महावाद हुआ और उनको जयकर उनकी धूर्तताई मंत्रचेटक आदिको दूर किया, और उनके तंत्र उन्हींके ऊपर पडे. अनेक कोठोंसे गिरकर मरे अनेक नदीमें डूबे जो रहे उनको राजा सुधन्वाने जो उनका शिष्य हो गया था देशसे बाहर किया. अनेक सनातनधर्मावलम्बी हो गये. जो शरणमें आये उनपर कोई उपद्रव न हुआ; आशय यह कि उस समय वेदधर्मसे विमुख कोई भारतवर्षमें न रहा जैसे बना वैसे उसको भगवद्धर्मपर दृढ किया, स्थान २ पर मन्दिर शिवालय बनवाये, प्रत्येक देवताकी महिमामें स्तोत्र रचना किये. पूर्णरीतिसे वैदिक पूजनका विस्तार किया, गीता ब्रह्मसूत्र दशों उपनिषद् विष्णु सहस्रनाम आदि ग्रंथोंपर भाष्य किया. यथार्थ तो यह है कि इस कलियुगमें यह आदि आचार्य गिने जाते हैं. यदि शंकरस्वामीका अवतार न होता तो भारतवर्षसे वेदधर्म उठ चला था; इनकी कथा विस्तारसे

शंकरदिग्विजयमें लिखी है, यहां तो नाममात्र सूक्ष्म वृत्तान्त लिखा गया है. तिलकका वर्णन वेषनिष्ठामें होगा. निर्गुण उपासक स्वामीको निर्गुण और सगुन उपासक सगुन कहते हैं स्मार्त सगुण उपासनाकी पद्धति यह है कि अपने इष्टको अंगी और दूसरे देवताओंको अंग मानते हैं. भगवान्की अद्वैतता पूजा जप स्मरण और संप्रदायोंकी समान इसमें है यह नहीं कहना चाहिये किन्तु यह सब संप्रदायोंकी आदि होनेसे मानो सब संप्रदायोंने इससे शिक्षा पाकर अनुकरण किया है शंकरस्वामीके बहुतसे शिष्य हुए और इन्होंने मठ स्थापन किये गिरि पुरी भारती सागरादि दश नामके संन्यासी इन्हीके मठोंमें होते हैं. यद्यपि इनके मठ मन्दिर बहुत हैं. परन्तु चार मठ बडे विख्यात हैं. पाश्चिममें शारदा, दक्षिणमें शृंगेरी, उत्तरमें जोशी, पूर्वमें गोवर्द्धन मठ है. गुरुद्वार सहस्त्रों हैं इस कारण उनकी गुरुपरंपरा न लिखकर केवल शंकरस्वामीके शिष्योंतककी लिखी है. भारतधर्मकी रक्षा २५ वर्षकी अवस्थातक पूर्ण रूपसे करके उपदेशसाहस्त्री आदि अनेक ग्रंथोंको निर्माण कर ब्रह्ममें लीन हुए. पुरुषवृक्ष आगे लिखा है.

स्मार्तकी परम्पराका चित्र.
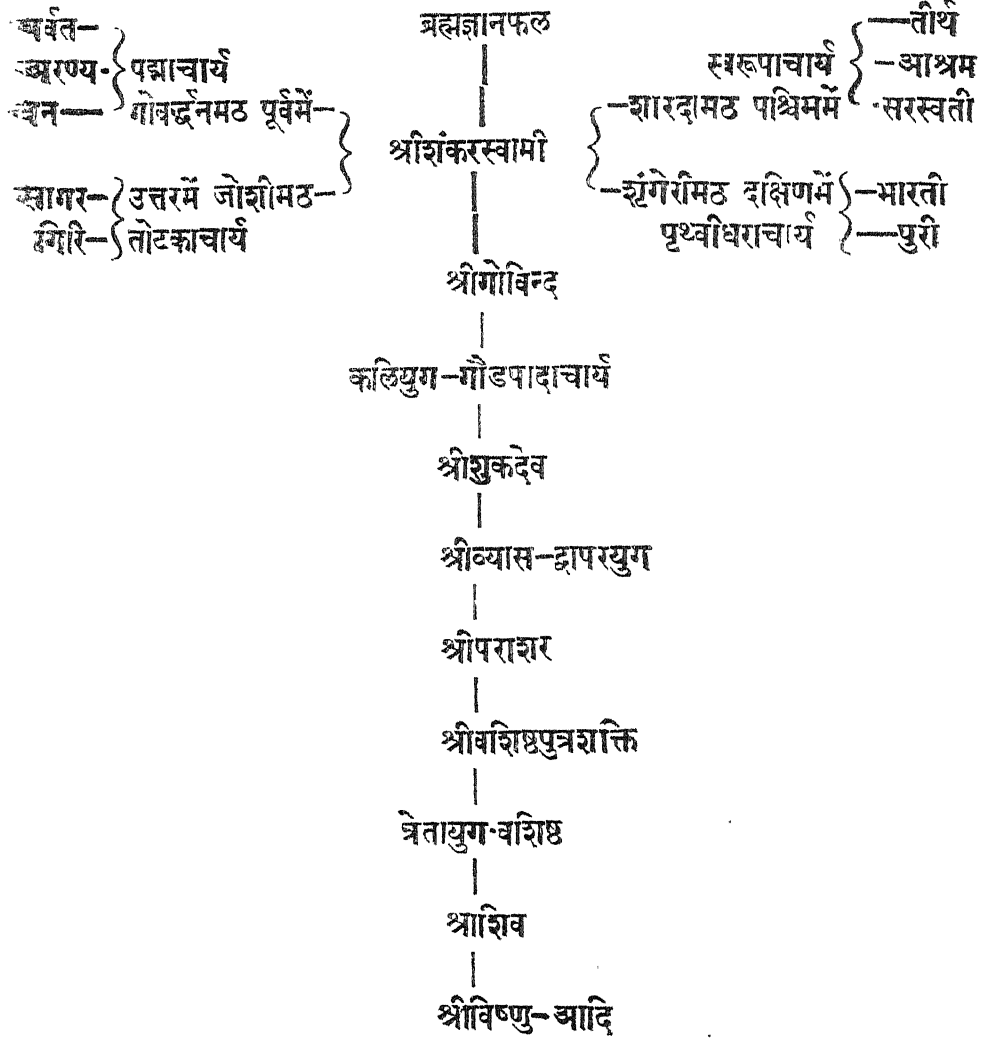
अथ

तिसरी निष्ठा साधुसेवा ।

(और सत्संगतिका वर्णन इसमें तीस भक्तोंकी कथा है.)

प्रथम तो श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलकी अंबररेखाको और वाराह अवतारको दंडवत् है जो उन्होंने निज धाम ब्रह्मपुरीमें यह अवतार धारण करके पृथ्वीको समुद्रसे निकाला, और हिरण्याक्षका वध कर उत्तम गति दी. सब शास्त्र और पुराणोंका यही सार है कि इस जीवनके आवागमनके बंधनसे छूटनेके लिये सत्संगतिसे अधिक और कोई साधन और रक्षा नहीं. भगवान्‌ने सत्संगतिको वह महिमा दी है कि तत्काल भगवान्‌की प्राप्ति होती है. यद्यपि उसका गुण और वर्णन लिखनेमें नहीं आ सकता, तौभी उस अगम्यमेंसे कुछ थोडासा लेकर लिखा जाता है. विना साधुओंकी सेवाके संगति नहीं मिल सकती; इसी कारण उसकी महिमाभी इसी निष्ठामें लिखी जायगी. अब विचारना चाहिये कि सतसंग शब्दका मूल अर्थ सत् भगवान्‌के भक्तोंकी संगति है परन्तु कई पुरुषोंने इस संगतिके कई भेद लिखे हैं और उन भेदोंमेंसे अधिक दो भेद हैं. १ शास्त्र और तीर्थोंका सत्संग, २ भगवद्भक्तोंका. शास्त्रकी संगतिका यह अभिप्राय है कि शास्त्र पढना. श्रवण करना उसके अनुसार आचरण करना. जो उसके प्रतापसे असार संसार और ईश्वर माया जीवका ज्ञान होकर नरककी यंत्रणासे भय माने, वह भगवान्‌की मनमोहन माधुरी परम शोभाही सब वेदोंका सार है इस प्रकार मनमें विचार कर ले. दृढ और स्थिर होकर यह जीव कृतार्थ और सुख दुःख भले बुरेसे व्यतिरिक्त हो जायगा सो वह शास्त्र पढने और उनके अनुसार आच-

रण करनेके योग्य हैं. उन शास्त्रोंमें भगवान्के चरित्र और भगवान्की महिमा आदिका वर्णन है जिस प्रकार रामायण, भागवत, गीता आदि पुराण स्मृति, वेद और ऋषियोंके बनाये हुए ग्रंथ संस्कृत न जाननेके कारण पढनेमें नहीं आते. इस कारण भाषामें तुलसीकृत रामायण, विनयपत्रिका, सूरसागर, दशम, व्रजविलास, कृष्णदास नंददास आदिके बनाये हुए ग्रंथ पढता रहे. उसके द्वारा संस्कृतकीही समान फल निकलेंगे और भाषामें दो चार महीने परिश्रम करनेसे अभ्यास हो जाता है. मंदभागी और आलसी होना दूसरी बात है. कोई २ पुरुष धर्मविरुद्धी मनुष्योंके उल्था किये हुए ग्रंथोंको पढा करते हैं परन्तु मेरे विचारमें यह अनुचित है. कई वार इस विषयमें लोगोंसे वार्तालाप हुई; और सबने मेरे सिद्धान्तको उत्तम माना परन्तु उन्होंने कहा कि हमें संस्कृत भाषामें अभ्यास नहीं; तो उन ग्रंथोंके किये उल्थेको पढकर क्यों न ज्ञान प्राप्त हो. क्या जाने इसीसे काम निकल आवे, परन्तु उन लोगोंके किये उल्थेमें हलके और कठोर वचन देखकर मनको ऐसी घृणा होती है कि अपने हाथसे उनका पढना उचित नहीं लिख सक्ते. जो उस उल्थेमें पढनेकी अयोग्यता विस्तारपूर्वक लिखूं तो ग्रंथ बहुत बढ जाय इस कारण सूक्ष्म रीतिसे लिखता हूं.

पहले तो उल्था करनेवालोंसे मूल अर्थका अच्छी तरह वर्णन नहीं हो सका. भगवद्गीता अथवा महाभारतके उल्थेके किसी श्लोकसे मूलशास्त्रकी टीकासे मिलाइये तो किंचित्भी नहीं मिलेगा. दूसरे कोई उल्था ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें उल्था करनेवाले धर्मविरुद्ध और द्वेषसे अपनी तरफसे हिन्दुधर्मकी निन्दा नहीं करते हो. जिस प्रकार महाभारत आदि ग्रंथोंका तर्जुमा अबुजफजलने लिखा है वह जला देनेके योग्य है उसी प्रकार योगवाशिष्ठ और भागवतादिके

तर्जुमेमें महा अनर्थ किया है. वे स्वयं संस्कृतशून्य होकर ग्रंथोंका मर्म नहीं जानते और जो कोई किसी पण्डितकी सहायतासे कुछ लिखने बैठे हैं तौ उन्होंने भगवान् और महापुरुषोंके वर्णनमें कुछभी विशेषता नहीं की है ते और उनको समान शब्दोंमें लिखते हैं, वे कठोर शब्द हृदयपर छुरीकी समान लगते हैं, तीसरे जो ऋषियोंके मुखसे निकले हुए संस्कृतपद चित्तपर जमते हैं, वैसे उल्थेके यामनी शब्द चित्तपर नहीं जमते, और उनसे प्रगट होता है कि यवनोंका जैसा मन है वैसाही उनके लिखे ग्रंथोंसे फल होता है और इसी कारण मनोरथ नहीं मिलते. उस उल्थेका पढनेवाला भक्त आजतक पृथ्वीपर नहीं देखा होगा; और इसके अतिरिक्त कि ब्राह्मणोंसे विवाह कर उनको दुःखी कर दे और अपनी कथा व संगतिका विश्वास खोदे उससे कुछभी फल उनको प्राप्त नहीं होता. चौथे जिन मंत्रोंके प्रतापसे भगवानमें मन लगे, और बात जिनको ऋषि और भक्तोंने मूलग्रंथोंमें गुप्त और प्रगट लिखा है, वे बातें उन उल्थाओंमें नहीं है फिर उनका पढना किसी रीतिसेभी उचित नहीं. अच्छी प्रकार विचार लो कि जिन लोगोंने संस्कृत और भाषा किंचित्‌भी पढी है, वे थोडे बहुत तो उत्तम मार्गपर चलते हैं; और जिन्होंने भागवत रामायण महाभारत योगवाशिष्ठ आदि सैकडों यवनोंके रचित ग्रंथोंके पढा उनको कभी कुछ फल प्राप्त नहीं हुआ, और जो कोई कहे कि फारसीके उल्था विना हमारा काम नहीं चले तो हिन्दुओंके लिखे हुए उल्थेभी हैं उनको क्यों नहीं पढते. रामायणका उल्था टोडरमल कायस्थने किया, गीता एक काश्मीरीने बनाई; इसी प्रकार औरभी अनेक ग्रंथ हैं, तीर्थोंकी सतसंगतिका अभिप्राय यह है कि श्रीगंगाजी यमुनाजी और पुष्कर आदि तीर्थोंके स्नान और यात्राभी है, इसमें कई एकका कथन है कि

जिन तीर्थोंको भगवान्ने यह प्रताप दिया है उनके दर्शन स्नान और पान करनेसेही अंतःकरण निर्मल हो जाता है. और कोई २ कहते हैं कि किसी समयमें जब भगवान्के भक्त एक स्थानपर एकत्रित होते हैं, इसी कारण उस स्थानका नाम तीर्थ कहा जाता है; और उन भक्तोंकी संगतिसे और स्थानके प्रतापसे जिसमें उन भक्तोंके चरण पडे हैं ऐसे मनुष्यको मनकी निर्मलता प्राप्त होती है शास्त्रके इस वचनके अनुसार तीर्थसे भगवान्के भक्तोंका अधिकार अधिक है; परन्तु दोनोंही प्रकारसे उसमें किंचित्भी संदेह नहीं कि तिर्थोंकी सत्संगति और यात्रा करनेसे यह मनुष्य निर्मल होकर भगवान्में लग जाता है, और तीर्थ स्नान करनेकी रीति धामनिष्ठामें लिखी जायगी. सत्संगके प्रथम भेदका वर्णन हो तो चुका अब सत्संगतिके दूसरे भेद अर्थात् महाश्रेष्ठ अधिकारका आख्यान होता है, और जो महिमा सत्संगकी निष्ठाके आदिमें लिखी और कुछ वृत्तान्त प्रथम भागमें हुआ, और शास्त्रोंसे जो सत्संगति ली है वह भगवान्के भक्तोंकी सत्संगति है. निःसंदेह जिस किसीने भक्तोंका सत्संग किया है वही अपने मनोरथको प्राप्त हुआ; भगवान्का मिलना और भक्तोंका मिलना एकही है; भगवान्ने कहा है कि स्वर्ग और मुक्तिका सुख एक क्षणके सत्संगके समान नहीं हो सकता. दशमस्कंधमें लिखा है कि इस संसारसे छूटनेका उपाय मुक्ति प्राप्त होनेके लिये सत्संगही है एकादशमें भगवान्का वाक्य है कि जो योग आदिसे वशीभूत नहीं होता परन्तु सत्संगसे होता है. पद्मपुराण और स्कंदपुराण विष्णुपुराण आदिभी इसी आशयके साक्षी हैं. अब यह शंका हुई कि समस्त साधन और तीर्थ आदिसे जो भगवान्के भक्तोंके सत्संगको अधिक और विशेष लिखा है इसका कारण है सो विचारना चाहिये. प्रथम तो भगवान्

और शिवजी महाराजका वचन है कि जहां भगवान्के भक्त रहते हैं वहां साक्षात् भगवान् रहते हैं, जब किसीको भगवान्के भक्तोंको सत्संग होगा तौ भगवान्भी जो उसी स्थानपर रहते हैं निःसन्देह मिलेंगे; जो यह बात प्रचेता और नारदजीकी कथासे भागवतमें है जानी जा सकती है.

दूसरे अन्य साधन जिस प्रकार तीर्थ व्रत जप तप नेम संयम आदि सब ऐसे हैं कि हरेक समय साधकका मन उनमें नहीं लगता; वरन दूसरी ओर चलायमान होकर संसारी पदार्थोंमें जा मिलता है, और भगवान्के भक्तोंको संत्सगतिसे सब कालमें भगवान्मेंही रहता है. क्योंकि वहां भगवान्के चरित्र और भगवान्की कथा सेवा भजन इत्यादिक और कुछभी काम नहीं होता; जो किसी समय उसका चित्त दूसरी ओर लग जाय तौ शीघ्रही भगवान्की ओरको आ जाता है. तीसरे अन्य साधन अर्थात् तीर्थ शास्त्र इत्यादि सबकी यह दशा है, कि कहीं तो आचार्य और भगवान्का भक्तिकी रीति है परन्तु साधक नहीं; और कहीं साधनके लिये साधक उपस्थित है परन्तु उसकी रीति नहीं मिलती; और कहीं इस प्रकार होता है कि रीति और साधनका मार्ग तौ जाना हुआ है परन्तु संदेह निवृत्त नहीं होता; अथवा कोई उस मार्गके वटमार जैसे काम क्रोध लोभ मोह द्वेष शत्रुता आदि एक क्षणमें सब द्रव्य लूट लेते हैं; और साधन तौ इस कारण न्यून हैं कि उनमें सब बातें इकट्ठी नहीं; और भगवान्के भक्तोंके सत्संगको इस कारण विशेषता है कि जिस वस्तुकी इच्छा है वह सब इकट्ठी मिलती है और मनइच्छित स्थानपर जानेके निमित्त ज्ञान वैराग्यकी भक्ति विमान लिये उपस्थित रहती है सो जिस किसीको भगवान्की भक्तिकी इच्छा है और इस संसारसमुद्रसे पार उतरना चाहता है तो वह सत्संगति करे. अब विचारना चाहिये

कि सत्संग सबही स्थानपर है, परन्तु अपनीही मूर्खतासे नहीं दीखता यह कैसे योग्य है; कि स्वयं पापी और दूषित होनेके कारण दूसरे-कोभी अपनेही समान जाने और उसके भले कर्म भजन इत्यादिको न समझकर अवगुणको अधिक समझे. वरन इसके विपरीत हो अर्थात् अवगुणको न देखकर गुण और आचरणोंको अंगीकार करे तौ सत्संग सबही स्थानपर मिलता है; और इसी प्रकार अवगुण लगाया जाय तौ कोई जीव योनि और जीवरहित वस्तु दोषरहित नहीं. ऊपर लिखी हुई रीतिके अतिरिक्त तीर्थ स्थान जिस प्रकार वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, काशी. जगन्नाथपुरी. उज्जैन, कांची, हरिद्वार; पुष्कर इत्यादि सैकडों पूजा स्थानोंपर सत्संग-मनइच्छित मिलता है; परन्तु साधकको विचारना चाहिये कि सत्संग-गसे केवल यही अभिप्राय नहीं है कि "कोई साधु आये हैं चलो दर्शन कर आवें" सत्संग उसका नाम है कि भक्तोंको भगवान्‌काही स्वरूप जानकर उनके वचनपर पूरा विश्वास रक्खे और उससे कभी न फिरे और जबतक भगवान्‌के चरणोंमें पूरी न प्रीति हो जाय, तबतक वही सत्संग सब काल और क्षण क्षण करना आवश्य है. अब इसका विस्तार करना उचित नहीं, नारद, व्यास और वाल्मीकि, अजामेल, शबरी, वारमुखी, अगस्त्य, प्रचेता, ध्रुव, प्रह्लाद आदि हजारों भक्तोंकी कथा जो पुराणोंमें और इस भक्तमालमें लिखी है; पढनेसे और सुननेसे व सत्संगतिके प्रतापसे कैसे २ पापियोंको क्या २ अधिकार मिले हैं. सो वह सत्संग इस प्राणीको विना परिश्रम जब मिलता है कि भगवान्‌के भक्तोंकी सेवामें तनमनसे कमर बांधे, भगवान्‌के भक्तोंको भगवान्‌की सेवामें निष्ठा और विश्वास होता है इतनाही साधनमें साधुओंकी सेवाकोभी होना उचित है. भागवतमें भगवान्‌का कथन है कि ऋषि जो मेरे भक्त हैं वह मेरी देह हैं, और वहभी

पूजन करनेके योग्य हैं; और उपायोंको त्याग उनकी सेवा करें. पद्म पुराणमें भागवतका कथन है कि मेरे भक्तोंको भोजन कराना मेरी सेवाही करना है, जैसे मेरे भक्त मेरे खिलाये विना कुछभी नहीं खाते, इसी प्रकार मैं उनके खिलाये विना भोजन नहीं करता. आदिपुराणमें भगवान्‌ने कहा है कि; गंगा तो पाप और चंद्रमा ताप और कल्पवृक्ष दरिद्र दूर करनेवाले हैं. और मेरे भक्तोंका दर्शन इतना परम पवित्र है कि क्षणमें तीनों दुःख दूर हो जाते हैं. फिर ऋषियोंने कहा है कि मनुष्यको तीर्थ इत्यादि निर्मल नहीं कर सकते हैं; जिस प्रकार साधु एक क्षणमें निर्मल और दोनों लोककी चिन्तासे छूट जाते हैं, इसी प्रकारके सहस्रों वचन हैं. निदान जिस किसीको भगवान्‌के सर्वदा आनंदकी प्राप्ति और संसारसे छूटनेकी इच्छा हो उसको भगवान्‌के भक्तोंकी तन मनसे सेवा करनी उचित है. जिस किसी जातिका क्यों न हो जो भगवान्‌का भक्त है वह भगवान्‌काही रूप है. महाभारतमें भगवान्‌ने कहा है कि भगवान्‌के भक्तोंमें जाति इत्यादिका भेद समझकर जो मनुष्य उनकी सेवा नहीं करते;वे नरकगामी होते हैं.साधुओंकी सेवाके मार्गपर पांच दुष्ट हैं, एक तो जातिका घमंड करके किसी साधुको नीच जातिका समझकर उसकी सेवा न करे. दूसरे विद्याका घमंड जिस प्रकार कि पंडित लोग साधुओंको न्यून जानते हैं. तीसरे द्रव्यका घमंड कि उसके मदमें कुछ बुरा भला नहीं दीखता. चौथे रूप कि उससे साधुको बुरा समझे और सेवा न करे; अथवा रूपके मदमें मतवाला हो जावे. पांचवें बल कि उसके घमंडसेभी भले बुरेका सोच नहीं रहता है. सो इन पांचों घमंडोंको त्यागन कर भगवान्‌के चरित्रोंका स्मरण रक्खे भगवान्‌ने नीच जातिके वाल्मीकको युधिष्ठिरकी निज रसोईमें बैठाकर द्रौपदीके हाथसे उनकी सेवा कराई और श्रीरघुनंदन स्वामीने स्वयं भीलनीके जूंठे फल खाये. एक साधुसेवीका वचन है

कि आप तो कुछ रोगग्रसित थे इस कारण स्त्रीसे कहा है कि साधुकी सेवा कर उसने अपने शिरमें पीडा होनेका कारण बताया; इतनेहीमें जमाई आ गया, उसका स्त्रीने तत्कालही उसके लिये सुन्दर २ पदार्थ बनाये साधुसेवीने उसी समय स्त्रीको घरसे निकाल दिया और कहा कि जब मेरा जमाई आया तब तो शिरमें पीडा बताई और जब तेरा जमाई आया तब पीडा जाती रही. तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कामी पुरुषको रूपवती स्त्री अत्यन्त प्यारी होती है और लोभीको द्रव्य प्यारा होता है; उसी प्रकार भगवान्के भक्तोंको भगवान्के भक्त प्यारे होते हैं; और उनको अपना प्रिय मित्र समझकर सेवा करते हैं. जिन पुरुषोंको भगवान्के भक्तोंमें प्रीति नहीं, उनको कोई मनोरथ इस लोक और परलोकका प्राप्त नहीं होता; और आजतक ऐसा कभी नहीं हुआ कि भगवान्के भक्तोंका सेवी दोनों लोकोंके पदार्थोंसे निर्भाग रहा हो. जो मनुष्य भक्तोंसे विमुख हैं और उनकी निन्दा करते हैं वे निःसन्देह ईश्वरसे विमुख रहते हैं और जो भक्तोंसे शत्रुता अथवा द्वेष रखते हैं उनका निःसन्देह नाश हो जाता है; और वे घोर नरकको जाते हैं. रावण और दुर्योधन इत्यादि कौरव और कंसने भगवान्के साथ शत्रुता करके अपने वंशके द्वारपर मानो ताला लगा दिया. भगवान्का हिरण्याक्षपर कभी कोप नहीं होता; सबही देवता पुकारकर चुके थे, परन्तु जब प्रह्लादभक्तको दुःख दिया तो एक क्षणभी न रुके तो औरोंका तो क्याही कहना है ? भगवान्ने स्वयंही अपने वंशका नाश कर दिया; अर्थात् जब द्वारकापुरीमें यादवोंने भगवान्के भक्तोंको दुःख दिया तो सब यादव प्रभास क्षेत्रपर आपसमें लडकर कट मरे और द्वारिकाके समीप समुद्रमें डुबा दिये. पद्मपुराणमें लिखा है कि जो भगवान्के भक्तोंसे द्रोह करते हैं वे तीनों लोकोंमें दुःखको प्राप्त होते हैं. जिस प्रकार दुर्वासाजी वहां गये किसीने उनका दुःख निवारण

नहीं किया और न रक्षा करी अब मेरी भगवान्‌के भक्तोंसे यही प्रार्थना है कि वह मुझ पापीमेंभी दया दृष्टि करे. यदि जो मेरे पापोंकी ओर दृष्टि करो तो इस वचनमें संदेह होगा कि साधु मेघकी समान शत्रु भले बुरेपर एकसी दया करते हैं इसलिये मेरे पापोंको क्षमा करके अपनी बडाईकी ओर ध्यान रक्खें. इसके अतिरिक्त एक प्रकारसे मैं आपकी कृपाका अधिकारी हूं, क्योंकि तुम्हारा भाट हूं. जो तुम कहो कि यह कीर्तन तैंने अंतःकरणसे नहीं किया केवल बाहरसेही किया है मेरा इसमें यह कहना है कि समस्त भाट मुँह देखेकी प्रशंसा किया करते हैं; परन्तु यजमान उनको मूर्ख समझते हैं; उसमें मेरा और आपका एक संबन्धभी है कि मैं रघुनंदन स्वामीका चेला हूं जो यह कहो कि ऐसे पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंदका चेला होकर हमसे क्या इच्छा करता है तो मेरा यह कहना है कि मैं कुकर्मी चेला स्वामीकी अनुसार नहीं चलता और न कभी भूलकर सन्मुख होता हूं इस बातके बतानेसे मेरा यह प्रयोजन है कि किसी भांति यह मंदभागी मन भगवान्‌के चरणोंमें लगे और उनकी समाजका चिंतवन करता रहे, और जहां अयोध्या निज धाममें कल्पवृक्षके नीचे महामंडप है, वहां पुष्पोंके सिंहासनपर जिसका प्रकाश सहस्रों सूर्यकी समान है आप महाराज राज्यवस्त्र धारण किये वीर आसनपर विराजमान हैं; और वाम भागमें श्रीजनकनंदिनीजी शोभित हैं, उनका ऐसा सुन्दर अनुपम रूप है कि अत्यन्त लाजसे लक्ष्मीजी और विष्णुजी क्षीरसमुद्रमें जा छिपे, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी सेवामें स्थित हैं. चारों वेद नारद सनकादिक और ब्रह्मा आदि स्तुति करते हैं; और सुग्रीव बिभीषण आदि और दूसरी ओर सब मंत्री और हनुमान्‌जी हाथ जोडे हुए खडे हैं.

दोहा–एहि छबिसों करुणाअयन, हिये विराजो मोर ।
नितप्रति जनपर कीजिये, दयादृष्टकी कोर ॥

बिडरजीकी कथा १.

जोधपुरके राज्य छटोरा गावमें बिडरजी भगवद्भक्त और साधुओंकी सेवा करनेवाले हुए. उनको जो कुछ खेतीसे प्राप्त होता वह समस्त साधुओंकी सेवामें लगा देते. एक समय दुर्भिक्ष पड गया; खेती सूख गई तब मनमें विचारा कि देश छोडकर किसी और देशको चले जावें क्योंकि यदि साधुको भोजन न मिला तौ धर्म नहीं रहेगा. भगवान् जो अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं; उनके धर्मकी पूर्ण रक्षा करनेवाले हैं उन्होंने स्वप्नमें आकर कहा कि तुम मन मैला मत करो; सूखा खेतीको काटकर नाज निकालो. उसीमेंसे दो हजार मन मिलेगा, उनकी आज्ञानुसार बिडरी खेती काटने लगा, यह देखकर खेतवालोंने हँसकर कहा कि तू बडा मूर्ख है. ऐसी सूखी खेतीमें कहीं नाज निकलता है ? बिडरजीने उनका कहना किंचित्भी न माना, और भगवान्की आज्ञासे खेतीको काटकर इकट्ठा किया उसमेंसे दो हजार मन नाज प्राप्त हुआ, और निश्चिन्तताईसे भगवान्के भक्तोंकी उस बिडरीने सेवा करी. सबको भगवान्की भक्ति और साधुसेवाका विश्वास हुआ और भगवान्की शरणमें लीन हो गये, निःसंदेह साधुसेवा इस लोक और परलोकमें सूखे हुए वृक्षोंपर फूल फल लगा देती है.

ठाकुरभगवान्दासकी कथा २.

ठाकुर भगवान्दास भीमसिंहके पुत्र तवर रजपूत परम भक्त और भक्तोंकी सेवामें सावधान और अत्यन्त विश्वासी हुए. वर्षमें दिन मथुरा जाकर और एक महीने रहकर अत्यन्त प्रसन्नतासे मन खोल-कर वैष्णव साधु ब्राह्मण इत्यादिकी सेवा और चाकरी तन मनसे करते, और भगवान्की कथा अथवा रासविलास आदिमें बहुतही

द्रव्य लगाते और जो कुछ पास होता सबका खर्च करके फिर लौटकर घर आते. एक समय वह दरिद्री हो गये, और वर्षभरमें जाना न हुआ तौभी वह कर्ज कर मथुराजीमें गये, और पहले सालसे अबकी बार थोडा बांटनेका विचार किया, मथुराजीके चौबोंने कहा कि जो हम प्रथम लेते थे वही अबकी बार लेंगे, ठाकुरने इसमें अपनी श्रद्धा न पाई, और जो कुछ रुपया था सब उनके आगे रख दिया और कहा कि मेरे पास समस्त यही है जैसे चाहो ले लो. अंतमें यह सिद्धांत हुआ कि इस वर्षमें साधु और ब्राह्मणोंको सूखे सीधे देने चाहिये, सो सब सामग्री मंगाकर कोठेमें रख दी और सीधे देने प्रारंभ कर दिया कितनेही कुटिल पुरुषोंने जो कि सदा भगवान्के भक्तोंके शत्रु होते हैं यह उपाय विचारा कि जिसमें ठाकुरकी निन्दा और हँसी होय एक सीधेकी जगह दश सीधे दिलाय; जो कि भक्तवत्सल कृपा-सिंधु भक्तोंकी सहाय और रक्षा, जिस प्रकार कि माता अपने दूध पीनेवाले बच्चेकी करती है उसी प्रकार भगवान्ने करी और आये; और उस सामग्रीको द्रौपदीके चीरकी समान बढाया अर्थात् उसमेंसे जितना निकलता था उतनाही बढता जाता था घाटा नहीं होता था और चांदी सोनेकी लूट हो गई वे लोग खूब लुटाते रहे और कोठा समस्त सामग्रीकी द्रव्यसे पूर्ण था. सब कुटिल पुरुष लज्जायमान हो गये और भगवान्की भक्ति अथवा साधुओंकी सेवापर विश्वास हो गया.

वारमुखीकी कथा ३.

दक्षिण देशके बलाद नाम एक नगरमें वारमुखी अर्थात् वेश्या बहुत धनवान् रहती थी. उसका स्थान अत्यन्तही सुन्दर और निर्मल था, और द्वारपर एक बहुत घना वृक्ष, चारों तरफ चौतरा

बहुत सुन्दर बना हुआ था. एक दिन साधु वैष्णवोंका उस स्थानपर आना हुआ. और उन्होंने मनोहर स्थान जानकर वहांही डेरा कर दिया, और वृक्षकी टहनियोंपर जगह २ शालग्रामजीके बटुए लटका दिये, और स्नान ध्यान करके भगवान्‌की सेवा और पूजा करने लगे. सायंकालको वह वेश्या शृंगार करके द्वारपर आई तौ भगवद्भक्तोंकी भीड देखी, और देखा कि वह भजन और कीर्त्तन कर रहे हैं यह देखकर उसको लज्जा आ गई; और अपने मनमें विचारा कि यदि यह मुझको पहचान लेंगे तौ इनको बडा दुःख होगा और कहेंगे कि ऐसे स्थानपर क्यों ठहरे. यह विचार कर वह वेश्या अपने स्थानमें जाकर छिप गई, और रात्रिके समय एक कटोरा मोहरोंसे भरकर हरिभक्तोंके सामने आई. वैष्णवोंने उसकी जाति पूंछी, वेश्याने कुछभी उत्तर न दिया; अंतमें जब साधुओंने उससे बहुतही पूंछा और हठ करी. फिर समझाकर कहा कि तू डरे मत कह दे तेरी क्या जाति है, तब उसने अपनी जाति और कार्यका करना बताया; तब साधुओंने कहा कि तू अपने एकत्रित किये हुए द्रव्यका एक मुकुट श्रीस्वामी रंगनाथजीको बनवाकर दे तभी तेरा धन सब कुलीन हो जायगा. वेश्याने उनके यह वचन सुनकर कहा कि महाराज ! जब मेरे धनसे भगवान्‌के भक्त और ब्राह्मण इतने बचते हैं कि अपने समीप नहीं आने देते तो भगवान् कब अंगीकार करेंगे ? साधुने इस वार्ताको सुनकर कहा कि ईश्वरके द्वारपर केवल भक्ति और विश्वासका होना अवश्य है; जाति इत्यादिको कोई नहीं बूझता. निदान उस वेश्याने अपना समस्त धन लगाकर अतिश्रद्धा और भक्तिसे तीन लाख रुपयेका एक जडाऊ मुकुट भगवान्‌के लिये बनवाया, और अत्यन्त प्रीति और विश्वाससे बाजे बजाती नाचती भगवान्‌के प्रेमके मदमें मत्त झुकी हुई उस मुकुटको लेकर चली

जब रंगनाथस्वामीके समीप पहुँची; उसी समय वह रजस्वला हो गई मंदिरमें न जा सका. तब वह घबडाकर पछतावा करती हुई मूर्च्छा खाकर गिर पडी; अंतर्यामी दीनवत्सल महाराज भगवान्‌ने उसके अंतःकरणका प्रेम देखकर पुजारियोंसे कहा कि इस वेश्याको बहुत आदरसत्कारसे जाकर उठा लाओ. पुजारी बहुतही शीघ्र गये, वह तौ आनेको मना करती रही परन्तु पुजारियोंने उस परम पवित्र शुद्ध अंगको ले जाकर भगवान्‌के सामने जाकर खडा कर दिया उसने जो यह भगवान्‌की कृपा देखी तो उसने भगवान्‌के शीशपर मुकुट रखनेको हाथ बढाया; परन्तु भगवान्‌का सिंहासन कुछ ऊंचा था हाथ न पहुँच सका इस कारण कुछ मनमें चिन्ता करनेको थी, भगवान्‌ने उसके विश्वास और प्रेमसे प्रसन्न होकर अपनी गरदन झुका दी, और उस भगवान्‌ने भली भांति प्रसन्न होकर मुकुट उनके शीशपर रख दिया, और वह भगवान्‌ने परम भक्तोंमें विख्यात हो गई. आहा ! भगवान्‌के भक्तोंकी महिमा देखो. विचारनेका स्थल है कि; कितनी देरका संग था, संगतिका फल इस प्रकार होता है. वह मेरा कठोर हृदय इस कथाकोभी पढ लिखकर मन नहीं लगाता.

तिलोकजीकी कथा ४.

तिलोकजी सुनार भगवान्‌के परमभक्त पूर्व देशके किसी नगरमें विख्यात हुए, उनको भगवान्‌के भक्तोंकी सेवामें इतनी निष्ठा और प्रीति थी कि सर्वदा वह उसीमें लगे रहते थे, और जो कुछ अपने परिश्रमसे पैदा करते थे वह समस्त साधुसेवामें लगा देते थे. उस देशके राजाने अपनी कन्याके विवाहमें गहने बनानेके लिये बहुतसा धन इनको दिया इन्होंने वह समस्त रुपया साधुओंकी सेवामें लगा दिया, और जब राजाके नौकर गहना मांगनेको आते तौ वह आज

कत्ल कर देते; जब विवाहके दो तीन रोज रह गये, तो बहुतही शीघ्रताका तकादा हुआ, और दूसरे दिन प्रभातकी प्रतिज्ञा करके राजाके पाससे चले आये. उसी समय कई एक साधु आ गये और उनकी सेवाके आनंदसे मग्न होकर राजासे जो प्रतिज्ञा कर आये थे उसको भूल गये; प्रभातही जब राजाका नौकर गहने लेनेके लिये आया तो आप भाग गये; और जंगलमें जाकर छिप गये और भगवान्का भजन करने लगे. जो भगवान् अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं तिलोकजीके भेषमें राजाका गहना बनाकर राजाके समीप ले गये ऐसे सुन्दर गहनेको राजाने प्रथम कभी नहीं देखे थे देखकर राजा बहुतही प्रसन्न हुआ और बहुतही प्रशंसा कर इनाम दिया. भगवान्ने बस इनामके द्रव्यका महोत्साह कर दिया, और वैष्णवका भेष बनाकर प्रसाद लेकर तिलोकजीके पास गये और कहा कि तिलोकके घर महोत्साह था उसीका यह प्रसाद है. तिलोकजीने पूछा कि कौन तिलोक ? भगवान्ने उत्तर दिया कि वही तिलोक जिसकी समान त्रिलोकीमें कोई नहीं. तिलोकजी जान गये कि सब चरित्र भगवान्केही हैं जो मेरे स्थानपर आये, और वैसेही साधुओंकी सेवा भजन व स्मरण करते रहे.

तिलोचनदेवकी कथा ९.

तिलोचनदेव ज्ञानदेवके शिष्य वैश्यवर्ण चंद्रमाकी समान विख्यात भगवान्के परम भक्त हुए. जो संप्रदाय विष्णुस्वामीका है वही उनका है. उनको साधुओंकी सेवामें बहुत श्रद्धा और प्रेम था परन्तु साधु बहुत आते जाते थे, और सेवा करनेवाले तिलोचनजी और उनकी स्त्रीही थी, इस कारण यही शोच रहता था कि मनवांछित साधुसेवा नहीं होती है. जो कोई ऐसा टहलुआ हो जो साधुओंके मनकी बात

जानकर उनकी सेवा किया करे मिले तो उसको नौकर रख लें. सो ऐसे टहलुएको ढूंढते और मनवांछित सेवा साधुओंकी न होनेसे मनमें दुःखी रहते थे. भगवान्‌ने अपने भक्तका दुःख देखना न विचारा. और एक महान् कंगाल टहलुएके रूपसे टूटी जूती और फटी लंगोटी पहनकर आये. तिलोचनजीने पूंछा कि तुम कौन हो और कहांसे आये, तुम्हारे मा वा बाप घरपर हैं या नहीं, उत्तर दिया कि मा बाप, घर वार कुछ नहीं रखता टहलुआ हूं पांच सात सेर नाज खाता हूं; चारों वरणकी रीति मेरे हाथपर है. भगवद्भक्तोंकी सेवाके अतिरिक्त औरोंकी सेवा अच्छी तरह नहीं कर सकता हूं; मेरी सारी उमर हरिभक्तोंकी सेवामें कटी है, अंतरजामी मेरा नाम है, तिलोचनजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि जितना तुम्हारे मनमें आवे उतना खाया करो; और उनको स्नान कराकर नये वस्त्र पहराये, और अपनी स्त्रीसे कहा कि तू अंतरजामीकी बांदीकी समान रहा कर. जो यह भोजन खाय उसको प्रसन्न होकर खिलाया कर, और इसके बहुत खानेसे मन मैला मत करना और सदा उसकी प्रसन्नताको मुख्य समझना भगवान् अंतरजामीने साधुओंकी रसोई, पानी; पांव दबाने पांव धोने और स्नान करानेकी टहल ऐसी करी कि तिलोचनजी साधुसेवामें विख्यात हो गये; और साधुओंकी भीड और सत्संग मनवांछित रहने लगा, इसी प्रकार तेरह महीने व्यतीत हो गये एक दिन तिलोचनजीकी स्त्री अपने पडौसीके घर गई, पडौसीने उससे कहा कि आजकल तुम दुर्बल और मलीन भेषसे क्यों रहती हो इसका कारण क्या है तो उसकी स्त्रीने कहा कि मेरे स्वामीने एक टहलुआ नौकर रख लिया है; वह इतना भोजन खाता है कि सारा दिन आटा पीसने और रोटी बनानेमें व्यतीत होता है. यह बात स्त्रीके मुखसे निकलतेही अंतरजामी अंतर्ध्यान हो गये. कारण यह है कि प्रथम

दिन तिलोचनजीसे यह वदनी हो गई थी कि जिस दिन मेरे खानेकी निन्दा होगी उसी दिन घरसे चला जाऊंगा, फिर साधुकी सेवाके समय अंतरजामीको ढूंढा तौ फिर पता न मिला, तिलोचनजी अत्यन्त अप्रसन्न हुए और अपनी स्त्रीको धिक्कार करने लगे कि तेरीही कुटिलतासे वह टहलुआ चला गया. जब तिलोचनजी तीन दिन तक इसी दुःखमें विना अन्न जलके पडे रहे तब आकाशवाणी हुई कि तिलोचनजी ! वह टहलुआ मैं था, तुमने इच्छा करी थी कि मनकी बात जाननेवाला टहलुआ मिले इसलिये टहलुआ हो गया था यदि तुम्हारी इच्छा यही है तो मैं अबभी उपस्थित हूं. तिलोचनजी वह दुःख तौ भूल गये उनको यह नया दुःख उत्पन्न हुआ; और अपने मनमें कहने लगे कि, हाय ! मैंने अपने स्वामीको नहीं पहचाना, उनकी सेवा करनेकी जगह उलटी टहल कराई तब भगवद्भक्तोंने समझाया कि भगवान्ने अपने भक्तोंके लिये क्या २ नहीं किया है ? यहांतक किया कि वाराह और मच्छका रूप बना लिया फिर टहलुए होकर आ गये तो क्या आश्चर्य हुआ ? फिर तिलोचनजी निश्चिन्त हुए और भगवान्का भजन करने लगे.

जस्सूस्वामीकी कथा ६.

जस्सूस्वामी गंगा यमुनाके मध्यदेशके रहनेवाले भगवान्के भक्त हुए. खेतीका काम करनेसे जो कुछ उनको मिलता समस्त साधुओंकी सेवामें लगा देते. एक समय चोर उनके बैल चुराकर ले गये. भगवान्ने विचारा कि अब मेरा भक्त साधुसेवा कैसे करेगा, इस कारण जिस प्रकार ब्रह्माजीका अभिमान भंजन करनेके कारण ग्वाल, बाल बछडे चोरी जानपर मायारूपी ग्वाल बाल बछडे बनाये थे उसी प्रकार बैल बना लिये; और स्वामी जस्सूजीने नहीं

जाना कि क्या हुआ. एक वार फिर वही चोर आये और आकर देखा कि वही बैल जस्सूस्वामीके घरपर है; उनको बडा संदेह हुआ तौ फिर वह अपने घर गये तौ वहांभी वेही बैल देखे यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ, और दो चार वार आये तौ फिर वही दोनों बैल देखे. जस्सूस्वामीसे पूंछा स्वामीने उत्तर दिया कि यह सब भगवान्के चरित्र हैं. तुम अपना काम करो हम अपना करते हैं चोरोंको भगवान्पर विश्वास हुआ और उसके बैलोंको ला दिया. जब उनके वे बल आ गये तौ भगवन्मायाके बैल लोप हो गये; और चोरोंने भगवान्की भक्तिपर विश्वास करके चोरीका काम करना छोड दिया, और स्वामीजीके चेले होकर भगवान्की शरण हुए; और अपनी शेष अवस्था साधुसेवा और भगवान्के भजनमें बिताई.

रामदासकी कथा ७,

रामदासजी व्रजके रहनेवाले परम भक्त और साधुसेवामें ऐसे हुए कि जिस प्रकार सूर्यको देखकर कमल खिलता है उसी प्रकार भगवान्के भक्तोंको देखकर प्रफुल्लित होते थे. एक समय कोई साधु उनकी भक्ति और साधुसेवाकी श्लाघा सुनकर आया, और पूंछा कि रामदास कहां है ? रामदासजी उठे और उठकर उस साधुके चरण धोय और चरणामृत लेकर कहा कि मुझे रामदाससे मिलना अवश्य है; रामदासजीने कहा कि रामसेवक यही है, साधु प्रसन्न हुआ, और चरण पकडकर मिला. रामदासजीकी कन्याका विवाह था, विविध प्रकारके पकवान बने, उनके बेटे पोतोंने रामदासजीके डरसे पकवानके कोठोंको ताला लगा दिया. एक दिन भगवान्के भक्तोंकी जमात आ गई, और रामदासजीको व्योरा हो गया, दूसरी तालीसे ताला तोडकर पकवान् भगवान्के भक्तोंको उठा दिया; और कुछ न शोचा कि

जब बरात आवेगी तो कथा खुलावेंगे और इसी भांति साधुसेवक श्रीविहारीलालजीके ध्यान और भजनमें अवस्था पूरी करी,

सन्तभक्तकी कथा ८.

सन्तभक्तजी जोधपुरके रहनेवाले भगवान्के भक्त और साधु-सेवामें विख्यात हुए. वह भिक्षा करके साधुओंकी सेवा किया करते. एक दिन उनके घर आये उस समय संतजीभी भिक्षाके लिये गये थे साधुने स्त्रीसे पूंछा कि संतजी कहां है ? वह उस समय कुछ दुःखमें थी, उत्तर दिया कि चूल्हेमें है. साधु यह अनुचित उत्तर सुनकर वहांसे चल दिया, रास्तेमें संतजी मिले और साधुने पूंछा कि महाराज कहां गये थे ? संतजी मनकी निर्मलता और अदृश्य जाननेसे अपनी स्त्रीके कठोर उत्तरको समझ गये थे, वही बात कहने लगे कि चूल्हेमें गया था. साधुको वह बात सुनकर बडा आश्चर्य हुआ कि यह साधुओंकी सेवा किस प्रकारकी है जो ऐसे कठोर वचन मुखसे कहते हैं. संतजीने कहा कि चूल्हेमें जानेका तात्पर्य यह है कि प्रातःकालही मुझको यह चिन्ता हुई कि भगवान्की उत्तम रसोई करके हरिभक्तोंको भगवान्का प्रसाद भेंट करूं और उनका शीतप्रसाद मुझको मिले. यह रसोईका चिंतवन होनाही चूल्हेमें जाना है, सो मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ आपके दर्शन हुए और तुम्हारा शीत प्रसाद मुझको प्राप्त होगा. साधु संतजीकी इस बातसे प्रसन्न हुए, और उनके स्थानपर जाकर सत्संग और भगवान्का भजन स्मरणके आनंदमें मग्न हुए.

सेनभक्तकी कथा ९.

सेनभक्त नाई स्वामी रामानंदजीके शिष्य बांधूनगडके रहनेवाले ऐसे परम भक्त हुए कि जिस प्रकार गौ अपने बच्छडेकी पालना

करती है; वैसेही भगवान्ने उनकी पालना करी, और सहायता करी, उनका यह वृत्तान्त है कि वह साधुसेवी थे; और भक्तोंकी सेवा भगवान्की सेवाकी समान किया करते थे, जैसा नित्यका नेम था उसी प्रकार राजाके तेल मलनेको जाते थे; रास्तेमें साधु मिल गये; भक्तजीने साधुओंकी सेवा अधिक जानकर उनको अपने स्थानपर लाये और सेवा करने लगे. फिर निश्चय होकर उनको रसोई और भगवान्का प्रसाद जिमाया, और राजाका कुछभी भय नहीं किया. जब राजाकी सेवाका समय आया, तो भगवान् सेन भक्तका रूप बनाकर गये और राजाका मर्दन इत्यादि कर राजाको प्रसन्न किया फिर चले आये, फिर सेनभक्त राजाके पास पहुँचे और देरसे पहुँचनेका कारण कहने लगे. राजाने कहा कि अभी तो तुम सेवा करके गये थे, फिर ऐसी वार्ता क्यों कहते हो. सेन भक्तने कहा कि मैं नहीं आया, इस कारण आप मुझको उलाहनेके साथ ऐसा कहते हैं. भगवान्का हाथ स्पर्श होनेसे राजाका अंतःकरण निर्मल हो गया था. वह समझ गया कि सेनभक्तकी सहायताके लिये भगवान्ने स्वयं उसका रूप बनाया था. राजा यह कह सेनभक्तके चरणोंपर गिर पडा; और अति प्रेम और विश्वाससे सेनभक्तका शिष्य होकर उनकी शरणमें हुआ; और अबतक उस राजाके वंशमें यह दस्तूर चला आता है कि सेनभक्तके वंशके चेले होते हैं.

सदाव्रतीकी कथा १०

सदाव्रती साहूकार जातिके बनिये परम भगवान्के भक्त विचारवान् हुए, वह बहुत प्रीति और श्रद्धासे साधुओंकी सेवा किया करते थे. एक साधु सुख स्थानको देखकर उनके घर आ ठहरा;

और सदाव्रतीके बालकको खिलाता, उस बालकसे प्रीति हो गई थी; अर्थात् वह बालक उस साधुके पासही खेलता और प्रसन्न रहता था. एक दिन साधुने उस बालकको जंगलमें ले जाकर मार डाला; और पृथ्वीमें गाड दिया; और जब वस्तीमें आया तो इस अपने किये हुए पापसे बहुतही पछताया; उसकी माता घबरा रही थी और जब रात्रि हो गई तो रोने पीटने और ढूंढने लगी; और सारे गांवमें ढंडोरा पिटवा दिया. एक संन्यासीने आकर उस साहूकारसे कहा कि बालकको इस साधुने मारा है; निदान जहां गाडा था वही स्थान दिखा दिया. साहूकारने इस अनर्थका होना अपने कर्मोंके अनुसार जाना, साधुका मन दुखाना साधुसेवाकी रीतिसे अनुचित समझा, और गुप्त कहनेके कारणसे उस साधुकोही पकड लिया, और कहा कि तैंनेही मेरे लडकेको मारा है यह काम तेराही है, तब तो संन्यासी घबडाया, और बोला कि मेरा क्या अपराध है; मैंने तो सत्य बात कहकर दिखा दी थी. अब मेरे ऊपर कृपा कर भगवान्‌के लिये मुझको छोड दो. साहूकारने कहा कि जो तू यह बात किसीसे न कहे और इस नगरसे चला जाय तो मैं छोडे देता हूं. उसने यह बात स्वीकार कर ली तब साहूकारने उसको छोड दिया. जब साहूकार अपने घर आया तो देखा कि साधु लज्जायमान और खिस्साना हो रहा है; तब उसकी लज्जा निवृत्त होनेके लिये स्त्रीसे सलाह पूछी, स्त्रीने कहा कि इस साधुका और किसी प्रकारसे तो रहना होता नहीं दीखता. परन्तु जो कुमारी कन्याके साथ इसका विवाह कर दिया जाय तो उसके ठहरनेकी आशा है. यह वचन स्त्रीके मुखका सुन साहूकार उससे अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और उस भक्ति तथा श्रद्धाकी बहुतही प्रशंसा करी; और फिर साधुको बुलाकर उससे कालान्तरकी प्रकृति और अपने पिछले किये हुए कर्मोंको

कहकर फिर भगवान्‌की इच्छाको अपने मुखसे प्रगट किया. साधु अपने कर्मसे अत्यन्त लज्जा और दुःखी हो रहा था; यह सुनकर वह बोला कि महाराज ! क्या मैं हत्यारा इतनी दयाके योग्य हूं, वरन मुझको मेरे कर्मोंके अनुसार वध किया जाय तो मेरे लिये वही दया है. साहूकारने यह वार्ता सुन उसको बहुत समझाया और अंतमें उसका पश्चात्ताप दूर करनेके लिये अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया. जब साहूकारकी इतनी दया और इस संसारमें प्रचलित हुआ तब उसका गुरुभी भगवान्‌की आज्ञासे उसके घरपर आया. और अपने चरणोंके प्रतापसे उसके घरको तीर्थोंसेभी अधिक पवित्र करा. साहूकार इतना प्रसन्न हुआ कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता और उसने शास्त्रकी रीतिसे उनकी पूजा और सेवा करी. गुरुजीने पूंछा कि तुम्हारा बालक कहां है ? साहूकारने उत्तर दिया कि थोडे दिन हुए कि मेरा पुत्र मर गया फिर पूंछा कि किस कारणसे मर गया साहूकारने कहा कि महाराज ! इस लोकका नाम संसार है पुत्रके मर-नेका कारण क्या बताऊं; गुरुजीने जब उसकी दृढता और साधुसेवा-की परीक्षा कर ली तब कहा कि हम समस्त भेद जानते हैं, जो कुछ हुआ है सो सब तेरी परीक्षाके निमित्त हुआ है,अब बता कि वह बालक कहां गडा था यह वचन सुन साहूकार उनको उस स्थानपरले गया जहां कि उसका लडका गडा था और बालकका मृतक शरीर निकाला भगवान्‌की इच्छा और गुरुकी कृपासे वह लडका जीवित हो गया; और सब लोगोंको भक्ति और साधुओंकी सेवामें अत्यन्त प्रीति हुई.

केवलकुवाकी कथा ११.

केवलकुवा जातिके कुम्हार ऐसे भगवान्‌के भक्त हुए कि उन्होंने अपने समस्त कुलको पवित्र करके भगवान्‌को प्राप्त किया; और

साधुओंकी सेवामें तन मन धन समस्त लगा दिया. एक समय उनके घर साधु आये, इनके घरमें कुछ सामग्री नहीं थी, और उधारभी कुछ न मिला; अंतमें जब सब उपाय कर चुके; एक बनियेने उनसे कहा कि हम तुमको सामग्री दिये देते हैं पर तुम हमारा कुआ खोद जइयो. बनियेके वचनके अनुसार कुआ खोदनेको गये तो दस बीस गजपरही रेत निकल आया और वह गिरकर सब केवलजीके ऊपर आया उसमें केवलजी दबे, यह देखकर लोग दौडे और यह विचारा कि इतनी मट्टीके नीचे केवलरामजी दब गये हैं अब क्या जीवित होंगे. यह विचार कर अपने २ घरोंको चले गये, फिर इसके उपरांत एक महीना बीतनेपर एक पुरुष उस ओर होकर जाता था, और श्रीराम नामका शब्द सुनकर गांवमें दौडकर आया; और उसने समस्त वृत्तान्त लोगोंसे कहा; उसका यह वचन सुन वहांके समस्त लोग विचार करने लगे कि वह भगवान्‌का भक्त था निःसंदेह जीता होग . यह विचार कर समस्त गांवके लोग वहां आये; और अति शीघ्रतासे वह मिट्टी उठाई तो क्या देखते हैं, कि केवलजी आसन लगाये बैठे हैं और मुखसे रामनाम कह रहे हैं, उनके आगे एक लोटेमें पानी रक्खा है; और एक तरफ भोजन की हुई बहुतसी पत्तलें पडी हैं. यह देखकर नगरके समस्त लोगोंको भगवान्‌में प्रीति और दृढ विश्वास हुआ, और बडी प्रसन्नतासे मग्न हो उत्साहके बाजे बजाते उनको अपने घर लाये. हजारों मन मिट्टीके पडनेसे केवलजी कुबडे ` गये, जभीसे केवल कूपा विख्यात हुए. एक समय साधु भगवान्‌की मूर्ति स्थापित करनेके निमित्त लिये जा रहे थे, मार्गमें वह केवल-जीके घर ठहरे, केवलजीने भगवान्‌का अत्यन्त सुन्दर मोहनीरूप देखकर मनमें यह अभिलाषा करी कि यदि जो यह भगवान्‌की मूर्ति मेरे घर रहे तो अतिउत्तम है. प्रभातको जब वे साधु

जानेको हुए और उन्होंने वह मूर्ति उठाई, तौ वह इतनी भारी हो गई कि वहांसे न उठ सकी, तब साधुओंने निर्बल होकर वहीं छोड दी; और केवलजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनको स्थापित कर उनकी सेवाका आरंभ किया. आजतक वह मूर्ति केवलजीके चेतडा-गांवमें प्रचलित है और दर्शन होते हैं; जो कि भगवान् अपने भक्तकी प्रीति जानकर ठहरे थे, इसी कारणसे उस मूर्तिका नाम जानराय है. फिर केवलजीने विचार किया कि द्वारकाजीमें जाकर शंख चक्रकी छाप लेनी उचित है, यह विचार कर घरसे चले तब इनसे भगवा-न्ने कहा कि तुम अपनेही स्थानपर रहकर मेरी भावसहित प्रीतिसे सेवा भजन करते रहो. इसी स्थानपर तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होंगे; यह भगवान्के वचन मान केवलजी द्वारका जानेसे लौट आये और जब उन्होंने अपनी देहको देखा तौ उसमें शंखचक्रके चिह्न पाये, केवलजीके इस प्रकारके चमत्कार अनेक हैं. गोमती नदी समुद्रके निकट है गोमती और समुद्रके बीचमें रेती है जब समुद्रकी लहर उठती है तो गोमती और समुद्र एक हो जाता है. और जब लहर उतर जाती है तौ फिर वह रेती निकल आती है. एक समय गोमती और समुद्रका संगम हुआ इससे जल और वायुमें एक प्रकारका रोग उत्पन्न होकर समस्त देशको दुःख देने लगा. यह विचार मनुष्योंने किया कि केवलजीपर चलना चाहिये वही इस रोगकी शांति करेंगे, यह कह समस्त मनुष्य एकत्रित हो केवलजी-पर गये, और जाकर केवलजीकी विनती करी और फिर उनकी मालाको ले गये, उन्होंके प्रतापसे गोमती और समुद्रका संगम हो गया. जब यह महान् प्रताप और महिमा केवलजीकी लोगोंने देखी तौ हजारों मनुष्य उनके शिष्य हो आये, और उस देशमें साधुओंकी सेवा और भगवान्की भक्तिका प्रचार हो गया. एक दिन

केवलजीके घर साधु आये थे, उनकी स्त्रीने साधुओंके लिये सूखी रोटी बनाई, और उसी समय दैवसंयोगसे उनका भाईभी आ गया तब उस स्त्रीने यह विचार करा कि भाईको सूखी रोटी नहीं खिलानी चाहिये यह विचार कर तत्काल उसके लिये खीर बनाई. केवलजीने जब यह चरित्र देखा तब उनको महान् शोक हुआ; और अपने मनमें विचार करने लगे कि देखो यह भगवान्से विमुख तो खीर खायगा और भगवान्के भक्त सूखी रोटी खांयगे, इस कारण घरमें जितना जल भरा था वह समस्त साधुओंके पैर धोनेमें उठा दिया. और स्त्रीसे कहा कि तू जल भर ला, स्त्री पानी भरनेके लिये गई. और अपने रसोइमें जाकर साधुओंको अत्यन्त प्रसन्नताके सहित खीरका भोजन कराया. जब स्त्री जल भरकर आई और उसने साधुओंको खीर खाते देखा तो वह अत्यन्त दुःखी हुई और केवलजीको कठोर वचन कहने लगी, केवलजीने उसको भगवान्से विमुख जानकर घरसे निकाल दिया; और उस भाग्यवान्ने दूसरा पति कर लिया उससे उसके संतानभी हुई, दैवसंयोगसे एक समय दुर्भिक्ष पडा, और वह स्त्री क्षुधासे मरने लगी; अंतमें वह फिर केवलजीकी शरणमें आई तो केवलजीको उसकी दशापर रहम आ गया, और उससे कहा कि अरे मूर्ख ! जो तुझको दूसरा पति करनाही था तो इस प्रकारका पति किया होता जैसा कि मेरा पति है मेरे पतिका ऐसा बडा भंडार है कि जिससे तेरा पतिभी उसका भिक्षुक हुआ और मेरे पतिके भंडारमेंसे हजारोंको भोजन मिलता है. केवलजीके यह वचन सुनकर स्त्री लज्जायमान हुई फिर केवलजीने उसको साधुओंके मार्गपर बुहारी देनेके लिये नौकर रक्खा, और जबतक दुर्भिक्ष रहा तबतक उसका पालन किया, और जब दुर्भिक्ष निवृत्त हो गया तब उसको अपने घरसे विदा कर

दिया. वह स्त्री अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप करने लगी; और अपने कुभाग्यसे लडती हुई चली गई, और केवलजी भगवान्का प्रेमसहित भजन करने लगे.

ग्वालजीकी कथा १२.

ग्वालजी ऐसे भगवान्के भक्त और साधुसेवी हुए; कि जो कुछ उनको मिलता अथवा जो परिश्रम कर पैदा करते वह सभी साधुओंकी सेवामें लगा देते, और उन्हींके काममें समस्त दिन विताते, एक दिन उनको कुछ पकवान मिला सो साधुओंको खिलानेके लिये जंगलको गये, चोरोंने यह देखा कि इस भैंसके धोरे कोई नहीं है झट उसको चुराकर ले गये. जब ग्वालजी आये और उन्होंने वहां नअपी भैंसको न देखा तो समस्त जंगलमें ढूंढा, और फिर निराश हो घरको चले आये; उन्होंने अपनी माताके भयसे यह कहा कि माता ! भैंस एक ब्राह्मणको सौंप आया हूं; उसने यह कहा है कि जब काल वीत जायगा तब मैं घृतकेभी मूल्यसहित तुम्हारी भैंस उलटी फेर दूंगा. उनकी माता समझ गई कि चोर ले गये, परन्तु पुत्रकी प्रीतिके कारण चुप हो रही. दिवालीके दिन चोरोंने इस भैंसको पूजा करनेके लिये चांदीका हंसला पहराया, और आप किसी कामको चले गये. भक्तोंका वचन सिद्ध करनेवाले भगवान्ने रस्सी तोडकर भैंसको ग्वालजीके घर पहुँचा दिया; जब ग्वालजीने भैंसको देखा तो अपनी मातासे कहने लगे, अरी मा ! देख यह ब्राह्मण कैसा सत्यवादी है कि घृतके मूल्यसहित भैंसको पहुँचा गया. तब सब भगवान्की कृपा और उनकी भक्तवत्सलताके विशेष विश्वासी हुए, और साधुओंकी सेवा व भक्तिमें लगे.

गोपालजीकी कथा १३.

गोपालजी भगवान्के भक्त कृष्णके उपासक जोवतेरगांव जयपुरके राज्यमें हुए. उनको साधुसेवामें इतना प्रेम और श्रद्धा थी, कि वह

भगवान्में और भक्तोंमें कुछभी भेद नहीं जानते थे. जब साधुओंकी सेवा और भक्तिमें उनका बहुत यश हुआ; तब उनके घरका कोई बडा घरबार छोडकर विरक्त हो गया था, वह गोपालजीकी परीक्षाके लिये आया; गोपालजीने अत्यन्त प्रीति और श्रद्धाके सहित उनकी सेवा करी, जब रसोई तैयार हुई तौ कहा कि भोजन करनेके लिये हवेलीमें चलो, उसने कहा कि मैं स्त्रीका मुख नहीं देखता, इस कारण हवेलीमें नहीं जाऊंगा. गोपालजीने कहा कि सब स्त्री हट जांयगी तब गोपालजीकी स्त्रीने कि भगवान्के भक्तोंके दर्शन भगवान्कीही समान होते हैं इस कारण वह झरोखोंमें झाँकने लगी; साधुको अत्यन्त क्रोध आया और एक तमंचा गोपालजीके मुखपर अत्यन्त जोरसे मारा और कहा कि देख वह झरोखेसे कौन देखता है, गोपालभक्त साधुके चरणोंमें गिर पडा और अत्यन्त नम्रताके सहित विनती कर कहने लगा कि आपने बडी कृपा करी कि जो एक तरफका गाल तौ पवित्र कर दिया, परन्तु अब मेरी यही अभिलाषा है कि दूसराभी पवित्र हो जाय. साधु तौ परीक्षाके कारण आयाही था वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ; और गोपालजीसे अत्यन्त प्रीतिसे मिला, और उनकी प्रशंसा कर कहने लगा कि ऐसी परम पवित्र संतानसेही कुल पवित्र होता है और फिर अपना दोष क्षमा कराकर विदा हुआ.

गोपालजी विष्णुदासकी कथा १४.

गोपालजी काशीपुरीके निकट वाम्रोलीके रहनेवाले और समस्त गुणोंके जाननेमें चतुर विष्णुदासजीके शिष्य दक्षिणदेशमें भगवान्के भक्त और दोनों गुरुभाई हुए. वह भगवान्के भक्तोंकी सेवा परमात्माकी समान करते थे, वह जिसको तिलक और कंठी धारण किये देखते उसीको भगवान् जानते. अच्युतकुल और विश्वासके विषयमें

भगवान्‌की जो आज्ञा है उसका निर्वाह इस कलियुगमें इन दोनों भाइयोंसे ऐसा हुआ कि उनके परम पवित्र भावका वर्णन नहीं हो सकता. यह भंडारे और महोत्साहमें उनको बुलाता तो सब प्रकारकी वस्तु अपने घरसे गाडीमें रखकर ले जाते; वह इस कारण ले जाते कि जिनसे थोडी हो जाय तो किसी प्रकारभी भंडारा करनेवालेकी निन्दा न हो, उनके गुरु सिद्ध और सर्व संसारमें विख्यात हुए. उन दोनों भाइयोंने अपने गुरुजीसे प्रार्थना करी कि यदि आज्ञा होय तो महोत्साह करें. गुरुजीने भगवान्‌के भक्तोंको बुलानेके लिये अपने चारों तरफ जल गेरकर कहा कि तुम महोत्साहकी सामग्री करो जो दिन तुमने निश्चय करा है उसी दिन साधु आयंगे, दोनों भाइयोंने गुरुके वचनपर विश्वास करके किसीकोभी बुलानेके लिये नहीं भेजा और समस्त सामग्री तैयार करी, उसी दिन समस्त संसारके साधु आये और बडी धूमधामसे भंडारा हुआ, उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे सबका आदर सत्कार किया, और उनको पांच दिनतक विविध प्रकारके भोजन जिमाये, और जब वे साधु विदा हुए तो इन्होंने बहुतसे वस्त्र और द्रव्य उनकी भेटमें दिये; उनके गुरुने कहा कि इस मेलेमें नामदेव और कबीरभी आये हैं, और नामदेवजी धौले वस्त्र धारण किये हुए मार्गमें विराजमान हैं, तुम जाकर उनका दर्शन करो. और उनका पता चिह्नभी बताये, और कहा कि नामदेवजी तुमको कबीरजीकेभी दर्शन करा देंगे. यह गुरुकी आज्ञा सुन दोनों भाई दौडे और जाकर नामदेवजीके चरण पकड लिये, और उनके प्रेममें ऐसे व्याकुल हुए कि बहुत देरतक उनके चरण नहीं छोड़े, तब नामदेवजीने उनपर कृपा और अनुग्रह कर कहा कि जहां भगवान्‌के भक्तोंकी प्रीति नहीं वहां हम नहीं जाते, और जहां उनका आदर सत्कार होता है, वहां हम अवश्य जाते हैं, सो तुम्हारी साधुसेवा और

भक्ति श्रद्धाको देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए. अब तुम कबीरजीकेभी दर्शन करो, जब यह दोनों भाई विदा होकर चले तो मार्गमें कबीरजीके दर्शन हुए और उन्होंने नामदेवजीकीसी कृपा और अनुग्रह करके विदा किया, फिर यह दोनों भाई गुरुके पास आये, और साधुसेवाकोही भगवान्से मिलनेका निश्चय मार्ग जानकर साधुसेवा और भगवान्के भजन कीर्त्तन करनेमें लगे.

रानी गणेशदेईकी कथा १५.

मधुकरशाह ओछडे देशके राजाकी धर्मपत्नी रानी गणेशदेई भगवान्की भक्ति और साधुओंकी सेवामें अद्वितीय हुई; और उसको जो देशमेंसे लब्धि होती वह समस्त साधुओंकी सेवामें लगा देती. कितने दिनोंतक एक साधु उनके घरपर ठहरा रहा, वह रानीको अकेली देखकर कहने लगा कि जो तुम्हारा धन गडा हुवा धरा है सो मुझको बता दो. यदि नहीं बताओगी तो मैं तुझको मार डालूंगा. यह वचन सुन रानीने उत्तर दिया कि साधुसेवीके घरपर धन द्रव्यका क्या काम है, जो हमारे आता है सो सब खर्च हो जाता है. उस निर्दयी साधुने रानीके वचनको अपनीही समान झूंठा समझकर रानिकी जांघपर एक चक्कू मारा वह मूर्च्छा खाकर गिर गई. और आप तत्काल भयके मारे भाग गया. रात्रिको जब राजा महलमें आया और रानीने इस भयसे राजासे कुछ न कहा कि राजाका मन साधुओंकी सेवासे हट जायगा; और राजाके पास शयन करनेको न गई कहा कि मैं रजस्वला हो गई हूं और कहा कि मुझको कुछ ज्वरसा आता है. राजाने देखा कि रानीमें रोग तो कुछभी नहीं है फिर इसने बहाना क्यों करा; तब राजा हठ करके रानीसे पूंछने लगा, रानीने प्रथम राजासे साधुओंकी सेवामें दृढ रहनेका

वचन ले लिया, राजाने कहा ऐसाही होगा. मेरा चित्त कभीभी साधुओंकी सेवासे चलायमान न होगा. तब रानीने राजाकी प्रतिज्ञाको मानकर सत्य २ बात कही. राजा रानीकी इस दृढता और श्रद्धासे प्रसन्न हुआ तथा उससे अपने भाग्यकी अधिकाई भाग्यवाली जानकर भक्ति विचार उसकी परिक्रमा कर बहुतसा आदर सत्कार किया.

लाखाभक्तकी कथा १६.

हनुमान्‌के वंशमें लाखाजी मारवाड देशके रहनेवाले हंसकी समान हुए. उनको श्रीरामनामके मंत्रमें अति श्रद्धा थी; और उनको भगवान्‌की भक्ति और साधुओंकी सेवामें अत्यन्त प्रीति थी. उस देशके राजा उनकी आज्ञाको मानकर अपनेको भगवान् समझते थे. एक समय दैवसंयोगसे दुर्भिक्ष काल पडा; और उस समय साधु बहुतही आने लगे; लाखाजीने उनकी सेवा होनी कठिन विचार कर मनमें विचारा कि किसी और गांवमें जा ठहरें, जहां परमभक्तकी निन्दा हुई तब विचार लो कि भगवान्‌कीही निन्दा हुई; यह विचार व भक्तवत्सल महाराजने लाखाजीसे स्वप्नमें कहा कि तुम इसी गांवमें रहो कहीं मत जाओ. प्रभातकोही पचास मन गेंहूकी गाडी और एक भैंस तुम्हारे पास आवेगी; तुम उन गेहुओंकी कोठी भरकर जितने चाहो उतने खर्च करते रहना, उसमें कभीभी कमी नहीं आवेगी, और घृत अथवा दही जितना तुमको चाहिये सब हो जायगा. इस स्वप्नके देखतेही लाखाजीकी आंख खुल गई; उन्होंने यह समस्त वार्ता अपनी स्त्रीसे कही, और प्रातःकाल कोई पुरुष एक गाडी और भैंसको पहुँचा गया, और लाखाजी निश्चिन्त होकर साधुओंकी सेवामें मन लगाते हुए. उस अन्न और भैंसको पहुँचाकर

भगवान्‌ने बहुत उत्तम चरित्र किया, कि उस गांवमें कोई किसान निर्धन हो गया था; तब सब भाइयोंने मिलकर थोडा २ नाज उसको दिया और सर्वदा चौपालमें बैठकर इस दातारीकी प्रशंसा किया करते थे उनमेंसे किसी एक मनुष्यने कहा कि तुम जरा २ सा नाज देकरही अपनेको दाता बताते हो. देना तो औरही बात है, यह वार्ता सुन दूसरेने उत्तर दिया कि हां भाई ! इस समयमें आजकल तो तूही सबसे अधिक विशेषदाता है. देखेंगे कि तू लाखाभगतको पचास मन नाज और एक भैंस दे आवेगा वह इस कठोर वचनको न सह सका, और पचास मन नाज और एक भैंस लाखाजीके घर पहुँचा गया जब अकाल समाप्त हो गया तो लाखाजीने विचार किया कि अब श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करने चाहिये तब वह मारवाडदेशसे साष्टांग दंडवत् करते हुए चले; जब वह निकट पहुँच गये तब भगवान्‌ने पुजारीसे कहा कि एक मेरा भक्त बहुत दूरसे आता है और वह मेरे लिये एक स्मरणी लाया है. तुम उसको पालकीमें बैठाकर अति शीघ्र लाओ. उस स्मरणीके फेरनेके लिये मुझको अत्यन्त अभिलाषा है. पुजारी यह भगवान्‌की वार्ता सुन अति शीघ्र पालकी लेकर पहुँचे और लाखाजीसे सवार होनेके लिये कहा पुजारियोंसे लाखाजीने कहा कि भगवान्‌के समीप साष्टांग दंडवत् कर पहुँचनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है. लाखाजीकी यह वार्ता सुनकर पुजारी बोले कि सब प्रतिज्ञाओंसे भगवान्‌की आज्ञा मुख्य है. अंतको जब बहुत हठ हुई तब लाखाजी सवार होकर भगवान्‌के समीप गये; और भगवान्‌के दर्शन कर वह स्मरणी उनको भेट करी. वह भगवान्‌के सुन्दर रूपको देखकर तन मनमें न समाये और कई दिनतक भगवान्‌के चरणारविन्द अर्थात् पुरुषोत्तमपुरीमेंही रहे. लाखाकी एक कन्या क्वांरी थी, वह अपने घर-

धन भगवान्कोही समझते थे; और कन्याके विवाहमें कुछ खच नहीं करते, इस कारण वह बडी हो गई जगन्नाथजीने कहा कि हमारे भंडारेसे द्रव्य लेकर विवाह करो. यह भगवान्का वचन सुन लाखाभक्तके नेत्रोंमें आंसू आ गये और विचारने लगे कि भगवान्के रागभोगके लिये एक तो कुछ भेंट देनी थी सो तो न दी अब क्या उलटा भगवान्से लेना उचित है. यह विचार कर विना दर्शन कियेही पुरुषोत्तमपुरीसे चल दिये फिर स्वप्नमें एक राजासे भगवान्ने कहा कि लाखाजीकी कन्याके विवाहमें कुछ द्रव्य भेंट कर राजाने प्रभातकोही तत्काल एक हजार रुपयेकी हुंडी भेंट करी, लाखाजी तो उसकोभी नहीं लिया चाहते थे परन्तु भगवान्की आज्ञा मानकर ले ली, और घरपर आकर पचास सौ रुपयेमें तो कन्याका विवाह कर दिया और शेष जो कुछ द्रव्य बचा वह समस्त साधुओंकी सेवा और महोत्साहमें लगा दिया: वरन कन्याके विवाहके निमित्त जो जहांसे मिला समस्तही साधुसेवामें लगा दिया और अपनी सारी अवस्था भगवान्के भजन और साधुओंकी सेवामें व्यतीत करी.

रसिकमुरारीकी कथा १७.

रसिक मुरारी श्यामानंदजीके चेले भगवान्के परम भक्त हुए और अपना जो कुछ तन मन था सबकोही भक्तोंका समझते थे, वह भगवान्की पूजा और भक्तोंकी सेवा भली प्रकारसे करते थे, वह प्रिया प्रीतमके रंगे हुए जुगलस्वरूपमाधुरीके परम आनंदमें मग्न रहते थे. वह भगवान् और गुरुको अपनी सेवासे प्रसन्न करके सेकडों मनुष्योंका संसारसमुद्रसे उद्धार किया. उनकी यही प्रतिज्ञा थी, कि वह भगवान्के चरणामृतके सिवाय और किसीका जलपान नहीं करते थे. पीतलके बरतनमें चरणामृत धरा रहता, उसीको

गंगाजलकी समान समझते थे. एक समय वहांपर देश २ के साधु इकट्ठे हुए और बारह दिनतक बडी धूमधामसे उत्साह रहा, नाना प्रकारकी मिठाई और विविध प्रकारके पदार्थ भगवान्के भक्तोंको भोजन कराये; और उनकी इच्छानुसार सत्संग हुआ. उन्होंने एक साधुको साधुओंकी चरणामृत लेनेके लिये भेजा. जब वह लाया और गुसांईजीने आचमन किया तो कहा कि जो स्वाद चरणामृतमें सर्वदा होता था आज वह स्वाद नहीं. पूछनेपर उसने कहा मैं समस्त साधुओंका तो चरणामृत लाया हूं परन्तु एक साधुका नहीं लाया कारण कि वह कुष्ठी था. उसके रुधिर टपक रहा था इस कारण मुझको घृणा आ गई उसकाही चरणामृत मैं नहीं लाया. तब गुसांई-जीने अत्यन्त क्रोध करा और कहा कि अति शीघ्र उसका चरणा-मृत ला निदान उस साधुने उसका चरणामृत लाया, तब उस चरणा-मृतमें स्वाद आया. एक साधु भगवान्का प्रसाद जिमानेके समय कहने लगा कि एक पारस मेरे सोंटेकाभी लाओ, उन्होंने कहा कि कहीं सोंटाभी जीमता है. साधु अत्यन्त दुःखी हुआ, और अधमुंहा उठकरही अपना पारस मुरारीजीके शिरपर मारा. उस समय रसिक मुरारीजीके शिष्य और बारह राजा बडे २ उस साधुको समझानेके लिये उठे परन्तु रसिकमुरारीजीने सबको हटा दिया और स्वयं उठकर उस साधुके समीप हाथ जोडकर कहने लगे कि आपकी कृपाका मैं कहांतक वर्णन करूं और कहा कि साधुका चरणामृत तो मुझको मिला करता था परन्तु शतिप्रसाद मुझको नहीं मिलता था. सो अपने आपही आपने अनुग्रह कर मुझको दिया यह कहकर कई पारस उस साधुको और दिलाये और सब आज्ञाकारियोंसे कहा कि साधुको दुःखी न कर. कई एक साधु बागमें आकर ठहरे और गुसांईजीके दर्शनोंके लिये गये. एक साधु हुक्का पीता था उसने गुसांईजीको

आता हुआ देखकर हुक्का छिपा दिया, गुसांईजीने विचारा कि मेरे कारण साधुके हुक्का पीनेमें विघ्न पडा इस कारण सेवकोंसे कहा कि तुममेंसे जिस किसीके पास हुक्का तमाखू हो तो शीघ्र लाओ, मेरे पेटमें दर्द है. वे बहुत शीघ्र हुक्का तैयार करके लाये. गुसांईजीने दो चार घूंट खैंचकर उस साधुको दे दिया; इस चरित्रसे साधुकी लाजभी जाती रही और मन खोलकर गुसांईजीके आगे हुक्का पीने लगा. गुसांईजीकी जागीरमें दो चार गांव थे. एक दुष्ट राजाने गांव छीन लिये; गुसांईजीके गुरु श्यामानंदजीने पत्र भेजा कि जिस प्रकार बैठे हो उसी प्रकार चले आओ. गुसांईजी रसोई जीम रहे थे वैसेही हाथ मुँह धोकर चल दिये. गुरुजीने इस घबराहटसे आनेका कारण पूछा उत्तर दिया कि आपकी यही आज्ञा थी कि जैसे बैठा हो वैसेही चला आ; सो मैं वैसेही आया हूं. श्यामानंदजी अत्यन्तही प्रसन्न हुए, और गुसांईजीको छातीसे लगाकर अति प्रेमसे मिले फिर उन्होंने गांव छीने जानेका समाचार कह सुनाया और कहा कि राजाके पास जाओ; फिर वह राजाकी नगरीमें गये, राजाके जो मुसद्दी थे वही गुसांईजीके सेवक थे, उन्होंने कहा कि महाराज ! यह राजा महादुष्ट है आप उनके समीप मत जाओ हमहीं कह सुनकर आपकी जागीर दिलवा देंगे वह सुनकर तीन दिनतक गुसांईजी वहांही रहे और राजाकोभी इनके आनेका समाचार मिला राजाने लोगोंसे कहा कि गुसांईजीको हमारे पास लाओ, हमभी तो देखें कि वह कैसे भक्त और करामाती हैं. गुसांईजी पालकीमें सवार होकर बडी धूमधामसे राजाके पास गये; उस दुष्ट राजाने गुसांईजीके मारनेके लिये एक मदमत्त हाथी भेजा; और वह महावत गुसांईजीकी ओरको लाया कहार तो पालकी छोडकर भाग गये और गुसांईजीने हाथीकी ओर देखकर कहा कि अरे

यह क्या मूर्खता है? हरे कृष्ण हरे कृष्ण क्यों नहीं कहता? हाथी इस भगवान्के नामके मंत्रको सुनतेही अलग हट गया और सब मस्ती दुष्टताको छोडकर गुसांईजीके समीप आया; और नेत्रोंसे प्रेमके आंसू बहाता हुआ अपने मस्तकको गुसांईजीके चरणोंमें रख दिया, गुसांईजीने अत्यन्त दया कर उसके कानमें भगवान्के मंत्रका उपदेश दिया; और उसका गोपालदास नाम धरकर उसके गलेमें माला पहरा दी, राजाने जब हाल सुना तो लज्जायमान होकर अपने पापोंपर पश्चात्ताप करता हुआ गुसांईजीके चरणोंपर गिरा; और क्षमा प्रार्थना करने लगा; और गुसांईजीका चेला होकर भगवान्की शरणमें हुआ. जो गुसांईजीके गाँव छीने थे वह सब दे दिये, और कई एक गांव औरभी दिये और वह हाथी भगवान्का भक्त होकर साधुसेवा करने लगा. वह जहां कहीं भक्तोंका समाज देखता तो प्रणाम करता; और जवनारोंकी सामग्री लाकर साधुओंको भोजन कराता और जहां कहीं भंडारा और महोत्साह होता वहां सबसे प्रथम जाता और भगवान्के भक्तोंका शीतप्रसाद खाया करता. जिनकी हानि हुई थी उन्होंने गुसांईजीसे आकर कहा गुसांईजीने समझा दिया कि किसीकोभी हानि करना उचित नहीं, उसकी वह रीति उसी दिनसे छूट गई और वहां पांच सात साधुओंकी जमात हो गई. उस जमातको लेकर जिस गांवमें जाता उसी गांवके लोग रसोईकी समस्त सामग्री ला देते इस बातकी चर्चा सभी जगह हुई और होते २ आमिलनेभी सुना; उसने हाथीके पकडनेका हुकुम दिया, परन्तु वह किसीके हाथ नहीं आया अंतमें एक मनुष्य साधुका रूप बनाकर सरलतासे उसको पकडकर ले आया और उसको फीलखानेमें बांध दिया जो कि गोपालदास भगवान्के शीतप्रसादके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता था. वह

तीन दिनकत साधुओंके वियोग होनेके कारण खाने पीनेसे दुःखी रहा; यह देखकर सूबेदारने कहा कि गंगाजीमें ले जावो, यह गंगाजल तो पान करेगा. जब वह गंगाजीमें गया तो गोपालदासने अपनी देह त्याग कर दी और परम धामको चले गये यहांपर एक अत्यन्त महीन वार्ता निकलती है उसको मैं प्रगट नहीं कर सकता अपनी बुद्धिके अनुसार सबही उसको समझ लेंगे. भगवान्के भक्तोंकी कृपा अति उत्तम है.

मनसुखदासकी कथा १८.

मनसुखदासजी कायस्थ ऐसे भगवान्के भक्त हुए कि जिनके ऊपर भगवान्ने प्रसन्न होकर साक्षात् अपना दर्शन दिया. उनको हरिभक्तोंके चरणोंमें ऐसी प्रीति थी कि जैसी प्रीति निर्धनको द्रव्यसे होती है. दैवयोगसे दरिद्र आया; और भूंखे मरनेकी नौबत आई उस दशामें किसी द्रोहीके भडकानेसे कि दुष्ट लोग सदा हरभक्तोंके शत्रु होते हैं एक साधु मिठाई मांगने लगा, मनसुखदासजीने विचारा कि इस साधुके लिये मिठाई कहांसे आवे, मनसुखदासजीकी स्त्री इनमें विशेष भक्ति रखती थी उसने इनको अपनी नथ उतारकर दे दी. मनसुखदासजीने उसको गिरवी रखकर साधुओंकी सेवा करी. भगवान् इन दोनोंकी भक्तिको देखकर बहुतही प्रसन्न हुए; और मनसुखदासजीका भेष धारण कर बनियेको रुपये देकर नथ ले आये. उस समय मनसुखदासजीकी स्त्री भगवान्की रसोईके लिये चौका दे रही थी उसने भगवान्को मनसुखदासही जाना. और कहा कि यह नथ आलेमें रख दो या तुम पहना दो क्योंकि मेरे हाथ सन रहे हैं; भगवान्ने कृपा करके वह नथ आपहीसे पहरा दी और आप अंतर्ध्यान हो गये. भगवान्ने जो स्त्रीको दर्शन दिये और

उसकी देहको स्पर्श किया इसका कारण जो मनसुखदासजीको दर्शन न हुए तो इसका यही कारण है कि भगवान्‌ने मनसुखदास-जीकी भक्तिसे स्त्रीकी भक्ति विशेष समझी; कारण कि स्त्रीको गहना अत्यन्त प्यारा होता है और जिसपरभी सुहागकी वस्तु जान फिर जब ऐसे गहनेको प्रसन्न मनसे साधुओंकी सेवाके लिये उतार दिया, तो ऐसी बडभागनीसे भगवान् क्यों न प्रसन्न हों. इस चरित्रमें भगवान्‌ने एक शिक्षाभी की है कि ऐसी सुहागन आजतक कोई नहीं हुई जिसको मैंने अपने हाथसे नथ पहराई हो. यही मेरी भक्ति और साधुओंकी सेवाका प्रताप है कि दोनों लोकका सुहाग मैंने अपने हाथसे नथ पहराकर दिया. इतनेमें फिर मनसुखदासजी आये और स्त्रीको नथ पहरे हुए देखा तो उससे पूंछा कि यह नथ कहांसे आई, स्त्रीने उत्तर दिया कि इतनी जलदी भूलते हो अभी तो मुझको अपने हाथसे पहरा गये थे और फिर एक क्षणमेंही पूंछते हो कि कहांसे आई ? मनसुखदासजीने समझ लिया कि यह चरित्र भगवान्‌काही है, तब वह इतने प्रसन्न हुए कि तनमनमेंभी न समाये और अपने स्त्रीके भाग्यकी बडाई करने लगे. मनसुखदासजीने विचारा कि मुझसे क्या अपराध हुआ जो मुझको दर्शन न हुए. तब भगवान्‌के दर्शनोंके अभिलाषी होकर उनका भजन करने लगे और उन्होंने भोजन पान करना सभी त्यागन कर दिया फिर भगवान्‌ने मनसुखदासजीसे स्वप्नमें कहा कि तुम काशीजीको जाओ वहां तुमको दर्शन होंगे. तब मनसुखदासजी काशीजीमें गये और वहां जाकर रात दिन ऐसा भजन किया करते कि इनको अपने देहकीभी सुधि न रहती. जब उनका चिंतवनका अंत आ गया तब भगवान्‌ने चतुर्भुजरूपसे दर्शन दिये. मनसुखदासजी ब्रह्मानंदमें समा गये; भगवान्‌ने कहा कि तुम मुझको अत्यन्तही प्रसन्न हुआ

जानकर जो इच्छा हो सोई वर मांगो. वही इच्छा इस समय तुम्हारी पूर्ण होगी. तब मनसुखदासजीने विनती कर कहा कि आपका यह अत्यन्त सुन्दररूप अनूपस्वरूप यह सबही समय मेरे हृदयमें बसा रहे इससे अधिक और कुछभी इच्छा नहीं. निदान मनसुखदासजीने अपनी इच्छाके अनुसारही वरदान पाया, और इस माधुरीरूपके चिंतवनमें समस्त संसारके व्यवहारोंको भूलकर अपनी सारी अवस्था भगवान्‌के भजनमें विताई और अंतमें भगवान्‌को प्राप्त हो गये.

हरिपाल निष्किंचनकी कथा १९.

हरिपाल निष्किंचन ब्राह्मण भगवान्‌के भक्त और साधुओंकी सेवा करनेवाले हुए कि प्रथम जो कुछ उनके पास धन था सब साधुओंकी सेवामें खर्च कर दिया, फिर जितना कहीं उधार मिला वहांसे लाकर साधुओंकी सेवामें लगा दिया. वरन यहांतक हुआ कि वह निष्किंचन नामसे विख्यात हुए. जब उससेभी हाथ बंद हुआ तो चोरी और लूट करने लगे, परन्तु जिसके मस्तकपर तिलक और गलेमें माला देखते या भगवान्‌का भक्त समझते तो उसके धनसे कुछ प्रयोजन नहीं रखते. जिसको भगवान्‌से विमुख देखते उसीका धन चुरा लाते. एक दिन साधुओंकी जमात आई; उसको अपने अत्यन्तही आदरके साथ ठहराया और आप द्रव्य ढूंढनेके लिये निकले परन्तु कहींसे कुछ हाथ नहीं आया इससे बहुत घबडाये; जो कि भगवान् अपने भक्तोंकी घबडाहटसे स्वयं घबडा जाते हैं वह अपने भक्तकी सहायताके निमित्त द्वारकासे चले. तब रुक्मिणीजीने पूंछा कि महाराज ! घबडाकर जानेका क्या कारण है ? तो कृष्ण बोले कि मेरा भक्त घबडा रहा है यह सुन रुक्मिणीजीभी साथ हुई, और भगवान् साहूकारके भेषमें और रुक्मिणीजीभी साहूकारनीके

भेषमें होकर आये. उन्होंने निष्किंचनजीसे कहा कि हमें तू हुशि-यारीके साथ उस गांवतक पहुँचा दे तौ एक रुपया देंगे. निष्किंच-नजी धनुषबाण लेकर उनके साथ हुए, और मार्गमें विचार किया कि यह साहूकार तो चिकना चुपडा मोटा ताजा है; और भगवान्से विमुखभी दीखता है; इसके पास तिलक और मालाभी नहीं है, इसका धन लेना चाहिये; और जब घने जंगलमें पहुँचे तौ तलवार निकालकर साहूकारको दिखाई और कहा कि यदि सब गहना और धन मुझको न देगा तौ मैं तुझको स्त्रीसमेत मार डालूंगा, साहूकार भयमान हो डरता काँपता बोला कि महाराज! यह धन आपहीका है समस्त ले लो परन्तु मारो मत. यह कह समस्त गहना अपनी स्त्रीका उतार दिया और जो कुछ धन था सब उनको दे दिया. उनकी स्त्रीकी उंगलीमें एक छल्ला रह गया तो निष्किंचनजी उसकोभी उतारने लगा तब साहूकारकी स्त्री बोली कि अरे निगोडे! तू बडाही निर्दयी और कठोर है देख तो सही तैंने मेरा सारा गहना तौ उतार लिया अब एक छल्लेके लिये मेरी उंगली मरोडता है इससे तुझको क्या फल मिलेगा? तब निष्किंचनजीने कहा कि चल बावली! कहांकी कठोरता और दयालुता लगाई तेरा पति तौ तुझको सौ छल्ले गढा देगा; और मैं विना इन छल्लेके इस हरि-भक्तोंकी सेवा कहांसे करूंगा. भगवान्ने इन साधुसेवाके वचनको सुनकर भक्तके वशीभूत होकर उसपर कृपा कर साक्षात् परम मनोहर शोभायमान रूपसे जगज्जननी रुक्मिणीके सहित दर्शन दिया; और निष्किंचनको अपनी छातीसे लगाकर अपने मुखार-विन्दसे भक्तोंके राजाकी उसको पदवी दी, और बहुतसी कृपा और अनुग्रह करके आप अंतर्ध्यान हो गये. अब विचारना चाहिये कि साधुसेवाकी महिमाको, जिसके प्रतापसे पाप पुण्य हो जाते हैं,

और जो भगवान् कालकेभी काल और भयकेभी भय हैं वह स्वयं भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भक्तोंके वशीभूत हो जाते हैं और भक्तोंकीही इच्छा पूर्ण करनेके लिये अपना धाम छोडकर आते हैं ऐसे भगवान्की भक्ति सर्वदा करनी उचित है.

हरिरामजीकी कथा २०

हरिरामजी ऐसे परम भक्त हुए कि वह भगवान्के भजनकोही साधन और नेम व्रत आदिसे मुख्य समझकर इससे अधिक भगवान्के प्राप्त होनेका कोई द्वार न विचार कर भगवान्केही भजनमें लगे रहते थे. वह महान् प्रतापी, बुद्धिमान् और चमत्कारीमें भगवान्के प्रेमकीही समान थे, और उनका दिन, रात प्रिया प्रीतमके विचारमेंही व्यतीत होता था. साधुसेवाका आख्यान तौ कुछ आवश्यक नहीं कि वह साधुसेवा और भक्तिके सम्बन्धी हैं. एक संन्यासीने देशके राजाके घमंडसे किसी साधुकी कुछ भूमि छीन ली; उसने जब राजाके आगे कहा तो राजाने इन्साफ तौ न करा वरन उसको उल्टा धमकाया, उस बिचारे साधुने अपना सारा वृत्तान्त हरिरामजीसे कहा. हरिरामजी उस साधुको अपने साथ लेकर राजाके दरबारमें लाये. और प्रथम नम्रतापूर्वक समझाया बुझाया, जब देखा कि ऐसे तो काम चलता नहीं दीखता तौ निधडक हो क्रोध कर कठोरताके साथ कहा कि, जो भक्तोंका अपराध करता है वह निःसन्देह पातालको जाता है, देखो हिरण्यकश्यपने प्रह्लादजीको दुःख दिया था उसकी क्या दशा हुई थी; अब वह भगवान् क्या दूर हैं; जो वह अपराधीको दंड न देगा, राजा उसके यह वचन सुन डर गया, और उसी समय उस साधुकी भूमि उसको दिला दी. निःसन्देह भगवान्के भजनका यही प्रताप और बल है कि जिनकी आंखोंमें काल

और यम मच्छर और चेंटीकी समान है तौ राणा आदि राजोंकी तौ क्या सामर्थ्य है.

रानी और राजाकी कथा २१.

एक राजा परम भगवान्का भक्त और साधुसेवी ऐसा हुआ कि उसके घर नित्य भगवान्की भीड रहती, और वह आप अपने हाथसे सब तरहकी साधुओंकी सेवा करता. एक समय साधुओंकी जमात आ गई उनका जो महंत था वह परम ज्ञानवान् था; उसकी राजाने बहुत प्रार्थना कर ठहराया; और उस महंतसे उनकी ऐसी प्रीति हो गई कि जब वह जानेका विचार करता तो राजा उसके वियोगको न सहकर घबरा जाता. इस प्रकार महंतको एक वर्ष ठहराया; एक दिन उसने पक्का विचार कर लिया कि प्रभातकोही अवश्य जाना उचित है, और राजाकोभी उसके ठहरनेकी आशा नहीं रही, तब रोता हुआ घरपर आया, और रात्रिको रानीजीसे कहा वहभी अत्यन्त दुःखी हुई और समझ लिया कि महंत जो चले गये तौ राजा मर जायगा. यह विचार किया कि अपने पुत्रको विष देना उचित है; इस मिषसे दो चार दिन अवश्यही ठहरना होगा, निदान ऐसाही किया. और राजाके महलमें महारुदन होने लगा. यह समाचार महंतजीको मिला, तौ उन्होंने जानेको रोककर राजाके महलमें गमन किया, और उन्होंने जो उसका नीला रंग देखा तौ विचार किया कि इसको किसीने विष दे दिया है; और रानी राजासे उसके मरनेका समाचार पूंछा, उन्होंने प्रथम तो छिपाया, और जब महंतजीने बहुतही कहा तो उन्होंने समस्त वृत्तान्त कह दिया. महंत रानी राजाका अपने ऊपर इतना प्रेम देखकर उनके प्रेममें मग्न हो गया; और उन्होंने लडकेके जीवित होनेका यह उपाय विचारा; कि उन्होंने

सारे वैष्णवोंको इकट्ठा करके भगवान्का भजन कराया; थोडीसी देरमें तत्काल लडका जीवित हो गया और खेलने लगा, फिर महंतने सब साधुओंको विदा किया; और राजा रानीकी प्रीतिके वशीभूत होकर वहांही ठहर गया. सत्य है, जो पुरुष भगवान्के भक्तोंकी महिमा और सत्संगतिके सुखको जानते हैं, उनको भक्तोंका वियोग नरकके कीडेकी समान दुःखदाई होता है.

राजाके पुत्रीकी कथा २२.

एक हरिभक्त साधुसेवी राजाकी पुत्री ऐसे विमुख और नास्तिक पुरुषके साथ व्याही गई कि वह भगवान्की भक्ति और साधुसेवाके उपरान्त यहभी नहीं जानता था कि भगवान् और साधु किस वस्तुको कहते हैं. राजाकी पुत्रीने अपने पिताके घर साधुओंकी सत्सं-गति और भगवान्के भक्तोंका सुख और नारायण आदिका उत्साह यह समस्तही आनंद देखा था. जब वह अपनी ससुरालमें गई तो अपने पतिको देखकर अत्यन्तही दुःखी हुई और यह सर्वदा क्रोधा-ग्निमें जलने लगी उसने अपनी दासीको समझाया कि जिस दिन उस नगरमें भगवान्के भक्त आवें मुझको यह समाचार आकर देना एक दिन साधुओंकी जमात बागमें आकर ठहरी; दासीने लडकीको तत्कालही समाचार दिया, उसने विचार किया कि किस प्रकारसे हरिभक्तोंके दर्शन हों यह विचार करने लगी परन्तु उसको कोई उपाय नजर नहीं आया, तो अपने चार वर्षके पुत्रको हलाहल विष दे दिया. उस विषको खाकर लडका मृतक हो गया; उस लडकेका पिता अत्यन्तही दुःखी हो शिरपर धूल गेरने लगा, और मृतककी समान हो गया तब लडकीने अपने पतिसे कहा कि इसका उपाय एक मैं जानती हूं यदि वह उपाय हो जायगा तो इसमें संदेह नहीं कि लडका

जीवित हो जाय. मुझको स्मरण है कि मेरे पिताके घरभी ऐसाही हुआ था, तब साधुओंकी सेवाके फलसे वह कार्य सिद्ध हुआ, तब उसके पतिने पूछा कि साधु किसको कहते हैं और कैसे होते हैं ? तब राजाकी पुत्रीने उत्तर दिया कि यह दासीही जानती है. तब वह दासीको साथ लेकर ढूंढनेको चले , चलते हुए मार्गमें दासीने दंडवत् और प्रणाम करनेकी रीति सब बता दी, उसका पति दासीके साथ उस बागमें पहुँचा, और दंडवत् कर हाथ जोड साधुओंसे बोला कि महाराज ! आप मेरे घर चलकर मुझको पवित्र कीजिये. भगवान्के भक्तोंका मन दुःखीको देखकर तुरन्तही नरम हो जाता है, उसकी ऐसी दशा देख साधुओंको दया आ गई, और वह उसके घर आये, वह राजपुत्री साधुओंकी दर्शनकी अभिलाषामें सारा दुःख भूल गई और अत्यन्तही प्रसन्न होकर साधुओंकी आनेकी प्रतीक्षा कर रही थी. वह साधुओंको देखतेही फूली न समाई, और उसने दौडकर साधुओंके चरण पकड लिये, बहुत देरतक नहीं छोडे. साधुओंने जो उस राजपुत्रीका यह विश्वास और श्रद्धा देखी तो औरभी प्रीतिके वशीभूत हो गये और उनके दुःखको निवारण करनेके लिये लडकेका जिलानाही उचित समझा, भगवान्के चरणोंका चिंतवन कर भजन करने लगे, और चरणामृत मुखमें गेरा. भगवान्के भक्तोंकी कृपासे वह लडका इस प्रकार जीवित हो उठ बैठा मानो अभी सोतेसे उठा है और खेलने लगा उस पुत्रीके विमुख और नास्तिक पतिने भगवान्के भक्ति और भक्तोंका जो यह प्रताप देखा तो वह अति विश्वास और श्रद्धासे भगवान्की शरण होकर भक्ति करने लगा, और समस्त वस्तीके मनुष्यभी श्रद्धावान् हो गये. अब सत्संगकी महिमाको विचारना चाहिये कि एक पुण्यात्मा लडकीके प्रतापसे कितने पुरुषोंका उद्धार हो गया. भगवान्की भक्ति जन्ममरणका दुःख निवृत्त

करनेवाली है, इस कारण लाखों करोडोंको अमर कर देती है. यदि एक लडका जीवित कर दिया तो क्याही बडी बात है.

नीवाजीकी कथा २३.

नीवा जातिके राजपूत ऐसे भगवान्के भक्त और साधुसेवी हुए कि जो भगवान्के भक्त उनके घर आते तो वे अत्यंत प्रेम और प्रीतिसे उनका आदर सत्कार करते, और उनके चरणोंको धोकर चरणामृत लेते, और अपने घर ठहराते; और भक्तोंसे भगवान्की कथा श्रवण कर उनकी सेवामें रत रहते और एकाग्र चित्त हो उनकी सेवामें दत्तचित रहते किसी प्रकारकी त्रुटि उनकी सेवामें न आने देते. उनकी सारी अवस्था भगवान्के भक्तोंमें प्रीतिही करते बीती. भगवान्ने उस कालियुगमें उनकी सेवा ऐसी निवाही कि वर्णन नहीं हो सकता.

कृष्णदासकी कथा २४.

गलताराज्य जैपुरकी राजधानीमें कृष्णदासजी भगवान्के भक्त हुए, दिन रात रघुनंदन स्वामीके चरणकमलोंमें भँवरकी समान उनकी प्रीति रहती; वह मित्र शत्रुको समान जानते थे, उन्होंने कभी स्त्रीका स्वप्नमेंभी दर्शन नहीं किया; उनकी समान अभ्यास सेवाका कालियुगमें किसीको नहीं हो सकता, यहांतक कि जो कुछ दधीच ऋषिने सतयुगमें किया था वही कृष्णदासजीने इस समयमें किया. मानो उन्होंने कालियुगको जीत लिया. एक समय गुफामें भजन कर रहे थे इतनेहीमें द्वारपर एक सिंह आया, विचारा कि अभ्यागत आया है इसको भोजन देना चाहिये तब उन्होंने अपनी जांघका मांस काटकर आगे धर दिया. सिंहने भक्तिके प्रतापसे कुछ नहीं खाया तो आज्ञा हुई कि महाराज भोजन करो

यह आपकाही भोजन है. जब भगवान्‌ने यह सत्यता और विश्वास देखा तौ साक्षात् प्रगट होकर दर्शन दिया, और परम धर्मके स्थिर रखनेसे अपने भक्तकी श्लाघा करने लगे; और भक्तिका वरदान देकर अंतर्ध्यान होगये, और जांघ अच्छी हो गई; और उन्हें कुछभी दुःख न हुआ. अब इस चरित्रपर विचारना चाहिये कि हम एक चुटकीभर आटा देते हुए रोते हैं.

राजाबाईकी कथा २५.

राजाबाई रामराजा खेमालके बेटेकी धर्मपत्नी ऐसी भक्त और गुरुभक्तोंकी सेवा करनेवाली हुई कि उसने कृपा करके दोनों लोकोंमें यश प्राप्त कर लिया. जिसने अपने स्वामीकी शिक्षाको भली भांति सुनकर उनके अनुसार किया और नवधा भक्ति भगवान्‌की मुख्य समझकर मन लगाया; और सब धर्म छोड दिया; और उस भक्तिके प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌के भक्तोंकी प्रीतिके सिवाय और कुछ उपाय नहीं किया. सत्य असत्यके निज भूलको पहुंचकर भगवान्‌की निर्भेद सेवामें स्थिर हुई, और जिसका प्रेम और भाव आप राजाने हरिभक्तोंसे वर्णन किया. दाता वह इतनी थी, कि वह एक समय अपने पति राजारामके साथ दर्शन करनेके लिये श्रीमथुराजीमें आई और जो कुछ उसके पास था वह सब हरिभक्तोंको दे दिया, एक पैसातकभी अपने पास नहीं रखा और यहभी विचार न करा कि जब मार्गमें जांयगे तौ खर्च कहांसे आवेगा. दैवसंयोगसे एक सुवर्णका कडा एक सौ पांच रुपयेका रानीके हाथमें रह गया था, और जब घरके चलनेका समय आया तौ उसके बेंचनेका विचार हुआ, इतनेहीमें भक्तमालके वक्ता नाभाजी आ गये रानीने वह कडा नाभाजीकी भेंट कर दिया और राजाको बुलाकर कहा कि आजतक

यह कडा देहपर भारी बोझ मालूम होता था, आज इसका रखना सुफल हुआ जो भगवान्के भक्तोंकी भेंट हुआ. राजा बहुतही प्रसन्न हुआ, फिर वहांसे कुछ द्रव्य कर्ज लेकर अपनी नगरीको रानीसमेत आया. सत्य है जो साधुओंकी सेवाके समय आगे पीछेका विचार किया तो साधुसेवा क्या करी.

नंददासकी कथा २६.

नंददास ब्राह्मण बरेलीके रहनेवाले परम भक्त और साधुसेवी हुए खेतीका उद्यम करते जो उससे प्राप्त होता सो समस्त साधुसेवामें और भगवान्के उत्सवोंमें लगा देते. एक किसी नास्तिक दुष्टने मरी हुई बछिया उनके खेतमें डाल दी तब वह गांवमें आकर नंददासजी और सब हरभक्तोंको गाली देने लगा; और सबसे कहा कि नंददास अपनेको हरिभक्त कहा करता था सो उसने गोहत्या करी है. नंद-दासजी और समस्त लोग वह वार्ता सुनकर खेतपर गये; और उस मरी बछियाको देखकर नंददासजीको अत्यन्तही आश्चर्य हुआ. जिस प्रकार नामदेवजीने मरी गायको जिवा दिया था उसी प्रकार उस बछियाको जिवा दिया. यह आश्चर्य देख सब विमुख और दुष्टोंको श्रद्धा हो गई, और चरणोंपर गिर पडे और साधुओंकी सेवा करने लगे. भगवान् इस चरित्रसे साधुसेवा करनेवालेको शिक्षा करते हैं कि जिस प्रकार मारने और जीवित करनेका बल और सामर्थ्य मुझको है उसी प्रकार मेरे भक्तोंकोभी है; इस कारण मेरे और मेरे भक्तोंके स्वरूपमें कुछभी अंतर नहीं.

हरिदासकी कथा २७.

हरिदासजी जोगानंद महाराजके वंशमें परम भक्त हुए. उनकी भलाई और बुद्धिमें ऐसी शीघ्र वृद्धि हुई कि जिस प्रकार

वामनजीकी देह थोडी देरमें बढी थी. उचितकुल अर्थात् साधुभेष धारीकी अश्रद्धा अर्थात् खोट कभी भूलकरभी मनमें स्मरण नहीं करते. वह भगवान्के भक्तोंको अपने गुरुकी समान जानते, और उनको तिलक मालासे अत्यन्त प्रीति थी, वह गृहस्थी होकर इतने वैराग्य रखते कि उनको राजा जनककी समान विचारना चाहिये, और श्रीरघुनंदन स्वामीके चरणकमलमें उनकी इतनी प्रीति थी; कि वह सर्वदा उन्हींके ध्यानमें मत्त रहते और इन्द्रियोंके वश करनेमें अद्वैत हुए, और उसी प्रकार महाराज सीतापतिकेभी चरित्र कीर्तन करनेमें दत्तचित्त हुए.

कान्हडजीकी कथा २८.

कान्हड विठ्ठलदास चौबेके पुत्र मथुराके रहनेवाले भगवान्का महोत्सव इस प्रेम और भक्तिसे किया करते थे कि किसीसे कब बन सकता है. चारों वर्ण और चारों आश्रम और निर्धन, राजा आदि इस महोत्साहमें सभी इकट्ठे होते थे, सबके लिये भंडारा खुला हुआ रहता; कोई पुरुष रीता नहीं जाता. भगवान्के भक्तोंकी इतनी प्रतिष्ठा और सेवा होती कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता; चंदन और पान और पहरनेके वस्त्र सबको मिलते, और भगवान्के भजन कीर्तनका ऐसा समाज होता कि मानो अमृत वर्षता है. जिस समय भगवान्के भक्तोंको आभूषण और वस्त्र बांटते, तो बांटते २ इतने प्रसन्न हो जाते कि उन्मत्तसे दृष्टि आते. इस प्रेमके दो कारण हैं, एक तो यहही कि आभूषण और वस्त्र लेकर सब विदा होते, सो उनके वियोगका दुःख होता अथवा इस बातसे अत्यन्त हर्षित होते कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूं. जो भगवान्के भक्तोंके चरणोंकी सेवा करके उनका सेवक कहलाता हूं भक्तमालके वक्ता नाभाजीको. जो

गुसांईजीकी पदवी मिली; सो कान्हडजीके महोत्साहमें इकट्ठे होकर सबने दी थी.

माधोग्वालकी कथा २९.

माधोग्वाल ऐसे साधुसेवी और भगवान्के भक्त हुए कि मानो भगवान्ने उनको साधुसेवाकेही निमित्त जन्म दिया था, उनको रात दिन यही उपाय और विचार रहता था कि जिससे हरिभक्तोंको सुख और आनंद हो, तिलक और मालासे उनको इतनी प्रीति थी कि जिसको धारण किये देखते उससे अत्यन्त प्रसन्न होते. जिससे परलोक सुधरे और सबका भला हो वही काम उनको अच्छा लगता; और जो भगवान्की भक्ति इस प्रकारकी मानससरोवरकी समान है वह उसके हंस थे. रात दिन भगवान्के चरित्रोंके कीर्तनमें लगे रहते; लोगोंके दुःख निवृत्त करनेवाले गंभीर शब्दसे सबके मित्र और निर्मल अंतःकरणसे भगवान्के प्रेममें मग्न हुए

गोपालीकी कथा ३०.

गिरधरग्वालकी माता गोपाली जिनका भेषनिष्ठामें वर्णन होगा; इस संसारमें भगवान्के भक्तोंकी पालनाके निमित्त यशोदाजीका अवतार हुई. सारांश यह कि जिस प्रकार यशोदाजीने नंदनंदन महाराजको लाड लडाये थे, अथवा यह कि यशोदाजीने नंदनंदन महाराजकी सेवा और पालन किया था, और जो कुछ भगवान्के भक्तोंकी सेवा शेष रही थी इस कारण गोपालीका अवतार लेकर उसकी वह इच्छा पूर्ण करी. फिर मनमोहन महाराजमें इतना प्रेम था कि वह दिन रात भगवान्की सेवामें रहती थी, उनके समीप कलियुगके पाप कभी नहीं आये; उन्होंने भगवद्भक्तोंसे किसी प्रकारका भेद नहीं किया; उनकी वाणी अत्यन्त मनोहर और उनको सुख

देनेवाली थी; वह रात दिन श्रीगोविंद २ की ध्वनि करती रहती थी; उनका मन निर्मल और अत्यन्त सुन्दर था. वह ब्रजचंद्र महाराजका माधुर्य रस और भक्तिका रंग भरा हुआ था और उस रस और प्रेममें अथवा संतोंके चरणोंमें उनकी प्रीति अत्यन्त दृढ थी.

अथ

चौथी निष्ठा श्रवणका माहात्म्य।

(इसमें चार भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरघुनंदन स्वामीके चरणकमलकी कमलरेखा और कपिलदेव अवतारको साष्टांग दंडवत् है कि जिन्होंने संसारके उद्धारके निमित्त सांख्यशास्त्रको उत्पन्न किया और तत्त्व विचार करके प्रचार किया. भगवान्‌के चरित्रोंका श्रवण करनाही मोक्षका देनेवाला है; और यह प्रगट है कि जबतक उन चरित्रोंको न श्रवण करेगा तो भगवान्‌में मन किस प्रकार लगेगा ? ध्यानका करना और जप दो मंत्रकी पूजा चिंतवन और व्रत नेम आदि सब साधन केवल सुननेसेही सम्बन्ध रखता है. जब गुरु और शास्त्रोंके मुखसे सुना तब उसीके अनुसार किया. यदि ध्यान धरके विचारो तो समस्त संसार धर्मके सहारेसे चला है. जब ब्रह्माजीको भगवान्‌ने संसारके उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी तौ कुछ न हो सका केवल जब तप करनेकाही शब्द सुना और उसीके अनुसार किया. तभी इस संसारको उत्पन्न किया कि इसी मार्गवाले नादब्रह्मका सुननाही मुक्ति मानते हैं कि भागवतमें

इसका वर्णन है, और यहांपर उसका आख्यान लिखना इस कारण आवश्यक न समझा कि यह रीति पृथक् है और वह इस रीतिसे पृथक् है. निदान सुने विनाभी कुछ नहीं हो सकता; और भगवा-न्‌के मिलनेका तो भगवान्‌के चरित्र श्रवण करनेके सिवाय और कोईभी सरल मार्ग नहीं; सत्संगतिकी महिमा शास्त्र और पुराणोंमें लिखी है, उसका यथार्थ तात्पर्य यह है कि भगवान्‌के चरित्र सुने तो शीघ्रही परलोक कार्य सिद्ध हो; भगवान्‌ने श्रवण करनेकी महिमा अपनेही मुखारविंदसे कही है, और पुराणोंमेंभी जगह २ लेख है जिस प्रकार कि हरिवंशपुराणमें लिखा है. कि जहां भगवान्‌की कथाको सुनते हैं वहां वेद और शास्त्र उपस्थित होते हैं. जिनको मुक्तिकी इच्छा हो वह भगवान्‌की कथाको श्रवण करें. भगवान्‌ने कहा है कि जो भगवत्कथाके अमृतको अपने कानोंसे श्रवण करते हैं, वह समस्त पापोंसे छूटकर भगवान्‌के परम पदको प्राप्त होते हैं, फिर भागवतमें लिखा है कि जो पुरुष अभागी भगवान्‌की कथाको छोड-कर वृथा किस्से इत्यादि सुनते हैं. वह इस प्रकार है कि जिस प्रकार शूकरको मल प्रिय होताहै. अब विचारना चाहिये कि, जो भक्त हुआ, अथवा होगा वह सब भगवान्‌का चरित्र श्रवण करनेकाही प्रताप है; भगवान्‌के चरित्रोंका श्रवण करना तो सभी प्रकारसे उत्तम है, परन्तु जो रीतिके अनुसार और अपनी श्रद्धासे सुने तो अत्यन्तही उत्तम है. अर्थात् जो भगवान्‌के चरित्र कह रहा हो उसको व्यास और भगवान्‌के समान जाने, और भगवान्‌के चरित्रमें वा उस शास्त्रमेंभी प्रीति हो फिर उनके चरित्रोंको समझकर उनके निस्तारपर ध्यानरख ना योग्य है, और शास्त्रकी आज्ञानुसार काम करे, और भगवान्‌के चरित्रोंके श्रवण करनेकी अधिक अभिलाषा हो जिससे कि कभी तृप्ति न हो; वरन भगवान्‌के चरित्रको जितनी देर सुने तथा समझे

ऐसा कदापि न कहे कि अमुक पुराण एक वार सुन लिया है अब सुननेकी इच्छा नहीं. पृथुमहाराजने भगवान्से इच्छा करी कि महाराज आपके चरित्रके सुननेको मेरे सहस्र कान हो जांय, और मेरा मन सर्वदा आपके चरित्र श्रवण करनेमें लगा रहे कभी हटे नहीं, नित्त नये आपके चरित्र सुनता रहूं. नवधा भक्तिसे जो सर्वोत्तम अधिकार श्रवण करनेवालेको लिखा है उसका तात्पर्य यह है कि भगवान्के चरित्र सुने विना भक्ति प्राप्त नहीं होती. परस्परकी वार्तालापमें भगवान्के चरित्रकाही सुनना और राग और विष्णुपद इत्यादिका श्रवण करना सब श्रवणनिष्ठामें है परन्तु अधिकतर श्रवण वह है कि भगवान्के भक्तोंकी सत्संगतिमें चरित्र सुने जांय, क्योंकि उस श्रवणका कार्यभी वहांही होता है. जो. कुछ संदेह हो तो वहभी तत्काल निवृत्त हो जाता है. अथवा पुराण इत्यादिका श्रवण कराना यहभी एक उत्तम भांतिका श्रवण है क्योंकि आपही आप सत्संग प्राप्त हो जाता है, सो कथा करानेका प्रचार कहीं २ तो है; परन्तु जो धनवान्, सरदार और सरकारी नौकर हैं, उनकी कथा करानेकी रीति अनूठीही है. प्रथम तो भगवान्के चरित्रोंमें किसीका चित्तही नहीं और कितने एक मंदभागी तो यह कहते हैं कि भगवान्की कथाके श्रवण करनेसे क्या होता है, वह दुष्ट अपनी करनीके फलका परिणाम नहीं विचारते हैं कि लिखना पढना समस्त संसारी काम श्रवणके द्वारा उनके ध्यानमें आये हैं, और जबतक भगवान्की कथा उनके श्रवण करनेमें न आवेगी तो वह भगवान्के रूपको कैसे ध्यानमें लावेंगे, और कई एक कुटुम्बियोंकी मैंने यह दशा अपनी आंखोंसे देखी है कि उनके कुटुम्बमें कभी कथा नहीं होती, वरन अशुभ और किसी आपत्तिके आने अथवा किसी प्रियसम्बन्धीके मरनेका कारण कथाको समझते हैं, सो उनका ऐसा विचार इस कारण है कि भगवान् उनके धन द्रव्य अधिकार और

कुटुम्बका शीघ्रही नाश करना और संसारसे उनका नाम निशान मिटा देना चाहते हैं, और जो किसीने बोझसे कथा कहलाईभी तो उससे कि वह पुरुष किसीका कृपापात्र, पाधा व पुरोहित, लडकाई अथवा तरुण अवस्थाका मित्र अथवा और किसी ऐसेही प्रकारका हो और प्रेमी भगवान्के भक्तोंकी तो बातही नहीं और जब उस कथाका आरंभ हुआ तो कोईभी सुननेको नहीं आता. कोई कहता है कि मुझको छुटकारा नहीं, कोई २ कहता है कि हमने क्या पाप किया है जो कथा सुननेको जांय और कोई कहता है कि जिस दिन समाप्त होगी उसी दिन आवेंगे और कोई अपनेको बडा समझकर इस घमंडसे अपनेसे छोटेके घर नहीं जाते; और उनको शतरंज, गंजफा खेलने अथवा वेश्यागमन करनेके कवित्त छंद पढते अथवा इसी प्रकारके और व्यर्थ कार्य करनेके सिवाय और कुछ काम नहीं, और कदाचित् कोई दैवसंयोगसे चलाभी गया तो मन नहीं लगा, जातेही तत्काल सो रहे उलटे घरको चले आये और जब किसीने कुछ पूंछा तो पंडित और कथाकी दोनोंकी निन्दा करने लगे बोले न कुछ पंडित जानता है, और न कथा समझमें आती है. केवल वह कथा कहलानेवाला अकेला सुनता रहता है; और जब कथा सम्पूर्णका दिन आया और उसने उन मनुष्योंको बुलाया तो दश बीस वारके बुलानेसे ऐसे समय आये कि जब समझा कि अब रुपया चढाया जायगा कारण यह कि कोई अक्षर कानमें न पड जाय और कथाके समाप्त होनेमें कुछ विलम्ब हुआ तो बुलानेवालेपर क्रोध किया कि इतना पहले क्यों बुला लाया और कोई २ पंडितजीसे कहता है कि महाराज! शीघ्रता करो संध्या हुई जाती है; और कोई २ गर्दन उठाकर पत्रेको देखता और विचारता है कि अभी अंतकी पंक्ति नहीं आई, और घरके स्वामीसे कहता है कि आरती इत्यादिकी सामग्री शीघ्र तैयार

करो देर न हो. और कोई कहता है कि किस आपत्तिमें आ फँसे और किसीने पीले चावलोंको देखकरही रुपया भेज दिया और कहा कि आज हमें तो अवकाश है नहीं इस कारण यह रुपया लेते जाओ हमारी तरफसे चढा देना, उसने आनेका परिश्रम नहीं उठाया. निदान इस प्रकारसे कथा सम्पूर्ण हो गई परन्तु इसमें इतनी औरभी विशेषता है कि यदि दाव लग गया तो रुपया खोटाही चढा गये. आहा हा ! क्याही उत्तम विचार है कि यदि नाचमें जाते तो स्वप्नमेंभी यह विचार नहीं लाते; और उसकी अभिलाषामें खाना पीनाभी भूल जाते; और सबसे प्रथम जा पहुँचते परन्तु भगवान्‌के चरित्र सुननेको कथामें जानेके लिये यह दशा है कि मानो किसीने तोपके मुँहपर खडा कर दिया हो. मैं हाथ जोडकर यह प्रार्थना करता हूं कि मुझ पापीने यह अपना हाल लिखा है इससे श्रवण करने तथा पढनेसे किसीको दुःख न हो, और यह एक हिस्सेमेंसे करोडवां हिस्सा है. हां; इस समय भगवत्कथाके वर्णनकी शैली श्रीयुत हरसहायपाठकजीके यहां यथायोग्य होती है. यह नियमसे कथा बारहों महीने सुनते हैं और पूर्ण प्रेम भक्ति रखते हैं, जो अक्षर पुराणादिमें हैं केवल उन्हींका अर्थ श्रवण करना और पूर्ण श्रद्धा विश्वास रखना तथा जो कुछ कथामें धर्मकर्मकी वार्त्ता आवे यथाशक्ति उसके अनुसार अनुष्ठान करना, और दूसरे श्रोताभी यहां इसी प्रकारके एकत्रित होते हैं यह स्थान केवल कथाश्रवणकेही निमित्त है किसीका कुछ व्यय नहीं होता कैसाभी समय हो वृद्धावस्था अधिक होनेपरभी कथाश्रवणमें दृढ संकल्प रहते हैं. शास्त्रोंमें जो कथाश्रवणके नियम हैं वे यथायोग्य संपादन होते हैं, इनकी कीर्ति और साधुसेवा नगरमें व्याप्त हो रही है. हे रघुनंदनस्वामी ! हे दीनवत्सल ! हे दीनबंधो ! हे दीनदयालो ! कोई दिन ऐसाभी आवेगा कि जिस दिन आपके पवित्र चरित्र तो चंद्रमा

की समान होंगे और मेरा मन चकोरकी समान होगा; और कोई क्षण ऐसाभी होगा कि आपके रूपका चिंतवन और ध्यान द्रव्यकी समान होगा कि मेरा मन लोभी पुरुषकी समान आपमें होगा. हे करुणाकर महाराज ! जो मैं अपने मंदभाग्य और पापोंपर दृष्टि करता हूं तो करोड जन्मतकभी अपने पापोंका उद्धार नहीं देखता; और पतितपावन दीनवत्सल दीनदयालु अधमउधारण करुणानिधान आदि आपके नामोंपर दृष्टि करता हूं तो कोई भय नहीं समझता, परन्तु इसमेंभी विशेषता यह है कि मेरा लिखना केवल नामके लिये है; मनसे जो इस अपने लिखनेपरभी दृढ होकर निडर रहूं तौभी बेडा पार है. कहांतक विनती करूं जो प्रकृति मेरी है ऐसी उसमेंसे एकभी नहीं; जो आपकी सेवाकी रुचि हो. अब मेरी इतनीही प्रार्थना है कि मैं जैसा कुछ हूं आपहीका हूं. यह सर्वोत्तम समाज आपके चरित्रका सब भक्तोंके चित्तको परम आनंदका देनेवाला है. जब वृषभानुनंदिनी व्रजचंदनीजीको यह समाचार मिला कि नंदनंदन व्रजनागर महाराज होरी खेलनेकी सामग्री लेकर अपने हजारों लाखों सखा व मित्रोंसहित आ पहुँचे तो तुरन्त अनगिन्त साथमें सखियें लिये और रंग गुलाल आदि सहित परम आनंद और उमंगमें भरी हुई गाती बजाती हुई चली. जब मानससरोवरके निकट पहुँची, तो इतनेहीमें नंदनंदन महाराजका झुंड आ पहुँचा और दोनों ओरसे रंगकी वर्षा की गुलाब, केवडे, कस्तूरी, केसर, चंदन इत्यादिके अतरसे सुगंधित होने लगी फिर कुमकुमाके अबीर और गुलाल, सफेद, लाल, पीले हरे अब्बासी गुलाबीसे भरे हुए थे चलाये. यह तो दूरसे हुआ और जब दोनों ओरसे मिल गये तो रंग छिडकाना, गुलाल उडाना, एक दूसरेपर डालना; इस धूमधामसे हुआ कि पृथ्वी आकाश रंगीला होकर आनंदरूप हो गया, जो कि सामग्री लाडलीजीके,

पास बहुत थी और उनकी विजय भरी सेना बहुत सजी और बनी हुई थी कि उसमें ललिता, विशाखा, श्यामला, श्रीमती, धन्या, पद्मा, भद्रा, चन्द्रावली, हजारों लाखों सखी सहेलियोंके सहित थीं, इस कारण श्रीव्रजकिशोरीजीके झुंडकी विजय हुई. यद्यपि नट नागर महाराजकी ओरभी श्रीदामा, मंगल, मधु, सुबल, सुबाहु, अर्जुन, भोजमंडल, सरदार बहुतसे सखा और बालगोपालसहित थे; परन्तु चतुराई सुघराई तीक्ष्णताके कारण दूसरे समूहसे पराजित हो गये, और व्रजकिशोरीजीको कुमकभी पहुँची कि ब्रह्माणी, पार्वती, इन्द्राणी आदि जो विमानोंमें सवार होकर इस परम आनंदको देखने आई थीं, सो श्रीव्रजनागरीजीके प्रसन्न करनेके हेतु रंग गुलाल और कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं. ऐसा हुआ कि एक नंद नंदनजीके सखाको दस दस व्रजनारियोंने घेर लिया, और गुलाल मलने और रंग छिडकानेसे सबका हाथ रोक दिया और अपने रूपकी सुघडाई और चतुराईसे मंद मुसकान और तीव्र दृष्टिके जालमें फँसा लिया. नंदकिशोर महाराजको श्रीवृषभानुनंदिनीने पकडा और गलेमें हाथ डालकर अपनी ओर खैंच लिया, और ललिता विशाखा धन्या आदि जो उनके निकटही थीं सो उनकी सहायतासे श्रीव्रजचंद्र छूटने न पाये और सबने मिलकर रंग गुलालसे उनकी खूब खबर ली. चन्द्रावली जो लाडलीसे प्रीति रखती थी यह दशा देखकर तत्काल उनके निकट आई और श्रीव्रजकि-शोरजीसे कहा कि महाराज तुम गबडाओ मत, हम समस्त सामग्री तुम्हारी सहायताके निमित्त ले आई हैं. निदान श्रीचन्द्रावलीजीकी कृपासे व्रजनागर महाराजने व्रजनागरीजीको पकडकर इच्छानुसार अपना बदला लिया; और रंग छिडकाना आदि हास्य बोलचाल उस समाजमें ऐसी धूमधामसे हुआ कि भक्तोंके मनमें अबतक

भासमान हैं, और ब्रह्मादिक देवता देखनेवाले जानते हैं. उस समयकी सुन्दरता श्रीव्रजकिशोरीजीकी किससे वर्णन हो सक्ती है ? मानो वह देहसहित पृथ्वीपर आकर करोडों चंद्रमाकी शोभाको लजाती हैं, गोरे मुख और प्रकाशित स्वरूपपर अलकें छूटी हुईं; चंद्रिका और सीसफूल शिरपर, मस्तकपर कस्तूरी और केशरका जडाऊ टीका शोभित है. कानामें झूमके और कर्णफूल, नाकमें नथ, वेसर; महीन जरीका हरा दुपट्टा और वस्त्र लहँगा आदि अत्यन्त चमकदमकके साथ और अतिसुन्दर आभूषण देहपर सजे हुए थे. एक हाथ तो व्रजनागर महाराजके गलेमें और दूसरे हाथमें गुलाल इसी प्रकार यशोदानंदन महाराज बडी सजधजके साथ श्यामसुन्दर स्वरूपपर अलकोंके बाल बिखरे हुए शीशपर मुकुट और कानोंमें कुंडल, झूमके और आभूषण अंगपर विराजमान, महीन दुपट्टेसे कमर कसी हुई; एक हाथ तो वृषभानुकुमारीके गलेमें गलबहियां डाले हुए उनकी छातीतक पहुँचा हुआ था और दूसरे हाथसे गुलाल मले हुए थे इस प्रिया प्रीतमकी छबिको देखकर ब्रह्मा और शिवकी तो क्या सामर्थ्य है जो आपेमें रहे. वरन प्रिया प्रीतम एक दूसरेके रूपको देखकर उन्मत्त हो गये.

नारदजीकी कथा १.

नारदजी महाराज भगवान्‌की भक्तिकी निष्ठाओंमें शिरोमणि और सबसे प्रथम गिननेके योग्य हैं; और भगवान्‌के धर्म प्रचार करनेमें तो वाल्मीकि और व्यास इत्यादि ऋषियोंको उनका उपदेश हुआ और इसी प्रकार कीर्तनमें कि तीन काल वीणा लिये भगवान्‌के चरित्रोंका गान करते हैं. शास्त्रोंमें जहां तहां जो उनके चरित्र लिखे हैं सो भगवान् धर्म प्रचार करने और कीर्तन करनेमें

विशेष हैं. उन दोनों निष्ठामें जो उनको नहीं लिखा; और श्रवण-निष्ठामें लिखा तो इसका यह कारण है कि नारदजीको यह अधिकार प्राप्त हुआ; सो केवल श्रवणनिष्ठाके द्वारा हुआ है; और भगवान्के चरित्रोंको श्रवण कर जैसा करना चाहिये वैसा उन्होंने यथार्थहीमें किया है. तिससे विशेष अबभी जहांपर भगवान्के चरित्र और कथा वर्णन होती हैं. नारदजी अवश्य श्रवणको आते हैं इस कारण इस निष्ठामें लिखा जाता है. नारदजी भगवान्का अंश अवतार हैं, और भगवान्का मनभी उनको लिखा जाता है; फिर ब्रह्माजीके पुत्र और सब पुत्रोंमें प्रिय और सब देवताओंके गुरु भगवान्ने गीताजीमें उनको देवताओंके ऋषियोंमें लिखा है. उनको जगत्के उपकारमें इतनी प्रीति और श्रम है कि वह दो घडीसे सिवाय किसी स्थानपर नहीं ठहरते, और जगह २ आप जाकर शिक्षा करते हैं. श्रीरामायण वाल्मीकिजीकी और श्रीमद्भागवत दो बडे जहाज जो संसारसमुद्रके डूबे हुओंको तारनेके लिये रचे गये इसका उपदेश प्रथम नारदजीने किया था. जिन पुरुषोंपर कृपाकी दृष्टि हुई और जो उनको अधिकार मिला उसका तो वर्णन किससे हो सकता है कि वह समस्त भगवान्का रूप हो गये; जिस प्रकार प्रह्लाद ध्रुव, दक्षके साठ हजार पुत्र प्रजापाति प्रचेता आदि हजारों लाखों हुए परन्तु जिनपर क्रोधकी दृष्टि हुई वेभी अंतमें भगवान्को प्राप्त हो गये और वह क्रोधित दृष्टि सहस्रान सहस्र कृपा और अनुग्रहकी हो गई. नारदजीकी लीला और उनके चरित्र अगणित हैं. इस स्थानपर भगवान्के भक्तोंको श्रवण करनेके निमित्त केवल आदिच-रित्र लिखा जाता है. नारदजी पहिले कल्पमें दासीके पुत्र थे, उनकी माताके ऊपर जब आपत्ति आई तब वह इनको ऋषियोंके आश्रममें ले गई, और ऋषियोंकी सेवा करके उनके शीतप्रसादसे अपना और

इनका उदर पूर्ण करती रही. जब नारदजीकी माता किसी कार्यके लिये जाती तो उनको ऋषियोंके समीप बैठा जाती. नारदजी उन ऋषियोंकी बात चीत सुना करते इस प्रकार नारदजीका चित्त नारायणकी कथा वार्ताको श्रवण कर संसारके व्यर्थ विचारोंको त्यागकर एक तरफ लगा; और उनकी भक्ति भगवान् और ऋषियोंके वचनमें अत्यन्त दृढ हुई. उनकी जितनी श्रद्धा और मनकी स्थिरता होती गई उतनीही उनपर ऋषियोंने विशेष दया करी. यहांतक हुआ कि भगवान्की भक्तिके जो जो भेद गुप्त रखने योग्य हैं वेभी नारदजीकी भक्ति देख उनको उपदेश किये; और फिर भगवान्के ध्यानकी शिक्षा करी उसपर नारदजीने ऐसा दृढ विश्वास किया कि थोडेही कालमें मनकी निर्मलता और ज्ञानवैराग्यको धारण कर लिया. जब नारदजीकी माताका देहांत हो गया तब यह जंगलको चले गये, और वहांपर भगवान्का ध्यान करने लगे. एक वार भगवान्के मनोहररूपका प्रकाश प्रगट होकर उनके अंतःकरणमें फिर अंतर्ध्यान हो गया. नारदजी उस रूपके विचारमें व्याकुल होकर भगवान्के भजनमें लगे रहे, और अंतमें इस कल्पमें उनको यह अधिकार मिला कि वह ब्रह्माजीके पुत्र तरण तारण हुए कि उनकी महिमाको ब्रह्माजीभी वर्णन नहीं कर सके.

गरुडजीकी कथा २

गरुडजी भगवान्के पार्षदोंमें हैं यद्यपि उनको सेवानिष्ठामें लिखना उचित था कारण कि वह सर्वदा भगवान्के समीप रहते हैं; प्रगट और गुप्तवरण अंग और जीवको भगवान्में लगा रक्खा है, परन्तु श्रवणनिष्ठामें लिखे जानेका कारण यह है कि एक वार उनको भगवान्की मायाके प्रतापसे कुछ भ्रम हुआ; और वह भ्रम उनका भगवान्के

चरित्र श्रवण करनेसे निवृत्त हुआ इस कारण उनको श्रवणनिष्ठामें लिखा कि अब श्रीरघुनंदन स्वामी रामचंद्रजी लंकाके विजय करनेके मनोरथसे गये, और रावणका पुत्र इन्द्रजीत युद्ध करनेके लिये आया, तो इन्द्रजीतने सारी सेना और रामचंद्रको नागफांसमें बांध लिया. जिसकी मायाकी फांसीमें अगणित ब्रह्माडोंके ब्रह्मा और देवता इत्यादि फँसे हैं; जिस शुद्ध सच्चिदानंद पूर्णब्रह्म जिसका कि एक वार नाम लेनेसे अनंत महापापी एक क्षणमें आवागमनके कठोर संकल्पोंसे छूट जाते हैं वह लीला करनेके लिये नागफांसमें स्वयं बंध गये, तब उन्होंने गरुडजीको भेजा तब उन्होंने आकर सब सर्प खा लिये और इन्द्रजितकी माया दूर हुई. तब गरुडजीको यह भ्रम हुआ कि यदि रामचंद्र ईश्वर और भगवान्‌का अवतार होते तो ऐसा कदापि न होता, कि यह तुच्छ राक्षस अपनी मायाके बलसे इनको फांस लेता गरुडजीने यह विचार कियाही था कि भगवान्‌की मायाने उनकी बुद्धिको अज्ञान कर दिया; और ऐसी व्याकुलता और भ्रममें डाला कि उन्होंने मनको बहुतेराही समझाया परन्तु शांत न हुआ. तब वह अंतमें ब्रह्माजीके पास गये; और उन्होंने अपनी दशा वर्णन करी, तब ब्रह्माजीने गरुडजीको शिवजीके पास भेज दिया, तब शिवजीने विचार किया कि इसने जो भगवान्‌को गर्ववचन कहा था, सो उन्होंने-ही इसका ज्ञान हर लिया है सो वह उसकी अज्ञानता कागभुशुंडजीसे निवृत्त होगी. क्योंकि पक्षीकी बात पक्षीही भली प्रकार समझ सकते हैं निदान गरुडजीको कागभुशुंडके पास भेज दिया; तब गरुडजी काग भुशुंडजीके समीप गये तो यह माया तत्कालही निवृत्त हो गई. क्योंकि लोमशऋषिके आशीर्वादसे रामचंद्रकी इच्छाके अनुसार माया उनके स्थानपर नहीं आती. फिर काग भुशुंडजीके समीप गये और उनके समीप समस्त रामचरित्र आद्योपान्त सुनाया, उस

परम अमृत चरित्रको श्रवण कर उनको ज्ञान प्राप्त हो गया, और उसीके प्रतापसे वह अमर हो गये अर्थात् उनके निकट कभी मृत्यु नहीं आती है, वास्तवमें अज्ञानकाही रोग सताता है, इसमें संदेह नहीं कि भगवान्के चरित्रोंका श्रवण करना अज्ञानरूपी अंधकारको नाश करनेके लिये सूर्यकी समान प्रकाशित है कि तत्काल उसका नाश हो जाता है और संसार परलोकके पूर्ण होनेके लिये कल्पवृक्षकी समान है.

राजापरीक्षितकी कथा २.

राजा परीक्षित् अभिमन्युके पुत्र और अर्जुनके पौत्र श्रवणनिष्ठामें शिरोमणि हुए. इस संसारमें श्रीमद्भागवतका प्रचार उन्हींसे हुआ कि. जिसके प्रतापसे सहस्रों महापापी इस कठिन संसारसमुद्रसे पार हो गये और होते हैं; और उनके परीक्षित् नाम होनेका यही कारण है कि जब यह गर्भमें थे तब अश्वत्थामा द्रोणाचार्यके पुत्रने पांडवोंके वंशका नाश करनेके निमित्त ब्रह्मास्त्र प्रयोग किया भगवान्ने अपनी पूर्ण कलासे उत्तराकी कुक्षिमें जाकर उस ब्रह्मास्त्रसे परीक्षित्की रक्षा करी उस समय जब परीक्षितजीने देखा, तो उन्होंने वह अत्यन्त सुन्दर रूप देखनेकी इच्छामें आंखे नहीं मूंदीं, जब जन्मके पीछे भगवान्को देख लिया तभी आखोंको खोला, मूंदा इस कारण इनका परीक्षित् नाम हुआ. फिर जब दो चार वर्षके हुए तो जिसको पीले वस्त्र पहरे हुए देखते उसीके पास चले जाते, और उसको भगवान् समझकर देखते रहते, इस कारणभी परीक्षित् नाम है. जब श्रीकृष्ण अंतर्ध्यान हो गये तब पांडवोंने परीक्षित्को राज्य दे दिया और गृहस्थाश्रमको त्याग दिया फिर परीक्षितजीने इस प्रकार न्याय और धर्मसे प्रजाका पालन किया कि उनकी

प्रजा राजा युधिष्ठिरकोभी भूल गई. एक समय राजा परीक्षित्ने विचार किया कि यद्यपि अबतक मेरे राज्यमें कलियुगका प्रभाव नहीं हुआ है, तौभी उसकी चौकसी रखनी कर्तव्य है; इस मनोरथसे दिग्विजयके लिये सवार हुए, और सबको अपने धर्ममें सावधान पाया, परन्तु राजा परीक्षित्ने कुरुक्षेत्रमें यह दशा देखी कि एक शूद्र राजाके भेषमें बैलको ताडना कर रहा है वह बैल धर्मरूप है, उसका पृथ्वीपर एक चरण रह गया था, और पृथ्वी गौरूप होकर उसके पास खडी हुई रोती है राजाने तलवार खैंचकर उस शूद्रको जो कलियुग था आज्ञा दी कि जो तू अपना जीवन चाहता है तो मेरे राज्यसे बाहर हो. तब राजाके यह वचन सुनकर कलियुगने हाथ जोडकर प्रार्थना करी कि महाराज ! आपका राज्य तो सारी पृथ्वीपर है फिर मेरे रहनेके लिये कौनसी ठौर है जहां मैं जाकर रहूं; सो आप कृपा कर मुझको बतला दीजिये. कलियुगकी यह वार्ता सुन राजाने उसके रहनेके स्थान पाँच जगह बताये. १ प्रथम तो मदिराकी हाट २ जुआ खेलनेकी जगह ३ जीव हिंसा करनेकी जगह ४ वेश्याका स्थान और ५ कंचन बताया जो कि भगवान्के पुण्य और भजनमें न आता हो. कलियुगने दंडवत् कर जीवके भयके कारण पांचों स्थान स्वीकार कर लिये. फिर राजाने धर्म और पृथ्वीको भली प्रकार ढाढस बँधाया, और पांचों स्थानोंमें ऐसी रोकटोक करी कि कलियुगके रहनेको कोई स्थानभी न मिला एक समय सुवर्णका मुकुट पहरकर राजा शिकार खेलनेको गये थे, उस मुकुटके सुवर्णमें पुण्य और भगवान्का भजन नहीं था, उस समय कलियुगने अपना अवसर पाया और राजाके मुकुटमें वास किया; और उसने अपना प्रभाव फैलाया इसी कारण राजाको शिकार खेलनेकी अभिलाष हुई; और उसको शिकारकी खोजमे जाते २ प्यास

लगा. तब राजाने शमीक ऋषिके आश्रममें जाकर पानी मांगा उस समय ऋषि समाधि लगाये हुए थे इस कारण राजाके वचनका उत्तर न मिला. राजाने विचारा कि इन्होंने मुझे देख मेरा किंचित्भी आदर न किया वरन नेत्र मूंद लिये. यह विचार कर उनके गलेमें एक मरा हुआ सर्प डाल दिया; और घर आकर जब मुकुट शिरसे उतारा तब अपने उस माहाकुकर्मपर पश्चात्ताप किया. जब ऋषिके पुत्र शृंगी ऋषिने यह समाचार सुना तो; वह अत्यन्त क्रोधित हुए. और कौशिकी नदीका जल लेकर राजाको यह शाप दिया कि हे राजन्! तुमने जो अपनी अभिमानताके वश होकर मेरे पिताके गलेमें मरा हुआ सर्प डाला है इसीके अपराधसे आजसे सातवें दिन तक्षक सर्प तुमको डसेगा. जब ऋषिने यह वार्ता सुनी तो उन्होंने बहुतही पछतावा किया और कहा कि हे पुत्र ! यह राजाको शाप क्यों दिया ? ऐसे धर्मात्मा और भगवान्के भक्त राजा पृथ्वीपर कम होते हैं परन्तु ईश्वरकी इच्छा, फिर जब कुछ उपाय दृष्टि न आया तब अपने चेलेके हाथ यह सब समाचार कहला भेजा और कहा कि तुम अपना उपाय कर लो; आजसे सातवें दिन तुमको वही तक्षक डसेगा. राजाने चेलेके मुखसे यह वचन सुन तत्कालही संसारके बंधनको त्याग अपने बडे पुत्र जन्मेजयको राज्यगद्दीपर बैठा दिया, और फिर श्रीगंगाजीके तटपर आकर अपने अपराधको क्षमा और मुक्तिके कारण ऋषि और ब्राह्मणोंको इकट्ठा किया. दैव-संयोगसे शुकदेवजीभी उस समाजमें आये और राजाको श्रीमद्भाग-वत सुनाया राजाने भगवान्की कथारूपी अमृतको ऐसा चित्त लगाकर पान किया कि उसी सात दिनकी अवधिमें भगवान्को प्राप्त हो गये, और भगवान्की कथामें समाधि लग जाती, परन्तु भगवान्के चरित्रोंका श्रवण करना भगवान्की समाधिसे अधिक है.

इसी कारण राजाका मन भगवान्‌के चरित्रोंमें लगा रहा. जब श्रीशुकदेवजी समस्त कथा वर्णन कर चूके तो राजा भगवान्‌के ध्यानमें ऐसा लीन हुआ कि मन भगवान्‌के चरणोंमें समा गया. उसी समय तक्षक सर्पने आकर राजाको डसा, और राजाके प्राण देहसे निकलकर परम धामको सिधार गये. सत्य है जो भगवान्‌के चरित्र सुननेमें ऐसा मन लगाते हैं उनको चारों पदार्थ धर्म, अर्थ काम, मोक्ष इसी देहमें प्राप्त हो जाते हैं.

लालदासजीकी कथा ४.

लालदासजी ऐसे भगवान्‌के परम भक्त हुए कि उनका मन भगवान्‌के रूप अनूप और चरित्रोंका स्थान हो गया. उनकी जितनी निष्ठा और प्रीति भगवान्‌में उतनीही वह गुरुके चरणोंमें रखते थे. उनको भगवान्‌के भक्तोंके सत्संगसे इतनी प्रीति थी कि वह दिन-रात सत्संगस वनमेंही रहते थे. जिस प्रकार कमलपत्र सर्वदा पानीमें रहता है पर उसपर पानी नहीं रहता इसी प्रकार इस संसारमें लालदासजीके पास लोभ न आया. भगवान्‌के चरित्र श्रवण करनेमें उनकी यह दशा थी कि जिस प्रकार राजा परीक्षित् सुना करते थे. निदान यहभी उसी प्रकार परम धामको गये. अर्थात् एक समय श्रीमद्भागवतकी कथा बँवेरे गांवमें हुई थी जब यह कथा सम्पूर्ण हो गई तो उन्होंने उसी समय भगवान्‌के ध्यानमें समाधि लगाकर देह त्याग दिया; और उसी परम पदको प्राप्त हुए जहां राजा परीक्षित् गये थे. सब भगवान्‌के भक्त तो बराती और लालदासजी दूल्हेकी समान थे. निःसंदेह लालदासजी सुगमतासे दोनों लोकको प्राप्त हुए इस लोकमें तो जीवनका यश पाया और परलोकमें भगवान्‌के परम पदको प्राप्त हुए ।

अथ

पांचवीं निष्ठा कीर्तनकी प्रशंसा।

(इसमें पंद्रह भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी जवरेखाको और दितिअवतारको दंडवत् है कि जो अत्रिऋषिके घर चित्रकूटगिरिपर्वतपर वह अवतार धारन करके अलर्क और प्रह्लाद आदि भक्तोंको ज्ञानका उपदेश दिया. यद्यपि कीर्तनशब्दका यह अर्थ है कि जो कहनेमें आवे; परन्तु शास्त्र और पुराणोंके अनुसार यह शब्द केवल भगवान्‌के चरित्रोंके निमित्त बोला जाता है; अर्थात् भगवान्‌के चरित्र जो कहने और बोलनेमें आवें वही कीर्तन है सो वह कीर्तन कई प्रकारका है. एक तो आपसमें भगवान्‌की बात करना अथवा गान करना या भगवान्‌के चरित्रोंको कविताके द्वारा वर्णन करना, अथवा कथा कहानी मंत्र और नामका मुखसे उच्चारण करना या स्तोत्रादिका पाठ करना. इस कारण जितने भक्त इस भांति कीर्तनके द्वारा पदको प्राप्त हुए उनको इस निष्ठामें लिखा जायगा परन्तु यहभी विचारना उचित है कि यह सब भक्त जितने पहले हुए अथवा अब हैं या आगे होंगे कीर्तननिष्ठामें उन सबकोही पूर्णविश्वास हुआ और सब इसी निष्ठाके द्वारा भक्त हुए परन्तु इस निष्ठामें सब नहीं लिखे जा सकते इस कारण थोडेसे भक्तोंकी कथा इस निष्ठामें लिखी जाती है; जो कि इस निष्ठाका नाम पृथक् ठहरा इस उपासकोंका वर्णनभी इसमें होगा; इस कीर्तननिष्ठाकी महिमा और श्लाघा किससे हो सकती है ? तारणतरण शब्द जो संसारमें प्रचलित है वह इसी निष्ठाके उपासकोंके योग्य है. भक्ति और मुक्ति सब इसी निष्ठा अर्थात्

भगवान्‌के चरित्रोंके कीर्तनके वश रहती है जो कोई जिस अधिकारको प्राप्त हुआ केवल वह कीर्तनके द्वाराही हुआ, और श्रवणनिष्ठामें जो यह वर्णन हुआ कि श्रवणनिष्ठाके प्रतापसे भगवान्‌को प्राप्त होता है उसका तात्पर्य यह है कि जब भगवान्‌की महिमा और उनके चरित्रोंको श्रवण करेगा, तभी भगवान्‌के चरित्रोंका कीर्तन करेगा. और जो किसीने भगवान्‌के चरित्रको केवल सुनभी लिया और फिर कीर्तन नहीं किया तो भगवान्‌को कैसे प्राप्त होगा. सारांश यह है कि भगवत्कीर्तनके लिये उनके चरित्रोंका श्रवण करना एक साधन है और उसका फल कीर्तन है; और इसी कारण श्रवणनिष्ठाके पीछे कीर्तननिष्ठा शास्त्रोंमें लिखी है. यह बात देखनेमें आती है कि हजारों मनुष्य भगवान्‌की कथा सुनते हैं परन्तु श्रवण कर भगवत्कीर्तन नहीं करते तो वह किसी मनोरथको प्राप्त नहीं होते; और विचारमेंभी यही आता है कि जबतक देखे अथवा श्रवण करें तो यशका वर्णन नहीं होगा तो वह मनमें कैसे रहेगा. आदिपुराणमें भगवान्‌ने कहा है कि मैं न तो वैकुंठमें रहता हूं, न योगियोंके मनमें केवल वहां रहता हूं जहां मेरे भक्त मेरा कीर्तन करते हैं. भागवतके एकादशस्कंधमें लिखा है कि, सतयुगमें ध्यानसे, त्रेतामें पूजासे और द्वापरमें भगवान्‌की पूजासे मुक्ति होतीही थी; और कलियुगमें केवल भगवान्‌के कीर्तनहीपर होती है. विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि भगवान्‌का कीर्तन सब सुखोंका देनेवाला है; और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है, मनको निर्मल करनेवाला है, और धर्मका बढानेवाला, मुक्तिका देनेवाला और परम सार है. वेदसे विपरीत पुरुषभी इसको मानते हैं; प्रेम केवल देखनेहीसे उत्पन्न नहीं होता, वरन बहुधा यह धन श्रवणके द्वारा प्राप्त होता है. निदान भगवान्‌के कीर्तनके विना जन्ममरणसे छूटनेकी रीति और कोई नहीं. पानीको विलोनेसे तेल घृत और रेतमें विलोनेसे तेल तो चाहे

निकल आवे, परन्तु भगवान्के भजनके विना संसारसागरसे उतरना कदाचित् नहीं हो सकता. यद्यपि भगवान्के कीर्तनकी रीतिमें लिखा है कि वह कीर्तन ऐसा हो कि मनका विचार उसमें मग्न होकर विस्मृत हो जाय; सो इस समय एक ऐसी बात याद आई कि एक समय एक स्थानमें दो पुरुषोंने कथा सुनी तौ दोनोंही विस्मृत होकर वहांही मर गये. लोगोंने दोनोंको एकही जगह जला दिया, उनकी स्त्रियोंने आकर अपने २ पतियोंके हाड अलग कर लिये, किसीने वहांपर उनसे पूंछा कि तुमने अपने पतिके हाड कैसे पहचान लिये? स्त्रीने उत्तर दिया कि मेरा पति भगवान्के चरित्रोंके रसमें ऐसा डूब गया था कि उसकी हड्डियांतक गल गई थीं; इस चिह्नसे मैंने अपने पतिकी हड्डियां बीन ली. दूसरीने उत्तर दिया कि भगवान्के चरित्रोंके तीर जो कीर्तन करनेवालेकी जिह्वाकी कमानसे छूटे तौ मेरे पतिके मनमें ऐसे लगे कि हड्डियोंमें छेद हो गये थे, इस चिह्नसे मैंने अपने पतिकी हड्डियोंको पहचान लिया. सो इतना ध्यान कीर्तन और श्रवणमें होना उचित है; परन्तु शास्त्रमें कितनेही स्थानोंमें लिखा है कि भगवान्का कीर्तन चाहे मनसे हो, चाहे प्रगट हो, चाहे दिखानेके निमित्त हो; चाहे किसी प्रयोजनसे हो, चाहे किसी प्रकारसेभी हो निश्चयही मुक्ति प्राप्त हो जायगी; और उसी प्रगट कीर्तनसे मन लग जायगा; इसका वर्णन कुछ नामनिष्ठामें होगा कीर्तनके भेदोंमेंसे जो एक भगवान्का कीर्तन विख्यात है. इस युगमें उसका अनोखा हाल है, कीर्तन करनेवाले तो विना प्रयोजन केवल भगवान्के भजनके कारण कीर्तन नहीं करते वरन पुराणोंका केवल पढना उद्योगके लियेही करते हैं; और श्रवण करनेवालोंकी थोडीसी दशा श्रवणनिष्ठामें लिखी है. बहुतसे ब्राह्मण जो भगवान्की कथाकी पोथी बगलमें लिये फिरते हैं; और उनकी कथा नहीं होती इसका कारण यह है

कि जिस दिनसे उन्होंने इस कथाको पढा फिर कभी विचारा या देखाभी नहीं जो सर्वदा उसका कीर्तन करते रहें तौ विना ढूंढनेके हजारों पुरुष आपसे आप उनकी कथा करानेके लिये बुलाया करें. इस कारण कि भागवत् आदि पुराण भगवद्रूप हैं; जो कोई भगवान्का कीर्तन और आराधन करेगा निःसन्देह उसका मनोरथ सिद्ध होगा. कहीं २ सुननेवाले जो यह बात कहते हैं कि आज कल कोई कथा कहनेवाला प्रेमी और भगवान्का भक्त नहीं मिलता, यह वचन उनका झूंठ है. हजारों लाखों पंडित मिलते हैं, परन्तु हम उनको नहीं ढूंढते; और अपने अवगुणोंके कारण उनके गुणोंकोभी अवगुणही बताते हैं, परन्तु प्रेम और भक्तिको नहीं देखते. जिस प्रकार दो आदमी रात्रिके समय एकही सरायमें ठहरे, और सारी रात्रि अपने २ कार्यमें जागते रहे. प्रभातही जो दोनोंने एक दूसरेको देखा तौ कामी और मद्पान करनेवालेने यह समझा इसने सारी रात्रि मुझसे विशेष भोग किया है और जो भगवान्के भजनमें सारी रात्रि जागा था उसने उसे आपसे अधिक भजनानंदी जाना. इसके उपरान्त हम भगवान्का भजन करनेवाले और प्रेमी हों तौ कथा करनेवाले विना ढूंढेही मिल जायंगे. वरन वह लोक आप हमारे ढूंढनेको आवें जिस प्रकार शुकदेवजी राजा परीक्षित्को, और सूतजीने शौनकको आप ढूंढ लिया. यह प्रचलित है कि जैसा मनुष्य आप होता है वैसाही उसको मिल जाता है फिर जो प्रेमी और भक्त नहीं मिलते हैं उन्हींपर विश्वास रखना उचित है कि हमसे सब प्रकार विशेष जानते हैं. प्रथम तौ शास्त्री पंडित हैं, दूसरे ब्राह्मण हैं, और ब्राह्मणोंकी महिमा वेद और शास्त्रोंमें लिखी है. कारण कि वे भगवद्रूप हैं जैसे भगवान्ने कहा है कि ब्राह्मण विद्यावान् हो या बेपढा परन्तु वह मेरा अंग है; कितनेही मनुष्य उलथा करी

हुई पोथियोंको पढकर अपने आपको ज्ञानवान् और सर्वज्ञाता समझ-कर अथवा बडा अधिकार और धन पाकर कहते हैं कि हममें और ब्राह्मणोंमें क्या भेद है, ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मको जाने. जिस प्रकार वे आदमी हैं वैसेही हम आदमी हैं. सो विचारना चाहिये कि ब्राह्मण आदमी नहीं हैं वह देवता हैं, भूसुर और भूदेव उनका नाम है, और जो अपनी श्रद्धासे आदमीही माने तौ आदमियोंसे इतना भेद है कि जिस प्रकार तारोंसे सूर्यका और अन्य पुरुषोंसे गौका. इस समय एक वार्ता स्मरण हुई कि एक पुरुष पीपलके वृक्षके नीचे मूत्र किया करता. ब्राह्मणने उसको निषेध करा परन्तु वह फिर नहीं माना और क्रोधित होकर कहने लगा कि पीपलके वृक्ष और अन्य वृक्षोंमें क्या भेद है सबही वृक्ष समान हैं तब एक ठठोलिये ब्राह्मणने उत्तर दिया कि तुम्हारी स्त्री और मातामें क्या भेद है, दोनों स्त्रीही तौ हैं तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण सबसे उत्तम है; इसके उपरान्त इस लोक और परलोककी रीति ब्राह्मणोंने चलाई है. पूर्व कालमें और सब जिस किसीको बडाई मिली और भगवान्की भक्तिका अधिकार प्राप्त हुआ तौ सबको ब्राह्मणोंकी कृपा और उनकी सेवाके प्रतापसे मिला और अबभी जहां कहीं गुरु है तौ ब्राह्मणही हैं फिर ब्राह्मणोंमें श्रद्धा न होनाही मंद भाग्य है. जो कदाचित् कलियुगके प्रभावसे किसीके कर्म खोटेभी देखनेमें आवें तौ श्रद्धा उठानी उचित नहीं वरन यह विचारना चाहिये कि प्रज्वलित अग्निको राख छिपा लेती है तौ उसका तेज नहीं जाता. जितने महापुरुष साधु आदि हुए सब ब्राह्मणोंके प्रतापसे हुए हैं; कि उनको या उनके गुरुको अथवा उनके परम गुरुको ब्राह्मणोंसे उपदेश हुआ. जिस पुरुषको ब्राह्मणोंमें विश्वास नहीं, वह नास्तिक और दोनों लोकमें मन्दभागी है, और जिसने उनके साथ शत्रुता करी निःसन्देह उसका नाश हो जायगा,

और जिसने उसकी सेवा करी वह इस लोकमें यशवान् होकर भगवान्के भक्तोंमें गिना गया. निदान कथा करनेके लिये जैसे ब्राह्मण मिलते हैं वैसेही आचार्य और भगवान्के स्वरूप हैं. श्रद्धा अवश्य है इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि भगवान्का कीर्तन सबसे मुख्य है कि विना परिश्रमके दोनों लोक सुधरते हैं. हे रघुनन्दन ! हे दीनदयालु ! हे दीनबंधो ! हे करुणाकर ! यही पछतावा है कि मुझ अज्ञान मतिमंदने आजतक कभी आपका कीर्तन और चरित्रोंमें मन नहीं लगाया. लडकपन तौ खेलने खानेमें खोया और तरुण अवस्था अनेक प्रकारके पाप और संसारी भोगमें खोई; अब वृद्धअवस्थाको पहुँचा, परन्तु आपके चरणकमलोंका कभी चिंतवन नहीं करता. मैं निश्चय यह जानता हूं कि विना आपके शरण हुए ब्रह्माभी यदि इस संसारसे छुटाना चाहें तौ नहीं छूट सकता परन्तु मैं मायाके जालमें ऐसा फँसा हूं कि अपनी लाभ हानिको कभी नहीं विचारता. आपके चरणोंके सिवाय कोई रक्षक नहीं इस कारण आपकी दया और करुणाकी आशामें विनती करता हूं कि आपका यह समाज मेरे मनमें वसा है. सरयूके तीर परम शोभायमान अखाडा बना है उसकी छोटी २ दिवारोंपर चित्र और सुनहरी बेलबूंटे बनी हैं. प्रातःकाल और संध्याको आप अपने भाई और सखाओंके साथ जाकर अनेक प्रकारके खेल कूद करते हैं, कभी तौ सारस और तोते और कबूतर और लाल हंस, और सारस मोर आदि पक्षियोंका खेल नृत्य और लडाई होती है, और कभी पतंग उडाते, और घोडा फेरते हैं, और कभी फरसा, पटा भाला, तीर कमानका करतब करते हैं कभी अपने मित्रोंसे, गेंद बल्ला खेलते हैं. कभी कुस्तीका, और कभी हाथी मेंढ आदिकी लडाईका तमाशा देखते हैं, और कभी अपने साथि-

योंसे हास्य और दंगा मस्ती करते हैं; और कभी नौकापर चढकर नदीकी सैर करते हैं; और कभी नृत्य राग आदि देख सुनकर मन वांछित द्रव्य और आभूषण दान करते हैं; कभी घुडशाल और हाथीशालाकी सैर करते हैं और कभी शास्त्रमाला और भंडारकी; कभी ब्राह्मण और भक्तोंपर कृपा और दयालुताकी दृष्टि है, और कभी दासोंपर प्रतिपालना की. ब्रह्मा, शिव सनकादि नारद इत्यादि दर्शनोंके कारण आते हैं, और चरणकमलोंपर अपने मनको अर्पण करके वियोगके दुःखसे रोते कलपते हुए जाते हैं; और जिनके मुखारविंदपर करोडों कामदेव और चन्द्रमा वारी जाते हैं; घूंघरवाली अलकें जिनके मुखपर छुटी हुई कानोंपर कुंडल और शीशपर जटाऊ किरीट मुकुट, छोटासा बुलाक नाकमें, बाजूबंद, कडे भुजामें, हाथोंकी उंगलियोंमें अंगूठी और छल्ला शोभित हैं, पीताम्बरी बांधा उसपर पेच कसे हुए, और जरदोजी दुपट्टेसे कमर कसी हुई, वनमालाके ऊपर रत्न और मोतियोंकी माला पडी है, हैकल पहरे हुए, धोती पीताम्बरी विराजमान है, और चरणकमलोंमें घूंघरू और कडे शोभित हैं; अवस्था बारह वर्षकी और ऐसी तैयारीके साथ भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न और अन्य राजकुमार और सखा साथ हैं छोटे २ धनुष बाण और तीर हाथोंमें मानो रूप और शृंगार सदेह होकर आये हैं, और शोभा और सुन्दरता सब ब्रह्मांडोंकी इकट्ठी हो, कर अयोध्यापुरीमें देखनेवालोंके मनको अपने बलसे लूटती है.

वाल्मीकिजीकी कथा १.

श्रीमान् वाल्मीकजी प्रचेता ब्राह्मणके वंशमें हुए. और दैवसंयोगसे बालकपनमें किसी भीलके हाथ आ गये, उसने इनको अपने पुत्रकी समान पालन किया और इनका एक भीलनीके साथ विवाह कर

दिया. प्रथमसेही वटमारी और पारधीका उद्योग करनेमें रहे. एक वार कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, गौतम विश्वामित्र, जमदग्नि सप्तऋषि वहां आकर निकले, तब वाल्मीकजीने उनके लूटनेकी अभिलाषा करी, तब ऋषियोंने उनसे पूछा कि ऐसा दुष्ट कर्म क्यों करता है? उत्तर दिया कि अपने बालबच्चोंकी पालनाके कारण. तब ऋषियोंने पूंछा कि यदि कोई कष्ट तुझको होगा तो वे तेरी सहायता करेंगे? तब वाल्मीकजीने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता. निदान ऋषियोंकी आज्ञानुसार पूंछने गये; तो उनमेंसे किसीनेभी स्वीकार नहीं किया कि हम तेरे कष्ट और अपराधोंमें साझी होंगे. फिर वाल्मीकजीने ऋषियोंके समीप आकर यह सब वार्ता कही; तब ऋषियोंने कहा कि जो वे तेरे साझी नहीं हैं तो तू उनके लिये अपना यह लोक और परलोक क्यों बिगाडता है? वाल्मीकजीके अंतःकरणमें ऋषियोंके दर्शन और किंचित् सत्संगतिके प्रतापसे वैराग्य और भय उत्पन्न हुआ और उन्होंने अत्यन्त पछतावा कर हाथ जोड विनती करी, कि मेरी भलाईका कोई उपाय करो. ऋषियोंने उसके ऊपर कृपा कर जो सब मंत्रोंका तत्व है ऐसे श्रीराममनाममंत्रका उपदेश किया और वहांसे उन को विदा किया; परन्तु वाल्मीकजीको रामनाम तो स्मरण रहा नहीं वह सब ओरसे अपने मन वृत्तिको हटाकर मरा मरा जपने लगे इसके उपारन्त बहुत दिनोंके पीछे सप्त ऋषि उस ओर होकर निकले और वाल्मीकजीकी बहुत खोज करी तो बहुत ढूंढनेपर एक जगह यह दशा देखी कि एक बमईके निकट तो कोई पशु पक्षी आता है राम राम कहता है इसी चिह्नसे विचारा कि वाल्मीकजी यहींपर होंगे. निदान वहांहीको चले और जाकर देखा कि वाल्मीकजीके ऊपर घास मट्टी जम गई है तब इन्होंने उनको निकाला, और जल छिडका और निकालकर देखा कि यह सब प्रकारसे शुद्ध सिद्ध हो गये, और किसी वेदशास्त्र

सिखानेकी आवश्यकता नहीं रही; कारण कि एक रामनामके प्रताप सेही स्वयंही सबके ज्ञाता हुए; तब सप्तऋषि वहांसे विदा हुए; वाल्मी कजाके देहपर और शिरपर मट्टी जम गई थी सर्प इत्यादि जीवोंने इनके शिरपर अपने भट्टे बना लिये थे; इसी कारण इनका वाल्मीक नाम रक्खा. जब वाल्मीकजी सर्वज्ञानी और त्रिकालके जाननेवाले हो गये; तो उनको यह विचार उत्पन्न हुआ कि जिसके नामके प्रता पसे मुझे यह अधिकार मिला है उनके चरित्रोंका कीर्तन करना चाहिये यह विचार करही रहे थे कि तत्कालही आकाशवाणी हुई वरन भगवान्ने प्रत्यक्षमेंही भीलका रूप धारण करके उपदेश किया, और फिर नारदजीनेभी उपदेश किया, और जो जो चरित्र रामावतारमें भगवान्को करने थे समस्तही वाल्मीकजीको ध्यानमें दिखा दिये; उसी कारणसे वाल्मीकजीने रामावतारसे दश हजार वर्ष पहले सौ करोड श्लोक अपनी वात्सलनिष्ठामें रामचरित्रके बनाये. वात्सल्यउपासनाका यह तात्पर्य है कि वाल्मीकजीने प्रगटमें तो राजपुत्र और राजा लिखा कि वात्सल्यके उपासक भगवान्में पुत्रभाव रखते हैं; और निश्चयही उस रामायणका एक एक श्लोक भगवान्की ईश्वरता और एकत्वका वर्णन करता है. फिर शिवजीने उस रामायणको तीनों लोकोंमें प्रच- लित किया उन लोकोंके कीर्तन और श्रवण करनेवाले कृतार्थ हो गये; और उन्होंने भक्ति मुक्तिका द्वार इस रामायणकोही समझा. अब विचारना चाहिये कि वाल्मीकजी पहले तो ऐसे थे कि ऋषि उनकी छायासेभी बचते थे और फिर रामनाम और रामचरित्रके कीर्तनके प्रतापसे वही वाल्मीकजी उस उपदेशकी पदवीको पहुँचे, कि जिनकी कथा और कथन आवागमनकी धूप निवृत्त करनेके लिये क्षेत्रछाया हो गई. यहांपर एक और चरित्रभी लिखने योग्य समझा; कि एक समय वाल्मीकजीको यह विचार हुआ; कि

हाय! मुझ अभागेने भगवान्‌के बालचरित्र न देखे तब श्रीराम-चंद्रजीने अपने भक्तकी इच्छा पूरी करनी विचारी; और जानकी महाराणीको उनके आश्रममें भेजा, वहांपर श्रीमहाराज लव कुशका जन्म हुआ, और उन्होंने अपने बालचरित्रकर वाल्मीकिजीको अत्यन्तही आनंदमें मग्न कर दिया. फिर वाल्मीकिजीने वही रामायण दोनों कुमारोंको पढाई; उनको इसके भजन और कीर्तनका यह फल हुआ कि उन्होंने रघुनंदनस्वामीहीको जीत लिया, अर्थात् जब श्रीरामचंद्रजीके अश्वमेध यज्ञका घोडा वाल्मीकिजीके आश्रममें पहुँचा तो छोटे कुवर लवने उस घोडेको पकड लिया, उस समय भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इनमें लडाई हुई और दोनों प्रतापी भाइयोंने सबको पराजित किया, और फिर हनुमान्, अंगद जाम्बवंत. नल नील इत्यादियोंको पकडकर बंधनमें किया, अंतमें जब श्रीरामचंद्रजी स्वयं युद्ध करनेको आये और वाल्मीकिजी जो वरुणदेवताका यज्ञ करानेको पाताललोकमें गये थे सो उसी समय आ गये और यह दशा देखकर उन्होंने रामनाममंत्रसे जल अभिमंत्रित कर सेनाके ऊपर छिडका और तत्कालही समस्त सेना जीवित हो गई. जो अचेत थे उनको चैतन्यता हुई, और जो बंधे थे वे छूट गये, और फिर दोनों कुँवर यज्ञमें गये, यज्ञ सम्पूर्ण हुआ भगवान् इस चारित्रसे अपने भक्तोंको शिक्षा करते हैं कि देखो मेरे नाम और चरित्रोंकी महिमा कि जिसका जप और कीर्तन कर मेरे भक्त मेरी सहायता करते हैं; और मुझको जीतकर अपने वशमें करना तो एक छोटीसी बात है. सत्यही है कि जो कोई भगवान्‌के चरित्रोंके कीर्तनकी जो कुछ महिमा करे और जो प्रताप प्रगट हो वह थोडेसेभी थोडा है.

शुकदेवजीकी कथा २.

संसारमें ऐसा कौन है जो शुकदेवजीकी महिमा वर्णन करनेमें

समर्थ हो. उनके मुखारविंदकी नदीसे श्रीमद्भागवतका ऐसा अमृत इस संसारमें निकला है कि यह आवागमनकी मृत्युको निवृत्त करता है और सबको सबही जगह सरलतासे प्राप्त होता है. महाराज शुकदेव-जी भगवान्के चरित्रोंके रसमें ऐसे मग्न रहते थे कि उनके अपना और दूसरेका कुछ विचार नहीं रहता. एक वार किसी तीर्थके तटपर जाना हुआ; वहांपर देवताओंकी स्त्रियें स्नान कर रही थीं, उन्होंने उनको देखकर कुछ परदा नहीं किया, फिर व्यासजी चले आये: उनको देखकरही सबने अपने वस्त्र पहन लिये, और हास्य खेलको छोडकर सब चुप चाप बैठ गईं. तब व्यासजीने पूंछा कि शुकदेव तो युवा है तुमने किस कारण उनको देखकर परदा नहीं किया, और मुझ निर्बल वृद्धको देखकर ओलट कर ली इसका क्या कारण है ? तब उन स्त्रियोंने उत्तर दिया कि शुकदेवजी भगवान्के रूपके चिंतवनमें ऐसे मग्न थे कि उनको किंचित्भी स्त्री पुरुषकी पहचान नहीं थी, वह सबही जगह भगवान्का स्वरूप जानते हैं, इस कारण उनसे ओलट करनी उचित नहीं समझी, और तुम सब प्रकारसे भेदभाव जानते हो इस कारण तुमसे ओलट करी और दंडवत् करी. शुकदेवजी माताके गर्भसेही भगवान्के भक्त और ज्ञानवान् हुए. कारण यह है कि एक समय पार्वतीजीने शिवजीसे तत्वज्ञानकी महिमा सुनकर उस ज्ञानके श्रवण करनेकी हठ करी, तब शिवजीने अपने आश्रमसे सब जीवजन्तुओंको हटाकर उपदेश करने लगे. दैवसंयोगसे पार्वती-जीको निद्रा आ गई; उस आश्रममें एक तोतेका बच्चा भगवान्की इच्छासे वहां रह गया था तो पार्वतीजीकी जगह हूं हूं करता रहा, और वह उस ज्ञानको सुनकर जीवन्मुक्त हो गया. शिवजीने जब यह देखा कि पार्वतीजी तो निद्रामें आ गई परन्तु उनकी जगह हूं हूं कौन करता जाता है, यह विचार क्रोधित हो इधर उधरको दृष्टि

डाली, तो उस तोतेको बैठे हुए देखा. तब शिवजी उसको मारनेको त्रिशूल उठाया और मारने लगे, और वह तोता मारे भयके वहांसे उडकर चल दिया और व्यासजीकी स्त्री उस समय स्नान कर रही थीं उनके उदरमें सूक्ष्मरूपसे प्रवेश कर गया. बारह वर्षके उपरान्त देवता और ऋषियोंकी प्रार्थना करनेसे शुकदेवजी महाराजका जन्म हुआ, और जन्म होतेही तत्काल जंगलको चले गये, तब व्यासजी पुत्रकी ममतासे शुकदेव २ कहते २ पीछे हुए; और जब दूरतक गये तो सबही दिशा जंगल वृक्ष आदिने शुकदेवजीकी ओरसे उत्तर दिया कि न जाने तुम कितनी वार मेरे पिता हुए हो और न जाने कितनी वार मैं तुम्हारा पिता हुआ हूं. यह जो सब दृष्टि आता है सो भगवान्का स्वरूप है, शास्त्रोंका जानना केवल भगवान्के जाननेके लिये होता है. जो द्वैत निवृत्त न हुआ तो सब शास्त्र व्यर्थ हैं. व्यासजी यह उत्तर पाकर उलटे चले आये, परन्तु वह इस उपायमें रहे कि किसी प्रकार शुकदेवजी आवें और रहें; इस कारण कई एक लडकोंको श्रीमद्भागवतके श्लोक सिखाये और उन लडकोंको वहां भेज दिया कि जहां शुकदेवजी रहा करते थे; एक दिन शुकदेवजीने किसी लडकेके मुखसे यह श्लोक सुना कि. आश्चर्य है कि वह पापात्मा पूतना अपने स्तनोंमें विष लगाकर भगवान्के मारनेके लिये आई थी परन्तु उस पापिनीको भगवान्ने सद्गति दी. जो दूसरेको मिलनी अत्यन्तही दुर्लभ है. उनकी समान ऐसा दया करनेवाला कौन है कि जिसकी शरण जावें. शुकदेवजीने इस शब्दको सुनकर " बंधु कहां गये " और अतिशीघ्र उन लडकोंको बुलाकर पूंछा और कहा कि तुमको यह श्लोक किसने सिखाया है. उन्होंने व्यासजीका पता बता दिया और शुकदेवजी तत्कालही व्यासजीके निकट

आये और उन्होंने अत्यन्तही रुचिसे श्रीमद्भागवतको पढा और फिर यह अभिलाषा हुई कि यदि कोई प्रेमी मिले तो उसको सुखपूर्वक यह कथा सुनावें; परन्तु उनको कोईभी अधिकारी न मिला. अंतमें उन्होंने राजा परीक्षित्‌को इस कथाके सुनने योग्य समझा; और उनको श्रीगंगाजीके तटपर सात दिनमें श्रीमद्भागवत श्रवण कराकर मुक्ति प्रदान कर दी; और जिस २ ने उस समाजमें बैठकर कथाको श्रवण करा वे समस्तही इस लोकसे छूट गये. वरन अबभी जो कोई सुनता है वह परम पदका अधिकारी होता है.

जयदेवजीकी कथा ३.

जयदेवजी सब कविमंडलीके राजोंकी समान और स्वामी जयदेवजी उनके चक्रवर्ती राजा हुए. उन्होंने तीनों लोकमें गीत गोविंदका ऐसा प्रचार किया कि कोक और कविता नवरस और शृंगारका समुद्र है. उसकी अष्टपदीको जो कोई पढता है वह निश्चय कृतार्थ और समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता होता है. उसके सुननेके लिये जहां जो कोई कीर्तन करता है; भगवान् उससे प्रसन्न होकर स्वयं आते हैं; और भगवान्‌के भक्त जो कमलकी समान हैं उनके खिलने और आनंदके लिये वह सूर्यकी समान हैं और भगवान्‌का आनंद देनेवाला है. अब विचारना चाहिये कि शृंगार न समझकर वरण शृंगार शब्दसे निज भक्तमालके वक्ताका यह तात्पर्य है कि शृंगार जिसका कुछ वर्णन मंगलाचरणमें है, और कुछ उन्नीसवीं निष्ठामें होगा और रसराज जिसका नाम है, और जिसकी महिमामें यह वेदकी श्रुति है कि रस उसका नाम है कि जिसको प्राप्त होकर अवश्यही भगवान्‌का वह परम आनंद मिलता है और रस जयदेवजीने इस गीतगोविन्दमें वर्णन किया है, और कोक उसकी एक

शाखा है स्वामीजी कुंडवलमें कविराज हुए; रसराज जो शृंगार है उसके सदेह और आकार थे, परन्तु उस रसका आनंद वह अपनेही मनमें रखते थे, इस कारण उनको वैराग्य और त्याग इतना था कि वह एक वृक्षके नीचे दो रात्रि नहीं रहते, और एक गुदडी और कमंडलुके अतिरिक्त और कुछ अपने पास नहीं रखते थे, दवात कलम कागज इत्यादिका तौ संग्रह कौन करता था. उस समय भगवान्को संसारका उद्धार करनेकी इच्छा हुई कि उस रसराजका प्रकाश संसारमें हो इस कारण यह उपाय करा कि एक ब्राह्मणने अपनी कन्या जगन्नाथस्वामीको भेंट करनेका संकल्प किया था- जब उस ब्राह्मणने भेंट करनेके कारण कन्याको बुलाया तौ कहा कि जयदेवजीके पास ले जाओ. स्वामीजीने कहा कि कन्या तौ किसी धनवान् और योग्य पुरुषको देनी उचित है. वैरागियोंको तौ कदापि देनी उचित नहीं; तब ब्राह्मणने विनती करी कि भगवान्की आज्ञामें क्या बुराई है. स्वामीजीने कहा कि भगवान् तो प्रभु और समर्थ हैं, उनको तौ सहस्रों और लक्षों स्त्री शोभित हैं और हमको तौ एकही स्त्री लाखोंकी समान है. निदान इस बातपर कितनी देर तक झगडा रहा, और ब्राह्मण समझाते २ हार गया तौ वह अपनी कन्याको छोड गया, और कह गया कि भगवान्की आज्ञाके विपरीत करना उचित नहीं इसलिये जयदेवजीकी सेवामें रहकर स्त्रीधर्मका प्रतिपालन कर. वह कन्या छायाकी समान उनकी सेवा करने लगी एक समय जयदेवजीने उस सुकुमारीसे कहा कि तुम ज्ञानवान् हो शोच समझकर अपने लिये कुछ उपाय करो. मुझसे तुम्हारी सम्हाल और प्रतिपाल नहीं हो सकती तब उसने हाथ जोडकर प्रार्थना करी कि महाराज! मैं निर्बलहूं मुझमें इतनी सामर्थ्य कहां है आप सब कुछ जानते हैं जो इच्छा

हो सो करें. परन्तु मेरा मन तो आपमें लगा है आपके चरणोंको मैं कदापि नहीं छोडूंगी जयदेवजीने जाना कि भगवान्ने मुझे धमकी दी है लाचार हो एक झोंपडी बनाकर उसमें भगवान्की मूर्ति विराजमान कर भगवान्की सेवा करने लगे, और उन्होंने गीतगोविन्दके बनानेका आरंभ किया. एक अष्टपदीमें राधिकाजीके मनका वर्णन करते थे उनको यह आशय विचारमें आया कि श्रीकृष्णराधिकाजीको अपने अपराध क्षमा करानेकी समय कैसी नम्रतासे विनती करते थे कि कामदेवका विष दूर करनेवाला जो तुम्हारा चरण कमल पत्र है उसको मेरे शीशपर शोभायमान करो. परन्तु शिष्टाचारकी रीतिसे न लिख सके कि वह स्वामी श्रीकृष्णमहाराज मान अपमानसे व्यतिरिक्त और सब मान अर्थात् अधिकारके देनेवाले मान अर्थात् गुमान और क्रोधका भंजन करनेवाले हैं. उनके लिये ऐसा लिखना कब उचित है; और दूसरे आशयके विचारमें स्नान करनेको चले गये उस समय भगवान् जयदेवजीका रूप बनाकर आये थे; और जो आशय जयदेवजीके चिंतवनमें आया था सो ठीक करके लिख गये

इस बातको किसीने नहीं जाना जब जयदेवजी स्नान करके आये तो अपने विचार और आशयको उत्तम लेखमें लिखा देखा, तो उन्होंने पद्मावती अपनी स्त्रीसे पूंछा. उसने उत्तर दिया कि महाराज ! आप अभी तो आये थे और आप लिखकर चले गये फिर क्या पूछते हो ? जयदेवजी समझ गये कि यह चरित्र भगवान्का है; और इसके प्रतापसे सभी गीतगोविंदको परम पवित्र. समझा इस गीतगोविंदके यशका प्रचार जगह २ हुआ; और सबने स्वीकार किया. एक जगन्नाथ पुरीका राजा पंडित था और उसनेभी एक पोथी बनाकर उसका नाम गीतगोविन्द रक्खा वरन यहांतक हुआ कि प्रचार करनेके कारण उसने ब्राह्मणोंको दिया, तब ब्राह्मणोंने जयदेवका गीतगोविंद राजाको

दिखाया; ब्राह्मणोंका मनोरथ यह था कि जयदेवजीकी कविताके अगाडी तुम्हारे गीतगोविन्दकी कविता तुच्छ है जिस प्रकार सूर्यके अगाडी दीपककी ज्योति कुछ नहीं मालूम पडती. राजाने अपनी अभिमानताके कारण उसको कुछ नहीं समझा, और दोनों गीतगोविंद श्रीजगन्नाथजीके मंदिरमें रख दिये कि स्वामी जो स्वीकार करेंगे उसीका प्रचार होगा सो भगवान्ने राजाका गीतगोविंद तो डाल दिया और जयदेवजीका अपनी छातीसे लगा लिया राजा यह देखकर अत्यन्तही लज्जित हुआ और अपनी मूर्खताके वश होकर समुद्रमें डूबनेको गया और पछतावा करने लगा कि मेरा भगवान्ने बडा भारी निरादर किया, तब भगवान्को राजापरभी दया आई और राजासे कहा कि हे राजन्! तेरे समुद्रमें डूबनेसे क्या होगा! सत्य तो यह है कि जैसी भक्ति और कविता जयदेवकी है वैसी भक्ति और कविता तुम्हारी कदापि नहीं हो सकती परन्तु जयदेवजीके गीतगोविंदके एक २ सर्गके साथ तुम्हाराभी एक श्लोक प्रचलित होगा. निदान गीतगोविंदके बारह सर्गमें राजाकाभी एक २ श्लोक है. एक मालीकी कन्या पांचवें सर्गकी अष्टपदी "धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली" यह गाती हुई और बैंगन तोडती फिरती थी. और जगन्नाथ स्वामी उसके पीछे २ सुनते फिरते थे उनके अंगपर महीन जामा अत्यन्त महीन था बैंगनोंके काटोंसे फट गया. राजा दर्शनोंके लिये गया तो भगवान्का यह हाल देखकर यह पूछने लगा कि हे भगवन्! सत्य सत्यही कहो कि आपके वागेके फटनेका क्या कारण है, तब जगन्नाथरायजीने समस्त वृत्तांत राजासे वर्णन कर दिया और राजाने विश्वासके सहित समस्त नगरमें यह ढंढोरा फिरवा दिया कि जो कोई गीतगोविंद निर्मल अंतःकारणसे निष्कंटक स्थानपर पढेगा वहांपर भगवान् स्वयं सुननेको जांयगे. एक मुंगल इस वार्त्ताको सुनकर

अत्यन्त रुचिसे उस पुस्तकको पढा करता था. एक दिन वह मुंगल घोडेपर सवार होकर आनंदसहित अष्टपदीको गाता था, उसको दर्शन हुए और कहा कि मैं सुननेके लिये साथ हूं, इस गीतगोविंदकी महिमा और प्रतापको कौन वर्णन कर सकता है जिसका कि स्वर्गलोकमें देवकन्या गान किया करती हैं. जयदेवजीको मार्गमें ठग मिले; उस समय उनके पास कुछ द्रव्य था. ठगोंने पूछा कि तुम कहां जाते हो ? उत्तर दिया कि जहां तुम जाओगे. जयदेवने विचारा कि यह ठग हैं सो जो कुछ उनके पास धन था समस्तही ठगोंको दे दिया, और विचारा कि पापकी जड धन है, और रागका कारण बहुत भोजन करना है; और संसारमें जो मोह है, वही दुःखका कारण है सो तीनों चीजोंका त्यागनाही उचित है. ठगोंने विचारा कि यह पुरुष बडा कपटी है, अब तो अपना सारा द्रव्य और धन देता है और फिर नगरमें जाकर पकडवा देगा, इस कारण यही योग्य है कि इसको मार डालें तब उनमेंसे दूसरे ठगने कहा कि मारना तो नहीं चाहिये, हमें तो केवल धनसे प्रयोजन था सो मिल गया. अंतको यह विचार हुआ कि इसके हाथ पांव काटकर कुँएमें गेर देना उचित है और उन ठगोंने ऐसाही किया जयदेवजी अपनी प्रारब्धको भोग ध्यानमें प्रसन्न रहे. एक समय दैवसंयोगसे उस कुँएपर राजा आ गया, और भगवान्‌की इच्छासे उसने जयदेवजीको कुँएमेंसे निकाला और उनके हाथ पैर न होनेका कारण पूछा, तब जयदेवजीने उत्तर दिया कि माताकी कुक्षिमें ऐसेही मेरा जन्म हुआ है; फिर उनकी बातोंसे राजाने जाना कि यह पुरुष कोई भगवान्‌का भक्त और बडा प्रतापी है, और मेरा बडा भाग्य है जो ऐसे महात्मा पुरुषके मुझको दर्शन हुए और जयदेवजीको पालकीमें सवार कर अपनी राजधानीमें ले गये, और अत्यन्तही आदर सत्कारके साथ एक आश्रममें ठहराकर उनके खाने पीनेकी समस्त सामग्री

पहुँचाई और उनके सामने हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगा कि महाराज दासको कुछ आज्ञा कीजिये. तब जयदेवजीने राजासे कहा कि हे राजन् ! तुम साधुओंकी सेवा किया करना; राजाने अत्यन्तही प्रसन्न हो साधुओंकी सेवा करनी स्वीकार करी. थोडे दिनमें राजाने साधुओंकी सेवा करनेमें यश प्राप्त किया; जब उन ठगोंने साधुसेवाका समाचार सुना तब वे साधुका रूप बनाकर आये, प्रथम वह जयदेवजीसे मिले तब जयदेवजीने उनको पहचान लिया, और राजाको बुलाकर कहा कि यह हमारे भाई हैं, और बडे महात्मा पुरुष, तुम्हारे बडे भाग्य थे कि उनके दर्शन हुए तुम इनकी पूर्णसेवा और चाकरी करो. तब राजा उनको अत्यन्त आदरसत्कारके सहित अपने महलमें ले गया, और भली प्रकार उनकी सेवा करने लगा; परन्तु उन ठगोंने जयदेवजीको पहचान लिया था, इसलिये भयके मारे जानेकी आज्ञा मांगने लगे और जब वह न जानेकोही हुए तब जयदेवजीने उनको बहुतसा धन देकर विदा किया और कई सिपाही उनकी चौकसीके लिये साथ कर दिये और कहा कि तुम इनको घरतक पहुँचा आओ. जब वह विदा हो गये तो मार्गमें उन सिपाहियोंने ठगोंसे पूछा कि स्वामीजीने जितनी सेवा और सन्मान तुम्हारा किया है, आजतक इतनी सेवा किसीकी नहीं करी, तुम्हारा और स्वामीजीका क्या सम्बन्ध है ? ठगोंने उत्तर दिया कि हमारा वृत्तांत कुछ कहनेके योग्य नहीं है. सिपाहियोंने कहा कि हम कदापि किसीसे नहीं कहेंगे तुम सत्यही सत्य समस्तवृत्तान्त कह दो, तब ठग बोले कि तुम्हारे स्वामी और हम एक जगह राजाके पास नौकर थे तब स्वामीजीका अपराध देखकर राजाने उनको वध करनेकी आज्ञा दी तब हमने दया कर केवल उनके हाथ पांव काटकरही उनका जीव बचा दिया, सोही गुण वह आजतक माने जाते है और इसी कारण इन्होंने हमारी अधिक सेवा करी है. भगवान्

अपने भक्तको यह झूंठा कलंक लगना न सह सके; इस कारण तत्काल पृथ्वी फटी और ठग पातालको चले गये, इस कारण सिपाही अचंभित हो भयके मारे तत्काल स्वामी जयदेवजीके समीप आये और यह वृत्तान्त कहा, स्वामीजी दयाकर कंपित होने लगे; और पछतावेसे अपने डुंड मलने लगे उसी समय स्वामीजीके हाथ पैर उत्पन्न हो गये. और जिस प्रकारके पहले थे वैसेही हो गये. तब उन सिपाहियोंने यह दोनों आश्चर्यजनक वृत्तान्त राजासे जाकर कहे; राजा तत्काल जयदेवजीके समीप आया, और दंडवत् कर समाचार पूछने लगा, स्वामीजी चुपके हो गये. राजाने अत्यन्तही हठ करी, तब स्वामीजीने आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त कह सुनाया; तब राजाको विश्वास हुआ कि यह पुरुष कोई देवताका अवतार साधुके भेषमें है. भगवान्के भक्तोंकी यही रीति है यह बात सत्य है; जो कोई उनके साथ बुराई करता है उनके साथ भलाई और साधुतासे कृपा करनेमें कदाचित्भी त्रुटि नहीं करते, फिर इसके उपरान्त स्वामीजीने अपने घर जानेका विचार किया, तब राजाने स्वामीजीके चरणोंपर शीश धर दिया और बहुतही प्रार्थना करी कि मुझे यह देश आपके चरणोंके प्रतापसे कुछ भक्तिको प्राप्त हुआ है और जब आप यहांसे चले जांयगे तो समस्त लोग विमुख हो जांयगे. थोडे दिनों आप और कृपा करें, यह कहकर फिर जाके पद्मावतीको ले आया, और उनको राजमहलमें ठहराकर रानीको उनकी सेवाके लिये उपदेश किया, उस रानीका भाई मर गया था; और उसके साथ उसकी स्त्रियें सती हुईं थीं. एक दिन रानीने बहुत बडाई और आश्चर्यसे अपने भाई और भावजोंका पद्मावतीजीके समीप वर्णन किया. पद्मावतीजी सुनकर हँसी, और रानीजीने उनसे हँसनेका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि पतिके साथ देहको जला देना तो प्रीतिकी रीतिसे विपरीत

है, निज प्रीति तौ वही है कि पतिका मरना सुनकरही तत्काल अपना देह त्यागन कर दे. रानीने कहा कि इस समय तौ ऐसी केवल आपही हो यह कहकर वह उनकी परीक्षा करनेके विचारमें लगी. राजासे पूछा कि एक दिन स्वामीजीको बागमें ले आओ और समस्त नगरमें कह दो कि स्वामीजी मर गये. राजाने यह सुनकर रानीको समझाया कि ऐसा बुरा विचार कि जिसमें मेरा प्रत्यक्षही गला कटे भूलकर कदापि मत करना. जब स्त्रीने बहुतही हठ करी और क्रोध करके कहने लगी तौ पराधीन होकर राजाने स्त्रीकी आज्ञानुसार वैसाही किया. रानी स्वामीजीका मृतक समाचार सुनकर पद्मावतीके पास आई, और अत्यन्त दुःखी होकर रोने पीटने लगी तब पद्मावतीजीने कहा कि तुम क्यों रोती हो ? स्वामीजी तो प्रसन्नतासे, हैं, रानी लज्जित हो गई, और दस बीस दिन पीछे फिर वैसाही किया. पद्मावतीजीने विचारा कि रानी विना परीक्षाके नहीं मानेगी; रानीके मुखसे समाचार सुनतेही तत्काल प्राण त्याग दिया; उनकी यह दशा देखतेही रानी और राजाका रंग श्वेत हो गया, और राजाको इतना दुःख हुआ कि उनको जीना कठिन हो गया. राजाने अपने जलनेको चिता बनाई. जब स्वामीजीको यह समाचार मिला तौ वह तत्काल आये और उन्होंने आकर देखा कि राजा अत्यन्त दुःखमें मृतककी समान होकर जलनेको तैयार है. स्वामीजीने राजाको बहुत समझाया परन्तु राजा लाजके मारे हाथ जोड पछतावा कर कहने लगा कि मुझ पापीका मरना और जलनाही उचित है. मैं ऐसा महापापी हूं कि जो उपदेश आपने मुझको किये थे उनको तौ मैं भूल गया, और स्त्रीके वश होकर अपनी माता पद्मावतीकी मृत्युका कारण हुआ मेरी बुद्धि जाती रही जो मैं भगवान् और स्वामीसे विमुख हुआ. ऐसे पुरुषका जीवन सहस्र मृत्युसे बुरा है;

स्वामीजीने देखा कि पद्मावतीजीके जीवित हुए विना राजाका जीना कठिन है, तब उन्होंने गीतगोविन्दकी अष्टपदी गाई, पद्मावतीजी तत्काल जीवित हो गईं, और उसके अलापमें मिल गाने लगी. पद्मावती तो जीवित हो गई परन्तु राजाकी लज्जा न गई; लोगोंने बहुतही समझाया, परन्तु अपघातके उपायमें रहा निदान फिर स्वामीजी उसको समझाकर अपने कुंडवलगांवमें चले आये, इनके गांवसे गंगाजी अठाहर कोस थीं, यह स्नान करनेके लिये नित्य जाया करते, जब यह वृद्ध हुए तो इनको गंगाजीने समझाया कि अब नित्य प्रति परिश्रम मत किया करो. जयदेवजीने यह नेम नहीं छोडा, निदान गंगाजीने कहा कि जो तुम हमारे यहां आना नहीं छोडोगे तो हम तुम्हारे आश्रममेंही आती हैं तब जयदेवजीने पूछा कि कब और किस प्रकारसे आना होगा? गंगाजीने उत्तर दिया कि जिस दिन तुम हमारे प्रवाहमें कमल खिला देखो उसी दिन निश्चय यह जानना, सो उनके वचनके अनुसार गंगाजीका प्रवाह उनके आश्रमके नीचे है, और जयदेवी गंगाके नामसे विख्यात है.

गोस्वामीतुलसीदासजीकी कथा ४.

गुसाईं तुलसीदासजीको भक्तमालके वक्ताने वाल्मीक ऋषिका अवतार लिखा है. जिस प्रकार वाल्मीकजी त्रेतायुगमें सौ करोड रामायण रचकर समस्त संसारका उद्धार किया, उस रामायणका जो एक एक अक्षर है सो महापातक और पापोंका नाश करनेवाला है; इसी प्रकार वाल्मीकजीने कलियुगमें अवतार लेकर भाषामें रामचरित्र अमृतका समुद्र बहाया. उसीके प्रतापसे संसारसमुद्र तरनेके लिये गोपदसेभी न्यून हो गया. यह ऐसी परम पवित्र गंगा है कि सब पुरुष सब जातिको सबही जगह सबही समय प्राप्त हो सक्ती

है. अब भक्तमालके वक्ताके कथनके उपरान्त; अन्य पुरुषोंके लेखके अनुसार गुसांईजीके वाल्मीकअवतार होनेमें कोई संदेह नहीं; और विचार करनेसेभी जाना जाता है कि जो प्रभाव और ऋषियोंके वचनका है. उससे विशेष गुसांईजीके वाक्यका है. जो वह ऋषिका अवतार न होते तौ इतना प्रभाव न होता, और भागवतधर्म प्रचार-निष्ठामें वर्णन हुआ है कि जब धर्ममें त्रुटि होती है; तौ भगवान् और पहले आचार्य अर्थात् ऋषि धर्मप्रचारके लिये अवतार लेते हैं, तौ इस रीतिके अनुसार वाल्मीक अवतार होनाभी प्रत्यक्ष है. गुसांईजीकी कृति तो बहुत है, वरन यहांतक हुआ कि उनकी समस्त अवस्था रामचरित्रके कीर्तन करनेमें व्यतीत हुई, परन्तु १६ रामायण इस समय मिलती हैं और भारत आदि सम्पूर्ण देशमें प्रचलित हैं. विनयपत्रिका २ कवितावली ३ गीतावली ४ दोहावली ५ रामश-लाका ६ हनुमानबाहुक ७ जानकीमंगल ८ पार्वतीमंगल ९ कडका छंद १० बरवाछंद ११ रोडछंद १२ झूलना छंद १३ श्रीरामनहछू १४ वैराग्यसंदीपनी, छप्पयरामायण और दूसरे ग्रंथ कृष्णगीतावली कलिधर्मनिरूपण, हनूमानचालीसा संकटमोचनभी मिलते हैं. प्रेमी तथा उपासकोंको सभी जगह मिलती है; भगवान्के भक्तोंसे निश्चय जाना गया और परीक्षाभी की. यदि जो कोई नेम करके रामायणका पाठ करता है उसकी निःसन्देह श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रीति हो जाती है; इस बातकी परीक्षा हो चुकी है कि रामायण अथवा कांडके अंतमें जिस कामके लिये फल होना लिखा है उसके पढनेसे शीघ्रही वह मनोरथ पूर्ण होता है, रामश-

---

१ इस समय एक घटरामायण तुलसीकृतके नामसे छापी गई है परन्तु उसमें तुलसीदासजीकी कविता 'वा' रामचरित्रका कुछभी सम्बन्ध नहीं है पाठकगण धोखेमें न पडें उसमें ठगाई है.

लाकाका प्रताप देखनेमें आया कि उसकी रीतिके अनुसार जो कोई उसमें शुगुनौती डालता है, जो बात होनी होती है उसमें उसी आशयका दोहा निश्चयही प्रत्यक्ष निकल आता है; कि उसके विपरीत कभी नहीं होता. वह तौ संस्कृतमेंभी बना सक्ते थे जो कि कई चौपाई रामायण, विनयपत्रिका इत्यादिकमें श्लोक और दंडक संस्कृतमें लिखे हैं, परन्तु इस समयके पुरुषोंको संस्कृतके अयोग्य देख और उनका उद्धार करनाभी अवश्यही जाना, इसी कारण भाषामें रामचरितमानस बनाकर सबका उपकार किया इसी कारण काशीके सब पंडितों और शिवजीमहाराजने स्वीकार करके भागवत इत्यादि पुराणोंके समान अधिकार व्यासगद्दीका दिया, अर्थात् जब गुसांई तुलसीदासजी चौपाईबंद रामायण बना चुके, तब काशीके समस्त पंडितोंकी सभा हुई, और सबने चित्त लगाकर आद्योपान्त पढा, उनकेभी समस्त आशय वेदसे गीताआदि शास्त्रोंकी समान पाये, सबनेही सही कर दिया, कितनेही पंडितोंने द्वेषके कारण झगडा किया तो अंतमें यह बात ठहरी कि जो विश्वेश्वरनाथकी जो समस्त काशीपुरीके स्वामी हैं उनकी रुचि होगी तौ हमभी स्वीकार कर लेंगे. निदान विश्वेश्वरनाथजीके मंदिरपर एक सिंहासनके ऊपर समस्त पुराण इत्यादि रखकर उन सबमेंसे नीचे रामायणको रख दिया; फिर जब सब पंडितोंने आकर मंदिर खोला तौ रामायणको सब पुस्तकोंके ऊपर देखा; और स्वीकार करनेकी सहीभी लिखी पाई, सो यह रामचरित्र अमृत विना परिश्रमके द्रव्य लगानेसे सबको प्राप्त हो सकता है, जिसका जन्ममरणके संतापोंसे छूटने और जीवन्मोक्ष पानेकी इच्छा हो वह इसका पान करें. गुसांईजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, गृहस्थ चारके दिनोंमें अपनी स्त्रीसे बहुत प्रीति रखते थे और उसके वियोगको एक क्षणभी नहीं सहन कर सक्ते थे. एक दिन इनकी स्त्री अपनी मातासे मिलनेको चली

गई, तब गुसांईजी उसके वियोगसे अत्यन्त व्याकुल हो ससुरालमें पहुँचे, तब स्त्रीने लज्जा करके उनके ऊपर क्रोध कर कहा, कि यह हड्डियें और खाल मांसका देह ठहरनेवाला नहीं है इससे तो इतनी प्रीति करनी वृथा है. जितनी प्रीति आप मुझसे करते हैं उतनी प्रीति आप सच्चिदानंद पूर्णब्रह्मसे क्यों नहीं करते? जो आपको दोनों लोककी प्राप्ति हो. गुसांईजी पंडित और ज्ञानवान् थे उनका वह ज्ञान किसी संसारसे गुप्त हो रहा था जिस प्रकार अग्निके ऊपर राख जम जाती है वह उनका ज्ञान और वैराग्य उसी समय उत्पन्न हुआ, और वह तत्काल काशीजीमें आकर श्रीरामचंद्रजीके भजन और कीर्तनमें लगे और उनका मन श्रीरामचंद्रजीके भजनमें ऐसा लगा कि वह दिन रात नेमव्रतसे उसीमें मग्न रहते. उन्होंने सेवा पूजा करनेके लिये भगवान्की मूर्ति स्थापित कर ली, परन्तु उनकी सर्वकाल यही इच्छा कि किसी समय भगवान्का साक्षात् दर्शन हो. शंका निवृत्त करनेके लिये जब जंगलको जाते तो जो जल शेष रहा करता था उसको एक जगह गेर देते थे; वहांपर एक भूत रहा करता था उस पानीसे उसकी प्यास जाती थी. एक दिन उस भूतने प्रसन्न होकर गुसांईजीसे कहा कि जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो वह मुझसे कहो; तब गुसांईजीने उस भूतसे कहा कि प्रथम तो मेरी यही इच्छा है कि तू इस अपवित्र योनिसे छूट. भूतने कहा कि मुझमें तो इतना बल नहीं, परन्तु तुम्हारा कार्य सिद्ध कर सकता हूं. गुसांईजीने कहा कि रामचंद्रजीके दर्शन करा दे, भूतने कहा कि मुझमें इतनाभी पराक्रम नहीं, परन्तु हनुमान्जीके दर्शनका उपाय बता सकता हूं. वह यह है कि अमुक स्थानपर रामायणकी कथा हुआ करती है हनुमान्जी कठोर और भयंकर रूपसे उस कथामें आया करते हैं और वह जब कथा हो जाती है तो सबसे पीछे जाते हैं. गुसांईजी उसी पतेसे

कथामें गये; और हनुमान्‌जीको पहचान लिया, और जब कथा हुई और हनुमान्‌जी जाने लगे तब गुसांईजी उनके पीछे २ चले और जंगलमें जाकर चरणोंमें लिपट गये. हनुमान्‌जीने बहुत छिपाया परन्तु गुसांईजीने चरण नहीं छोडे; और हाथ जोड विनती कर कहा कि तुमसे कृपालुको क्या मैं छोड सकता हूं, तब हनुमान्‌जी प्रसन्न हुए और अपना दर्शन देकर कहा कि तुम्हारी क्या इच्छा है सो कहो. उत्तर दिया कि मुझको श्रीरामचंद्रजीके परम मनोहर स्वरूपके दर्शन करनेकी अत्यन्तही अभिलाषा है, तब हनुमान्‌जीने कहा कि तुमको चित्रकूटपर्वतपर दर्शन होंगे. गुसांईजी अत्यन्तही प्रसन्न हुए और प्रसन्नताके सहित चित्रकूटमें आये, हनुमान्‌जीके वचनके अनुसार बाट देखते रहे. एक दिन इस स्वरूपसे गुसांईजीको दर्शन हुए, श्रीरामचंद्रजी श्यामसुन्दर राजकुमारके स्वरूपमें उत्तम रेशमीन वस्त्र धारण किये हुए धनुषबाण कसे हुए चमकदमकके साथ घोडेपर सवार हुए और लक्ष्मणजीभी गौरमूर्ति वैसेही शोभासे एक हिरनके पीछे घोडा डाले जाते हैं रामचंद्रजीकी मूर्ति तो अंतःकरण और नेत्रोंमें समा गई परन्तु उन्होंने यह न जाना कि यह रामचंद्रही हैं; फिर हनुमान्‌जी आये और गुसांईजीसे पूंछा कहो आज तो दर्शन हुए; उन्होंने कहा कि दो राजकुमार अत्यन्त सुन्दर शोभायमान घोडोंपर चढे जाते थे. हनुमान्‌जीने कहा कि वेही राम और लक्ष्मण थे. गुसांईजी उसी मनोहररूपके विचारमें अपने मनोरथको प्राप्त हुए. एक हत्यारेने रामनाम लेकर कहा कि हत्यारेको भिक्षा दो; गुसांईजीको आश्चर्य हुआ और विचारा कि यह पुरुष कैसा है, प्रथम तो रामनाम लेता है और फिर अपने आपको हत्यारा कहता है, यह विचार उसको अपने समीप बुलाया, और उसको परम शुद्ध जानकर अपने साथ भगवान्‌का

प्रसाद जिमाया फिर काशीके समस्त पंडितोंने एक सभा करी और गुसांईजीको बुलाया, फिर उनसे पूंछा कि विनाही प्रायश्चित्त किये इसका पाप कैसा निवृत्त हुआ ? तब गुसांईजीने उत्तर दिया कि शास्त्रोंको तो देखो कि एक वार रामनाम लेनेका क्या माहात्म्य है. सो इस पुरुषकी जिह्वासे तो सैकडों वार रामनाम निकला है. शास्त्रके वाक्यपर विश्वास रखना उचित है. यदि विश्वास न हो तो अज्ञान अंधेरा निवृत्त नहीं हो सकता इस बातको सुन पंडितोंको कुछभी उत्तर न रहा और रामके नामको और शास्त्रोंको मान लिया; परन्तु इसपरभी उनको विश्वास न हुआ और विचारने लगे कि यदि शिवजीके नादिया इसके हाथका भोजन कर ले तो हमको पूर्ण विश्वास हो. गुसांईजीने यह बात मान ली, और भगवान्के प्रसादका थाल नादियेके अगाडी धरकर कहा कि यदि रामनामके कहनेसे जो इस पुरुषके पाप नष्ट हो गये हैं तो हे शिवजीके वाहन ! इस प्रसादका भोग लगाओ. नादियेने तत्कालही उस महाप्रसादका भोग लगा लिया, तब समस्त पंडित लज्जित हुए, और उन्होंने रामनामकी महिमापर और गुसांईजीकी भक्तिपर विश्वास किया. एक दिन गुसांईजीके स्थानपर चोर चोरी करनेके लिये आये, तब रामचंद्रजीने विचारा कि प्रभातकोही मेरा भक्त किस वस्तुसे मेरा सेवन करेगा, और कहांसे भोग लगावेगा, इस कारण आप धनुष बाण लेकर रक्षा करनेके लिये प्रगट हुए. जिस ओरको चोर मकानमें घुसनेको प्रवेश करते थे उसी ओरको आप धनुष बाणसे रा देते थे इसी तरह रात्रि व्यतीत हो गई,और चोर चोरी न कर सके प्रातःकाल होतेही वे समस्त चोर गुसांईजीके चरणोंमें आन पडे; और गुसांईजीसे पूछने लगे कि हे महाराज ! वह श्यामसुन्दर मूर्ति किशोरवदन परमशोभायमान पुरुष कौन है जो

आपके मकानकी रक्षा करता है ? गुसांईजी यह सुनकर भक्तिवत्स-लता और कृपालुताके प्रेममें मग्न हो गये और यह चिन्ता करके कि देखो भगवान्‌को द्रव्यके कारण रात्रिभर जागना पडा यह विचार कर अत्यन्त दुःखित हुए, और रुदन करने लगे; उसी समय समस्त द्रव्य पुण्य कर दिया और अपने पास कुछभी न रक्खा. चोरोंने जब यह दशा देखी तो अपना गृहस्थाश्रम त्यागकर भगवान्‌के आधीन हुए, और कृतार्थ हो गये. एक समय एक ब्राह्मणकी स्त्री अपने पति की अर्थीके साथ सती होनेके लिये जा रही थी, उसने गुसांईजीको प्रणाम किया, गुसांईजीने आशीर्वाद दिया कि सौभाग्यवती हो. स्त्रीने कहा कि महाराज ! मेरे पतिका तो देहांत हो गया अब सती होनेके लिये जाती हूं अब सौभाग्य कहां रहा ? गुसांईजीने स्त्रीके यह वचन सुन उत्तर दिया कि जो तू भगवान्‌की भक्तिको अपने गृहसहित धारण करे तो भगवान्‌को सब कुछ सामर्थ्य है वह सर्व शक्तिमान् हैं; तब उसी समय सब भगवान्‌की भक्ति करने लगे; और वह ब्राह्मण सजीव हो गया. जब यह वृत्तान्त इस तरह प्रचलित हुआ तब बाद-शाहको खबर पहुँची, उन्होंने एक सरदारको भेजा और अत्यन्त आदर सत्कारके साथ गुसांईजीको बुलाया, और बहुतही शिष्टाचार करा और सिंहासनपर बैठाया; और बोला कि महाराज ! आपकी सिद्धता समस्त संसारमें प्रगट हो रही है, कुछ मैंभी देखनेका अभि-लाषी हूं. गुसांईजी बोले कि मैं श्रीरामचंद्रजीके सिवाय कुछभी सिद्धता नहीं जानता; और न कुछ मुझको ऐसी बातोंसे प्रयोजन है. तब बाद-शाह बोला कि अपने स्वामीहीके मुझको दर्शन कराइये, यह कहकर गुसांईजीको कैद कर दिया; गुसांईजीने उसी समय रामचंद्रजीके दूत हनुमान्‌जीका स्मरण किया, उसी समय तत्काल हनुमान्‌जीकी अपार सेना आ गई उस समय गढके प्रत्येक कँगूरेपर और समस्तही

मकानोंपर बंदरही बंदर दृष्टि पडते थे; तब सिपाही और बादशाहके समस्त दास दासी भयभीत होकर हाहाकार करते हुए भागने लगे और बादशाहकी बेगमोंकी तौ यह दशा हुई कि कोई तौ गृहके भीतर जा छिपी और किवाँड जाकर बंद कर लिये, और कोई मारे भयके बेसुध हो गई, किसीने नेत्र मूंद लिये; किसीके वस्त्र बंदरोंने फाड डाले वह नग्न होनेके कारण रो रही थीं अर्थात् किसीकोभी शरणागतका स्थान दृष्टि नहीं आता था. जब बंदरोंने बादशाहको पलग परसे नीचे डाल दिया, तब बादशाहने नेत्र खोले; और उस विध्वंसताको देख आश्चर्ययुत हो गया; और रूदन करता हुआ गुसांईजीकी शरणमें गया; और उनके चरणोंमें अपना मस्तक रगड-कर हाथ जोड प्रार्थना करी कि अब आप रक्षा कीजिये आपकी रक्षा करनेके अतिरिक्त और किसीसे इन जीवोंकी रक्षा नहीं होगी. हे महाराज ! अब आप कृपा कर इन समस्त जीवोंको बचाइये. जब गुसांईजीने बादशाहकी यह प्रार्थना सुनी तौ उनको दया आ गई और उसी समय हनुमान्‌जीसे प्रार्थना करी तब हनुमान्-जीकी समस्त सेना गुप्त हो गई. तब बादशाहसे कहा कि अब यह तुम्हारा गृह रघुनाथजीका हो गया; तुम अब अपने लिये कोई और गृह विचार लो. बादशाहने उसी समय वह गृह त्याग दिया और आजतक कोई वहां नहीं रहता, फिर गुसांईजी काशीपुरीको चले गये. एक समय किसी शत्रुने मारण मंत्र गुसांईजीकी मृत्युके लिये जपा; गुसांईजीने उसका उत्तर शिवजीकी स्तुतिके एक पदमें लिखा; जिसके प्रभावसे उस मंत्रका जपना गुसांईजीका बाल बांकाभी न कर सका वरन वह आप लज्जित हो गया, फिर गुसांईजी वृन्दावनमें गये, और भक्तमालके बनानेवाले नाभाजी मिले और उनके रचे हुए ग्रन्थोंको देखकर अत्यन्तही आनंदित

हुए. वह बात जो प्रचलित है कि गुसांईजीने मदन मोहनजीके दर्शन करके यह कहा था कि धनुष बाण धारण करोगे तौ मैं वंदना करूंगा; सो यह बात अशुद्ध है किस कारणसे गुसांईजीने रामायण और विनयपत्रिका तथा और ग्रन्थोंमें सब देवताओंसे अधिक पापी और दुष्टोंकोभी प्रणाम किया है यहांतक हुआ कि समस्त प्राणियोंको रामरूप जानकरही नमस्कार किया है. तब क्योंकर विचार हो सकता है कि गुसांईजीने भगवान्के समीप हठ किया हो इस बातकी जड यह है कि शास्त्रकी उपासनाके सिवाय जब कोई मनुष्य किसी देवताके मंदिरमें जाते हैं तौ वह उसीको उसी रूपसे प्रणाम करते हैं, जिस स्वरूपका उनको इष्ट है; सो जब गुसांईजी मदनगोपालजीके मंदिरमें गये तौ उन्होंने मदनगोपालजीकी मूर्तिको रघुनंदन धनुषधारी समझकर प्रणाम करा. गुसांईजी सत्य भक्त और सिद्ध थे इस कारण मदनगोपालजी-नेभी उनके मनोरथके अनुसार अपना रूप दिखाया और जबतक गुसांईजी सन्मुख खडे रहे तबतक यात्रियोंको रामरूपही दृष्टि आया उन लोगोंने मुरलीकी जगह धनुषका होना गुसांईजीकी इच्छानुसार जाना और यह बात समस्त संसारमें प्रचलित हो गई इसका किसीने एक दोहाभी बना लिया. एक समय एक मनुष्यने गुसांई-जीसे वृन्दावनमें जाकर पूंछा कि, श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्मअवतारी और परमात्मा हैं और नृसिंह वामन परशुराम रघुनंदन स्वामी यह सब अवतार अवतारीके अंश हैं; तुम श्रीकृष्णमहाराजकी उपासना किस कारण नहीं करते ? गुसांईजी इस प्रश्नका उत्तर वेद; श्रुति व रामतापिनी, अगस्त्यसंहिता और रामोपनिषदादि शास्त्रोंके अनु-सार ऐसा दे सकते थे कि उसका वाक्य तुच्छ हो जाता परन्तु वे सर्वज्ञ आचार्य थे और आचार्य किसी देवताकी किसी देवतासे

न्यूनता नहीं करते, वरन वह जिस देवताका इष्ट जिसको देखते हैं उसको शास्त्रके उपदेशसे अधिक कर देते हैं, और आचार्योंका अवतार मनुष्योंके उद्धारके निमित्त होता है, प्रभुताका कारण नहीं इस कारण गुसांईजीने उसके इष्ट श्रीकृष्णमहाराजको न्यून करना उचित न समझकर भक्तिमार्गके उपदेशके अनुसार उत्तर दिया कि उसका इष्ट बना रहा और फिर कुछभी उत्तर न दे सका और वह उत्तर यह है कि हमारा चित्त श्रीरामचंद्र दशरथनंदनको कोमल वदन रूपवान् मनोहर मूर्तिको परम शोभित देखकर लग गया है सो अब नहीं छूटता. जो तुम्हारे वाक्यके अनुसार कुछ ईश्वरीय ऐश्वर्य है तो अत्यन्तही सुन्दर बात है.

सूरदासजीकी कथा ५.

सूरदासजीकी कविताको सुनकर ऐसा कौन है कि जिसका मन प्रेमसे न उमगे और शिर न हिल जाय. जिसमें अर्थ भाव स्वाद और ललित अक्षरोंकी बैठक अनुप्रास और भगवत्प्रेमका निवाह सरल अर्थ और गूढ हैं भगवान्ने उनको विस्तारसहित ऐसा वर्णन किया मानो देखते हैं अथवा उनके हृदयमें भगवान्ने उन चरित्रोंका प्रभाव आप उनके चित्तमें डाल दिया था. भगवान्के जन्म कर्म गुण और रूप जिस प्रकार वर्णन किये हैं कि जो उनको सुनता है अथवा पढता है, वह निश्चयही भगवान्को प्राप्त हो जाता है ऊधोजी जो श्रीकृष्णके सम्बन्धी और परमामित्र थे उनको यह अवतार और इष्ट छापमें उनके साथी हैं. सूरदासजीकी रुचि भगवान्के बालचरित्रसे थी, किस कारणसे कि वह विष्णुस्वामी संप्रदायमें थे, परन्तु शृंगारनिष्ठा और सखाभावका प्रेमभी अधिक था. जो सूरसागरमें प्रचलित है कि सूरदासजी और सूरसागरकी

महिमा कौन वर्णन कर सकता है, कि जिनकी कृपासे सहस्त्रों पापी सद्गतिको प्राप्त हुए और भगवान्के भक्त हो गये. उनका यह मनोरथ था कि सवालक्षपदमें भगवान्के गुणानुवादका कीर्तन करें, परन्तु जब पिछत्तर सहस्र ७५००० पद बना चुके तब परम धामको चले गये, भगवान्ने अपने भक्तका संकल्प पूर्ण करनेके लिये, शेषके पद आप बनाये और सूरश्यामके नामकी छांप लगायी. अकबर बादशाहके मंत्री खानखानाने जो संस्कृतका पाठी था और कवीश्वरभी था, उसने सूरदासजीके पदोंका संग्रह किया और एक २ पदपर एक २ अशरफीका देना आरंभ किया, तब बहुतसे मनुष्योंने यह चरित्र किया कि पद तो अपना बनाया और भोग सूरदासजीका लगा और उनके पास ले गये, तब उसने सूरदासजीका एक पद कांटेमें रख लिया और जो नया पद आता उसको वह तोले लेता. सूरदासजीका पद उसकी बराबर उतरता और कीसी दूसरेका कम होता, इस प्रकारसे परीक्षा करके सूरसागर तैयार किया, और कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि बादशाहने अपने आप सूरसागारका समूह किया था; और दो लक्ष विष्णुपदका समूह हो गया फिर परीक्षाके लिये सब विष्णु- पद अग्निमें डाल दिये उसमें जो जो पद सूरदासजीके कहे हुए थे उनमेंसे एकभी दग्ध न हुआ. निदान दोनों कथामेंसे जो सत्य हो. पर सूरसागर शक्तिरहित नहीं है, और जो यहभी दोनों कथा प्रगट न होती तो क्या सूर्य गुप्त रहता है. सूरसागरको भगवान्ने वह शक्ति और वह प्रताप दिया है कि एक २ मंत्रकी समान है.

नंददासजीकी कथा ८.

नंददासजी चंद्रहास्यके पुत्र ब्राह्मण वर्ण रामपुरके वासी

भगवान्के भक्त और प्रेमी थे. भजन और स्मरणके सिवाय कुछ प्रयोजन उनको न था; उनके बनाये हुए ग्रन्थ बहुत हैं अर्थात् पंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, दशमस्कंध, नाममाला, अनेकार्थ दानलीला, मानलीला और सहस्रों विष्णुपद उनकी भक्तिके सामान्यभी उनके कथित हैं. उनकी कवितामें और कवीश्वरोंके यह वचन हैं कि "और सब घाडिया नंददास जडिया" अर्थात् जडाऊ ऐसे मनोहर वृत्तान्त उन्होंने लिखे हैं कि निश्चय करके भगवान्के प्रेमसे उनका मन उमडता है, भक्तोंके इष्ट छापमें उनकी गिनती है, और इष्टछापके नाम तुलसीशब्दार्थप्रकाश नाम ग्रंथमें जिसको गोपालसिंहजीने बनाया है वह यह है. सूरदास १ कृष्णदास २ परमानंद ३ कुंभदास ४ यह चारों भक्त गुरु वल्लभाचार्यजीके शिष्य थे. चतुर्भुजदास ५ छीतस्वामी ६ नंददास ७ गोविंददास ८ ये चारों भक्त गुरु विट्ठल नाथजीके जो वल्लभाचार्यके पुत्र थे अथवा शिष्य थे, अर्थात् इन आठों भक्तोंने वल्लभकुलसेभी सिद्धता पाई.

चतुर्भुजजीकी कथा ७.

चतुर्भुजजी भगवान्के भक्त हुए और भगवान्के प्रेमी थे; इन्होंने वृन्दावनमें वास करके भगवान्का भजन और अत्यन्तही प्रेमसे स्मरण किया था; वह सर्वदा विहारीजीके मंदिरमें अत्यन्तही प्रेमभावसे नृत्य गान किया करते थे. यहांतक हुआ कि उनको और मनुष्यभी देखकर भगवान्की उपासना करने लगते. एक समय नृत्य करते हुए उनकी कौपीन खुल गई; उस समय उनको यह विचार हुआ कि यदि जो मैं झांझ बजाना बंद करके कौपिन बांधूंगा तौ ताल बंद हो जायगी, और अत्यन्त कोमल चित्तके स्वामी क्रोधित हो जांयगे, और जो नहीं बांधता हूं तौ समस्त सभाके

लोग मेरी हँसी करेंगे; यह विचारही रहे थे कि भगवान्‌के नृत्य और गानके प्रभावसे चतुर्भुजजीके दो नवीन हाथ उत्पन्न हुए, तब तो तत्कालही उन हाथोंसे चतुर्भुजजीने कौपिन बांध ली. और उनकी झांझका ताल उसी प्रकार स्थिर रहा. यह वृत्तान्त चतुर्भुजजीकी भक्ति और भगवान्‌की कृपासे हुआ तब भगवान्‌की भक्तिपर सबको विश्वास हो गया.

मथुरादासजीकी कथा ८.

मथुरादासजी वृद्धिमान्‌जीके शिष्य और भगवान्‌के भक्त धर्ममें सावधान संतोषी और श्रेष्ठ हुए. नंदनंदन महाराजकी भक्तिका बल रखते थे; उनकी भगवान्‌में इतनी प्रीति थी कि वह अपने आप पानीका कलश शिरपर रखकर लाते थे; और अत्यन्तही भक्तिसे रामचरित्रका शृंगार किया करते मानो उनका हाथ भगवान्‌के चरित्र और माधुर्य भावको प्रगट करनेमें सूर्यकी समान था. उन्होंने रामचरित्रके कीर्तन करनेमें कभी लालच नहीं किया एक समय कोई मनुष्य साधुके वेषमें आया उसके पास शालिग्रामजीकी मूर्ति थी. वह मूर्ति अपने आपही सिंहासनसे चलायमान होती थी. जब उनकी यह विचित्रता संसारमें प्रचलित हुई तो उसी समय मथुरादासजीका एक शिष्य आया और उसने आकर हाथ जोड़ प्रार्थना करी कि आप उस साधुके पास चलिये. स्वामीजी तो सर्वज्ञ थे उसके अंतःकरणका मनोरथ जान गये और उसके साथ उस साधुके समीप न गये, वह इस कारणसे न गये कि मूर्ति चलनेसे कहीं बंद न हो जाय, और उसको दुःख प्राप्त हो; परन्तु शिष्य उनके चरणोंमें गिर पडा, और चलनेके लिये अत्यन्तही विनय और प्रार्थना करने लगा; तब स्वामीजीने विचारा कि यह बिना

जाये मानेगा नहीं इस कारण अब चलनाही उचित है. यह विचा कर उसके संग चले; जभी वहां पहुँचे तत्काल मूर्ति चलायमान होनेसे बंद हो गई, उस समय साधुने अनेक प्रकारके उपाय किये परन्तु सब निष्फल हुए; तब उसने विचारा कि यह मूर्ति जो चलनेसे बंद हो गई सो स्वामीजीनेही करी है यह दुष्टता इन्हींकी है. यह विचार कर स्वामीजीके ऊपर मारण मंत्र चलाया परन्तु उस मंत्रसे स्वामीजीका बालभी बांका न हुआ और न स्वामीजीका कुछ कर सका वरन वह मारण मंत्र उलटा आकर उसी साधुको लिपट गया. जब वह साधु निर्जीव होने लगा, तो स्वामीजीको दया आई और तत्कालही उसको जीवित कर दिया. जब उसने स्वामीजीका प्रताप और महिमा देखी तो स्वामीका शिष्य हो गया; और प्रेमभक्तिसे भगवान्‌का भजन और स्मरण करने लगा.

सुखानंदजीकी कथा ९.

सुखानंदजी संसारमार्गका दूर करनेके कारण और भक्ति दान देनेके निमित्त अपने समयमें बहुत भारी सिद्ध हुए. उनके बनाये ग्रंथ जो हैं वह समस्त तंत्रशास्त्रही हैं. वह जिस जगह भोग लगाते वहांही भगवान्‌का नाम सुखसागरमें लिखते जिस प्रकार चंद्रसखी, हरेक पदमें अपने नामके पीछे बालकृष्ण नाम, और जिस प्रकार मीराबाई " गिरधर नागर नामक " नाम, लिखा करती थी उनको भगवान्‌के गुण और कथाके कीर्तन अथवा भगवान्‌के भजन करनेमें अत्यन्त प्रीति थी. वह ऐसे प्रेमी थे कि दिनरात उनके नेत्रोंसे प्रेमका जल बहा करता था. वह भगवान्‌के भक्त इस प्रकारके थे कि जिस प्रकार कमलकी सेवा करनेमें निमल सरोवरका जल होता है.

सुखानंदमिश्रकी कथा १०.

श्रीयुत सुखानंदजी भगवान् कृष्णचन्द्रके परम भक्त हुए यह नित्य प्रति भगवान्के आराधन और कीर्तनमें तत्पर रहते थे. प्रभातही उठकर स्नान करनेके उपरान्त दो घण्टे भगवान्का भजन कीर्तन करते थे. जिस समय भगवान्का पूजन करनेको बैठते थे उस समय इनको यह सुधि नहीं रहती थी कि मैं क्या करता हूं, और इस प्रकारसे भगवान्की पूजा पुष्पाञ्जलि विनय करते थे, मानो भगवान्का सामने दर्शन हो रहा हो. स्तुति करते २ गद्गद् हो जाते थे प्रेमसे कण्ठ रुद्ध हो जाता था, कोईभी वस्तु हो भगवान्को अर्पण कर पीछे आप स्वीकार करते थे पूजाके उपरान्त भगवान्के गुणानुवादका कथन कीर्तन करते थे, श्रीमद्भागवतकी बहुतही आवृत्ति की थीं, भगवच्चरित्रपाठ तथा कथन करनेमें इनको कभी आलस्य नहीं आता था; न इनको उस प्रेममें कभी कुछ सुध रहती थी, कभी अपने मुखसे कटु वचनोंका प्रयोग नहीं किया था सबसे इनकी समान प्रीति थी. कभी २ कहा करते थे कि गंगाके ५००० सहस्र वर्ष बीतते २ महात्माओंका संसारमें प्रभाव हो जायगा. इस समयसे अधिक वे स्थिति न करेंगे, अन्तमें अपने शरीरको असार जानकर और उपरामका समय आया जान गढमुक्तीश्वरक्षेत्रमें कार्तिकीपूर्णिमाको भगवती गंगाके किनारे हरिभजन करते २ अपना शरीर त्याग किया और भगवान्के नित्यविहारमें गमन किया.

छबीलालकी कथा ११.

छबीलालमिश्र श्रीकृष्णचंद्रके परम अनन्य भक्त हुए बालपन सेही इसको श्रीकृष्णके चरणारविंदमें अनन्य भक्ति हुई, और चलते फिरते उन्हींके चरित्र कीर्तन करते थे, तथा जहां कहीं कीर्तन होता

था आपभी वहीं जाकर कीर्तन करते थे. भगवान्‌के सन्मुख नृत्य कीर्तन वाद्यके सिवाय और कहीं नहीं करते थे. व्रजभूमिमें उनका अलौकिक प्रेम था, श्रीकृष्णके बहुतसे चरित्र इन्होंने पदोंमें कीर्तन किये, जिनकी माधुर्यता देखकर सहस्रों मनुष्योंने उनको धारण किया; और आजतक उनके पदोंका कीर्तन बराबर इस नगर मुरादाबादमें तथा इसके दूसरे नगरोंमें होता है. श्रीकृष्णचरित्र कीर्तन करते करते तन्मय हो जाते थे, नेत्रोंसे जल गिरने लगता था और फिर बहुत कालतक समाधिमें मग्न हो जाते थे. इनका बनाया एक पद इस स्थानपरभी लिखते हैं.

किया है कठिन तप आली मुरलिया। ताहीतैं हरिने मुख धारी ॥
जन्मतही कीन्ही मत गाढी। वनमें रही एक पग ठाढी ॥
वर्षा शीत रु गरमीको दुख। सह कीन्हो तप भारी प्यारी ॥
कियो है कठिन तप आली मुरलिया। ताहीतैं हरिने मुख धारी ॥१॥
मुरली निज तपके फल लीन्हे। ब्रह्मा रुद्र इन्द्र वश कीन्हे ॥
चेतन हे ते जड कर दीन्हे। अधरन चढी विहारी प्यारी ॥
कियो है कठिन तप आली मुरलिया। ताहीतैं हरिने मुख धारी ॥२॥
एक मंत्र विधि हरिसों पावैं। तातैं इतनी सृष्टि उपावैं ॥
याको हरि नित मंत्र सुनावैं। अचरज भयो कहा री प्यारी ॥
कियो है कठिन तप आली मुरलिया। ताहीतैं हरिने मुख धारी ॥३॥
हरिव्रजमें नित वेणु बजावैं। तीन लोक ध्वनि सुनि सुख पावैं ॥
झव्वलिाल मनावैं ब्रजको। वास मिलैं वनवारी प्यारी ॥
कियो है कठिन तप आली मुरलिया। ताहीतैं हरिने मुख धारी ॥४॥

दधिलीला, गैंदलीला, पंचाध्यायी, दर्पणलीला, मुरलीलीला, ऊधोलीला आदि कई ग्रंथ इनके कृष्णभक्तिरसामृतपूर्ण हैं. २७ वर्षकी अवस्थामें कृष्णनाम कीर्तन करते २ गोलोकको गमन

किया. इनका पदोंमें जो नाम आया है बहुधा प्रेमसखी लिखा है.

जुगलकिशोरजीकी कथा १२.

श्रीयुत जुगलकिशोरजी भगवान् कृष्णचंद्रके परमभक्त मिश्रकुलमें हुए. इनके पितृव्यने प्रेमसे इनका नाम बुल्बुल पुकारा था. इस कारण बहुधा यही नाम इनको अच्छा लगता था. कृष्णभक्तिमें अद्वितीय हुए; चार घडी रात रहेसे उठकरही नये पद बनाकर भगवान्का कीर्तन करते थे, फिर स्नानादिसे निश्चिन्त होकर ग्यारह सहस्र गायत्रीका जप करके फिर दूसरा कृत्य करते थे. कृष्णभक्तिके प्रभावसे इनमें कई बातोंका चमत्कार आ गया था होनहारको वैसेही बता देते थे, साधुसेवासे विमुख नहीं रहते थे. बालपनमेंही शरीरमें गठिया रोग हुआ था. परन्तु उसकी कुछ चिन्ता न करके केवल हरिभजनमें मग्न रहते थे. इनके निकट प्रतिक्षण हरिभक्तोंका समाज रहता था, कीर्तन गानमें बडी प्रीति थी. जहां कहीं कीर्तन हरिरासविलास होता भक्तोंका समाज इनके साथ रहताथा, दर्शन दीजे नन्दकिशोर । यह पद किशोर बहुधा इनके मुखसे निकलता था गायत्री प्रत्यक्ष हो गई थी. सर्व साधारणपर उपकार दृष्टि रखते. थे.२५वर्षकी अवस्थामें इस असार संसारको त्याग दिया. सुखानंदजी इनके पिता थे.

भगवान्दासकी कथा १३.

भगवान्दासजी ब्राह्मण रामचंद्रके गुण कीर्तनमें अद्वितीय हुए. जिस समय रघुनाथके चरित्र कीर्तन करते थे तो इनकी प्रेमवाणीसे सहस्रों श्रोता मुग्ध हो जाते थे. प्रभातसे रामचरित्र कीर्तनही इनका नियम था. इनके मुखसे जो पद निकलता मानो उस भावको सामने कर देता था; आश्चर्य यह था कि अन्त समय भजन करते २ प्राणने पयान किया था. संसारी माया इनको न लिपटी यह मुरादाबादनिवासी थे.

श्रीभट्टजीकी कथा १४.

श्रीभट्टजीने इस संसारमें आकर महाराज ब्रजनंदन और वृषभानुकिशोरीजीके भजन और स्मरणका प्रभाव इस प्रकार कर दिया कि मानो संसारसागरके उतरनेको एक नौका है, अर्थात् माधुर्य उपासनाके चरित्र जो भगवान्‌को अत्यन्तही प्रिय हैं वेही चरित्र इन्होंने अपने ग्रंथोंमें ऐसी मधुरतासे वर्णन किये; कि जिसके श्रवण करते निश्चयही प्राणी नवलकिशोरमहाराजके गुणानुवादमें मग्न हो जाता है. उनका यश अंधकारको दूर करनेमें चंद्रमाकी समान है. अज्ञानी नाम उस मनुष्यका है जो ईश्वरको न पहचानता हो, और न जानता हो कि जीव क्या है; और इस बातमें भ्रम हो कि देह और जीव भिन्न २ है अथवा जीवकोही देह और देहको जीव कहते हैं, संसार क्या वस्तु है और माया किसको कहते हैं; यह सभी संदेह श्रीभट्टजीके सुयशसे जाते हैं.

वर्धमान वा मंगलजीकी कथा १५.

वर्धमान और मंगल नामके यह दोनों भाई भीष्मभट्टजीके पुत्र परम भक्त और भक्तिके दृढ करनेवाले हुए. उन्होंने भगवान्‌के चरित्र और श्रीमद्भागवतके कीर्तनकी नदी बहाकर पृथ्वीको निर्मल और पवित्र कर दिया था. उनको भगवान्‌के भक्तोंसे ऐसी प्रीति थी कि वह हर समय उनहीकी सत्संगतिमें रहते थे. उनको श्रीयशोदानंदन श्रीकृष्ण महाराजके स्मरणमें बडाही स्नेह था, और वह दुःखी पुरुषोंपर दया करते थे.

कृष्णदासजीकी कथा १६.

श्रीमान् कृष्णदासजी जिनको चालकभी कहते हैं वह ऐसे भक्त और कवीश्वर हुए कि उनके छंद या विष्णुपदकी चर्चा समुद्रके

ततटतक पहुँची, उन्होंने एक २ चरित्रको एक २ ग्रंथ बनाया, जिस प्रकार गोवर्धन चरित्र, पंचाध्यायी. रुक्मिणीमंगल और भगवान्के भोजन करनेकी विधि आदि बनाये. पिछले पदमें अपने नामसे पीछे भगवान्का नाम गिरिराजधारण लिखा करते थे और भगवान्के भक्तोंको उन्होंने सुख दिया; निश्चयही उनका अवतार मनुष्योंको भगवान् प्राति भक्ति करानेके लिये हुआ.

नारायणजीकी कथा १७.

नारायणमिश्रजी नौलावंशमें परम भक्त हुए; भगवान्के कीर्तन करनेमें उनकी समान कोईभी न हुआ, इस कारणसे कि उन्होंने बद्रिकाश्रममें श्रीशुकदेवजीसे भागवत पढी थी, और किसीने शुकदेवजीसे न पढी थी; उनके पास प्रति समयही भगवान्के भक्तोंका समाज रहता था, और वह दशों भक्तियोंमें प्रवीण थे; वह तंत्रशास्त्र और वेदका अर्थ अच्छी तरह समझते थे. बृहस्पति और शुकदेवजी शौनकादिक व्यास और नारदमुनि सब उनको श्रेष्ठ जानते थे, उनकी बुद्धि अमृतके तुल्य थी और जिनका दर्शन श्रीगंगाजीकी समान था; सुधाबुद्धि पदके लिखनेसे कवीश्वरका यह अभिप्राय पाया जाता है कि आप तो नारायणमिश्र अमरही थे, परन्तु जिस प्राणीने उनके मुखसे भगवान्की कथारूपी अमृतका पान किया वही प्राणी अमर हो गया.

कमलाकरजीकी कथा १८.

कमलाकरभट्टजी परम भक्त और बडे पंडित समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले हुए. वह मानो उपासनाशास्त्रकी ध्वजा थी; जिसको उन्होंने विवादसे जीतकर भगवान्की भक्तिपर लगाया, वह माध्वीसंप्रदायमें इस प्रकारके हुए कि मानो साधु आचायका अवतार

है. साधुआचार्यने जो श्रीमद्भागवतका टीका दिग्विजयमें बनाया था उसके प्रभावसे भगवान्का कीर्तन वर्णन किया करते. सम्पूर्ण स्मृति और पुराणके प्रभावसे भगवान्के शंख चक्रकी प्रभुता और महिमा वर्णन करके आपभी उनके चिह्न धारण करते और भगवान्के सम्पूर्ण अवतारोंको पूर्णावतार समझकर किसीसे कुछ अंतर नहीं जानत थे.

परमानंदजीकी कथा १९.

परमानंदजी गोपिकाओंकी तरह भगवान्की प्रीति और प्रेममें मग्न रहते थे. श्रीव्रजकिशोर स्वामीजीके चरित्र बारह वर्ष और सोलह वर्षकी अवस्थाके बहुतही प्रेमसे वर्णन किये थे. और जो शोभा सुन्दरता और नटनागर महाराजकी लीला वर्णन की है, तो कुछ आश्चर्य नहीं है वह शोभा और चरित्र सम्पूर्ण कालमेंही उनके समीप रहते थे, वह भगवान्के चरित्रोंके प्रेममें ऐसे मग्न रहते कि सर्वकालही उनके नेत्रोंसे प्रेमका जल बहा करता था; और उनकी गद्गदवाणी हो जाती थी. और देहमें रोमांच हो जाते थे वह शोभाधाम महाराजकी शोभामें पगे हुए थे; और उसमें रंगे हुए थे. और अपने कवित्तोंमें अपने नामसे पीछे भगवान्का नाम सारंग लिखते थे उनके चरित्र पठन करनेसे भगवान्का प्रेम बढता है और निश्चयही भगवान्में चित्त लग जाता है. इष्ट छापमें उनकीभी गिनती है,

अथ

छठी निष्ठा भेषका वर्णन ।

(इसमें आठ भक्तोंकी कथा है.)
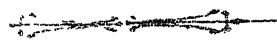
श्रीरघुनंदन स्वामीके चरणकमलोंकी ध्वजारेखाको दंडवत करके यज्ञावतारको प्रणाम करता हूं जिससे वैवस्वत राजा यज्ञ और धर्मका उपदेश पाकर संसारसमुद्रसे पार उतर गये. प्रगट है कि भगवान्के चरणारविंदका प्राप्ति होनेके निमित्त दो भेष हैं एक तौ अंतरीय १ अर्थात् सोचना विचारना, और सार असारका समझना दूसरा वैराग्य २ अर्थात् ब्रह्म लोकतकके सुख छोड देने; शम ३ अर्थात् इन्द्रियोंको पराजय करना, दम ४ अर्थात् संयम और नेमके प्रभावसे इन्द्रियोंको जीतना उपरति ५ अर्थात् छोडे हुए मनको फिर सुखोंमें लिप्त न होने देना, तितिक्षा ६ अर्थात् दुःख सुखको सहना. श्रद्धा ७ अर्थात् गुरु और भगवान्के वाक्यप भरोसा रखना, समाधान ८ अर्थात् भगवद्भक्त वत्सल हैं दूसरा भेष वाक्यका है, अर्थात् प्रगटमें जिनको पंच संस्कार कहते हैं; प्रथम तौ ऊर्ध्व पुंड्र अर्थात् तिलक, द्वितिय मुद्रा अर्थात् शंख चक्र भगवान्के चिह्न देहपर लगाने, तृतीय माला चतुथ मंत्र पंचम नाम और कोई पुरुष नामकी जगह विचारभी करते हैं; और ये पांचों संस्कार गृहस्थी हो अथवा वैरागी सभीकोभी लगाने उचित हैं किस कारणसे कि पद्मपुराणमें पराशर इत्यादिकी स्मृति और तंत्रशास्त्रके वाक्यभी सही हैं, परन्तु भेद इतनाही है कि गृहस्थियाक संसारके समय जो नाम रक्खा जाता है वह प्रकाशित नहीं होता है, और जन्मकेहा नामसे बोलते हैं, और जो गृहस्थ आश्रम छोड देते हैं उनका नाम प्रकाशित होता है. जो गुरुजी संस्का-

रके समय रखते हैं; इस भेषकी बडाई और महिमा कौन कर सकता है? किस कारणसे कि भगवान्‌को प्राप्त करनेकी अतिसुन्दर रीति है. पद्मपुराणमें यह लिखा है कि जिनके कंठमें तुलसीकी माला अथवा कमलके पुष्पोंकी माला और भगवान्‌के शस्त्रोंके चिह्न हाथपर और तिलक मस्तकपर हो तौ ऐसे विष्णु सम्पूर्ण पृथ्वीको पवित्र करते हैं; आगमसार तंत्रका यह वाक्य है कि जो केवल मालाधारी और वैष्णव हैं अर्थात् वास्तवमें विष्णुका भेष रखते हों, वह ब्राह्मण इत्यादिकोभी पूजा करनेके योग्य हैं; और मनुष्योंका तौ क्या विचार है, फिर तंत्रशास्त्रका वाक्य है कि जिस पुरुषकी देहपर माला तिलक और भगवान्‌के शस्त्रोंके चिह्न हों वह पुरुष जो चांडालभी हो तौ पूजा करनेके योग्य है. महाभारतके भीष्मपर्वमें लिखा है कि ब्राह्मण हो अथवा क्षत्री या वैश्य वा शूद्र जिसने यह भेष धारण कर लिया हो वही पूजा करने और दंडवत् करनेके योग्य है और वही समस्त कर्मोंमें सावधान है. जो वह शूद्र है तौभी ऐसा है कि ब्राह्मणोंको पृथ्वीपर लब्ध होना दुर्लभ है; इसी प्रकार सहस्रों श्लोक औरभी हैं; और बडी प्रभुताई इस भेषकी है, किस कारणसे कि इससे श्रेष्ठ रीति मुक्ति होनेके अर्थ और काइ नहीं है विचार कर लो कि जो कोई पुरुष संप्रदाय विना भजन और कीर्तनका मनोरथ करे तौ वह किस रीतिसे भजन और कीर्तन करेगा; प्रथम तौ रीतिके विना भजन करनाही छोड देगा अथवा हार झक मारके किसी न किसी संप्रदायमें आ जायगा किस कारणसे कि जिस मनोमयी रीतिसे भजन करनेका प्रारंभ करेगा तौ वह रीति किसी संप्रदायकी तो होगी, और जिस समय किसी संप्रदायमें आ गया तौ निश्चयही उस संप्रदायकी रीतिपर चलेगा, और जब रीतिपर चलने लगा तौ प्रथम रीति संस्कार है, और सम्पूर्ण वैष्णव और स्मार्त शैव शाक्त यही रीति करते और मानते हैं; सम्पूर्ण

ऋषीश्वरोंको ब्रह्मासे आदि लेकर प्रथम संस्कार हुआ है, और गुरु मंत्रोपदेश मंत्रके विना किसीको मोक्ष आजतक नहीं हुई और न आगेको होगी. शास्त्रका वाक्य है कि जो ब्राह्मण बालकका संस्कार आठ (८) वर्षकी अवस्थामें और क्षत्रीका ग्यारह (११) वर्षकी अवस्थामें, वैश्यका सोलह (१६ वर्षकी अवस्थामें न हो जाय तो वह अपने वर्णसे पतित हो जाता है, इस कारणसे संस्कारका होना प्रथममें बहुत योग्य है. यहांपर जो कोइ यह शंका करे कि प्रगटका भेष बनानेसे क्या होगा अपने अंतःकरणका भेष सुधारना चाहिये. इसका उत्तर यह देना उचित है कि प्रथम तो यह शंका होही नहीं सकती इस कारणसे कि शास्त्रका वाक्य सत्य है. हमने उसके आधीन होकर जैसा लिखा है वैसाही करना योग्य है. दूसरे क्षणभर विचारना चाहिये कि किसी पुरुषको आजतक पृथ्वीकी उत्पत्तिसे लेकर भेषके विना भजन और स्मरण प्राप्त हुआभी है जो शंका करनेवालेको होगा जब भजन और व्रत नेम करते हैं, तब भगवत्परायण हो जाते हैं यह बात प्रचलित है कि पारसपत्थर लोहेको सुवर्ण बना देता है, सो यह प्रगटका भेष पारस पत्थरकी समान है; सो यह निश्चयही अंतरीय पापोंका नाश कर देगा. फिर तुलसीकी माला और भगवान्के शंख चक्र इत्यादिकि संगति है; और मनको निर्मल कर देना तीर्थोंका प्रभाव है, और सत्संगतिका माहात्म्य प्रथम हो चुका है. सिपाही उस समय कहलाता है कि जब शस्त्र धारण करता है; ध्वजा विना अनेक तरहके ठाकुरद्वारे और शिवालेकी पहचान नहीं हो सकती. वृषभपर त्रिशूल धरकर शिवजीका नादिया कहने लगते हो, कहारोंके गुरु कालू कहारकी कथा है किसी धर्मात्मा राजाके राज्यमें मछली पकड रहा था, राजाको आता हुआ देखकर अपने जीवका भय मानकर जाल सरोवरमें छोड दिया और उसी तालावकी मट्टीका तिलक लगाकर जालके

दानोंकी माला लेकर साधुकी समान बन बैठा, राजाने उसको साधु समझकर प्रणाम करा और कुछ भेंट देकर चला गया, तब काल्हू उसी समय गृहस्थाश्रमको त्यागन करके भगवान्‌की शरण हुआ और यह दोहरा पढा, " बाना बडा दयालका, तिलक छाप अरु माल । यह डरपै काल्हू कहै, भय माने भूपाल ॥ " इस कारणसे यह उचित है कि प्रथम विष्णुका भेष धारन करना गुरुजीसे सीखे, सो पंचसंस्कारोंमेंसे प्रथम ऊर्ध्व पुंड्र तिलक है. उसके लिये अथर्ववेदके उपनिषद्‌का यह वाक्य है कि भगवच्चरणके चिह्नका तिलक जो कोई अपने स्वार्थके कारण धारण करता है और वह तिलक बीचमेंसे खाली हो और ऊंचा अर्थात् खडा हुआ हो वह मनुष्य भगवान्‌को अत्यन्तही प्रिय है, और वह धर्मात्मा अंतमें मुक्तिको प्राप्त हो जाता है, और पुराणोंके वाक्य तथा वेद श्रुति लिखे होनेके कारणसे यहां नहीं लिखे सो वेद पुराणोंकी आज्ञानुसार, चारों संप्रदायोंमें तिलक धारण करनेका माहात्म्य है; परन्तु तिलक अपनी २ संप्रदायमें भिन्न २ है. श्रीसंप्रदायमें दोनों तरफ मस्तकके मध्यमें भगवान्‌के चरणोंके चिह्न बनाकर सिंहासनके दोनों ओर भृकुटियोंके मध्यमें बनाते हैं. और बीचमें लाल व पीली रोलीकी श्री लगाते हैं; श्री धारण करनेका यही कारण है कि लक्ष्मीजीको सम्पूर्ण कालमें विष्णुके चरणोंका ध्यान रहता है; और श्रीको देख २ श्री धारण करनेवालेकोभी हो जाता है. प्रगट है कि इस संप्रदायमें दो दो समाज हैं, प्रथम वडगल. द्वितीय डिंगल, सो सिंहासन धारण करनेमें दोनों समाजोंमें अंतर है; माधवीसंप्रदायमें पतली दो रेखा धारण करके दोनों भृकुटियोंके नीचे सिंहासन बनाते हैं, सिंहासनके नीचे एक बाणकासा चिह्न नासिकापर लगाते हैं. निम्बार्कसंप्रदायमें पतली दो रेखाओंके मध्यमें एक बिंदी

अथवा श्वेतकी लगानेकी रीति है, और पतली रेखाका सिंहासन. विष्णुस्वामी संप्रदायमें पतली दो रेखा और उसके नीचे सिंहासन लगाकर छोड देते हैं; और मध्यमेंसे खाली छोड देते हैं. व्यासजीने जो अपना संप्रदाय नया बनाया तो उसमें और निम्बार्क संप्रदायमें थोडा भेद है निम्बार्क संप्रदायमें सिंहासन दोनों भृकुटियोंके नीचे लगाते हैं और व्यासजीके संप्रदायमें सिंहासन नासिकापर लगाते हैं, हितहरिवंशजीके निम्बार्कसंप्रदायमें संप्रदायके तुल्य तिलक धारण करना होता है; और रामानंदजीके संप्रदायमें श्रीसंप्रदायके समान चारों संप्रदायमें द्वादश अंगपर तिलक करना लिखा है और सम्पूर्ण तिलकके मंत्र भिन्न २ हैं. निम्बार्कसंप्रदायमें दोनों रेखाके बीचमें बिंदी लगाने और माध्वी संप्रदायमें न लगानेकी जो रीति है उसका कारण यह है कि तिलककी मध्यमेंसे शून्य रखना चाहिये; और शून्य पदके दो अर्थ हैं. एक खाली दूसरा बिंदी सो निम्बार्कसंप्रदायमें बिंदीका अर्थ ग्रहण किया है. और विष्णुस्वामीसंप्रदायमें खालीका अर्थ ग्रहण किया है. श्रीसंप्रदायमें गोपीचंदनको छोडकर और तीर्थोंपरकी जैसे चित्रकूट इत्यादि स्थानोंकी मट्टीकाही तिलक लगाना उचित है, और शेष तीनों संप्रदायमें गोपीचंदनका और कुछ एक मट्टीकाभी लगाते हैं, और विष्णुस्वामी संप्रदायमें केशरकाभी लगाते हैं, और पिछले लोगोंने औरभी कई प्रकारका तिलक लगाना कहा है, परन्तु जो पुराकृत आचार्योंने रीति निकाली थी वही अत्यन्त करके मानी जाती है.

तिलकके चिह्न नीचे हैं ।

द्वितीय संस्कार मुद्राका है, अथर्ववेदकी श्रुतिका वाक्य है कि जो कोई पुरुष भगवान्‌के शंख चक्र शस्त्रोंके चिह्न अपनी भुजापर लगाता है सो विष्णुस्वामीके परम पदको जाता है; और इसी तरह दूसरी श्रुतिका वाक्य है, कि पद्मपुराण इत्यादिकीभी आज्ञा है, यह तौ चारों संप्रदायवाले इस आज्ञाके अनुसार होकर चलते हैं, परन्तु श्रीसंप्रदायकी यह रीति है कि दीक्षा देनेके समय तुरंतही तप्त मुद्रा धारण करा देते हैं. गृहस्थी हो अथवा त्यागी, और शेष तीनों संप्रदायमें एक पुराणकी अनुसार शीतल मुद्राकी रीति है, अर्थात् गोपीचंदनसे भगवान्‌के शंखचक्रके चिह्न भुजापर और हृदयपर धारण कर लेते हैं यह तौ पुरातन आचार्योंने पुराणोंके दृष्टांतसे तप्त मुद्रा धारण करनी द्वारकामेंही लिखी है; परन्तु गृहस्थियोंमें यह वार्ता नहीं मानी जाती. त्यागी होनेके पश्चात् यह अवश्यही योग्य है, तृतीयसंस्कार मालाका है. तुलसी अथवा कमलके पुष्पोंकी माला पहरनी चाहिये. तुलसीका माहात्म्य सभी पुराणोंमें लिखा है. इस कारणसे सम्पूर्ण अक्षरोंका भिन्न २ अर्थ कहना अयोग्य समझा. प्रसिद्ध यह है कि तुलसीके धारण करनेवालेको निश्चयही भगवान्‌का दर्शन होता है और उनका देहान्त होनेके समय तुलसीकी माला अथवा कंठी वा तुलसीदल जिस प्राणीकी

देहपर होंगे वह प्राणी कदापि यमराजके भवनका दर्शन नहीं करेगा. और उसको उत्तम गति प्राप्त होगी. पद्मपुराणमें लिखा है कि जो माला कदंब इत्यादि वृक्षोंके काष्ठकी बनी हुई हो जो वृन्दावनमें उत्पत्ति होती है; वह मालाभी तुलसीकीसी मालाका माहात्म्य रखती है; चतुर्थ संस्कार मंत्र है सो उसकी महिमा सम्पूर्णही जानते हैं जो कि सर्व संप्रदायकी जड और सम्पूर्ण वेदशास्त्रका सार और शीघ्रही भगवान्के दर्शन करानेवाला, सम्पूर्ण कार्य इस लोक और परलोकका सिद्ध करनेवाला मंत्र है. भगवान्के मंत्रमें किंचिन्मात्रभी भेद नहीं, भगवान् मंत्रके वशीभूत हैं, समस्त वेद और पुराण उस मंत्रकी महिमाको वर्णन करते हैं, इस कारण किसी श्रुति इत्यादिकी आवश्यकता नहीं; सो मंत्र चारों संप्रदाय और अन्य संप्रदायोंमें पृथक् २ हैं. जो यह शंका हो कि एक ईश्वरके इतने पृथक् मंत्र किस कारणसे हैं तौ इस दृष्टान्तसे शंका निवृत्त होती है; कि एकही पुरुषको कोई बेटा, कोई भाई, कोई बाप, कोई दादा, कोई चाचा, कोई ताऊ इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं और वह पुरुष सबही नामसे बोलता है, इसी प्रकार उस भगवान्का जिस मंत्र और जिस नामसे स्मरण किया जायगा भगवान् तत्कालही वहां आकर उपस्थित हो जाते हैं. पांचवें संस्कारमें नाम बदला जाता है, उसके लिये कोई लिखावट और तर्क करना आवश्यक नहीं, जिस समूहमें जो कोई जाता है; वैसाही उसका नाम रक्खा जाता है; पलटनमें नौकर होकरही सिपाही कहलाता है, और सवारोंमें होकर सवार कहलाता है; चारों संप्रदायके संन्यासी त्रिदंडी नामसे प्रचलित होते हैं. एक ढाककी लकडीका दंड, दूसरे शिखा अर्थात् चोटी, तीसरे सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत विशेषकर नाम गिरी पुरी तीर्थ मुनि आदि संन्यासके समय रक्खे जाते हैं श्वेत वस्त्र मट्टी गेरू आदिके रंगे होते हैं; और संन्याससे पहले सब संप्रदायोंमें

सब रंगके वस्त्र जो लील आदि शास्त्रोंसे वर्जित न हों इस प्रकारके रंगके वस्त्र पहरे जाते हैं. माध्वी संप्रदायमेंभी संन्यासकी रीति है. उनकी रीति कुछ श्रीसंप्रदायसे और कुछ स्मार्त संप्रदायसे मिलती है और नामभी श्रीसंप्रदायकी रीतिसे रक्खे जाते हैं. निम्बार्कसंप्रदायमें संन्यासकी रीति नहीं जान पडती, विष्णुस्वामी संप्रदायमें संन्यासके स्थानमें समर्पणी मार्ग है; उसको वृक्षसम्बन्धीभी कहते हैं. अतपदवीका नाम मर्यादा पालन है कि अपनी संप्रदायके मामूली संस्कारके पीछे धारण करते हैं, विरक्त नहीं होते, वर्ण उनका बना रहता है. स्मार्त संप्रदाय जो इन चारों संप्रदायोंके उपरान्त है और परम ज्ञानयुक्त है. पिछले आचार्य शंकरस्वामी हुए, उनके तिलककी रीति त्रिपुंड्र अथवा वट आकार चंदन भस्म गोपीचंदन अथवा तीर्थ इत्यादिकी मट्टीसे है.

वटाकार

त्रिलक.

त्रिपुण्ड्र

और माला; तुलसी, कमल, जियापोता अथवा रुद्राक्षको धारण करते हैं, गायत्री इत्यादि सब प्रकारके मंत्र हैं. मुद्रा लगानेकी तो रीति नहीं अर्थात् इस रीतिका निषेध मानते हैं, जो जन्म होनेके समय रक्खा गया था, या यज्ञोपवीतपर जो संस्कार होता है उसीको वह पूर्ण समझते हैं; फिर गुरु नहीं करते. इस संप्रदायमें संन्यासकी रीति है कि शिखा और सूत्रको त्यागन कर देते हैं, वह केवल एक लकडीका दंड रखते हैं, और उसी समय नामभी बदला जाता है; इस संप्रदायमें संन्यासियोंके दश नाम हैं कि शंकरस्वामीकी कथाके पुरुष

सूक्ष्ममें लिखे हैं कि एक तो मटीले गेरूके रंगे हुए वस्त्र अथवा शिमरखके रंगे हुए वस्त्र पहरने उचित हैं, तिलक त्रिपुंड्र भस्मका, ब्राह्मणके सिवाय किसीके हाथका भोजन न करना, कर्मोंके करने न करनेको बराबरही समझना, और इसी प्रकार और धर्म सब संन्यासियोंके समान हैं; मुख्य संन्यासी तो वह है जो दंड धारण करते हैं. और सब संप्रदायोंमें दंडी स्वामीकी पदवीसे बोले जाते हैं, और बहुधा काशी इत्यादि इन देशोंमें आते हैं. हे रघुनंदनस्वामी ! हे दीनवत्सल हे दीनदयाल ! हे करुणाकर ! कभी कृपा करके इस अपने दासकी ओरभी कृपादृष्टि करोगे, हे नाथ ! मैं भला हूं अथवा बुरा हूं जैसाभी हूं वैसा आपकाही हूं; जिस प्रकार लाखों अथवा करोडों जन्मसे इस मेरे मनने मुझे अपने वशमें कर रक्खा है इसी प्रकार कभी मुझेभी ऐसा कर दो कि मैं उस मनको अपने वशमें करूं, मैं निश्चयही पापी और हत्यारा हूं, परन्तु उन मेरे कर्मोंपर आपको कदापि ध्यान देना उचित नहीं आपका नाम पतितपावन है. आप उसपरही ध्यान रखिये, करोडों और सहस्रों पापी एक आपके नामसेही निर्मल हुए, और मेरी जो यह इच्छा है सो ऐसी नहीं है कि जो आपको उसका पूर्ण करना कठिन हो. एक थोडीसी मेरी यह इच्छा है कि आपका वह समाज जो मंगलाचार्यके अंतमें लिखा गया है. सर्वदा मेरे मनमें वसा रहे; मैं चाहे नरकमें रहूं या स्वर्गमें किसी जगह क्यों न रहूं आप मेरी यह अभिलाषा पूर्ण कीजिये.

कवित्त–वसी रहै शशि छवि जो मन चकोरनके आलिमति मालती सुमनमें वसी रहै ॥ वसी रहै गज मन रेवाकी रुचिर रेणु मोरनकी रुचि घना घनमें वसी रहै ॥ वसी रहै श्रीपतिसदन कमलाजू जैसे मदन क्षुधा ज्यों युवा योनिमें वसी रहै ॥ त्योंही तेरी छबिकी लगन श्याम मूरत निहारी मेरे मनमें वसी रहै ॥ १ ॥

रसखानकी कथा १.

रसखानजीभी भगवान्‌के परम भक्त हुए; पहले वह मुसलमान थे; कावेकी यात्राके मनोरथसे जब वृन्दावनमें गये तो वहां इनके पूर्वजका पुण्य उदय हुआ. श्रीमान् व्रजचंदजी महाराजके इस शोभायमान अत्यन्तही मनोहर स्वरूपके कि वह शिरपर मोरमुकुट धारण किये हुए, गलेमें वनमाला पहरे, समस्त अंगोंपर आभूषण शोभित हैं, और जगह जगह अनेक प्रकारके फूल गूँथे हुए हैं और अत्यन्तही जगमगाहटके वस्त्र पहरे हुए हैं, एक हाथमें मुरली और दूसरेमें छडी लिये हुए इस प्रकारके रूपसे रसखानजीको दर्शन दिये उस अत्यन्त सुन्दर और मनोहर रूपको देखतेही इनकी तौ यह दशा हो गई, कि यह इनका रूप देखतेही मग्न होकर पृथ्वीपर गिर पडे; इनका गुरुभी साथमें था वह इनके चैतन्य होनेका उपाय करने लगा; और इनको पुकारकर कहा कि आंख खोलो. रसखानजीको उस समय समस्त शास्त्रोंका आशय जो प्रगट और जो गुप्त थे तथा सम्पूर्ण कविताका ज्ञान हो गया था, जब इन्होंने वह मनोहर मूर्ति देखी तत्कालही कवितामें उनका ध्यान वर्णन किया और अंतमें कहा कि आंखें क्या खोलूं वह मूर्ति तौ मेरे अंतःकरणमें बस गई. तब गुरुजीने कहा कि अब यहांसे कावेको चलो, रसखान जीने गुरुजीकी यह वार्ता सुन उत्तर दिया कि कैसा कावा और कैसा किबला जो है सब यहांही है अब मैं कहां जाऊंगा. मैं तौ व्रजका हो चुका; और उन्होंने एक कवित्तमें वर्णन किया था कि जो मुझको मनुष्यदेह मिलेगी तौ व्रजमेंही जन्म लेकर ग्वालबाल होकर रहूंगा; और जो पशुकी योनि मिलेगी तौ नंदबाबाके गौ और बछडोंमें और पाषान हूंगा तो गिरिराज और जो यदि पक्षी

हूंगा तौ व्रजके वृक्षोंका, उनके गुरुने जब यह वार्ता सुनी तौ महान् आश्चर्य हुआ, और विचार किया कि इसको रथमें डालकर जबरदस्ती ले जांय, तब रसखानजी वहांसे भाग गये और वनमें जा छिपे और वृन्दावनमें वास करके उन्होंने हजारों कवित्त वृन्दावनके प्रभाव व महिमा और प्रियाप्रीतमकी शोभाके बनाकर भेंट किये; और वह वैष्णवी वस्त्र धारण करके बहुतसी माला पहरा करते. उनसे किसीने पूछा कि इतनी माला पहरनेका प्रयोजन क्या है, एक दोही बहुत हैं, तब रसखानजीने उत्तर दिया कि मालाको जो पापी मनुष्यभी पहर लेता है तौ वहभी संसारसमुद्रसे तर जाते हैं, जो पुरुष छोटे पाषाणकी समान हैं, उनको एक दोही माला बहुत हैं, और मैं बडे पाषानकी समान हूं मुझको बहुत माला पहरनी उचित है.

भगवान्दासजीकी कथा २.

भगवान्दासजी मथुराजीके रहनेवाले भगवान्के भजन और भावमें दृढ और कठिन गुणोंके सरलतासे जाननेवाले श्रीमद्भागवतके प्रेमी श्रोता और उसके गुप्त संकेत और रसके ज्ञाता भगवान्के भक्तोंके अत्यन्तही प्रेमी और विश्वासी ऐसे हुए कि उनके दर्शन करतेही मनको आनंद प्राप्त हो; भगवान्के जो धाम हैं, उनके सेवक, गंभीर, निर्मल हृदय पुण्यात्मा और उत्तम मनुष्य और प्रशंसाके योग्य हुए; एक वार मथुराजीमें बादशाहका समाज हुआ; जब उन्होंने देखा कि तिलक और मालाका प्रचार बहुत हो गया है; इसकी परीक्षा करनी चाहिये तौ उन्होंने ढंडोरा फिरवा दिया, कि जो कोई तिलक माला धारण करेगा, वह मारा जायगा इसपर बहुतसे लोगोंने तौ तिलक मालाका धारण करना छोड दिया, परन्तु भगवान्

दासजीने कुछभी भय न माना वरन अपने सम्बंधियोंसहित प्रथम-सेभी विशेष उज्ज्वल तिलक धारण करके और एक मालाकी जगह दो माला पहरकर बादशाहके समीप गये. बादशाहने आज्ञा भंग करनेका कारण पूछा, तब भगवान्दासजीने निर्भय होकर उत्तर दिया कि हमारे धर्ममें माला तिलक पहरे हुए यदि जीवनभी जाय तौ मोक्ष होती है अब हमने अपनी मृत्यु विचार ली इस कारण माला और तिलक अच्छी तरह धारण की निश्चयही मोक्ष हो जायगी. जब बादशाहने भगवान्दासजीकी यह पूर्ण श्रद्धा देखी तौ अत्यन्तही प्रसन्न हुए और कहा कि जो कुछ इच्छा हो सोही मांगो-भगवान्दासजीने कहा कि मथुराजीसे बाहर जाना नहीं चाहता; तब बादशाहने मथुराजीके जानेका पट्टा लिख दिया; और फिर किसीसे माला तिलक पहरनेका झगडा नहीं किया. फिर भगवान्दासजीने बहुत दिनोंतक मथुराजीकी आमली करी, हरदेवजीका मंदिर और मानसीगंगा तलाव गोवर्धनजीमें उनका बनाया हुआ है.

चतुर्भुजजीकी कथा ३.

करौलीके राजा चतुर्भुज भगवान्के भक्त ऐसे हुए कि उनको साधुओंकी सेवामें अत्यन्त प्रेम हुआ; उनकी समान कोईभी राजा न हुआ जब वह भक्तोंका आना सुनता तो उनके लेनेको इस प्रकार जाता जैसे कोई नौकर अपने स्वामीके लेनेको जाता हो; और उनको अपने स्थानपर लाकर भगवान्की समान उनकी पूजा और बडाई करता, और राजा रानी अपने हाथसे उनके चरण धोकर धूप दीप आदि कर उनके आगे नृत्य और कीर्तन करते, नगरके चारों ओर चार २ कोसपर चौकी बैठा रक्खी थी इस कारण कि जो कोई माला-धारी आवे उसका समाचार हमें तत्काल दो, तब एक राजाने भेषसे-

वा और भक्तिका यह वृत्तान्त सुना तो कहने लगा कि पात्रका भेद नहीं तो भक्ति किस कामकी. तब उसके पंडितने कहा कि क्या जाने मनमें कुछ तो समझतेही होंगे और प्रगट न करते होंगे; तब राजाने परीक्षाके लिये एक भाटको भेजा और उससे कहा कि तू तिलक माला धारण करके स्वामी हरिदासजीके नामसे राजा चतुर्भुजजीके पास जा, जब वह भाट राजाके समीप आया तो अपने स्वामीकी शिक्षाको भूल गया; और भाटोंकी समान प्रशंसा करने लगा. जब राजातक अपना पहुँचना कठिन देखा तो स्वामीकी शिक्षा स्मरण हो गई तब झट उसी भेषको धारण कर विना रोक टोकके राजाके समीप गया, तो राजाने अपने रीतिके अनुसार उसका आदर और सत्कार किया और भगवान्का प्रसाद जिमाया; इसके उपरान्त फिर भगवच्चर्चा हुई परन्तु वह तो भाट था इस मार्गको क्या जाने ? तथा हां हां हूं हूं करता गया, तब राजाने विचार किया कि इसको किसीने परीक्षाके लिये भेजा है, परन्तु तोभी उसके आदरसत्कारमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं करी और जब वह जानेको हुआ तो भंडार खोल दिया, और कहा कि जो इच्छा हो सभी ले जाओ, फिर एक डिबियामें फूटी कौडी रखकर जरी और कमरखासे लपेटकर उनको दी, तब भाट वहांसे चल दिये और अपने स्वामीके समीप आये, और आनकर राजा चतुर्भुजजीकी भक्तिभावका समस्त वृत्तान्त वर्णन किया, और वह जो कुछ द्रव्य अथवा धन लाया था उसको डिबियासहित आगे धर दिया; तब उस राजाने जब उस डिबियाको खुलवाकर देखा तो उसकी समझमें नहीं आया, और जो पंडित राजाको भागवत सुनाये करता था इस गूढका अर्थ पूछा, तब पंडितजीने हँसकर कहा कि यह तो सूधी बात है. राजा चतुर्भुज यह कहता है कि इस भाटको भगवान्की भक्ति नहीं. इस कारण भीतरसे इसका मन फूटी

कौडीकी समान है और जो इसने भगवान्के भक्तोंका भेष बनाया इसी कारणसे बाहरसे वह अत्यन्त सुन्दर जगमगाती हुई जरीसे मढी हुई है, तब वादी राजा लज्जायमान हुआ और पंडितजीसे कहने लगा कि तुम अपने आप जाओ, और राजा चतुर्भुजजीकी भक्तिका समाचार लाओ, तब पंडितजीने विचारा कि सत्संगतिका फल उत्तम है इसी कारणसे भगवान्के भक्तके दर्शन होंगे यह विचार कर वहांसे चल दिया. जब चतुर्भुजजीने सुना कि पंडितजी आते हैं तो तत्कालही उठ खडा हुआ और आदरसहित उनके लेनेको स्वयं आया बडे आदरमानसहित उनको घरमें ले गया, उनको कितनेही दिनोंतक भगवान्की चर्चाका और सत्संगतिका सुख रहा; इस समयमें पंडितजीने कई वार जानेकी इच्छा की परन्तु राजाने उनको नहीं जाने दिया. अंतमें जब उनके जानेका निश्चय विचार हो गया तो राजाने भंडार खोल दिया और पंडितजीसे कहा कि यह समस्त धन आपहीका है; परन्तु पंडितजीने कुछभी नहीं लिया. परन्तु राजाके यहां एक मैना और तोतेका जोडा था उसमेंसे मैनाके लेनेकी अभिलाषा करी, तब राजाको उसके वियोग होनेका अत्यन्तही दुःख हुआ; उसने विचारा कि जो यह नहीं देता हूं तो साधुसेवासे यह बात विपरीत है यह विचार कर मैना पंडितजीको दे दी; और जब पंडित मैना लेकर राजाके सन्मुख गया तो वह मैना सभाको विमुख देखकर कहने लगी कि " कृष्ण कहो ! कहो कृष्ण ! " जो तुम्हारा उद्धार हो, यह संसार अगम्य है; भगवान्के नाम लेनेके अतिरिक्त और किसी प्रकारसे उद्धार नहीं होगा. तब राजाने पंडितजीसे चतुर्भुजजीका वृत्तान्त पूछा; तब पंडितजीने कहा कि उसको पूछनेकी क्या आवश्यकता है. राजाकी एक मैनाकोही देख लो कि भगवान्में कितनी प्रीति रखती है; और

फिर पंडितजीने कहा कि यदि करोडों जिह्वाभी हों तौभी राजा चतुर्भुजजीके प्रेम और भक्तिका वर्णन नहीं हो सकता. वादी राजाको अत्यन्तही विश्वास हुआ और वह भगवान्की भक्ति तथा साधुओंकी सेवा करने लगा. जब राजाकी भगवान्में प्रीति और भक्ति हो गई तब वह सारिका विदा होकर राजा चतुर्भुजजीके पास पहुँची और राजाके वियोगका दुःख निवृत्त किया.

एक राजाकी कथा ४.

एक राजा भगवान्का भक्त हुआ कि वह भोजनके स्वाद और संसारी भोग राज्य और धनके सुखको तुच्छ समझता था; वह सदा भगवान्के भजन और स्मरणमें दत्तचित्त रहता था; जिसके चरित्र भगवान्में प्रीति उत्पन्न करनेवाले हैं. वह जिस कीसीको तिलक और कंठी धारण किये हुए देखता उसकोही भगवान्का स्वरूप जानकर दंडवत् करता था; उसके भंडारमें जो कुछ धन द्रव्य था सो समस्तही भगवान्के उत्साह और उनकी सेवामें लगाता था; और जब कोई भांड इत्यादि भगवान्से विमुख उसके समीप आता तो उसको कुछभी न देता; तब समस्त भांडोंने मिलकर आपसमें सलाह करी कि किसी प्रकारसे मिल राजासे धन लेना चाहिये; तब वे भगवान्के भक्तोंका भेष बनाकर राजाके समीप आये, राजाने उनको अपनी रीतिके अनुसार आदरसहित पूजन किया. और अत्यन्त आदरके साथ उनको बैठाया; तब भांडोंने अपना साज और सब सामान गानेका सम्हाला और सब मिलकर नकलें करने लगे. राजाको उनके इस कर्मसे कुछभी लज्जा न हुई वरन प्रसन्न होकर कहने लगा कि धन्य है भगवान्के भक्तोंको उनकी महिमा किससे वर्णन हो सकती है. वह अपने सेवकोंको

ढोल वजाकर और नृत्य गान करके कृतार्थ करते हैं; फिर उनको बहुत आदर सत्कार करके भगवान्का प्रसाद जिमाया, और जब वह जानेको हुए तो एक थाल मोहरोंसे भरकर उनकी भेंटमें दिया. जब भांडोंने राजाकी यह श्रद्धा और भक्ति देखी और भगवान्के भक्तकी संगति हुई तो सबको वैराग और ज्ञान हो गया तब वह भगवान्की शरण होकर भगवान्के भक्त हो गये.

गिरधरग्वालकी कथा ९.

गिरधरग्वालजी भगवान्में सखाभाव रखते थे; और इस निष्ठामें उनको इतना दृढ विश्वास हो गया कि वह सर्वदा भगवान्के निकट हँसी खेलमें रहते और वह भगवान्के चरित्रोंका कीर्तन करते २ गद्गद कंठ हो जाते थे. यद्यपि वह अपने अंतःकरणकी प्रीति और प्रेमको अत्यन्तही गुप्त रखते थे, परन्तु तोभी कबतक छिपी रह सकती है, अंतमें प्रगट होही जाती है. जब यह समस्त संसारमें प्रख्यात हो गये तब इन्होंने जंगलमें आकर कीर्तन किया. एक समय उन्होंने मालपुरेगांवमें भगवान्का रास कराया; और ऐसे प्रेममें मत्त हुए कि समस्त धन भगवान्की भेंट कर दिया; उनको भगवान्के भक्तोंमें और उनकी सेवामें इतनी श्रद्धा थी कि वह जिस किसीको साधुके भेषमें देखते उसकोही भगवान्का स्वरूप जानते; उनको एक वार कोई मरा हुआ साधु दृष्टि आया; इन्होंने अपनी रीतिके अनुसार उठकर उसकाभी चरणामृत लिया, तब ब्राह्मणोंने इनका यह बुरा व्यवहार जानकर एक सभा करी और गिरधरजीको मने किया, परन्तु गिरधरजीने उनका कहना न माना और उसका उत्तर दिया कि भगवान्के भक्तको कभी मृत्यु नहीं होती; यह तुम्हारी अश्रद्धा है, जो मरा बताते हो यह बात सुनकर सब चुप हो गये. अब विचारना उचित है कि ग्वालपदवी भगवान्के सखा होनेसे पाई थी.

लालाचार्यकी कथा ६.

लालाचार्य रामानुज स्वामीके जमाई ऐसे भगवान्‌के भक्त हुए कि जिनकी कथा सुनकर अवश्यही भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति होती है. मंत्र उपदेशके समय गुरुजीने शिक्षा दी कि भगवान्‌के भक्तोंमें जितनी प्रीति और श्रद्धा हो सबसे उत्तम है; परंतु कमसे कम भाईसे कमभी उनको न जानना चाहिये सो उस आज्ञाके अनुसार करते रहे एक दिन एक साधु मालाधारी तिलकवाला नदीमें बहा जाता था, यह उसको निकालकर अपने घर लाये, और विमान बनाकर भगवान्‌का कीर्तन करने लगे और उसको नदीके किनारेपर ले गये और दाह-क्रिया की फिर उसके महोत्साहमें जातिके ब्राह्मणोंको नौता दिया, उन्होंने नहीं माना; परन्तु आपसमें कहने लगे कि यह पुरुष लालाचार्यका सम्बन्धी नहीं था, न जाने कौन जाती था इस कारण एक वारही भोजन नहीं करना चाहिये. जब लालाचार्यने यह वार्ता सुनी तो उनको अत्यन्तही शोच हुआ और वह तत्कालही गुरुके पास गये और दंडवत् करके समस्त वृत्तान्त कहा तब स्वामीजीने कहा कि वे लोग भगवान्‌की महिमाको नहीं जानते जो जानते होते तो तत्काल प्रसन्नतासहित आते. तुम कुछ चिन्ता मत करो अब जाकर भोजनकी तैयारी करो. भगवत्प्रसादको वैकुंठलोकसेही आकर भोजन करेंगे. जब वह दिन आया तो भगवान्‌के पार्षदोंका समूह एकत्र होकर इस प्रकारके भेषमें आया कि ऐसा रूप कभी किसीने नहीं देखा था आकर उपस्थित हुआ, और जब वह प्रसाद जो तैयार हुआ था सो अत्यन्तही प्रेमसे भोग लगाया. प्रथम तो ब्राह्मणोंको आश्चर्य हुआ कि ऐसे ब्राह्मण कहांसे आये हैं, फिर उन्होंने शत्रुता और द्वेष किया और विचारा जब यह भोजन करके

आवें तभी इनकी हँसी करेंगे तौ ब्राह्मण लज्जित होंगे. भगवान्‌के पार्षद उनके इस दुष्ट चरित्रको जान गये और जब वह भोजन कर चुके तब आकाशके मार्गको होकर चले गये, जो ब्राह्मणोंने जब यह प्रताप देखा तो बहुतही पछताये और अभिमानको त्यागन कर अपने आचार्यके पास आये और वह लज्जाके मारे आंखें ऊपरको न उठा सके, और पत्तलोंसे शीतप्रसादको लेकर खाने लगे, फिर लालाचार्यजीके चरणोंमें दंडवत् करी और बोले कि महाराज ! अब हमारे ऊपर कृपा करो, और हमको अपना सेवक करके दोनों लोकमें कृतार्थ करो. तब लालाचार्यने कहा कि तुमपर तो आपही भगवान्‌की कृपा हुई, कि जिन पार्षदोंकी महिमा शास्त्र और पुराणमें लिखी है उनके तुमको साक्षात् दर्शन हुए इससे अधिक और क्या कृपा चाहते हो. तब ब्राह्मणोंने कहा कि हमको लज्जित मत करो, आपको हमपर कृपाही करनी अवश्य है. निदान सब भगवान्‌की शरण हुए, और समस्त देशमें भगवान्‌की भक्ति और भेषनिष्ठाका प्रचार प्रचलित हो गया.

मधुरजीकी कथा ७.

उन्दछके राजा मधुकरशाह भगवान्‌की भक्तिमेंभी राजा हुए. इनको साधुभेषमें इतना प्रेम और विश्वास था कि जिस किसीको देखते उसकी अपने गुरुकी समान सेवा करते, जैसा उनका नाम था निश्चयही वैसे वह थे अर्थात् जिस प्रकार भौंरा कमलके रसका लोभी होता है और कांटे इत्यादिसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता, इसी प्रकार मधुकरशाह जो सार होता उसीको ग्रहण कर लेते. यह रीति थी कि जो कोई तिलक और कंठी धारण करके आता तो उसका तत्कालही चरणामृत लेते और प्रसन्नतासहित उसकी परिक्रमा करते.

यह उसका चरित्र देख राजाके भाईको अत्यन्तही दुःख हुआ; और उन्होंने यह दुष्ट चरित्र किया कि एक गधेको बहुतसी माला और तिलक लगाकर महलमें भेज दिया. राजा तत्काल देखतेही उठा और उसके चरण धोये, और अत्यन्तही प्रीतिके सहित परिक्रमा कर कहा कि आज मैं धन्य हुआ, फिर उसको भगवान्का प्रसाद जिमाया और दंडवत् कर विदा किया. तब वह राजाके भाई लज्जित हुए और राजापर विश्वास हुआ. राजाने जो अपनेको धन्य कहा तो उसके कहनेका यह अभिप्राय था कि मेरे बडे भाग्य हैं कि मेरे राज्यमें गधेभी तिलक और माला धारण करते हैं, और जो पुरुष तिलक माला धारण नहीं करते वे विना पूंछके गधेकी समान हैं वरन गधेसेभी अधिक हैं.

हंसप्रसंगकी कथा ८.

एक राजाको कुष्टका रोग होगया था, उसने अनेक प्रकारके उपाय किये परन्तु किसीसेभी उसको आरोग्य न हुआ, तब एक वैद्यने कहा कि हे राजन्! यदि तुम हंसका मांस भोजन करोगे तो आरोग्य हो जाओगे इसमें कुछभी संदेह नहीं. तब राजाने अपने पारधियोंको बुलाया और हंसके लानेकी आज्ञा दी. पारधियोंने कहा कि हंस तो मानससरोवरमें रहते हैं, और वह जिस किसी जीवको देखते हैं तत्कालही उड जाते हैं सो उनको हम किस प्रकारसे लावेंगे? तब उनके यह वचन सुन राजाने कहा कि, यदि तुम हंसको नहीं लाओगे तो मैं तुमको दंड दूंगा. तब वे लाचार होकर चले और उन्होंने परस्परमें यह विचार करा कि हंस भगवान्के भक्तोंसे नहीं डरते इस कारण साधुका रूप बनाकर चलना चाहिये. जब वह साधुभेष धारण कर हंसोंके समीप गये तो हंसोंने उनका यह कपटभेष जान

लिया; उन्होंने शोचा कि जो अब इनके हाथ न आ जांयगे तौ यह वार्ता भगवान्के धर्मसे विपरीत है. यह विचार कर वह पकडे गये और पारधी प्रसन्नतासहित राजाके समीप लाये, वह अभी बंधे हुएही थे कि इतनेहीमें भक्तवत्सल महाराज जो कि सर्वदा अपने भक्तोंकी सहायताके कारण उनके साथ २ फिरते हैं वह वैद्यका रूप धारण कर उनके नगरमें आ पहुँचे. पहले तौ उन्होंने बाजारमें आकर अपना काम फैलाया और फिर राजाके पास गये. राजाने कहा कि महाराज ! मैं बहुत दिनोंसे रोगग्रसित हो रहा हूं; इस कारण यहांके किसी २ वैद्यने कहा है कि यदि तुम हंसका मांस भक्षण करोगे तौ शीघ्रही तुमको आरोग्य हो जायगा. इसी कारण मैंने हंसभी पकडकर मंगाये हैं; तब भगवान् वैद्यरूपने कहा कि आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें आप आरोग्य अतिशीघ्र हो जांयगे; परन्तु इन पक्षियोंका बंधनमें रखना किसी प्रकारभी उचित नहीं, इनको आप छोड दीजिये. राजाने यह पक्षी बहुतही खोज करके मगाये इस कारण उनको छोडनेमें अत्यन्तही सदेह हुआ. यह देखकर वैद्यजीने कुछ औषधि उनकी देहपर लगाई राजाका शरीर सुवर्णकी समान उज्ज्वल हो गया; तब तो राजा अत्यन्तही प्रसन्न हुआ, और हंसोंको तत्काल छोड दिया; तब फिर राजा वैद्यजीसे हाथ जोडकर कहने लगा कि महाराज ! मेरे पास यह जो कुछ धन द्रव्य है वह समस्तही आपका है इसमेंसे जो तुम्हारी इच्छा हो सो लीजिये; तब वैद्यजी बोले कि राजन् ! मुझे किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं है. परन्तु मेरा यह अभिप्राय है; कि यह मनुष्यदेह बडी कठिनतासे मिलती है; सो तुम साधुओंकी सेवा और भगवान्की भक्ति करके इसको सुफल करो. राजाने यह वार्ता सुन अत्यन्त प्रसन्नताके साथ साधुओंकी सेवा और भगवान्की

भक्ति करनी स्वीकार कर ली उस राजाका भगवान्के दर्शन करनेसे अंतःकरण निर्मल हो गया था. वह ऐसा भक्त हुआ कि समस्त संसारमें भक्तिका प्रचार हो गया. यह हंसप्रसंग जो है सो अत्यन्तही विचारनेके योग्य है. क्योंकि देखो जिसकी भक्ति पक्षीभी इस प्रकार करते हैं. यदि जो मनुष्य भगवान्की भक्ति करनेसे विमुख हो तो वह पक्षियोंसेभी बुरा है क्योंकि मनुष्य तो बुद्धिमान् और चतुर होता है.

अथ

सातवीं निष्ठा गुरुमहिमाके विषय।

(इसमें ग्यारह भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी गोपदरेखाको दंडवत् करके पृथुके अवतारको प्रणाम करता हूं कि जिसने अयोध्याजीमें प्रगट होकर समस्त धर्मोंको पुनः उत्पन्न किया और पृथ्वीको एकसा करके उसमेंसे औषधी इत्यादिक निकाली. शास्त्रका वाक्य है कि गुरु तीन हैं प्रथम तो गुरु पिता, दूसरा संस्कारकर्ता जिसने कि यज्ञोपवीत इत्यादि दिया हो. तीसरा जो कि भगवान्का मंत्र और ज्ञानका उपदेश दे; और एक वाक्यके अनुसार स्त्रीका गुरुभी पति है सो यद्यपि वह महिमा और अधिकारमें सबसे बडा है परन्तु इस निष्ठामें उस गुरुका वर्णन होगा जो भगवान्के प्राप्त होनेके कारण किया जाय. अब विचारना चाहिये कि सर्व वेद और शास्त्रोंका तात्पर्य यही है कि गुरु और भगवान्में कुछ अंतर नहीं करना चाहिये भागवतके

एकादशस्कंधमें भगवान्ने कहा है कि गुरुको मेराही रूप जाने. भक्तमालके बनानेवालेने कहा है कि कामी, लोभी, मूर्ख, क्रोधी, कुरूप क्यों न हो उसको भगवान्काही रूप विचारना चाहिये. किसी पुराणमें कथा है कि गुरु कामी है तो कृष्णस्वरूप हैं क्रोधी है तोभी नृसिंहरूप, लोभी वामनस्वरूप और धर्मात्मा तो रामस्वरूप जानना चाहिये. भागवतमें लिखा है कि जो पुरुष भगवान्के ज्ञान देनेवालेको सब मनुष्योंकी समान जानता है । उसकी बुद्धि हाथीकी समान है जैसे कि स्नान करके शिरपर धूल गेरता है. हमने आजतक कोई राजा राव देखा अथवा सुना नहीं जो कि विना गुरुके ईश्वरको प्राप्त हुआ हो. विचारना चाहिये कि विना गुरुके विद्याभी नहीं आ सकती तो विना गुरुके भगवान् कैसे मिल सकते हैं ? महाभारतमें लिखा है कि जो पुरुष जबतक गुरु नहीं करते उनको कुछभी नहीं मिलता; इस कारण गुरु करना आवश्यक है, और ऐसा लिखाभी है कि वेद, पुराण, जप, तप यह समस्तही गुरुके विना किसी अर्थके नहीं और वेदकीभी आज्ञा है कि जो गुरुके उपदेश विना पूजा इत्यादि करते हैं वह सबही निष्फल हैं. इसलिये ऊपर लिखे हुए इतिहास और वाक्योंके अनुसार आवश्यक है कि यदि भगवान्की भक्तिकी इच्छा है तो गुरुकी शरण हो. कई एक जातियोंमें यह रीति है कि संस्कारके पीछे गुरु नहीं करते सो दूसरे गुरुकी आवश्यकता है. यहांपर ज्ञानि और लब्धके विषयमें एक दृष्टान्त इस समय स्मरण हो आया; कि एक अंधेरी कोठरीमें एक महिन सुई धरी है; उसको एक तो यह जानता कि सुई इस कोठेहीमें धरी है; और दूसरेको इतना ज्ञान है कि अमुक दिशा और अमुक कोणमें और अमुक दिशामें पृथ्वीसे इतनी ऊंची दिवालमें गडी हुई है; सो दोनोंके शिष्य उस सुईके ढूंढनेको गये. पहले पुरुषका शिष्य तो ढूंढता हुआ फिरने

लगा; यदि जो मिल गई तौ अच्छा नहीं तौ डांवाडोल फिरकर उल-टा चला आया, ढूंढता रहा तौ क्या जाने मिली या नहीं और यदि मिलभी गई तौ कबतक और दूसरेका शिष्य अपने गुरुके बताये हुए पतेसे सीधा चला गया; और विना परिश्रमकेही सुईको तत्काल ले आया. इसका अभिप्राय यह है, कि यज्ञोपवीत आदि संस्कार हो जानेके पश्चात् जब कुछ समझ आ जावे तौ भगवान्के मार्ग जाननेवालेको गुरु करना अवश्य है. गुरु विना कुछभी नहीं हो सकता; और यदि उस गुरुसे कुछभी संदेह रह जाय और वह अपने मनोरथको नहीं पहुँचे तौ दूसरे गुरु करनेमें कुछभी हानि नहीं. शास्त्रकी आज्ञा है कि जिस प्रकार दत्तात्रेयजीने चौबीस गुरु किये; शास्त्रोंमें गुरु चेलेके धर्म तौ बहुधा पाये जाते हैं, परन्तु गुरुके चार धर्म मुख्य हैं एक तौ शास्त्रोंका ज्ञाता हो, दूसरे भगवान्का भक्त, तीसरे समदर्शी अर्थात् सबको समान देखनेवाला, चौथे वेदके अनुसार कर्म करनेवाला, तिसके उपरान्त एक धर्म सभी स्थानोंपर एकही लिखा है कि गुरु अज्ञानताको दूर करनेके लिये है. सो जिस प्रकार हो सके शिष्यको भगवान्की शरण कर दे; और गुरुशब्दका अर्थही इस बातकी साक्षी देता है, कि गुरु जो अज्ञानका अंधकार है उसको निवृत्त करे वही गुरु है, इसी प्रकार शिष्यके चार धर्म हैं. प्रथम तो गुरुकी सेवा तन मनसे, दूसरे सेवाकी समय भोगका त्याग, तीसरे गर्व गुमानका त्याग, चौथे गुरुके वाक्यमें पूर्ण विश्वास, इसमेंसे दो धर्म तो मेरे विचारमें मुख्य हैं, एक तो सेवा दूसरी विश्वास क्यों कि यह दोनों धर्म स्थिर होंगे तौ शेष धर्म आपसे आपही हो जांयगे. जिस प्रकार वेद शास्त्रकी आज्ञा है कि जिसकी भगवान्में भक्ति है और उतनीही गुरुमें है तौ उस महात्माके सब मनोरथ आपसे आपही सिद्ध हो जाते हैं. सो वह विश्वास इतना होना चाहिये कि जितना भगवान्के भक्तोंको

भगवान्‌में होता है, और सेवा इस प्रकारकी करनी चाहिये कि जैसी सेवा अज्ञानी अपने देहकी करते हैं. महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है कि धूम्र ऋषिके चार शिष्य थे. चारोंही गुरुकी सेवा विश्वासके द्वारा किया करते थे. वह केवल गुरुके आशीशसेही सब शास्त्रोंके ज्ञाता और इस लोक और परलोकके मनोरथोंके पाने-वाले हो गये. जो यह संदेह किया जाय कि परिश्रमविना केवल श्रद्धाके द्वारा सर्व विद्या आदि पद किस प्रकार प्राप्त हुए तौ इसका उत्तर यह है कि गुरुमें जो विश्वास किया तौ भगवान्‌ही रूप जानकर किया, सो भगवान्‌ने गुरुद्वारेहीसे मनोरथ सिद्ध किया. तिसके उपरान्त कई स्थानपर यह लिखा है कि अमुक ऋषिके स्थानका यह प्रताप था कि सिंह बकरीको भक्षण नहीं कर सकता सो कहीं सिंहकाभी यह स्वभाव होता है कि वह दयावान् हो; परन्तु वह बल और दया उस ऋषिकी है जो कि सिंहके मनमें अपना प्रभाव किया; इसी प्रकार गुरुभी अपने प्रतापसे एक क्षणभरमें मनइच्छित स्थानपर पहुँचा देते हैं बहुधा ऐसा हुआ और होता है कुछभी आ-श्चर्य नहीं क्योंकि निर्मल जल तत्कालही मैले वस्त्रका मैल अलग कर देता है, इसी प्रकार आशीर्वाद और शाप तत्कालही फलीभूत होता है. इस लेख और कथाओंसे ऐसाभी जान पडता है कि गुरु ऐश्वर्यमान् चाहिये परन्तु इस समयमें ऐसे गुरु नहीं मिलते, परन्तु ऐसे हैं कि उनको केवल द्रव्यही कमानेसे प्रयोजन है. चाहे शिष्य नरकमें जाय चाहे स्वर्गमें; वह छः महीने अथवा वर्षरोजमें आये और जो कुछ उनके हाथ लगा सो सबही ले गये, और यदि किसी चेलेने जो उनका संदेह निवृत्त करनेके लिये कोई प्रश्न करा तौ उसका उत्तर देना तौ कहां था बिचारे शिष्यको इस दुःखसे पीछा छुटानाभी कठिन हो गया कि गुरुजी झगडा करानेको दूषण लगाने

लगे, और शिष्योंकी तो यह दशा है कि गुरुओंकी निष्ठा जो मंगलकारी थी सो सर्वथा मानो लोपही कर दी है. जिनसे ज्ञान प्राप्त होता है जिनके पास पढते हैं उन्हींको कहते हैं. कि हमने पढाया है, प्रत्युत शिष्य गुरुजनोंको सावधान करते हैं. दैवकी गतिसे कलिकालने अपना प्रभाव जनसमुदायोंमें फैला दिया है. कलियुगी मिथ्या आचार्य नामधारी चेलोंने गुरुजनोंकी निन्दा करनेसेही मानो अपनेको सिद्ध समझा है, चार अक्षर पढकरही जो अपने आपको गुरुओंका गुरु जानते हैं, उनको भलाई सिद्ध किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? और यही कारण है कि यह स्वार्थपरायण वृथा नामधारी दम्भी पाखण्डनिरत, गुरुओंके छिपानेवाले, मिथ्यावादी शिष्य गुरुजनोंसे यथार्थ विद्या पानेसे वंचित रह जाते हैं. इसी कारण शास्त्रोंमें कहा है कि विद्या आस्तिक भक्त शिष्यको देनेसेही फलीभूत होती है, अन्यथा "ऊसर बीज बुये फल यथा" हमारी देखी बात है कि जिनसे आजकलके शिष्य विद्या ज्ञान पाते हैं, उन्हींको दूसरेके सामने बैठकर कहते हैं कि हम पढते नहीं हैं किन्तु पढाते हैं ऐसा शब्द कहनेमें उनकी इंद्रियोंकी शक्ति क्यों नहीं ह्रास होती. ऐसे असत्यसंध कुमार्गी जनोंको भगवती वसुधा किस प्रकार धारण करती है, धारण धरणी नहीं करती किन्तु कलिकल्मषही उनको पापकुण्ड पूर्ण करनेके निमित्त धारण करता है और इसी अपराधसे सरस्वती भारतवर्षको त्याग रही है. जो हो इस समय प्रायः कर्म धर्म लोप होकर जगत्में अनिष्ट फैल रहा है जब कि सबकी मूलविद्याकी यह दशा है तो यह धर्म कैसे ठहर सकता है. जब कभी गुरुने उपदेश दिया तो गुरुजीकी शिक्षाको नहीं मानते. मंत्रके जप करनेका तो प्रयोजनही क्या है और जो दैवयोगसे वर्ष दो वर्षमें कहींसे रमते हुए गुरुजी आगये तो

यमराजकेसे दूत दृष्टि आये, कारण कि यह चार पांच दिन रहकर मन इच्छित भोजन मांगेंगे फिर कुछ दक्षिणाभी देनी होगी. जब इस समयके गुरु और शिष्योंकी यह दशा है तो जो बात शिष्यके वशी करनेकी लिखी गई वह सब वृथा है, इसलिये विचारना चाहिये गुरु तौ बहुत मिलते हैं, परन्तु चेलोंकी आंख बंद हैं कि जिससे उनको देखें और किञ्चित् परलोकका भय करके गुरु और परमेश्वरकी खोज करेगा सोई पावेगा, और जब घरमें अथवा बाहर पैर नहीं धरा जाता और परलोकका भय नहीं. और न भगवान्के प्राप्त होनेकी इच्छा है तो गुरु कदापि नहीं मिलनेके. कहीं किसीको छप्पर फाडकरभी धन मिला है, इस लिखनेका कोई यह तात्पर्य न समझे कि गुरु ऐश्वर्य-मान् मिले तौही गुरु करें वरन वर्तमान दशाको देखकर इसका मुख्य अभिप्राय यह है कि गुरु अवश्यही करना चाहिये चाहे जैसा मिले केवल इतना अवश्य देख लेना उचित है कि उपासनाका जाननेवाला हो और उसको जो मंत्र कहा हुआ है वह किसी गुरुकी शिक्षासे हुआ हो अर्थात् वह किसीका शिष्य हो; यह न हो कि उसने कोई पुस्तक देखकर स्वयं मंत्र सिद्ध कर लिया हो वही उपदेश कर लिया और चेला बना लिया, और उस गुरुके किये वाक्यपर इतनी श्रद्धा हो कि कभी मन चलायमान न हो तो वह गुरुही उस पुरुषको इस असार संसारसमुद्रके पार उतार देगा उस गुरुके कर्म चाहे बुरे हों अथवा भले हों परन्तु इस पुरुषके लिये उसके सबही कर्म ऐश्वर्यमान् और भगवान्के कर्मोंकी समान हो जांयगे कारण कि वह पूर्ण विश्वास जो उसमें है मार्गका दिखानेवाला इस लोक परलोकके सब मनोरथ सिद्ध करेगा. और जो श्रद्धा न होगी तो कैसाही ऐश्वर्यमान् मिलो कुछभी प्राप्त न होगा. निदान गुरुके वाक्य और गुरुमें विश्वास करनाही मोक्षदायक है, और उसके

विना निःसंदेह नरकगामी होता है. अब विचारना चाहिये यदि आदमी ईश्वरसे विमुख हो तौ गुरुकी सहायतासे ईश्वर मिल सकता है; और यदि गुरु न किया अथवा उसके वाक्यपर विश्वास नहीं तौ फिर क्या ठिकाना है? बहुधा ऐसा हुआ है कि शिष्योंकी श्रद्धाके प्रतापसे गुरुभी तर गये हैं सो कितनेही गुरु और भक्तोंकी कथासे जो कि इस निष्ठामें लिखी जायगी उससे जाना जायगा. तिसके उपरान्त एक यह वृत्तान्त है कि किसी एक क्षत्रीके लडकेने अपने गुरुसे सुना कि श्रीनंदनंदन महाराज सर्वदा व्रजमें वास करते हैं और कहीं नहीं जाते, और जो मनसे उनको ढूंढे तौ उसको मिलभी जाते हैं. यह लडका अत्यन्तही दर्शनोंका अभिलाषी होकर व्रजमें गया और ढूंढा तौ कुछ पता नहीं लगा. उसने लोगोंसे पूछा कि श्रीकृष्णमहाराज कहां हैं, तौ किसीने तौ गोलोकमें और किसीने वैकुंठलोकमें बताया, और किसीने कहा कि है तौ व्रजहीमें परन्तु किसीको दीखते नहीं, और किसीने कहा कि परमधामको गये; पर इस लडकेको किसी बातपरभी विश्वास न हुआ और बोला कि मेरे गुरुका वचन कदाचित् झूंठ नहीं परन्तु मेरेही ढूंढनेमें दोष है. निदान वह खाना और पीना शयन इत्यादि छोडकर ढूंढनेमें लगा, जब उसको विनाजलपान किये और शयन किये कई दिन व्यतीत हो गये और वह फिरताही रहा; तौ दीनदयाल, करुणाकर तत्कालही प्रगट हुए, और उस लडकेके समीप आकर कहा कि जिसको तू ढूंढता फिरता है वह मैं हूं, वह लडका इतने यह वचन सुन अत्यन्तही मनोहर मूर्तिको देख इनके चरणोंपर गिर पडा और हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगा कि निःसंदेह आप वही हैं; जिसे मैं ढूंढता था परन्तु मैंने सुना है कि आप चोर और छलिया गिने जाते हैं इस कारण जबतक मेरे गुरु तुमको पहचानकर साक्षी न करेंगे तबतक मैं नहीं मानूंगा, भक्तवत्सल महाराज उसके प्रेमके

विवश होकर इसका कुछभी उत्तर न दे सके और उसके साथ हो लिये; उसने समझा कि यह कहीं भाग न जांय इस कारण उनका खूबही जोरसे हाथ पकड लिया. निदान जहां उसका गुरु था वहांपर पहुँचे, अर्ध-रात्रिका समय था; और गुरुमहाशय छतके ऊपर शयन कर रहे थे. इस लडकेने पुकारकर कहा कि हे महाराज ! मैं श्यामसुन्दर व्रजमोहन महाराजको लाया हूं आप इनको पहचान लीजिये. जब उस लडकेने कई वार पुकारा तो गुरुजीको खबर हुई उन्होंने विचारा कि यह श्याम-सुन्दर व्रजमोहन महाराजको कहांसे लाया होगा परन्तु उनके आभूषण और मुखारविंदका प्रकाश उनके कोठेके रोशनदानमें दृष्टि आया तो वह तत्काल घबडाकर उठे और खिडकीमेंसे झांककर देखा तो प्रत्यक्षही नटनागर घनश्याम व्रजकिशोर खडे हुए हैं, उनके मुखारविंदकी चमकसे चारों ओर चांदना हो रहा है, और घूंघरवाली अलकें उनके मुखारविंदपर छूटी हुई शोभाको बढा रही हैं, उनकी अलसीली आंखोंमें काजल शोभित है, शिरपर मोरमुकुट रत्नोंसे जटित शोभा दे रहा है. कानोंमें कुंडल कि उसके मोतियोंकी झलक कपोलोंमें और कपोलोंकी झलक मोतियोंपर पडती है, नाकमें एक छोटासा वेसर है, गलेमें पचरंगी माला पडी हुई अत्यन्तही शोभा बढा रही है. उनके सुकुमार अंगपर जरीका बागा और उसमें मुक्तेशके मोती पिरोकर गोपियोंने लगा दिये हैं. उसके ऊपर जडाऊ हेकल झलक रही है, जरदोजीके घानी दुपट्टेसे कमर बंधी हुई है, हाथोंमें कंगन और पहुँची, बाहोंमें जडाऊ बाजूबंद शोभा दे रहे हैं, उंगलियोंमें अंगूठी पहरे हैं, छुटला गुल वदनका; उसपर गोटे टप्पेकी गुलकारी और बेलबूटा बन रहा है. चरणकम-लोंमें महावर लगी हुई है; उसमें घूंघरू और कडे पहरे हुए हैं. एक समय किसी गोपिकाके साथ कुछ छेड छाड करी थी तो उसने

केशरके छींटे दे दिये थे, वहभी मुखपर लगे हुए हैं और उस गोपिकाके छेडने और उत्तर पानेकी हँसी अबतक नहीं जाती है, फूल अगर-पर गुंथे हुए हैं, मुरली फैंटपर है. निदान गुरुजी ऐसी छबिको देख-कर तत्कालही पुकार उठे कि अरे बालक तू कैसी ढिठाईसे इनका हाथ पकड रहा है; यह नंदनंदन महाराज पूर्णब्रह्म सच्चिदा-नंद घनश्याम हैं, और मैंभी अभी आता हूं, यह कहकर गुरुजी तो आतेही रहे आप महाराज उस लडकेके साथ तत्काल वहांसे अंतर्ध्यान हो गये. जब गुरुजी नीचे उतरकर आये तो उनको कुछभी नहीं दृष्टि आया, वह कभी तो अपने शिष्यके विश्वास पर दृष्टि करके अपनेको धिक्कारते, कभी दर्शन पानेके कारण अपने सौभा-ग्यपर धन्यवाद देते; निदान इसी चिन्तामें वह त्यागी हो गये, और अपने शिष्यकी श्रद्धाकी सहायतासे भगवान्‌को प्राप्त हो गये, सो गुरुमें विश्वास करनाही मोक्षका देनेवाला है, और सर्व शास्त्र पुराण और स्मृति इत्यादिकी आज्ञा है कि मनकी पूर्ण श्रद्धासे गुरुको भगवान्‌के अवतारकी विभूति जाने; अरे अज्ञान मूर्ख मन! कभी उस स्वरूपकाभी तो ध्यान कर कि जिसका अभी वर्णन किया है. विचार लो कि भगवान्‌के चरणकमलोंके विना कहीं किसीको कुछभी प्राप्त हुआ है ? उनके चरणकमलोंकी रजको ब्रह्मादिक देवता अपने शीशपर चढाकर अपनी सौभाग्यता समझते हैं और तू ऐसा अचेत हो रहा है कि कभी स्वप्नमेंभी ध्यान नहीं करता, सो तेरी निर्भागताके सिवाय और क्या जाना जाय. अबभी समझ और कृपा करके उस रूप अनूपका चिंतवन किया कर सबसे प्रथम तेरीही नौका पार होगी,

पादपद्माचार्यकी कथा १.

पादपद्माचार्यजी भगवान्‌के परम भक्त हुए, वह सर्वदा गंगा-

जीके तटपर गुरुकी सेवा किया करते थे. एक समय उनके गुरु तीर्थयात्राके लिये गये, और पद्माचार्यजीको यह आज्ञा दे गये कि तुम साधुओंकी सेवा भली प्रकारसे करना. तब पद्माचार्यजी गुरुके वियोग हो जानेसे अत्यन्तही उदास हुए, तब गुरुजीने कहा कि गंगाजीको हमारी जगह चिंतवन करना. पद्माचार्यजी गुरुकी आज्ञानुसार गंगाजीकी पूजा करने लगे और मानभावकी रीतिसे जलमें पैर तकभी नहीं देते थे, और जो स्नानादि क्रिया करते सो कूपके जलसे कर लेते थे. साधुओंने उनकी यह रीति देख यह बात अनुचित समझी और जब उनके गुरु आये तब उन्होंने उनसे निन्दाभी करी. गुरुजी अपने हृदयकी निर्मलतासे पद्माचार्यकी अंतःकरणकी वृत्तिको जान गये; परन्तु उन्होंने विचारा कि इन लोगोंका संदेह किस प्रकार निवृत्त हो ? यह विचार कर एक दिन यह गंगाजीको स्नान करनेके लिये जाते थ तो इन्होंने अपने साथ पद्माचार्यजीकोभी लिया, और जब गंगाजीके भीतर स्नान करनेको गये तो इन्होंने जलमेंसेही अंगोछा जाता मांगा. तब पद्माचार्यजी विचारने लगे कि यदि अंगोछा लेकर जाता हूं तो गंगाजीका अपमान होता है कारण कि वह गुरुस्वरूप हैं; और जो नहीं जाता हूं तो गुरुकी आज्ञा भंग होती है वह इसी संदेहहीमें थे कि गंगाजीमेंसे कमल उत्पन्न हुए और पद्माचार्यजी उनपर चरण रखते अंगोछा लेकर गुरुजीके समीप गये; और अंगोछा देकर उसी प्रकार उलटे लौट आये और किनारेपर आकर खडे हो गये. जब गुरुजीने पद्माचार्यजीकी भक्तिका ऐसा प्रचार देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उनको छातीसे लगाया फिर उनके चरण पकड लिये और पादपद्मचार्य नाम दिया.

विष्णुपुरीकी कथा २.

विष्णुपुरी नाम भगवान्की भक्ति करनेमें और भागवतधर्ममें

अद्वितीय हुए कि जिस प्रकार सुवर्णके समीप और सब धातुओंकी कांति तुच्छ ज्ञात होती है. इसी प्रकार उनके भागवतधर्मके अगाडि और समस्त धर्म तुच्छ विदित होते थे, और वह सत्संगति करनेमें इस प्रकारके हुए कि उनकी स्थिरता भक्तिसेभी विशेष हुई. जो श्रीमद्भागवत समुद्रकी समान है उसमेंसे अमोलक रत्न अर्थात् श्लोकोंको संक्षेपसे निकाला; जो कलियुगके जीव भागवत धर्मरूपी धनसे निर्धन हैं उनको निहाल कर दिया. यह विष्णुपुरीजी माध्वीसंप्रदायमें चेले श्रीकृष्णचैतन्य शिष्य जगन्नाथपुरीमें हुए. एक दिन कुछ बातोंही बातोंमें साधुओंने तर्क किया कि विष्णुपुरी काशीजीमें इस मनोरथसे रहता है कि काशीमें मोक्ष हो जाती है; तब उनके गुरुने उत्तर दिया कि यह बात कदापि संभव नहीं. विष्णुपुरीको न काशीसे काम है न किसी देवतासे; उसको सिवाय श्रीकृष्णस्वामिजीके चरणकमलोंके और किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं, वह भूलकरभी कहीं नहीं जाता, और जो वह आजकल काशीमें ठहरा है सो केवल सत्संगतिके कारण ठहरा है. गुरुजीकी यह वार्ता सुनकर लोगोंको विश्वास न हुआ, उन्होंने एक चिट्ठी विष्णुपुरीजीके नाम भेजी उसमें लिखा कि हमको रत्नोंकी मालाकी आवश्यकता है; तब विष्णुपुरीजीने अपने गुरुके मनकी बात समझ ली और भागवतसमुद्रसे पांच सौ रत्न अर्थात् श्लोकोंको संक्षेप करके भगवद्रत्नावली नाम धरके अपने गुरुके पास भेज दी. साधुओंने उसको पढा और सुना, और भगवद्ध्यानभक्तिके रसमें मग्न हुए तौ विश्वास हुआ कि विष्णुपुरीजी सब अन्य भक्तोंमें श्रेष्ठ अधिकारके भक्त हैं, और इसी प्रकार गुरुनिष्ठामें जानना चाहिये कि भक्तरत्नावलीसे तेरह अध्याय हैं एक दो २ अध्यायमें नई रीतिसे भगवान्की भक्ति और ध्यान और वैरागका वर्णन है.

पृथ्वीराजजीकी कथा ३.

पृथ्वीराज कछवाये अमेरके राजा ऐसे भगवान्के भक्त हुए कि उन्होंने द्वारिकानाथ महाराजजीके दर्शन पाये, और कृष्णदासजीकी कृपासे बहुत धर्मोंके जाननेवाले और उनके सार तद्रूप हुए; निर्गुण और सगुणकी भगवान्की उपासना है उनके पूर्ण ज्ञाता थे भीष्म पिताकी समान निर्दोष और राजा युधिष्ठिरकी समान धर्मात्मा और प्रह्लादजी समान भगवान्की पूजा करनेवाले हुए. यह घरमें बैठे थे कि उसी समय इनकी देहपर शंख चक्र आपहीसे आप प्रगट हुए. निदान यह धर्ममें शिरोमणि जिस प्रकार कृष्णदासजीके शिष्य हुए वह वृत्तान्त कृष्णदासजीकी कथामें वर्णन हो चुका है; जब कृष्णदासजी द्वारिकाको गये तौ राजाने उनके साथ जानेकी अभिलाषा करी; तब कृष्णदासजीने कहा कि अच्छा तुमभी चलो, तब तो राजा अपने जानेकी तैयारी करने लगा. मंत्रियोंने विचारा कि यदि राजा चले जांयगे तौ इनके जानेसे राज्यमें हानि होगी, यह विचार कर उन्होंने कृष्णदासजीसे कहा कि महाराज ! इस प्रजाने राजासे भगवान्की भक्ति और साधुओंकी सेवाका प्रचार पाया सो जो यदि राजा द्वारकाको चले जांयगे तौ इसमें भंग पड जायगा, तब कृष्णदासजीने राजासे कहा कि राजन् ; तुम अपने देशमें रहो, तब राजाने उदास हो प्रार्थना करी कि महाराज ! आपके साथ जानेसे मुझको द्वारिकानाथके दर्शनकी और गोमतीजीके स्नानकी और भगवान्के शास्त्रोंकी अर्थात् छाप लेनेकी प्राप्ति थी और उसमें एक यह बात विशेष थी कि आपके चरणोंकी सेवा किया करता; अब मैं इन सम्पूर्ण सुखोंसे वंचित रहता हूं, कृष्णदासजीने कहा कि हे राजन् ! इस बातकी कुछ चिन्ता मत करो यह संपूर्ण पदार्थ तुमको यहांभी प्राप्त हो जांयगे, यह कहकर धीरज बंधाय वहांसे आप

चल दिये. राजाको अपने गुरुके साथ न जानेसे महान् दुःख हुआ, और वह व्याकुल होकर रुदन करने लगा. तीन दिनके उपरान्त अर्धरात्रिके समय राजाने कृष्णदासजीकी आवाज सुनी तौ वह तत्काल दौडकर गया तौ क्या देखता है कि द्वारकानाथजी महाराज सन्मुख विराजमान हैं. राजाने प्रेमसे निर्मल चित्त हो दंडवत् और परिक्रमा करी, और फिर आज्ञानुसार गोमतीजीमें स्नान किया, फिर राजाने अपनी देहको देखा तौ उसमें शंख चक्रके चिह्न पाये; उसी समय रानीभी आ गई और राजाकी आज्ञासे गोमतीमें स्नान करके कृतार्थ हुई; फिर राजा और रानी अपने भाग्यकी बडाई करते हुए गुरु और भगवान्की कृपासे फूले अंग न समाये. प्रभातकोही यह चमत्कार और भगवान्की कृपा समस्त नगरमें विख्यात हो गया और सारी प्रजा और संत महंत दूर २ से राजाके दर्शनोंके लिये आये और राजाको विविध प्रकारकी भेंट दी, उस समय गुरुकी भक्ति और भगवद्भावका विश्वास हो गया. राजाने एक भगवान्का मंदिर बनवाया और भगवान्की मूर्ति स्थापन करके सेवा पूजामें दिन रात लवलीन रहा. एक अंधा ब्राह्मण बहुत समयतक वैजनाथजीके मंदिरमें पडा रहा, कइ वार उससे कहा कि अब तेरी आंखोंमें ज्योति होनी अत्यन्तही कठिन है, परंतु उसने उस द्वारको नहीं छोडा, तब आशुतोष शिवजी महाराजने कहा कि पृथ्वीराजका अंगोछा आंखोंमें मलनेसे आंखें खुल जायगीं. ब्राह्मणने आकर राजासे कहा प्रथम तौ राजाने विचारा कि अपने अंगका अंगोछा ब्राह्मणको कैसे दूं परन्तु दया और परोपकारकी दृष्टिसे नवा कपडा मंगाया और उसको अपनी देहमें लगाकर फिर ब्राह्मणको दिया, उसने जभी आंखोंपर लगाया कि तत्काल उसकी आंखें खुल गईं और भगवान्की भक्तिमें श्रद्धावान् होकर भगवान्की शरण हुआ.

तत्वा जीवाकी कथा ४.

तत्वा और जीवा दोनों भाई ब्राह्मण पद्मनाभ जो कि देशको कमलकी समान है, खिलाते हुए अर्थात् भक्ति करनेके कारण सूर्यकी समान हुए अथवा जो भगवान्की भक्ति अमृतका समुद्र है उसके दो तट हुए जिनके प्रतापसे भक्तोंके भाव और भक्तिका परम आनंद नित्य प्रति वृद्धिको प्राप्त हुआ. रघुकुलवाले स्वभाव दयादातार बुद्धिमानी निर्मल हृदय अनन्यभक्त भगवान्के विख्यात हैं, और अपना भाव औरोंकी समान नहीं रखते; अनन्य रखते हैं उसी प्रकार यह दोनों भाई हुए. साधुसेवानिष्ठाकी तौ प्रशंसा नहीं हो सकती, उनका यह प्रण था कि जिस साधुके चरणामृतसे सूखी लकडी जो द्वारपर खडी कर रखी थी हरी हो जाय तौ उसीको गुरु करेंगे. निदान वह लकडी कबीरजीके चरणामृतसे हरी हो गई. कबीरजीने प्रथम तौ शिष्य नहीं किया परन्तु जब दोनों भाइयोंकी प्रीति अत्यन्तही देखी तौ उनको नाम मंत्र उपदेश कर दिया; और अपने जानेके समय कहा कि तुमपर कभी संकट उपस्थित हो तभी हमें याद कर लेना. तब जातिके ब्राह्मणोंने जुलाहेके शिष्य होनेसे, उन दोनों भाइयोंको जातिसे निकाल दिया और उनकी कन्यासे सम्बन्ध नहीं किया; इसमें बडा शोक हुआ, तब इन्होंने एक पुरुष काशीजीको जाता था उसके द्वारा गुरुको यह वृत्तान्त कहला भेजा. कबीरजीने वहांसे कहला भेजा कि यह लोक भगवान्से विमुख हैं; तुम्हारे संबधके योग्य नहीं तुम दोनोंही भाई आपसमें अपनी संतानका सम्बन्ध कर लो. निदान गुरुदेवकी आज्ञानुसार ऐसाही करना चाहा तब फिर जातिवाले घब-डाये, और इकट्ठे होकर दोनों भाइयोंसे कहने लगे; ऐसा प्रचार करना तुमको कदापि उचित नहीं है तब उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे गुरुकी यही आज्ञा है उसके विरुद्ध नहीं करेंगे. तब उन लोगोंको यह विश्वास

देखकर श्रद्धा हुई; और फिर इस रीतिके दूर होनेके लिये प्रार्थना करी, फिर वह दोनों भाई अपने गुरु कबीरजीपर आये और उनसे समस्त वृत्तान्त कहा तब उन्होंने उत्तर दिया कि जो वे लोग भगवान्की भक्ति करें तौ कुछ हानि नहीं उनकाही कहना मानलो उन्होंने भगवान्की भक्ति करनी स्वीकार करी, और फिर समस्त बिरादरीवाले एकत्रित हुए और आपसमें सम्बन्ध होने लगा. भगवद्भक्तोंका समाज प्रताप भक्ति श्रद्धा दोनों भाइयोंकी देखकर और लोगभी भगवान्की शरण हो गये.

खोजीजीकी कथा ९.

खोजी परम भगवान्के भक्त हुए, वह गुरुको भगवान्की समान जानते थे, उनके गुरुने एक घंटा अपने स्थानपर लटका दिया था और शिष्योंको समझाया कि जब हम भगवान्के परम धामको जांयगे तब यह घंटा शब्द करेगा. जब उनके गुरुजीने देह त्यागन किया तब घंटेका शब्द न हुआ; तब सभी शिष्योंको खोज हुआ परन्तु उस समय खोजी नहीं थे, जब वह आये और यह वार्ता सुनी तौ जिस स्थानपर गुरुने देह त्याग किया था वहां लेट गये और उन्होंने देखा कि दृष्टिके समीप एक पका हुआ आम लटक रहा है, उन्होंने उठकर उस आमको देखा और बनाया तौ उसमें एक कीडा बैठा था वह कीडा उसी समय मर गया और घंटेने बहुतही शब्द किया. उस घंटेके शब्दको सुनकर सबको निश्चय हो गया कि गुरुजी परम धामको गये. गुरुजी बडेही सिद्ध पुरुष थे कि जिन्होंने मरनेसे प्रथम अपना परम धामको जाना बता दिया; और इच्छापूर्वक इसकी साक्षी यह घंटा दे रहा है. किसी कारणसे गुरुजीने अपने शिष्योंको इस बातका दर्शन देना उचित समझा था, कि मृत्युकी समय जिसकी

रुचि जिस वस्तुमें होती है वह उसी भावको पहुँच जाता है कि भगवान्ने भगवद्गीतामें कहा उसको भली भांति दिखा दिया, वरन गुरुने यह चरित्र अपनी इच्छानुसार किया था. तीसरे गुरुका भक्तिभावभी प्रत्यक्ष हो गया कि अंतसमयमें उस आमको भगवान्के योग्य देखा सो देह त्यागन करके उस आममें जाकर भगवान्के अर्पण किया.

गुरुनिष्ठजीकी कथा. ६

एक गुरुनिष्ठ भगवान्के भक्त ऐसे हुए कि वह गुरुको ईश्वररूप जानकर पूजा और सेवा किया करते थे इसके अतिरिक्त उनको किसी साधु संतकी सेवामें श्रद्धा न थी, वरन उन्होंने यह विचार लिया था कि एक गुरुहीकी सेवा करनेसे सबकी सेवा हो जाती है, तब गुरुको यह चिन्ता हुई कि यह पुरुष जिस प्रकार हमारी सेवा करता है उसी प्रकार साधुओंकी सेवाभी करे तो अत्युत्तम हो, परन्तु उस शोचसे कि जाने यह स्वीकार करे या नहीं कभी उससे साधुसेवाके लिये नहीं कहा, और विचारा कि देखें यह हमारे वाक्यमें कितनी श्रद्धा रखता है इसकी परीक्षा करनी उचित है. एक समय गुरुनिष्ठ तीर्थयात्राके लिये तैयार हुआ तब गुरुजीने कहा कि जब तुम लौटकर आओगे तब हम तुमको कुछ शिक्षा देंगे. जिस दिन उनके यात्रासे आनेका दिन था उसी दिन अपने प्राण गुरुजीने त्यागन कर दिये,और लोग उनकी देहको दाह करनेके निमित्त ले गये. गुरुनिष्ठभी उसी समय आ पहुँचा और यह दशा देखकर बडा व्याकुल हुआ,और उसने दौडकर लोगोंसे कहा कि मेरे गुरुका वचन था कि तू जब उलटा आवेगा तब तुझको कुछ शिक्षा देंगे, सो मेरे गुरुका वचन कदाचित् झूंठ नहीं होता सो जबतक यह मुझको शिक्षा नहीं देंगे तबतक मैं दाहक्रिया नहीं करने दूंगा. निदान उसने बहुतही रुदन करा और अपने गुरुकी देहको

दाह न होने दिया अर्थीको उलटा ले आया, और सिंहासनपर बैठाकर प्रार्थना करी कि आपके वचनके अनुसार मैं शिक्षाका अभिलाषी हूं. गुरुजी उसकी श्रद्धासे अत्यन्तही प्रसन्न हुए, और जीवित होकर उसको साधुसेवाकी शिक्षा करी, तब गुरुनिष्ठने कहा कि आप तो परम धामको जाते हैं परन्तु यह तो कहो कि मेरी साधुसेवाको कौन देखेगा, और आप कैसे जानेंगे कि मैंने आपकी आज्ञानुसार काम किया, तब तो गुरुजी उसकी बुद्धिमानी और श्रद्धाको देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और एक वर्षतक और जीवित रहे.

घाटमजीकी कथा ७.

घाटमजी जातिके मींणे खोडीगांव जैपुरके राज्यमें है उसके रहनेवाले गुरुकी भक्ति और वचनके विश्वासे उस परमपदवीको प्राप्त हुए और वह कृतार्थ हो गये; और वह भगवान्‌के भक्तोंमें गिने गये ! उनको सर्वदा चोरी और बटमारीकाही उद्योग करता रहा था; एक वार वह विचारने लगे कि यह हमारी अवस्था चोरी करनेमेंही व्यतीत हुई, भगवान्‌का भजन किंचित्‌भी नहीं किया; मनुष्य और पशुमें क्या भेद है. अर्थात् जिस मनुष्यने भगवान्‌का भजन नहीं किया वह मनुष्य पशुकी समान है यह विचार कर वह एक भगवान्‌के भक्तके पास गये; उसने कहा कि तुम चोरी करना छोड दो, इन्होंने कहा कि चोरी तो मेरी आजीविका है इसको तो मैं कदापि नहीं छोडूंगा. हरिके भक्तने उससे कहा कि तू चोरी करनी तो छोड दे परन्तु उसके बदले यह चार बातें सीख ले, प्रथम यह कि सत्य बोलना, दूसरा साधुओंकी सेवा करना, भगवान्‌का भोग अर्पणके पीछे भोजन करना, चौथे भगवान्‌की आरतीमें जाना; तब उसने कहा कि ऐसाही करूंगा. तब उस हरिके भक्तने उनको

अपना शिष्य कर मंत्रका उपदेश दिया. घाटमजी अपने गुरुकी आज्ञानुसार कार्य करते रहे; उनको जो कुछ चोरीसे हाथ लगता वह सबही साधुओंकी सेवामें लगा देते. एक दिन भगवान्के भक्त आये परन्तु इनके घरमें उस समय कुछभी न था एक जगह नाजका ढेर पडा हुआ था वहांही गये. भगवान्की इच्छासे उस समय समस्त रखवाले अचेत हो गये; इन्होंने तत्काल वहांसे गेहूं चुरा लिये और घर लाकर साधुओंकी सेवा करी परन्तु उनको सेवा करनेके समय यह विचार हुआ कि ऐसा न हो कि कहीं.नाजके धनी खोज करते हुए यहांपर आ जाय और नाजको देखकर मुझे पकड ले तो साधुओंकी सेवामें हानि पहुँचेगी. उस समय अंतर्यामी भगवान्ने अपने भक्तकी चिन्ता निवृत्त होनेके लिये एक यह चरित्र किया कि बडीही जोरसे आंधी आई; और फिर खूब मेह वर्षा, तब फिर उस नाजकी कौन खोज करता कि किधरको उड गया; तब तो घाटमजीने निश्चिन्त हो भली प्रकार साधुओंकी सेवा करी एक समय घाटमके गुरुजीने भगवान्के उत्साहमें इनको बुलाया. इनके पास उस समय कुछभी द्रव्य न था क्योंकी जो कुछ इनके पास था वह समस्तही साधुओंकी सेवामें लगा चुके थे; इस कारण इनको अत्यन्तही चिन्ता हुई; विचार कर राजाके महलमें आये तो ड्योढीवानोंने पूछा कि तुम कौन हो महलमें क्यों गये थे ? घाटमजीने उत्तर दिया कि मैं चोर हूं, और नाम मेरा घाटम है. ड्योढीवानोंने विचारा कि यह वस्त्र तो सरदारोंकेसे पहर रहा है हँसीसे अपनेको चोर बताता है इस कारण इनके जानेमें कुछभी मनाइ नहीं करी, फिर इन्होंने भीतर जाकर घुडसालमेंसे एक बहुत अच्छा घोडा सब घोडोंमेंसे छांटकर लिया और उसपर सवार होकर चले. घोडेके रक्षकोंने इससे जब पूछा तब जो यह बात प्रथम कह आये थे वही अबभी कह दी

उन्होनें फिर नहीं रोका और यह घोडेपर सवार होकर अपने गुरुकी ओरको चले. संध्याके समय एक नगरमें भगवान्की आरती हो रही थी शंख और झांझका शब्द सुनकर यह वहांपर गये, और भगवान्के दर्शन कर उनके भजनमें लगे वहांपर जब राजाने चोरीका समाचार सुना तो कोतवालको सिपाहियोंके साथ भेजा. कोतवाल घोडेकी खोज करता हुआ वहां जा पहुँचा जहां कि मांदिरमें भगवान्की आरती हो रही थी और उसको निश्चय हो गया; कि चोर और घोडा इसी मांदिरके भीतर है; भक्तवत्सल दीनदयाल भगवान्ने विचारा कि यह कोतवाल मेरे भक्तको पकडकर दुःख देगा इस कारण घोडेका रंग श्वेत कर दिया. जब घाटमजी सवार होकर द्वारपर आये, तब कोतवालने देखा तो साथियोंके सहित घोडेका रंग श्वेत हो गया था; कोतवालने मनमें विचारा कि सब लक्षण तो इस घोडेके वही मिलते हैं परन्तु रंग उस घोडेकेसा नहीं है. हाय! मैंने इतना परिश्रम वृथा किया, देखिये राजा इस अपराधसे हमको क्या दंड देगा. घाटमजीने देखा कि यह अत्यन्तही व्याकुल हो रहे हैं; यह देखकर उनसे पूछा कि तुम कौन हो और मुझे देखकर क्यों उदास हो गये? कोतवाल साहबने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और यहभी कहा कि यदि जो घोडा नहीं मिलेगा तो राजा हमको जानसे मरवा डालेगा; जो कि भगवान्के भक्त हैं उनको दूसरोंका दुःख देखकर अपने तनमनकी सुध नहीं रहती, इसी कारण घाटमजीने तत्काल कहा कि मैं घोडेका चोर हूं, और यह जो घोडा है वह राजाकाही है, परन्तु भगवान्ने मेरी रक्षाके कारण इसका रंग श्वेत कर दिया; अब तुम निश्चिन्त रहो. मैं तुम्हारे राजाके पास घोडेको लेकर चलता हूं और तुम्हारी मृत्यु बचा दूंगा. निदान फिर वह सब जने वहांसे लौटकर राजाके समीप आये; कोतवालने समस्त

वृत्तान्त राजासे कह सुनाया; राजा भगवान्के भक्तोंकी महिमाको जानता था; तत्काल उठकर चला आया और घाटमजीके चरण पकड लिये फिर अपने अपराधोंकी क्षमा मांगने लगा और बोला कि मुझको जो कुछ तुम आज्ञा करो सो मैं कर लाऊं तब घाटम-जीने उसका आदर सत्कार करते हुए कहा कि इस घोडेके सिवाय और कुछभी मुझको नहीं चाहिये राजाने तत्कालही घोडेके सहित बहुतसा धन द्रव्य देकर उनको घोडा भेंट किया; घाटमजीको जो कुछ मिला था वह समस्तही अपने गुरुको भेंट कर दिया निःसंदेह भगवान्की भक्ति और भजनका ऐसाही प्रताप है. निदान भग-वान्ने स्वयं गीतामें लिखा है कि चाहे किसीके कर्म कितनेही खोटे हों परन्तु जो मेरा भजन करता है वह निःसन्देह मुझको प्राप्त हो जाता है; क्योंकि जो मूल अर्थ और सब शास्त्रोंका सार है उसको वह पहुँच गया; और निश्चयही बुरे कर्मभी शीघ्रही छूट जांयगे, और वह मुझको प्राप्त होगा. हे अर्जुन ! तू मेरी यह बात सत्यही जान; जो मेरा भक्त है वह कभी नाशको प्राप्त नहीं होगा.

नरवाहनजीकी कथा ८.

नरवाहनजी राधावल्लभी भोगांवके रहनेवाले हितहरिवंशजीके शिष्य और भगवान्के भक्त साधुओंकी सेवा करनेवाले हुए. उनको गुरुके चरणोंमें अत्यन्तही प्रीति थी और निश्चय मनसे गुरुके भक्त थे. एक दिन एक व्योपारीकी नौका लूटली, और उससे धन मांगा परन्तु उसने नहीं दिया; तब इन्होंने उसको कैद कर दिया; नरवा-हनजीकी जो दासी थी उसको उसके ऊपर दया आई और नित्य प्राति इसको भोजन पहुँचाया करती एक दिन उस दासीने उसको यह उपाय बताया कि तू अर्ध रात्रिके समय राधावल्लभ " हितहरि-

वंश" ऐसा शब्द पुकारकर कहना कि जिससे नरवाहनजी सुन ले और जो वह कुछ तुझसे पूछे तौ अपने आपको तू हितहरिवंशजीका शिष्य बताना. व्योपारीने उसी प्रकार किया नरवाहनजी राधावल्लभ और हितहरिवंशजीका नाम सुनतेही तत्काल दौडे हुए आये; और साहूकारको दंडवत् करके उससे पूछा कि तू कौन है, तब साहूकारने कहा कि मैं हितहरिवंशजीका शिष्य हूं और राधावल्लभजीका दास हूं यह सुनकर नरवाहनजी लज्जायमान हुए, और बहुत पछतावा करने लगे, और उसका समस्त धन दे दिया और अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना करी; और कहा कि तुम मेरे ज्येष्ठबंधु हो मुझको अपना लघुभ्राता जानकर मेरे ऊपर यह कृपा करो कि यह वृत्तान्त स्वामीजीको न विदित हो. व्योपारीने जब इस प्रकार भगवान्की भक्तिकी महिमा देखी तौ वह तत्कालही भगवान्की शरण हो गया; और गुसांई हितहरिवंशजीके पास आकर उनका शिष्य हो गया, तब गुसांईजीभी नरवाहनकी श्रद्धासे अति प्रसन्न हुए. यहांपर एक शंका हुई वह यह है कि एक कथा तो घाटमजीकी लिखी कि वह चोर हुए, और दूसरी नरवाहनजीकी कि वे लुटेरे हुए. विचार करो कि क्या भगवान्के भक्त चोरी और बटमारीको पाप नहीं समझते हैं. उसका उत्तर यह है कि भगवान्के भक्त निश्चय इन कामोंको अधर्म समझते हैं और उनके पास नहीं जाते वरन उनके समान कोई धर्मात्मा और सत्यवादी नहीं, और जो यह चरित्र घाटम और नरवाहनके लिखे गये हैं सो चोरीमें नहीं गिने जांयगे, भक्तोंका चोरी करना वैसाही है कि जिस प्रकार श्रीकृष्णमहाराजने माखनकी चोरी करी थी; और भिक्षा मांगना वामनजीके समान है, चोरी उसका नाम है. जो अपनी आत्माके लिये की जावे और उस धनसे अपने कुटुम्बकी पालना की जाय. अब यहांपर

एक शंका उत्पन्न हुई; कि भली प्रकार धन लूट ले और विधिपूर्वक साधुओंकी सेवा करे. उसका उत्तर यह है कि चोरी करके साधुओंकी सेवा करनी कदापि उचित नहीं. जो धन उत्तम और पवित्र है सोई साधुओंकी सेवामें लगानेके योग्य है; मेरा यह अभिप्राय नहीं था कि जिसको विचार कर शंका करी है; वरन मेरे कहनेका सारांश यह है कि जब मनकी निर्मलताको प्राप्त हो गया और यह संसार तुच्छ ज्ञात होने लगा, तौ भगवान्का भक्त जोभी काम करेगा सो सब उत्तम है. यदि वह चोरीभी करेगा तौ उसके पापसे वह भक्त नहीं पकडा जा सकता. श्रीमद्भगवद्गीताके पांचवें अध्याय और अठारहवें अध्यायका सत्रहवां श्लोक इस लेखका साक्षी है, और घाटमकी कथाभी इसीको प्रतिपादन करती है कि भगवान्ने खोज मिनाटेके लिये आंधीमें मेह वर्षा दिया, और घोडेका रंग श्वेत कर दिया. और अपने भक्तोंके कर्मोंको पुण्य समझकर उनकी सहायता करी इसी प्रकार सब धर्म कर्म भगवान्की भक्तिको प्राप्त होनेके निमित्त है; जिस कार्यके करनेसे भगवान्में भक्ति हो वह चोरी नहीं है; वरन और साधनोंके समान है, जिस प्रकार घाटम और नरवाहनसे भगवान् और गुरु प्रसन्न हुए थे; यदि वह चोर और लुटेरे होते तौ भगवान् क्यों प्रसन्न होते; इसके सिवाय समर्थवान्को कुछभी दोष नहीं होता. जिस प्रकार गंगाजीमें सब भांतिका जल पहुँचकर गंगाजलही हो जाता है; और प्रज्वलित अग्निसे समस्त वस्तुही अग्नि हो जाती है. अब विचारना चाहिये कि साधुओंकी सेवा वह परम उत्तम धर्म है कि जिसके कारण भगवान्के भक्तोंमें भगवान्का आभूषण उतारकर बेच दिया है; और कर्मोंका तौ क्या विचार है भगवान् स्वयं साहूकार होकर भक्तोंके हाथसे वटमारी कराते हैं और इस चरित्रसे अत्यन्तही प्रसन्न होते हैं. इसकी साक्षी हरिपाल

निष्कंचनकी कथा देती है. भगवान्‌की भक्ति करे तो निश्चय मनसे प्रीति और विश्वास और श्रद्धासे करे. अब घाटमजीकी श्रद्धाको विचारना चाहिये कि गुरुके वचनपर इतना दृढ विश्वास था कि जीवके जानेसेभी भय नहीं किया, और नरवाहनजीका विश्वासभी देखना चाहिये कि अपने गुरु और इष्टका केवल नामही सुनकर तीन लाख तीन हजार रुपयेका धन उलटा फेर दिया. और अपने आपको भक्तको कष्ट देनेका पाप समझा; निदान भगवान्‌की भक्तिमें श्रद्धा होना सम्पूर्ण पदार्थोंमें मुख्य है, और इस विषयमें एक रीति घाटमकी कथाके अंतमें लिखी है, उसके अतिरिक्त एक यह और है कि जिस दोषसे वालि और रावण विमुख होकर मारे गये वही दोष सुग्रीव और बिभीषणने किया था, परन्तु वे भक्तिके प्रतापसे महाभगवान्‌के भक्तोंमें शिरोमणि और रामचंद्रके मंत्रियोंमें गिने गये. भगवान्‌की भक्तिका यह प्रताप है, जो महापाप है वह समस्तही धर्म समझे जाते हैं.

गजपतिकी कथा ९.

गजपति राजा नीलाचल अर्थात् पुरुषोत्तमपुरीके रहनेवाले भगवान्‌के परम भक्त हुए. वह अपने गुरु गुसांई श्रीकृष्णचैतन्यमें पूर्ण विश्वास रखते थे. इनका यह नियम था कि जब उनके दर्शन कर लेते तब कुछ राजकाज करते. एक दिन इनके गुरुजीने इनको अपने समीप आनेका निषेध किया; राजाको दर्शन न मिलनेसे इस बातपर अत्यन्तही दुःख हुआ, और यह शोकाकुल हो राजकाज त्यागकर और संन्यासीरूप बनाकर चरणारविंदसेवनकी अपेक्षासे व्याकुल होकर फिरने लगा; परन्तु गुसांईजी जगन्नाथपुरीसे बाहर नहीं जाते थे इस कारण दर्शन नहीं होते, तब इसने रथयात्राके दिन गुसांईजीको रथके आगे नृत्य और कीर्तन करते देखा तो राजाने दौडकर तत्का-

लही चरण पकड लिये. और नम्रतासे पकडकर उन चरणोंको नहीं छोडा, जब गुसांईजीने राजाकी यह दशा देखी और अंतःकरणकी निर्मल प्रीति देखी तो उनको उठाकर छातीसे लगा लिया और प्रेमके समुद्रमें डुबकी देकर इच्छापूर्वक आनंदमें पूर्ण कर दिया.

चतुरदासकी कथा १०.

स्वामी चतुरदासजी परमभक्त वैराग्यवान् हुए, उनको भगवान्के भजनके अतिरिक्त और किसीमें प्रीति नहीं थी. यह उसी आनंदमें मग्न होकर सर्वदा भगवान्के मनोहररूपके रंगमें रंगे रहते थे, जिन्होंने मथुरा और व्रजमें रहकर सबको आनंद दिया था, और भगवान्के धर्ममें स्थिर और दृढ, होकर अमृतकी समान अपनी मीठी वाणीसे जगह २ भगवान्के भक्तोंकी संगातिका आनंद भोग किया; जिनकी महिमाको संत महंत और अगणित भगवान्के भक्तोंने संसारमें विख्यात किया, और गुरुभक्तिमें ऐसे हुए कि सबसे प्रथम भक्त गिने जाने लगे. गुरु जब उनके स्थानपर आते तो वह इनको भगवान्काही रूप जानकर भक्तिभावसे उनकी सेवा पूजा किया करते थे. स्वामीजीकी स्त्री अत्यन्तही सुन्दर और तरुण अवस्थाकी थी; उसको गुरुके समीप भेजकर उसको यह उपदेश दिया कि जिस प्रकार हमारे गुरु आज्ञा दे तुम उसी प्रकार उनकी आज्ञाका पालन करना, और अपने धर्ममें सावधान रहना जिससे कि कभी त्रुटि न हो. वरन दिन परदिन गुरुचरणोंमें श्रद्धा और प्रीति बढती रहे, यह उपदेश कर अंत जो कुछ उनके पास धन द्रव्य था सबही गुरुकी भेंटकर दंडवत् करके और गुरुजीकी आज्ञा लेकर व्रजमें गये. प्रभातसमय श्रीगोविन्ददेवजी महाराजकी मंगल आरतीके दर्शन करते और केशवजीकी शृंगार-आरती और नंदगांवका राजभोग देखकर गोवर्धनजीमें राधाकुंडमें

होते हुए वृन्दावनमें आये. वृन्दावनमें वह सर्वदा आया करते और भगवान्के चिंतवनमें सर्वदा रहते; एक समय यह नंदगांवमें मानस-सरोवरमें विना अन्न जलकेही रहे; नंदगांवके स्वामी नंदबावा हैं और उनके शिष्योंकी सम्हाल उन्हींको करनी कर्तव्य है इस कारण नंदजीके कुमार अर्थात् श्रीकृष्णभगवान् भक्तवत्सल कृपासिन्धु महाराज अपने पाहुनेको भूँखा नहीं देखसके; तत्काल बारह वर्षके लडकेका रूप धारण कर दूधका कटोरा हाथमें लेकर स्वामी चतुर्भुजजीके समीप गये और कहा कि ले यह दूध पी ले; जब स्वामी चतुर्भुजदासजीने वह अत्यन्त सुन्दर मनोहरस्वरूप देखा तो इन्होंने दूसरे दर्शन होनेके कारण उनसे जल पीनेकी अभिलाषा करी. जब वह लडका जल लेनेको गया और बहुत देर हो गई परन्तु वह न आया; तो यह अत्यन्तही व्याकुल हुए, तब भगवान्ने इनको स्वप्न दिया, और कहा कि अब जलका कुछ प्रयोजन नहीं है; तुमको सर्वदा व्रजवासियोंसे दूध मिलता रहेगा स्वामीजीने भगवान्की ऐसी आज्ञाको सुनकर कहा कि हे महाराज! व्रजवासियोंको तो दूध अत्यन्तही प्रिय होता है. देखो माता यशोदाने तो दूधकेही कारण आपको त्याग दिया था, फिर वे मुझको दूध किस प्रकारसे देंगे. भगवान्ने कहा कि निश्चयही सर्वदा तुमको दूध मिलता रहेगा; सो भगवान्की आज्ञानुसार स्वामीजी एक ग्राममें गये और वहांही व्रजवासियोंने उनको दूध पिलाया. जो कोई नहींभी लाया तो उसके घरसे स्वामीजी आप जाकर ले आये, और जो किसीने देनेसे मना किया तो उसका समस्त दूध बिगड गया और जो किसीने दुःखित मनसे दिया तो फिर उसके घर दूध नहीं हुआ. वरन आजतक यही रीति चली आती है कि जो कोई स्वामी चतुर्भुजदासजीके कुलका शिष्य है

उनको विना मांगेही दूध मिलता है. निःसन्देह जो कोई भक्ति और श्रद्धासे गुरुकी सेवा करता है, उसको जो सबको अलब्ध पदार्थ हैं वेभी उसको प्राप्त हो जाते हैं.

दोहा—वारि मथे वरु होय घृत, सिकताते वरु तेल ।
विनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

राघवदासकी कथा ११.

राघवदासजी भगवान्‌के परम भक्त हुए; यह अपनी कविताके अंतमें दुवारिया पदका भोग रखते थे; इसी कारणसे इनको लोग दुवला कहा करते थे परन्तु भक्ति और भावमें यह मोटे महंत थे. भगवान्‌के धर्मके सम्बन्धी जो आचार हैं उनमें शास्त्रकी आज्ञानुसार कर्म करते, और जो गुरुशिष्यकी रीति है उसके अनुसार कर्म करते और गुरुशिष्यकी जो रीति शास्त्रोंमें लिखी है, उनको ऐसा प्रगट और प्रत्यक्ष कर दिया और किसीसे नहीं हो सकता, अर्थात् जो वायुपुराणमें लिखा है कि जो मंत्र है, वही गुरु है, वही भगवान्‌का भक्त है, जब गुरु प्रसन्न हो जांयगे, तो भगवान् आप प्रसन्न हो जांयगे सो राघवदासजीने अपने गुरुको भगवान्‌काही रूप जानकर ऐसी सेवा करी कि भगवान् और गुरुको प्रसन्न कर लिया, और जिस किसीको अपना शिष्य किया तो उनको तत्कालही भगवान्‌के समीप करके आवागमनके दुःखसे निवृत्त कर दिया. वह गुप्त और प्रत्यक्ष ऐसे निर्मल और पवित्र हुए कि उनके निकट कलियुगकी काई कभी भी नहीं आई, मिथ्या वचन कभी मुखसे नहीं निकला, रात्रि और दिन भगवान्‌के चरित्रकीर्तनके सिवाय उनको और कुछ काम न था. आचार्यने जो उनको हीरेश हृदय लिखा है उसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार हीरेको अहरनपर रखकर उसपर घन मारते हैं

और वह नहीं टूटता वरन अहरनमें घुस जाता है, परन्तु जब उसका साथी उसके सामने रक्खा जाता है तौ वह तत्काल अहरनसे निकल जाता है. इसी प्रकार राघवदासजी थे कि संसारके दुःख सुख उनकी दृढता और स्थिरतामें हानि नहीं पहुँचा सके. और सत्संगतिको देखकर इस प्रकार आमिलते कि जिस प्रकार हीरा अपने साथीको देखकर आ मिलता है.

अथ

आठवीं निष्ठा प्रतिमा और अर्चाके विषयमें.

(इसमें पंद्रह भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरामचंद्रजीके चरणोंकी वंदना करके फिर हंसावतारको दंडवत् करता हूं, कि जिन्होंने ब्रह्मपुरीमें प्रगट होकर ब्रह्मा और सनकादिकोंको उपदेश दिया था. शास्त्रोंका सिद्धान्त यह है कि भगवान्की प्राप्तिके कारण भगवान्हीकी पूजा, अर्चा, जप, मंत्र इत्यादि करना चाहिये और पूजा जिसका पूजन करे उसके हुए विना नहीं हो सकती; और पूजा अर्चाके विना भगवान्की प्राप्ति होनी अत्यन्तही कठिन है, इस कारण करुणाकर, दीनबन्धु, दीनवत्सल, महाराजको यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि, जब मेरी प्राप्ति पूजाहीके कारण है और वह सादृश्य हुए विना नहीं हो सकती तौ फिर लोगोंका उद्धार किस प्रकारसे होगा; इस कारण जो भगवान् स्वयं भक्तोंके कारण अवतार धारण करते हैं, उसी प्रकार प्रतिमारूप होकर प्रगट हुए सोई प्रतिमा बद्रीनारायण, रंगनाथस्वामी, गोविन्ददेवजी आदि

बारह प्रतिमा स्वयं अपने आपसे आप प्रगट हुई हैं, और जगन्नाथ वरदराज महाराज इत्यादि कितनी प्रतिमा ऐसी हैं जो ब्रह्मा शिव इत्यादि देवताओंने स्थापन करी हैं और मुनियोंकी तथा ऋषियोंकीभी स्थापन करी हुई हैं; जब भगवान्‌ने विचारा कि यह मूर्तिभी सबको नहीं मिल सकती तौ शालिग्रामरूप होकर प्रगट हुए कि यह मूर्ति तौ बहुत लोगोंको मिलेगी, फिर जब यह जाना कि यहभी सबको नहीं मिलेगी, तौ उन्होंने आज्ञा दी कि स्वर्ण और चांदी तथा पाषाणकी प्रतिमा बनाकर और वेदमंत्रोंसे प्रतिष्ठित करके फिर उसका पूजन करे. और समस्त प्रतिमाओंकी पूजामें तथा दर्शनोंमें चमत्कार दिखाया; कि जिसनेभी अनन्य मनसे उनका आराधन किया, वह मनवांछित पदवीको प्राप्त हो गया; और उसके ऊपर करुणाकर इतनी दया करी कि जो कोई चित्रमें खिंचवाकर और उसको भगवान् जानकर पूजन करता है वह निःसंदेह भगवान्‌को प्राप्त होता है; सो इस भगवद्विग्रह पूजन और दर्शनोंको भक्तोंने कई प्रकारसे माना है. प्रथम कई तौ उस प्रतिमाको निज भगवान्‌कीही मूर्ति जानकर इस प्रकार पूजन करते हैं कि प्रथम तौ मानसी पूजन किया; और फिर उसी विग्रह मूर्तिका और कितनों- हीका यह विश्वास है कि उसी प्रतिमाको पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंद घन- श्याम मानते हैं. मानसी पूजन इत्यादि नहीं करते, और तीसरे समूहका यह वाक्य है कि इस सच्चिदानंद घनश्यामकी निज मूर्ति लोगोंके ध्यान और चिन्तवनमें नहीं आ सकती है, उनको उस निज भगवा- न्‌के रूपमें जमानेके कारण इस मूर्तिका दर्शन और पूजन करते हैं. और एक २ अपनी श्रद्धासे निश्चयताके अनुसार फलको प्राप्त होते हैं. जब यह बात निश्चय हो गई कि भगवान्‌ने संसारके उद्धारके निमित्त आपही अपना स्वरूप प्रगट किया है, तौ अत्यन्त आवश्यकता है

कि भगवान्के विग्रहको ईश्वररूप जानकरही पूर्ण श्रद्धा और भक्तिसे दर्शन करे. हजारों मनुष्योंका उद्धार प्रतिमाके द्वाराही हुआ है; और होता है, भगवान्ने कहा है कि मुकुंद अर्थात् भगवान्की मूर्तिका दर्शन, और उस मूर्तिके दर्शन करनेवालेका मिलना अथवा मूर्तिके चढे हुए पुष्पोंका सूंघना और तुलसीदलका खाना; और भगवान्के मंदिरमें जाना और फिर दंडवत् करना यह सब भगवान्के भक्तोंको प्राप्त करती है. नारदपंचरात्रमें लिखा है कि जिस बरतनमें शालिग्रामजीको स्नान कराया जाता है, उसका सात दिनतकका धोवन गंगाजलकी समान है; इससे प्रत्यक्ष है कि उनके दर्शन करनेका तौ माहात्म्य जाने कितना होगा, परन्तु विचारना उचित है कि यह जो भगवान्के पूजनकी विधि है सो इतनी सरल नहीं है कि मार्ग चलते २ उस परम पदवीको पहुँचा दे. वरन यह विधि अत्यन्तही कठिन है, क्योंकि शास्त्रोंसे भगवान् एक व्यापक है, और वह ब्रह्मस्वरूप है कि जबतक एकाग्र चित्तसे भगवान्की मूर्तिमें मन न लगावेगा तबतक भगवान् किसी प्रकारभी नहीं मिल सकते और वह मन उस मूर्तिमें ऐसा रत हो कि दूसरी ओरको कदापि न जाय; और दूसरेका विश्वासी और पक्षभी न करता हो यहांपर एक कथा है कि एक पुरुष संसारी मनोरथसे भगवान्की पूजा करता था. जब उसको धनकी प्राप्ति न हुई तौ उसने किसीके सिखानेसे भगवान्की मूर्तिको तो उठकर आलेमें धर दिया और दुर्गादेवीकी पूजा करने लगा. एक दिन उसने विचारा कि मैं जो यह धूप दुर्गादेवीजीको देता हूं, यह प्रथम भगवान्कोही पहुँचती होगी, इस कारणसे भगवान्की मूर्तिकी नासिकामें रुई ठूंस २ कर भरने लगा. उसी समय भगवान् प्रसन्न हो गये और कहा कि जो तेरी इच्छा हो वही तू वर मांग तब उसने कहा कि महाराज ! आप मेरी

पूजा इत्यादिसे तौ कभी प्रसन्न न हुए और जो मैंने आपके साथ यह दुष्टता करी तौ प्रसन्न हो गये इसका क्या कारण है सो कृपा कर कहिये. तब भगवान्ने कहा कि जब तू हमारी पूजा किया करता था तौ हमारी मूर्तिको पत्थरकी मूर्ति जानता था. और अब सब तरफसे मनको खैंचकर भगवान्का रूप जानता है, इसी कारण मैं प्रसन्न हुआ इस कथाका अभिप्राय यह है कि भगवान्की मूर्तिको पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद जाने. एक बाई गुजरातमें भगवान्की मूर्तिका आराधन वात्सल्यभाव और परम भक्तिसे किया करती थी. उसके गांवमें भेडिये बहुतही बढ गये, कई एक बालकोंको जब भेडिया उठाकर ले गया तौ यह वार्ता सुनकर बाईजीको अत्यन्तही भय हुआ; और वह मूसलको हाथमें लेकर सारी रात्रि जागने लगी. कितनेही दिनोंतक यही दशा रही कि वह दिनको तौ भगवान्की रसोइ और शृंगारकी तैयारीमें रहती थी. और रात्रिको भगवान्की चोकसी करती थी. उसकी यह दशा देख भगवान्को अत्यन्तही दया आई; और वह प्रत्यक्षही मंदिरमें रात्रिके समय हौले २ घुसे. जब बाईजीने इनके घुंघुरोंका शब्द सुना तौ तत्कालही मूसल उठाकर दौडी तौ क्या देखती है कि एक लडका श्यामसुन्दर मोहनीस्वरूप है उससे पूछा कि तू कौन है ? तब इसने उत्तर दिया कि मैं वही ईश्वर परमात्मा हूं कि जिसकी मूर्तिको तू बालक जानकर आराधन करती है. सो जो तेरी इच्छा हो वही मांग, तब बाईजीने कहा कि जो यदि तुम निश्चयही परमात्मा हो तौ मैं यह वर मांगती हूं कि इस मेरे लडकेको भेडिया न ले जाय. अहाहा ! क्याही उत्तम बात है कि भगवान्के मूर्तिमें इतनी पूर्ण श्रद्धा हो; कि जो भगवान् स्वयंही प्रगट होकर आये तबभी उस मूर्तिकोही अपना स्वामी समझे और जो उनकी ओर मन लगा तौ प्रीति कहां रही ?

जिस प्रकार स्त्रीको दूसरे पुरुषकी महिमा और स्वरूपका वर्णन निषेध है; उसी प्रकार अपनी सेवा और मूर्तिके आगे और किसीकी शोभाका चिंतवन करे, यह वार्ता मूर्तिपूजनप्रकारमें लिखी है. जिस प्रकार कोई दास अपने स्वामीको अपने जीवसेभी विषेश प्रिय जानता हो और सर्वदा अनेक प्रकारके सुख और भोगकी सामग्री पहुँचावे; उसी प्रकार अपने स्वामीकी सेवा और मूर्तिकी सेवा पूजा करनी उचित है, जिस प्रकार गरमी पडती है; और खसकी टट्टी तथा थंडी सुगंधसे पानीका छिडकाव, हवादार स्थान, पुष्प और जगमगाहटके वस्त्र करके एक दिनमें कई वार भगवान्‌का शृंगार करे. और इसीप्रकार वर्षा और शीतऋतुमें सब ऋतुके अनुसार सामग्री करे. निदान जो अपने जीव और सुख शोभाके लिये जो तैयारी खाने और पहरनेकी करता है; उससे सहस्रगुणा भगवान्‌के लिये करे, और जिस दिन जो कोई त्योहार हो जिस प्रकार कि होली; दिवाली; दशहरा, वसंतपंचमी इत्यादि अथवा सांजीक समय वा श्रावणके महीनेमें झूला झुलानेका चरित्र, वा भगवज्जन्मउत्सव जैसे रामनौमी, जन्माष्टमी, नृसिंहचतुर्दशी, वामनद्वादशी इत्यादि अथवा तीर्थव्रतका दिन हो इस धूमधामके साथ उत्सव और शृंगार इत्यादि करे कि जिस प्रकार अपने पुत्रके विवाहमें वा पुत्रके जन्ममें करते हैं; सो कहांतक वर्णन किया जाय कि यह बात अपनेकी प्रीति और भगवान्‌की कृपा अपने सौभाग्यसेही है. इस असार संसारमें यह उत्सव इत्यादि जो हैं सो स्वप्नकी समान हैं. दक्षिणमें तथा मथुरा वृन्दावन और अयोध्यामें तो इनका प्रचार है. मुझको स्मरण है कि एक वृन्दावनी गुसांईने एक पुरुषके स्थानपर वसंतपंचमीको फूल डोल बनाया; उनके यहां एक वेश्या त्योहारका इनाम लेनेको आई, तो उसने गुसांईजीका कान करके राग न सुना और उसको विदा कर दिया, तब गुसांईजीने पूछा कि भगवान्‌के

समीप राग क्यों नहीं होता ? तब उसने पूछा क्या भगवान्‌भी राग सुनते हैं; तब गुसांईजीने कहा कि यदि जो भगवान्‌के नृत्य और गानमें रुचि न होती तो इसका प्रचार संसारमें किस प्रकारसे होता ? जो कुछ सुख और भोग इत्यादि सुखकी सामग्री प्रगट और गुप्त हैं, सो सब भगवान्‌केही लिये है, समस्त कामोंका मूल भगवान्‌सेहीहै; सोलह प्रकारका पूजन जो प्रचलित है वह भगवन्मूर्तिके कारण और मानसी पूजनके समान है. बस इसमें केवल इतनाही भेद है कि मूर्ति-पूजनके लिये तो सामग्री प्रगट करनी पडती है और मानसी पूजनमें मन और चिन्तवनसे सो उन सोलह भांतिमेंसे प्रथम, आवाहन है, सोही आवाहन उस देवताका करना पडता है जिसकी कभी किसी दिन पूजा करनी हो और भगवान्‌की पूजाका आवाहन केवल इतनाही मानते हैं कि प्रभातको अपने स्वामीको नींदसे जगाना, और दंडवत् करके श्लोक और पद भगवान्‌के जगानेके पढने और गाने, दूसरे आसन २ सिंहासन आदि बिछौना अति शोभासे बिछाना और बुहारी देना, तीसरे ३ पाद्य अर्थात् भगवान्‌के चरण धोने और अंगोछेसे पोंछने ४ अर्घ अर्थात् हाथ मुँह धुलाना ५ आचमन अर्थात् दँतौन और कुल्ला करना ६ स्नान करना अंगोछेसे देह पोंछना और धोती पहराना ७ वस्त्र और सुन्दर २ आभूषणोंसे शृंगार करना ८ यज्ञोपवीत अर्थात् सुवर्णका जनेऊ वा रेशम वा सूतका पीत पहराना ९ गंध अर्थात् सुगंध अतर चंदन केसर कस्तूरी आदि लगाना १० पुष्प भगवान्‌के मुकुट और झूमके इत्यादिमें गूथने और पुष्पोंकी माला पहरानी ११ धूप और केशर कस्तूरी अगर चंदन इत्यादिकी धूप देनी १२ दीपक बालना १३ नैवेद्य सब भांतिके भोजन कराने जल पिलाना कुल्ला करना हाथ धुलाना अंगोछेसे हाथ मुँह पोंछना, ताम्बूल बनाकर देना १४ दक्षिणा भेंट करना १५ नीराजन अर्थात् आरती

करनी, प्रदक्षिणा देनी और पुष्पांजलि देनी १६ विसर्जन विदा करना यहां विसर्जन यह है कि पलंग तोसक बिछाना, तकिया लगाना, चादर इत्यादि सामग्री अतर तांबूल खाने पीनेके पास रखना, और शयनके समय भगवान्‌के पांव दाबने, अब विचारना चाहिये कि जगन्नाथरायजी, बद्रिनारायणजी, रंगनाथ, अयोध्या वृन्दावनमें यह सोलह प्रकारका आराधन नित्य दिनमें सात वार होता है, कई स्थानों-पर पांच वार, और कहीं तीन वार अर्थात् एक प्रभात मंगल आरती और दूसरे दो पहर राजभोग्य, तीसरे सायंकालकी आरतीसे पूजन और दर्शन करनेवालेको सात वार आराधन करना अवश्य है नहीं तो तीन वारसे कम न होना चाहिये. अब विचारना चाहिये कि शास्त्र और पुराणोंके वाक्यसे बद्रीनारायण, रंगनाथस्वामी, गोविन्ददेव इत्यादि और शालिग्रामकी मूर्ति, पुष्कर नैमिषारण्य आदि तीर्थ हैं वह बारह कोशतक पवित्र और शुद्ध करते हैं और जो मूर्ति देवताओंने स्थापित करी हैं सो चार कोसतक पवित्र करती हैं और जो ऋषि और सिद्ध लोगोंने विराजमान करी हैं वह दो कोसतक पवित्र करती हैं, और जो मूर्ति अन्य पुरुषोंने शास्त्रोंके मंत्रोंके अनुसार प्रतिष्ठित करी हैं वह एक २ कोसतक पवित्र करती हैं, और जो मूर्ति केवल घरमें विराजमान कर लेते हैं वह उसी घरको पवित्र और शुद्ध करती हैं देखो भगवान्‌ने अपनी कृपासे इस जीवके उद्धारके लिये सब उपाय कर दिये हैं; कि किसी भांतिसे मनुष्योंका मन मेरे चरणकमलोंमें लगे. परन्तु मनुष्योंके कोई पूर्वजन्मके किये हुए पाप उस समय आनकर उदय हो रहे हैं कि सुगम रीतिसभी कदाचित् मन नहीं लगता कोईभी नगर अथवा गांव ऐसा नहीं है कि जहां भगवान्‌के मंदिर और ठाकुरद्वारा न हो परन्तु वहांपर पुजारीके सिवाय और कोई

दर्शनोंके लिये नहीं जाता; और धनवान् नौकरी करनेवाले चकलेके शैलके लिये जो जहांतक कोई ले जावे यहांपर बडेही उत्साहसे दौडकर जाते; और जो कोई इनसे ठाकुरद्वारेमें चलनेको कहे तौ मानो उनके प्राण पयान कर गये वरन यहांतक है कि कहीं मार्ग चलतेमें ठाकुरद्वारा आ गया तौ कहा कि अब तौ सांझ हो गई, फिर कभी किसी रोज आवेंगे, और जो कभी दैवसंयोगसे चलेभी गये, तौ समस्त संसारके झगडे ले बैठे, अर्थात् डिगरी डिसमिस इत्यादिका वृत्तान्त वहांही स्मरण आया; एक वारभी भगवान्का नाम मुखसे उच्चारण नहीं किया, वरन जो कोई पुरुष भजन करता हो तौ उससे बातें करने लगे उसकाभी मन चलायमान हो जाय. यह बात मैंने सुनी हुई नहीं लिखी हैं वरन बहुधा ऐसा होते मैंने देखाभी है; सो कहांतक लिखूं ? एक तौ पुस्तकका विस्तार बढ जायगा और दूसरे उन पुरुषोंको क्रोधभी आ जायगा कि जिनको इन बातोंका अभ्यास है इसी भयके कारण मैं नहीं विस्तार करता हूं. प्रथम तौ मैंही पापी और मतिमंद हूं, धन्य है कर्म तो मेरे ऐसे उत्तम हैं, और इच्छा मेरी ऐसी है कि निश्चयही परम धामको जांय, किस प्रकार सद्गति प्राप्त होगी ? अरे हे पापी मन ! अबभी तौ लज्जित हो और विचार कर देख कि यह मनुष्यदेह वारंवार नहीं मिलती है; क्या जानिये कि कौनसे पुण्योंके कर्मसे यह देह मिली है; जो इस देहकोभी पाकर श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंमें मन न लगाया तौ तुझसे मंदभाग्य और विशेष कौन है. बहुतसे द्रव्यका पैदा करना वृथा झूंठ बोलना लोगोंको छलना तो जिस प्रकार तुलसीदासजीने कहा है वैसाही यह वेश्या जानती है और जो यदि इस शरीरको संसारी भोगके निमित्तही समझ रखा है; तौ यह भोग सुअर कुत्ते, गधे इत्यादि पशुओंकोभी प्राप्त होता है; उस देह और मनुष्यदेहमें केवल

इतनाही अंतर है कि इस देहके द्वारा भगवान्‌का भजन हो सकता है. यदि जो इस शरीरको पाकरभी भगवान्‌के चरणोंमें मन नहीं लगा तो सुअर और कुत्ते इत्यादिकसेभी नीच है; क्योंकि यह पशु इत्यादि जो कर्म करते हैं सो वह इनके पाप आगेको कुछ नहीं समझे जाते वह केवल अपने पूर्व कर्मोंको भोगते हैं, और जो मनुष्य भगवान्‌का भजन नहीं करता है वह महापापी होता है, इसी कारण तुझको इस मनोहर रूपका चिन्तवन करना अवश्यही है.

सवैया–पग नूपुर और पहुँची कर कंजन मंजु बनी मणिमाल हिये ॥
नवनील कलेवर पीत झगा झलकै नृप गोद लिये ॥
अरविंदसे आनन रूप मरिंद अनिंदत लोचन भृंग पिये ॥
मनमें न बसे अस बालक जो तौ कहो जगमें फल कौन लिये ॥

दोहा–बालरूप भगवान्‌को, मिश्र करे जो ध्यान ।
सुत वित सुख फल पावहीं, गावहिं वेद पुरान ॥

राजा चंद्रहासकी कथा १.

राजा चंद्रहास्य बालकपनमेंही इतने भगवान्‌के भक्त हुए कि वह महाभागवतोंमें गिने गये, और अबतक उनकी भक्तिका यश चांदनीकी समान शास्त्रोंमें लिखा है; जिस प्रकार अश्वमेधमें लिखा है कि केरलदेशके राजा मेधावीके घर जब चंद्रहास्यका जन्म हुआ तो इनके एक पैरकी छ, अंगुली थीं; इसको सामुद्रिक शास्त्रमें अशुभ लिखा है; इनके जन्मसे थोडेही दिनोंके उपरान्त कोई एक शत्रु चढ आया, और युद्ध करनेपर मेधावी राजा मारा गया, तब चंद्रहास्यकी माताभी उसीके साथ सती हो गई, और चंद्रहास्यको धाय लेकर कुंतलपुरमें ले आई. कुंतलपुरके राजाके मंत्रीका नाम धृष्टबुद्धि था वह उसके घरमें रहने लगी फिर वह धायभी मर

गई और चंद्रहास्यजी पांचवर्षकीही अवस्थामें अनाथ होकर फिरने लगे, इनको जो कोई कुछ देता तो यह उसीसे अपना उदर पूर्ण कर लेते. इनके पास एक दिन नारदजी आये; नारदजीने एक शालिग्रामकी मूर्ति चंद्रहास्यको देकर कहा कि जो कुछभी तुम भोजन करो सो समस्तही इस प्रतिमाको दिखाकर करे करना. चंद्रहास्यजीने प्रसन्न हो मूर्तिको अपने घर रख लिया, और यह जो कुछ भोजन करते सो प्रथम उस मूर्तिको दिखा लेते तभी भोजन किया करते. थोडेही दिनोंमें भगवान् प्रसन्न हो गये. एक दिन उस मंत्रीके घर ब्रह्मभोज हुआ और बहुतसे ब्राह्मण आये, तब मंत्रीने ब्राह्मणोंसे पूछा कि महाराज ! मेरी कन्याको कैसा वर मिलेगा और कहांका रहनेवाला होगा ? ब्राह्मणोंने चंद्रहास्य-जीको बताकर कहा कि यही तेरी कन्याका पति होगा. मंत्री इस वार्ताको सुनकर अत्यन्तही क्रोधित हुआ; और कहा कि मेरी कन्या दासीके पुत्रके साथ व्याही जाय ? ऐसा मैं कदापि न होने दूंगा. यह कहकर वधकोंको बुलाकर कहा कि तुम इस लडकेको जंगलमें ले जाकर मार डालो, ऐसी मेरी आज्ञा है. वधिकगण मंत्रीकी आज्ञानुसार चंद्रहास्यजीको जंगलमें ले गये; और उनको मंत्रीकी आज्ञा सुनाई और कहा कि जो तुम्हारा रक्षा करनेवाला हो उसको इस समय स्मरण कर लो, क्योंकि किंचित् कालमेंही तुम्हारे प्राण इस शरीरको छोडकर पयान कर जांयगे. चंद्रहास्यजीको अपने मरनेका तो किंचितमात्रभी दुःख न था, परन्तु यह विचारा कि आज मैंने शालिग्रामजीका पूजन नहीं किया है सो यह विचार कर वधकोंसे बोला कि तुम जरा देर ठहरे रहो, मैं भगवान्का पूजन कर लूं वधकोंने कहा अच्छा कर ले हम ठहरे हैं चंद्रहास्यजीने शालिग्राम-जीकी मूर्तिका पूजन कर हाथ जोड दंडवत् कर प्रार्थना करी कि

हे कृपासिंधु ! इस समय मेरे ऊपर कठिन विपत्ति आनेवाली है इस समय आपही मेरी रक्षा कीजिये, यह कहकर आप भगवान्के ध्यानमें मग्न हो गये और फिर वधकोंसे कहा कि अब आप मुझको मार डालिये; चंद्रहास्यके ऐसा कहनेपर शालिग्रामजीके पूजनके प्रतापसे वधकोंके मनमें दया उत्पन्न हो गई उन्होंने विचारा कि इसको मारना तो उचित नहीं, परन्तु जो एक इसकी अंगुली अधिक है; उसीको काटकर मंत्रीके समीप ले चलेंगे. उन्होंने यह विचार वही अंगुली जो अधिक थी सो काट ली. और इनको जंगलमेंही छोड दिया, फिर वह अंगुली लाकर मंत्रीको दिखाई और कहा कि चंद्रहास्यको हमने जंगलमें ले जाकर मार डाला; चंद्रहास्यजी तीन दिनतक भगवान्का भजन किया और विना जल-पान किये उसी जंगलमें रहे. जिस समय कठिन धूप पडती उस समय पक्षी आनकर अपने परोंसे इनकी छाया करते और रात्रिकी समय फिरनेवाले पशु पहरा देते. एक दिन दैवसंयोगसे कलिंदनाम चंदनावतीका राजा शिकार खेलनेके लिये उसी जंगलमें आया और वह चंद्रहास्यजीको इस दशामें देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ; और फिर चंद्रहास्यजीसे कहा कि तुम हमारे घरको चलो हम भली प्रकार तुम्हारा पालन करेंगे. चंद्रहास्यजी राजाके साथ उसके स्थानको चले गये; राजाके कोई संतान नहीं थी इस कारण इनको अपना बेटा मानकर पढाना लिखाना प्रारंभ कर दिया; और जब यह समस्त पढ लिखकर हुशियार हो गये तो इनको राज्यतिलक दे दिया और समस्त राज्यका काम इनकी सुपुर्द कर दिया; और आप भगवान्का भजन करने लगा. यह कलिंदका राजा कुंतलपुरके राजाको सालियाना दिया करता था; जिस समयसे चंद्रहास्यजीको राज्य मिला उस समयसे सालियाना राजापर नहीं पहुँचा; तो धृष्ट-

बुद्धि मंत्री क्रोधकर सेनासहित चंद्रहास्यके राज्यमें आया. जब राजा कलिंदने मंत्रीके आनेका समाचार सुना तो प्रसन्नतासहित तत्काल उठ खडा हुआ और बडे आदर सत्कारसे मंत्रीको अपने नगरमें लाकर चंद्रहास्यजीसे मिलाया; और उनको राज्य देनेका समस्त वृत्तान्त कहा. जब मंत्रीने चंद्रहास्यजीको पहँचाना तो बडा शोकित हुआ और विचारने लगा कि किसी प्रकारसे हो चंद्रहास्यजीको कुंतलपुर भेजकर मरवा डालना चाहिये, इस कारण कलिंदराजापर अत्यन्तही क्रोधित हुआ और कहने लगा कि हे राजन् ! तुमको हमारी आज्ञाके विना चंद्रहास्यको राजतिलक देना उचित नहीं था. अब मैंने यह उपाय विचारा है कि मैं चंद्रहास्यको अपने पुत्र मदनके नाम पत्र लेकर भेजता हूं; यह वहां जाकर अपना राजतिलक होना स्वीकृत करा लेंगे. निदान मंत्रीने चंद्रहास्यको पत्र देकर विदा किया, चंद्रहास्यजी तत्काल वहांसे गये और चले २ कुंतलपुरके पास उसी मंत्रीके बागके समीप ठहरे वहां स्नान पूजा इत्यादिक करी और भगवान्का प्रसाद भोजन किया. यह मार्गमें जो चलकर आये थे सो उसके परिश्रमसे थकित हो सो गये. दैवसंयोगसे उसी मंत्रीकी कन्या बागकी सैर करनेके लिये आई; उसने अपने साथकी सखियोंको तो एक ओर छोडा और आप वहां आई जहां चंद्रहास्यजी शयन करते थे. उसने जो चंद्रहास्यजीका अत्यन्तही मनोहर स्वरूप देखा तो प्रेमसे व्याकुल हो गई, और भगवान्से प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन् ! ऐसी कृपा करो कि यह पुरुष मेरा पति हो; फिर जो उस कन्याकी कमरपर दृष्टि गई तो इनकी कमरमें वही पत्र रक्खा था इसने अतिशीघ्रतासे खैंच लिया और उसको पढने लगी. उसमें यह लिखा था कि इस लडकेको पहुँचतेही तू विष दे देना और जो यदि इसमें तैंने विलम्ब किया तो फिर तेरीभी श्यामत लगा दूंगा

कन्याको यह पढकर अत्यन्तही क्लेश हुआ, और विचारने लगी कि यह अत्यन्तही सुन्दर स्वरूपवान् प्रीतम मारा जायगा, चिन्तित हो फिर विचारने लगी कि मेरे पिता तो बहुत दिनोंसे सुन्दर स्वरूपवान् लडकेकी खोजमें थे, और जानेके समय वह यहभी कह गये थे कि अब शीघ्रही विवाह करेंगे, सो इसी पुरुषको मेरे लिये भेजा है. वह शीघ्रताके कारण (विष) शब्दके अगाडी (या) लिखना भूल गये, सो (या) अक्षर बना देना उचित है निदान अपने नेत्रोंके काजलकी स्याहीसे या बनाकर चंद्रहास्यजीकी कमरमें रखकर चली गई. जब चंद्रहास्यजी जागे तो उठकर मंत्रीके बेटे मदनके पास गये, और जाकर वह पत्र दिया, उस पत्रको देखकर वह बहुतही प्रसन्न हुआ, और बडी प्रसन्नताके साथ अपनी बहनका विवाह कर दिया, और अपने पिताको पत्र लिख भेजा मंत्री पत्रको पढकर महा क्रोधित हुआ और उसी समय वहांसे चल दिया और अपने घरपर आकर अपने बेटे मदनको धिक्कारने लगा, तब मदनने पत्र दिखा दिया. मंत्रीने फिर विचारा कि यदि कन्या विधवा हो जाय तो कुछभी हानि नहीं परन्तु चंद्रहास्यको मार डालनाही उचित है; इस कारण वधकोंको बुलाया और कहा कि आज प्रभातकोही जो पुरुष दुर्गाभवनमें आवे उसको मार डालना, और इधर चंद्रहास्यजीसे कहा कि हमारे कुलकी यह रीति है कि जब विवाह हो जाय तो दुर्गाके भवनमें जाकर पूजन कर आओ, दुष्ट मंत्रीने तो यह उपाय किया और इधर भगवान्की यह इच्छा हुई कि कुंतलपुरकाभी राज्य चंद्रहास्यजीको मिल जाय तो यह उत्तम है इस कारण कुंतलपुरके राजाको ऐसी बुद्धि दी कि राजन्! विचार ले, यह राज्य और आयु स्थिर नहीं रहेगी इस कारण भगवान्के भजनके अतिरिक्त और समस्तही व्यर्थ है, सो वह राज्य तो अपने मंत्रीके जमाई चंद्रहास्यजीको दे देना

योग्य है; और जो आयु शेष रही है सो भगवान्के भजनमें व्यतीत कर. फिर जब प्रभात हुआ और चंद्रहास्यजी दुर्गापूजा करनेको जाने लगे तो राजाने मंत्रीके बेटे मदनको बुलाया और कहा कि हम चंद्रहास्यको राज्यतिलक देंगे उसको तुम अतिशीघ्र ले आओ, उसने यह विचारा कि अब तो राज्य घरमें आया अत्यन्तही प्रसन्न हुआ, और शीघ्रतासे चंद्रहास्यजीके पास आया तौ चंद्रहास्यजीको तौ राजाके पास भेज दिया. और आप दुर्गादेवीके भवनमें पूजा करनेको गया. राजाने प्रसन्नतासहित चंद्रहास्यजीको राज्यतिलक दे दिया; और समस्त काम उनकी सुपुर्द कर दिया. इधर जब मंत्रीका बेटा दुर्गाभवनमें गया तौ वधिकोंने उसको तत्कालही मार डाला. जब मंत्रीने अपने पुत्रके मरनेका समाचार सुना तौ अत्यन्तही व्याकुल हो रुदन करता हुआ अपने पुत्रके मृतक शरीरके पास जा पहुँचा और पत्थरोंपर शिर पटक २ कर मर गया. जब चंद्रहास्यजीको यह समाचार विदित हुआ तौ वह तत्काल करुणासे व्याकुल हो गये, और अतिशीघ्र दुर्गादेवीके भगवनमें आये और दुर्गादेवीको हाथ जोड स्तुति कर इनके जीवित होनेकी प्रार्थना करने लगे. जब दुर्गाजीने इनके जीवित होनेका कुछभी उत्तर न दिया, तौ इन्होंने खड्ग निकाला और अपने मारनेको उपस्थित हुए तब दुर्गाजी प्रसन्न होकर उसके सन्मुख आनकर खडी हो गई, और चंद्रहास्यजीका हाथ पकडकर अत्यन्त प्रीतिसे कहा कि यह दुष्ट धृष्ट बुद्धि सर्वदा तुम्हारे मारनेके उपायमें रहता था, उसके बदले यह अपने बेटेके सहित मारा गया है अपनी करनीका फल इसको प्राप्त हो गया, अब इसको जीवित करना किसी प्रकारभी योग्य नहीं, तब चंद्रहास्यजीने हाथ जोड प्रार्थना करी कि हे मातः ! आपका यह वचन सत्य है, परन्तु आपको सब सामर्थ्य है कि उनके मनको निर्मल

कर भगवान्‌का भक्त कर देगी तो यह फिर किसीके साथ बुराई नहीं करेगा. यह उसकी वार्ता सुनकर दुर्गादेवी तत्काल प्रसन्न हो गई. और उन दोनोंको जीवित कर दिया; जब मंत्रीने भगवान्‌की भक्तिका यह प्रताप देखा तो वह उसी समय भगवान्‌का भक्त हो गया और अत्यन्त प्रीतिसे चंद्रहास्यजीके चरणोंमें गिर पडा और भगवान्‌का भक्त हो गया. फिर चंद्रहास्यजीने तीन सो वर्ष राज्य किया और अपने राज्यमें भगवान्‌की भक्तिका प्रचार अत्यन्तही किया. जिस समय राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया तब उसका अश्व चंद्रहास्यजीने पकड लिया तो श्रीकृष्णमहाराजने विचारा कि जब चंद्रहास्यजीने मुझकोही पकड रक्खा है कि वह मुझे बाहर नहीं जाने देते तो फिर किसकी सामर्थ्य है कि उसको युद्धमें विजय कर सके इस कारण स्वयं चंद्रहास्यजीके पास गये और अर्जुनके साथ मिलाप कराकर घोडा उलटा दिवा दिया. फिर चंद्रहास्यजीने अपने बडे बेटेको राज्यतिलक दे दिया; और आप राजा युधिष्ठिरके यज्ञमें गये. अब विचारना योग्य है कि इस कथाके लिखनेसे भक्तोंको कितनी शिक्षा होती है; प्रथम तो प्रतिमानिष्ठाका फल दिखाया है दूसरे यह कि भगवान्‌के भक्त मृत्युसेभी नहीं डरते हैं. तीसरे यह दिखाया है कि महाकष्ट और आपत्तिकालमेंभी भगवान्‌का भजन और चिंतवन नहीं छूटता है चौथे यह है जो कोई उनके साथ बुराई करता है वह उसके साथ तबभी भलाईही करते हैं; इसके उपरान्त यह वार्ता तो प्रसिद्धही है कि भगवान् अपने भक्तोंके वशमें हैं, और अपनी प्रसन्नतासे भक्तोंकी प्रसन्नताको अधिक समझते हैं, देखो जब चंद्रहास्यजीसे घोडा छुडवाया तो आप जाकर हाथ जोड उनकी विनती करी थी; और क्रोधित हो युद्ध कर घोडा नहीं छुटाया उनको

सब सामर्थ्य हैं वह एक क्षणमेंही करोडों ब्रह्मांडोंको प्रगट और नष्ट कर सकते हैं.

दोहा-पर्वतसौं राई करै, पर्वत राई माहिं ।
असमर्थ रघुनायकहि, क्यों न भजत मन ताहिं ॥

नामदेवजीकी कथा २.

नामदेवजी ज्ञानदेवजीके शिष्य विष्णुस्वामी संप्रदायके अधिष्ठाता और आचार्य भक्तिका लोक प्रकाशित करनेको सूर्यकी समान हुए. इन्होंने बालकपनमेंही अपनी भक्तिके बलसे भगवान्को वश कर लिया था; भगवान्के अंशसे उनका जन्म है, पंढरपुरमें वामदेव नामका छीपी भगवान्का भक्त हुआ, उसकी पुत्री बालअवस्थामेंही विधवा हो गई थी. जब वह बारह वर्षकी हुई तो वामदेवने उसको भगवान्की सेवा और पूजा करनेका उपदेश दिया और कहा कि प्रीतिसहित भगवान्की सेवा करना. जब उस कन्याकी प्रीति भगवान्ने अंतःकरणसे देखी तो आप प्रसन्न हो गये, यहांतक हुआ कि अवस्थाके अनुसार उसको कामकी इच्छा हुई तो वहभी भगवान्ने पूर्ण करी, भगवान्की कृपासे वह गर्भवती हो गई; और सारे नगरमें और गांवभरमें उसकी निन्दा होने लगी. यहांतक हुई; कि वह समाचार वामदेवजीकोभी विदित हो गया तो उन्होंने लडकीसे पूछा कि यह क्या हुआ ? तब लडकीने कहा कि तुमनेही तो मुझको आज्ञा दी थी कि तेरे सभी मनोरथ भगवान् प्राप्त करेगें ! सो जो कुछभी हुआ है सभी भगवान्से हुआ है. वामदेवजी इस शुभ समाचारको सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए फूले न समाये; और जिस समय लडकेका जन्म हुआ तो उसके उत्सवमें बहुतसा धन द्रव्य दान कर दिया, और उसका नामदेव नाम रक्खा; और अपने जीवनसेभी उसको अधिक

प्यारा जाना; और जो भगवान्से विमुख और मूर्ख थे उनका संदेह दूर होनेके लिये पुराणकी कथाके विषयमें विशेष भगवान्का वाक्य स्मरण हुआ. भागवतके दूसरे स्कंधमें लिखा है कि जो कोई निष्काम वा सर्व कामना अथवा मुक्तिके लिये जो स्थिर भावसे सेवन करता है तो मैं उसकी कामना अपने आपसे पूर्ण करता हूं. एकादशस्कंधमें लिखा है कि मैं अपने भक्तोंको मुक्तिभी देता हूं; संसारी कामना तो उसके आगे तुच्छ है. तिसके उपरान्त जो भगवान् अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये अपने धामको छोडकर चले आते हैं, और वराह मीन कच्छप अवतार धारण कर लेते हैं; वह भगवान् किसी भक्तकी कामकी इच्छा पूर्ण करें तो क्या आश्चर्य है ? जो भगवान्के अवतार, गोपिका कुब्जा इत्यादिके चरित्रोंपर विश्वास है तो नामदेवजीका जन्मभी भगवान्सेही निश्चय है. निदान जन्मसेही नामदेवजीको भगवान्में अत्यन्तही प्रीति हुई और जितनी अवस्था बढती गई उतनीही भगवान्में अधिक प्रीति होती गई. जब यह दो चार वर्षके हुए तो खेलमेंभी भगवान्को आराधनका खेल खेला करते, अर्थात् एक भगवान्की मूर्त्ति बना लेते इसको सुन्दर २ वस्त्राभूषण पहराते और आरती करते और भगवान्के ध्यानमें मग्न रहा करते, और अपने नानासे हठ किया करते कि यह भगवान्की मूर्त्ति मुझको दे दो वह इनको बालक समझकर टाल देता. एक दिन उनके नानाने कहा कि मैं दो चार रोजमें गांवको जाऊंगा, और तीन दिनके पछि आ जाऊंगा, तुम मेरे पछिमें भगवान्की पूजा और सेवा करना यदि जो भगवान् तुम्हारा लगाया हुआ भोग ग्रहण कर लेंगे तो हम समस्त पूजा तुमकोही सौंप देंगे, नानाके यह वचन सुनकर नामदेवजी अत्यन्तही प्रसन्न हुए, और नानाके जानेके दिन गिनने लगे, और पूछने लगे कि तुम गांवको कब जाओगे ? निदान

नानाके जानेका दिन आया तो इन्होंने भगवान्की पूजाकी विधि और दूध पिलानेकी रीति बताई और फिर गांवको चले गये. नामदेवजीने विचारा कि सन्ध्या तो हो गई अभीतक गौ नहीं आई तो आप जंगलकोही चले गये और दूध दुहकर ले आये फिर आकर मातासे कहा कि दूध पिलानेका समय तो हो गया शीघ्रतासे दूधको औटा दो, फिर जब दूध औट गया तो उसमें सुगंधित मिश्री मिलाई और कटोरा भरकर अति प्रीतिसे भगवान्के सन्मुख ले गये परन्तु उनके मनमें यही भय रहा कि कहीं मुझसे कुछ अपराध न हो गया हो इस कारण हाथ जोड अतिनम्रतासे विनती करने लगे कि हे महाराज! दूध तैयार हो गया है मुझको अपना दास समझकर ग्रहण कीजिये और अपने दासको परम आनंदित कीजिये. भगवान् नामदेवजीकी ऐसी निर्मल प्रीति देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए; और उनके मनमें अपने मनोहर स्वरूप और भावबुद्धिकी वृद्धि कर दी. परन्तु एक साथही पूर्ण परीक्षा किये विना दूधपान नहीं किया. नामदेवजी बालक तो थेही. इनके मनमें यह बात थी कि भगवान्भी बालकोंकी समान दूध पिया करते होंगे, इस कारण भगवान्के चुप रहनेसे उदास हो गये, और उनके सामनेसे एक ओरको जाकर ठंडे २ श्वास भरने लगे, और जब कुछ न बसाई तो आप रुदन करने लगे और कहने लगे कि हे महाराज! दूध क्यों नहीं पीते? पीकर तो देखो इसमें तो मिश्री मैंने बहुतही डाली है और औटायाभी बहुतही है. अंत जब कुछभी भगवान्ने न सुना तो विना खाये पिये रुदन करते हुए वहीं पडे रहे. इसी प्रकार दो दिन बीत गये; तीसरे दिन उसका नाना आनेवाला था तो यह चिन्ता हुई कि यदि जो आजभी भगवान्ने दूध नहीं पिया तो प्रभातको भगवान्की पूजा हमको नहीं मिलेगी, इस कारण फिर अत्यन्तही सुन्दरतासे औटाकर एक उत्तम और मनोहर

कटोरेमें भर दूधको फिर भगवान्के समीप ले गये, इन्होंने हाथ जोड दूध पीनेके लिये प्रार्थना करी. जब देखा कि भगवान् नहीं पीते तौ एक छुरा निकालकर गला काटनेको उपस्थित हुए, जब भगवान् उसकी दृढता और इतनी प्रीति देखी तौ एक हाथसे तौ उसका हाथ पकड लिया और दूसरे हाथसे दूधका कटोरा उठाकर पीने लगे. जब उस कटोरेमें थोडा दूध रह गया तौ नामदेवजीने कहा कि भगवन् ? आप तो सर्वदा कटोरा भर २ कर दूध पीते हैं और मैं तौ तीन दिनका भूंखा हूं कुछ मेरे लियेभी तो छोड दो. उसकी यह वार्ता सुनकर भगवान् हँसे और उसको अपना महाप्रसाद दिया. स्कंदपुराणमें लिखा है कि भगवान् न तौ काष्ठकी मूर्तिमें है और न पत्थरकी मूर्तिमें है वह तौ केवल अपने भक्तकी श्रद्धामें है. इसलिये पूर्ण श्रद्धा होनी कर्तव्य है. दूसरे दिन नामदेवजीके नाना आये और उन्होंने दूध पिलानेका वृत्तान्त पूंछा तौ नामदेवजीने प्रसन्न हो समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और यहभी कहा कि मैं नहीं जानता कि किस कारणसे दो दिनतक तौ भगवान्ने दूध नहीं पिया. जब तीसरा दिन हुआ और मैं अपना गला काटनेको तैयार हुआ तौ झट डरके मारे भगवान् पी गये, और नाना वह तौ समस्तही पिये जाय थे जब मैंने धूम मचाई तौ थोडासा मुझकोभी दिया था. जब नानाने यह चरित्र सुना तौ आनंदके मारे फूला न समाया और कहने लगा कि मुझेभी तौ दिखाओ. इसके उपरान्त नामदेवजी उसी प्रकार कटोरा भरकर ले गये और जभी विलम्ब होता देखा तौ चक्कू निकालकर दिखाया, भगवान्ने तत्कालही दूधको पान कर लिया. धन्य है भगवान्का अचल प्रेम और भक्तवत्सलताको वेद सर्वदा यही बखान करते हैं और शिव इत्यादिक देवता जिसके लिये नाना प्रकारकी समाधि लगाते हैं. वह अपने भक्तोंकी भक्ति और प्रीतिके वशमें है कि

उनकी इच्छाके अनुसार सब कुछ करता है. यह बात सब देशमें प्रचलित हो गई फिर म्लेच्छजातिके बादशाहने नामदेवजीको बुलाकर पूंछा कि मैंने सुना है कि तुमको खुदा मिला है तो हमकोभी खुदासे मिला दो अथवा कुछ अपनी सिद्धता दिखाओ. बादशाहकी यह वाता सुन नामदेवजी बोले कि हजूर ! यदि हमसे सिद्धिता होती तो छापीका काम क्यों करते ? हमारे यह जो कोई साधु संत आ जाता है उसको आध सेर आटा बांट खाते हैं, उसीके प्रतापसे आपने बुला लिया तब बादशाह बोला कि हम यह छल और कपटकी बातको नहीं सुनते. यह मरी हुई गाय पडी है इसको जीवित कर दो नहीं तो मैं तुमको मरवा दूंगा, तब नामदेवजीने एक विष्णुपद बनाकर कीर्तन किया उसका पद यह है कि " विनती सुन जगदीश हमारा " इस पदको श्रवण करतेही गौ जीवित हो गई, यह देखकर बादशाहको भगवान्‌म श्रद्धा और भक्ति हो गई वह तत्कालही इनके चरणोंम ागर पडा और हाथ जोड प्रार्थना करने लगा कि मेरा जो कुछ धन राज्य इत्यादिक है तुम समस्तही ले जाओ. तब नामदेवजीने कहा कि हमको कुछभी नहीं चाहिये केवल तुम हमको यहांसे जाने दीजिये. बादशाहने एक सुवर्णका जडाऊ पलंग उनकी भेंट करा, उसको वह शिरपर रखकर चले और जो बादशाहके नौकर इत्यादिक उनके साथ आये थे सबसे कहा कि अब तुम अपने २ घर जाओ. चलते २ मार्गमें एक नदी थी उसीमें पलंगको डाल दिया. जब बादशाहने यह समाचार सुना तो उसको महान् आश्चर्य हुआ और अपने नौकरोंको भेजकर पलंगको मंगाया कारण कि उसको देखकर दूसरा पलंग बनवा लेंगे. जब बादशाहके नौकर नामदेवजीपर गये और उन्होंने पलंगको मांगा तो नामदेवजीने उसी साथके अगणित पलंग नदीमेंसे निकालकर

नोकरोंको दे दिये और कहा कि इनमेंसे अपना पहचान कर ले जाओ, तब तो बादशाह घबडा गया और आकर उनके चरणोंमें गिर पडा. तब नामदेवजीने बादशाहसे कहा कि फिर किसी साधुको मत सताना और न कभी हमको बुलाना; यह कह अपने घरको चले आये, एक दिन पंढरपुरके ठाकुरद्वारमें भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये गये, व ठाकुरद्वारेपर लोगोंकी बडी भीड हो रहा थी. मनमें यह विचारा कि जूतोंको दरवाजेपर छोडे जाता हूं तो मनमें चिन्ता रहेगी, इस कारण जूतोंको कमरसे बांध लिया तब मंदिरमें गये. दैवसंयोगसे जूतेका कोना दीखता था किसीने देख लिया तो खूब मारा और फिर मंदिरमेंसे निकाल दिया नामदेवजीको मंदिरमें निकाले जानेसे कुछभी शोक न हुआ और न उनको क्रोधही आया. वह मंदिरके पीछे जाकर बैठ गये और भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे कि आपने जो मुझको दंड दिया सो बहुतही अच्छा किया परन्तु मुझे तो आपके सिवाय और कहींभी ठौर नहीं है और न कुछ मुझको अभिलाषा है और जो पुरुषोंको दर्शन होता है परन्तु मेरी कान तो कीर्तनपर है. यह कहकर कीर्तनका आरंभ किया और एक विष्णुपद बनाया जिसमें उलाहना और अपनी नम्रता दीखे उसका प्रथम पाद यह है "हीन जाति मेरी यादवराय" भगवान् इस पदके सुनतेही करुणा कर दयालुतासे व्याकुल हो गये और मंदिरको जडसे उलटा फर दिया और उसका दरवाजा नामदेवजीके मुखकी ओरको कर दिया. यह चरित्र देखकर समस्त महंत और वहांके पुजेरी इत्यादि सभा लज्जित हो गये और उन्होंने नामदेवजीके चरणोंमें अपना मस्तक धर दिया और अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना करने लगे इसी कारणसे आजतक उस मंदिरका द्वार दक्षिणकी ओरको है. एक समय नामदेवजीके गृहमें अग्नि लग गई जो वस्तु अग्निसे दूर रक्खी

थी आप उसकोभी अग्निमें डालने लगे और कहा कि हे अग्नि ! मैं तुमको सम्पूर्ण अग्निमें भेंट करता हूं तुम प्रसन्न होकर लीजिये. तब भगवान् बडे प्रफुल्लित होकर बोले कि क्या इस अग्निमें यह मुझको मानता है. तब नामदेवजीने उत्तर दिया कि यह गृह आपहीका है. आपके विना और कौन इसमें व्यापक हो सकता है ? तब भगवान्ने प्रसन्न होकर एक बहुतही सुन्दर छप्पर अपने हाथसे छादिया. एक समय किसी मनुष्यने नहीं देखा था तब वह मनुष्य नामदेवजीसे पूछने लगा कि यह तुम्हारा छप्पर किसने छाया है मुझको बहुतही सुन्दर लगता है और जिससे तुमने छवाया है वह छवाईमें क्या लेता है ? तब नामदेवजीने कहा कि वह छवाई तौ बहुत कठिन लेता है. वह तन मन धन सम्पूर्णही चाहता और जब यह वस्तु पहले ले लेता तब पीछे दर्शन देता है. पंढरपुरमें एक बडा धनाढ्य साहूकार रहता था उसने तुलादान करा फिर बहुतसा धन सारे नगरमें बांटा, किसीके कहनेसे उसने नामदेवजीकोभी बुलवाया तब नामदेवजीने यही कहा कि हमको तौ कुछभी इच्छा नहीं है. जब तीसरी वार फिर आदमी बुलानेको आया तो आप वहां गये तो साहूकारने इनसे कहा कि मैं बहुत सारा धन नगरमें बांटा है जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सो लीजिये, जिससे मेरा मनोरथ सुफल हो. नामदेवजी बोले कि जिसमें तुम्हारा भला होता हो उस वार्ताको हम कैसे अयोग्य समझें और अपने मनमें कहा कि जिस समय तू अपने मनसे द्रव्यका अहंकार त्याग देगा उसी समय तेरा पुण्य होगा इस कारण एक तुलसीदलपर 'रा' अक्षर लिखकर जिसमें श्रीरामचंद्रजीका आधा नाम होता है साहूकारको दिया और कहा कि इसकी बराबर मुझको सुवर्ण तोल दे. साहूकारने कहा कि तुम तो मेरा हास्य करते हो. तुम मेरा द्रव्य और दयाको देखकर कुछ मांगो, नामदेवजी बोले कि मैं हँसी नहीं

करता मुझको केवल इतनेही सुवर्णकी अभिलाषा है सो मुझको दे दो. साहूकारने थोडासा सुवर्ण मँगाकर एक तुलसीदलकी बराबर लिया; परन्तु न हुआ. तब उसने तुला मंगवाई और उसपर पांच सात सेर सुवर्ण रक्खा, परन्तु उस समयभी पूरा न हुआ तो पांच सात मन रक्खा और फिरभी तुलसीदलका पल्ला पृथ्वीपरही पडा रहा. तब फिर साहूकारने घरमेंसे सुवर्ण मंगवाया परन्तु तौभी पूरा न हुआ तब साहूकार और उनके समस्त घरवाले अचंभित हो गये उस समय नामदेवजीने विचारा कि इसको द्रव्यका अहंकार तो जा रहा है. परन्तु इसको अपने पुण्यधर्मोंका अहंकार बना हुआ है. सो यहभी दूर करना उचित है. इस निमित्त कहने लगे कि तैंने जो धर्म किये हैं उन सम्पूर्ण धर्मोंका संकल्प कर दे. साहूकारने तत्कालही उनका संल्कप कर दिया, परन्तु फिरभी पूरा न हुआ; तो उसने हार मानकर कहा कि महाराज ! इतनाही ले जाओ, तब नामदेवजी बोले कि अरे मूर्ख ! यह धन हमारे किस अर्थका है मैं तो केवल एक भगवान्‌की भक्तिका द्रव्य-चाहता हूं. जिसके अनुसार समस्त देवता और द्रव्य स्थिर रहते हैं, तब तो साहूकार बडा लज्जित हुआ और वह प्रेममें व्याकुल हो भगवान्‌का भक्त बन गया. जिस समय यह चरित्र हो चुका तो भगवान्‌ने विचारा कि मैं नामदेवजीके एकादशी व्रतकी परीक्षा करूं इस निमित्त एक अत्यन्तही दुर्बल ब्राह्मणका रूप बनाकर नामदेवजीसे कुछ भोजन मांगनेके लिये आये नामदेवजी उस समय व्रत किये हुए थे. उन्होंने उस समय कुछभी भोजन न दिया. बहुत समयतक यही झगडा रहा कि ब्राह्मण तो मांगता था और नामदेवजी नहीं देते थे; यहांतक हुआ कि होते २ आपसमें लड पडे, उनकी लडाईको सुनकर बहुतसे मनुष्य एकत्रित हो गये, तब उन मनुष्योंने आकर नामदेवजीको समझाया कि जो कुछ

तुम्हारी श्रद्धा हो इनको भोजन देकर टाल दो, परन्तु नामदेवजीने एकादशीके दिन भोजन देना कदापि योग्य न समझा और ब्राह्मणभी हठमें आकर उनके गृहपर निराहार समाधि लगाकर बैठ गया, और संध्याके समय वह क्षुधाके मारे व्याकुल होकर मर गया. जो मनुष्य एकादशीव्रतके माहात्म्यको नहीं जानते थे वह कहने लगे कि नामदेवजीको आज ब्रह्महत्या हुई. परन्तु नामदेवजीको कुछभी चिन्ता न हुई और उन्होंने एक चिता बनाई, फिर उस ब्राह्मणके साथ दग्ध होनेका मनोरथ किया; और उसमें आप बैठ गये और कहा कि, इसमें अग्नि दे दो. उस समय भगवान्को हँसी आई और उनके दृढ स्नेहको देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए. जब मनुष्योंने यह चरित्र देखा तो नामदेवजीके चरणोंमें गिर पडे एकादशीके दिन नामदेवजीके स्थानपर रात्रिको जागरण हुआ करता था. उस समय भगवान्के भक्तोंको प्यास लगी परन्तु जल वहांपर नहीं था और प्रेतके भयसे कोईभी जल लेनेको न गया क्योंकी वह प्रेत वापिका बावडीहीमें रहा करता था. उस समय नामदेवजी स्वयं घडा लेकर जल लेनेको गये और प्रेत बडे भयंकर रूपसे उनकी दृष्टि पडा. नामदेवजीने उसी समय ताल हाथमें लेकर एक विष्णुपद गाया. जिसका प्रथम पाद यह था. "यह आये मेरे लम्बकनाथ, धरती पांव स्वर्ग लग माथो योजन भरभर हाथ" भगवान् उसी समय प्रेतसे प्रगट हुए और वह प्रेतभी नामदेवजीकी कृपासे भगवान्के धामको गया, तब नामदेवजी एकादशीके जागरणके ऐसे प्रेमी हुए कि सम्पूर्ण जागरण करनेवालोंमें प्रथम गिने गये और अबतक यह रीति है कि जिस स्थानपर एकादशीका जागरण होता है वहां मंगलाचरणके लिये प्रथम नामदेवजीहीका कवित्त पढा जाता है.

दोहा–मोरमुकुटकी लटकमें, मम मन रह्यो समाय ।
करिके कृपा विलोकिये, सफल जन्म हो जाय ॥

अल्हजीकी कथा ३.

अल्हजी महाराज परम भगवान्के भक्त हुए. एक समय वह तीर्थकी यात्रा करनेको गये वहां जाकर किसी राजाके बागमें स्नान और पूजन करनेके लिये ठहरे. वहांपर इन्होंने पके हुए आम देखकर भगवान्के भोगके लिये आंब मांगे तो उसने उत्तर दिया कि यदि आमोंको खाये विना तुम्हारा चित्त नहीं मानता तो आप तोड लीजिये. अल्हजीने कुछ अपने स्वादके निमित्त तो मांगेही नहीं थे उन्होंने तो केवल भगवान्के भोग लगानेको मांगे थे, सो भगवान्ने ऐसी महिमा करी कि आमक वृक्षको इतना नीचा झुका दिया कि वह सिंहासन तक आ गया. तब अल्हजीने आम तोडकर भगवान्के भेंट करे; तब मालीने जाकर राजासे कहा कि हे राजन् ! एक साधूने इस प्रकार आपके बागके आम तोडे हैं राजा तत्कालही आया और अल्हजीके चरणोंमें गिर पडा और प्रार्थना करने लगा कि भगवन् ! आपके चरणोंकी रजसे आज मेरा बाग और सम्पूर्ण मेरा देश पवित्र हो गया अब मेरे ऊपर कृपा कर और कुछ आज्ञा करो. अल्हजीने उसपर दया कर भगवान्का भक्त बना दिया. अब विचारना चाहिये कि भगवान्की भक्ति और भक्तोंका कैसा महान् पवित्र प्रताप है कि जिनके चरणोंमें शीश नवाते हैं. फिर जो एक आमका वृक्ष नीचेको झुका दिया तो क्या आश्चर्यकी बात है.

दोहा–भक्तनको सामर्थ्य सब, जो कछु करैं सो थोर ।
जिनपर रीझत हैं सदा, मोहन नन्दकिशोर ॥

पृथ्वीराजकी कथा ४.

कालियानसिंह राजाके पुत्र बीकानेरके राजा पृथीराज अत्यन्तही भगवान्का भक्त और पंडित हुए वह कवित्त दोहा तो भाषामें

बनाते और श्लोक संस्कृतभाषामें बनाकर भगवान्के गुणानुवादका कीर्तन किया करते. उन्होंने सम्पूर्ण पिंगलशास्त्र पढ लिया था; इस कारण वे अत्यन्त उत्तम कवीश्वर हो गये. वे श्लोकके अर्थको ऐसा मधुरवाणीसे वर्णन करते कि सुननेवालोंके मन आनंदसे व्याकुल हो जाते. उनको भगवान्की सेवामें बडाही प्रेम था, उन्होंने इन्द्रियोंको ऐसा जीत लिया था कि अपनी सारी अवस्थामें स्त्रीसे कभी भोग न किया होगा. वे एक समय कहीं किसी यात्रा करनेको चले वे जिस मूर्तिका पूजन घरपर करते थे उसीका मानसीपूजन उन्होंने यात्रामें करा. एक दिन वह मूर्ति इनके ध्यानमें न आई तो इनको बडा सन्देह हुआ. दूसरे दिनभी यही चरित्र हुआ उस समयभी उनको दोनों दिनतक मूर्ति ध्यानमें न आनेकी चिन्ता बनी रही. फिर उन्होंने अपने मंत्रियोंसे ठाकुरजीके मंदिरका वृत्तान्त पूछा तो उसको यह उत्तर मिला कि मंदिरको सफा करा था इस कारण दो दिनतक मूर्ति मंदिरसे बाहर स्थापित थी. इस वार्ताको सुनकर राजाकी चिन्ता निवारण हुई और फिर आनंदित हुआ. इस राजाका यह अभिप्राय था कि मेरा देहांत मथुराजीमें हो तो अति उत्तम है. जब बादशाहने यह समाचार सुना तो राजाको काबुलके युद्धपर भेज दिया. राजाको इस यात्रामें एक २ दिन कल्प २ की समान व्यतीत होता था; इस कारणसे कि उसका अंतकाल निकटही आ चुका था. जब राजाका मरणकाल समीपही आ गया तो भगवान्ने राजाको स्वप्न दिया कि तुम अतिशीघ्र मथुराजीको जाओ. पृथ्वीराज प्रभात होतेही तुरंगपर चढकर मथुराजीको गये और इनकी इच्छानुसार इनका देहांत हो गया और इन्होंने भगवान्के धाममें निवास पाया तब इनकी जयका शब्द सम्पूर्ण पृथ्वीपर हुआ और इनकी भक्तिका निर्मल यश संसारमें विख्यात हुआ. इस राजाकी

एक और कथा कवीश्वरने वर्णन की है एक समय राजा अपनी सेनासहित एक महाभयंकर उद्यानमें रह गया; वहांपर कोई नगर अथवा ग्राम न था; इस कारण सेनाको अन्न इत्यादि वस्तु न मिल सकी, भगवान्‌ने भक्तके वशीभूत हो तत्कालही वहां एक नगर बसा दिया; जिसके प्रतापसे सेना बहुतही प्रसन्न हुई.

दोहा—कृष्णभक्तिके करतही, बनत लोक परलोक ।
चार पदारथ कर रहैं, मिटहिं सकल भ्रम शोक ॥

धनाभक्तकी कथा ९.

धनाभक्त जातिके जाट थे वह भगवान्‌के बडे प्रेमी हुए इनकी कथा यह है कि जिस समय यह बालक थे तो एक ब्राह्मण भगवान्‌का भक्त इनके गृहपर आया और वह भगवान्‌का सेवन तथा पूजन किया करता था. धनाभक्तने उससे कहा कि एक मूर्ति मुझकोभी दे दो तो मैंभी पूजन किया करूं ब्राह्मणने पहले तो कहा कि तुम पूजन नहीं कर सकते परन्तु जिस समय धनाभक्तने बहुतही हठ करी तो उसने एक श्यामवर्णकी पाषाणकी मूर्ति उसको दे दी. धनाजी अत्यन्तही प्रसन्न हुए और जिस प्रकार वह ब्राह्मण पूजा इत्यादि किया करता था उसी रीतिसे आपनेभी करना आरंभ किया अर्थात् प्रथम तो आपने स्नान किया और फिर भगवान्‌को स्नान कराया और फिर तालकी मृत्तिकाका तिलक लगाया और दो एक अत्यन्त प्रीतिसे तुलसीके पत्र तोडकर चढा दिये; फिर प्रसन्नतासहित साष्टांग दंडवत् करी. जिस समय उसकी माताने रसोई तैयार करके लाई उस समय भगवान्‌को भोग लगाया और नेत्र बंद कर लिये फिर बहुत देरतक इसी विचारमें रहे कि अब भगवान् भोग लगावें, परन्तु जब देखा कि भगवान्‌ने भोग न लगाया तो वारंवार हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगे; परन्तु भगवान्‌ने फिरभी भोग न लगाया तो

बालकोंकी समान रुदन करने लगे और रोटीको तालमें डाल दिया और आपभी विना भोजन पानके रहे. जब कई दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये और भूख प्यासके मारे मरनेकी तुल्य हो गये तौ भगवान्को अपने भक्तपर दया आई और प्रीतिसहित रोटियोंका भोग लगाया. जब आधी रोटी रह गई तौ धनाजी बोले क्या सब रोटी तुमही खा जाओगे कि कुछ मुझकोभी दोगे भगवान् मुस्कुराये और रोटी धनाजीको दी. उनकी नित्त यही रीति पड गई. धनाजीने जो भगवान्का अत्यन्त मनोहर रूप देखा तौ उसको ऐसी प्रीति हो गई कि वह एक क्षणमात्रभी जो भगवान्का ध्यान न करते तौ व्याकुल हो जाते. भगवान्ने विचारा कि मैं जिसकी रोटी रोज खाता हूं तौ उसका कुछ कार्यभी तौ करूं यह विचार कर धनाभक्तकी रोज गौयें चुगा लाया करते. एक समय फिर वही ब्राह्मण आया और सेवन पूजनका कुछभी चिह्न धनाभक्तके पास न देखा तौ उन्होंने इसका कारण पूंछा तौ धनाने कहा कि महाराज ! तुम मुझको भला पूजन दे गये कि कितने दिनतक तौ मैं भूखा प्यासाही रहा और अब बडी कठिनतासे वशमें आया है सो वह ऐसा वशमें हो गया है कि गायभी चुगा लाता है. यह बात सुनकर ब्राह्मणको महा आश्चर्य हुआ और बोला कि हमकोभी दर्शन करा दो. तब धनाजीने उस ब्राह्मणकोभी दर्शन करा दिये और उस ब्राह्मणने उस परममनोहर रूपको देखकर चरण पकड लिये और प्रेमके मारे व्याकुल हो गये नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये; फिर वह वहांसे अपने घरपर आये और उसी रूपका ध्यान करते २ भगवान्को प्रसन्न कर दिया और आप कृतार्थ हो गया. और इधर भगवान्ने धनाभक्तको यह ज्ञानका उपदेश दिया कि तुम काशीजीमें जाकर रामानंदजीसे मंत्रोपदेश लो. फिर धनाभक्त तत्कालही

काशीजीको गये औ रामानंदजीके पास आये. रामानंदजीने इनको भगवान्का भक्त जानकर बडे आदरभावसे मंत्रका उपदेश किया; फिर इनको जानेकी आज्ञा दी कि तुम साधुओंकी सेवा भली प्रकारसे करना; सो धनाजी वहांसे आकर अपने घरपर आये और अपने गुरुकी आज्ञानुसार कार्य करते रहे. एक समय बीज बोनेके लिये गेहूं लिये जाते थे मार्गमें इनको साधु मिल गये, वह अन्न उनकी भेंटमें कर दिया और क्षेत्रको मातापिताके भयसे खेतको जैसा बोनेपर बनाके छोड देते हैं वैसा कर छोड दिया, फिर घरपर आये. भगवान्ने विचारा कि जो मनुष्य अन्न प्राप्त होनेके निमित्त पृथ्वीमें बीज बोते हैं उनको दशगुणा फल प्राप्त होता है और धनाभक्तने तो मेरे भक्तोंके मुखमें डाला है तो इसको सहस्रगुणा फल अधिक देना उचित है इसी कारण धनाभक्तका क्षेत्र सम्पूर्ण क्षेत्रोंमेंसे श्रेष्ठ उपजाया. मनुष्योंके इनके क्षेत्रकी महिमा कहा करते तो धनाभक्त उनकी वार्ताको हँसीकी बात समझते थे. एक दिन वह आपभी अपना खेत देखनेको गया तो उसने अपने खेतको देखकर मनुष्योंके वचनको सत्य माना और भगवान्की करुणा और दयापर आनंदमें मग्न हो गया और प्रसन्न हो भक्तोंकी सेवा और टहल करने लगा. हे इन्द्र ! तू कैसा बुद्धिमान् है कि तैंने वज्रके बनानेके लिये दधीच ऋषीश्वरको दुःख दिया तैंने इस मेरे अभागी चित्तको क्यों न लगा लिया. जो करोडों वज्रोंसेभी कठोर है. किस कारणसे कि धनाभक्तकी ऐसी रमणीक कथा और भगवान्की भक्तवत्सलताको श्रवण करके कुछभी प्रेम नहीं करता.

दोहा–प्रभु रीझत हैं भक्तिसों, जाति पांति बिसराय ।
भजन करे मन लाय जो, दर्शन देत दिखाय ॥

देवाजीकी कथा ६.

उदयपुरके समीप रूपचतुर्भुजस्वामीका एक मंदिर है. वहांका पुजारी देवानामवाला एक ब्राह्मण था एक दिन जिस समय रात्रिको भगवान् शयन किये थे और उनकी जो माला उतरी थी सो इन्होंने धारण कर ली और मंदिरके पट बंदकर दिये; उसी समय उदयपुरका राजा आ गया. देवाजीने वह माला उतारकर तत्कालही उनके गलेमें पहरा दी. उस मालामें एक सफेद बाल राजाकी दृष्टि पडा; उसने देवाजीसे पूछा कि क्या भगवान्के बाल सफेद हो गये हैं तब देवाजीने उत्तर दिया कि हां महाराज ! हो तो गये हैं तब राजाने कहा कल प्रभातको हमभी दर्शन करेंगे यह कहकर राजा चला गया; देवाजीके मुखसे यह वार्ता विना विचारे निकल गई थी; सो अब उनको महाभय उपस्थित हुआ और विचारने लगे कि इस समय भगवान्के रक्षा करनेके सिवाय और कोई शरण देनेवाला नहीं है. व्याकुल होकर कहने लगे कि हे स्वामिन् ! हे हृषीकेश ! मेरे चित्तमें न तो आपकी भक्ति है और न सेवन पूजनमें प्रेम है. बताओ मैं आपकी शरणके विना कहां जाऊं. अब मेरी लज्जा आपहीको है जो इच्छा हो सो कीजिये. भगवान् अपने भक्तकी ऐसी प्रीति देखकर तत्काल प्रसन्न हो गये और अपनी सुन्दर देहपर प्रत्यक्षही सफेद बाल कर लिये. प्रभातको जब देवाजीने मंदिर खोला और भगवान्के सफेद बाल देखे तो अत्यन्तही आनंदित हुए और ऐसे प्रेमसे व्याकुल हुए कि उनको सुखदुःखका कुछभी विचार न रहा और भगवान्की भक्तवत्सलताके गुणानुवाद गाने लगे, इसी समयमें राजाभी आ गया और भगवान्के सफेद बाल देखकर विचारने लगा कि इस ब्राह्मणने किसीके बाल लेकर लगा दिये हैं इस भ्रमसे एक बाल पकड खैंचा; तो उसके खैंचनेसे भगवान्को दुःख हुआ और

फिर वह बालु टूट गया और वहांसे रुधिर निकलने लगा. राजाके समस्त वस्त्र भीग गये. राजाभी इस चरित्रको देखकर भयके मारे व्याकुल हो गया और एक पहरतक मूर्च्छित पडा रहा और जब चैतन्य हुआ तो देवाजीके चरण पकड लिये और अपने अपराधोंकी क्षमा मांगने लगा; तब भगवान्‌की आज्ञा हुई कि राजाके कुलको जिस समयतक कुमर रहे तबतक दर्शनको मंदिरमें आने पावेगा और जब राज्य हो जायगा तो उसको आनेकी आज्ञा नहीं. सो इस समयतक यही रीति वर्तमान है.

दोहा-निजभक्तनके हेत प्रभु, करत चरित्र अनेक ।
मूढ भयो नर भजन बिनु, अजहुँ न छांडत टेक ॥

दो लडकियोंकी कथा ७.

एक तो शूद्रकी लडकी और दूसरी राजाकी लडकी ऐसी भगवान्‌की भक्ति करनेवाली हुई कि जिनकी कथा भगवान्‌के भक्त आजतक गाते फिरते हैं. जो उनको नारायणीरूप लिखा जाय तो उचित है. इसका वृत्तान्त यह है कि एक समय राजाके गुरु आये थे वह भगवान्‌का पूजन किया करते थे; तब उन दोनों लडकियोंने एक मूर्ति गुरुजीसे मांग ली. उन्होंने उनकी बालअवस्था देखकर मूर्तिका देना तो उचित न समझा. उनको केवल एक २ पत्थरका टुकडा देकर कहा कि इनका नाम शिलिपली है. और उनको यह उपदेश दिया कि तुम मनसे इनका सेवन पूजन किया करो, तुम संसारसमुद्रसे पार उतर जाओगी. उनकी ऐसी आज्ञाको सुनकर उन दोनों लडकियोंने ऐसे प्रेमसे और स्नेहसे भक्तिका प्रारंभ किया कि भगवान् प्रसन्न हो गये. इस समयतक तो उन दोनों लडकियोंका वृत्तान्त साथ २ लिखा गया, परन्तु अब उनमेंसे अलग २ लिखा जाता

है शूद्रकी लडकीका चचा अपने भ्राताका अर्थात् लडकीके पितासे द्वेष रखता था वह इस ईर्षासे अपने भाईके ग्रामपर सेना लेकर चढ आया और लूटकर ले गया. उसी लूटमें वह मूर्तिभी जाती रही जिसका पूजन लडकी किया करती, इस कारण लडकी अत्यन्तही व्याकुल हुई और उसने उसी दिनसे खाना पीना त्यागन कर दिया. उस लडकीकी यह दशा देख वहांके मनुष्योंने बहुतही समझाया; परन्तु उस लडकीको विना भगवान्की मूर्तिके और कुछ अच्छा नहीं लगता था जब वह लडकी किसी प्रकार न मानी तो उनके घरके लोगोंने कहा कि जिस प्रकार हम तुम्हारे माता पिता हैं उसी प्रकार वेभी तेरे माता पिता हैं तू अपने आप जाकर मूर्तिको ले आ. यह वार्ता सुनकर वह लडकी वहांसे तुरंतही गई और जाकर अपने चचासे मूर्तिको मांगा, तब उसके चचाने कहा कि इनमेंसे पहचानकर ले जाओ जो तुम्हारी हो. तभी एक मनुष्य वहां बैठा हुआ बोल उठा जब कि तुझको ठाकुरजीसे इतनी प्रीति है तो ठाकुरजीभी तो तुझसे प्रीति करते होंगे, भला उनको पुकार तो सही वह तेरी पुकारको सुनकर यदि जो तुझसे प्रीति करते होंगे तो आप चले आवेंगे तो हम जानेंगे कि तेरी प्रीति सत्य है. तब वह लडकी दीनतासे पुकारने लगी कि शिलिपली महाराज ! तुम कहां हो मुझ निरपराधिनी दासीको कहां छोड गये हो मैं तुमको पुकार रही हूं, मेरे ऊपर कृपा कर शीघ्र चले आओ भगवान् इस कन्याकी यह वाणी सुनकर तुरन्तही आनकर प्रगट हुए; और उस लडकीको आनंदित किया. यह भगवान्का चरित्र देखकर समस्त नगर उनकी भक्ति करने लगा, राजाकी लडकीको भगवान्के सिवाय और किसीसे प्रीति न थी. उसने सब संसारी सुखोंका त्यागन कर दिया था, परन्तु उसका जिसके साथ विवाह

हो गया था वह लडका भगवान्से विमुख था. जब लडका इस लडकीकी विदा करानेको आया तो इसको अत्यन्तही चिन्ता हुई; परन्तु उसके मातापिताने भेजही दिया. लडकी दुःखित हो चली गई और उसने अपनी मूर्तिकोभी डोलीमें बैठा लिया और किसी दासीकोभी संग न लिया. जब मार्गमें उसका पति उसके समीप आया और वह भोग इत्यादिकी इच्छा करने लगा तो वह लडकी दुःखित हो उसके सन्मुखभी न हुई और न उसने कुछ कहा सुना तब उस लडकीके पतिने कहा कि हे प्रिये! तू मुझसे किस कारणसे नहीं बोलती हो और मेरे सामनेसे मुँह फेरकर बैठ जाती हो. कुछ तुमको रोग है तो मुझको शीघ्र बता दो मैं उसकी चिकित्सा करूंगा; तब तो वह लडकी बोली कि यदि जो तुम मेरे साथ वार्ता करनेकी इच्छा करते हो तो भगवान्के भक्त बन जाओ. यदि भक्त न बनो तो मुझसे बातभी न करना और न मुझे स्पर्श करना. यह सुनकर उसके पतिको बडा क्रोध आया और उसने उसकी मूर्तिको उठाकर एक नदीमें डाल दिया; उस मूर्तिके जानेसे इस लडकीको बडा दुःख हुआ और इसने खाने पीनेको त्यागन कर दिया. उसके पतिने विचारा कि जिससे यह प्रसन्न हो सो उपाय करना चाहिये. यह कह उसको बहुत समझाया बुझाया परन्तु लडकीके ध्यानमें कुछ न आया और जब वह अपने घरपर आया तो उससे समस्त मार्गका वृत्तान्त अपने घरवालोंको कह सुनाया. उसकी सासने सुना कि बहुने कई दिनसे नहीं खाया है तो वह अपने हाथसे उसको भोजन कराने लगी परन्तु उसका ध्यान तो भगवान्में लग रहा था उसने कुछभी न सुना और न उसने भोजनही किया. जब वहांकी सम्पूर्ण स्त्रियें समझाकर थकित हो गई तो उससे बोली कि तू हमसे कह दे कि किस रीतिसे प्रसन्न होगी? जो तेरी इच्छा होगी सोई हम पूर्ण करेंगी; तब उस लडकीने कहा

कि जब तुम वही ठाकुरकी मूर्ति मँगा दोगी तभी मेरा जीवन होगा और किसी प्रकारसे नहीं. तब सम्पूर्ण स्त्रियें मिलकर उसे साथ ले उस नदीपर गईं तो उस लडकीने गद्गदवाणीसे पुकारा कि हे शिलिपिल्ली महाराज! तुम कहां हो? ऐसा मुझे दासीसे क्या अपराध हुआ है जो तुमने मुझको त्याग कर दिया. जो तुम्हारी इच्छा इस जलसे स्नान करनेकी थी तौ मैं आपको श्रीगंगाजलसे स्नान करा देती मुझसे तुमने कहा तो होता. अब मुझ दासीपर कृपा करो और मुझको शीघ्र दर्शन दो मैं तुम्हारे दर्शनोंके विना अत्यन्तही व्याकुल हो रही हूं. अब विचारना उचित है कि जो भगवान् अपने भक्तके ऐसे वशमें हो जाते हैं कि जिस प्रकार कामी पुरुष अपनी सुन्दर स्त्रीके वशमें हो जाता है सो जब भगवान्ने उस लडकीकी मधुर वाणी दीनताकी भरी हुई सुनी तौ तुरन्तही प्रगट हो गये और उसके साथ जितने स्त्रीपुरुष थे सबको आपने अपनी भक्तिका भाव दिखाकर कृतार्थ कर. दिया.

संतदासजीकी कथा ८.

संतदासजी निवाई नाम ग्रामके निवासी विमलानंदके हंसप्रबोधनवंशमें भगवान्के परम भक्त हुए. जिस प्रकारसे राजा पृथुने अपनी स्त्रीके सहित भगवान्की भक्ति की थी उसी प्रकारसे संतदासजीने करी. उन्होंने अपने बनाये हुए ग्रंथोंमें भगवान्की भक्ति और भक्तोंकी महिमा बराबर वर्णन की है; उनकी कविता सूरदासजीकी कविताके समान थी. इन्होंने भगवान्के जन्म कर्म और चरित्रोंका ऐसी सुन्दरतासे वर्णन किया है कि जिनको श्रवण करके भगवान्के चरणोंमें ध्यान लग जाता है. एक समय इन्होंने विचारा कि भगवान्के भोगके लिये छप्पन्न प्रकारके भोजन होने चाहिये, यह विचार कर अत्यन्त सुन्दर भोजन बनाये और भगवान्को भोग लगाया. भगवान्ने प्रसन्न हो प्रीतिसे भोग लगा लिया और संतदासजीको विख्यात करनेके

प्रयोजनसे जो भोजन पुजारियोंने बनाया था उसका भोग न लगाया और भगवान्‌ने राजाको स्वप्न दिया कि मैं आज संतदासजीके घर भोजन करनेको गया था. इस कारण मैं वहांपर बहुतही भोजन कर गया हूं उसकी गरिष्ट अबतक नहीं गई है, राजाको यह सुनकर संतदासजीका भक्तिभाव प्रत्यक्ष हो गया और भगवान्‌की भक्तिकी वृद्धि हुई.

दोहा—जगकी माया छोडकर, मिश्र भजहु भगवान ।
पूर्ण ब्रह्म करि है सकल, पूरे मनके काम ॥

साखी गोपालजीकी कथा ९.

दो ब्राह्मण गौडदेशके रहनेवाले, एक तौ वृद्ध और दूसरा तरुण यह तीर्थयात्रा करनेको गये. यह जिस समय वृन्दावनमें पहुँचे तौ वह वृद्ध ब्राह्मण रोगग्रासित हो गया तौ तरुण ब्राह्मणने उसकी सेवा टहल भली प्रकार की तब वह आरोग्य हो गया. तब वह वृद्ध इनसे बहुतही प्रसन्न हो गया और उसने अपनी दुहिताका विवाह इनके साथ करनेका संकल्प किया तो तरुण ब्राह्मणने पूछा कि इसका साक्षी कौन है ? वृद्ध ब्राह्मणने कहा कि इसके साक्षी गोपालजी हैं. जिस समय वे दोनों ब्राह्मण अपने घरपर आये तौ तरुण ब्राह्मण विवाहकी इच्छा करने लगा परन्तु वृद्ध ब्राह्मणके कुटुम्बी बोले कि हमारे कुलकी पुत्री इस हीनकुलके योग्य नहीं; सो हम तौ विवाह नहीं करेंगे. यहां-तक हुआ कि पंचायत हुई और इसके तरुण ब्राह्मणसे साक्षी मांगे गये तब उस तरुणने कहा कि इस बातके साक्षी श्रीगोपालजी हैं. तब पंचोंने कहा कि जब इसकी साक्षी श्रीगोपालजी यहां आनकर दे जावें तौ हम इस कन्याका विवाह कर देंगे. यह सुनकर तरुण ब्राह्मण गोपालजीके मंदिरमें आया और प्रार्थना करके कहने लगा कि हे महाराज ! आप वहां चलकर मेरी साक्षी दें भगवान्‌ने बहुत दिनोंतक इसका

कुछभी उत्तर न दिया और जब गोपालजीने विचारा कि इसका मेरे ऊपर दृढ प्रेम है तो उससे कहा कि हे भाई ! कहीं प्रतिमाभी जाती सुनी है तब ब्राह्मणने कहा कि चलती नहीं तो बोलती किस प्रकार है ? इस बातका कुछभी उत्तर न दिया और उसके साथ हो लिये, परन्तु उस ब्राह्मणसे यह प्रतिज्ञा करली कि जिस समय तू पीछा फिरकर देखेगा तभी मैं वहीं स्थित हो जाऊंगा. तब उसने उत्तर दिया कि भगोरेकी वार्ताका क्या विश्वास ? जिसने गोपियोंका माखन चुरा २ कर खाया था और जिस समय वह पकडनेको जाती हैं तो वह भाग जाता है, इस कारणसे तुम मेरे संग संग चलो. यह सुनकर भगवान् हँसे और कहा कि हमारे घूंघरूकी झनकार तुमको सुनाई देती रहेगी ब्राह्मणने इस बातको स्वीकार कर लिया और भगवान्के घूंघरुओंकी झनकारको उसने दर्शनकीही समान समझा, और भगवान्की आज्ञानुसार आगे २ हो गये जब यह उस ग्रामके समीप आये तो ब्राह्मणने विचारा कि इस सुन्दर रूपके दर्शन तो करें, सो जभी इसने पीछा फिरकर देखा तो भगवान् वहांही स्थित हो रहे और उससे कहा कि तुम ग्राममें जाओ और हमारे आनेका समाचार कहो और फिर पंचोंको वहां बुला लो. भगवान्की यह वार्ता सुनकर वह ब्राह्मण शीघ्रतासे गया और उसने पंचायत करी तब फिर सम्पूर्ण मनुष्योंके सन्मुख हाथ उठाकर कहा कि यह गोपालजी मेरे साक्षी हैं, तब समस्त नगरके मनुष्य चकित हो गये और उस ब्राह्मणका विवाह बडी धूमधामसे हो गया और समस्त संसारमें भगवान्की भक्तिका यश प्रचलित हुआ. आजतक श्रीगोपालजी महाराज धुडवान नाम ग्राममें श्रीजगन्नाथरायजी तीन कोसपर विराजमान हैं और साखी गोपालजीके नामसे विख्यात हैं जो कोई यात्री जगन्नाथजीको जाता है उसको उनके दर्शन होते हैं.

सेवाजीकी कथा १०.

सेवाजी सागराजाके पुत्रके पुत्र द्वारिकादेशमें परम भक्त हुए. यद्यपि कामध्वजजीभी बडे त्यागी हुए थे परन्तु सेवाजी राज्यकार्य द्रव्य इत्यादि सम्पूर्ण सुख होने परभी कुशध्वजजीसे अधिक हुए. शूर वीर दया, और बल इतना रखते थे कि उन्होंने एक समय भगवान्-कीभी सहायता करी थी इसका वृत्तान्त इस भांतिसेभी वर्णन किया है. किसी कालमें अजीजखां नाम एक बादशाहका मंत्री बडी सेनाके साहित द्वारिकापर चढ आया और रणछोरजी महाराजके मंदिरमें और नगरमें अग्नि लगाने और वहां मनुष्योंको कठोर दुःख देने लगा; उस समय भगवान्ने अपने भक्त सेवाजीसे सहायता मांगी. सेवाजी तुरन्तही सूक्ष्म सेना लेकर द्वारिकामें गये और म्लेच्छोंसे युद्ध करा, फिर सेवाजी-कीही जय हुई और सैकडों म्लेच्छ मारे गये और जो कुछ शेष रहे सो भाग गये फिर अजीजखां म्लेच्छ नरकगामी हुआ. सेवाजीको इस युद्धमें विजय होनेसे अत्यन्तही प्रसन्नता हुई, तिसके उपरांत वह भगवा-न्के धामको प्राप्त हुए. इस चरित्रसे यह शंका उत्पन्न होती है कि भग-वान् सर्वदा अपने भक्तोंकी सहायता करते रहते हैं. यहांपर उन्होंसे सेवासे सहायता जो मांगी सो किस कारणसे और अपनी मायासे अजीजखां म्लेच्छका नाश क्यों न कर दिया. अब विचारना चाहिये कि जितने भगवान्के चरित्र हैं वे इसी कारण हैं कि उनको विख्यात करके मनु-ष्योंकी भगवान्में भक्ति हो और नहीं तो भगवान् सुख दुःख शत्रुता मित्रता इत्यादि भावसे रहित निर्गुण सच्चिदानंद पूर्णब्रह्म हैं. यह चरित्र तो केवल कावाजातिके मनुष्योंको दिखानेको किया था. इस अभि-प्रायसे वेभी सेवाके तुल्य भक्तिभावमें आ जाय जो यह इच्छा न करते तो अजीजखांको द्वारकापर चढकर क्यों न आने देते. इसक अति-

रिक्त एक कारण यहभी मेरे विचारमें आता है कि भगवान्ने सेवाकी परीक्षा लेनेका मनोरथ किया होगा और जो कोई यह शंका करे कि सेवाजी इस युद्धमें क्यों मारे गये ? तो इसका उत्तर यह है कि सेवाजी मरे नहीं यदि सत्यही पूछते हो तो वह सर्वदाही जीवित रहेंगे अर्थात् उनको मोक्षकी प्राप्ति हुई वह तो आवागमनकी कठिन पीडासे छूट गये मारा हुआ तो इसको कहते हैं कि जिसको भगवान्की भक्ति न हो इस समय मुझे एक हँसीकी बात स्मरण हो गई अर्थात् द्वारिकाजीमें जो भगवान्की मूर्तिका नाम रणछोर रक्खा गया था तो उसका यह अर्थ है कि यह युद्धमेंसे भागकर द्वारिकामें आये थे सो इस समय जो आपही म्लेच्छोंको जय कर लेते तो नामका अर्थ अशुद्ध हो जाता, या संग्रामको छोडकर भागना पडता इसी कारणसे सेवाजीसे सहायता मांगी थी इसका एक तीसरा कारण औरभी विचारमें आया है कि इस चरित्रमें भगवान्ने अपने भक्तोंको अपनी समान बना दिया अर्थात् यह दिखाया कि जिस प्रकारसे मैं अपने भक्तोंकी सहायता करता हूं उसी प्रकारसे मेरे भक्त मेरी सहायता करते हैं और मेरे निमित्त अपना जीवभी देनेके लिये सन्नद्ध हैं. इन समस्त वार्ताओंको छोडकर यह विचारना चाहिये कि, भगवान् सर्वदा अपने भक्तके चित्तमें निवास करते हैं तो फिर जो कुछ कर्म वह भक्त करता है वह समस्त भगवान्केही किये हुए समझो. इससे यह अर्थ निकला कि सेवाजीने अजीजखांको नहीं मारा था अर्थात् भगवान्ने यह चरित्र अपने आप किया था किसीसे सहायता नहीं मांगी ॥

सदनजीकी कथा ११.

सदनजी जातिके कसाई परम भक्त और वैराग्यवान् हुए. जिस प्रकार सोना कसोटिमें घिसनेसे शुद्ध हो जाता है उसी प्रकारसे सदन-

जीने पूर्वजन्मके प्रायश्चित्तोंको शुद्ध कर दिया. यह मांस मोल लेकर बेचा करते थे. इन्होंने कभी हाथसे हिंसा नहीं की थी इनके पास एक शालिग्रामकी मूर्ति थी, जो कोई मांस मोल लेता तो उसी मूर्तिका बाट धर तोल देते थे. एक साधुने देखकर विचारा कि यह मूर्ति ऐसा दुष्टकर्म करनेवालेके पास रखनी किस प्रकारसे उचित है? इस कारण उस साधुने सदनजीसे कहा कि यह मूर्ति हमको दे दो सदनजीने तुरन्तही उस मूर्तिको दे दिया. रात्रिके समय भगवान्‌ने साधुको स्वप्न दिया कि तुम जिस स्थानसे हमको लाये हो वहीं हमको पहुँचा दो. साधुने पूछा कि महाराज! आपका निवास ऐसी हीन और निकृष्ट जातिमें होना कब संभव है? तब भगवान्‌ने कहा कि मुझे इसी हीनजातिके घरपर रहनेसे प्रसन्नता है जिस समय वह मुझे अपनी तराजूपर रखता है तो मैं समझता हूं कि मैं झूला झूल रहा हूं और वह जो कुछ बातचीत करता है उसकोही मैं अपना कीर्तन समझता हूं. साधु भगवान्‌की ऐसी आज्ञाको सुनकर मूर्तिको प्रभातही सदन-जीको दे आया और कहा कि यह मुझसे तो प्रसन्न नहीं होते. सदन-जी यह बात सुनकर प्रफुल्लित हो गये. उन्होंने तत्कालही गृहस्थाश्र-मको त्यागकर वैराग्य ले लिया. और जगन्नाथजीको गये. और उस मूर्तिका सिंहासन अपने शीशपर रख लिया जब वह मार्ग चल रहे थे तो रस्तेमें एक ग्राममें जाकर किसी गृहस्थीके घरमें भोजन करनेको गये. उसकी स्त्री सदनजीका अत्यन्तही मनोहर स्वरूप देखकर मोहित हो गई और उसने सदनजीसे कहा कि मुझको अपने साथ ले चलो सदनजीने कहा कि जो तुम मुझको मारभी डालो तो मैं ऐसा कर्म कभी न करूंगा; तब उस स्त्रीने विचारा कि मेरे पतिके मार डालनेको कहता है सो वह अति शीघ्र जाकर अपने सोते हुए पतिको जानसे मार आई और फिर सदनजीसे आकर कहा कि अब तो मैंने अपने

पतिकोभी मार डाला अब तो मुझको अपने साथ ले चलोगे. सदनजीने कहा कि मैं तो प्रथमही कह चुका कि मैं ऐसा कर्म नहीं करनेका फिर तुम वार २ क्यों कहती हो. हे मूर्खे ! तू हठ मत करे मुझ इन बातोंसे कुछभी प्रयोजन नहीं. जब उस स्त्रीने विचारा कि अब यह किसी तरह नहीं मानता तो उसने हाहाकार मचा दिया कि हमने इस मनुष्यको साधु समझकर अपने घरपर रक्खा था सो इसने मेरे पतिको मार डाला और मेरे ले जानेकी इच्छा करता है. यह दुन्द सुनकर तत्कालही वहांपर बहुतसे मनुष्य आ गये और सदनजीको पकडकर राजाके सन्मुख ले गये. जिस समय राजाने सदनजीसे पूछा कि तुमने ऐसा कर्म क्यों किया तो सदनजीने उत्तर दिया कि मेरी यही इच्छा थी. तब राजाने उनके हाथ कटवा दिये और फिर छोड दिया सदनजीको इस दंडसे किंचित्भी दुःख न हुआ और न उनको कुछ क्रोध हुआ. उन्होंने विचारा कि यह कोई मुझसे बडा पाप हुआ था उसका फल है. फिर वह भगवान्का ध्यान करते हुए जगन्नाथजीको गये जगन्नाथजीने प्रसन्न हो अपनी पालकी सदनजीके लेनेके लिये भेजी. परन्तु सदनजी भगवान्के आदरभावके लिये सवार न हुए और जब उन सेवकोंने इनसे बहुतही हठ करी तो इन्होंने विचारा कि स्वामीकी आज्ञा उल्लंघन करनीभी योग्य नहीं इस कारण पालकीपर सवार होकर मंदिरके निकट गये और उतरकर भगवान्के दर्शन किये फिर अपनेको धन्य माना अब देखो कि भगवान्की भक्तिका कैसा बडा प्रताप है कि जिसके प्रभावसे, जन्म जन्मान्तरके प्रायश्चित्त दूर हो जाते हैं. महाभारतमें वर्णन किया है कि जो मनुष्य चारों वेदोंका पाठी हो परन्तु उसके मनमें भक्ति न हो तो वह मनुष्य

भगवान्को प्रिय नहीं लगता और ऐसाही श्रीमद्भागवतके एकादश-स्कंधमें लिखा है.

दोहा-भक्तिसदन यह सदनकी, कथा सुनहु करि नेम।
आय कहावत भक्ति बिन, होय कहांते क्षेम ॥

कर्मानंदजीकी कथा १२.

कर्मानंदजी जातीके भाट रजवाडेमें भगवान्के भक्त हुए. उनके कवित्त ऐसे उत्तम हैं कि उनको श्रवण करके भगवान्में प्रीति हो जाती है. उन्होंने विचारा कि संसार मिथ्या है इस कारण उसको त्यागन कर दिया और आप तीर्थयात्रा करनेको गये. उनके पास एक शालिग्रामकी मूर्ति थी उसका सिंहासन इन्होंने अपने शीशपर रख लिया और एक लकडी अपने हाथमें ले ली, यह जिस किसी स्थानपर ठहरते तौ उस लाठीको पृथ्वीपर गाड देते और शालिग्रामजी झूलेकी समान उसमें लटका देते. एक जगह यह उस लाठीको कहीं भूल गये और भगवान्के ध्यानमें ऐसे मग्न हुए कि इनको दूरतकभी उसकी याद न आई. और जब यह स्थानपर जाकर ठहरे तौ इनको स्मरण हुआ कि हम कहीं लकडीको भूल आये उस समय आप प्रेममग्न होकर कहने लगे कि महाराज! आप अपना कामभी मुझसेही करवाते हो अर्थात् चित्तके प्रेरक तो तुम हो सो तुमने क्यों नहीं याद दिलवाई; भगवान् इस बातको सुनकर बहुतही हँसे और अपनी मायाके बलसे लाठी उसी समय मंगवा दी.

दोहा-भजन विना दिन जात है, चेतहु अब मनमाहिं।
विना भक्ति भगवन्तकी, कहीं ठिकानो नाहिं ॥ ८ ॥

अल्ह और कुल्हकी कथा १२.

कुल्हजी और अल्हजी यह दोनों भ्राता रजवाडेमें भगवान्‌की भक्ति करनेवाले हुए और कुल्हजी बडे भ्रातासे अधिक भगवान्‌के भक्त वैरागी और मांस मदिराके त्यागी हुए और अल्हजी जो थे सो मांस मदिराके पान करनेवाले थे; परन्तु यह अपने बडे भ्राता कुल्हजीकी आज्ञामें रहते थे, एक दिन कुल्हजीने कहा कि इस जीवका तौ कुछ भरोसा नहीं, यह संसार असत्य है, चलो भाई द्वारिकामें चलकर भगवान्‌का दर्शन कर आवें यह विचार कर दोनों भाई द्वारकाजीको गये वहां जाकर कुल्हजीने अपने कहे हुए पद रणछोरजीकी भेंट किये और बिचारे अल्हजी अपने किये हुए दुष्कर्मोंसे लज्जायमान हो एक ओरको बैठ गये. जब भगवान्‌ने उसको लज्जित हुआ देखा तौ पुजारीसे कहा कि हमारे कंठकी माला अल्हजीको दे दो यह सुनकर अल्हजीने कहा कि इस मालाका अधिकारी मैं पापी नहीं हूं. यह माला मेरे बडे भ्राता कुल्हजीको मिलनी योग्य है. तब पुजारीने कहा कि इस स्थानपर बडाई और छुटाई केवल भक्ति और प्रीतिकी है और हम भगवान्‌की आज्ञाको उल्लंघन नहीं कर सक्ते. यह कहकर वह माला अल्हजीके कंठमें पहरा दी; तब कुल्हजीको इस अनादरताको देखकर बडाही क्रोध आया और यह डूबनेके लिये समुद्रकी ओरको चले और यह वहां जाकर समुद्रमें कूद पडे इनको समुद्रमें पृथ्वी और मार्गही दृष्टि पडा और द्वारिकाजीमें श्रीकृष्णके दर्शन कर कृतार्थ हो गये. इन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें बडे प्रेमसे दंडवत् करी और यह सुन्दर मनोहर स्वरूपको देखते हुए भगवान्‌की राजधानीमें पहुँचे जिस समय यह भोजन करनेको गये तो भगवान्‌ने कहा कि तुम दो पत्तलोंमें भोजन परोसना, तब कुल्हजीने पूछा कि

दूसरा पारस किसके लिये ? तब भगवान्‌ने कहा कि तुम्हारे छोटे भ्राताके लिये है. यह श्रवण करतेही कुल्हजीको महादुःख हुआ और वह भगवान्‌का महाप्रसाद उनको विषकी समान दृष्टि आया; तब भगवान्‌ने कहा कि तुम दुःखित मत हो; तुम्हारा छोटा भाई मेरा परम भक्त है. उसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि वह पूर्वजन्ममें एक राजा था. वह राज्यको त्यागन कर वनवासी हो गया था और उसने मेरे भजन और स्मरणमें ध्यान लगाया था. एक समय कोई राजा उस वनमें आ गया और उसकी सेनामें जब द्रव्य इत्यादिको देखा तो उसकीभी इच्छा राज्य लेनेकी हुई. इसी कारणसे उसको यह देह मिली अब जो वह उससे अलग रहकर बडा दुःखी है. तुम शीघ्रतासे जाकर उनसे मिलो तब कुल्हजी प्रसादको लेकर एक क्षणमात्रमेंही अपने स्थानपर आये तो इनको अल्हजी वहां न मिले तो इनको अत्यन्तही चिन्ता हुई और वहांके मनुष्योंसे पूछने लगे कि यहांपर हमारे भ्राता अल्हजी थे सो कहां गये ? तो किसी २ ने कहा कि अल्हजी तो अपने गृहकी ओरको गये हैं. अल्हजीभी अपने बडे भ्राताके अलग होनेसे बडे संदेहमें हुए किसी २ ने अल्हजीसे कहा कि तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता कुल्हजी आ रहे हैं अल्हजीने जब यह समाचार सुना तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उनको आगे बढकर लेनेको गये फिर दोनों भ्राता प्रीतिसहित मिले और अपने घरपर आये. फिर कुल्हजीने द्वारिकाका समाचार और भगवान्‌के महाप्रसादका ब्यौरा समस्त अल्हजीसे वर्णन किया. फिर दोनों प्रेममें विह्वल हो त्यागी हो गये और वनोंमें जाकर भगवान्‌की सेवामें मन लगाया.

दोहा—भजन करो भगवान्‌को, तौ बनि है सब काम ।
अल्हकुल्हकी कथा सुन, देख लेहु परिणाम ॥

जगन्नाथजीकी कथा १४.

जगन्नाथजी थानेश्वर नगरके रहनेवाले भगवान्के परम भक्त और श्रीकृष्णके सेवक पार्षदके समान हुए. सेवक होनेका कारण यह है कि तीन तीन दिनतक इन्होंने महाराज श्रीकृष्णको अपनेही घरपर विराजमान देखा और उनकी महिमाका प्रताप अपने घरमें दीप्तिमान् हुआ देखा. वह फिर तौ प्रेममें ऐसे मग्न हुए कि वह भली प्रकार जान गये कि मेरे ऊपर निःसन्देह भगवान्ने बडोही कृपा करी है. जो मुझसे मतिमंदको ज्ञानका उपदेश दिया इस कारण वह भगवान्का सेवन पूजन करने लगे और इसी कारण वह कृष्णदासनामसे प्रसिद्ध हुए. परन्तु उनको मनुष्य तौ केवल कृष्णनामही पुकारा करते थे. यह बहुत दिनोंतक तौ मानसीपूजन करते रहे फिर इन्होंने एक दिन यह विचारा कि यदि कहींसे भगवान्की मूर्ति मिल जाय तौ उसको स्थापित कर दिनरात उनकी पूजा किया करें. भगवान्को दया आई और उन्होंने अपना स्वरूप इनको एक कुएमें दिखाया; तब इन्होंने एक उस स्वरूपकी मूर्ति अपने घरमें स्थापित करी और प्रीतिसहित उसका पूजन करने लगे. उसका पुत्र बालअवस्थासेही भगवान्का भक्त हो गया; उसकी प्रीतिको देखकर भगवान् अत्यन्तही प्रसन्न हुए और स्वप्नमें उसको ज्ञानोपदेश दिया.

रामदासजीकी कथा १५.

रामदासजी श्रीद्वारिकाके निकट डाकवरग्रामके रहनेवाले यह भगवान्के भक्त हुए. यह एकादशीका व्रत धारण कर रात्रिको जागरण किया करते थे और रणछोरजीके मंदिरमें जाया करते. जिस समय यह वृद्ध हो गये तौ रणछोरजीने इनसे कहा कि अब तुम द्वारिका आनेका परिश्रम मत किया करो, क्योंकि तुम अब वृद्ध अव-

स्थाको प्राप्त हुए हो. अपनेही स्थानपर बैठे हुए हमारा भजन करते रहो; रामदासजी भगवान्‌की ऐसी आज्ञाको सुनकर उसका उल्लंघन तो न कर सके परन्तु कभी २ दर्शन करनेकी इच्छासे द्वारिकाको चले जाते थे. भगवान् अपने भक्तके ऐसे कठिन परिश्रमको न सहन कर सके उन्होंने तत्कालही इनसे कहा कि तुम एक गाडी मोल ले लो तो हम तुम्हारे घरपर चलेंगे; रामदासजी एकादशीके दिन एक गाडीपर चढकर द्वारिकाको गये; तब लोगोंने कहा कि यह देखो एकादशीके दिन गाडीपर चढकर भगवान्‌के दर्शन करनेको जाता है, जब यह द्वारिकाको गये तो भगवान् प्रभात द्वादशीके दिन उस गाडीपर चढकर द्वारिकासे उस ब्राह्मणके घरको सिधारे, परन्तु भगवान्‌के जितने आभूषण थे वह समस्तही मंदिरमें छोड दिये. प्रातःकाल हुआ और पुजारियोंने जब मंदिर खोला तो उसमें भगवान्‌को न देखा बडेही चिन्तित हुए और विचारने लगे कि भगवान्‌को रामदासजी ले गये होंगे. फिर सम्पूर्ण एकत्रित होकर रामदासके ग्रामको चले रामदासने देखा कि पुजारी आ रहे हैं तो उनको बडीही चिन्ता हुई; तब भगवान्‌ने कहा कि यहांसे समीपही एक वापिका है उसमें तुम हमको डुबका दो. रामदासजीने भगवान्‌की ऐसी आज्ञाको सुनकर तत्कालही भगवान्‌को छिपा दिया. जब वह पुजारी रामदासजीके समीप आये तो प्रथम तो रामदासजीको बहुत धमकाया और फिर जब भगवान्‌को गाडीमें न पाया तो बडे लज्जित हुए; फिर किसीने उनसे कहा कि भगवान् वापिकामें हैं तो वह उस वापिकामें ढूंढनेको गये तो इन्होंने वहांपर रुधिर पडा हुआ देखा तो आश्चर्यमें हुए; तब भगवान्‌ने कहा कि रामदासजी तो मुझे मेरी आज्ञासे लाये थे सो तुमने जो उनको ताडना दी सो मुझकोही दी जानो, इसी कारण वापिकामें रुधिर बहा है. अब

तुम यहांसे चले जाओ मैं तुम्हारे साथ नहीं चलनेका. तब भगवान्‌के ऐसे वचन सुनकर पुजारी बोले कि हे भगवन् ! जो आप न चलेंगे तो हमारा उद्धार किस प्रकारसे होगा ? भगवान्‌ने उनके कहनेपर कुछभी ध्यान न दिया. पुजारियोंने बहुतही हठ करी तो भगवान्‌ने कहा कि हमारी मूर्तिके बराबर सुवर्ण ले लो. पुजारियोंने यह वार्ता स्वीकार कर ली परन्तु रामदासजी बोले कि महाराज ! मेरे पास इतना सुवर्ण नहीं है तो भगवान्‌ने कहा कि हे रामदास ! तुम्हारी स्त्रीके कानमें जो एक बाली है वही बहुत होगी. जिस समय उस बालीको तुलामें एक पल्लेपर रक्खा और एक पल्लेपर भगवान् चढे तो जिस पल्लेपर बाली रक्खी थी वह पल्ला पृथ्वीपर झुका रहा और मूर्तिकी ओरका पल्ला ऊंचा उठ गया, पुजारी यह चरित्रको देखकर लज्जित हुआ और फिर अपने घरको चला आया, फिर रामदासजीने भगवान्‌को अपने स्थानपर लाकर स्थापित किया और उनकी सेवा पूजा करने लगे. इस चरित्रसे यह सिद्ध होता है कि राजा बलिके द्वारपर उसको बंधनकर स्थित हुए थे और यहांपर रामदासजीको घायल किया, तब स्थित हुए; भगवान्‌के सर्वदा स्थित रहनेका चिह्न यह है कि मूर्ति किसी मनुष्यसे नहीं उठ सकती, परन्तु जिस समय कोई रामदासजीके कुलका उठाता है तो तुरंतही उठ जाती है इसकी परीक्षा कई वार हो चुकी है.

भजन।

भ्रातृगण मिथ्या जगत पसारा ॥
भूल रहे हो जिस ममतामें यह प्रपंच उचारा।
हरिके भजन विना नहीं उबरो यह सिद्धान्त पुकारा ॥ १ ॥
तजो कुतर्क सगुण निर्गुणकी करिये प्रेम अपारा।
गुरुसेवा पूजा भगवत करो तो हो निस्तारा ॥ २ ॥

वेद पुराण शास्त्रने जिसकी महिमा कीन प्रचारा।
नेति नेति कह मौन भये पुनि लीला अपरंपारा ॥ ३ ॥
भक्तन हेत अजर अविनाशी धारत है अवतारा।
गाय गाय सो चरित भक्तजन तरहिं तरै संसारा ॥ ४ ॥
हरिको भजन सार रस जगमों यही करै उजियारा।
मिश्र उन्हींकी कृपादृष्टिसे सकल दुःख भ्रम टारा ॥ ५ ॥

अथ

नवमी निष्ठा लीलानुकरण अर्थात् रास और रामलीला इत्यादिके वर्णन।

(इसमें छः भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरामचंद्रजीके चरणोंकी चक्ररेखाको दंडवत् करके कच्छप अवतारको मैं प्रणाम करता हूं, कि जिन्होंने समुद्र मथनेके समय विंध्याचल पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया और देवताओंके दुःख निवारण किये. रामलीला, नृसिंहलीला और रासलीला बनाकर जो कोई भगवान्का आराधन करते हैं उसकोही लीलानुकरण कहते हैं यह निष्ठा अत्यन्तही पुनीत है कि जिसके प्रभावसे सहस्रों महापापी और अधर्मी भगवान्की भक्ति करने लगे. श्रीमद्भागवतसे प्रत्यक्ष होता है कि जिस समय श्रीकृष्णचंद्र गोपियोंके साथमेंसे अंतर्ध्यान हुए थे तो गोपी व्याकुल होकर वृक्ष और लतासे पूछने लगी कि हे वृक्षा! तुमने श्रीकृष्णभी देखे, परन्तु इनको किसीनेभी

नहीं बताया, तब सम्पूर्ण मिलकर रासलीला करने लगीं अर्थात् कोई गोपी तो कृष्णरूप बन गई कोई बालक बनी, कोई गौ बन आई और कोई बछडा बन गई और जिस प्रकार भगवान्ने बालकपनमें जो २ चरित्र किये थे, उसी रीतिसे सब करने लगीं. उनके इस चरित्रसे भगवान् प्रसन्न हो गये और तत्कालही प्रगट होकर उनके समीप आये, इससे यह सिद्ध हुआ कि भगवान्को लीलानुकरण अत्यन्तही प्यारा है और यहभी विचारना चाहिये कि शास्त्रमें मूर्तिपूजनकी आज्ञा दी है, सो वे मूर्ति पत्थर, काष्ठ और धातु इत्यादिकी बनती है और बहुधा ऐसा देखा गया है कि दीवारोंमें मूर्ति खैंचकरभी उनका पूजन करते हैं. वह उन्हींके प्रभावसे अपनी इच्छा पूर्ण कर लेते हैं. अब विचारना योग्य है कि रामलीला रासलीला इत्यादिमें ब्राह्मणके लडकेही बनते हैं. जो वेदके वाक्यसे जन्मसेही भगवान्का स्वरूप है. जब उन्होंने भगवान्के वस्त्र धारण कर लिये तो साक्षातही भगवान्स्वरूप हो गये. जो कोई प्रीतिसहित भगवान्का पूजन करेगा वह निश्चयही परम पदको प्राप्त होगा. कलियुगके महापापियोंका उद्धार करनेके लिये भगवान्ने अनेक उपाय किये हैं; परन्तु हम तो ऐसे अभागी जीव हैं कि उनपर जराभी ध्यान नहीं देते. तो ऐसे मनुष्य एक कल्पतक रौरव नरकमें वास करेंगे. शास्त्रोंमें लिखा है कि भगवान् अपने भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षकी समान हैं. इस कारण एक दृष्टान्त यहांपर कल्पवृक्षका लिखा जाता है. कल्पवृक्षका यह स्वभाव है कि इच्छानुसार फल देता है. एक मार्ग चलनेवाला मनुष्य कल्पवृक्षके निकट आकर यह इच्छा करने लगा कि शीतल पवन चले तो श्रेष्ठ है सो तत्कालही शीतल पवन चलने लगी, फिर इसको शीतल जल और सुन्दर २ वृक्षोंकी इच्छा

हुई वेभी सब प्रत्यक्ष हो गये. तिसके उपरान्त वस्त्र और आभूषण और स्वरूपवान् स्त्रीकी अभिलाषा हुई वहभी सब उसी समय मिल गई. जब वह उन स्त्रियोंके साथ विहार करने लगे तब विचारा कि कहीं इनके पति यहां आकर हमको न मारे, इतना विचारही रहे थे कि इतनेमें उनके पति आ गये और इनके ऊपर जूतियें पडने लगीं. इस प्रकार भगवान्भी इच्छानुसार फल देते हैं. भगवान्ने गीतामें लिखा है कि मनुष्यकी सद्गति और असद्गतिका कारण उसका मन है. जैसा वह कर्म करता है उसको वैसाही फल मिलता है. इस प्रकारसे तौ सम्पूर्ण भक्तोंकी कथा है कि जो लीलाके प्रतापसे परम पदको प्राप्त हो गये हैं सो वह आगे वर्णन होगी. परन्तु दो एक वृतान्त यहांभी लिखते हैं. मीरमाधव जो भगवान्के भक्त विख्यात हुए हैं, उनकी भक्तिका प्रारंभ लीला करनेही के कारणसे हुआ था; इसका वृत्तान्त इस रीतिसे है कि यह महमदके पंथमें बडे धनवान् थे. यह किसी कारणसे मथुराजीको गये; इनके साथ एक भगवान्का भक्तभी था, उसने रासलीलाकी बडाई सुनाई उसको श्रवण करतेही इनको दर्शनोंकी इच्छा हुई और उस अपने साथीसे कहा कि जिसकी तुमने हमको लीला सुनाई है, उसके दर्शन हमको करा दो. तब उनके साथीने इनकी यह इच्छा देख रासधारियोंको बुलाया. मीरमाधवने बडे आदरभावसे भगवान्के चरित्रोंको देखा और श्रीनंदनंदन श्रीकृष्णके स्वरूपको देखकर मोहित हो गये; उसके पास जितना द्रव्य था समस्तही भगवान्की भेंट कर दिया और सर्वत्यागी होकर कृष्ण २ पुकारते हुए वृन्दावनकी कुंजोंमें रमने लगे. यह सर्वदाही भगवान्का नाम उच्चारण करते थे, इस कारण इनको नाम मनुष्योंने मीरमाधव रख दिया और इनकी गिनती भगवान्के भक्तोंमें हुई. इनके बहुतसे कवित्त बनाये हुए हैं और भगवान्की

स्तुति मेरे पास है जिसका मैं यहांपर प्रथम पद लिखता हूं " ताके जेखुदरानी सखुन श्रीकृष्ण गो श्रीकृष्ण गो, बिगुजार किवर वामाने मन श्रीकृष्ण गो श्रीकृष्ण गो " थोडेही दिनोंमें यह सिद्ध हो गये और इनको श्रीमद्भागवतके सुननेकी अभिलाषा हुई परन्तु इनको किसीने मंदिरमें नहीं जाने दिया; तब भगवान्को दया आई और उन्होंने अपने भक्त गुसांईजीसे कहा कि तुम मीरमाधवको भागवतकी कथा सुनाओ, तब उन्होंने बडे प्रेमसहित कथाके सुनानेका प्रारंभ किया. एक दिन कथा कहते २ बहुत रात्रि बीत गई और मीरमाधव मंदिरमें सो रहे तब जब आधी रात बीत गई तौ इनको क्षुधा लगी भगवान्ने विचारा कि आज यह हमारा पाहुना आया है सो यदि इसका कुछ आदर सत्कार न हुआ तौ कुछ अच्छी बात न हुई. यह विचार कर अपने निज भोजनका थाल माधवजीके लिये बारह वर्षके लडकेके भेषमें माधवजीके निकट लेकर आये और आकर बोले कि यह भोजन आपको गुसांईजीने भेजाहै. माधवजीने प्रसन्न हो और भोजन कर शयन किया. जब प्रभात हुआ और पुजारियोंनें भगवान्के भोगका थाल जो कि सुवर्णका था सो मंदिरमें न देखा फिर ढूंढते २ मीरमाधवजीके समीप आये और उस थालको उनके निकट देखकर ताडना करने लगे और बहुतही मारा. जब फिर भगवान्का मंदिर खोला तौ महाराजके वस्त्र फटे हुए देखे और मूर्तिभी प्रसन्नतारहित देखी फिर पुजारियोंको महाआश्चर्य हुआ और गुसांईजीसे समस्त वृत्तान्त वर्णन करने लगे. गुसांईजीने जिस समय यह वृत्तान्त सुना तौ तुरन्तही उठ खडे हुए और मीरमाधवके समीप आकर शिर नवाय दंडवत् करी और कहा कि आप इन पुजारियोंके अपराधको क्षमा कर दीजिये उनसे यह अपराध अनजानमें हुआ है; तब तौ भगवान् भी प्रसन्न हो गये और यह उपदेश दिया कि मेरे भक्तको कभीभी

मुझसे कम न समझना. जो कथाके सुननेवाले थे उन्होंने गुसांईजीसे कहा कि तुम म्लेच्छोंको अपने निकट बैठाकर कथा क्यौं कहते हो ? गुसांईजीने इसका कुछभी उत्तर न दिया और परीक्षाके लिये एक दिन समस्त श्रोताओंसे पूछा कि कल हमने कथा कहांतक कही थी ? किसीने इस बातका कुछभी उत्तर न दिया तब मीरमाधवने समस्त कथा आदिसे अंततक कह सुनाइ. सम्पूर्ण श्रोता सुनकर लज्जित हो गये. किसी राजाने विहारीजीके मंदिरके लिये केवडा इत्यादि सुगंधी भेजी थी; वह दूत वनमें मीरमाधवको मिला, उन्होंने उससे केवडा लेकर पृथ्वीपर डाल दिया; जब वह दूत विहारीजीके मंदिरमें गया तौ वहां उसने भगवान्‌के संपूर्ण वस्त्र सुगंधित पाये और भगवान्‌ने उसकी रसीद लिखकर दे दी. अब मेरे पाठकगण शंका करेंगे कि केवडा तौ जमीनपर डाल दिया था भगवान्‌के वस्त्र किस प्रकार सुगंधित हुए सो वह शंका हरिदासजीकी कथासे निवारण होगी; इस कारणसे कि ऐसा चरित्र वहांपर हुआ है. दूसरा वृत्तान्त एक चंदानामी लुटेरेका है, जो कि मार्ग चलनेवालोंको लूटा करता था. उसने किसी धनवान्‌के स्थानपर रास होनेका समाचार सुना और यहभी सुना कि वहांपर एक लाख रुपयेके आभूषण आवेंगे; सो उसने ६०० मनुष्योंकी सेनाको लिया और उसको साथ लेकर रास लूटनेको जा पहुँचा. जभी रासके देखनेवालोंने इसको देखा तो सब भयभीत हो व्याकुल हो अपना २ जीव ले लेकर भागने

और जो रास कर रहे थे उन्होंने उस धनवान्‌से पूछा कि यह क्या हुआ जो देखनेवाले भागने लगे, तब उस धनाढ्यने कहा कि हे महाराज ! इस समय चंदा लुटेरा लूटनेके लिये आ गया है; तब उन स्वरूपोंने कहा कि तुम व्याकुल न हो धीरज धरो, यह कहही रहे थे कि चंदा उनके सिंहासनके समीप आकर उपस्थित हुआ और उनके

आभूषण उतारनेका जभी हाथ बढाया कि भगवान्ने सिंहासनसे उठकर उसका हाथ पकड लिया और एक थप्पड उसके मुँहपर ऐसा जोरसे मारा कि वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पडा और दो मुहूर्ततक अचेत पडा रहा. फिर जब उसको चैतन्यता हुइ तो उसने भगवान्के चरण पकड लिये और दंडवत् कर विनती करने लगा, उसी दिनसे उसने असार संसारको त्याग दिया और भगवान्की शरण हो गया. फिर काशीजीमें पाठकजी महाराज श्रीरामचन्द्रजीके परम भक्त हुए, तब उनको भगवान्ने अपने प्रत्यक्ष रूपके दर्शन करनेकी आज्ञा दी, कि तुमको रामलीलामें भरतमिलापके दिन दर्शन होंगे और इसकी पहचान तुम यह रखना कि हम तुमसे कुछ वस्तु मांगेंगे. अब विचारना योग्य है कि काशीजीमें रामलीला अत्यन्तही मनोहर और परम सुन्दर होती है. रामनगरकी समान और किसी स्थानपर वैसी रामलीला नहीं होती. जब भरतमिलापका दिन आया और पाठकजी रामलीला देखनेको गये तब रामलीला जब हो चुकी तब जो लडका रामचंद्रजी बनाया उसने वहांके मनुष्योंसे कहा कि इन पाठकजीको हमारे निकट ले आओ तो वह मनुष्य भगवान्की आज्ञा पातेही तत्काल पाठकजीको लिवाकर ले गये; तब भगवान्ने पाठकजीसे अति प्रीतिसहित कहा कि, हमारे लिये कुछ प्रसाद लाओ पाठकजी तत्कालही कुछ सुन्दर प्रसाद और शीतल जल लेकर भगवान्के सन्मुख आये, भगवान्ने प्रसन्न हो प्रीतिसहित थोडासा प्रसाद तो आप पाया और जो कुछ शेष रहा सो पाठकजीको दे दिया. जो स्वरूप शास्त्रोंने रामचंद्रजीका वर्णन किया है वही स्वरूप इस समय पाठकजीने अपने नेत्रोंसे देखा और उस छबिको निहारकर प्रेममें मग्न हो गये और अपने कुलके सहित सिद्ध और शुद्ध विख्यात हुए. इसी रीतिसे औरभी अनेक इसी भांतिकी कथा हैं, ग्रंथका विस्तार होने-

के कारण नहीं लिखते. मैं अपना अहोभाग्य जभी मानूं कि जब यह मेरा पापी मन भगवान्‌की लीलाकेही प्रतापसे भगवान्‌में लग जाय. और अत्यन्तही आश्चर्यकी वार्ता यह है कि मनुष्य अपने सुखके लिये अनेक उपाय करते हैं; परन्तु जो वस्तु विना परिश्रमही मिलती है उसका उपाय कुछभी नहीं करते अरे मन ! तेरी चतुराईका कौन वर्णन कर सके ? अरे अभागी ! अबभी चेत जा और उस समाजकी शोभाको जो इस ग्रंथके माहात्म्य अथवा पहले वर्णन कर आये हैं उसीका सर्वदा स्मरण किया कर. जिसके प्रभावसे आवागमनरूपी समुद्र सूख जाय और इस असार संसारसे छूटकर परम पदको प्राप्त हो.

दोहा–नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर श्याम ।
लागैं तन शोभा निरख, कोटि कोटि शतकाम ॥

अलीभगवान्‌की कथा १.

अलीभगवान् प्रथम तो श्रीरामचंद्रजीकी निष्ठा रखते थे, परन्तु जिस समय वृन्दावनमें आये और रासमें भगवान्‌का मनमोहनी रूप देखा तो उस परम सुन्दर मूर्तिके स्नेहमें अपनी इष्ट उपासना इत्यादि सभी भूल गये और श्रीप्रियाप्रीतमके रूप अनूपमें मग्न होकर उसीके हो चुके इनको विहारीजीके चरित्रोंमें मन लग गया; इस वृत्तान्तको सुनकर अलीभगवान्‌के गुरु वृन्दावनमें आये और अलीभगवान्‌ने दर्शन किये, फिर दण्डवत् प्रणाम करके कहा कि महाराज मेरे गुरु और स्वामी आपही हैं; परन्तु मेरा मन श्रीकृष्णने अपना मोहिनीरूप दिखाकर हरण कर लिया है. गुरुजीने उनकी दृढ प्रीतिको देखकर श्रीकृष्णके प्रतापका उपदेश दिया और प्रसन्न हो अपने स्थानको चले आये. यहांपर गुरुके आनेका यह प्रयोजन था कि अलीभगवान् प्रथम तो रामचंद्रजीके उपासक थे और रासलीलाको देखकर श्रीकृष्णके

उपासक हो गये. ऐसा न हो कि इसी भांति किसी और देवताका यह उपासक न हो जाय फिर यह किसी अर्थका न रहे. जिस समय एकाग्रचित्त होकर भक्ति न करे तो यह भक्ति किसी अर्थकीभी नहीं अब अलीभगवान्का चित्त श्रीकृष्णचंद्रके प्रेममें देखा और यह भ्रम जाता रहा.

विपुलविट्ठलजीकी कथा २.

विपुलविट्ठलजी स्वामी हरिदासजीके शिष्य मधुवनमें माधुर्य्य उपासक हुए. एक समय हरिभक्तोंने रास कराया और उसमें विपुलविट्ठलजीकोभी बुलाया. इन्होंने जिस समय वहां जाकर प्रियाप्रीतमका रूप निहारा तो इनके मनमें भगवान्के कीर्तनका भाव समा गया और उनके स्वरूपपर मोहित होकर भगवान्में मिल गये.

रामरायजीकी कथा ३.

रामराय राठौडके राजा खंभालके पुत्र भगवान्के परम भक्त हुए. इनका प्रताप भरतराजाके समान था कि जिनके पुत्रने बालअवस्थामेंही वनमें जाकर शेरका कान पकडा था और पकडकर फिर अपने घर ले आया, अर्थात् उस समयमें कोई राजाभी उसकी समान न था. उसकी भक्तिकी समान भक्ति किसीसे नहीं हो सकती; जिसने अपनी कन्याको गंधर्वविवाहकी रीतिसेही विवाह कर भगवान्के अर्पण कर दिया था. एक समय शरदपूर्णमासीके दिन राजारामरायने रासलीला कराई, जब इन्होंने अमृतकी समान गानको श्रवण करा और अत्यन्तही मनोहररूप देखा तो उनके प्रेममें वशीभूत हो गये. इनका मंत्री एक ब्राह्मण था इन्होंने उससे पूछा कि हे मंत्री ! मैं भगवान्की भेंटमें क्या चढाऊं ? ब्राह्मणने उत्तर दिया कि जो वस्तु आपको प्रिय हो वही चढानी उचित है. तब राजाने बहुत देरतक

सोच विचारकर उत्तर दिया कि हमको तो अपनी कन्याही अत्यन्त प्यारी है; यह कहकर राजा फिर अपने महलमें गये और जाकर इन्होंने अपनी भाग्यवान् कन्याको बहुमूल्यके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित किया और फिर जहां रासका समूह था; उसी स्थानपर अपनी दुलारी कन्याको ले आये और फिर उसका गंधर्वविवाहकी रीतिसे विवाह किया. तब भगवान्की भेंट कर दी और फिर बहुतसा धन द्रव्य दिया जो कि उसको जन्मभरको बहुत था. इस न्योछावरसे उनकी भक्तिका यश सूर्यकी समान प्रकाशित हुआ.

खड्गसेनकी कथा ४.

ग्वालियरके रहनेवाले खड्गसेनजी जातिके कायस्थ यह भगवान्के रासके अत्यन्तही प्रेमी हुए और यह कविता करनेमें बडेही चतुर थे; इन्होंने समस्त व्रजके ग्वालबालोंके मातापिताओंके नाम ढूंढ २ कर एक ग्रंथ बनाया और उसमें दानलीला और दीपमालिकाके चरित्र ऐसी सुन्दरतासे वर्णन किये कि सुननेवालेका मन निश्चयही भगवान्में लग जाता. इन्होंने अपनी सम्पूर्ण अवस्था श्रीकृष्ण और उनके सखाओंके चरित्रोंमें व्यतीत करी; इनको श्रीकृष्णके चरणोंमें इतनी प्रीति थी कि इनको सिवाय भगवान्के चरित्रोंके और कुछभी अच्छा नहीं लगता था इनके स्थानपर रासलीलाका उत्सव सर्वदाही रहता था पर इनका यह नेम था कि जिस दिन शरदपूर्णिमा होती तो यह रासलीला कराया करते और बहुतसा द्रव्य उसमें लगा देते. एक समय इन्होंने रासमें यह देखा कि; प्रिया और प्रीतमका हास्य, खेल, गान, नृत्य और परस्परमें एक एकको निहारता और मुसकाता तथा श्रीलाडलीजीने तो मान करा और श्रीकृष्ण महाराज मना रहे हैं; यह देखकर ऐसे

प्रेममें मग्न हो गये कि इन्होंको अपने तनकीभी सुध न रही और इन्होंने अपना शरीर प्रियाप्रीतमके विहारमें मिला दिया; इस रासनिष्ठाकी महिमाके प्रतापसे भगवान्के रासविलास और उनके स्वरूपको प्राप्त होता है इससे भगवान्की भक्तिकी शिक्षा हुई.

वल्लभदासजीकी कथा ५.

वल्लभजी नारायणभट्टजीके शिष्य ऐसे भक्त और प्रेमी हुए कि व्रजवल्लभ महाराज आनंदघनको जो आनंदकाभी आनंद और सुखकाभी सुख है उनको रासचरित्रके नृत्य और कीर्तनसे भगवान्के हावभावसे अपने नेत्रोंको सुख दिया अर्थात् जब रास होता तो यह कभी ललिता बनते और कभी विशाखा बन जाते और इन्होंने वृन्दावनमें रहकर अपनी भक्तिके प्रभावसे अपना और वहांके मनुष्योंका उद्धार किया.

नाथभट्टजीकी कथा ६.

नाथभट्ट फणी अर्थात् शेषजीके वंशमें परम भक्त हुए और फणिवंशकी यह वार्ता है कि वह बलदेवजी महाराज शेषजीका अवतार हुए और बलदेवजीका अवतार नित्यानंदजी हुए, सो इनके वंशमें जो पुरुष हैं उसको फणिवंश अर्थात् शेषजीका वंश कहना उचित है. निदान फिर नित्यानंदजीके शिष्य सनातनजी और सनातनजीके शिष्य कृष्णदासजी और कृष्णदासजीके नारायणभट्ट और नारायणभट्टके शिष्य पुत्र गोपालभट्ट और गोपालभट्टके पुत्र नाथजी हुए; उनका निवास छञ्छग्राममें था मंत्रशास्त्र और वेद पुराण इत्यादि समस्त शास्त्रोंको विचारकर उनका जो सार भगवान्की भक्ति तथा प्रेम है उस अपने मनमें दृढ कर लिये तथा रूपसनातनजी गुसाईं और नाराय-

ण भट्टने अपने ग्रंथमें जो भगवत्का माधुर्य्य और शृंगार वर्णन किया है उसको अपना सर्वस्व चिन्तन करके उसके अनुसार कर्म कर शृंगार और माधुर्यभावमें तद्रूप हो गये. रसिकविहारी महाराजकी रासलीला अत्यन्त आनन्द और श्रद्धासे बनाते थे. उनका इस निष्ठामें अत्यन्तही प्रेम था वह मनकी निर्मलता और मधुर वाणी बोलनेमें अद्वितीय हुए. रासउपासनाके भक्तोंमें शिरोमणि हुए; यह रासनिष्ठा नाथजीके कुटुंबमें सदासे चली आती है और अबभी है.

राग बिभास ।

भज मन रामचरण सुखदाई ॥
जेहि चरणनकी निकसि सुरसरि शंकर जटा समाई ।
जटा शंकरी नाम धरो है त्रिभुवन तारन आई ॥ १ ॥
जेहि चरणनसे चरण पादुका भरत रहे मन लाई ।
सोई चरण केवट धो लीन्हे तब हरिनाम चलाई ॥ २ ॥
सोई चरण सन्तन जन सेवत सदा रहत दरसाई ।
सोई चरण गौतमऋषिनारी परस परम पद पाई ॥ ३ ॥
दण्डक वन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई ।
सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनक मृगासँग धाई ॥ ४ ॥
कपि सुग्रीव बंधु भयव्याकुल तिन जा छत्र फिराई ।
रिपुको अनुज विभीषण निश्चय परसत लंका पाई ॥ ५ ॥
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक शेष सहस मुख गाई ।
तुलसीदास मरुतसुतकी प्रभु निजमुख करत बडाई ॥ ६ ॥

अथ

निष्ठा दशवीं दया और अहिंसाका वर्णन ।

(इसमें छः भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरघुनन्दनस्वामीके चरणकमलोंकी स्वस्तिक रेखाको दंडवत् करके अब मैं धन्वन्तरि अवतारको प्रणाम करता हूं कि जो संसारके उपकारके निमित्त समुद्रसे अवतार लेकर इस संसारमें प्रगट हुए थे. अर्थात् विचार लो कि दया भगवान्का रूप है. महाभारतमें लिखा है कि दयाही परम धर्म है. जबतक दया नहीं है तबतक कोई धर्मभी गिनतीमें नहीं आता. भगवान्ने दयाकी महिमा स्कंदपुराणमें वर्णन की है और उनके अंतमें यहभी कहा है कि जिसको दया है उसने समस्त धर्मकर्मोंको जीत लिया; भगवान्ने नारदजीसे सम्पूर्ण धर्मका वर्णन कर अंतमें यहभी कहा है कि धर्मोंमें साधुओंकी सेवा और दयाही अधिक है और उसमेंभी दया, सो दयाका स्वरूप यह है कि दूसरे जीवके दुःखको देखकर दया आवे और वह दया किसी सम्बन्धसे प्रयोजन न रखती हो और जबतक उस दुःखका निवारण न हो तबतक उसमें वृद्धि होती रहे वह दया दो प्रकारकी है; एक तो संसारी ऐसे कि जिस किसीका दुःख देखा और दया आई उस कष्टके निवृत्त होनेके लिये मन क्रम वचनसे उपाय करा. फिर क्रोधका न आना. फिर मधुर वाणीसे बोलना, सुन्दर स्वभाव वर्तना; किसीको दुःखी न करना, उदारता, दान, मनमें किसीको द्रोहका चिन्तवन न करना, भूमिको देखकर चलना और इसी प्रकारके अनेक कर्म जिससे कि किसीको दुःख न हो अथवा किसीका दुःख निवृत्त हो सके, दया करना उसीको कहते हैं. वह यह है कि जो जीव लाखों और

करोडों वर्षोंसे नरकमें पडे दुःख पा रहे हैं, उस दुःखोंको देखकर उनपर दया करनी और जिस प्रकार हो सके उसका उद्धार करनेके लिये चेष्टा करनी; सो इन दोनों प्रकारकी दयाओंमेंसे प्रथमकी दया तो साधकोंको होती है और सिद्ध, त्यागी तथा भगवान्‌के भक्तोंको दोनों प्रकारकी दया होती है. शास्त्रोंमें दान और स्वभाव आदि एक २ अंगकी प्रभा इतनी लिखी है कि उनमेंसे जो किसी एकपरभी दृढतासे स्थिर हो जाय तो उससे भगवान् मिल सकते हैं; जो दयापर स्थिर रहता है. उसकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है. एक साहूकार समयके फेरसे कंगाल हो गया था, उसने चार यज्ञ किये थे, वह किसी ऋषिकी शिक्षासे एक यज्ञके फल लेनेके लिये धर्मराजके पास गया. वह एक बेरके निमित्त भोजनकी सामग्री अपने साथ ले गया, उसने रसोई तैयार करी परन्तु जभी खानेको हुआ कि इतनेहीमें एक कुतिया क्षुधासे व्याकुल होकर साहूकारके समीप आई और उसने भोजन मांगा तब साहूकारको उसपर दया आई और उस भोजनमेंसे चौथा हिस्सा उस कुतियाको दे दिया परन्तु उसकी क्षुधा निवारण न हुई; तब उसमेंसे उसने एक हिस्सा और दिया परन्तु कुतियाकी फिरभी वही दशा रही. निदान उस साहूकारने चार भाग करके वह समस्त भोजन कुतियाको दे दिया और फिर उसको पानी पिलाया; तब उस कुतियाकी तृप्ति हुई और वहांसे चली गई. फिर साहूकार भूखा प्यासा धर्मराजके पास पहुँचा जब उसका लेखा देखा गया तो धर्मराजने कहा कि पांच यज्ञोंमेंसे एक अक्षय यज्ञ है अर्थात् जिसका फल कभी हीन नहीं होता है तू इनमेंसे किसका फल चाहता है. धर्मराजकी यह वार्ता सुनकर साहूकारको बडा आश्चर्य हुआ और बोला कि महाराज ! मैंने तो चार यज्ञ किये हैं; पांचवां यज्ञ

और सखी सहेलियोंके कहनेसे दोनों हाथोंसे दशरथनंदन महाराज रामचंद्रजीके गलेमें माला डाल दी. जिस समय यह दोनों सन्मुख हुए और सब ओरसे मन एकाग्र हो परस्पर एक एकका सुन्दर रूप निहारने लगे उस समयकी शोभाको देखकर देवता इत्यादि समस्त अपने २ स्थानोंपर चित्रकी समान खडे हो गये. और राजा जनक इत्यादि सम्पूर्ण आनंदमें मग्न हो गये. दशरथनंदनके श्यामसुन्दर कपोलोंपर कुंडलके मोतियोंकी झलक ऐसी शोभा दे रही थी कि अपने आपही अपना मन अपने हाथसे उस ओरको खींचा जाता है और उनके ललाटमें केशर और गोरोचनका तिलक अत्यन्तही शोभा दे रहा है और शिरपर रत्नोंसे जडा हुआ मुकुट औरभी शोभाको बढा रहा है उनके अलसाने नेत्रोंकी चंचल चितवनसे सबके मन मोहित हो गये हैं, गलेमें पुष्प और रत्नोंकी माला पडी है, एक हाथमें धनुषबाण शोभित है और दूसरा हाथ जनकदुलारीके कंधेपर धरे हुए परस्पर मंद मुसकानसे आनंदित हो रहे हैं.

दोहा—एहि छबिसों जनके हिये, करो सदा विश्राम ।
रघुनायक जनमनहरण, नील नीरधर श्याम ॥

शिबिराजाकी कथा १.

शिबिराजाकी कथा पुराणोंमें तथा महाभारतमें बिस्तारपूर्वक लिखी है कि यह दयावान् और रक्षक तथा धर्मात्मा हुए. इन्होंने अश्वमेध इत्यादि अगणित यज्ञ करके ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये. एक समय देवइच्छासे राजा इंद्रको शिबिराजाकी दया और शरणागतकी परीक्षा करनेका विचार हुआ, तब उन्होंने अग्निदेवताको कबूतर बनाया और आप बाज बनकर आये. बाजके भयसे कबूतरने डरते कांपते राजाकी शरण ली. बाजने आकर

राजासे कहा कि यह कबूतर मेरा भक्षण है सो मुझको दे दो. राजाने उत्तर दिया कि यह अपना जीव बचानेके कारण मेरी शरण आया है जो मैं इसको दे दूंगा तो दयामें हानि पहुँचेगी; सो इसको किसी प्रकारभी नहीं दे सकता. तब बाजने कहा कि परमेश्वरने अनेक प्रकारके पक्षी हमारे भोजनके लिये बनाये हैं सो जो तुम मेरा भोजन मुझको न दोगे तो यहभी तो धर्मके विपरीत है. इस विषयपर बहुतसा झगडा हुआ परन्तु राजाने कबूतरको नहीं दिया. अंतमें उस बाजने राजाकी देहका मांस लेना स्वीकार किया. राजाको इस बातपर अत्यन्तही आनंद हुआ, इस कारण कि वह जब और किसीका मांस मांगता तो अति कठिनाई पडती राजाने तुला मंगाई और एक ओर कबूतरको बैठाया और एक तरफ अपना मांस काट २ कर रख दिया. यह वार्ता तो परीक्षाके लिये हो रही थी सो इस कारण राजाका मांस कबूतरके समान न हुआ; यहांतक हुआ कि राजाने अपना सारा मांस रख दिया और जबभी पूरा न हुआ तो राजा अपना शीश काटनेको उपस्थित हुआ तो दोनों देवता राजाकी दयाको देखकर तत्कालही प्रसन्न हो गये और उसी समय अपना २ रूप धारण कर लिया और राजाको अत्यन्त उत्तम भगवान्‌की भक्तिका पद दिया और परमसुन्दर देह राजाकी हो गई. और वह फिर अपने २ स्थानोंको गये जो भगवान् अपने भक्तके निमित्त जो कुछभी करे तो उसका आश्चर्यही क्या है,

मयूरध्वजकी कथा २.

राजा मयूरध्वज और उसकी धर्मपत्नी और ताम्रध्वज उनके प्रतापी पुत्र यह अत्यन्तही दयावान् और परम भक्त हुए कि इनको भगवान्‌ने घर बैठेंही दर्शन दिया और जब इनकी परीक्षा करी तो

उसमें इनको स्थिर देखा. एक समय जब राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया और अर्जुनके साथ यज्ञका अश्व पृथ्वीपर परिक्रमा करनेके लिये छोडा, तभी राजा मयूरध्वजनेभी यज्ञका आरंभ किया और उसने अपने अश्वको ताम्रध्वजके साथ भेजा. मार्गमें चलते हुए इन दोनोंका घोर युद्ध हुआ. जो अर्जुन महाभारतमें विजय पाये हुए था और जिसने श्रीकृष्णकी सहायता तथा कृपासे विजय नाम पाया था, उसी अर्जुनका अश्व ताम्रध्वजने छीन लिया; तौ भक्तानुकूल महाराजने देखा कि यहांपर दोनों दृढ भक्त हैं. यदि जो एककी जय हुई तौ दूसरेके मनको दुःख होगा इस कारण राजा मयूरध्वजकी परीक्षाके मिषसे आप वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें और अर्जुनको बालक बनाकर राजाके द्वारपर गये. राजा उस समय यज्ञशालामें था राजाने इनको देखकर दंडवत् और प्रणाम करी और पूछा कि यहांपर कैसे आये ? तब ब्राह्मणने कहा कि उद्यानमें एक सिंह है वह इस बालकको खाय जाता है तब मैंने उसको बहुतही समझाया कि इसके बदलेमें मुझे खा ले परन्तु उसने मेरी बातपर कुछभी ध्यान न दिया, वरन मुझसे कहा कि तेरामांस खाकर मेरी तृप्ति न होगी कारण कि तू अत्यन्तही दुर्बल शरीर है, अंतमें जब मैंने उसकी बडी प्रार्थना करी तब यह बात निश्चय हुई कि तू राजाका आधा अंग ला देगा तौ मैं इस बालकको छोड दूंगा. बस मैं इसी कारणसे तुम्हारे समीप आया, सो हे राजन् ! आप इस मेरी अभिलाषाको पूर्ण कीजिये. यदि तुमसे हो सके तो इस बालककी रक्षा कीजिये. राजाने जब यह समाचार सुना और विचारा कि मेरे अर्ध शरीरसे इस बालकके प्राण बचते हैं तौ बडीही दया आई फिर विचारने लगा कि अंतमें यह शरीर नाशवान् है; फिर इस शरीरसे जिस किसीका उपकार होता हो तौ अति उत्तम है, इतनेहीमें ब्राह्मणने राजासे कहा कि महाराज ! सिंहने एक औरभी प्रतिज्ञा-

की है वह यह है कि राजाका शरीर आरेसे काटा जाय, उसमें एक तरफ तो राजाकी स्त्रीके हाथमें आरा हो और दूसरी तरफ राजाके बडे पुत्रके हाथमें आरा हो और बीचमें आपको बैठाला जाय. इनमेंसे किसीके हृदयपर किंचित्‌भी दुःख न हो, राजाने यह समस्त वार्तायें स्वीकार कर लीं; तब ताम्रध्वजने ब्राह्मणसे कहा कि भगवन्! शास्त्रके अनुसार बेटाभी बापकाही स्वरूप है. यदि आप मेरा आधा शरीर ले जांय तो उत्तम है, ब्राह्मणने कहा कि, तू राजा तो नहीं तू तो राजाका स्वरूप है. फिर राजाकी स्त्री बोली कि महाराज! मैंभी तो राजाकी अर्द्धांगी हूं फिर मेरा शरीर लेना योग्य है तबभी ब्राह्मणने कहा कि तू राजाकी स्त्री है राजा तो नहीं. इसके उपरान्त राजाने आरा मंगवाया उसके एक ओर तो स्त्रीको खडा करा और सन्मुख ताम्रध्वजको खडा करा. ताम्रध्वजको सन्मुख इस प्रयोजनसे खडा किया; जब यह सन्मुख खडा होकर आरेसे राजाका शरीर चीरेगा तो इनके हृदयमें प्रीति उत्पन्न होकर दोनोंके हृदयको दुःख पहुँचेगा तभी राजाकी प्रतिज्ञा भंग होगी. परन्तु यह कुछभी न हुआ और फिर दोनों जने प्रसन्नतासहित राजाके शिरपर आरा खैंचने लगे. जब आरा राजाकी नासिकातक पहुँचा तो राजाके बांयें नेत्रसे आंसूकी धारा गिरने लगी. यह देखकर तत्कालही ब्राह्मण बोला कि अब यह शरीर हमारे किसी अर्थका नहीं क्योंकि राजा दुःखित होकर यह शरीर देता है. राजाने उत्तर दिया कि महाराज! आप क्रोधित न हूजिये, मेरे नेत्रसे जल गिरनेका कारण यह नहीं है जैसा कि आपके विचारमें आया है. इसका कारण यह है कि मैंने यह विचार किया था कि मेरा बांया अंग अत्यन्त अभागी है और दांयें ओरका अंग भाग्यवान् है देखो दांया अंग तो ब्राह्मणोंके काम आया और बांयें ओरका अंग किसी अर्थकाभी नहीं. भगवान् उसकी भक्तिको देखकर और करु-

आर्तशब्दको सुनकर प्रसन्न हो तत्कालही प्रगट हुए, और राजाको आरेके नीचेसे निकालकर अपनी छातीसे लगा लिया और प्रत्यक्षही भगवान्के राजाको दर्शन हुए. भगवान्ने जभी उनके शरीरको स्पर्श करा कि उसी क्षण राजाका शरीर घावरहित और अत्यन्तही सुन्दर हो गया. भगवान् बोले कि हे राजन् ! मैं तुम्हारी धर्ममें पूर्ण श्रद्धा और भक्तिको देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हूं. जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सोही मांगो. भगवान्के इस प्रकारके स्नेहभरे वचन सुनकर राजाने हाथ जोड दंडवत् कर प्रार्थना करी कि हे भगवन् ! जब आपही मेरे ऊपर प्रसन्न हो गये तब आप मुझको फिर किस वस्तुकी अभिलाषा रही ? मैं तो केवल यही चाहता हूं कि सर्वदा आपके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति बनी रहे और एक मेरी यह प्रार्थना है कि अब कलियुगका समय आनेवाला है उस समयमें आपको ऐसी कठिन परीक्षा करनी उचित नहीं. भगवान्ने कहा तथास्तु । फिर अर्जुनसे राजाकी प्रीति करा दी और अर्जुनका अश्व दिलवा दिया. इस चरित्रके करनेसे भगवान्ने कुछ अर्जुनका अभिमान घटाया था सो हो गया.

दोहा—जिनको पूरण भक्ति है, ते सबसौं आधीन ।
नारायणतम मान मद, ध्यानसलिलके मीन ॥

भवनजीकी कथा ३.

चोहान जातिके भवन राजपूत राणाके राज्यमें दो लाख रुपयेके अधिकारी और भगवान्के भक्त तथा साधुओंकी सेवा करनेवाले हुए. उन्होंने एक समय राणाके साथ हिरणीके पीछे घोडा फेंका और उसको अपने खड्गसे मार डाला. वह हिरणी गर्भवती थी सो अपने बच्चोंसहित मर गई. भवनको इसपर अत्यन्तही दया आई और पछतावा कर अपने मनमें विचार करने लगे कि मैं प्रगटमें तो भगवान्का

भक्त गिना जाता हूं और कर्म मैंने ऐसा करा है कि जो अभक्तभी नहीं करते. तब उसने उसी समय प्रतिज्ञा करी कि अब मैं लोहेका खड्ग नहीं रखनेका. उनके पास जो लोहेका खड्ग था उसको तो आपने अपने पास रक्खा नहीं और एक काष्ठका खड्ग बना लिया उसपरही लोहेकी मूठ चढा ली. जिस समय आप राणाको सलाम करने जाते तो अपने साथ खड्ग ले जाते. यह बात उसकी एक बटेती भाईने जान ली. तो उसने तत्काळही राणासे जाकर कही कि भवन काष्ठका खड्ग रखता है. राणाको इसपर विश्वास न हुआ परन्तु उसने शपथ करी और कहा कि मैं यह सत्यही कहता हूं आप उसको बताकर देख लीजिये. राणाने तिसपरभी कुछ ध्यान न दिया. एक वर्षके उपरान्त फिर उसने राणाको स्मरण दिलाया और कहा कि जो यह बात असत्य हो तो आप मुझको मार डालना. तब राणाने एक स्थानपर एक सभा करी और सम्पूर्ण सभासद आये. प्रथम तो राणाने अपना खड्ग निकाल-कर लोगोंको दिखाया और फिर आपने एककरके अपने सब अधि-कारियोंके खड्ग देखे जब भवन महाराजकी बारी आई तो वह यह कहा चाहतेही थे कि मेरा खड्ग तो काष्ठका है, परन्तु भगवत् इच्छासे कहा कि मेरा खड्ग सारका है और अपना खड्ग म्यानमेंसे निकाला तो ऐसा निकला कि मानो सहस्रों खड्ग एकसाथही आकाशसे निकले हों और उसके प्रकाशसे सबके नेत्र बंद हो गये, तब उसी समय राणाने कहा कि इसको इस चुगली खानेवालेके शीशपर मारो तभी भवनने प्रार्थना करी कि महाराज! इसने असत्य नहीं कहा था. प्रथम मेरा खड्ग काष्ठकाही था, अब भगवान्की इच्छासे यह लोहेका हो गया है. तब राणाभी भगवान्की भक्तिपर विश्वास कर भक्त हो गया और उसी समयसे भवनकी नौकरी माफ कर दी और उसको बहुतसी जहागीर सदाके लिये दे दी और कहा कि

कभी २ दर्शन देनेके लिये आया करना; तभी मैं अपना अहो-भाग्य समझूंगा. अब विचारना चाहिये कि जब भगवान्ने काष्ठके खड्गको लोहेका कर दिया तो कुछ आश्चर्य नहीं, भगवान्के भक्तोंकी इच्छा खड्गसेभी अधिक काम करती है और पापियोंके पापका संहार कर स्थिर राज्य देती है. जो उनके मुखसे काष्ठके बदले सारका शब्द निकल गया और वह वैसाही प्रगट हुआ तो कौनसे आश्चर्यकी बात है.

दोहा–धन यौवन यौं जायगी, जा विधि उडत कपूर।
नारायण गोपाल भज; क्यौं चाटै जगधूर॥

रांकाकी कथा ४.

जातिका कुम्हार रांका नाम भगवान्के परमभक्त हुए. यह जो कुछ अपने उद्योगसे पैदा करते थे वह समस्तही साधुओंकी सेवामें लगा देते थे. एक समय इन्होंने बर्तनोंका आँवा कच्चा तैयार किया और किसी कारणसे उस दिन उसमें अग्नि नहीं दी. रात्रिके समय एक बिल्लीने आकर उसमें अपने बच्चे जने और एक कच्चे बरतनमें धर दिये फिर आप वहांसे कहींको चली गई. रांकाजीको इस बातकी कुछभी खबर न थी उन्होंने प्रातःकालही उठकर उसमें आग्नि लगा दी. जब वह अग्नि प्रज्वलित हो गई तब इनसे कहा कि इसमें बिल्लीके बच्चे धरे हैं तब तो यह अत्यन्तही व्याकुल हुए और उनके निकालनेका उपाय करने लगे; परन्तु कुछभी न हो सका, तब तो इनको अत्यन्तही दुःख हुआ और व्याकुल होकर रुदन करने लगे. इनको भगवान्के सिवाय और कोई शरणका देनेवाला दृष्टि न आया. यदि विचारकर देखा जाय तो चाहे रांका-जीका सब घर जल जाता और चाहे इनके जीवपरभी कुछ आपत्ति

आ जाती तोभी यह भगवान्‌की शरण न लेते. कारण कि जब भगवान्‌के भक्त अपने स्वामीसे मुक्तितककीभी अभिलाषा नहीं करते तो और तुच्छ कार्योंकी कब अभिलाषा करते हैं ? इसीसे उनके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं. उनको भगवान्‌से मांगनेकी इच्छा नहीं होती. इस लेखका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌के भक्तोंकी दया और करुणाको विचारना चाहिये कि वह एक जरासे जीवकाभी दुःख नहीं सहन कर सकते और जो काम कभी न किया हो वह व्याकुल होकर बैठते हैं. जब भगवान्‌ने देखा कि मेरा भक्त व्याकुल हो रहा है तो आपने यह चरित्र किया कि समस्त आँवा तो पक गया और जिस तरफ बच्चे धरे थे उस ओर गर्मीका नामतकभी न पहुँचा और बच्चोंका बालभी बांका न हुआ. जब रांकाजीने आँवा उतारा और उन बच्चोंको जीवित देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और प्रेमसहित भगवान्‌को प्रणाम करा. उसी समयसे कुम्हारोंमें यह रीति प्रचलित है कि उसी दिन आँवा बनाकर उसमें अग्नि दे देते हैं.

दोहा—नारायण तू भजन कर, कहा करेंगे कूर ।
अस्तुति निन्दा जगतकी, दोउनके शिर धूर ॥

केवलरामजीकी कथा ९.

केवलरामजी ऐसे परम भक्त और भगवद्धर्मके प्रचार करनेवाले हुए जिन मनुष्योंने कभी भगवान्‌की भक्तिका नामतकभी नहीं सुना था उन मनुष्योंकोभी भगवान्‌का भक्त बना दिया. वह सुख दुःख और मित्रशत्रुके अतिरिक्त तिलक मालामें इनका पूर्ण विश्वास था. इनकी भगवान्‌के चरणोंमें निष्काममें प्रीति थी और यह लोगोंपर दया करने और सम्पूर्ण मनुष्योंके घर जाकर यह कहा करते कि तुम अपना, मन श्रीकृष्णमें लगाओ; यह दान मुझको दो यही मेरी अभिलाषा

है और उनको भगवान्‌का धर्म सुनाते. यह जहां कहीं दस बीस साधुओंको देखते तो उनको अपने पाससे शालिग्रामजीकी मूर्ति देते और उनको पूजनकी विधि बता देते. एक समय एक बंजारेने अपने बैलके एक कोडा मारा; स्वामीजी तत्कालही व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पडे इनको गिरा हुआ देखकर बहुतसे मनुष्य एकत्रित हो गये और इनके शरीरको देखा तो उस कोडेके चिह्न ज्योंके त्यों उछल रहे थे. यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ और कहा कि इतनी पदवी किसीने कानोंसेभी नहीं श्रवण करी.

हरिव्यासकी कथा ६.

हरिव्यासजी ऐसे भगवान्‌के भक्त हुए कि, उन्होंने अपनी भक्तिके प्रतापसे देवतोंकोभी अपना भक्त बना लिया. इनको भगवान्‌के भक्तोंमें इतनी प्रीति थी कि यह कभी उनसे पृथक् नहीं होते थे और जिस प्रकार राजा जनक ऋषियोंकी संगतिमें रहते थे उसी प्रकार हरिव्यासजीभी रहा करते. यह साधुओंकी सेवा करनेमें अद्वितीय हुए इनकी समान दूसरा होना दुर्लभ है. यह सिवाय भगवान्‌के चरित्रोंके और किसीमें ध्यान नहीं देते थे. एक समय यह चढथावल-नगरमें हरा भरा वाडा देखकर वहां ठहर गये, उनका यह अभिप्राय था कि यह सुन्दर स्थान है. यहांपर भगवान्‌की पूजा करके भगवान्‌का प्रसाद खांयगे, सो उसी वाडेमें दुर्गाजीका एक मंदिर था वहांपर किसी मनुष्यने बलि किया. हरिव्यासजीने जब यह देखा तो इनको अत्यन्तही दया आई और इनका मन घृणित हुआ. यह भूंखे प्यासेही भगवान्‌का भजन करते रहे. जब दुर्गाजीने देखा कि भगवत्‌भक्त दुःखित है तो प्रगट होकर साक्षात् व्यासजीके सन्मुख खडा हो गई और बोली व्यासजी! तुम भगवत् प्रसाद करो. तब हरि-

व्यासजीने उत्तर दिया कि; जिस स्थानपर ऐसा अनर्थ होता है वहांपर रसोई करनी कदापि योग्य नहीं. तब दुर्गाजी बोली कि मेरे अपराधोंको क्षमा कर आप रसोई करिये और भगवान्के मंत्रका उपदेश कर इस नगरको पवित्र कीजिये; हरिव्यासजीने विचारा कि जब दुर्गाजीको शिष्य करा तो समस्त नगरके मनुष्य सरलतासे वशमें हो जांयगे, इस कारण दुर्गाजीको भगवान्का मंत्रउपदेश किया. जब दुर्गाजी वैष्णव हुई तो नगर सरलतासे वशमें हो जायगा. जो वहांका सरदार था उसको रात्रिके समय खाटपरसे गेर दिया और उससे कहा कि जो तू अपना भला चाहता है तो हरिव्यासजीका सेवक होकर भगवान्की भक्ति कर नहीं तो मैं सम्पूर्ण नगरका नाश कर दूंगी. यह सुन प्रातःकालही समस्त नगरके मनुष्य एकत्रित होकर आये और हरिव्यासजीके शिष्य होकर भगवान्की भक्ति करने लगे. तब व्यासजी यहांपर कई दिनतक ठहरे रहे और ऐसी उत्तमतासे भगवान्की भक्तिका उपदेश किया कि वहांका भंगीभी भगवद्भक्त हो गया.

दोहा–निजस्वारथको मित्र सब, यही जगतकी चाल ।
नारायण विनु स्वारथी, हितू नंदको लाल ॥

अथ

निष्ठा ग्यारहवीं उपवासके विषयमें।

(इसमें दो भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी अमृतकलशरेखाको दंडवत् कर फिर नृसिंह अवतारको प्रणाम करता हूं कि जिन्होंने अपने भक्त प्रह्लादके कारण मुलताननगरमें नृसिंहरूपधारण करके हिरण्यकश्यपको परमधामको भेजा. भगवान्के प्राप्त होनेके व्रत ऐसे हैं कि जिनके करनेसे विना परिश्रमही भगवान्को प्राप्त हो जाता है यहांपर श्रुति और पुराणोंका लिखना अवश्य नहीं-एकादशी, जन्माष्टमी, रामनौमी आदि सब व्रतोंके माहात्म्यकी पुस्तकें प्रलित हैं. यह तो सभी जानते हैं कि एकादशीव्रतका निर्णय दशमीसे होता है, इस कारण कि दशमीवेध व्रत सब स्मृति और पुराणोंसे वर्जित है. इसका यह कारण है कि दशमीके दिन दैत्योंका जन्म हुआ था. यदि जो दशमीवेधा व्रत करें तो दैत्योंकी वृद्धि और धर्मका नाश हो जाय और एकादशीके दिन देवता उत्पन्न हुए थे इसी कारण एकादशीके व्रत होनेसे देवता प्रसन्न होते हैं और जो व्रत करता है उसके हृदयमें अपना प्रकाश करते हैं. वेध मिश्रितको कहते हैं, अर्थात् जब उदयमें कुछ दशमी हो और इसके उपरांत एकादशीसे वेधके निर्णयमें कई प्रकारसे विरुद्ध हैं. स्कंदपुराणमें चालीस घडीका वेध लिखा है, अर्थात् जिस तिथिके उदयमें चालीस घडी दशमी हो तो दूसरे दिन व्रत करना योग्य है और चालिस घडीसे शेष दशमी हो तो दूसरे दिन अर्थात् द्वादशीके दिन व्रत करना होगा सो इस बातपर कालीकंठीवालोंका विश्वास है. अब

विचारना चाहिये कि कालीकंठीवाले बहूजीके शिष्य कहलाते हैं, यह वैष्णवी मार्ग है. यमुनागंगाके अंतरवेदीसे अधिक और किसी देशमें इस मतके नहीं. रणदेवाग्राममें सहारनपुरके पास उनका गुरुद्वारा है, इस धर्मका आचार्य सिद्ध था. यह जो उपासनाकी रीति लिखी है सो शास्त्रके अनुसार माननेके योग्य है परन्तु अब इस धर्ममें कोई पंडित और उपासनाका ज्ञानी नहीं रहा; इसी कारण उसका प्रचार थोडा है बहुतसे घरानोंसे तो उसका प्रचार उठ गया. बहूजीके नामसे इस आचार्यकी प्रीति प्रगट होती है; क्योंकि यह बहूजी श्रीलक्ष्मीजी हैं; इस नामसे और इस संप्रदायवालोंकी तिलक आदि अनेक रीतियोंसे जाना जाता है कि यह मार्ग श्रीसंप्रदायसे निकला है जो इसके प्रेमी हैं और इसको ढूंढते हैं और उनको इस संप्रदायके संस्कृत ग्रंथभी मिलते हैं. जिस प्रकार भक्तमालके बनानेवालेने एक ग्रंथ देखा है स्कंदपुराणसे इस व्रतका वीस प्रकारसे विस्तार जाना गया; अर्थात् जो किसीने इकतालीस घडी दशमीको योग्य माना तो वह एक भांति और बयालीसको योग्य समझा तो दूसरी इसी प्रकार साठ घडीतक वीस भांतिकी हुई और सबके नाम व्याली, महाव्याली, भया, महाभया इत्यादि लिखे हैं. कालीकंठीवालोंसे शेष कोई इस धर्मका जाननेवाला नहीं, इसी कारण हमने विस्तार बढाना उचित न समझा.

चारों संप्रदायकी वेध इस प्रकार है कि निम्बार्कसंप्रदायवालोंने तो स्मृति और पुराणोंके अनुसार पैंतालीस घडीका वेध माना है; अर्थात् अर्धरात्रिसे दूसरे दिनतकका उदय माना है. यदि जो अर्धरात्रिसे पीछे दशमी हो तो दूसरे दिन व्रत करना कर्तव्य नहीं, कारण कि उस समय दशमी आ गई और उसही रीतिको कपालिका भेद कहते हैं और जो उपासनारीतिके ज्ञाताओंका यह विश्वास है कि गर्मीमें अर्धरात्रि सैंतालीस घडीपर होती है और जाडोंमें तेंतालीस घडीपर

सो जिस तिथिको जितनी रात व्यतीत हो गई हो परन्तु अर्धरात्रि हो तो उसीको मुख्य विचारे कुछ पैंतालीस घडीका वेध नहीं, परन्तु बहुधा पैंतालीस घडीका वेध है. रामानुजसंप्रदायमें पुराण और स्मृतिकी आज्ञासे आजकी तिथि पचपन घडी व्यतीत होनेपर दूसरा दिन माना गया है अर्थात् जबसे ब्राह्म मुहूर्त जो कि रात्रिका अष्टमभाग है उदय हो तभीसे तिथिका उदय है. भारतवर्ष हिन्दुस्थानमें रात्रिका अंत छत्तीस और चालीस घडीके मध्यमें है इस कारण रात्रिका अष्टमभाग पांच घडी हुई सो इस संप्रदायके लोग दशमीसे पचपनघडीसे विशेष हो तो दूसरे दिन व्रत नहीं करते, और जो यदि थोडी हो तो कर लेते हैं. अब शेष दो संप्रदाय एक विष्णुस्वामी दूसरा माध्वी सो उनका ऊपर लिखी हुई रीतिपर विश्वास है परन्तु कितनेही पुरुषोंने रात्रिका अष्टमभाग चार घडीभी माना है; इस कारण छप्पन घडी दशमीका वेध मानते हैं. स्मार्त्तोंमें कोई एक रीति और न होनेके कारण कई भेद हैं. कोई पैंतालीस घडीको और कोई छप्पन घडीको ठीक मानते हैं और कोई अरुणोदय अर्थात् अट्ठावन घडीका वेध मानते हैं; उस समयतक यदि दशमी होगी तो व्रत नहीं करनेके; नहीं तो साठ घडीका वेध मानना योग्य नहीं. कहीं २ ग्यारहहीका अंक मुख्य समझते हैं; जिस दिन पत्रेमें ग्यारहका अंक हो उसी दिन व्रत किया करते हैं. यदि जो पक्षमें एकादशी घट जाय और पत्रेमें ग्यारहका अंक न हो तो व्रत नहीं करते. कश्मीर आदि उत्तरके देशोंमें पांच घडी दिन चढेतक दशमी हो तो उसी दिन व्रत करते हैं, उस देशमें दशमीवेध व्रत करनेका यही कारण है कि शुक्राचार्यजी दैत्य और राक्षसोंके गुरु थे और वे तो अपने शिष्योंकी वृद्धि चाहते हैं इसी कारणसे उस व्रतका प्रचार हुआ, परन्तु विष्णुजीने वैकुंठसे आकर ऋषियोंसे दशमीवेध व्रत करनेका

निषेध किया. यह कथा पद्मपुराणमें विस्तारपूर्वक लिखी है. शुक्राचार्यजीके इस प्रचारको बहुतसे बुद्धिरहित मनुष्योंने तो अबतक ग्रहण कर रक्खा है और अनेक मनुष्योंने यह कहा है कि एकादशीके दिन अन्नका खाना वर्जित है, सो जब एकादशी प्रारम्भ हो भोजन पान त्यागना कर्तव्य है और जिस समय द्वादशी उदय हो तो व्रत खोलना उचित है. ऐसे कर्मभी दक्षिणदेशमें सुने जाते हैं और देशभेदसे उपासनाकी रीति व्रतमें भेदता लिखी गई है. परन्तु जो शास्त्र जाननेवाले हैं वे बहुधा तीन वेध मानते हैं एक तो पैंतालीस घडी, दूसरा पचपन, तीसरा छप्पन. और यहभी विचारना चाहिये कि शास्त्रोंमें जो त्रिस्पर्शक व्रतका माहात्म्य और पुण्य बडा लिखा है, सो त्रिस्पर्शक अंश उसको कहते हैं जो तिथिके उदयमें घडी या दो घडी एकादशी हो और उसके उपरान्त द्वादशी होकर दूसरे दिनके उदयसे पहिले यदि त्रयोदशी आ जाय और उस त्रिस्पर्शकका कुछ फल नहीं जिसके उदयमें दशमी हो और ऊपर लिखे हुए अनुसार एकादशी और द्वादशी हो जाय तो इसका दशमीवेध होनेसे निषेध है. जन्मअष्टमीका व्रत श्रीसम्प्रदायवालोंने सिंहके सूर्यमें जो अष्टमी हो तो उसको माना है और उस अष्टमीके कृत्तिका नक्षत्र और सप्तमीका वेध एकादशी वेधकी रीतिसे अवश्यही जानना उचित है. जन्मउत्सवमें वह जन्मके नेत्रपर दृष्टि रखते हैं सो भगवान्‌का जन्म रोहिणी नक्षत्रमें हुआ था, इस कारण कृत्तिकाका वेध मानना उचित है और भादोंके महीनेमें अष्टमीसे पांच दिन पीछेतक सिंहका सूर्य न हो तो आसोजमें व्रत करते हैं और शेष तीनों सम्प्रदायवाले भादोंकी अष्टमी मुख्य समझते हैं; परन्तु सप्तमीवेधको अवश्यही देखते हैं. यदि जो एक पलभी सप्तमी हो और फिर दिन रात अष्टमी हो तो उस दिन व्रत

करना कदापि योग्य नहीं. दूसरे दिन किया जायगा. वह कृत्तिकाके वेधको नहीं देखते. विष्णुस्वामीसम्प्रदायमें वल्लभकुलवालोंके भावकी बात पृथक् है; उनके नेमसे प्रेम पृथक् है स्मार्तोंने चन्द्रमाके उदय होनेके समय अष्टमीका होना अवश्य जाना है, सप्तमीवेधको नहीं देखते; श्रीरामचन्द्रजीका अवतार चैत्र सुदी नौमीका और वामन अवतार भादों शुदी द्वादशीका और नृसिंह अवतार वैशाख सुदी चतुर्दशीका हुआ; सो रामनौमी और नृसिंहचतुर्दशीमें तो अष्टमी और त्रयोदशीका वेध एकादशीके वेधकी रीतिसे मानना चाहिये परन्तु वामनद्वादशीमें एकादशीके वेधका मानना उचित नहीं कारण कि एकादशीभी वैष्णवी तिथि है और द्वादशीभी. एक स्थानपर ऐसा देखनेमें आया कि उस पक्षमें एकादशी घट जाय और एकादशीका व्रत द्वादशीमें हो तो वह व्रत वामनद्वादशीका समझकर वामनद्वादशीका उत्सव कर लिया जाय सो इस वचनके उपासक संप्रदायवाले एक औरभी निर्णय कर लें श्रीसंप्रदायवाले रामनौमीके व्रतमें मेषका सूर्य मुख्य मानते हैं और चैत्रमें जो मेषका सूर्य न हो तो वैशाखमें व्रत करते हैं चैत्र सुदी नौमीको सीतामहारानीका अवतार और भादों सुदी अष्टमीको राधिका महारानीका जन्मउत्सव होता है. उनके जन्मउत्सव और अनंतचतुर्दशीके व्रतमें वेध माननेकी रीति अपनी संप्रदायके अनुसार है. बहुधा पुरुष तो भगवान् और महारानीजीके अवतारके दिवसको व्रत मानते हैं और एकादशीकी रीतिसे निर्जल व्रत करते हैं और कितनेही भगवत्उपासक उत्सव समझकर जन्म और वर्षगांठकासा उत्सव करते हैं और जन्म हो जानेके पीछे चरणामृत लेकर और सब प्रकार सुस्वाद भोजन अपनी श्रद्धाके अनुसार भगवान्के अर्पण करके भोजन कर लेते हैं और जो लोक जन्मअष्टमीके दिन यह बात करते है कि अर्धरात्रिके पीछे भोजन करना वर्जित है; उनको

यह उत्तर देते हैं कि वह रात्रि नहीं वह तो करोडों दिनोंसेभी अधिक है. यदि जो यह भाव उसका सत्य है तो जन्मउत्सवका वृत्तान्त जो कुछ उपासक और भक्तजन करते हैं वह लिखनेकी सामर्थ्य नहीं कि अपने २ भाव और भक्तिके अनुसार है कि कितनेही पुरुषोंका ऐसा भाव देखनेमें आया कि पुत्रपौत्रके जन्म अथवा विवाह इत्यादिमें एक रुपया खर्च करते तो भगवान्के जन्मके उत्सवमें उससे दशगुणा खर्च किया और वह धूमधाम और आनंद किया कि आपही आप भगवान्के चरिणोंमें मन लगे. जो लोग एकादशीका व्रत नेमसे करते हैं, उनकी यह रीति है कि एक काल हविष्य अन्न जिस प्रकार तंदुल, मूंग, जव, गोधूम, तिल, घृत इत्यादि खाते हैं और दशमीके दिन एक वार फलाहार करते हैं, और एकादशीको निर्जल व्रत करते हैं, व्रतके दिन प्रभातसेही भगवान्के भजनमें रहना उचित है और किसी तरफ ध्यान न देना चाहिये, जिस प्रकार कि गवाही, मुनसिफी, मार्ग चलना, शतरंज, गंजफा आदि खेलना. दिनको, शयन करना स्त्री और चित्रोंका देखना और अन्य कर्म जिस प्रकार कि तांबूल, काजल इत्यादिका निषेध एकादशीमाहात्म्यमें लिखा है और क्रोध तथा मिथ्या वचनका तो कहनाही क्या है, उसका तो सर्वदाही निषेध है. रात्रिको जागरण करना उचित है, और जो किसी कारण भगवत्कीर्तन और भगवान्के भक्तोंके समाजकी विधि न मिले तो इकलाही भगवान्का भजन करता हुआ जागरण करे. द्वादशीके दिन भजन पूजन नित्यकर्म करके हरिभक्त और ब्राह्मणोंको श्रद्धा और शक्तिसे भगवान्का प्रसाद भोजन करावे; तथा पात्र द्रव्य धन दान करके और व्रतका फल भगवान्के अर्पण करके आप भोजन करे; और पारना द्वादशीमें उचित है और जिस दिन वेधसे द्वादशीको व्रत होगा तो पारण त्रयोदशीमें आपही करना उचित होगा. अब विचारना चाहिये कि आषाढ और

कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीमें बीस २ घडी अनुराधा श्रवण और रेवती नक्षत्रोंकी परिणामके विषय निषेध है, जो उन्नीस घडीमें पारणा करी तो बारह एकादशियोंके व्रतका फल जाता रहा. जो यह घडियें निषेध करी हैं उनमें बीस २ घडीकी वार्ता कई प्रकारसे लिखी है, परन्तु बहुधा इसी पूर्ण साक्षीसे मिलती है कि अनुराधानक्षत्रकी बीस घडीमें नक्षत्रके आदिसे श्रवणनक्षत्रके बीसमें और रेवतीके अंतकी बीसमें पारण करना निषेध है. इन बीस घडीके आदि अंतमें किसी समय कर ले और यहभी विचारना चाहिये कि जो निर्जल व्रत न हो सके अथवा वोदा और बलहीन होनेके कारण भगवद्भजन न हो सके तो इतना फल आहार दूध वा जलका कर लेना योग्य है, कि जिससे जागरण और भगवान्‌के भजनकी श्रद्धा बनी रहे और जो एकादशीके दिन कुछ रोग हो जाय तो मीठा मूंग गोधूमका भोजन कर लेना वर्जित नहीं. इन रीति और भगवान्‌की प्रीतिसे जो व्रत करते हैं इनको निःसंदेह मुक्ति होती है. एकादशीके जन्म और फलके प्राप्त होनेका वृत्तान्त एकादशीमाहात्म्यमें लिखा है; इस कारण यहांपर नहीं लिखा. अब हमारे व्रतका वृत्तान्त सुनो कि प्रीति तो इतनी है कि व्रत स्मरण नहीं रहता और जो याद रही तो दशमीसे चिन्ता हुई, रात्रिकोही खूब पेटभरके खाया और फिर विचार करने लगा कि कल क्या फलाहार होगा ? जब प्रभात हुआ तो फलाहार करने लगे और दो पहरसे पहलेही भोजन करनेको बैठ गये और फिर खूबही छककर खाया कि कभी द्वादशीके दिनभी इतना न खाया होगा और फिर आतेही पलंगपर शयन किया. दही कूट सिंहाडा शाक पेडा मोहनभोग इत्यादि शुष्क और गरिष्ठ वस्तु खाई थीं इस कारण कई वार पानी पिया तो पेट खूब फूल गया और फिर खाटपर लोटते रहे. अभी तो वह भोजन पचाही नहीं था

कि ऋतुके फलोंकी याद आई तो तत्कालही मंगाकर खाये. फिर जब रात्रि हुई तो दूध और पेडे खाकर ऐसे अचेत होकर खाटपै पडे कि एक क्षणकोभी न बैठ सके. सारी रात्रि गधेकी समान लोटते हुए व्यतीत करी दूसरे दिन चार घडी दिन चढे चेत हुआ उस समय भजन और स्मरणका तो क्या कहना उसको तो स्नानकीभी सुधि न हुई. ऐसे मनुष्योंको व्रत करना धिक्कार है. अरे हे पापी मन ! अबभी विचार ले कि यह देह सर्वदा स्थिर नहीं रहेगी ! किसीने भगवान्से विमुख होकरभी कहीं सुख पाया है ? नहीं और जो मनुष्य इस समाजमें दृढ होगा तो उसका उद्धार निःसन्देह हो जायगा. वर्षाऋतुमें जब श्रावणका महिना आया तो प्रियाप्रीतमको झूला झूलनेकी उमँग हुई और सब सखियोंकी सलाहसे वर्षानेका पर्वत इस समाजके लिये ठहराया गया; जिसके चारों ओर हरे २ कल्पवृक्ष, तमाल, कदम्ब पाडल, मौलसिरी, चंपा इत्यादि वृक्षोंपर सुगंधित बेल छाई हुई, सुगंधित पुष्प ऋतुके भगवान्की सेवाके लिये खिले हुए, जगह २ झरने झरते हुए घटा उमडी हुई तथा बादल गरजते हुए कभी २ बिजलीका चमक और मोर सारस आदि पक्षियोंका मनोहर शब्द धीमी धीमी सुगंधित पवन चल रही है. किशोर किशोरीकी प्रसन्नताके कारण वह पर्वत ऐसा शोभायमान और मनोहर हुआ कि आपही आप प्रेम शृंगार सब स्थानोंसे प्रगट होता था. एक कल्पवृक्षके डुग्गेमें सखियोंने रेशमकी डोरीका झूला डाला और उसमें रत्नजटित सिंहासन डालकर मखमल, कमखाब, जरदोजीका बिछौना, मोती इत्यादिकी झालरसे सजाया और उसमें प्रियाप्रीतम विराजमान हुए. एक ओर तो चंद्रावली और दूसरी ओर ललिता, विशाखा, श्यामला, श्रीमती तथा दूसरी ओर धन्या, पद्मा, भद्रा और शेष सखियां पखावज, ढफ, वीणा, बांसुरी, करताप और झांझ इत्यादि बाजे लेकर

श्रीकृष्ण और राधिकाको झुलानेके लिये खडी हुई और फिर मल्हार गा गाकर प्रियाप्रीतमको झुलाने लगीं. उस समय उस समाजमें ऐसा आनंद हुआ कि ब्रह्माणी पार्वती इत्यादि चित्रसी हो गई और सब रागमें निमग्न हो गई. उस समयकी शोभा आनंद और हास्य शृंगारका वर्णन कौन कर सकता है. उस समय समस्त वन और पर्वत आनंदका देनेवाला हो रहा था; फिर एक एक सखी उस मनमोहनको लुभानेके लिये कि जिसकी किंचित् मायामें करोडों ब्रह्मांड नृत्य करते रहते हैं सो उनके समीप मोहनीरूप हो रही थीं, और एक २ के गोरे मुखपर चंद्रमाकी समान घूंघरवाली अलकें छुटी हुई शोभाको बढा रही थीं. माथेपर बेंदी और टीका, कानोंमें कर्णफूल और झुमके, गलेमें पचलडी और चम्पाकली, हाथोंमें भुजबंद और चूडी, कंगन जडाऊ, उंगलियोंमें अंगूठी, छल्ला, आरसी, दुपट्टा और लहँगा, सूहा, हरा, और गुलनारी, धानी, नाफरमानी आदि रंगोंके अपने २ रूप और रंगके अनुसार जरीगोटे, टप्पे इत्यादिसे सुसज्जित, पैरमें पाजेब, झांझन, बिछुए, पगफूल उन समस्त सखियोंके समाजमें नटनागर ब्रज-चंद श्रीकृष्ण महाराजकी शोभा कैसी है कि जिस प्रकार करोडों संदेह इस छबिमें शृंगार विराजमान हो रहे हैं स्वस्वरूप और शृंगार और वस्त्रोंकी चमक दमक ऐसी मनोहर है कि सब सखी उनकी ओर चंद्र-माकी ओर चकोरकी समान हो रही हैं. उनका एक हाथ किशोरी-जीके गलेमें है और दूसरे हाथसे अलकें संभाल रहे हैं वह कभी चंद्रावली तथा ललिता आदिसे हास्य करते हैं और कभी उनके रूप और शोभाको निहारते हैं और कभी गाना सुनते हैं और कभी वृष-भानुकिशोरीका मुख चुम्बन करते हैं. उस समय जो शोभा हो रही थी सो उसका वर्णन मैं मंदबुद्धि नहीं कर सकता.

दोहा-विषयभोग निद्रा हँसी, विषसम लागत ताहिं।
नारायण व्रजचंदकी, लगन लगी है जाहिं॥

अंबरीषकी कथा १.

राजा अंबरीष चक्रवर्ती परम भगवान्‌के भक्त हुए कि जिनका कीर्तन बहुधा पुराणोंमें है और वह दान देनेमें ऐसे प्रसिद्ध हुए कि उनकी समान दानी राजा बहुतही कम हुए. इन्होंने यज्ञ इतने किये कि इनकी गिनती लाखोंतक पहुँची इनको इतने सुख प्राप्त थे कि इतने सुख इन्द्रादिक देवतोंकोभी दुर्लभ हैं, परन्तु इन्होंने कभी उनमें मन नहीं लगाया. उनको भगवान्‌की पूजामें इतनी श्रद्धा और प्रेम था कि वह समस्त सेवा भगवान्‌की अपने हाथसे करते थे. वह भगवान्‌की पूजाकी सामग्रीमें किसी नौकरको हाथ कभी न लगाने देते थे. शास्त्रोंमें एकादशीव्रतके लिये जो आज्ञा है इन्होंने उसीके अनुसार ऐसा कर्म किया कि इनको भगवान्‌की उत्तम पदवी मिली. यह नौमी दशमीके नेम संयमके पीछे एकादशीव्रत करके जागरण करते और द्वादशीके दिन द्रव्य और अनेक प्रकारकी वस्तु और करोडों गौ दान करके सब प्रकारके भोजन ब्राह्मणोंको जिमाकर तब आप पीछेसे पारण करते थे. एक वार इनके यहां दुर्वासाऋषिका समागम हुआ. राजाने प्रणाम और आदरसत्कार करके उनसे कहा कि हे ऋषे! अब आप भोजन पाइये, तब दुर्वासाजीने कहा कि राजन्! हम स्नान कर आवें, तब वह फिर स्नान करनेके लिये गये. दैवसंयोगसे उस दिन दो घडी द्वादशी थी, राजाव्रत पारणा करनेके लिये अत्यन्त व्याकुल हुआ, तब उसने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे चरणामृत पानकर लिया. जब फिर दुर्वासाजी आये और उन्होंने यह वृत्तान्त सुना तौ वह अत्यन्तही क्रोधित हुए और उन्होंने राजाके मारनेका उपाय

विचारा. उन्होंने अपनी जटासे कालकृत्या अग्नि प्रचंड करी वह तत्कालही राजाको जलानेके लिये दौडी. जो कि भगवान् सर्वदा अपने भक्तकी रक्षा करनेके लिये तैयार रहते हैं वह दुर्वासाका गर्व देख-कर उसको सहन नहीं कर सके; तब उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी, उसने पहले तौ कालकृत्याको भस्म कर दिया और फिर दुर्वासाऋषिकी सेवा करनेको चला. तब तौ दुर्वासाजी अपने प्राणोंके भयसे भागे और सुदर्शन चक्र उनके पीछे २ चला. सारी पृथ्वी और ब्रह्मलोक कैलास आदिमें सब लोकपाल देवता आदिकी विनती करते फिरे परन्तु किसीकीभी श्रद्धा न हुई जो उनकी रक्षा कर सकता. ऐसी किसमें सामर्थ्य है जो भगवान्के शत्रुको तथा उनके भक्तके शत्रुको रख सके अन्तमें दुर्वासाजी वैकुंठनिवासी श्रीनारायणजीके पास गये; तब उन्होंने कहा कि मैं तौ तुम्हारी रक्षा कर सकता परन्तु विचार लो कि मेरे भक्तको आश्रय देनेवाला और कोईभी नहीं, फिर भला मैं उनका अपमान कर तुम्हारी रक्षा किस प्रकार सह सकूंगा, इस कारण तुम राजा अंबरीषके पास जाओ और अपने अपराधकी क्षमा उनसे मांगो. यह सुनकर दुर्वासाजी निराश हो गये और फिर राजाके निकट आकर प्रणाम कर त्राहि ! त्राहि ! पुका-रने लगे. तब राजाको इनके ऊपर दया आई और उसने सुदर्शनच-क्रकी विनती कर उसको शांत किया और फिर दुर्वासाजीका इतना आदर सत्कार किया कि, वह समस्त दुःख भूल गये. अब विचारना चाहिये कि, दुर्वासाऋषि एक वर्षतक व्याकुल फिरते रहे, परन्तु राजा एकही स्थानपर खडा रहा और उनके दुःख होनेसे पछतावा करने लगा. निःसंदेह जो कि भगवान्के भक्त हैं उनको किसीसे द्वेष नहीं होता, वह इस संसारको भगवान्काही स्वरूप मानते हैं और फिर राजाने दुर्वासाजीको भोजन कराया और जो भोजन इनके लिये

प्रथम बनवाया था. एक वर्ष व्यतीत होनेपरभी वैसाही गरम बना रहा वही दुर्वासाजीको जिमाया. जब दुर्वासाजीने भगवान्की भक्तवत्सलता और राजाकी इतनी श्रद्धा देखी तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और भगवान्के भक्तोंकी महिमा और प्रशंसा करते हुए अपने आश्रमको गये. अब इस कथामें यह शंका उत्पन्न हुई कि, भगवान्ने सम्पूर्ण स्थानों-पर यह प्रतिज्ञा की है कि कोई पापी कैसाही भयभीत होकर जो मेरी शरण आता है मैं तत्कालही उसको अभय देता हूं और सम्पूर्ण जो भगवान्के उपासक हैं वरन सब देवतोंकी उपासनाका सिद्धान्त शरणागति है अब जो दुर्वासाजी भगवान्की शरण गये और भगवान्ने रक्षा नहीं करी तो यह बात असिद्ध हो गई, तो अब विचारना चाहिये कि, भगवान्नेही उत्तर देनेकी समय उस शंकाको निवृत्त कर दिया था; तिसके उपरान्त भगवान्ने यहभी कहा कि मैं दो अपराधोंके अतिरिक्त और सम्पूर्ण अपराध क्षमा कर सकता हूं; एक तो वह कि जो मेरे भक्तोंका अपराध करे और दूसरा वह कि जो मेरे नामसे करे अर्थात् जो यह मनोरथ करके पाप करेगा कि इस पापसे नाम या मन्त्र जपकर निर्मल हो जाऊंगा; सो जब भगवान्ने यह प्रतिज्ञा करी कि मुझसे भक्तोंके किये हुए अपराध क्षमा नहीं होते तो उस प्रतिज्ञामेंभी हानि हुई. यदि विचार किया जाय तो शरणागतिमेंभी कुछ प्रतिज्ञाभंग नहीं हुआ, कारण कि दुर्वासाजी प्राणकी रक्षाके लिये भगवान्की शरण गये थे उनका प्राण बच गया, यदि जो उनका प्राण न बचता तो यह शंका हो सकती थी और यहभी विचारना चाहिये कि दुर्वासाजीपर कुछ राजा अंबरीषने तो क्रोध नहीं किया था वरन उस पर तो भगवान्काही क्रोध था; उन्होंने सुदर्शन चक्रको दंड देनेकी आज्ञा की थी, यह प्रताप शरणागतिकाही हुआ कि दुर्वासाजी बच गये; नहीं तो स्वामीके क्रोधके अगाडी बिचारे

दुर्वासाजीकी क्या सामर्थ्य थी? और इस चरित्रका निज कारण यह है कि भगवान् अपने भक्तोंके समस्त पापोंपर ध्यान नहीं देते; परन्तु वह एक गर्वमें तत्कालही दृष्टि देते हैं किस कारण कि गर्वसे भजन और भगवान्की सेवामें बडा विघ्न पडता है और इसी कारणसे वह अपने भक्तके गर्वका नाश कर देते हैं. गरुड मार्कंडेय और नारद इत्यादिक कथा इसकी साक्षी हैं, सो दुर्वासाजीको अपनी सिद्धिता और बडाईका गर्व था और वह राजाकी परीक्षाके लिये गये थे, इस कारण भगवान्ने राजाहीकी शरण भेजकर दुर्वासाजीका गर्व दूर किया. इस चरित्रसे भगवान्ने औरभी शिक्षा दी है जब भगवान्ने दुर्वासाजीको ग्रहण नहीं किया तो दुर्वासाजीने क्रोधित होकर शाप दिया और उसी शापके वशसे भगवान्को दश बार पृथ्वीपर अवतार धारण करना पडा. इससे यह शिक्षा होती है कि जब मैंने अपने शरणागतकी रक्षा नहीं करी और मैं सबका स्वामी हूं और सामर्थ्यवान्भी हूं परन्तु तौभी जब इसके अपराधसे मुझकोही दश बार जन्म लेना पडा तो दूसरेही मनुष्योंकी तो सामर्थ्यही क्या है ? जो पुरुष शरणागतकी रक्षा न करेगा, नहीं कह सक्ता कि उसकी क्या दशा होगी. जब राजाकी भक्ति और भगवान्की कृपाका यह वृत्तान्त विख्यात हुआ तो एक राजाकी कन्या थी, वहभी भगवान्की भक्ति करती थी, उसने यह अभिलाषा करी कि मेरा विवाह राजा अंबरीषके साथ हो तो अति उत्तम है. राजाने कहा कि मुझे तो भगवान्हीकी सेवासे अवकाश नहीं मिलता और न मुझको स्त्रीकी इच्छा है; तब तो इस लडकीको औरभी प्रेम हुआ और फिर इसमें अपने विवाहके लिये कहला भेजा. अंतमें जब उसका प्रेम राजाने देखा तो विवाह स्वीकार कर लिया, परन्तु विवाह करनेके लिये राजा आप तो न गये उन्होंने अपने शस्त्र भेज दिये. उनके साथही उस कन्याका

विवाह हो गया; फिर जब वह विदा होकर आई तो राजाने उसको एक अलहदा मकानमें रख दिया. एक दिन वह रानी अर्धरात्रिके समय राजाकी पूजाका स्थान देखनेके लिये आई राजा जबतक नहीं जागे थे इस कारण रानीने मंदिरमें बुहारी देकर शुद्ध जल लाकर समस्त पूजाकी सामग्री इकट्ठी कर दी और फिर वहांसे चली आई. जब राजा जागे और पूजा करनेके लिये मंदिरमें गये तो उन्होंनें समस्त पूजाकी सामग्री तैयार पाई, यह देखकर उनको बडा आश्चर्य हुआ और विचारने लगे. निदान वह दूसरे दिनको न सोय और उस रात्रिको जागतेही रहे; इसके उपरान्त अर्धरात्रिके समय फिर रानी आई तो राजाने पूछा कि तू कौन है जो मेरी पूजामें साझा करती है. रानीने कहा कि महाराज! मैं आपकी नई दासी हूं; तब राजाने उसकी भक्तिको देखकर कहा कि तुम एक पृथक् स्थानपर भगवान्की पूजा किया करो. रानीने राजाके ऐसे वचन सुन ऐसी प्रीतिसे भगवान्की पूजा करी कि उसकी पूजासे भगवान् और राजा दोनोंही प्रसन्न हो गये. इस रानीका वृत्तान्त विस्तारसहित प्रेमनिष्ठामें लिखा जायगा; फिर और रानियोंने जब यह देखा कि राजा भगवान्की सेवासे प्रसन्न होता है तो सबनेही प्रसन्न हो प्रीतिसहित भगवान्की पूजा करनी स्वीकार करी और समस्तही राजाके स्थानपर गईं. जब उस नगरके लोगोंने यह वृत्तान्त सुना कि जिस जगह भगवान्की पूजा होती है उस स्थानपर राजा जाता है तो समस्त नगरमें भगवान्की पूजा करनेका प्रचार हो गया और भक्ति तथा प्रेमकी इतनी वृद्धि हुई कि समस्त नगर भगवान्की सेवा करने लगा; अर्थात् जिस समय राजा परमधामको गये तो अपनी समस्त राजधानी अयोध्याजीकोभी ले गये और समस्तही उत्तम पदवीको प्राप्त हुए जो पदवी योगी जनोंकोभी मिलना दुर्लभ है;

जिनको वह परिश्रम करकेभी नहीं प्राप्त होते सो पदवी इनको मिली. भगवान्‌की पूजा करनेका यही उत्तम फल है.

रुक्मांगदजीकी कथा २.

राजा रुक्मांगदकी कथा पुराणोंमें और एकादशीमाहात्म्यमें लिखी है इनका एक अत्यन्तही सुन्दर बाग था. उस बागके फूलोंकी सुगन्धिसे प्रसन्न हो देवताओंकी स्त्रियां विचरण करनेके लिये आया करती थीं. एक दिन उन स्त्रियोंमेंसे किसी स्त्रीके पैरमें बैंगनका कांटा लग गया, तौ उसकी संगकी सब साथने तौ चली गईं और वह रह गई, तब उसने एक मालीकी लडकीसे कहा कि यदि किसीने एकादशी व्रत किया हो तो उसका फल मुझको दे दो, तुम्हारा बडा उपकार होगा; तो मैं उसके प्रतापसे अपने पापोंसे छूटकर स्वर्गलोकको जाऊं; इसका समाचार राजाकोभी ज्ञात हो गया सो राजा तत्कालही अपने बागमें आये और उस देवांगनको कहा कि इस नगरमें कोई एकादशीव्रतका नामतकभी नहीं जानता फिर किससे फल दिलावें ? तब उसने कहा कि हे राजन् ! यहांपर एक स्त्रीने विना जाने हुए व्रत किया है उससे फल दिलवा दीजिये तो तुम्हारा बडाही उपकार होगा. तब राजाने अपने सारे नगरमें यह ढंढोरा फिरवाया कि जिस किसीने एकादशी व्रत किया हो तौ उसकी हमको खबर दो. तब ज्ञात हुआ कि साहूकारने किसी कारणसे उस रोज अपनी स्त्रीको मारा था सो उसकी स्त्री क्रोधके मारे भूंखी प्यासी पडी थी और उसके शरीरमें इतनी चोट लगी कि सारी रात उसको नींद न आई, तब तो भगवान्‌ने जागरणके सहित अपना व्रत मान लिया तब यह स्त्री राजाके बागमें आई और उसने अपने व्रतका फल उस देवांगनाको दिया, जिसके प्रतापसे वह मुक्त होकर तत्कालही देवलो

कको चली गई. जब राजाने इस व्रतका ऐसा माहात्म्य देखा तौ अपने समस्त नगरमें यह आज्ञा दी कि एकादशीके दिन जो कोई जागरणके साथ व्रत न करेगा वह अवश्यही कठिन दण्ड पावेगा. यह राजाकी आज्ञाको सुनकर एकादशीव्रतका करना समस्त प्रजाने प्रसन्न हो स्वीकार कर लिया, और उस नगरमें भगवान्की भक्तिका ऐसा प्रचार हुआ कि सारी प्रजा परम उत्तम पदकी अधिकारिणी होकर परम धामको गई. राजाकी पुत्रीकी श्रद्धा जो इस व्रत और भगवान्की भक्ति करनेमें हुई वह सुननेके योग्य है. एकादशीके दिन उसका पति आ गया उसने समस्त मनुष्योंको जब व्रत करते देखा तो आपभी भूंखा प्यासा सारे दिन रहा और रात्रिके समय क्षुधाके मारे अत्यन्तही व्याकुल हुआ तौ अपनी स्त्रीसे बोला मुझे इस समय अत्यन्तही भूंख लगी है कुछ भोजन हो तौ मुझको दे दीजिये. वह तो व्रतके माहात्म्यको जानती थी उसने उसको कुछभी नहीं दिया तब वह भूंखके मारे व्याकुल होकर दो चार घटीमेंही मर गया और वह भगवान्का स्वरूप धारण कर परमधामको गया. उसकी स्त्री यह देखकर बहुतही प्रसन्न हुई और अपने पतिकी प्रशंसा करती हुई उसके पीछे उसी लोकमें गई. अब विचारना योग्य है कि एकादशीके व्रतका माहात्म्य कैसा उत्तम है? एकादशीमाहात्म्य, रामनौमी, जन्माष्टमी इनकी कथाओंको पढकर देख लो कि व्रत करनेका कितना माहात्म्य है.

राग विभास।

ऊधो हौं दासनको दास।
जो जन मेरो नाम जपत है तिनही घट प्रकाश॥ १॥
धन्नाकी मैं गऊ चराई नामको दिहर फिराया।
त्रिलोचनके भयो व्रतीया भक्तन सुख दरसाया॥ २॥

कबीरके मैं हो बनजारा सेनकी व्रती धाया ।
गजके चरण गहे मैंनेही काढ जलौं थल लाया ॥ ३ ॥
जो जन कहत करौं मैं सोई संत मेरी रह रास ।
हित चित प्राण भक्त हैं मेरे गावत हैं दुनिदास ॥ ४ ॥

कवित्त–ब्रह्म मैं ढूंढो पुराणन वेदन भेद सुनो चित चौगुने चायन ।
देख्यो सुनो न कहूं कबहूं वह कैसो स्वरूप औ कैसो सुभायन ॥
ढूंढत ढूंढत ढूंढ फिर्‌यो रसखान बतायो न लोग लुगायन ।
देख्यो कहां वह कुंजकुटीनमें बैठ्यो पलोटत राधिका पायन ॥ १ ॥

अथ

बारहवीं निष्ठा महाप्रसादकी महिमामें ।

(इसमें चार भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं फिर श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंकी जंबूरेखाको दंडवत कर फिर हयग्रीव अवतारको प्रणाम करता हूं कि जिन्होंने काम-रूप देशमें देवताओंकी सहायताके निमित्त दुष्टोंको मारनेके लिये अवतार धारण किया है. गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि जो कुछभी करे समस्त मेरे अर्पण कर दे; अर्थात् यज्ञ करे दान करे, तप करे, भोजन करे यह सभी मेरे अर्पण कर दे तो वह मनुष्य अपने दुष्ट कर्मोंके बंधनसे छूट जायगा; इस कारण उचित है कि जो कुछ भोजन तथा असबाब इत्यादि नई वस्तु हो सबही मेरे अर्पण कर दे, तब पीछे अपने काममें लावे. वह जो कुछ मेरे भक्त मेरे निमित्त अर्पण करते हैं मैं उसको ग्रहण कर लेता हूं. जिस प्रकार गीतामें

लिखा है कि, जो मेरे भक्त प्रसन्न होकर मेरे अर्पण फल पुष्प जो वस्तुभी करते हैं मैं उनको प्रीतिसहित ग्रहण कर लेता हूं. भगवान्के प्रसादको भोजन करनेका तथा शास्त्रकी आज्ञानुसार कर्म करनेका कितना विशेष माहात्म्य है कि शीघ्रही मन निर्मल होकर भगवान्के चरणोंमें उसकी प्रीति हो जाती है. पुराणोंमें लिखा है कि जो कोई भगवान्का प्रसाद भोजन करता है, तो उसको सहस्र एकादशी और सौ द्वादशीका फलभी तो भगवान्के प्रसादके एक किनकेकी समान नहीं हो सकता. गरुडपुराणमें लिखा है कि जो मनुष्य भगवान्का महाप्रसाद भोजन करते हैं उनके समस्त रोगोंका नाश हो जाता है और फिर वह पवित्र अंतःकरणके हो जाते हैं फिर यहभी लिखा है कि, जो मनुष्य खाने पीनेकी वस्तुको मेरे अर्पण कर खाते अथवा पीते हैं, वह निःसन्देह मेरे समीप आते हैं और जो पुरुष मेरे विना भोग लगाये भोजन कर लेते हैं तो उनका भोजन सूअर और कुत्तेके भोजनके समान है और जल रुधिरकी समान है. फिर विष्णुपुराणमेंभी यही लिखा है कि जो मनुष्य विना भगवान्के अर्पण किये कोई वस्तु किसी प्रकारकी क्यों न हो अपने काममें लावेगा वह निश्चयही मुझको नहीं प्राप्त होगा विचार लो कि तुम भगवान्के अर्पण कर फिर अपने व्यवहारमें लाओगे तो उसमें तुम्हारी क्या हानि है ? न कुछ वह तुम्हारी वस्तुही घट जायगी, तब फिर भगवान्के अर्पण करनेमें क्या लगता है, केवल इतनीही तो बात है जब है कि जब रसोई खानेको बैठे तो उसमें भगवान्का चिंतवन कर भगवान्के अर्पण कर दिया और उसमें इतना औरभी ध्यान कर ले कि. भगवान्ने इस भोजनको भोग लगा लिया. बस इसी प्रकार सब वस्तु जब तैयार. हो जांय तब भोग लगा ले यदि भगवान्की मूर्ति न हो तो मानसी ध्यानसे

भगवान्के अर्पण कर दे फिर अपने काममें लावे और जो कहीं ऐसा संयोग हो गया हो रसोईं तैयारमेंसे किसीने भगवान्के विना भोग लगाये खा ली हो तो उस गृहस्थीको ऐसा विचारना योग्य है कि, इस रसोईमेंसे भगवान्ने कुछ भोजन लगाया है. उसीमेंका यह भोजन है परन्तु भगवान्के स्वरूपका अपने हृदयमें चिंतवन करना अवश्य है और कुछ मानसीभोजन करनाभी अवश्य है कि उसके विना भगवान्का प्रसाद नहीं हो सकता कोई वस्तु क्यों न हो परन्तु भगवान्के विना भोग लगाये विषकी समान है. अब यहांपर यह शंका उत्पन्न हुई कि सैकडों और हजारों मनुष्य ठाकुरद्वारेहीमें भगवान्का प्रसाद और चरणामृत खाते पीते हैं और उनमेंसे बहुतसे मनुष्य अपने पास शालिग्रामकी मूर्ति रखते वे विना उसके भोग लगाये कुछ नहीं खाते पीते, परन्तु मनकी निर्मलतासे भगवान्की प्राप्ति थोडेहीको होती है, इसका क्या कारण है. सो जानना उचित है कि इस विषयमें श्रद्धा मुख्य है. इसमें जितनी अधिक श्रद्धा होगी उतनीही अधिक निर्मलता होगी. अब नामनिष्ठामें पद्मनाभजीकी कथा आवेगी कि जिन्होंने कुष्ठके रोगीको देखकर कहा कि तू तीन वार रामनाम लेकर डुबकी लगा आरोग्य हो जायगा. तब उसने कहा कि मैं तो नित्यही सौ वार रामनाम लेता हूं. जब उससेही कुछ न हुआ तो तीन वारसे क्या होगा ? अंतमें पद्मनाभजीने उसको बहुतही समझाया तो उनके कहनेसे उसने रामनाम लेकर गंगाजीमें डुबकी लगाई, तत्कालही वह आरोग्य हो गया. इसके उपरान्त उन्होंने यह वृत्तान्त अपने गुरु कबीरजीसे निवेदन करा तब उन्होंने कहा कि तू बडा हतभाग्य है जो कि रामनामकी महिमाको नहीं जानता. रामनाम उसका नाम है कि जिसके नाम लेनेसे करोडों जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं और फिर वह भगवान्को

प्राप्त हो जाता है; फिर तैंने तीन वार नाम क्यों लिया. अब विचारना योग्य है कि रामनाममें जैसी जिसकी श्रद्धा थी वैसाही उसको फल मिला. यही वार्ता भगवान्‌के प्रसाद और चरणामृतकी है. दूसरा कारण यह है कि जिस प्रकार कोई रोगी रोग निवृत्त करनेके कारणसे औषधी खाता है, परन्तु औषधी खानेपर जो परहेज करना है वह कर्म कुछभी नहीं करता तो उस औषधीसे कुछभी लाभ न होगा; इसी प्रकार चरणामृत और महाप्रसादभी औषधीकी समान है और भगवान्‌का महाप्रसाद और शास्त्रोंमें तथा गुरुवचनमें श्रद्धा करनी पथ्यकी समान है. जो पुरुष रीतिके अनुसार कर्म करता है उसको निःसन्देह शीघ्रही भगवान्‌की प्राप्ति होती है. कोई मनुष्य अपने गुरु तथा साधुओंका चरणामृत और शीतप्रसाद भोजन करे और उनकी आज्ञाको न मानता हो; तब गुरु उससे क्रोधित रहते हैं अथवा उस मनुष्यने अपने मित्रकी शिक्षासे गुरुकी आज्ञानुसार कर्म करा तो तत्कालही गुरु और साधु उससे प्रसन्न हो गये और वह मनुष्य अपने मनइच्छित मनोरथको प्राप्त हुआ, इसी प्रकार चरणामृत और महाप्रसाद लेनेमें भगवान्‌की आज्ञा माननी तथा शास्त्र और गुरुके वचनमें श्रद्धा करनी अवश्यही उचित है. भगवान्‌के चरणामृत और महाप्रसादकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है? भगवान्‌के शीतप्रसाद और चरणामृतका वह प्रताप है कि जिसके प्रतापसे करोडों महापापी भगवान्‌के समीप गये. नारद और भक्तमालके बनानेवाले नाभाजीकी कथा इस बातकी पूर्ण साक्षी है. इसके उपरान्त भगवान् अपने महाप्रसाद और चरणामृतकी महिमा द्रौपदी और अंबरीषकी कथासे प्रगट करते हैं; अर्थात् दुर्वासाजीने चरणामृत लेनेके दोषसे अंबरीषको दुःख दिया था, उनकी क्या दशा हुई थी सो द्रौपदीकी कथामें लिखी जायगी, कि वनवासके समयमें

राजा युधिष्ठिरको सूर्यने एक टोकनी दी थी, उसका प्रभाव यह था कि नित्यही जबतक द्रौपदी भोजन न करती तबतक भोजन अनंत रहता एक दिन दुर्वासाजी द्रौपदीके भोजन कर लेनेके पीछे आये राजा युधिष्ठिरने कहा स्नान कर आओ उनके जानेपर जब राजा युधिष्ठिरने जाना कि द्रौपदी भोजन कर चुकी तब चिन्ताकुल हुए उस समय द्रौपदीने कृष्णका स्मरण किया तब भगवान्‌ने आकर और एक शाकका पात टोकनीमेंसे ढूंढकर खाया उसका यह प्रताप हुआ कि दुर्वासाजी अपने दश सहस्र शिष्योंके सहित इतने लज्जित हुए कि मुख छिपाकर भाग गये. अब विचारना चाहिये क्या भगवान् विना शाकके लिये दुर्वासाजीको लज्जित न कर सकते थे. हठ करके शाक खानेका केवल यही प्रयोजन था कि भगवान्‌ने अपने महाप्रसादका प्रताप दिखाया कि देखो जो कुछ मेरे अर्पण होता है वह ऐसा अनंत है जैसा कि मैं चाहता हूं और अनंत हुआ तो करोडोंकी क्षुधा निवारण कर सकता हूं द्रौपदीने पूर्वजन्ममें छोटासा वस्त्र एक ऋषिको भगवान्‌के निमित्त दिया था वह ऐसा अनंत हुआ कि दुःशासन खैंचता हुआ हार गया. देखो समुद्रमें जलकी बूंद पडतेही समुद्र हो जाती है और इसी प्रकार अनंतको जो वस्तु अर्पण करी जाय वह अनंत हो जाती है और जब अनंत हो गई तो यह नहीं हो सकता कि उसके खाने पीनेमें मनको निर्मलता न हो. अब इसका आख्यान लिखा जाता है कि, सब वस्तु जो पवित्र और निर्मल हैं वह दूसरी वस्तुकोभी पवित्र और निर्मल कर सकती है अग्नि और जल तथा वायुसे इसकी प्रतीति होती है, इसी प्रकार वह भोजन और जल जब भगवान्‌की पवित्रता और निर्मलताको पहुँचाता है तो तत्कालही शुद्ध और पवित्र हो गया. इस शुद्ध और पवित्र खान तथा पानको जब साधक पुरुषने खाया पिया तो उस साधकोंकोभी शुद्ध

पवित्र कर दिया, श्रद्धा मुख्य है. संसारमें प्रचलित है कि, महात्मा सिद्धोंने मार्ग चलनेवाले बहुतसे पापी और अपवित्र पुरुषोंको एक क्षणमें अपना शीतप्रसाद भोजन कराकर अथवा देहसे देह मिलाकर सम्पूर्ण पापोंसे पवित्र और निर्मल कर दिया. इसका केवल यही कारण है कि, वह शुद्ध और पवित्र थे. उन्होंने अपनी पवित्रतासें दूसरेके मलकाभी नाश कर दिया. इसका सारांश यह है कि बिना भगवान्‌के अर्पण किये कोई वस्तुभी अपने काममें लानी उचित नहीं और यहभी लिखा गया है कि यह कर्म कुछ कठिनभी नहीं . है. यह बातोंकी बात है, मनमें चिंतवन कर लेनाही उत्तम है. हमसे यह थोडीसी बातभी नहीं हो सकती सो हमारा यह मंदभाग्य है और कलियुगका प्रभाव है जो ऐसी मेरी बुद्धि हो गई और उसी पापोंके कारणसे मेरी यह दशा हुई कि जिसके प्रभावसे भांति २ के अनेक जन्म लेकर नाना प्रकारके संताप भोगूंगा परन्तु इस समय मेराभी अच्छा दाँव लगा है कि जो मुझको श्रीरघुनंदन स्वामीके चरणकमलोंकी शरण मिली. अब मैं देखता हूं कि इस मेरे पापी मनका बल अधिक है अथवा मेरे स्वामीका. हे पतितपावन ! हे दीनवत्सल ! यदि जो तुम मेरे पापोंपर दृष्टि डालकर देखो तो मैं इस योग्य नहीं हूं कि आप मेरी भलाई करें, इस कारण भगवान् शिक्षा देते हैं कि तू सर्वदा मेरे स्वरूपका चिंतवन किया कर जिससे दोनों लोकोंमें तेरा निर्वाह होगा. अयोध्याधिराज महाराज दशरथजीका अत्यन्तही सुन्दर मंदिर है, उसके दरवाजे और दीवारें सभी सुवर्णकी हैं और पुखराज, लालपन्नें आदि रत्नोंसे जटित और शोभायमान हैं; उसमें जो चारों भाई शोभित हैं सो मानो चारों मुक्त वा चारों फल अथवा चारों व्यूह और चारों उपासना अर्थात् नाम धाम लीला रूप साक्षात् अपने

खेल और बालचरित्रोंसे सब माया और दशरथ महाराजको परमानंदसे पूर्ण करते हैं. कभी तौ माताके साथ किसी खिलौनेकी मांगनेकी हठ करते हैं और कभी महाराज दशरथजीसे घोडेपर चढाने और धनुषबाणके मंगा देनेकी हठ करते हैं और चित्र तथा खिलौनोंको देखकर प्रसन्न होते हैं और बार २ मातासे पूंछते हैं कि यह क्या है ? और कभी रत्नोंपर अपने मुखका प्रतिबिंब देखकर पूछते हैं कि यह किसके लडके हैं फिर कभी खाते हुए खेलते फिरते हैं और पक्षियोंको बटोरकर खिलाते हैं और कभी उनको पकडनेके लिये दौडते हैं और जब पक्षी उड जाते हैं तब मातासे हठ करते हैं कि; तुम हमको पकडकर ला दो. फिर कभी चारों आपसमें हाथ पकडकर नाचते हैं फिर कभी रात्रिके समय चंद्रमाको देखकर मातासे कहते हैं कि, हमकोभी ऐसाही मंगा दो. निदान वह लीला और चरित्र परम मनोहर है कि ब्रह्मा और शिवादिक देवता देखकर परम आनंदमें मग्न होते हैं और कभी मायाके जालमें फँस जाते हैं. उन चारों भाइयोंके मुखकी शोभा ऐसी सुन्दर है कि जिसको देखकर हृदयमें आनंद होता है और उनके शोभा तथा शृंगार आदि पदार्थ ललाटपर वारी होकर दर्शनोंके आनंदमें मग्न होते हैं. जरदोजीके काम और गोटे टप्पे तथा रत्नोंकी टोपी शीशपर विराजमान हैं, घूंघरवाली अलकें छुटी हुई हैं, माथेपर गोरोचनका तिलक विराजमान है, कानोंमें छोटे २ कुंडल और झूमके विराजमान हैं और उनके प्रकाशित कपोलोंपर काला टीका लग रहा है, इस कारण कि किसीकी नजर न हो जाय, गलेमें कंठी कठला सिंहका नख और जुगन शोभायमान हैं, हाथोंमें भुजबंद पहुँची कडे पहरे हुए हैं, चरणकमलोंमें घूंघरू और झांझन शोभाको बढा रही है; शरीरपर पीत और धानी रंगकी बारीक रेशमीन वस्त्र हैं, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि माता बालचरित्रको देखती

हुई आनंदमग्न हो अपने भाग्यकी बडाई करती हुई चारों ओर विराज रही हैं और यह दासभी किसी कोनेमें छिपा हुआ वहांही खडा है.

अंगदजीकी कथा १.

अंगदजी सलहदी राजाके चचा रायसैनके गढमें परम भगवान्के भक्त हुए. यह जातिके रजपूत थे, इनका वृत्तान्त यह है कि यह भगवान्से विमुख थे और इनकी स्त्री जो थी सो परम भक्त और साधुओंकी सेवा करनेवाली थी. एक वार उस स्त्रीके गुरु आये और उसके घरमें बैठकर भगवान्का उपदेश कर रहे थे इसी अवसरमें अंगदजी आ गये और क्रोध कर बोले कि, स्त्रीपुरुषको एकान्तमें बैठना कब उचित है? गुरुने देखा कि यह पुरुष भगवान्से विमुख है; तत्कालही चले गये और उस स्त्रीका सुख तथा भोग अपने साथ ले गये अर्थात् वह स्त्री गुरुके दर्शन और भगवान्की कथाके न प्राप्त होनेसे उसने खाना पीना त्यागन कर दिया दुःखित हो बैठी रहा करती. अंगदजी उसका यह चरित्र देखकर व्याकुल हुए और उसको प्रसन्न करनेका उपाय करने लगे. उन्होंने अपनी स्त्रीकी प्रसन्नताके निमित्त अपना शीशभी उसके चरणोंमें रक्खा परन्तु उसका शोक कुछभी निवृत्त न हुआ. अंतमें अंगदजीनेभी खाना पीना त्यागन कर दिया और प्रतिज्ञा करी कि, हे प्रिये तू प्रसन्न हो अब जो तू कहेगी वही मैं करनेको उपस्थित हूं. तब तो वह स्त्री प्रसन्न हो गई और कहा कि हे स्वामिन्! तुम भगवान्की भक्ति करनी स्वीकार करो यही मेरी अभिलाषा है और मेरे गुरुके शिष्य होकर उनकी सेवा किया करो. अब विचारना चाहिये स्त्रीको हठ पतिकी आज्ञा भंग करना कब उचित था? परन्तु वेद और स्मृतियोंका वचन है कि; गुरु और ईश्वरमें समान भाव हो. दूसरे यह कि जिस पुरुषकी प्रीति भग-

वान्‌की समान गुरुके चरणोंमें नहीं होती उसको उत्तम गति कदापि नहीं प्राप्त होती, वह प्राणी सर्वदाही दुःखित रहता है. पतिके सुखके निमित्त ऐसा किया. स्त्रीके ऐसे वचन सुनकर अंगदजी गुरुके पास गये और उनके शिष्य होकर तिलक तथा मालाको धारण किया. इसके उपरान्त फिर गुरुजीको अपने स्थानपर लिवाकर लाये, फिर उन्होंने भगवान्‌का भजन तथा गुरु और साधुओंकी सेवा ऐसी उत्तम रीतिसे करी कि, थोडेही समयमें उनका अंतःकरण निर्मल और भगवान्‌में प्रीति हो गई. एक समय राजा अपने किसी शत्रुपर चढा और राजा-हीकी विजय हुई, लूटके समय अंगदजीको ऐसी टोपी मिली कि उसमें एक सौ एक हीरा लगा था सो इन्होंने सौ हीरोंको बेंचकर तौ भगवान्‌के उत्साह तथा साधुओंकी सेवामें लगा दिया और उनमें जो एक हीरा सब हीरोंमें उत्तम तथा बहुतही कीमती था उसको जगन्नाथजीकी भेंट करनेके लिये अपनी पगडीमें रख लिया. जब राजाके यहां उस हीरेकी चर्चा हुई तौ उन्होंने लूटका और सब धन तो उनके पासही छोड दिया परन्तु वह हीरा जो कि बहुत कीमती था सो मांगा फिर और लोगोंनेभी अंगदजीको समझाया परन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि,वह रत्न जो जगन्नाथजीकी भेंट हो चुका. अब वह किसीको नहीं मिल सकता. अंगदजीकी एक बहन थी, यह उसके हाथकी बनाई हुई रसोईका भोग भगवान्‌को लगाया करते और जब ये भोजन करनेको बैठते तौ उसकी कन्या इनके साथ भोजन करनेको बैठती, तब राजाने विचारा कि इसे मरवा डालना उचित है इस कारण उसकी बहनको बुलाया और उससे कहा कि हम तुझको बहुतसी जागीर देंगे यदि तू आजकी रसोईमें विष डाल देगी तौ. उसने लोभके वशीभूत होकर ऐसाही किया और कन्याको छिपा दिया. जब रसोई तैयार हो गई तौ अंगदजीने प्रथम तौ भगवान्‌को भोग लगाया और

जब आप खानेके लिये बैठे तो उस लडकीकी खोज करने लगे परन्तु वह लडकी न आई; तब आपनेभी भोजन न किया और वैसेही बैठे रहे. तब तो बहन पछतावा करने लगी कि देखो मेरे भ्राताको तो इतनी प्रीति है और मेरी यह दशा है कि उसके भोजनमें विष मिला दिया मैं बडी अभागी हूं यह विचार कर लज्जित हुई और तत्कालही अपने भाईको प्रीतिसहित हृदयसे लगा लिया और समस्त वृत्तान्त विष मिलानेका कह सुनाया. तब अंगदजीको अपने जीवकी तो कुछ चिन्ता न हुई परन्तु यह विचार करने लगे कि विष मिला हुआ भोजन भगवान्‌को भोग लगाया है इस विचारसे अत्यन्तही दुःखी हुए और अपने घरमेंसे अपनी बहनको तत्कालही निकाल दिया और वह जो भगवान्‌का प्रसाद था इसको अमृतकी समान जानकर आप भोजन कर गये. जब राजाने यह समाचार सुना तो वह अंगदजीकी मृत्युके समाचारकी वाट देखने लगा; परन्तु अंगदजीको तो उस महाप्रसादमें अमृतका भाव था इस कारण उस विष मिले हुए महाप्रसादने अमृतका फल दिया; अर्थात् इनके मुखका प्रकाश और सुख विशेष होने लगा और जिनकी भगवान्‌में श्रद्धा नहीं थी और जो दुष्ट मनुष्य थे उनको महाकष्ट और दुःख हुआ. फिर अंगदजी उस हीरेको जग-न्नाथरायजीकी भेंट करनेके लिये चले तब इनको मार्गमें राजाके नौकरोंने घेर लिया; और इनसे कहा कि, यह हीरा हमको दे दो और जो न दो तो हमसे युद्ध कर लो हमें राजाने यही आज्ञा दी है; तब राजाके नौकरोंकी ऐसी बातें सुनकर अंगदजी बोले कि तुम किंचित् कालतक ठहरो मैं जरा स्नान कर आऊं फिर तुमसे युद्ध करूंगा यह कहकर अंगदजी एक नदीके किनारे गये और वहां जाकर हाथ जोडकर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगे कि, हे भगवन्! यह हीरा जो मेरे पास है सो आपहीकी धरोहर है सो मैं इसको तुम्हें

लिये देता हूं तुम इसकी रक्षा कर लेना. यह कह वह हीरा मनुष्योंको दिखाकर नदीमें डाल दिया. जब भगवान्‌ने अपने भक्तकी ऐसी बिनती सुनी तौ वह भक्तोंकि महिमा और प्रतापको प्रगट करनेके लिये पुरुषोत्तमपुरीसे सात सौ कोस आये और उन्होंने हीरेपर पानीतकभी नहीं पहुँचने दिया कि तत्कालही उठाकर पुरुषोत्तमपुरीको ले गये. सो आजतक भगवान्‌की भुजामें वह हीरा शोभित है और उसके दर्शन होते हैं; इसके उपरान्त अंगदजी तौ फिर अपने स्थानको चले आये परन्तु राजाके नौकरोंने उस नदीमें हीरेको ढूंढा पर कुछभी पता न मिला. वरन यहांतक हुआ कि, राजाभी उस तालपर गया और उस तालका समस्त पानी खिंचवाकर हीरेको ढूंढवाया कुछभी पता न लगा; तब यह समस्त मनुष्य निराश हो गये और लौटकर चले आये; इसके उपरान्त अंगदजीकी श्रद्धाको देख जगन्नाथरायजीने पुजारीयोंसे कहा कि तुम इस हीरेके मिलनेका समाचार अंगदजीको दे दो. पुजारियोंने भगवान्‌की ऐसी आज्ञा सुनकर यह समाचार अंगदजीको कहला भेजा. अंगदजी बडेही प्रसन्न हुए फूले अंगभी न समाये फिर वह उसी समय जगन्नाथजीके दर्शन करनेके लिये चल दिये. फिर हीरेको देख भगवान्‌के दर्शन करके भक्तवत्सलता और भगवान्‌की कृपाके प्रेममें मग्न हो गये. राजाको तौ अंगदजीकी भक्तिका विश्वास हो गया था उनके चले जानेसे वह अतिक्रोधित और व्याकुल हुआ और फिर उसने उसी दिनसे खाना पीना त्यागन कर दिया और ब्राह्मणोंको बुलाकर उनको लेनेके लिये भेजा, तब ब्राह्मण अंगदजीको लिवानेके लिये पुरुषोत्तमपुरीको गये और जाकर राजाका संदेश निवेदन किया कि, हे महाराज ! जब आप मेरे देशमें आ जांयगे तभी मैं अपने भाग्यका उदय हुआ जानूंगा, नहीं तौ मेरे मरनेमें कुछभी संदेह नहीं है. तब अंगद-

जीने कहा कि मैं तो न जाऊंगा तो उन ब्राह्मणोंनेभी कहा कि हमभी यहीं पडे हैं चलेंगे तो तुमको लेकरही. फिर ब्राह्मणोंने खाने पीनेकोभी त्यागन कर दिया यह देखकर अंगदजीको दया आई और वह राजाकी नगरीको चले. जब राजाने इनक आनेका समाचार सुना तो वह इनको लेनेके लिये आया और जब अंगदजीके समीप गया तो दौडकर अतिशीघ्र उनके चरणोंमें गिर पडा. राजाके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे. अंगदजीने तत्कालही राजाको उठाकर छातीसे लगा लिया और फिर राजाको भगवान्की भक्ति तथा साधुओंकी सेवा करनेका उपदेश दिया. राजाने अंगदजीके शुभागमनका उत्सव किया और समस्त द्रव्य तथा धन अपने भंडारका दान कर दिया और फिर आपभी भगवान्की शरण होकर कृतार्थ होगया.

दोहा–विना भक्ति भगवन्तकी, भव तर सक न कोय।
यासौं भजिये रामको, जन्म सुफल तब होय ॥

राजा पुरुषोत्तमपुरीजीकी कथा २.

पुरुषोत्तमपुरीके राजा परम भगवान्के भक्त हुए, उनको भगवान्के महाप्रसादमें इतनी निष्ठा थी कि उन्होंने किंचित् मूर्खताके वश हो अपना हाथ कटवा डाला एक समय राजा चौसर पासे खेल रहे थे उस समय जगन्नाथरायजीका पुजारी भगवान्का महाप्रसाद लेकर राजाके समीप गया; राजाके उस समय दहने हाथमें तो पासा था इस कारण उसने बांया हाथ प्रसाद लेनेके लिये फैलाया, पुजारीने देखा कि यह राजा श्रद्धारहित है इस कारण अत्यन्तही क्रोधित हुआ फिर अपने स्थानको उलटा चला आया. राजाने देखा कि मुझसे बडाही अपराध हुआ यह विचारकर पुजारीके पीछे २ दौडे और मार्गमें अनेक प्रकारसे विनती करी

तो फिर पुजारीको लिवाकर लाये और उस महाप्रसादको अपने शीशपर धारण किया; इसके उपरान्त फिर पुजारीको विदा कर बहुतसी विनती करी और अपने अपराधको क्षमा करानेके निमित्त रुदन करने लगे और जब वह पुजारी चला गया तो निराहार होकर घरमें जा पडे और फिर यह विचार करने लगे कि, किसी प्रकारसे दाहिने हाथको काट डालना उचित है क्योंकि यह भगवान्के महा-प्रसादसे विमुख है. परन्तु फिर यह विचार हुआ कि मेरे डरके मारे मेरा हाथ कौन काटेगा? इसी विचारसे राजा दुःखित हो चिन्तित रहने लगा. एक दिन मंत्रीने कहा कि हे राजन्! आपको मैं सर्वदाही चिन्तित और मलीन देखता हूं सो इसका क्या कारण है सो कहिये राजाने कहा कि रात्रिकी समय यहांपर एक पिशाच आता है और यह इस झरो-खमसे हाथ निकालकर कुलाहल शब्द करता है, इस कारण तुम आज रात्रिको मेरे स्थानपर रहो और जभी वह पिशाच हाथ निकाले तो तुम तत्कालही उसके हाथको काट डालना. राजाकी ऐसी आज्ञाको सुनकर खड्गके सहित मंत्री उसी स्थानपर रहा. रात्रिमें फिर राजाने उस झरोखेमें अपना हाथ डालकर कुलाहल किया. मंत्री-ने इस शब्दको सुनकर तत्कालही एक खड्ग ऐसा शीघ्रतासे मारा कि राजाका हाथ साफ कट गया. फिर जब मंत्रीने देखा कि यह हाथ राजाका है तब बहुत लज्जित हुआ और अपने आपको धिक्कारने लगा कि मैं बडाही नीच हूं जो कि अपने स्वामीके हाथको काट डाला. तब राजाने कहा कि मैंही भयंकर पिशाच हूं जो कि भगवान्से विमुख हूं; तुम कुछभी चिन्ता मत करो. इस मेरे हाथका काट डालनाही उचित था, इसके उपरांत जब भगवान् करुणासिंधुने अपने भक्तकी महाप्रसादमें जब ऐसी श्रद्धा देखी तो पुजारियोंसे कहा कि राजाके लिये महाप्रसाद ले जाओ और उसका जो हाथ कट

गया है उसको ले आओ. तब भगवान्की ऐसी आज्ञाको श्रवण कर पुजारी महाप्रसादको लेकर अति शीघ्र गये और उधरसे दर्शनोंके लिये राजा आ रहा था तो मार्गमेंही पुजारियोंने महाप्रसादको राजाके आगे किया. राजाने प्रसन्न हो भक्ति भावसे दोनों हाथ लेनेको उठाये तौ तत्कालही भगवान्की कृपासे नया हाथ उत्पन्न हो गया. तब फिर राजाने दोनों हाथोंमें भगवान्का महाप्रसाद ले लिया. और प्रीतिसहित अपनी छातीसे लगाया, फिर राजा भगवान्की ऐसी प्रीतिको देख आनंदित हो भगवान्के दर्शनोंके लिये गये फिर प्रसन्नतासहित भगवान्की सेवा करने लगे. इसके उपरान्त भगवान्ने उस कटे हुए हाथको अपने वाडेमें लगा दिया. वह हाथ अत्यन्तही सुगंधित पुष्पोंवाला दौनेका वृक्ष हो गया, सो आजतक उसके पुष्प जगन्नाथजीको चढाये जाते हैं. एक पुराणमें लिखा है कि भगवान् जगदीशका प्रसाद अन्नजलकी समान नहीं है वरन वह भगवान्का स्वरूप है. जो मनुष्य इसमें विशेष विचारते हैं वह पापी हैं और उनका शीघ्र नाश हो जाता है.

दोहा–नारायणकी भक्ति विन, नहीं होय कल्यान ।
यासों नित करिये भजन, कृपा करहिं भगवान ॥

सुरेश्वरानंदकी कथा ३.

स्वामी सुरेश्वरानंदजी परमानंदजीके शिष्य परम भगवान्के भक्त हुए, उन्होंने भगवान्के महाप्रसादकी तो महिमा इस संसारमें ऐसी प्रकाशित करी कि, जिसके प्रसादसे सहस्रों मनुष्योंको भगवान्में पूर्ण श्रद्धा हो गई, एक समय इनके किसी द्वेषीने दाल और मांसको पकाकर इनके समीप धरके कहा कि यह भगवान्का महाप्रसाद है; सुरेश्वरानंदजीने भगवान्के महाप्रसादका नाम सुन-

तेही तत्कालही ग्रहण कर लिया और फिर वहांसे चल दिये इनके पीछेमें जो शिष्य आये थे उन्होंनेभी देखा देखी वैसाही किया. यह देखकर स्वामीजीको बडाही क्रोध हुआ और उन शिष्योंसे कहने लगे कि तुमने क्या खाया है? तब शिष्योंने कहा कि जो आपने खाया है वह हमनेभी खाया है, तब तौ स्वामीजी चकित हुए और बोले कि हमने तौ महाप्रसाद खाया था और तुमने मांस खाया है. यदि प्रतीत न हो तौ वमन करके देख लो. निदान जब स्वामीजीने उलटी करी तब तौ उसमें तुलसा और गंगाजीकी रैनका निकली और जब शिष्योंने उलटी करी तो उसमेंसे मांस निकला. यह देखकर शिष्यगण अत्यन्तही लज्जित हुए और स्वामीजीके चरणोंपर गिर पडे तब सबको भगवान्‌के महाप्रसादमें विश्वास हुआ. देख लो सामर्थ्यवान् है और विश्वासी है उसको विषभी अमृतकी समान है और अमृत विषकी समान है जिस प्रकार शिवजीने विषको पान किया था और वही उनके कंठका आभूषण है और देखो राहुने अमृतपान किया था सो उसका शीश काटा गया.

दोहा—वारि मथे वरु होय घृत, सिकताते वरु तेल।
विनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

श्वेतद्वीपकी कथा ४.

श्वेतद्वीप भगवान्‌के विहारका स्थान है और जो भगवान्‌के भक्त शास्त्रोंमें चिरंजीव लिखे हैं वह बहुधा इसी द्वीपमें जाकर रहते हैं. एक वार नारदजी उस द्वीपमें गये वहांपर उन्होंने ज्ञानका उपदेश करना विचारा तब भगवान्‌ने कहा कि यहांके रहनेवाले मनुष्य मेरे प्रेममें आनंदमें मग्न रहते हैं सो तुम यहांपर तौ अपनी ज्ञान कहानीको रहने दो कहीं और जाकर सुनाना. नारदजी भग-

वान्‌की ऐसी आज्ञा सुनकर उदास होकर वैकुंठलोकको चले गये और नारायणजीसे यह समस्त वृत्तान्त निवेदन किया, तब नारायणजीने कहा कि, हे नारद! इसमें कुछभी संदेह नहीं कि श्वेतद्वीपके रहनेवालोंकी यही दशा है. यदि तुमको विश्वास न हो तो मेरे साथ चलो अपनी आंखोंसे देख लो. इसके उपरान्त भगवान् नारदजीके सहित श्वेतद्वीपपर गये तो क्या देखते हैं कि तालके तटपर एक पक्षी बैठा हुआ भगवान्‌के ध्यानमें लवलीन था; उस पक्षीको देखकर नारायणजीने कहा कि हे नारद! इस पक्षीने सहस्रों वर्षोंसे अन्न जल ग्रहण नहीं किया है कारण कि इसको भगवान्‌का भोग लगाया हुआ जल नहीं मिला और भगवान्‌के प्रसादके विना इसने कुछभी भोजन नहीं खाया. तब नारदजीने कहा कि इसकी परीक्षा करनी उचित है. नारदजीकी यह वार्ता सुनकर नारायणजीने थोडासा जल और थोडासा प्रसाद लेकर और उसको अपना प्रसाद कहकर तालके किनारेपर गेर दिया तब तो उस पक्षी भक्तने तत्कालही वह जल अपनी चोंचमें उठा लिया, और पान कर गया. नारदजी उस पक्षीकी ऐसी श्रद्धा देखकर चकित हुए और उसको पूजा करनेके योग्य समझा फिर उसकी परिक्रमा करी और ऐसे प्रेममें मग्न हो गये कि इनको कुछभी ज्ञान न रहा. फिर नारायणजीके सहित आगेको चले तो वहां इन्होंने एक मंदिर देखा तो उस समय उस मंदिरकी आरती होकर दरवाजे बंद हो गये थे इन्होंने एक पुरुषको उस मंदिरकी ओर शीघ्रतासे आता हुआ देखा, उससे पूछा कि तू कहां जाता है? उसने उत्तर दिया कि भगवान्‌की आरती देखनेको जाता हूं. तब नारायणजीने कहा कि आरती तो हो चुकी और भगवान्‌के मंदिरके पटभी मुंद गये यह सुनतेही वह तत्काल पृथ्वीपर गिर पडा और मर गया; फिर उसी समय उसकी स्त्री आई नारायणजीने उससे

कहा कि, तेरा पति तो मर गया उसकी तू क्रिया कर्म कर. तब स्त्रीने उत्तर दिया कि तू कैसा भगवान्से विमुख है कि जो क्रिया कर्मको भगवान्के दर्शनोंसे अधिक समझता है. तब नारायणने कहा कि, भगवान्की आरती तो हो चुकी और मंदिरके द्वारभी बंद हो गये अब तुम वहां जाकर क्या करोगी? स्त्रीने जब यह बात सुनी तो तत्कालहीं मृत्युको प्राप्त हुई, फिर उसके पुत्र इत्यादि घरके लोग आये और उनकीभी यही दशा हुई. फिर इसके उपरान्त नारायण और नारदजी उनकी ऐसी भक्ति और प्रीतिको देखते हुए आगेको चले और भ्रमण करते हुए उसी स्थानपर आये, उस समय भगवान्का मंदिर खुला था और दूसरी समयकी आरती हो रही थी. समस्त मनुष्य शंखध्वनी और झांझ घंटेका शब्द सुनकर दर्शनोंके लिये अतिशीघ्र दौडे जा रहे थे और जो मृतक थे वेभी उठकर आरतीमें आ मिले और फिर भगवान्के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो अपने आश्रमको चले गये जब नारदजीने यह दशा देखी तो उनको भगवान्की भक्तिमें विश्वास हो गया और उस द्वीपको त्रिलोकीकी पूजाका स्थान और वैकुंठकी समान जाना.

अथ

तेरहवीं निष्ठा भगवान्के धामकी महिमा।

(इसमें आठ भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमल और अर्द्धचंद्ररेखाको दंड-वत् कर फिर मैं वामनअवतारको प्रणाम करता हूं कि जिन्होंने देव-ताओंकी सहायताके कारण प्रयागराजमें अवतार धारण किया और ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण कर राजा बलिके द्वारपर गये फिर उसको छल करके पातालमें भेज दिया. सो अब मैं उनको प्रणाम कर धाम-निष्ठा लिखता हूं. भगवान्का जो धाम है सो भगवान्हीका स्वरूप है सो धामशब्दका अर्थ कई स्थानोंपर भगवद्रूप सम्बन्धी होता है, और कहींपर भगवत्लोक सम्बन्धी होता है. जिस प्रकार कि वैकुंठ इत्यादि भगवान्का धाम अच्युत अनंत और मायासे पृथक् है और वेद तथा पुराणोंमेंभी यही महिमा लिखी है; इस कारण भगवद्रूप होनेमें क्या संदेह है ? यह बात तो प्रगट है कि जब जीव मायासे पृथक् हो जाता है तभी भगवान्के धाममें प्रवेश कर सकता है; फिर जब इस प्रकारसे वह धाम भगवान्का रूप हो गया; क्योंकि शास्त्रोंमें भगवान्की प्राप्तिभी मायासे विरक्त होनेपर लिखी है. जिस प्रकार कि, भगवान्की महिमा और उसके रंगरूपका वर्णन मनुष्यके विचारसे बाहर है, उसी प्रकार भगवान्के धामकाभी वर्णन नहीं हो सकता; परन्तु भगवान्ने अपना स्वरूप जिस प्रकारसे शास्त्रोंमें वर्णन किया है; उसी प्रकार अपने धामका रूपभी वर्णनः कर दिया है. उसका सारांश यह है वह जो भगवान्का धाम है सो सच्चिदानंदघनरूप है; बडे स्थान, वृक्ष, विमान, ताल,

नदी आदि वहांकी सब वस्तु उस भगवान्के रूपका प्रकाश है, वह धाम उसके बिना किसी वस्तुकाभी बनाया हुआ नहीं; जिस प्रकार कि हलवाई खांडके खिलौने बनाते हैं परन्तु उन खिलौनोंमें सवार सवारी इत्यादि सब वस्तुके जो बनाये जांय तो वे लक्षण प्रत्यक्ष होते हैं. इसी प्रकार वह धाम केवल भगवान्के प्रसादका है तौभी उसमें सब स्थान आदि जो जैसे चिंतवनमें आते हैं होते हैं. अब विचारना चाहिये कि, वह धाम किसी लोक और ब्रह्मांडमें तो हैही नहीं, वरन असंख्यों ब्रह्मांडोंमें है जो कोई मुक्तिके पदको प्राप्त होता है उसीको वह धाम मिलता है और उस धाममें पहुँचकर फिर आवागमनसे छूट जाता है. जिस प्रकार गीतामें लिखा है कि, जिस जगहमें जाकर फिर जो नहीं लौटते वह मेराही धाम है. भागवतमें लिखा है कि, भगवद्धाम अर्थात् वैकुंठमें पहुँचकर जीव निश्चल हो जाता है; फिर उसका जन्म नहीं होता. पद्मपुराण, स्कंदपुराण, वाराहसंहिता इत्यादि ग्रंथोंमें लिखा है कि, भगवान्के धाममें पहुँचकर मुक्ति हो जाती है, फिर औरभी पुराण, वेद, स्मृति तथा उपनिषद्काभी यही वचन है; इस कारण इसका अधिक विस्तार करना उचित नहीं. जिस किसीने एक पुराणभी सुना होगा, उसने भगवान्के धामकी महिमा और ऐश्वर्य जाना होगा. सो श्रीसंप्रदायवालोंके भावसे तो वह वैकुंठही धाम है और रामउपासकोंके भावसे अयोध्या साकेत और संतानक और कृष्णउपासकोंके भावसे गोलोक इत्यादि सबही उपासक अपने २ इष्टका धाम और उसकी महिमा तथा गुणका वर्णन करते हैं. जो उनका निज इष्ट होता है उसहीका धाम सबसे अधिक मानते हैं और शेष देवताओंका उससे न्यून होता है. जिस प्रकार कि नगरमें मुहल्ला और मनुष्यकी देहमें हाथ पांव इत्यादि अंग होते हैं; अर्थात् अंगी अंगभाव रखते हैं और

कितनोंहीका यह विश्वास है कि वह धाम सच्चिदानंदघन भगवान्‌रूप एकही है कोई स्थान नहीं; जिस प्रकार भगवान् अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार जो उनको जिस भावसे पूजन करता है उसको उसी भावसे फल देते हैं, इसी प्रकार वह धामभी भक्तके भाव और श्रद्धाके अनुसार धाममें पहुँचानेमें प्रगट और प्रत्यक्ष होता है. भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि जो जिस प्रकार मेरी शरण होता है, उसी प्रकार मैं प्रगट होता हूं. फिर गीतामें लिखा है कि एक जानकर अथवा पृथक् जानकर अथवा बहुत जानकर जो मेरा भजन तथा सेवन करता है उसी भावसे मैं उसको फल देता हूं. कारण कि मैं सब ओर हूं. नारायण उपनिषद् और कई उपनिषद्, सहस्रशीर्षा आदिसेभी यही बात प्रत्यक्ष है कि, जब भगवद्भक्तोंकी श्रद्धा और इच्छाके अनुसार प्रगट होता है तो भगवान्‌की प्राप्तिमें जो परम आनंददायक है वहभी इस धाममें सर्वदा सबकोही प्राप्त होती है; कि जिसका वर्णन कदाचित्‌भी किसीसे नहीं हो सकता. शास्त्रोंमें जो स्वर्ग और पृथ्वीपर धन राज्य आदिके सहस्रों सुख लिखे हैं, वे सब इस धामके करोडों भागकी समानभी नहीं हो सकते. अब यह निर्णय करना उचित है कि, अयोध्या, मथुरा, काशी आदि जो धाम और पुरी जो पृथ्वीपर हैं वह क्या हैं सो सो वह मेरे धाम हैं कि जिनका वृत्तान्त हमने ऊपर लिखा है; उस धाम और इन धामोंमें किंचित्‌मात्रभी भेद नहीं. वरन इस वैकुंठसे इन धामोंको एक प्रकारसे अधिकाई है किस कारण कि वह धाम तो ऐसा है कि जब मनुष्य पूर्ण श्रद्धासे मेरी उपासना करेगा और सब ओरसे मन एकाग्र कर मेरे दर्शनोंमें लगा देता है तब वह मुझको प्राप्त होता है और यह ऐसे धाम हैं कि कैसेही पापीने उनकी शरण ली हो वह भगवान्‌को प्राप्त हो जायगा और किसी जन्ममें एकबारभी उन धामोंमें रहा, तो उसीके प्रतापसे सद्गतिको प्राप्त होगा.

अब विचारना चाहिये कि वह ईश्वर कि जिसको वेद नित्त बखानते हैं सो अपने धामको छोडकर इन धामोंमें आता है और अबभी विराजमान है तो उन्हींको विशेषता हुई वा इसको. भला जो यह धामभी जो उस परम धामकी समान हैं तो जो सुख और आनंद वहां है. यहांपर वह आनंद किस कारणसे नहीं ? सो अब विचारना चाहिये कि इन धाममें सर्व सुख और सर्व शोभा है. वरन इन धामोंहीके द्वारा वहांका सुख और शोभा और आनंदभी प्राप्त होता है. जितना आराधन और परिश्रम उस धामकी प्राप्तिके कारण होता है उससे आधा या चौथा भागभी इन धामोंमें यदि श्रद्धा हो तो बेडा पार हो जायगा. अब मन और विश्वासके नेत्र खोलकर देखना उचित है कि, इसमें किंचित्‌भी भेद नहीं. जीव गुसांईकी कथामें वर्णन होगा कि वृन्दावनकी शोभामेंसे किंचित् शोभा बादशाहको दिखाई और हरिदासजीकी वार्ता है कि उस समयके बादशाहको उन्होंनेभी व्रजकी शोभा और छबि दिखाई थी और बिहारघाटकी सीढीका एक कोना टूटा था उसीका सुधरवाना बादशाहके द्रव्यसे कठिन हो गया. इस कारण मनकी श्रद्धा और प्रीतिही होनी मुख्य है मनकी श्रद्धा और निर्मलता जितनी वृद्धि होती है उतनीही शोभा और सुखमें वृद्धि होती है; भला इन धामोंको तुम परम धामकी समान लिखते हो; यहांके वासी बहुधा ऐसे कुटिल और दुष्ट देखनेमें आये कि समस्त संसारके पापी उनके समीप तुच्छ हैं. उचित था कि यह मनुष्य ऐसे होते कि इनके द्वारा पापियोंकेभी पातक कट जाते. इसका क्या कारण है सो विचारना उचित, है कि, वहांके निवासियोंके खोटे आचरणोंसे साधुओंको उनसे मेल करना कदापि योग्य नहीं क्योंकि उनके बुरे कर्मोंसेभी उन धामोंके भगवद्रूप होनेकी प्रतीति होती है. भगवान्

कल्पवृक्षकी समान हैं. यह सबकोही अपनी इच्छानुसार फल देते हैं सो उन निवासियोंकी रुचि कालान्तरके प्रभावसे पापमें हुई; भगवान्ने उनकी इच्छानुसार उनके पापोंकी वृद्धि करी और इससे यह धाम कल्पवृक्षकी समान भगवान्का रूप प्रत्यक्ष है. अब यहांपर यह शंका हुई कि; इन मनुष्योंके पापोंकी उन्नति होगी और जब औरोंसे विशेष दंड हुआ तो यह धामही पापके मूल ठहरे; और जो यदि दंड न हुआ तो शास्त्रोंके वाक्य मिथ्या ठहरे; सो अब विचारना चाहिये कि; उन वासियोंको भगवान्के धामके सेवनका पूर्ण फल मिलेगा और फिर शास्त्रोंकी रीतिभी बनी रहेगी. क्योंकि, पुराणोंके वाक्यसे प्रत्यक्ष है कि जो और स्थानोंके रहनेवाले पापी हैं वह लाखों वर्षतक नरकमें रहेंगे न जाने कि वह चौरासी लाख योनि कितनी वार भोगेंगे और नाना प्रकारके संतापोंसे दुःखित होंगे तो इन निवासियोंको एकही देहमें सूक्ष्म कालके भीतर अति कष्टदायक दंड होकर पापोंसे छुटाकारा हो जायगा और फिर भगवान्को प्राप्त होंगे; सो इनमें मनुष्योंकी रुचि पापोंमें हुई थी इसी कारणसे तो उनके पापोंकी वृद्धि हुई और फिर धामने अपना वह प्रताप किया कि उसने समस्त पापोंसे निवृत्त करके परम धामको पहुँचा दिया. अब विचारना चाहिये कि, उत्तम कर्म होंगे और भगवान्के धाममें पूर्ण श्रद्धा होगी तो विनाही दंडके वह क्यों न भगवान्के उत्तम धामको प्राप्त होंगे, प्रथमही पुण्य और श्रद्धाकी वृद्धि क्यों न होगी ? अब इस बातका उत्तर लिखा जाता है कि; बहुधा यात्री ऐसे देखनेमें आये कि यात्रा करके पहलेसेभी विशेष कठोर और पापोंके अधिकारी हुए सो कल्पवृक्षका दृष्टांत यहांपरभी समझ लेना उचित है. वे जैसी श्रद्धा और मनसे यात्रा करते हैं उसी प्रकारके कर्मोंमें उनकी वृद्धि होती है. धामोंकी यात्रा और वहां

रहनेकी सूक्ष्म रीति यह है कि उस धाममें निर्मल अंतः करणसे श्रद्धा हो और यात्रा करनेके प्रथमसेही काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि इनको त्यागनकर मुखपर भगवान्‌का नाम और हृदयमें भगवान्‌के चरित्रोंका चिंतवन हो और भगवान्‌के भक्तोंकी संगति हो; संयम अर्थात् मनको बुरे विचारनेसे रोकना नियम अर्थात् भगवत्‌की पूजा और भगवान्‌की मूर्तिके दर्शन और तीर्थोंके स्नान इत्यादिका और दम अर्थात् जिह्वा आदि पांचों इन्द्रियोंका वशीकरण, तितिक्षा अर्थात् दुःखको सहन करना, सत्य बोलना, दया प्रीति और उदारता उसमें अवश्य हो और जब वहां पहुँचे तो वहांके निवासी और द्वार भींततकको भी भगवान्‌का रूप समझकर जो कुछ पूजा, दान, स्नान, व्रत इत्यादि कर्म करे वह समस्तही भगवान्‌के अर्पण कर दे और उनके फलोंकी इच्छा न करे. भगवान्‌के भक्तोंकी खोज करके उनकी संगति करे; क्योंकि तीर्थकी यात्रामें संगतिही सार है. जब इस प्रकारसे यात्रा करे अथवा ठहरे तो यह नहीं हो सकता कि, उसका पूर्ण फल न मिले और धामका पूर्ण प्रताप न हो. यदि जो दैवसंयोगसे इतना कर्म न बन पडे तो धाममें श्रद्धा, भजन और सत्संगतिमें प्रीति और निषेध कर्मोंसे बचना उचित है तब तो वह निश्चयही भगवान्‌के धामको पहुँच जायगा. अब हम लोगोंकी यात्राको देखो कि जो लोग मंदभागी हैं उन्होंने जिस समय यात्रा और पर्वके दिन आये तो यह चरचा; करने लगे कि, अबकी वार बडा भारी मेला होगा और उत्तमतासे खूबही सैर होगी. देखा कि चारों ओरसे प्रजा चली आती है; यह मनमें विचारकर दश पांच मनुष्य अपने इष्ट मित्रोंके सहित चले और मार्गमें जाते हुए अनेक प्रकारके हास्य और हुक्का पीनेके अतिरिक्त कुछभी न किया. जब धाममें गये तो स्त्रियोंको निहारनेमें मन

लगाया और जब उलटे चले तौ पले हुए कुत्तेकी भांति किसी स्त्री-के पीछे २ हो लिये और उसको स्थानतक पहुँचा आये और जब हरिमंदिरमें दर्शनोंके लिये गये तौ भगवान्का ध्यान करना तौ एक ओर रहा और वस्तुओंको निहारने लगे और फिर लेन देनमें लग गये और सत्संगतिके बदले अपनी रुचिके अनुसार भंग ओर चरसवा-लेकी दुकानपर अपने साथियोंकी खोज करी और भगवान्के भजन तथा कीर्तनके बदले लडकेका नाच देखा और जब अपने स्थानपर आये तौ उन स्त्रियोंका वर्णन करते रहे जो कि दिनमें देखी थीं. फिर वहांके निवासियोंकी निन्दा अथवा दुकानदारोंके अधर्मका आख्यान करते रहे फिर सो रहे. निदान यह जितने दिनतक वहां रहे ऐसाही करते रहे और जो स्नान यात्रा इत्यादिके फलकी इच्छा करी तौ अपने कर्मोंके अनुसार. धनाढ्य यात्रियोंकी तौ यह दशा है कि जिस समय उन्हों-ने यात्रा करनेका विचार किया तौ उसी समय पहलेसेही फलकी अभिलाषा करी. कहने लगे कि यदि यह हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा तौ फिरभी यात्रा करेंगे. अथवा फिर विचारा कि ऐसी कृपा करना कि हमारी शत्रुसे विजय हो जाय, पुत्र हो फिर नौकरी मिल जाय, भूमि मिले; फिर मार्गमें चलते हुए डिगरीके डिसमिस होनेको कहते अथवा मित्रशत्रुकी निन्दा, श्लाघा वा बादशाह हाकिमोंके इतिहास वा रसिक कवित्त वा भोजन वस्त्रकी रीति रूप तथा इसी प्रकारके बहुतसे व्यर्थ वचन कहते गये और जो सहस्रोंमें यदि एक दोकोभी विष्णुसहस्रनाम याद हुआ तौ स्नान करनेके पीछे पाठ कर लिया नहीं तौ कुछ काम न ही. जब धाममें गये तौ घोडे बैल दुशाले असबाब इत्यादि मोल लेने लगे वा अनेक स्थानोंकी सैर करी और जो मित्र नौकर हाकिम इत्यादि मेलेमें आये तौ उनको ढूंढकर उनसे मिले अथवा और मनुष्य मिलनेको आते रहे

और जब स्नान करनेके लिये किसी तीर्थपर गये तो मांगनेवालोंके भयसे शरीर भिजोकरही चले आये. यदि जो कुछ दान दिया तो समस्त मनुष्योंको दिखाकर और इस मनोरथसे दिया कि इस दानके प्रतापसे असुक२पदार्थ प्राप्त हो. यदि जो कोई साधु ब्राह्मण मांगनेको आया तो उसको रुपये पैसेके बदलेमें गालियां दीं. कहने लगे कि देखो कैसा मोटा संडा है; इससे घास खोदकर नहीं खाया जाता सेतमेंतके माल खानेको जो चाहता है और जो यदि मंदिर तथा शिवालोंमें दर्शनोंके लिये गये तो समस्तही इच्छा करी और शेष कर्म उसी प्रकार जैसे पहले पुरुषोंके होते हैं किये. इसका परिणाम यह है कि जब इस प्रकारके कर्मोंसे यात्रा करी तो जो फल शास्त्रोंमें लिखा है; इस जन्ममें कैसे प्राप्त होगा और उनका मन क्यों न कठोर होगा. इसका सारांश यह है कि; भगवान्का धाम अयोध्या मथुरा इत्यादि निज परमधामकी समान है. भगवान्के भजनमें प्रीति तथा श्रद्धा और धाममेंभी प्रीति उचित है. यदि जो थोडीसी प्रीति भगवान्के प्रति हो तो निश्चयही भगवान्में भक्ति होकर सुगम रीतिसे भगवान्की प्राप्ति हो जायगी, हे मन ! जो वार्ता मैं ऊपर लिख आया हूं सो याद रखनी उचित है, नहीं तो सबसे अधिक दुःख तुझीको होगा. वह समाज जो मंगलाचरणके अंतमें लिखा गया वह सर्वदाही नेत्रोंके समीप रहे तो समस्तही यात्रा इत्यादिके विना किये हाथ जोडे हुए मिल जायगा और तेरे समान कोई दूसरा न होगा कारण कि, भगवान्का धाम वही है जहां कि भगवान् सदृश्य हैं.

कवित्त—श्याम घन तनपर विज्जुसे दशनपर माधुरी हँसनपर खेलत खगी रहे । खोरवारे भालपर लोचन विशालपर उर वनमालपर जुगत जगी रहै ॥ जंघयुग यानपर मंजु मुखानपर श्रीपति सुजान-

माति प्रेमसों पगी रहे । नूपुर नगरपर कजसे पगनपर आनंद मगन मेरी लगन लगी रहे ॥

कागभुशुंडकी कथा १.

कागभुशुंडजीकी माहिमा और कथा जितनी विस्तारसे पुराण और शास्त्रोंमें लिखी है, उतनी इस जरासे ग्रंथमें नहीं समा सकती परन्तु धामनिष्ठासम्बन्धी जो अवश्य है सो सूक्ष्मतासे लिखता हूं. कागभुशुंडजी जातिके शूद्र और अयोध्याके रहनेवाले हुए. वह जिस समय विपत्तिके आ जानेसे उज्जैनको गये वहां यह पूजा कर रहे थे तब उनके गुरु आये; इन्होंने उनको दंडवत् न करी, तब नीतिके जाननेवाले शिवजी महाराजने क्रोधित होकर यह शाप दिया कि, सांप इत्यादिकी दस सहस्र योनिमें इसका जन्म हो. यह देखकर गुरुजीको दया आई उन्होंने शिवजीको प्रसन्नताके लिये अनेक प्रकारसे प्रार्थना और स्तुति करी; तो यह वाणी हुई कि हे ब्राह्मण ! जो तेरी इच्छा हो वही वर मांग. तब गुरुजीने प्रथम तो भक्तिकी अभिलाषा करी और फिर उस शूद्रके कल्याणकी वांछा करी. यह सुनकर शिवजी बोले कि मैं काग भुशुंडको तो कठिन शाप दे चुका हूं; परन्तु तुमने जो मेरी अत्यन्तही प्रार्थना और स्तुति करी है इस कारण मैं अत्यन्त कृपा करूंगा; तब फिर उस शूद्रसे कहा कि, हे कागभुशुंड ! तेरा जन्म अयोध्याजीमें हुआ है और अयोध्यापुरीका प्रताप ऐसा है कि किसी जन्ममेंभी अयोध्यामें एक वार जन्म हो जायगा वह प्राणी निःसंदेह श्रीरामचंद्रजीका भक्त होकर कृतार्थ हो जाय और तो वह जन्ममरणके संतापोंसे छूट जाता है. जिस प्रकार कि भगवान्ने कहा है कि सबने वैकुंठका वर्णन किया है परन्तु अयोध्याके समान कुछभी मुझे प्रिय नहीं. सो उस अयोध्या-

गुरुके प्रतापसे और मेरी कृपासे तुझको वह उत्तम गति प्राप्त होगी जिसका किसी समयमेंभी क्षय नहीं होगा, अर्थात् श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंमें निश्चयही निश्चल भक्ति होगी. परन्तु तुम आजसे आगेको किसी ब्राह्मणकाभी निरादर मत करना. जो पुरुष ईश्वरकी समान हैं. जो पुरुष इन्द्रके वज्र और हमारे त्रिशूलसे नहीं मरता वह पुरुष एक ब्राह्मणके क्रोधकी अग्निसे तुरंतही भस्म हो जाता है. इसके उपरान्त शिवजीकी आज्ञानुसार काग भुशुंडजीने उन्हीं योनियोंमें जन्म पाया और फिर जब इनका अंतका जन्म आया तो ब्राह्मणवंशमें हुआ. जब इनके माता पिता मर गये तो यह भजन करनेके लिये वनको चले गये; इनको जहां कहीं जो ऋषि मिलता तो उससेही श्रीरामचंद्रजीके चरित्रोंको पूछा करते; फिर इनको लोमशऋषि मिले और इनसेभी वही अपने अंतःकरणका मनोरथ पूछा. ऋषिने प्रथम तो कुछ सगुण उपासनाका वर्णन करा फिर पीछे निर्गुण ब्रह्मका आख्यान कहा; इसपर कागभुशुंडजीने कहा कि महाराज ! मैं सगुण उपासक हूं; रामचरित्ररूपी जलसे मेरा मन मीनकी समान पृथक् नहीं हो सकता. यह सुनकर ऋषिने थोडासा सगुणका वर्णन करके फिर निर्गुणका आख्यान किया. कागभुशुंडजीने उस निर्गुणमतका छेदन करके सगुण उपासनाको स्थित किया. जब इस प्रकारसे परस्पर विवाद हो गया तो ऋषिने कहा कि तू कागकी भांति कांय कांय क्यों करे जाता है ? मैं जो सत्य कह रहा हूं उसको तू क्यों नहीं सुनता; इस कारण तेरी तत्कालही काग देह हो जाय; सो इनकी उसी समय काग देह हो गई भगवान्के भक्तोंको किसीके साथ द्वेष तथा शत्रुता नहीं होती; इस कारण वह न तो इससे कुछ दुःखी हुए और न अपना मन मलीन किया. फिर ऋषिको दंडवत् कर चले गये

श्रीरामचंद्रजीने कागभुशुंडजीको इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ जाना तब उन्होंने लोमशऋषिके मनमें दयाको उत्पन्न करा अर्थात् ऋषिको उनका संतोष देखकर दया आई. तब उन्होंने कागभुशुंडजीको अपने समीप बुलाकर उनके अपराधोंकी क्षमा करी और फिर उनको बालरूप भगवान्की उपासना और राममंत्रका उपदेश किया और रामचरित्र सुनाकर आशीर्वाद दिया कि सर्वदाही रामभक्ति तुम्हारे मनमें स्थित रहे तुम श्रीरामचंद्रजीके प्यारे होगे; तुम्हारे मनोरथ सर्वदाही पूर्ण होंगे; तुम मृत्युको अपने वशमें रक्खोगे, तुमको सर्वदाही ज्ञान वैराग्य रहेगा और तुम्हारे स्थानके चार २ कोस-तक अज्ञानरूपी अंधकार न आवेगा. जो चरित्र रामचंद्रजीके गुप्त हैं वह तुमको विना परिश्रमही प्राप्त हो जांयगे; जब ऋषिने यह आशीर्वाद दिये तौ श्रीरघुनंदनस्वामीने आग्रहकरके आकाशवाणीसे कहा कि, हे ऋषे ! ऐसाही होगा. यह गुप्त और प्रगट मेरा भक्त है. फिर कागभुशुंडजी ऋषिको दंडवत् कर सुमेरुपर्वतके निकट जो नीलाचल पर्वत है उसपर गये; और उनको वहां रहते हुए बहुतही कल्प हो गये और अबतकभी वह वहांही है. वह सर्वदाही श्रीराम-चंद्रजीका कीर्तन करते रहते हैं. जिनकी सत्संगतिसे महा अधम जीवभी जीवन्मुक्तिके पदको पहुँच गये. इसके उपरान्त फिर शिवजी महाराजने हंसरूप होकर गरुडजीको रामचरित्र सुनाया. गरुडजी भगवान्के पास रहते हैं तौभी वह मायामें ऐसे फँसे हैं. कि शिवजी और ब्रह्मानेभी उनको उपदेश नहीं किया परन्तु कागभुशुंडजीने वह कृपा करी कि समस्त माया निवृत्त हो गई और भगवान्की महिमा और प्रतापका ज्ञान हुआ. एक समय भगवान्की मायाने कागभुशुंडजीको ऐसा चरित्र दिखाया कि वह बुद्धिहीन हो गये. यह कथा विस्तारसहित पुराणोंमें लिखी है; परन्तु भगवान्के भक्तोंको

माया कुछभी हानि नहीं कर सकती; क्योंकि भगवान् जिस समय आपही रक्षा करें तौ फिर किसीसे क्या हो सकता है ? इस कारण उस मायासेभी कागभुशुंडजीका परम कल्याण हुआ. जो आप श्रीरामचंद्रजीने भक्ति और ज्ञानवैराग्यका वरदान दिया. अब विचारना चाहिये कि जब भक्तको गर्व हो जाता है तौ कष्ट और संताप ये मायाहीके अंग हैं यह गर्व गुमानका नाश कर देता है; यदि जो ऐसा न करें तौ भक्त दोनों लोकोंसे जाता रहता है. जिस प्रकार किसी बालकको फोडेका दुःख हो जाता है तो माता पिता उसको जर्राहसेही चिरवाते हैं और वह थोडी देरका दुःख सहकर दुःख निवारण कर देता है, इसी प्रकार भक्तोंका दुःख और विपत्तिका होना भक्तिकी वृद्धिका कारण है, उससे परम कल्याण होता है. भगवान्के धामकी वह महिमा है कि जिस पदको ब्रह्मादि देवताभी नहीं पहुँचते वह सुगमतासे प्राप्त होता है.

भगवंतजीकी कथा २.

भगवंतजी मुजा उलमुल्क सुबेदार आगरेके दीवान भगवान्के भक्त ऐसे हुए कि कुंजविहारीजीके चरित्र और उनका स्वरूप और प्रियाप्रीतमके परस्परकी प्रीति प्रकाश और प्रेम नित्य काल मनमें वसा रहता और प्रियाप्रीतमके सिवाय वह अपना मन दूसरी ओरको भूलकेभी नहीं लगाते. वह भाव अभावकी प्रीतिसे विरक्त होकर जुगलस्वरूपके माधुरीरसमें मग्न रहते वैष्णवीरूप धारण किये हुए भजन और भावमें लगे रहते; उनको प्रियाप्रीतममें वृन्दावनधाममेंही भाव था. यदि कोई इनको वहांका निवासी मिल जाता तो उनको भगवान्काही रूप जानकर धन द्रव्य भेंट करते एकवार स्वामी हरिदासजीके मंदिरमें श्रीविहारीजीके अधिकारी

प्रेम और भक्तिभावमें अद्वितीय हुए और भगवंतजीके गुरु थे. भगवान्ने आप उनसे खार मांगकर भोजन करी थी. एक समय यह आगरेमें आये और भगवंतजीने सुना. तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और अपनी स्त्रीसे परामर्श करा कि, स्वामीजी आये हैं उनकी क्या भेंट करनी चाहिये ? इनके यह वचन सुन उस परम सौभाग्यवतीने उत्तर दिया कि यह समस्तही घरबार और जो कुछ धन द्रव्य भंडार घुडसाल इत्यादिक है वह सबही स्वामीजीकी भेंट कर दो. केवल एक धोती अपने शरीरपर रहने दो. भगवंतजी स्त्रीके ऐसे वचन सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और बोले कि हे प्रिये ! प्रेम और भक्तिका रस भगवान्ने तुझीको दिया है, यह सलाह इन दोनों भक्तोंकी स्वामी हरिदासजीनेभी सुनी और विचार लिया कि यह इसी प्रकार करेंगे, अत्यन्तही प्रसन्न हुए और इनका धन लेना किसी प्रकारसेभी उचित न समझा और उनसे विना मिलेही वृन्दावनको चले गये. प्रथम भगवंतजी अपने गुरुजीके आनेसे अत्यन्तही प्रसन्न हुए थे. उनके चले जानेका समाचार सुनकर अत्यन्तही दुःखी हुए और सूबेसे शिक्षा लेकर वृन्दावनमें आये; फिर इन्होंने यात्रा इत्यादिक नाना प्रकारके भगवद्भाव और चरित्रोंके सुखसे आनंदित हुए और फिर इन्होंने भगवान्के चरित्रोंका ग्रंथ बनाकर उनकी भेंट किया. एक बार भगवंतजीको यह समाचार मिला कि सूबेने व्रजवासियोंकी चोरीके दूषणपर पकडा है, यह सुन कर बहुतही व्याकुल हुए और उसी समय आगरेको गये, और सबको बन्धनसे छुटा दिया. फिर एक समय ऐसा हुआ कि, व्रजवासियोंने भगवंतजीका समस्त धन चुरा लिया. भगवंतजी यह सुनकर कि हमारा धन चोरी गया है बहुतही प्रसन्न हुए और प्रेमभावसे फूले अंग न समाये और बोले कि उस चितचोर मनमोहन

नंदकिशोरजीने मेरे धनको गोपियोंके माखनकी समान समझा भगवंतजीकी भक्ति और भाव लिखनेमें नहीं आ सकता. अब मैं उनके पिता माधवदासजीका वृत्तान्त लिखता हूं सो श्रवण करो. जब पिता माधवदासजीका अंतसमय निकट आया तो इनके लक्षणोंसेही मनुष्योंने पहचान लिया कि अब इनका मरणकाल निकटही है इस कारण वृन्दावनको ले चले. जब वह चले जाते थे और माधवजीने देखा कि मैं कहीं जा रहा हूं; इस कारण पूछा कि तुम हमको कहां लिये जाते हो ? तो उन लोगोंने कहा कि जिनका तुम दिनरात ध्यान और स्मरण किया करते थे उन्हींके धामको हम लिये जाते हैं. माधवदासजी बोले कि तुम अतिशीघ्र मुझको घरको ले चलो, मैं ऐसा नहीं हूं जो मेरी देह वृन्दावनके योग्य हो. विचार लो कि जब इस देहका दाह होगा तो इसमेंसे दुर्गंधि निकलेगी तो राधाकृष्णको वह दुर्गंधि बुरी लगेगी तो प्रियाप्रीतमके विहारमें हानि पहुँचेगी इस कारण इस देहको वृंदावन ले जाना कदापि उचित नहीं. यदि जो वृंदावनमें जानाही अवश्य है तो जानेवाला आपही जुगलस्वरूपको पहुँच जायगा. यह कहकर उसी समय देहको त्यागन कर दिया, और नित्यविहारमें जा मिले.

दोहा–भजहिं प्रभुहि विश्वाससे, सो पावहिं मन काम ।
तासों भजिये प्रभुहि नित, सुख लहि आठौं याम ॥

हरिदासजीकी कथा ३.

जातिके वैश्य काशीके समीपके रहनेवाले हरिदास नाम राधावल्लभी संप्रदायमें भगवान्के परम भक्त हुए और यह अनेक प्रकारके भगवान्के गुप्त चरित्र जाननेवाले हुए. यह तुलासे मानो शास्त्रोंके निज अर्थको सारकी समान देखा करते. जिन्होंने अपना प्रण पूरा करा इन्होंने

प्रेमको पूरा निवाहा और राधावल्लभजीके भजनका प्रताप दिखाया यह भगवान्के भजनमें कामधेनुके समान थे; धन्य है ! उनके माता पिताके कि, जिन्होंने ऐसे भक्त उत्पन्न करे ! हरिदासजीने यह प्रतिज्ञा करी थी कि हम अपना शरीर वृन्दावनमेंही त्यागन करेंगे सो दैवसंयोगसे इनको ज्वरका रोग हो गया. वैद्योंने आशा छोडकर इनकी चिकित्सा करनी छोड दी, तब इन्होंने अपने सम्बान्धियोंसे कहा कि तुम हमको वृन्दावनको ले चलो. इनके चार क्वांरी कन्या थीं सो इन्होंने भगवान्की भेंट करी और आप डोलीमें बैठकर भगवान्के ध्यान और चिंतवन करते हुए वृन्दावनको चले. इनके प्राण मार्गमेंही निकल गये; परन्तु प्रण पूरा करनेके निमित्त उसी देहसे श्रीवृन्दावनको गये और श्रीराधावल्लभलालजी और अपने गुरु गुसांई सुंदरदासजीके प्रेम और भावसे दर्शन करके सत्संग और भगवान्के चरित्रोंको प्राप्त हुए. फिर इन्होंने चीर घाटपर स्नान करके अपनी देहको त्याग दिया; तब साथियोंने इनकी क्रिया करी और रुदन करते हुए वृन्दावनमें आये; और समस्त वृत्तान्त उनके गुरु तथा और पुरुषोंसे वर्णन किया. गुसांईजीने कहा कि तुम उनकी प्रतिज्ञाकी कुछभी चिन्ता मत करो. यह कलहही हरिदासजी हमारे पास आये थे और उन्होंने हमारे दर्शन कर फिर अपनी देह त्यागन करी थी. यह सुनकर भगवान्के भजनमें सबको पूर्ण श्रद्धा हुई. यदि इस चरित्रमें जो किसीको शंका हो कि हरिदासजी दूसरी देह धारण करनेकी सामर्थ्य रखते थे तो पहलेही देहको वृन्दावनमें क्यों न ले गये ? सो विचारना चाहिये कि जो उस देहको लाते तो वृन्दावनमें दाह किया जाता और उसकी दुर्गन्धी श्रीराधावल्लभजीको पहुँचती, इसी कारणसे उस देहको मार्गमेंही त्याग दिया और फिर नवीन देहको धारण करके दर्शन

किये और यहभी देखना योग्य है कि, हरिदासजीको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेकी बडाई प्रगट करनेका अहंकार नहीं था; वरन आप भगवान्ने उनका प्रण पूर्ण करना उचित समझा. क्योंकि पद्मपुराण आदिमें भगवान्ने प्रतिज्ञा की है कि मेरे भक्त जो इच्छा किया करते हैं वह मैं पूर्ण करता हूं. इसके उपरान्त भगवान्को यहभी प्रचलित करना था कि, मेरे भक्तोंकी प्रतिज्ञाभी उल्लंघन नहीं होती ॥

दोहा–जगदाधार अनन्त प्रभु, सकल कला गुणधाम ।
भक्तनमन रंजन सदा, प्रगट कलपतरु नाम ॥

मधुगुसाईंजीकी कथा ४.

मधुगुसांई जो मधुश्रीरंग विख्यात थे सो श्रीराधाकृष्णके परम प्रेमी वृंदावनमें हुए. यह श्रीवृंदावनके दर्शन करनेके लिये घरवारको त्यागन कर बंगालेसे वृन्दावनको चले आये जब यह यात्रा और दर्शन कर चुके तौ इनको साक्षात् भगवान्के दर्शनोंकी इच्छा हुई और फिर श्रीव्रजकिशोर किशोरीकी मूर्तिका चिंतवन करते हुए एक एक वन और कुंजमें ढूंढने लगे. इन्होंने भोजन, शयन महाराजके दर्शनोंकी इच्छासे त्यागन कर दिया. जब भक्तभावन महाराजने अपने भक्तका ऐसा प्रेम देखा तौ उसी समय वंशीवटके तट इस रूपसे दर्शन दिये. कि उनके परम सुंदर शोभायमान श्यामसुंदर स्वरूपपर मोरमुकुट विराजमान है, कानोंमें कुंडल शोभाको बढा रहे हैं, अंगपर जरीका बागा शोभित हो रहा है और घुटन्ना पहरे, रत्नोंके आभूषण अंग २ पर शोभित हैं. उनके एक हाथमें तौ मुरली और दूसरेमें छडी और अपने सखाओंको साथ लिये हुए खेल खेल रहे हैं. गुसांईजीने जब ऐसा परम मनोहर रूप देखा तौ उनको कुछभी सुध न रही और वह ब्रह्मानंदमें मग्न

हो गये और दौडकर उनके चरणोंमें गिर पडे. गुसांईजीके भाग्यकी बडाई किस प्रकारसे वर्णन हो सकती है ? जिसके चरणोंकी रजकी ब्रह्मादिक देवता इच्छा करते हैं; वह गुसांईजीकी भक्तिको देखकर प्रेमके वशीभूत हो आप प्रगट हुए.

भूगर्भकी कथा ५.

गुसांई भूगर्भजी परम भक्त और माधुर्यके उपासक हुए. इन्होंने अपना घरबार त्यागन कर दिया और विरक्त हो गये. इन्होंने वृन्दावनमें वास कर लिया और उस धामके सिवाय किसी ओरभी मन न लगाया. किसी पुराणमें लिखा है कि, वृन्दावनसे चाहे बाहर करोडों चिन्तामणि मिलती हों अथवा भगवान् स्वयं प्राप्त होते हों; परन्तु वृन्दावनकी रजको छोडकर यह शरीर कभी अलग नहीं हो. सो ऐसीही दृढतासे वह गोविंददेवजीकी कुंजमें ठहरकर मानसीभावसे प्रियाप्रीतमके रूपमें मग्न और डूबे रहा करते. इनको उस रूपके आनंदका रस ऐसा प्राप्त हुआ कि इन्होंने खाना पीना समस्तही त्यागन कर दिया. इन्होंने अपना मन, विचार और इन्द्रियोंको सब ओरसे जीतकर भगवान्में ऐसा लगाया कि दूसरेको कठिन है.

कास्येश्वरजीकी कथा ६.

गुसांई कास्येश्वरजी परम भक्त हुए यह प्रथम अवधूत थे, भगवान्की भक्तिका जो रंग इनके ऊपर चढा तो बडी श्रद्धासे यह पुरुषोत्तमपुरीमें आये और श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके शिष्य हुए. फिर यह गुरुकी आज्ञासे श्रीवृन्दावनमें आये और उस नगरकी शोभा तथा भक्तिको देखकर प्रेममें मग्न हो गये और अपनेको उन्होंने कृतार्थ जाना. थोडेही दिनोंमें उनकी प्रीति ऐसी विख्यात हुई, कि श्रीगोविन्दजीकी पूजा और सेवाके अधिकारी हुए और दिनरात भगवा-

न्की सेवामें रहने लगे. इन्होंने भगवान्के लाडमें ऐसा मन लगाया कि इनको अपने परायेका कुछभी ज्ञान न रहा और उस माधुर्यरूप अनूपके आनंदमें त्रिलोकीका सुखभोगभी तुच्छकी समान जाना.

प्रबोधानंदकी कथा ७.

प्रबोधानंदसरस्वती संन्यासी शिष्य श्रीकृष्णचैतन्यके भगवान्के भक्त परम ऋषि व पार्षदकी समान हुए और इन्होंने श्रीराधाकृष्णके विहार और जिस प्रकार कुंजोंमें खेल करा था सो अपनी बनाई कवितामें ऐसी सुन्दर रीतिसे वर्णन करा कि, जिसके एक २ पदको श्रवण कर करोडों भगवान्के भक्त प्रेमानंदमें मग्न हो गये और अबभी होते हैं. इन्होंने उस जुगलस्वरूपके नखरूपी चंद्रमामें अपना मन चकोरकी समान लगाया और जो आनंद और सुख वृन्दावनमें निवास करनेमें है उसीको संसारमें विख्यात किया और उस रूपके आगे धर्म अर्थका फल और आनंदको तुच्छ समझा. इनकी इस वचनमें दृढ प्रतिज्ञा रही. यदि जीव जाय तो जावो और यश धर्मका नाश हो तो हो जाय और रोग विपत्ति आ जाय तौभी कुछ हानि नहीं संसारमें निन्दा हो तो होने दो और मनुष्य मेरा निरादर करें तो कुछ चिन्ता नहीं; परन्तु हे नारायण ! तुम भूलकरभी मेरे हृदयमें ऐसा भाव मत उदय करना जिससे कि मैं वृंदावनको छोडकर और कहीं चला जाऊं.

लालमनीकी कथा ८.

मनुष्यदेह पाकर जो लाभ होना चाहिये सो लालमनीजीने प्राप्त करा. अनेक शास्त्रोंमें लिखा है कि, मनुष्यदेह बडी कठिनतासे मिलती है सो मनुष्यदेह पानेका लाभ यही है कि फिर आवागमन न रहे; सो विना भगवद्भक्तिके आवागमनसे नहीं छूट सकता.

सो जो किसीने यह देह पाकर भगवद्भक्ति करी तो वह तो मनुष्य है, नहीं तो पशु पक्षीमें और मनुष्यमें कुछ अंतर नहीं लालमनीजीको भगवान्की भक्ति प्राप्त हुई; उनको सिवाय गौर श्याम श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी भक्तिके और कुछ इच्छा नहीं थी. गौर श्याम कहनेका अभिप्राय यह है कि वह जुगलस्वरूपके लाड लडानेमें मग्न रहे हैं और लालमनीजी वात्सलउपासक जाने गये हैं इसी कारणसे भक्तमालके बनानेवालेने लिखा है कि लालमनीजीकी भक्ति गौर श्याममें थी नहीं तो प्रियाप्रीतम और किशोरकिशोरीके उपासक लिखते. लालमनीजीका प्रेम और प्रीति जितनी नंदनंदन और वृषभानुनंदिनीमें थी उतनीही प्रीति इनको श्रीयमुनाजी और वृन्दावनके कुंजवन, वंशीवट तथा भगवान्के क्रीडास्थानोंमें थी. यह व्रजकी रजसे और गोकुलके गुरुकुलसे और बारह वन मधुपुरी गोवर्धनमें श्रीवृन्दावनमें अखंडित वास करा. यह भावना कर मनको स्थिर किया जो कि लालमनीजी वात्सलउपासना और गोकुलस्थानके सेवक थे. परन्तु धामनिष्ठाकी स्थिरता जिस रीतिसे वहां वास होना उचित तथा वह सबही लालमनीजीमें पाया गया इस निमित्तही धामनिष्ठामें लालमनीको लिखा है.

अथ

चौदहवीं निष्ठा भगवन्नामकी महिमा ।

(इसमें पांच भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं श्रीरामचंद्रजीके चरणकमलोंकी षट्कोणरेखाको दंडवत् कर फिर परशुराम अवतारको प्रणाम करता हूं कि जिन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके निमित्त इक्कीस वार क्षत्रियोंको मारकर फिर ब्राह्मणोंको राज्य दिया और यह अवतार जमदग्निऋषिके वैशाखसुदी तीजको हुआ था. भगवान्का जो नाम लेना है सो कीर्तनमें है फिर स्मरणमें अधिक मिलता है; इस कारण यह पृथक् निष्ठा रही और फिर चार प्रकारकी उपासना नाम, धाम, लीलारूप शास्त्रोंमें लिखी है सो यहांपर हमने नामकी महिमा लिखनी अवश्यही उचित समझी. महाभागवतनामकी महिमा वेद पुराणोंमेंभी वर्णन करी है; परन्तु निश्चय नहीं कही जाती. भगवान्के चरित्र और महिमाके जितने चरित्र हैं उतनीही नामकी महिमा अनंत है. देखो, शेषजी अपनी हजार जिह्वासे वार २ नवीन नाम उच्चारण करते हैं; परन्तु तोभी पार नहीं पा सकते. शिवजी महाराजका जीवन, धन, प्राण और आधार नाम है. मनुष्योंके उद्धारके निमित्त संसारसमुद्रमें यह नाम नौकाकी समान है; इसमें कुछ चाहना और साधनकी इच्छा नहीं. इसमें विशेषता यह है कि, मनसे अथवा बेमनसे किसी प्रकारभी भगवान्के नाम लेनेका अभ्यास हो तो भगवान् निःसन्देह प्राप्त हो जाते हैं. स्कंदपुराणमें लिखा है कि, भक्तिसेवा विना सेवाकेभी जो कोई भगवान्का नाम उच्चारण करता है उसके समस्त पाप

नाश कर देती है. भागवतमें कहा है कि जिस प्रकार औषधी विना जानेभी अपना गुण करती है, उसी प्रकार भगवान्का नामभी विना जाने अपना फल करता है; गुसांई तुलसीदासजीने कहा है कि, कहीं मनसे अथवा बेमनसे दुःखमें वा अनजानमें विना जानेभी नामका लेना आनंदका देनेवाला है और साधन उस प्रकारके हैं कि, उनमें द्रव्य खर्च करनेसे और शरीरके कष्टसे, घरके छोडनेसे, बडेही परिश्रमसे, बहुतही कालमें सिद्ध होता है और भगवान्के नामके लेनेके साधनसे शीघ्रही कामना पूर्ण कर देता है. नृसिंहपुराणमें भगवान्का वाक्य है कि, जो मनुष्य मेरे नामका स्मरण करते हैं, वे मनुष्य अपने करोडों कुलके सहित मेरे उत्तम धामको पहुँचते हैं. विष्णुरहस्यमें लिखा है कि वही परम ज्ञानवाला है और वही परम तपवाला है जो कि भगवान्के नामका उच्चारण करे. रामरक्षामें विश्वामित्रजीने कहा है कि, राम २ या रामभद्र तथा इसको जो कोई स्मरण करते हैं उनको कभी पाप नहीं लगता और दोनों लोककी अभिलाषा पूर्ण होती है. स्कंदपुराणमें लिखा है कि, राजसूय अश्वमेधयज्ञका और अध्यात्मतत्व भगवान्ने अपने नाम लेनेमें धरा है, इन सभीका फल केवल नाम लेनेसे प्राप्त होता है. जो यह विचारा जाय कि, हम जिस आदमीका नाम लेकर पुकारते हैं तो वह तुरंतही आ जाता है; परन्तु ईश्वरका नाम तो हजारों वार लेते हैं वह क्यों नहीं आता ? इसका कारण क्या है ? सो जिस आदमीको पुकारा जाता है, उसकी जान पहचानमें कुछभी संदेह नहीं होता फिर इसी प्रकार जब यह नाम कभी दृढतासे और विश्वाससे हो यह समझकर कि यह नाम भगवान्का रूप है पुकारा जायगा तो निःसंदेह शीघ्रही भगवान् प्राप्त हो जायगे फिर इसमें इतना औरभी विश्वास हो कि इस नामके अतिरिक्त

और कोई बचानेवाला नहीं यही मनइच्छित फलोंके देनेको समर्थ है, यहांपर एक दृष्टांत है कि राजा धर्मात्माको दरबारमें हजारहों मनुष्य पुकारनेको जाते हैं; उनमें बहुधा तो ऐसे होते हैं कि न तो पुकारनेकी रीति जानते हैं और न राजदरबारकी रीति जाने और न राजाके स्वभावको पहँचाने, उनका तो अपना पुकारनेसे काम है सो वह राजाके न्यायसे अपने न्यायको पहुँचते हैं, परन्तु उसमें जो देर होती है सो पुकारनेवालोंकी कसर है. राजाका इसमें कुछभी दोष नहीं और कितनेही ऐसे हैं कि वे राजाकी रीतिको जानते हैं और उनका मंत्रियोंसे मेल है. ऐसे मनुष्य जिस समय दरबारमें गये उस समय अपनी युक्तिसे और उन मंत्रियोंके मेलसे अपना काम निकाल लाये और ऐसे मनुष्य बहुत थोडे हैं जो कि राजाको प्रसन्न करनेके लिये दरबारमें जाय और कभी किसी तरहकीभी इच्छा न करे तो ऐसे अयाचकोंका काम राजा स्वयंही कर देता है, सो यह नामभी न्याय करनेवाले राजाकी समान है. इच्छापूर्वक काम बना देता है और तलवारमें यह सामर्थ्य है कि लोहेके तवेके दो टुकडे कर देती है. जोरसे मारनेसे और विना जोरके लकीरतकभी नहीं होती. अब यह तर्क उत्पन्न हुआ कि, विना मन लगाये नाम लेनेसे भगवान् किस प्रकार मिल जायंगे सो विचारना उचित है. चाहे किसी प्रकारसेभी नाम लिया जाय परन्तु भगवान्की प्राप्ति हो जायगी किस निमित्तसे नाम लेनेवालेसे पृथक् नहीं होता और यह रीति है कि नामके पुकारनेसे नामवाला आ जाता है, सो भगवान् सभी स्थानमें निकट हैं फिर नामके पुकारनेसे क्यों नहीं आवेंगे? चाहे मन लगाकर पुकारो या विना मनसे और पुराणादिकके श्लोककी साक्षी है. अजामेलका चरित्र इस निष्ठामें कहेंगे और वाल्मीकजीकी कथा कीर्तननिष्ठामें लिखी है. उनको भगवान्के नामकी महिमाका ज्ञान नहीं था और जो किसीको यह

संदेह होय कि, जब मन प्रीतिसे लगेगा तभी भगवान्‌की प्राप्ति होगी अब विचारना योग्य है कि, आदिमें प्रीति भगवान्‌में नहीं होती और मन नहीं लगता जो लगता है तो बहुत थोडा; परन्तु नामके प्रभावसे दिन दिन प्रीति बढती जाती है तभी मनवांछित प्राप्ति होती है. जिस प्रकार बालककी पढनेमें प्रीति नहीं होती; परन्तु गुरुके बताये अक्षरोंको खूबही घोटता रहता है और फिर होते २ उसको उसमें प्रीति और विद्याका बोध हो जाता है और फिर वह विद्यावान् हो जाता है. इसी प्रकार नाम लेनेका अभ्यास होता है और उसमें दृढ प्रीति हो जाती है. इस समयके बहुधा मनुष्य नाम लेनेको अच्छा नहीं कहते हैं. सो मनुष्य कोई गुप्त प्रगट फलको नहीं प्राप्त होते और न कभी उनकी दुष्ट बुद्धिही जाती है. वह बावले कुत्तेकी भांति पुकारते २ मर जांयगे. पहले तो उनके नाश करनेके लिये शास्त्रके वाक्यका न माननाही बहुत है. शास्त्रोंमें तो यह आज्ञा है कि विना मन लगायेभी नाम लेनेसे मुक्ति हो जाती है और वह पापोंसे छूट जाता है और जो उसको अनुचित कहते हैं वही पापी है और दूसरे प्रगट भजन करनेसे मनभी लगता है. सो जब उन पापियोंको प्रथम अधिकारमें प्रीति न हुई तो दूसरा अधिकार कदापि प्राप्त नहीं होनेका. ऐसे मनुष्य इस प्रकार अपने पापोंसे सदा नरकमें वास करेंगे. और यहांपर बावले कुत्तेके दृष्टान्तका यह प्रयोजन है कि, पाप करनेसे उनकी बुद्धि क्षीण हो गई है. सूक्ष्म अर्थका समझना तो अत्यन्त कठिन है परन्तु वह तो मोटी बातभी नहीं समझ सकते. जिस प्रकार शीत तथा गरम और सुगंधि तो तुरंत जीपर असर कर जाय और भगवान्‌का नाम ऐसा हुआ जो प्रगट लिया जाकरभी पराक्रम न करे. ऐसा तो अपनी बुद्धि पर है ऐसे प्रत्यक्ष दृष्टान्तपर निन्दा नहीं होती. यदि लोहको

पारसपत्थरपर स्पर्श करो जानकर वा अजानतासे वह तुरन्तही स्वर्ण हो जायगा, जिस प्रकार अग्निमें कोई वस्तु जाने अथवा विना जाने डाली जाती है तो वह तुरन्तही भस्म हो जाती है. जिस प्रकार अमृत कोई जानकर अथवा विना जानकर पान करता है. वह अमरही हो जाता है. इसी प्रकार भगवान्‌के नामको कोई जानकर ले या विना जानकर पर भगवान्‌में लवलीनही हो जाता है. अर्थात् मेरे स्वामीका नाम किसी रीति अथवा किसी समयभी लिया जायगा तो पापोंसे उद्धार हो जायगा और चारों पदार्थोंको देखनेकी सामर्थ्य हो जायगी और फिर किसी साधनकी आवश्यकता नहीं रहेगी. न कोई इससे विशेष आसराही है. सतयुगमें तो अनेक प्रकारके कर्म और त्रेतामें यज्ञादिक और द्वापरमें भगवान्‌का पूजन मुख्य था और कलियुगका पापरूपी शरीर है इसी कारणसे भगवान्‌के नामसे विशेष कोई सुगम मार्ग नहीं बताया. भगवान्‌ने कहा है कि, जो महापापी भूलकरभी नामरूपी नौकामें बैठेंगे वह संसारसमुद्रके पार होगा. यदि जो जानकर नाम लेगा तो उसका तो क्याही कहना है ! रामस्तवराजमें लिखा है कि, रामनाम ब्रह्महत्या इत्यादि पापोंको दूरकरने वाला है, भगवान्‌ने कहा है कि कैसाही किसीको दुःख हो अथवा वह संसारके स्वादमें लिप्त हो या कैसाही पापी परन्तु भगवान्‌के नामके प्रतापसे समस्त पापोंसे छूटकर परमआनंदको प्राप्त होता है. सारांश तो यह है कि, किसीको कुछ दुःख होता है या कुछ इच्छा होतीही तो वर्ण बिठाते हैं और भगवान्‌के नामके प्रतापसे अपनी इच्छाको प्राप्त हो जाते हैं अब विचारना चाहिये कि, भगवान्‌के नामके जपका अभ्यास सर्वदा होना उचित है. साढे तीन करोड नाम सारी उमरमें पूरे कर देने चाहिये यह तो मनुष्ययोनिका ऋण है और ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है कि इक्कीस हजार छः सौ

श्वास दिनरात्रिमें लिये जाते हैं, सो इतनेही नाम लेनेका ऋण है सोही मनुष्योंके लिये लिखा है. जिनको नाममें प्रीति थोडी है वे सवा तीन घडीमें इतने नाम पूरे कर सकते हैं और जिनको नाम लेनेमें प्रीति अधिक है वे भगवान्के नामका अभ्यास रखते हैं, उनका एक २ पल विना नाम नहीं बीतता है; उनके अर्थ और कोई रीति बतानेका प्रयोजन नहीं उनका जीवन धन जो कुछभी है सो भगवान्का नामही है. अब विचारना चाहिये कि, जितना फल जिह्वासे भगवान्के नाम लेनेका है तो इससे दशगुणा नामका फल है जिस प्रकार श्वास लेते हैं उसके साथ जपका फल प्राप्त होता है. अजपामंत्र श्वासके साथ जपा जाय जो कोई जिस देवताका उपासक है उसही देवताका मंत्र अजपा है. आधा मंत्र श्वासमें ऊपरको चला जाय और आधा नीचेको चले इस रीतिसे जपे. जिस प्रकार रकार तो ऊपरको श्वासके साथ और मकार नीचेको श्वासके साथ कहा जाता है अरे हे मन ! तू अबभी समझ ले और विचार कर कि तू भगवान्के अंशसे उत्पन्न हुआ है. सदा एक प्रकाशमान ज्ञानानंदस्वरूप है. ऐसा कभी नहीं है; सो तू प्रथम कभी नहीं था और नहीं होगा, न तो जीवका जन्म है और न मरण है. रघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंसे विमुख होनेसेही इस दशाको पहुँचा है और फिर अनेक प्रकारके पाप और नरक इत्यादि प्राप्त हुए हैं और चोरासी योनि भुगतनी पडेगी. फिर स्त्री, पुत्र, मित्र द्रव्यादिक जो किसी प्रकारसे जीवका हानि लाभ नहीं कर सकते. उनको अपना समझकर दिन रात इनमें लिप्त रहता है. तुझको चाहिये कि उस स्वरूपके चिंतवनमें रहा करे जो पुस्तकके आदिमें लिखा है कि मायाके जालसे छूटकर परम आनंदस्वरूपकी प्राप्ति होगी

दोहा—शीश मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
एहि वानिक मो मन वसो,सदा विहारीलाल ॥

अजामेलकी कथा १.

अजामेल इस जन्मसे प्रथम ब्राह्मण था, इसने वनमें अत्यन्त कठिन तप किया था; यह एक स्त्री चांडालीके चिंतवनमें मरा था और फिर इसने दूसरा जन्मभी ब्राह्मणके घर नगर कनोजमें लिया था परन्तु प्रथमसेही शूद्रकर्म करनेमें इसकी रति अधिक थी. यह एक व्यभिचारिणी स्त्रीको देखकर मोहित हो गया और फिर यह उसके साथ रहने लगा और चोरी, जुआ तथा मद्यपान करता रहा, एक समय कोई भगवान्का भक्त उस नगरमें आया यह अपने ठहरनेके लिये हरिभक्तका स्थान ढूंढही रहा था कि किसीने इनको अजामेलका स्थान बता दिया, साधु विना जाने उसके घरपर आये, इनको देखकर अजामेलने बहुतही आदर सत्कार किया और अपनी स्त्रीके सहित सेवा करने लगा. इसके उपरान्त फिर रसोई बनाकर तयार करी, फिर अपनी दुःखकहानी कहनेको बैठ गये और आधीन होकर चरणोंमें गिर पडा. इनके दुःखको सुनकर हरिभक्तको दया आई सो जब वह चलनेको हुए यह उपदेश दे गये कि, अब जो तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो तौ उसका नाम नारायण रखना; सो जब इनके पुत्र उत्पन्न हुआ तौ इन्होंने उसका नाम नारायणही रक्खा और उस अपने पुत्रको अत्यन्तही प्यार करता था. इसके उपरान्त जब अजामेलका अंतसमय आया और यमदूत प्राण लेनेके लिये आये तौ इनको बडा दुःख हुआ और दुःख दूर होनेके निमित्त बेटेको पुकारा. हे नारायण ! यह नाम सुनतेही भगवान्के पार्षद आनकर उपस्थित हुए और वहांसे यमदूतोंको निकाल दिया, फिर अजामेलको एक बहुत सुन्दर विमानमें बैठालकर वैकुंठको ले गये. इसके उपरान्त फिर यमदूत यमराजके पास गये और जाकर बोले कि हे महाराज ! अजामेलने कुछ भक्ति

नाम नहीं लिया था उसने तो अपने पुत्रको पुकारा था सोभी दुःखमें, नारायण उसका नाम था; सो इस बातपर भगवान्‌के पार्षदों- ने हमको बहुतही मारा है. यमराजने कहा नारायणका नाम अजा- मेलके मुखसे निकला तो उसको और कौनसा धर्म कर्म शुभ कर्म है उसे कर्म करना बाकी रहा; तुमको भगवान्‌के नामकी सुधि न रही कि उसका फल कैसा होता है; अच्छा हुआ जो तुमको दंड मिला अब आगेको तुमको सावधान रहना उचित है. जिस जगह भगवान्‌का नाम उच्चारण होता हो वहांपर तुम कदापि मत जाओ; जिस जगह भगवान्‌का नाम है उस स्थानपर यमदूतका क्या काम है? फिर इसके उपरांत जिस समय अजामेल परमधामको गया तब तो उसकी स्त्रीभी मन लगाकर उसही गतिको प्राप्त हुई. धन्य है भगवान्- के नामके प्रतापको ! कहां तो अजामेलसमान पापी और उसको धोखेसे नाम लेनेके प्रतापसे वैकुंठ प्राप्त हुआ सो यह चरित्र संगतिसे हुआ, भगवान्‌के भक्तको चाहे कैसाही पापी क्यों न हो संगति यदि जब उसको अच्छा मिल गई तो उसके फलका कभी नाश नहीं होता. गीताके नवम अध्यायमें भगवान्‌के वचनसे निश्चय होता है; परंतु नाममहिमापर अधिक चिंतवनमें इस प्रकारसे होता है, जिसको विन जाने नाम लेनेसे यह फल प्राप्त हुआ तो नहीं कह सकते कि जानकर नाम लेनेसे कैसा फल होता है.

कोई एक राजाकी कथा २.

एक राजा भगवान्‌का भक्त ऐसा हुआ कि वह भगवान्‌का स्मरण पूजा, कीर्तन इत्यादि सर्वदा किया करता था और वह किसीसे अपने मनका भाव प्रगट नहीं करता और उसने अपने मनसे तो समस्त राजकाज त्याग दिया परंतु प्रगटमें यह नहीं दीखता कि, इसने राज-

काज त्यागन कर दिया है. उसको जो भगवान्‌की भक्ति थी वह किसीको प्रगट नहीं थी. राजाकी स्त्री जो थी सोभी हरिभक्त थी; सो वह अपने मनमें सर्वदा यही विचारा करती. किसी प्रकारसे राजाका मन भगवान्‌की भक्तिमें लग जाय तौ अति उत्तम है. यह राजाके चित्तसे भेदी नहीं थी इसी कारण वह सर्वदा उदास रहती थी. एक समय रात्रिको भगवान्‌का नाम राजाके मुखसे निकला इसको रानी सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुई और प्रभात होतेही अपने नगरमें नगाडे बजवाये और प्रसन्नतासहित बहुतसा द्रव्यदान किया. तब राजाने उसके इतने प्रसन्न होनेका कारण पूछा तौ रानीने कहा कि, हे स्वामिन् ! आपके मुखकमलसे जो भगवान्‌का नाम उच्चारण हुआ; यह उसीका मैंने उत्सव करा है. तब राजाने कहा कि, हे प्रिये ! इस शरीरमें जीवरूपी भगवान्‌का नाम रहता है सो जब भगवान्‌का नामही निकल गया तौ यह शरीर अब किस अर्थका है ? यह कहकर अपना शरीर तत्कालही छोड दिया. फिर परम उत्तम पद पाया. जब रानीने देखा कि, राजाकी ऐसी गुप्त भक्ति भगवान्‌में थी कि उसके वियोगमें इन्होंने अपना प्राण त्याग दिया तौ अब मैं जीवित रहकर क्या करूंगी ऐसा विचार कर व्याकुल हो गई फिर प्राणत्यागन कर परमधामको राजाके निकट गई सो यह बात तौ निश्चयही है कि, जिस किसीको भगवान्‌के नाममें प्रीति नहीं है वह मृतककी समान है और जिसको भगवान्‌के नाममें प्रीति है वही अजरामर है. भगवान् अपने भक्तोंके ऊपर सदा कृपा और दया करते आये हैं; परन्तु इस कलियुगमें और युगोंसे अधिक कृपादृष्टि है; सो इस युगमें भगवान्‌ने अपने नामका अधिकार दिया है. जिसके उच्चारण करनेसे दोनों लोकोंका सुख प्राप्त होता है और युगोंमें जप तप पूजा इत्यादिकसे फलोंकी प्राप्ति होती थी परन्तु कलियुगमें तौ नामके कीर्तनसे उन फलोंकी प्राप्ति

हो जाती है और जप तप करना तो कठिन है परन्तु नाम लेनेकी तो सुगम रीति है वह तो विनाही धन व्यय किये प्राप्त हो जाती है.

एकब्राह्मणकी कथा ३.

एक भक्त ब्राह्मणकी कथा वर्णन करते हैं कि, वह अपनी स्त्रीको सुसरालसे लिये हुए आ रहा था; मार्गमें इसको ठग मिले इन्होंने ब्राह्मणसे पूछा कि तुम कहां जाते हो? उन्होंने कहा जहां तुम जाते हो तब वे बोले यह मार्ग अच्छा नहीं है हम तुमको सूधे रस्ते ले चलेंगे तुम हमारे साथ २ चलो. ब्राह्मणको इनके वचनमें विश्वास न हुआ; फिर बोला कि हमारा तुम्हारा क्या साथ है तुम हमसे अलग चलो तो ठगोंने ब्राह्मणसे कपटके वचन कहे और धर्मरूपी बात बनाकर कहा कि, हमारे तुम्हारे बीचमें श्रीरामचंद्रजी साक्षी हैं; इससे अधिक किसकी साक्षी लोगे? ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे प्रसन्न हो बोला कि: प्रिये! यहभी भगवान्के भक्त हैं, चलो अब इन्हीके साथ चलें यह कहकर दोनों जने उनके साथ २ चले. जब यह वनमें पहुँचे तो ठगों ने ब्राह्मणको तो मार डाला और जो कुछ उसके पास द्रव्य था सो स्त्रीसहित लेकर चलते हुए, ब्राह्मणी चलते हुए मार्गमें वारंवार पीछा फिर २ कर देखती जाती थी तब ठगोंने स्त्रीसे कहा कि, तुम पीछा फिरकर किसको देखती हो? तुम्हारा पति तो मारा गया स्त्री बोली कि मैं अपने पतिको देखती हूं कि जिसको तुमने साक्षी दी थी, ठग उसकी यह बात सुनकर हँसे और आपसमें कहने लगे कि यह बडी मूर्ख है; यहांपर रामचंद्र कहांसे आवेंगे यह सब कहनेकी बातें होता हैं; परन्तु स्त्रीको तो भगवान्में विश्वास था उसने इनकी बातको कुछ-भी न सुना और वह श्रीरामचंद्रजीके आनेका मार्ग देखती रही श्रीरामचंद्रजीने देखा कि इसको मुझमें दृढ विश्वास है तो वह तत्का-

उसी घोडेपर सवार होकर उसी स्थानपर आये और जितने ठग थे उन सबोंको मार डाला; फिर ब्राह्मणको जीवित किया. भगवान्‌ने जब उनकी ऐसी दृढ भक्ति देखी तो उसके वशीभूत होकर उनकी रक्षा करनेके लिये उनके घरतक आये. अब विचारना चाहिये कि प्रथम तो ठगोंके हाथसे ब्राह्मणको दुःख हुआ; उसका कारण यह है कि जब ठगोंने भगवान्‌को बीचमें दिया तब ब्राह्मणको विश्वास नहीं आया; जो वह दृढता करके साथ हो लेता तो कभी दुःख नहीं होता.

दोहा–यासे भजिये रामको, करिये मन विश्वास ।
बिनु हरिभजन न भव तरहि, चिदानंद सुखराम ॥

कबीरजीकी कथा ४.

श्रीमान् कबीरजी काशिपुरीमें ऐसे भगवान्‌के भक्त हुए कि जिनकी भक्तिका प्रताप समस्त संसारमें विख्यात है. जिन्होंने भगवान्‌की भक्तिके अतिरिक्त और सब कर्मोंको तुच्छ जाना था; अर्थात् योग, जप, यज्ञ, दान, व्रतादिकको भगवान्‌के भजनके विना निरर्थक जानते थे. यथार्थमें शास्त्रकाभी मुख्य प्रयोजन यही है और भगवान्‌ने विना साधन यज्ञादिक यह समस्तही शून्य हैं. एक रामनामही अंककी समान है; जो रामनामका अंक प्राप्त है तो योग यज्ञादिक जो शून्यकी समान हैं. जब अंकका सम्बन्ध होता है तो दशगुने हो जाते हैं और रामनामका अंक नहीं तो सब साधन वृथा और निरर्थक है. इसका कारण यह है कि जो साधन हो वह भगवान्‌में प्रीति तथा भगवद्भक्तिके अर्थ हो तो सफल होगा और स्वर्गकी कामनाको न होय. इसके उपरान्त कबीरजीने एक ऐसा ग्रंथ बनाया कि जिसको सब मतोंके लोग मानते हैं और निःसन्देह वह ग्रंथ ऐसाही है कि उससे एक मनुष्यसे एकके पाप दूर हो जाते हैं. कबीरजी भजनानंदमें ऐसे थे

कि जिन्होंने भजनके आगे वर्णाश्रमके धर्म आदि सबको तुच्छ जाना. कथा तो उनकी बहुत हैं; परन्तु जो कुछ भक्तमालसे जानी गई वही लिखी जाती है. अक आदि जातिकी रीति व्यवहार छोडकर भगवान्के भजनमें वे निर्भर रहते थे. एक समय अकस्मात् आकाशवाणी हुई कि तिलक और मालाको लेकर भगवान्के भक्तोंका रूप धारण करो और रामानंदजीके शिष्य हो जाओ. कबीरजीने उसका उत्तर दिया कि रामानंदजी मुसलमानका तो दर्शन नहीं करते हैं सो हमको शिष्य किस प्रकारसे करेंगे ? तब भगवान्ने उनको यह उपाय बताया कि रामानंदजी प्रातःकाल स्नान करनेको नित्य जाते हैं सो तुम उनके मार्गमें जा पडना. कबीरजी भगवान्की आज्ञानुसार मार्गमें जा पडे जब रामानंदजीके मुखसे रामनाम निकला तो कबीरजीने उस रामनामको मंत्रका उपदेश मान और फिर तिलक माला धारण करके उसही रामनाम महामंत्रका भजन करने लगे.फिर कबीरजीकी माताने देखा कि यह हमारे मतके विरुद्ध रामनाम लेता है और उसीमें तो लीन रहता है तो कबीरजीको बहुतही समझाया और कहा कि हे बेटा ! यह जो तुम रामनाम लेते हो सो इसकी जगह अल्लाह २ कहो, रामनाम हमारे मतके विरुद्ध है. परन्तु कबीरजीने कुछभी न सुना, अपने भजन और स्मरणमें लगे रहे. इस बातकी चरचा रामानंदजीतक पहुँची कबीरजीकी कि अपने आपको आपका चेला विख्यात करता है; सो इसको झूठ बोलनेका दंड होना उचित है. यह बात सुनकर रामानंदजीने कहा कि उसको यहां पकडकर ले आओ हमने तो उसको शिष्य नहीं किया था. तब कबीरजीने समस्त वृत्तान्त उपदेशका कहा और यह कहा कि सब शास्त्रोंका एकत्व यह है कि रामनाम महामंत्र है. मंत्रशास्त्रमें और रामस्तवराजमें लिखा है कि श्रीरामनाम परम

जपनेके योग्य है और महामंत्र ब्रह्मरूप है और दूसरा वचन यह है कि जो कोई रामनाम मंत्रको जपता है। उसको संसारके सुख और आनंदकी प्राप्ति होती है और शिवजीने पार्वतीको रामनाममंत्र सहस्रनामकी समानका उपदेश दिया. सो उसके नामसे अधिक कौन है कि जिसको उपदेश करते और जब आपके मुखसे मुझे उसका उपदेश हुआ तो आपके गुरु होनेमें और मेरे शिष्य होनेमें कौनसा संदेह रहा ? जब रामानंदजीने कबीरजीमें ऐसा दृढ विश्वास देखा तो जो अपने और उनके बीचमें परदा डाला था सो दूर किया और उठकर इन्हें अपनी छातीसे लगा लिया, उपदेश, भजन, स्मरण और साधुओंकी सेवा करनेका उपदेश करके कबीरजीको विदा किया. कबीरजी कपडा बुननेका काम करते थे, परन्तु उनका मन सर्वकाल रामनाममें रहता था. वह अपना उद्यम कर इतना कमाते थे कि जिसमें अपना खर्च भली भांति हो जाय. एक दिन यह कपडा बेचनेको बाजारमें गये सो इनसे किसी साधुने कहा कि मेरे पास कोईभी वस्त्र नहीं है सो मुझे कुछ वस्त्र दे. तब कबीरजी उसको आधा थान देने लगे; तो साधुने कहा कि मेरा आधेमें तो काम नहीं चलेगा तब इन्होंने उसको सारा थान दे दिया. फिर अपने मनमें विचार करने लगे कि; माता और बालक बच्चे तो बाट देखते होंगे खाली हाथ घरमें किस प्रकार जाऊं सो यह विचार कर घर नहीं गये और किसी स्थानपर छिप गये इनके घरवाले बाट देखते रहे तो इनको बडी चिन्ता हुई. भगवान्ने जब यह दृढ विश्वास कबीरजीका देखा तो उनके घरवालोंको भूंखा न देख सके. प्रभातकोही अन्न वस्त्र और फलादिक लेकर कबीरजीके घरपर आये और वह समस्त वस्तु कबीरजीके घरमें रख दी. तब यह देखकर कबीरजीकी माताने कहा कि मेरा पुत्र किसीसे एक दानाभी

नहीं लेता सो तू कौन है जो हमारे घरमें अन्न इत्यादिक डाले जाता है. परन्तु भगवान्ने उसकी बातोंपर कुछभी ध्यान नहीं दिया. सब जिनस उनके घरमें डालकर चले गये. इसके उपरान्त फिर दो चार आदमी कबीरजीको ढूंढकर लिवाकर लाये. जब कबीरजीने अपने घरमें यह जिनस भरी हुई देखी और यह वृत्तान्त सुना तो वह जान गये कि यह कृपा हमपर भगवान्ने करी है सो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और भगवान्के भक्तोंको बुलाकर वह सब जिनस वर्तो दी और बुननेका कामभी भगवान्के भजनमें त्यागनकर दिया. इसके उपरान्त जब फिर काशीके ब्राह्मणोंने सुना कि हजारों मन जिनस साधुओंको बांट दी है परन्तु किसी ब्राह्मणको एक दानाभी नहीं दिया; सो सब एकत्रित होकर आये और बोले कि हे जुलाहे! अपने अभिमानके वश होकर समस्त धन हमारे पीछेमें शूद्रोंको बांट दिया है इस कारण इस नगरसे किसी और नगरमें जाकर वास कर तब कबीरजी बोले कि, मैंने किसीकी कुछ चोरी तो करीही नहीं जो इस नगरसे निकल जाऊं. ब्राह्मणोंने कहा कि जो तैंने विना हमारे कहे शूद्रोंको जो धन बांटा है यही तेरा अपराध है. सो या तो कुछ धन तू हमारी भेंट कर नहीं तो हमारे नगरसे बाहर जा. कबीरजीने उत्तर दिया कि मेरे पास घरके सिवाय और कुछभी नहीं है सो इस घरमें तुम विश्राम करो. इतना कहकर कबीरजी छिपकर चले गये; तब भगवान्ने अपने भक्त कबीरजीको काशीमें विख्यात करनेकी इच्छा करी इस कारण कबीरका रूप बनाकर आये और इतना द्रव्य और जिनस बांटी कि समस्त नगरमें कबीरजीका नाम विख्यात हो गया और सब ब्राह्मण प्रसन्न हुए इसके उपरान्त फिर भगवान्ने ब्राह्मणका स्वरूप बनाया और कबीरजीके पास गये और कबीरजीसे बोले कि, तू किस कारणसे वनमें डोलता है?

अपने घरको क्यों नहीं जाता ? तू कबीरजीके घरपर जा वहांपर जो जाता है उसको धन और जिनस मिलती है. कबीरजी यह सुनकर उसी समय अपने घरपर आये और भगवान्की कृपाको देखकर उनके प्रेममें मग्न हो गये. इसके उपरान्त यह भगवान्की बाहुल्यताको देखकर विख्यात हो गये, फिर तो मनुष्योंके समूहके समूह इनके पास आने लगे; तब कबीरजीके भजनमें विघ्न पडने लगा तो उन्होंने विचारा कि कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे कि हमारे पास मनुष्य न आवें. यह विचार कर उन्होंने एक वेश्याको अपने साथ लिया सो एक हाथ तो उसके गलेमें डाला और एक हाथमें गंगाजलका शीशा लिया यह लेकर समस्त नगरमें फिरने लगे. तब भगवान्के भक्तोंने इसकी यह दशा देखी तो अपने मनमें कहने लगे कि देखो कबीरजी परम भगवान्के भक्त हैं सो इन्होंने वेश्याको जो साथ लिया है सो इस कारण मूर्खोंने इनकी निन्दा करी है और गंगाजलके शीशेको जो इनके हाथमें है उसको मदिरा जाना है तो संसारी मनुष्यको वेश्याका संग नरकमें क्यों न पहुँचावेगा और जो भगवान्से विमुख थे. जब उन्होंने कबीरजीकी यह दशा देखी तो हास्य करने लगे और कबीरजीकी निन्दा करी; इस उपायसे कबीरजीका मनोरथ पूर्ण हुआ. इनके पास बहुत कम आदमी आने लगे; परन्तु जो अजान थे सो कबीरजीको इस चरित्रसे बुरा कहने लगे; इसके उपरान्त फिर कबीरजी वेश्याको साथ लिये हुए हाथमें शीशेको लेकर राजदरबारमें गये और सभामें जाकर बैठ गये. राजा और मंत्रियोंको कबीरजीकी बहुत भक्ति थी, परन्तु जब उन्होंने इनका ऐसा रूप देखा तो कुछभी आदर सत्कार नहीं किया इसके उपरान्त कबीरजीने उठकर थोडासा गंगाजल पृथ्वीमें डाला और फिर राम २ कहकर शोचने लगे राजाने कबीरजीका यह चरित्र देखकर पूछा कि इस समय चिन्तित

होनेका क्या कारण है ? कबीरजीने उत्तर दिया कि, श्रीजगन्नाथजीका रसोइया अग्निमें जलने लगा था, सो मैंने यह जल डालकर अग्नि बुझाई थी और रसोइयेको बचाया. तब तो राजाको बडाही आश्चर्य हुआ उसने उसी समय अपने दूत जगन्नाथपुरीको भेजे और वहांसे खबर मंगाई; तब दूतोंने आकर कहा कि, जिस समय रसोइया भगवान्का भोग उतार रहा था तब वह अग्निमें जल गया था तब कबीरजीने अपने जलसे अग्निको बुझाकर उस रसोइयेको बचाया; तब तो राजाको अपनी समझपर अत्यन्तही पछतावा हुआ कि, मैंने इनके रूपको देखकर किस कारण भगवान्के भक्तका आदर नहीं किया और फिर अपने अपराधोंकी क्षमा करानेका विचार करने लगा. अंतमें गलेमें कुहाडी और माथेपर लकडियोंका भार लेकर अपनी स्त्रीके सहित कबीरजीके स्थानपर आया और बहुतही विनती कर उनके चरण पकड लिये. कबीरजीको उनकी इस दशापर दया आई और उनके अपराध क्षमा कर लिये. फिर उनको भक्तिका उपदेश किया; सो उस समय सिकंदरशाह बादशाहकाभी डेरा काशीजीमें था सो ब्राह्मण और मुसलमान कि जिनको उनकी भक्ति नहीं थी; उन्होंने कबीरजीकी माताको साथ लेकर बादशाहके समीप विनती करी और कहा कि कबीरजीने सारी नगरीके मनुष्योंको ऐसा बदचलन कर दिया है कि जो कोई उनके कहनेमें चलता है सो न तो हिन्दूही है और न मुसलमान रहता है. इसके उपरान्त बादशाहने कबीरजीको बुलवाया सो वह तत्कालही आये इन्होंने ड्योढीवालोंको सलाम न करी; तब इन्होंने उनको सजा करी तो कबीरजीने उनको उत्तर दिया कि हमको सलाम करना नहीं आता; न कुछ हमको बादशाहसे प्रयोजन है. हम तो एक रामनामकोही अपना बादशाह जानते हैं और वही मेरे प्राणोंका आधार

है. तब बादशाहने कबीरजीके ऐसे वचन सुने तौ अत्यंतही क्रोधित हुए और फिर उनके हाथोंमें हथकडी और पैरोंमें बेडी भरवाकर उनको गंगाजीमें छोड दिया कबीरजी तौ पहलेही इस संसाररूपी बेडीको काट चुके थे; सो वह तौ दरियाके किनारे आ गये और बेडी जो थीं सो काटकर दरियामें फेंक दी. जिनको उनकी भक्तिका विश्वास नहीं था उन्होंने तौ इनका यह जादू समझा तौ इनको अग्निमें जलाया, वह अग्नि शीतल हो गई. कबीरजी उसमेंसे ऐसे निकले कि उनका तेज प्रथमसेभी अधिक दीप्तिमान् हुआ. बादशाहके इन समस्त उपायोंसे कुछभी नहीं हुआ, फिर एक मस्त हाथी छोडा सो वहभी कबीरजीके पासतकभी न आ सका. कबीरजी हाथीको सिंह दृष्टि आये; इस कारण वह भाग गया. जब बादशाहने कबीरजीकी भक्तिका ऐसा प्रताप देखा तौ चरणोंमें गिर पडा और प्रीतिसहित उनकी विनती करी कि मैं तुम्हारे चरणोंका सेवक हूं. आप मेरा अपराध क्षमा करोगे तौ मैंने जो अपने पाप करे हैं उनका उद्धार हो जायगा सो जितना द्रव्य वा जमीन जो कुछ आपको अवश्य हो सोही मैं आपकी भेंट करूं और मेरे ऊपर ऐसी कृपा करो कि मैं इस संसारसे छूट जाऊं कबीरजीने कहा कि मैं रामनामके अगाडी और कुछ धनकी इच्छा नहीं करता इतना कहकर अपने घरको चले गये और समस्त हरिभक्तोंको आनंदमें मग्न किया. जब उस नगरके ब्राह्मणोंने यह चरित्र देखा तौ अत्यन्त लज्जित होकर कबीरजीको उन्होंने दुःख देना विचारा और यह उपाय किया; कई आदमियोंने साधुओंका रूप धारण किया और कबीरजीकी ओरसे न्योता फेर दिया, और कबीरजीके स्थानपर अमुक दिन भंडारेका उत्सव है सो तुम उनके स्थानपर आना. यह वचन कबीरजीकी तरफसे कहला भेजा. सो यह जिस दिनको लिख आये थे उसी दिन साधुओंकी मंडलीकी

मंडली इनके स्थानपर आ पहुँची. जब कबीरजीने ब्राह्मणोंका यह कपट देखा और अपने पास उनकी सेवा करनेके लायक सामग्री न देखी तो विचार करने लगे कि जो इन साधुओंकी सेवा न हुई तो इनके सामने अत्यन्तही लज्जित होना पडेगा. इस कारण आप अति शीघ्र छिप गये. भगवान्ने देखा कि इस समय मेरे भक्तकी हँसी होगी सो उसको सहन नहीं कर सके. तत्कालही उन्होंने कबीरजीका रूप धारण किया और फिर उनके घरपर आये; फिर सम्पूर्ण समाजकी भली भांति तैयारी करी और ऐसा उत्तम भंडारा करा कि ऐसा किसीसेभी नहीं हो सकता. इनके भंडारेमें जो जो साधु आते गये इन्होंने भली प्रकार दंडवत् प्रणामादि कर उनके रहनेके लिये स्थान बताया और फिर उनको इच्छित भोजन जिमाया उत्तम रीतिसे उनकी सेवा करी. इसके पीछे जब सम्पूर्ण कार्योंसे निवृत्त हुए तो मंडलीमें बैठकर भगवान्की चरचा करने लगे. इसके उपरान्त जब बहुतही दिन बीत गये तब एक दिन भगवान्ने साधुका वेष धारण किया. फिर उस भेषमें कबीरजीके पास गये और उनसे समस्त वृत्तान्त भंडारेका निवेदन किया. तब तो कबीरजी अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उसी समय अपने स्थानपर आये और भगवान्की कृपाको देखकर अत्यन्तही प्रफुल्लित हुए. इसके उपरान्त कबीरजीकी परीक्षाके निमित्त स्वर्गसे एक अप्सरा मोहनी रूप बनाकर इनके समीप आई और उसने अपने हावभाव कटाक्ष इनके समीप सभी कुछ किये परन्तु इन्होंने उसपर कुछभी दृष्टि नहीं करी. इनको तो उसी भगवान्के स्वरूपका ध्यान रहा, तब तो वह लज्जित होकर चली गई. भगवान्ने जब कबीरजीकी ऐसी दृढ भक्ति देखी तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए. और चतुर्भुजरूपसे प्रगट होकर भगवान्ने स्वयं कबीरजीको दर्शन दिया और

उनके शिरपर अपना हस्तकमल रक्खा; फिर कहने लगे कि हे वीर! तुम अपनी देहके सहित मेरे साथ परमधामको चलो. कबीरजी भगवान्का वह अत्यन्तही मनोहर रूप देखकर आनंदमें मग्न हो गये और वह प्रसन्नतासहित अपनी आत्माको कृतार्थ मानकर परमधाम जानेको तैयार हुए. फिर उन्होंने संसारमें प्रगट करनेके लिये एक अद्भुत चरित्र किया वह यह है कि काशीजी गंगाजीके पार मगधदेशमें जो प्राण त्यागन करता है तो उसको गधेकी देह मिलती है; सो कबीरजी उसी देशमें गंगा पार जाकर देहके सहित परमधामको गये; अर्थात् जो मनुष्य कर्मके आधीन हैं उनको मगधदेशके मरनेसे गधेकी देह मिलती है और जिनको भगवान्की भक्ति है उनको प्रत्येक देश प्रत्येक स्थान सहस्रों काशीकी समान है; फिर जब भगवान्की भक्तिका यह प्रताप है कि यह मगधदेशमें मरकर देहसहित परम धामको गये. मरे पीछेमें मुसलमानोंने चाहा कि कबीरजीकी देहको गाड दे; क्योंकि यह मुसलमान थे. और हिन्दुओंने कहा कि हम जलावेंगे, इसपर बहुतही विवाद हुआ. अंतमें जब चादरको उठाकर देखा तो मृतक स्थानपर सुगंधित पुष्प पाये. तब समस्त लोग अचंभित हो गये और उसी समयसे भगवान्की भक्तिका विश्वास हो गया.

पद्मनाभकी कथा ९.

इस संसारमें भगवान्का रामनाम महामंत्र है और जो कुछ द्रव्य सेवा, पूजा, जप, तप, योग वैराग्यका और भगवान्का रूप है इस नामके सिवाय कोई दूसरा रूप नहीं. नामसेही मित्रता और नामसेही प्रीति और नामसेही नाता होना उचित है, यही भक्ति है. और यही ज्ञान नामसे नामी है; नामी नाम है. स्वयं रघुनंदन स्वामीभी

इस नामकी बडाई नहीं कर सकते. हनुमान्‌जीको आपने स्वयं अपने मुखसे कहा है और भक्तमालका बनानेवालाभी लिखता है कि मेरे विचारमें रघुनंदनस्वामीका नाम उनसेभी बडा है और सब शास्त्रोंका इस बातपर एकत्व है सो प्रत्यक्षमेंही रामनामकी महिमा और बडाई वाल्मीकि तुलसीदास वा नामदेव वा हनुमान् अथवा प्रह्लाद बिभीषणादिकी कथासे प्रगट है. परन्तु पद्मनाभजीका वृत्तान्त सुनिये कि उनको कबीरजीकी कृपासे रामनामकी परीक्षा भली प्रकार हो गई थी. काशीजीमें एक साहूकारको कोढका रोग था सो उसकी वृद्धिसे कृमि पड गई थीं; इस कारण वह गंगाजीमें डूबनेको चला. दैवसंयोगसे अकस्मात् पद्मनाभजीभी वहां आ गये; इनको उसका दुःख देखकर उसपर दया आई तो इन्होंने कहा कि तीन वार रामनाम लेकर गंगाजीमें स्नान कर तेरा रोग अच्छा हो जायगा. जब उसने आज्ञानुसार तीन वार रामनाम लेकर गोता लगाया तो तत्कालही इसका रोग जाता रहा और पहलेसेभी अधिक सुन्दर हो गया. इसके पीछे फिर पद्मनाभजीने उसको भगवान्‌की भक्ति करनेका उपदेश देकर विदा किया फिर यह समस्त वृत्तान्त अपने गुरु कबीरजीको सुनाया, तब कबीरजीने क्रोधित होकर इनसे कहा कि तुम अबतक रामनामकी महिमाको नहीं जानते; जो तनकसा रोग निवृत्त करनेके लिये तीन वार रामनामको कहलाया, रामनाम वह मंत्र है कि जो उसकी एकवारभी आवाज कानमें पड जाय तो करोडों जन्मके महा-पापभी दूर हो जाते हैं, तब फिर एक कोढीका कोढ दूर हो गया तो कौनसी बडी बात है; तब पद्मनाभजीने उस महिमाको सुनकर बहु-तही निश्चय विश्वास किया और दिनरात रामनामके भजन और स्मरणमें रहने लगे

चौपाई-महामंत्र जोइ जपत महेशू । काशी मुक्ति हेतु उपदेशू ॥
उलटा नाम जपत जग जाना । वाल्मीकि भये ब्रह्मसमाना ॥

राग किदारा ।

दीनहित विरद पुराणन गायो ॥
आरतबंधु कृपालु मृदुल चित जान शरण हौं आयो ।
तुमरे रिपुका अनुज बिभीषणवंश निशाचर जायो ॥ १ ॥
सुन गुण शील स्वभाव नाथको मैं चरणन चित लायो ।
जानत प्रभु सुख दुख दासनके तातैं कहन सुनायो ॥ २ ॥
करुणाकर भर नैन विलोको तब जानो अपनायो ।
वचन विनीत सुनत रघुनायक हँसकर निकट बुलायो ॥ ३ ॥
भेंट्यो हरि भर अंक भरत जिमि लंकापति मन भायो ।
करपंकज शिर परस अभय किय जनपर हेतु दिखायो ।
तुलसिदास रघुवीर भजन कर कौन अभयपद पायो ॥ ४ ॥

अथ

पंद्रहवीं निष्ठा ज्ञानकी महिमा ।

(इसमें द्वादश भक्तोंकी कथा है.)

अब श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी मच्छरेखाको दंडवत् कर सनत्कुमार अवतारको प्रणाम करता हूं कि जो अवतार भगवान्ने ब्रह्मपुरीमें धारण किया था इस संसारमें ब्रह्मज्ञानने इसही अवतारसे प्रचार पाया; वेद, स्मृति, पुराण सबकाही इस बातपर एकत्व है कि विना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती. वेदान्त, सांख्य, पातंजल,

मीमांसा, तर्क, न्याय, छः शास्त्र जो वेदकी महिमा और विद्या है और वेदकाही अंग कहाते हैं और जहांतक कोई मार्ग मतमतांतरका किसीके विचार आवे तो जितने मत संसारमें हैं उनकी जड एक ना एक शास्त्रमें प्रत्यक्ष पाई जाती है और इन छः शास्त्रोंसे बाहर कोईभी मत नहीं. यदि ज्ञानके निर्णयको श्रम किया जाय तो सबने ज्ञानहीको मुख्य जाना है परन्तु सब शास्त्र अपने २ सिद्धान्तपर मुक्तिका वर्णन करते हैं इस कारण प्रगटमें उस ज्ञानका स्वरूप छः प्रकारसे दृष्टिमें आता है. सो एक २ आचार्य शास्त्र बनानेवालोंने शास्त्रोंमें अपने सिद्धान्तके अनुसार ज्ञानका वर्णन लिखा है, और ज्ञानका तत्व अपने शास्त्रको बताया है परन्तु अंतमें एक २ का विचार देखा जाय तो सबका आशय एकही निकलता है. जो एक शास्त्रके अनुसार किंचित् २ तत्व और ज्ञानका वर्णन लिखा जाय तो ग्रंथका विस्तार हो जायगा और कुछ समझमेंभी नहीं आवेगा इस कारण छः शास्त्रोंका वर्णन लिखता हूं कि ईश्वर माया और जीवका स्वरूप यथार्थ जानकर ईश्वरको देखना यह ज्ञानका स्वरूप है. यह निर्गुण निर्विकार अविनाशी सब गुणोंसे पृथक् है. भक्तजन पांच प्रकारसे उनकी उपासना करते हैं. पहले परम अर्थात् श्रीविष्णुनारायण वैकुंठ निवासीका वह रूप और समान समाज जो वेदशास्त्रोंने भगवत्-ध्यानके वर्णनमें लिखा है. ध्यान आराधन करना, परन्तु यहभी विचारना हो कि जो श्रीरघुनंदनस्वामी साकेतनिवासीके परम भक्त और श्रीकृष्णस्वामी गोलोकनिवासीके परम भक्त उनको परम परमात्मा मानते हैं. निदान जो जिस किसी स्वरूपमें जिस प्रकार राम, कृष्ण; विष्णु नृसिंहके उपासक हैं, वह अपने इष्टको परम मानता है और स्मरण रहता है कि यह वह सगुणरूप भगवान्का है कि, जिसको शिवजी ब्रह्मा इत्यादिक सब योगीजन नाना प्र-

कारकी समाधि लगाकर देखा करते हैं और उसकी मायाको नहीं पहुँच सकते. वेद और शास्त्र, पुराण, स्मृति. इत्यादि अनेक प्रकारके उपाय धर्म, कर्म और ज्ञान वैराग्यादिके लिखे हैं; सो इसी स्वरूपके निमित्त हैं, इसी स्वरूपका ज्ञान होनेसे मुक्ति और निश्च-न्तता कृतार्थता होती है. दूसरे व्यूहस्वरूप इस संसारको उत्पन्न करके फिर उसकी पालना करता है; फिर उसका नाश कर देता है. जिस प्रकार वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तीसरे विभूति अर्था-त् अवतार जो अधर्म दूर करने और धर्म स्थापन करने तथा वेदकी मर्यादाकी रक्षा करनेको होता है सो दो प्रकारसे है. एक तो मुख्य अवतार रामकृष्णादिकमें कि, जिनकी वेद मायासे रची हुई नहीं वरन वे मायाधीश जानने उचित हैं. मायाका जो स्वामी है तथा वेदके उपनिषद् और उनकी उपासनामें गोपालतापिनी और रामता-पीनी आदि विख्यात हैं; परन्तु यह सिद्धान्त श्रीसंप्रदायवालोंका लिखा हुआ है और जो मनुष्य राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन इनके उपा-सक हैं वह अपने इष्टको अवतारी मानते हैं और विष्णु तथा दूसरे अवतारोंको अवतार दूसरा गौण अवतार उसके दो भेद हैं. एक तो संसारी लोगोंकी अज्ञानता निवृत्त करनेके निमित्त और उनके धर्मो-का प्रचार करनेके लिये होता है. जिस प्रकार व्यास, बलि, पृथु आ-दिका अवतार हुआ, दूसरे परशुराम और शिव और गणेश इत्यादि. चौथा अंतर्यामी उसके दो भेद हैं, एक निरूप अर्थात् ज्ञानानंद, अलख, अविनाशी, निरीह, निरंजन, निर्गुण, ब्रह्म सर्वव्यापक है. जिस प्रकार लकडी और तिलके प्रत्येक अवयवमें अग्नि और तेल व्यापक है, परन्तु वह दृष्टिमें नहीं आता; इसी प्रकार वह सब स्था-नमें व्याप्त सबसे रहित और सर्व व्यापक है और जिसकी सत्यता और माया अगणित ब्रह्मांडोंको रचती है. दूसरा सदेह अर्थात् सगुण

मूर्ति शंखचक्रधारी मायासे पृथक् वासुदेवस्वरूप है और यही भगवत् विग्रह संकर्षणादि रूप है जिनका आख्यान दूसरे स्वरूपमें हुआ सो गिना जाता है. जिस प्रकार वासुदेव संकर्षण, अनिरुद्ध, पांचवां अर्चा-स्वरूप है कि जिसका आख्यान निष्ठा आठवीमें प्रतिमाअर्चामें पृथक् लिखा गाया है, भगवान्का स्वरूपवर्णन हो चुका. मायाका स्वरूप यह है कि चल और अचल है जो किसी प्रकारका पौरुष नहीं रखती. भगवान्की प्रेरणासे वह सब काम करती है. कितनोंहीका कथन है कि वह माया अनादि शांत है अर्थात् यह विदित नहीं होती कि यह कबसे है और कबसे उत्पन्न है, वरन पहलेसे अनादि है; परन्तु इसका अन्त हो जाता है. जब वेदशास्त्रके मार्गके अनुसार कर्म छोडनेके लिये उपाय करते हैं, उस समय माया दूर हो जाती है और कोई २ यहभी कहते हैं, कि माया नित्य है और सर्वदा रहेगी. भगवान्की माया अपरंपार है और उसका दूर होना असंभव है; परन्तु जब वेदमर्यादाके अनुसार प्रथम भगवान्की आराधना करता है तो भगवान्की कृपासे वह माया इस मनुष्यपर दूसरे आदमियोंकी समान अपना बल और पराक्रम नहीं कर सकती है. इस निमित्तमें प्रयोजन सच्चा दोनोंका एक है; केवल कहनेहीका भेद है. वह माया दो प्रकारकी है एक तो विद्या कि जिससे अगणित ब्रह्माण्ड और ब्रह्मांडोंके स्वामी उत्पन्न होते हैं और दूसरे अविद्या कि जिसके बंधनमें यह जीव बंधा है. जीवका स्वरूप यह है कि जिसको आत्माभी कहते हैं. कुछ निष्ठाके अंतमें लिखा है कि भगवान् अंशसे प्रगट हुआ नित्य निर्विकार प्रकाशवान् ज्ञानानंदस्वरूप है, सो तीन कालमें प्राप्त है, परन्तु भगवान्के सदृश सर्वज्ञ नहीं, भगवान् शेष और जीवात्मा शेषी है. शेषपदका वर्णन सेवानिष्ठामें होगा. वे जीव पांच प्रकारके हैं प्रथम यह कि उनका जन्म दूसरे मनुष्योंकी समान इस संसारमें

नहीं होता, जैसे विष्वक्सेन गरुड आदि. दूसरे मुक्ति कि भगवान्का आराधन और ज्ञानकी सहायतासे मुक्ति हुई. तीसरे केवल कि मुक्तिके समीप अपने श्रमसे पहुँच गये, जिस प्रकार जीवन्मुक्त. चौथे मुमुक्षु, जो मुक्तिकी चाहना करनेवाले हैं, वे दो प्रकारके हैं. पहले वह हैं कि जिन्होंने नवधा भक्ति कर भगवान्के चरणोंमें चित्त लगाया दूसरे शरणागत जिनका भक्ति आदिसे कुछ प्रयोजन नहीं, सर्व प्रकार केवल भगवान्के चरणोंका आसरा लिया है और अपने आपको सब कामोंमें तुच्छ जाना है, सब भार भगवान्परही डाला है, वेभी दो प्रकारके हैं. एक तृप्त जो भगवत्सेवाकी इच्छा करते हैं वेद-शास्त्रोंमें रुचि रखनेवाले. दूसरे आर्त कि मर्यादाके अनुसार भगवत्सेवा कर उनके मार्गमें जा पहुँचे हैं, परन्तु व्याकुल हो रहे हैं कि, किसी प्रकारसे हो शीघ्र जो परमात्मा शास्त्रोंमें लिखा है और जिसके निमित्त सब यत्न लिखे हुए हैं उसके निकट पहुँचे. पांचवें बद्ध वे हैं कि जो संसारके विषयभोगमें भूलकर तथा काममें रहकर आवागमनकी फांसीमें फँसे रहते हैं और यही दशा रहेगी. कोई पांचको जो ऊपर लिखे हुए हैं तीन प्रकारसे कहते हैं एक विमुक्त जो छुट गये. दूसरे साधक जैसे, मुमुक्षु जो छोडनेके निमित्त यत्न करते हैं. तीसरे विषयी जो संसारमें भूल रहे हैं. आशय दोनोंका एकही है; जीवका वर्णन तो हो चुका. अब ज्ञानका निर्णय करते हैं कि, ईश्वरको माया और, जीवके स्वरूप जान लेनेके उपरान्त जब ईश्वर और जीवको एक समझकर बहुत अभ्यास और वैराग्यमें चित्त दृढ हो जाय; द्वैतभाव मिट जाय, उसीका नाम ज्ञान है विज्ञान हो जाय, प्रयोजन उसका यह है कि बाहर भीतर भगवान् ज्ञानानंद स्वरूप सच्चिदानंद-घन अव्यक्त है. उसके अतिरिक्त न कुछ हुआ है और न होगा और न है वह जो कि संसार दृष्टि आता है इसका सब भ्रम स्वप्नवत् है.

निश्चयही सब ईश्वर है और कितनेक कहते हैं कि निःसंदेह जहां-तक ज्ञान और बुद्धि पहुँचती है वह समस्तही भगवद्रूप है परन्तु यह जीव उस भगवान्‌का दास है और अनेक ऐसे हैं कि, उनको न तो पहले भागसे काम और न दूसरेसे है. केवल अपने प्यारे प्रीतममें मन ऐसा मग्न हो जाय कि और सुध न रहे सिवाय उस रूप अनूपके और कुछ प्रगट न देखे तो बस यही ज्ञान है और वैराग्य है और वही भक्ति है और वही शरणागति है. अब विचारना चाहिये कि इस प्रकारके वर्णन थोडे थोडे अन्तरसे विचारनेसे बहुत हैं; परन्तु अन्तमें परिणाम सबका एक हो जाता है. इसका क्या अर्थ है कि जिस आदमीने जीव और ईश्वरको एक समझ रक्खा है; तो उसकी दृष्टिमें विना ईश्वरके दूसरा कोई नहीं और जिस मनुष्यने अपने आपको दास और भगवान्‌को अपना स्वामी किया तो वहभी माधुरीरूपमें मग्न होनेके समय भगवान्‌के रूपमें आपको भूल जायगा और सिवाय उस रूपके और कुछ दृष्टि नहीं आवेगा वह परीक्षा भक्तोंको हुई है कि तथा किसी समयके काममें ऐसी एकाग्रता मनमें आ जाती है कि निश्चयही अपने और परायेके शरीरकी सम्हाल नहीं रहती और जब कि भगवान्‌के स्वरूपका स्वाद और दर्शनका आनंद प्राप्त हुआ तो कौनसा मनुष्य है कि सिवाय उस रूप अनूपके और ध्यान करे. अब मैं शुद्ध सिद्धान्ततत्व शास्त्रोंका लिखता हूं. जिस प्रकारसेभी हो उस प्रकारसे यह जीव भगवान्‌के चरणोंमें लगे और दोनों लोकके काम ज्ञान वैराग्यादि समस्तही विना परिश्रमके प्राप्त हो जाय. जिस प्रकारसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है; कि मुझको एक जानकर वा सबसे पृथक् जानकर वा अनेक प्रकारसे जानकर जो भजन और सेवन करता है उसको मैं शीघ्र प्राप्त होता हूं. कारण कि सब प्रकारसे मेरे सन्मुख हो जाना उचित है कि, जबतक यह मन भगवान्‌के चरणोंमें

नहीं उगता तबतक यह जीव अज्ञानमें है और सब जानकारी परभी मूर्खता है क्या उत्तम हो कि सर्व संकल्पोंको छोडकर श्रीरघुनंदन स्वामीके चरणकमलोंमें मेरा मन मग्न हो जाय और भाग्यका उदय हो और खिले हुए समाजको देवताकी समान देखता रहे तो यह सब संसारसमुद्र गोपदसेभी सूक्ष्म हो जायगा.

वशिष्ठजीकी कथा १

श्रीमान् वशिष्ठजी ब्रह्माजीके दश पुत्रोंमें भगवान्के भक्त तथा ज्ञानी हुए और ज्योतिष चिकित्सा संगीत आदि उनकी बनाई संहिता विख्यात है उनके प्रमाणसे दूसरे अपने मार्गमें चलते हैं और बडे २ सत्पुरुषोंने उनकी मर्यादाकी रीति वर्णन की है. परन्तु उनकी बुद्धि धर्मशास्त्र और ज्ञानशास्त्रमें अधिक है कि जिन्होंने अंतरिक्षमें निरालम्ब स्थिति करके भगवान्का भजन और ध्यान किया और फिर दूसरे ब्रह्मांडमें जाकर वहांकी ब्रह्माणीकी सहायके निमित्त ब्रह्माजीसे कहा और धर्मकी पालनाको अबतक यह विचार है कि तीन स्वरूप धारण करके तीन ठौर एक ब्रह्मलोक और दूसरे धर्मराजकी सभा और तीसरे सप्तऋषीश्वरोंमें रहते हैं. कि जिनके प्रतापको देखकर राजा विश्वामित्रने अपने राजको छोडकर भगवान्की भक्ति करनेको तैयारी की. तितिक्षा ऐसी थी बरसात गरमी शरदी सब सही तथा विश्वामित्रने उनके सौ पुत्र नंदिनी गौ न देनेके कारण तथा ब्रह्मर्षि न कहनेके कारण राक्षससे मरवा दिये परन्तु इन्होंने समर्थ होकर उसके बदले कुछ न किया; परन्तु उनका तप ब्रह्मा, विष्णु, शिव और समस्त ब्रह्मांड यह जानते थे कि जब विश्वामित्रजीने ब्राह्मण होनेके निमित्त बहुत कालतक तप किया; परन्तु अंतको वशिष्ठजीके कहनेसे उनके ब्राह्मण न होनेका यही सिद्धान्त रहा और किसीनेभी इनको

ब्राह्मण न कहा. जब वशिष्ठजीने अपने मुखसे ब्रह्मर्षि कहा, तब इनकी सबके समीप गिन्ती ब्राह्मणोंमें हुई. इनकी भगवान्के चरणोंमें ऐसी प्रीति थी कि इन्होंने ब्रह्माजीसे यह बात सुनी कि पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघनका सूर्यवंशमें अवतार होगा, सो इन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो आनंदसहित सूर्यवंशकी पुरोहिताई स्वीकार की और भगवान्के दर्शनकी लालसासे पुरोहिताईका गर्हितकर्म करना स्वीकार किया इसके उपरांत जब भगवान्का अवतार हुआ तो कभी बालभावसे भगवान्के रूप अनूपको देखकर परमानंदमें मग्न होते थे और कभी भगवान्के चर अचरमें व्यापक समझकर प्रेमके रंगमें रंग जाते थे.

विश्वामित्रजीकी कथा २.

विश्वामित्रजी क्षत्रिये राजा गाधिके पुत्र थे, जब इन्होंने नंदिनी गौके हेतु वशिष्ठजीसे सेनाके सहित दंड पाया और राज्य ऐश्वर्यसे ब्राह्मणोंका प्रताप भगवान्की भक्तिके प्रभावसे विशेष जाना तो इन्होंने राज्यको छोड दिया और भगवान्की भक्तिमें अपना चित्त लगाया. फिर इन्होंने कई लाख वर्षतक ऐसी तपस्या करी कि यह क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये. यह भगवान्की भक्ति और तपका इस प्रकार अभ्यास और प्रताप रखते थे कि यह अपनी तपस्याके बलसे तत्कालही दूसरा ब्रह्मांड रच सकते थे. एक समय इंद्रसे द्वेष करके दूसरा ब्रह्मांड उत्पन्न करनेका संकल्प किया था और अनेक जातिकी सृष्टि उत्पन्न करी थी तो ब्रह्माजीने देवताओंके सहित आकर उनका द्वेष दूर करा था तब यह उस मनोरथसे निवृत्त हुए, इन्होंने जो चीज बनाई थी सो अबतक वर्तमान हैं. त्रिशंकु अयोध्याके राजाको सदेह स्वर्गमें भेज दिया और जब इन्द्रने उसको धरतीपर गिरा दिया तो उसने आकाशसे पुकार करी, उस समय

विश्वामित्रजीने अपनी तपस्याके बलसे पृथ्वीपर उनको न गिरने दिया सो वह अबतक अधोमुख है और फिर इन्द्रको स्वर्गसे निकालनेका मनोरथ किया; फिर जब देवताओंने विनती करी तब छोड दिया. इस प्रकारके चरित्र विश्वामित्रके अनेक हैं और भगवान्के निष्काम भक्त और कर्मशास्त्रके साधन ऐसे थे, कि एक समय कई वर्षके पीछे काल पडा और इनको खानेको कुछभी न मिला, इसके उपरान्त फिर एक चांडालने कोई वस्तु खानेकी इनको दी; तब इन्होंने उसको लेकर अपनी आपत्तिका कारण समझ और फिरभी उसको धारण कर ले आये. फिर स्नान संध्या करके विचारा कि, इसको भगवान्के अर्पण कर और पितृकर्म करके भोजन करें; इस निमित्तसे विश्वामित्रजीने भगवान्का ध्यान किया, तौ इनकी समाधि लग गई और अत्यन्तही वर्षा हुई, उस वर्षासे समस्त वनोंमें हरे २ वृक्ष और भांति २ के फल फूल लग गये और उस मांसकेभी वृक्ष कटैल बटैल उत्पन्न हो गये. इसके पीछे जब विश्वामित्रजीकी समाधि खुली तो उनको यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ, फिर उन्होंने मेवा इत्यादिसे अपनी क्षुधाको निवारण किया. उनका जो प्रेम और प्रीति श्रीरघुनंदनस्वामीमें थी उसका वर्णन कौन कर सकता है कि भगवान् स्वयं उनकी भक्तिभावके वशीभूत होकर उनके साथ गये और उनके यज्ञकी रक्षा करके अपने रूप अनूप और वचनरूपी अमृतसे तृप्त और कृतार्थ करा.

राजा भरतकी कथा ३.

राजा भरत वा जडभरतकी कथा संसारमें विख्यात है किसीसेभी गुप्त नहीं है, इस कारणसे मैं संक्षेपसे लिखता हूं कि राजा भरतने पृथ्वीके ऊपर राज्यकामको नाशवान् जानकर छोड दिया और आप

वनमें जाकर गंडकी नदीके तीर भगवान्‌का आराधन करने लगे. फिर एक समय इन्होंने हिरनकी रक्षा करी जब वह उनके पाससे भाग गया तब इन्होंने उसके वियोगसे व्याकुल होकर प्राण त्यागन कर दिये और हिरणका जन्म पाया. फिर उस योनिको छोडकर ब्राह्मणकी देह पाई. इन्होंने दो वार हिरणके अभ्याससे जन्म पाया, इस कारण किसी पदार्थमेंभी दृष्टि नहीं करी और प्रतिदिन भगवान्‌के भजनमें लगे रहे न तो यह किसीसे बोलते थे और न कुछ किसीसे लेते थे और न किसीको देखते थे. इन्होंने अपना रूप जड बनाया, इसीसे इनका नाम संसारमें जडभरत विख्यात हुआ एक समय इनकी भाभियोंने खेतकी रखवाली करनेके निमित्त इनको खेत-पर बैठा दिया, उस समय भीलोंका राजा कालीको बलि देनेके लिये इनको पकडकर ले गया और खड्ग लेकर मारनेको तैयार हुआ ही था कि इतनेमें दुर्गाने उसी खड्गको लेकर उस दुष्टको उससे मार डाला और अपने दोषकी क्षमा विनती करने लगी एक समय राजा रहूगण दत्तात्रेयजीके आश्रममें ज्ञानके लिये चले जाते थे; तब उनकी पालकीका वाहन थकित हो गया इस कारणसे उन्होंने जडभरतको उसकी जगहमें लगा लिया तो भरतजी चलते समय जीवोंकी रक्षा करनेके निमित्त एक २ पग पृथ्वीपर देख २ कर रखते थे; इस कारण उनका चलना और वाहनोंकी रीतिके अनुसार न हुआ, तो राजा अत्यन्तही क्रोधित हुआ और कहने लगा कि अरे दुष्ट ! तेरा शरीर इतना पुष्ट किस निमित्त हुआ है ? सीधी तरह क्यों नहीं चलता. क्या तुझको मरनेकी अभिलाषा हुई है ? ऐसा शब्द सुनकर भरतजीने ऐसे उत्तर दिये कि उसी समय राजाको ज्ञान हो गया और भरतजीके चरणोंमें गिर पडा और हाथ जोड दण्डवत् कर बहुतसी विनती करी. राजाकी ऐसी अवस्था देखकर भरतजीको

दया आई तब इन्होंने राजाको भगवान्के ज्ञानका उपदेश किया; तब राजा उसी उपदेशसे ज्ञानवान् होकर कृतार्थ हो गया और फिर भरत-जीकी आज्ञासे अपने घर जाकर भगवान्की पूजा तथा उनके स्मरणमें लगा. जिस समय भरतजी परमधामको जाने लगे उस समय इन्होंने योगाभ्याससे देहका परित्याग किया और ऐसे उत्तम पदको पहुँचे कि जहांके गये हुए फिर लौटकर इस पृथ्वीपर नहीं आते. अब विचारना चाहिये कि, किसी वस्तुसे किंचित्भी स्नेह करा जाय तो कितना दुःख देता है.

दोहा–जिन कीन्हा प्रभुका भजन, पाये परमानन्द ।
मिश्र सदा सुमिरन करैं, राधावर व्रजचंद ॥

अलर्कजीकी कथा ४.

राजा ऋतुध्वजजीके बेटे अलर्कजी अनंत भक्त और ज्ञानी हुए. मदालसा इनकी माता थी और वह बहुतसी ज्ञानवान् थी. उसका यह संकल्प था कि जो मेरे उदरमें जन्म लेगा वह फिर जन्म मरण नहीं पावेगा, तब इनके उदरमें अलर्कजी उत्पन्न हुए. इनको भगवान्के धर्मका ऐसा उपदेश किया कि यह घरबारको छोडकर वनको चले गये और भगवान्के भजनमें निमग्न रहे. इसके उपरान्त अलर्कजीके पीछेसे कितनेही पुत्र उत्पन्न हुए. उनकोभी अलर्कजीकीही समान कर दिया. फिर सबसे पीछे सुबाहु जन्मा तब राजाने राज्य देनेके निमित्त मदालसासे मांगा; तब मदालसाने देना स्वीकार तो कर लिया; परन्तु उसको अपने संकल्पका शोच रहा और फिर एक पत्री मंत्रकी समान लिखकर सुबाहुको दे दी और उससे कहा कि बेटा ! जिस समय तुझको अत्यंत कष्ट हो, उस समय इसको खोलकर पढना; तब जो राज्यका भार था सो सब सुबाहुके ऊपर

गया और उसके सुखमें डूब गया, फिर मदालसाने अलर्कजीसे समस्त वृत्तान्त वर्णन करा. यह सुनकर अलर्कजीको सुबाहुके ऊपर अत्यन्त दया और करुणा आई और यही विचार करने लगे कि, किसी प्रकारसे हो सुबाहुको संसारके फंदसे छुटाकर भगवान्‌के सन्मुख करना उचित है, ऐसे विचारकर काशीराजके समीप जाकर आधा भाग राज्यका देना किया और फिर सेनाको जोडकर आये. इसके उपरान्त सुबाहुको युद्ध करनेकी सामर्थ्य न हुई और अत्यन्तही व्याकुल होकर माताके दिये हुए उस पत्रको खोलकर पढने लगा तो उसमें यह लिखा था कि जिस समय तेरे ऊपर बहुत दुःख हो तभी सत्संगति करनी उचित है. यह सब संसार अनित्य है और भगवान् सच्चिदानंद घन एक नित्य है, ऐसे स्वामीको छोडकर पुरुष इस अनित्य संसारके व्यवहारोंमें मन लगाते हैं सो आवागमनकी फांसीमें फँसे रहते हैं और जो भगवान्‌की शरण होते हैं वह मनुष्य परम पदको प्राप्त होते हैं. यह पढकर सुबाहुको उसी समय ज्ञान हो गया परन्तु उसने सत्संगतिको-भी अवश्य जाना इस कारण दत्तात्रेयजीकी सेवा करने लगा, फिर इन्होंने जब सुबाहुका साथ छोडा तो उसको महाज्ञान हो गया और समस्त राजकाजको छोडकर अपने भाई अलर्कजीके पास गया और हाथ जोड विनती करी कि, हे भ्राता! आपकी कृपासे मैं इस संसारसे छूटकर भगवान्‌की शरण हो गया हूं अब आप राजगद्दीपर पधारिये. अलर्कजी यह बात सुनकर बहुतही प्रसन्न हुए और बोले कि मुझको तो राज्यकी इच्छा किंचित्‌भी नहीं है केवल तुम्हारे संसारके बंधनसे छुटानेके लिये यह उपाय करा था, सो अच्छा हुआ कि मेरा उपकार भगवान्‌के स्मरण और भजनके सन्मुख हुआ. अलर्कजीने फिर काशीके राजासे कहा कि सुबाहुने तो राज्यको त्यागन कर दिया. अब सुखसहित राज्य करो.

जब उसने समस्त वृत्तान्त राज्यके त्यागन करनेका सुना और भगवान्की भक्तिका ऐसा प्रताप देखा और वास्तवमें यह संसार नाशवान् विचारा तौ आपभी अपने राज्यको त्यागकर भगवान्की शरण हो गया और भगवान्के भजनमें ऐसा मन लगाया कि समस्त संसारके दुखोंसे छूटकर परमानंदको प्राप्त हुआ.

श्रुतिदेवकी कथा ९.

श्रुतिदेव और राजा बहुलाश्व दोनों परम भगवान्के भक्त और महाज्ञानी अयोध्याजीमें हुए. जिस प्रकार भगवान्ने अपने भक्तोंके निमित्त अवतार धारण किया था ऐसेही आपने उन दोनों भक्तोंके निमित्त एक चरित्र किया. जिस समय जगदीश्वर श्रीकृष्ण महाराज जनकपुरको द्वारिकासे चले और अयोध्यामें आये, तब ब्राह्मण और राजा दोनों पूजा करनेके निमित्त गये और भगवान्के दर्शनोंसे अपने जन्मको सुफल माना और उनके प्रेममें मग्न हो गये. फिर दोनोंने श्रीकृष्ण महाराजसे हाथ जोड प्रार्थना करी कि, हे कृपासिंधो ! आप हमारे घरको चलकर पवित्र कीजिये. भगवान्ने विचारा कि मुझे तौ दोनोंही भक्त बराबर हैं. यदि राजाके घर जाऊं तब तो ब्राह्मण दुःखित होगा; और जो ब्राह्मणके घर जाऊंगा तौ राजा दुःखित होगा इस कारण सब ऋषीश्वरोंके साथ दो रूप धारण करे और दोनों भक्तोंके घर जाकर पवित्र किये और चार मासतक अयोध्याजीमें निवास किया. राजा तौ यह जानता रहा कि भगवान् मेरे घरपर हैं और ब्राह्मण यह समझे रहा कि भगवान्ने केवल मुझेही कृतार्थ किया है, दोनों जने भगवानकी भक्ति और उनकी कृपाको अपने २ ऊपर मानकर सर्वदा मत्तभावसे भगवान्की आराधनामें रात दिन लगे रहते फिर जब भगवान् चलनेको हुए तब भगवान्ने इनको अचलभक्तिका वर दिया.

चौपाई–वेद पुराण कहत यह गाई । भजिये राम सब काम बिहाई ॥

उद्धवजीकी कथा ६.

श्रीमान् उद्धवजी परम भगवान्के भक्त और ज्ञानी हुए. यद्यपि भगवान् कृष्णचन्द्र उनको मंत्री एकांती मित्र, नगीची नातेदार जानकर कृपा करते थे परन्तु यह अपना दासभाव समझते थे. जब ब्रजगोपियोंके समझानेको भगवान्ने ब्रजमें भेजा तो जाकर ब्रजगोपिकाओंको कृष्णवियोगमें विना जलके मछलीकी समान तडफडाते देखकर उन्हें ज्ञानका उपदेश करने लगे, परन्तु ब्रजबालाओंके नयन मन प्राण भगवान्की रूपमाधुरीके अमृतासिंधुमें मग्न थे उनमें उद्धवका उपदेश न लगा और बोली. सोरठा–सब जल मेघ तन श्याम, अधर सुधर मुरली धरे । मोही सब ब्रज वाम, और न जानत ब्रह्म हम ॥ इन वचनोंसे ऊधोजीका ज्ञान तत्कालही लोप हो गया और अपने भाग्यको धिक्कार देने लगे; कि मैं इस ब्रजमें जन्म लेकर गोपवधू क्यों न हुआ. अब विचारना योग्य है कि, जब ऊधोजी गोपियोंके प्रेममें ऐसे लीन हो गये तो कुछभी आश्चर्य नहीं क्योंकि जब आप ब्रजभूषण महाराज उस ईश्वरीय प्रभुतासे कि जिसका ब्रह्मादिकभी पार नहीं पाते प्रेममें ऐसे मग्न हैं कि प्रथम अपने परम धामको छोडकर उनके निमित्त मनुष्यका शरीर धारण किया. फिर उनकी इच्छानुसार उनके सब मनोरथ पूर्ण करे और उन्होंके अनुकूल चरित्र किये सो अबतक वही रीति वर्तमान है कि कैसाही पापी क्यों न हो परन्तु जो कोई उनका चरित्र पढता है अथवा सुनता है उसको संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये ब्रजसुन्दरियोंका चरित्रही ऐसी दृढ नौका है कि कदाचित् बुराई भलाईके समीप नहीं आते. नहीं कह सकता कि कितने महापापी उसकी कृपासे जन्ममरणसे छूट गये और आगेको छूटेंगे. इसके उपरान्त

जब ऊधोजीने व्रजसुन्दरियोंका श्रीकृष्णमें ऐसा दृढ प्रेम देखा तौ अपने ज्ञान और योगको वृथा जानकर मथुराको चले और समस्त वृत्तान्त श्रीकृष्ण महाराजसे निवेदन किया, जब श्रीकृष्ण महाराजने गोपियोंके विरहको सुना तौ उनके प्रेममें व्याकुल हो गये और उनके हृदयसे जलका प्रवाह उमडकर नेत्रोंके द्वारा बहने लगा और वह नेत्रोंसे निकला हुआ जल कपोलोंपर होकर वैजयन्ती और पीतांबर भिजोता हुआ चरणकमलोंतक पहुँचा. फिर जब श्रीकृष्ण महाराज द्वारिकाको छोडकर मथुराको पधारे तौ ऊधोजीने उनके चरणकमल न छोडे और उनके साथ २ गये. फिर जब प्रभासक्षेत्रपर युद्ध प्रवृत्त हुआ तो कृपासिंधुने कृपा कर इनको ज्ञानका उपदेश किया और अपनी भक्तिका वरदान देकर उनको बद्रिकाश्रममें भेज दिया.

वाल्मीकश्वपचकी कथा ७.

एक वाल्मीक श्वपचजाति भगवान्के भक्त और ज्ञानी हुए. जब राजा युधिष्ठिरने इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञ किया तौ इन्होंने भगवान्से पूंछा कि मुझको किसी प्रकारसे प्रगट हो जाय कि मेरा यज्ञ सुफल हुआ कि नहीं. तब भगवान्ने कहा कि जिस समय हमारा शंख आपसेही बज जाय तभी तुम जान लेना कि, यज्ञ सम्पूर्ण हो गया. तब इन्होंने भगवान्की आज्ञानुसार शंखको यज्ञके स्थानपर स्थापित किया. उस यज्ञमें समस्त पृथ्वीके ब्राह्मण ऋषीश्वर, ज्ञानवान् राजा और अवधूत, याचक आदि आये थे. राजा युधिष्ठिरने सबकी इच्छानुसार नमस्कार कर उनको भोजन दान इत्यादि भली प्रकारसे आदर सत्कार किया था और राजा तथा अन्य देवता और मनुष्योंकाभी सन्मान यथायोग्य किया; परन्तु शंख न बजा, तब इनको महा संदेह हुआ और इसका कारण भगवान्से पूछा, कि

हे भगवन् ! मैंने जो यह यज्ञ करा है सो इसमें किसी बातकी त्रुटि नहीं करी है और जितने देवता मनुष्य एकत्रित हुए हैं सबका भली प्रकारसे आदर सत्कार करा है; परन्तु मुझे अब यही संदेह है कि, शंख नही बजता सो हे कृपानाथ ! मेरे ऊपर कृपा कर इसका कारण कहिये. तब भगवान् बोले कि इस तेरे यज्ञमें कोई भगवान्का भक्त नही आया. राजाने कहा कि महाराज ! यज्ञमें तो समस्त देशोंके ऋषि और ब्राह्मण आये सो क्या उनमेंसे कोई तुम्हारा भक्त नहीं आया होगा ? तब भगवान्ने कहा कि उन ऋषीश्वर और ब्राह्मणोंसे पूंछना चाहिये. राजाने उसी समय एक २से पूछना आरंभ किया परंतु किसीने तो यह कहा कि मैं पंडित हूं और किसीने कहा कि मैं वेदपाठी हूं और किसीने कहा कि मैं ब्रह्मवादी हूं और किसीने अपनी आत्माको कर्मनेष्ठी बताया; पर भगवतउपासक किसीनेभी न कहा. तब तो राजा द्रौपदी अर्जुन इत्यादिने भगवान्से पूछा कि महाराज ! वह कौनसा भक्त है सो प्रगट कहो. तब तो भगवान्ने वाल्मीकि श्वपचको बताया; यह सुनतेही अर्जुनादि भाई उनके घरपर गये और दंडवत् कर उनसे कहा कि महाराज ! हमारे घरपर चलिये. वाल्मीकिजीने प्रथम तो इनके साथ चलनेको मना किया; परंतु जब देखा कि यह किसी प्रकार नहीं मानते तो इनके साथ चल दिये और फिर राजाके घरपर आये. राजा युधिष्ठिरने उनको देखतेही दंडवत् करी और उसी समय खडा हो गया, फिर भली प्रकारसे आदर सत्कार करके उनको बैठाया. द्रौपदीने स्वयं अपने हाथसे भोजन तैयार करा और थालमें परोसकर उनके समीप लाई. फिर जब वाल्मीकजीने भोग लगाया तो शंखमेंसे कुछ थोडासा शब्द हुआ फिर भगवान्ने शंखपर एक छडी मारी और बोले कि अब धीरे २ क्यों बोलता है ? तब शंखने प्रार्थना करी कि

हे भगवन् ! इसका कारण द्रौपदीसे पूछना चाहिये. द्रौपदी हाथ जोडकर बोली कि इस बातमें मेराही अपराध है कि मैं जितने भोजन वाल्मीकजीके लिये पृथक् २ करके लाई थी, सो इन्होंने सबको मिलाकर एक साथही उनका जो भोग लगाया तो यह देखकर मुझको घृणा आई और मैंने विचारा की वाल्मीकजी किसी भोजनका स्वाद कुछभी नहीं जानते जो कि यह सबको मिलाकर खाते हैं तब भगवान्ने कहा कि, आजसे अगाडीको भूलकरभी कभी किसी भगवद्भक्तसे ग्लानि और उसके कर्मपर दृष्टि न करना भगवान्ने फिर शुद्ध मनसे उसको भोजन कराया तो शंखने अत्यन्तही शब्द किया और राजाका यज्ञ पूर्ण हुआ और उस शंखका शब्द और भगवान्के भक्तोंका प्रताप समस्त संसारमें पहुँचा और भजनभावकी रीति प्रचलित हुई. किसीने सत्य कहा है कि " हरिको भजे सो हरिका होई. । जात पात पूछे नहिं कोई ॥ " महाभारतमें भगवान्ने कहा है कि, जो चारों वेदोंका जाननेवाला है; परन्तु वह मेरा भक्त नहीं है तो मैं उसको नहीं प्राप्त होता और जो मनुष्य चांडाल और नीच है और वह मेरी भक्ति करता है तो वह मेरा प्यारा है. उसकोही देना चाहिये और वही मिलनेके योग्य है. उसीका पूजन श्रेष्ठ है जैसे कि मेरा.

दोहा—नारायणके प्रेममें, जात न बूझत कोय ।
सकल जीवमें प्रेमसे, भजे जो उनका होय ॥

ज्ञानदेवजीकी कथा ८.

ज्ञानदेवजी परम भक्त विख्यात हैं. जिनके चेले नामदेवजी और त्रिलोचनजी सूर्य और चंद्रमाकी समान हुए थे. उनकी कविताई सरस्वती और गंगाजीकी समान जगत्को पवित्र करती है. आचार्य

और भगवान्के भक्तोंको आसरा और आनंदकी देनेवाली भगवान्में और उनके भजन कर्ममें प्रीति करनेवाली है. ज्ञानदेवजी अपने घरको त्यागन कर किसी संन्यासीके पास गये और कहा हमारे स्त्री नहीं है हम संन्यास लेंगे, यह कह संन्यासी हो गये. तब स्त्री उनके पीछे २ आइ और जिस संन्यासीने इनको चेला करा था उससे बहुतही झगडा करके फिर इनको अपने साथ घरपर ले आइ. तब इसकी बिरादरीके ब्राह्मणोंने इसको जातिसे बाहर कर दिया और कहा कि तेरा स्वामी तो संन्यासी हो गया था, फिर तैंने इसको अपने घरमें रख लिया है इस कारण अब तू हमारी जातिमें नहीं मिल सकती. तब वह अलग रहने लगी और उसके तीन लडके उत्पन्न हुए. एक तो ज्ञानानंदजी सबके बडे थे. इनकी प्रथमसेही महाराज श्रीकृष्णमें अत्यन्त प्रीति थी, जब यह ब्राह्मणोंके पास वेद पढनेको गये तो किसीनेभी इनको न पढाया और कहा कि तू तो जातिसे बाहर है इसी कारणसे हम तुमको नहीं पढा सकते और तुझको वेद पढनेकाभी अधिकार नहीं तब ज्ञानदेवजीने कहा कि कुछ यही निश्चय नहीं है कि ब्राह्मणकोही वेद पढाया जाय. वेदको तो समस्त पशु पक्षीभी पढते हैं और उसमें विशेषताभी यह है कि उस वेदको भगवान्के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं जान सकता और वह सब है और समस्त जगहही वर्तमान है, यह कहकर एक भैंसेसे कहा कि तू वेद पढ भैंसेने तत्कालही वेदका पढना प्रारंभ किया और जो चंद्रशाखाकी सिंहिता किसी ब्राह्मण-कोभी याद न थी, वहभी पढकर सुनाई जब उन ब्राह्मणोंने यह चरित्र देखा तो समस्त भगवान्की भक्तिका इष्ट करने लगे और ज्ञानदेव-जीके चरणोंमें गिर पडे तब फिर ज्ञानदेवजीने दानकर उनको भगव-द्भक्तिका मार्ग बताया.

दोहा–हरिभक्तनके सामने; चलत न हठकी बात ।
उनके वचन गहो सदा, सुख पावहु दिन रात ॥

लड्डुस्वामीकी कथा ९.

लड्डुस्वामी परम भागवत भगवतरंगमें रंगे हुए थे और सबमें उसी भगवान्के स्वरूपका चिंतवन करनेवाले हुए. सुखदुःखोंसे रहित अनेक देशोंमें क्रीडा करते फिरते थे. यह एक समय किसी ऐसे नगरमें जा पहुँचे कि जहांपर भगवान्की भक्तिका चिह्नभी न था और वहांके मनुष्य दुर्गादेवीकी प्रसन्नताके लिये मनुष्य मारा करते थे. उन्होंने लड्डुस्वामीको जो रुष्ट पुष्ट देखा तो इनको कालीके बलि देनेके निमित्त पकडकर ले गये. जो भगवान् अपने भक्तोंकी सहायताके निमित्त सर्वदा भक्तोंके साथ २ रहते हैं उन्होंने लड्डुस्वामीके ऊपर अपना प्रेम दिखाया. लड्डुस्वामीके मनमें तो दुर्गाभी भगवान्काही स्वरूप थी इस कारण कालीकी प्रतिमा वहांसे गुप्त हो गई और उसी समय दुर्गाजीने प्रगट होकर समस्त दुष्टोंको अपने खड्गसे मार डाला और भगवान्के भक्तके दर्शन कर अत्यन्तही प्रसन्न हुई और भगवान्की भक्तिका प्रताप दिखानेके निमित्त सबके समीप नृत्य किया और लड्डुस्वामीके चरणोंमें दंडवत् करी. जब वहांके रहनेवाले समस्त मनुष्योंने जो यह चरित्र देखा तो उन्होंनेभी तत्काल भगवान्की भक्ति करनी धारण कर ली.

नारायणदासजीकी कथा १०.

नारायणदासजी उत्तर दिशामें बद्रिकाश्रमके समीप परम भागवत नारायणस्वरूप हुए और उनको भगवान्की भक्तिमें अत्यन्त प्रीति हुई. उनका मन तो सर्वदा भगवान्के स्वरूपके चिंतवनमें

मग्न रहता था और जिह्वापर सर्वकाल भगवान्‌के चरित्र और नाम थे. अब भगवान्‌की भक्तिका प्रचार और चरित्रोंका गुप्त भाव कहते हैं. वह ऐसे हुए कि आप साक्षात् नारायण बद्रिकाश्रमनिवासीने संसारके उद्धारके निमित्त अवतार धारण किया है. वह भगवान्‌के भक्तोंकी सेवा भगवत्सेवाकी समान जानकर किया करते थे; एक समय वह बद्रिकाश्रमसे मथुराके दर्शन करनेके निमित्त आये और केशव देवजीके दरबारमें रहना प्रारंभ किया. एक दिन इन्होंने यह विचारा कि, मनुष्य केशवदासजीके दर्शन करनेके लिये आते हैं तौ उनको यह चिन्ता रहती होगी कि कहीं कोई हमारी उपानहको चुराकर न ले जाय इस कारण आपने उनकी चौकसी करनी प्रारंभ करी और जो मनुष्य उनकी महिमा और प्रतापको नहीं जानते थे उन्होंने सेवा करनेको निषेध न किया आनंदसहित उनसे अपनी सेवा कराते रहे, एक दुष्ट मनुष्यने बहुत सारे बोझेकी एक गठरी उनके शीशपर रख दी और उनको किसी ओरको ले चला. नारायणदासजी तौ दुःख सुख मित्रशत्रुको एकसाही जानते थे. उनको यहभी सुधि न हुई कि इसमें कितना बोझ है, वह उसको लेकर चले. मार्गमें जाते हुए किसी आदमीने उनको पहचान लिया और हाथ जोड साष्टांग दंडवत करी और उनकी ऐसी अवस्थाको देखकर अत्यन्तही दुःखित हुआ, फिर जब उस मनुष्यने जिसने कि उनके ऊपर बोझा धरा था यह चरित्र देखा तौ अत्यन्तही लज्जित हुआ और उनके चरणोंमें गिर पडा. फिर उनसे अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना कराने लगा तब नारायणदासजीने कहा कि, तुम किस कारणसे चिन्ता करते हो. मनुष्यका शरीर जब दूसरेके काममें आवे तभी उत्तम है. यदि जो कुछ इस मेरे शरीरसे आपकी सेवा हुई अथवा होगी तो अत्यन्तही प्रसन्नताकी बात है. तुम किसी कारणसेभी

अपने मनमें दुःख न मानो तब वह मनुष्य पृथ्वीपर शिर रखकर रोने लगा और बहुतही विनती कर उनके चरणोंमें गिर पडा. तब नारायणदासजीने उसको भगवान्‌की भक्ति करनेका उपदेश दिया और एक क्षणमेंही उसको सम्पूर्ण पापोंसे निवृत्त कर दिया. भगवान्‌के भक्तोंको निश्चयही सब सामर्थ्य है वह जो इच्छा करे सो कर सकते हैं. यदि किसीको ऐसा विश्वास हो कि, इतने कंगाल मनुष्यपर इतनी कृपा किस कारणसे करी तो अब विचारना योग्य है कि भगवान् अपनी दृष्टिसे सबको बराबरही देखते हैं जिस प्रकार गाली देनेवाला वा स्तुति करनेवाला एकसाही है. इसी प्रकार भगवद्भक्तकी कृपा सबपर बराबरही होती है.

दोहा-क्यों न भजत भगवान्‌को, रे मन जगत विसार ।
मिठा और हरिविन नहीं, जग निरवारनहार ॥

कन्हरदासजीकी कथा ११.

कन्हरदासजी परम भगवान्‌के भक्त और भजनानंद हुए इनको भगवान्‌के भक्तोंकी कृपासे भगवान्‌के स्वरूपका आनंद प्राप्त हुआ इन्होंने अपने गुरुजीसे भगवान्‌की भक्तिका मार्ग उत्तम रीतिसे जान लिया था इस कारण इन्होंने संसारके सब धर्म कर्म छोड दिये और इन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीको भगवत्स्वरूपही समझ लिया. जैसे लोग कहते हैं कि, चंद्रमा इस डालीपर है और चंद्रमा उस डालीपरसे लाखों कोस है. इस प्रकार कन्हरदासजी संसारके कहनेके निमित्त समीप और निश्चयही संसारसे पृथक् थे. वह कभी किसीको बुरा भला नहीं कहते थे. वह सर्वदाही अपने मुखसे भगवान्‌के चरित्र कीर्तन किया करत थ,

पूर्णदासजीकी कथा १२.

पूर्णदासजीकी महिमाको कौन वर्णन कर सकता है कि, जिन्होंने हिमाचल पर्वतपर गंगाजीके किनारे योगकी रीतिसे भरोसा करके समाधि लगाकर भगवान्के ध्यानमें मन लगा और फिर उस सघन जंगलमें सिंह, रीछ इत्यादि भयके देनेवाले जीव जन्तुओंका कुछभी भय न माना और अपने प्राणोंकोभी शरीरसे बाहर न जाने दिया. इसीसे उन्होंने अपना अंतःकरण भगवान् परब्रह्ममें लीन करके जन्ममरण अपने आधीन कर लिया. साखी और शब्द, पदअभ्यास निर्वान उपासनाके उनके बनाये बहुत विख्यात हैं.

रागकालिंगडा ।

निरखत रूप सियारघुवरको छबि नहीं जात बखानी ।
आरती करत कोशल्यारानी ॥
कनक थार गजमाणिक मुक्ता भऱ्यो सुवेद विधानी ।
माऱ्यो मान सकल भूपनको महिमा वेद बखानी ॥
तोरण धनुप जनक गुणपूरण तीन लोकमें जानी ।
जनकरायकी लज्जा राखी परशुराम हित मानी ॥
सुरपुर नार अवधपुरवासी करत विमल यश गानी
नचत नवल अप्सरा मुदित मन वरष सुमन हरषानी ॥
रत्नमंदिरमें रत्न सिंहासन बैठे शारंगपानी ।
मात कोशला करत आरती हरष निरख मुसकानी
दशरथसहित अवधपुरवासी उचरत जै जै वानी ।
तुलसिदास यह अविचल जोरी भक्त अभयपद दानी ॥

अथ

सोलहवीं निष्ठा मूलवैराग्यशांति ।

(इसमें चौदह भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी विंदुरेखाको दंडवत् करके फिर श्रीनारायण अवतारको प्रणाम करता हूं कि जिन्होंने बद्रिकाश्रममें अवतार धारण करके तप और शांतिका अधिकार प्राप्त किया है. इसी कारणसे प्रथम तो वैराग्यका स्वरूप और पीछे इसके शांतिरसका वर्णन इस निष्ठामें होगा. यह तो समस्तही छोटे बडे मनुष्य जानते हैं कि विना भगवान्की भक्ति किये भगवान् प्राप्त नहीं होते और मन एकत्व उस अवस्थामें होता है कि जब सब कामोंसे पृथक् हो. जिस प्रकार गीतामें भगवान्से अर्जुनने पूछा था कि मनका रोकना ऐसा कठिन है कि जिस प्रकार कोई पवनके रोकनेका संकल्प करे; कारण कि मन तो चंचल है और बलिष्ठ है तथा दृढ हठी है. तब उसका उत्तर भगवान्ने दिया कि हे अर्जुन ! वैराग्य और अभ्याससेही मन जीता जाता है; इसके कर्मफलका त्याग वैराग्यका मुख्य साधन है. सो उस वैराग्यका स्वरूप कुछ थोडासा यह है कि सार मूल अथवा सत्यका ग्रहण करना और असारको त्यागन करना. व्याससूत्रमें वैराग्यके दो भेद हैं. प्रथम तो अपर उसको बसीकारभी कहते हैं, उसका स्वरूप यह है कि जितनेभी स्वाद इस संसारके दृष्टिमें आते हैं और जितना वेद और शास्त्रोंमें लिखे हुए मिले हुए स्वभाव और सुख स्वर्गता ब्रह्मता आदि हैं उससे वैराग्य करना है. यद्यपि सूत्रसे इस व्याख्याका अर्थ प्रगट नहीं होता, परन्तु तात्पर्य सूत्रका चार प्रकारके निर्णयपर है. पहले यतिमान अर्थात्

सार और असारके विचार और फिर उनके त्यागन करनेकी रीति; दूसरे व्यतिरेक यह मनन करना कि इतना औगुण अंतर बाहरका मिट गया बाकीकोभी त्यागना. तीसरे इन्द्र अर्थात् जितने इस संसारके स्वाद तथा जो सुख दुःख इत्यादि देखते हैं उनकी ओरसे ऐसा मनको रोकना चाहिये कि फिर वह मन कभी उनकी ओरको न जाय चौथा वशीकार सुख और स्वादकी इच्छा कुछभी न रखना दूसरी अवस्था पर है इसका विशेष निर्णय नहीं है. स्वरूप यह है कि मायासे लिप्त हुए तीन गुणको छोडकर भगवद्भजन करना. और जिसको सार असारका विचार नहीं है वह सम्पूर्ण पदार्थोंको छोडकर यदि वनमें चले जांय तो वह वनभी उनको हजारों संसारकी समान है और फिर बुद्धिमान्को यहभी उचित है कि सार और असारके विचारनेसे तथा गृह कुटुम्बके त्यागन करनेसे मेरा मन शुद्ध होकर भगवत्स्वरूपका प्रकाश हृदयमें जिस प्रकार प्रगट हो जाता है. उसे उसी प्रकार परोक्ष और अभूत बातका जानना और सच्च बोलना और मनके चाहनेवाली वस्तुका कि जो अणिमादिक आठ सिद्धि हैं; सो अधिक हो जाताहै जब विरक्तका मन उन सिद्धियोंकी ओर लग गया तो निश्चयही बिगड गया. फिर उसका ठिकाना लगना कठिन है; इसके पीछे फिर उस समय ऐसा मनको खैंच ले कि अधोमुख विचार किसी सिद्धिका न हो और ऐसा त्याग करना उचित है कि फिर कभी भूलकरभी उसकी ओर दृष्टि न करे यदि जो उस समयमें सावधान हो गया तो शीघ्रही अपनी इच्छाको प्राप्त होगा और जो लूटनेवालीने लूट लिया तो पाताललोकको गया. यद्यपि शांत रसका स्वरूप वैराग्यमें प्रगट होता है; परन्तु उपनिषद् और रसशास्त्रोंके अनुसार शान्तरस पृथक् निश्चै हुआ है. इस निमित्त मर्यादाके अनुसार उस शांतिका वर्णन लिखा जाता है.

एक २ रसके उत्पन्न होनेको चार सामग्री हैं. विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्याभिचारी लिखि गई हैं, सो इस रसमें शान्तरसके समान विभावमें जो भगवान् सब मंगल और आनंदकी खान और अगणित ब्रह्मांडोंके ईश्वर और उत्पन्न करनेवाले और असंख्यात ज्ञान और वैराग्य तथा आनन्दको देनेवाले, जिनका नाम सम्पूर्ण पापोंसे छुटानेवाला है. वह सब कुछ जाननेवाले, भूत और भविष्य तथा वर्तमान परमानंदकी प्राप्ति करानेवाले गुणोंकी राशि जिनकी बराबर वा जिससे विशेष वा समान कोई नहीं; सो पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद भगवान् अपना इष्टदेव तो विषयालम्बन है शिव सनकादि नारद वा दूसरे भक्त आश्रयावलंबन हैं, दूसरी सामग्री अनुभाव, नासाग्रपर दृष्टि रखनी. सब ओरसे मन खैंचकर दुःख सुखका त्याग करना तीसरे सात्विकके जो आठ भेद हैं; उनमेंसे एक दशा मूर्छाकी नहीं होती और जो शेष रही सो अपनी २ दशापर समय २ पर दृष्टिमें आती है. अब चौथी व्याभिचारीमेंसे स्मृति निर्वेद इत्यादि कई दशा इस रसमें किसी समय उत्पन्न होकर जाती रहती हैं. स्थायीभाव इस रसका वह है कि सबमें बराबर दृष्टि हो और ब्रह्मलोकके सुखकीभी इच्छा न हो- जिन भगवान्के भक्तोंको वैराग्यकी प्राप्तिके पीछे शांतरसमें दृढ स्थि. तिका संयोग पहुँचा; मूल उनके चिह्न यह हैं कि किसी जीवसेभी वे शत्रुता नहीं रखते. सबके मित्र और सबपर दया करनेवाले होते हैं. अभिमानके वश न होकर सुखदुःखको बराबर जानते हैं. सहन- शीलता सब ओरसे चित्त संतुष्ट भगवान्के ध्यानमें सब ओरसे बुद्धिसे भगवान्को समझनेवाला, निरन्तर मन लगा हुआ, भगवा- न्के चरणोंमें लय लगाये हुए किसीकोभी उनसे दुःख नहीं पहुँचता और न आपही किसीसे दुःखित होते हैं. क्रोध और डरसे जो अनेक प्रकारकी चिन्ता इस मनमें उत्पन्न होती हैं; उनसे छूटे हुए न तो

कभी प्रसन्नही होते हैं और न कभी दुःखि होते हैं और न किसी बातका शोच करते हैं और न किसी कामकी इच्छा है. मनको केवल एकाग्र किये भलाई बुराईसे पृथक् रखते हैं. बुद्धि पवित्र मित्र शत्रु दोनोंहीको बराबर जाननेवाले; निश्चयही संसारके काम और उसके अधीन काम करनेसे पृथक् मान, अपमान, निन्दा, स्तुति, दुःख सुख धूप, शीत, संसारके समानही मानते हैं और क्षुधा दूर करनेके निमित्त थोडेसे संतुष्ट होते हैं. घरबार आदिसे पृथक् रहते हैं, यह कुछ श्लोकोंका टीका लिखा है. और वैराग्य और शांति रसकी महिमा लिखनेमें नहीं आती. जिसको अभिलाषा सुनने और जाननेकी हो तौ वह एक २ पुराणसे निश्चय कर सकता है हे रघुनंदनस्वामी! कहां तौ मैं और कहां शान्तरसकी पदवी? आपकी कृपासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है, कि एक क्षणमें वह मच्छरको तो ब्रह्मा कर दे और ब्रह्माको मच्छर कर दे और खसको वज्र कर दे, वज्रको खस कर दे ऐसी उसमें सामर्थ्य है; परन्तु जब मैं अपने पाप और नष्ट कर्मोंकी ओर देखता हूं तो किसी कामकीभी अभिलाषा नहीं कर सकता जो अब वैराग्य और शांतिकी इच्छा करूं. जो यह जाना जाता है कि उस स्वरूप अनूप और समाज चिंतवन किस कारणसे न करूं कि जिसके ज्ञान और वैराग्य दोनोंही दास हैं कि उस समाज और उस सुंदर रूप अनूपके चिंतवनमें मेरा मन लगा रहे, जो कि चित्रकूटके समीप मंदाकिनी नदीके किनारेपर एक वृक्ष अत्यन्त शोभायमान है और उसके घेरे चंपा, मौलसिरी, पीपल, कदंब, तमाल इत्यादि बहुतसे वृक्षोंपर झुंड इधर उधर हरे २ हो रहे हैं और फिर उन वृक्षोंपर अत्यन्तही सुगान्धित लतापुष्पोंके गुच्छे लटक रहे हैं. उसके बीचमें चार वृक्ष आम, कदम्ब, ताल और तमालके हैं और उन चार वृक्षोंके बीचमें एक वृक्ष बरगदका है. उस वृक्षके नीचे

इन्द्रादिक देवताओंने भीलरूप बनकर अत्यन्त शोभित एक कुटी तयार की है और उस कुटीके आगे एक अत्यन्तही मनोहर गोल चबूतरा बांधा है. उसपर अखिल ब्रह्मांडेश्वरी श्रीसीता महारानीने अपने हाथसे बुहारी दी है और उसको स्वच्छ करा है. फिर उसके ऊपर देवता इत्यादिक विराजमान हो रहे हैं. उसके चारों ओर फूल आदि नाना प्रकारकी चमेली, रायबेली. मरुआ, मदनबाण और नाफरमान आदिकी शोभा उसमें मिल रही है कि जिस ओरको दृष्टि जाती है, तो उसी ओरकी शोभा देखनेमें मन अटक जाता है उसके बीचमें संपूर्ण शोभाके धाम श्रीरघुनन्दनस्वामी शांतस्वरूपसे बैठे हैं कि जिनके मुखकी शोभाके समान नीलमणि और चन्द्रमाकी शोभाभी फीकी है. मुनियोंका भेष बनाये हुए जटा मुकुट शिरपर शोभित है और उसमें भांति २ के फूल जगह २ सीताजीने गूंथे हैं. कानोंमें और हाथोंमें फूलोंके आभूषण और गलेमें फूलोंहीकी वनमाला. शोभित है और अंगपर बागा विराजमान है और वाम अंगमें श्रीजनकनंदिनी सीताजी विराज रही हैं और दाईं ओर लक्ष्मणजी शस्त्र बांधे हाथ जोडे हुए खडे हैं और चारों ओर मुनिगण विराज रहे हैं और प्रश्नोत्तर हो रहा है.

दोहा-लसत मंजु मुनिमंडली. मध्य सीय रघुचंद ।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानंद ॥

रंतिदेवजीकी कथा १.

रंतिदेवजी राजा दुष्यंतके वंशमें ऐसे परम भक्त हुए कि इन्होंने राज्य करनेके समय जो कुछ धन था, वह समस्तही खर्च कर दिया और फिर अपने राज्य और संसारको त्यागन कर दिया और वैरागी होकर वनमें जाकर भगवान्का भजन करने लगे; उस समयभी जो

कुछ मिलता था सो सबही भूंखे तथा याचकोंको दे देते थे. एक समय इनको ४८ दिनके पाछे थोडासा अनाज भगवान्की इच्छासे मिला इन्होंने उसके तीन विभाग करे फिर भगवान्को भोग लगाया. जब भोजन करनेको हुए उसी समय एक ब्राह्मण आ गया और उसने कहा कि मैं भूंखा हूं, राजाने उसको उसी समय बांट दे दिया. उसके पीछे एक शूद्र आया और उसनेभी भोजनकीही इच्छा करा, तब राजाने उसको अपने लडकेका विभाग दे दिया; फिर उसी समय एक म्लेच्छ आया और उसनेभी भोजनही मांगा तो राजाने अपनी स्त्रीका हिस्सा उसके अर्पण कर दिया और आप फिर आनंद-सहित भगवान्का भजन करने लगा. जब भगवान्ने देखा कि इसमें इतनी दया और भक्ति है कि अपना स्त्रीपुत्रोंका भोजन भूंखोंको बांट दिया यह देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उसी समय अपना स्वरूप प्रगट कर उसको दर्शन दिया और कहा कि जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग; तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी. राजाने हाथ जोड विनती करी कि हे भगवन् ! आपकी भक्तिके अतिरिक्त और मुझको कुछभी इच्छा नहीं है सो कृपा कर भक्तिका वरदान मुझको दीजिये और जो यह समस्त संसार अनेक प्रकारके पाप और दुःखोंसे लिप्त हो रहा है; सो यह उनका दुःख मुझे मिले और यह सुखी हो. सब पाप और कर्म मेरे निकट हो और जो कुछ मेरे भागका सुख और पुण्य हो उसमेंसे सबको मिले. भगवान् यह परोपकारता देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उसको ऐसा उत्तम पद दिया कि जो योगियोंकोभी मिलना कठिन है. विचार लो कि जो मनुष्य भगवान्के भजनसे विमुख हैं उनको समस्त संसारके सुख और द्रव्य दुःखरूप हो जाते हैं और जो भगवान्के भक्त हैं और उनका भजन करते हैं उनको पापभी सुखकी समान और पुण्य परमानंदके देनेवाले होते हैं.

दोहा–रन्तिदेवके नाम गुण, भक्तनको सुखदान ।
पढहिं सुनहिं जो प्रेमसे, पावहिं मोद महान ॥

परशुरामजीकी कथा २.

परशुरामजीने अपनी भक्तिके प्रतापसे जंगल देशके जंगली मनुष्योंको इस प्रकारसे सत्संगी और पार्षदरूपी कर दिया कि जिस प्रकार चंदनके पेडकी पवन सब वृक्षोंको चन्दन कर देती है. अथवा जैसे बहुत दिनोंका अंधकार दीपककी ज्योतिसे नाशको प्राप्त हो जाता है. श्रीभट्टजी और हरिव्यासजीका जो परंपरा मार्ग था यह उसीपर चलते थे. इनको भगवान्‌की कथा तथा कीर्तनका ऐसा नेम था कि उन्होंने हजारों मनुष्योंको भक्त कर दिया. उनकी जिह्वापर सर्वकाल भगवान्‌का नाम रहता और भगवान्‌की भक्ति तथा तिलक मालाकी प्रवृत्ति की. इनको राजधानीमें रहनेके कारण सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त था परन्तु इनको संसारके समस्त कामोंमें इतना वैराग्य था कि वह सबकोही नश्वर जानते थे. उनका कहना यह था कि.

दोहा–माया सगी न मन सगा, सगा न यह संसार ।
परशुराम या जीवका, सगा सो सिरजनहार ॥

किसी साधुने जब यह दोहा सुना तो प्रश्न करनेके निमित्त गये और परशुरामजीसे बोले कि, जब आपको भगवान्‌में इतनी प्रीति है तो इस धन और मालसे क्या लाभ है? भगवान्‌का भजन तो एकांतमें करना उचित है. परशुरामजी शीघ्रही उस साधुके मनका अभिप्राय जान गये और उसी समय समस्त घरवारको त्यागन करके कोपीन बांध ली और एक गुफामें जा बैठे और भगवान्‌के भजनमें लिप्त रहे. एक दिन वहांपर बनजारा आया और उसने अगणित द्रव्य और पालकी आदि समस्त समान भेंट करा

साधुने समझ लिया कि परशुरामजीको किंचित्भी धन मालकी इच्छा नहीं उनके पास आपसे आप आता है. परशुरामजीके पैरोंमें गिर पडा और अत्यन्तही लज्जित होकर विनती करने लगा कि महाराज! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये. मैं अज्ञानतासे आपका प्रताप नहीं जानता था, अब मैं आपकी महिमाको जान गया कि निश्चयही जो भगवान्के भक्त हैं उनको धन इत्यादिकसे कुछभी प्रयोजन नहीं रहता. वह जितनाही धन भगवान्के भजनमें लगाते हैं उससे दुगुना धन द्रव्य उनको प्राप्त होता है. भगवान्के भजनका ऐसा प्रताप है.

रांकाबांकाकी कथा ३.

रांकाजी परम भगवान्के भक्त और वैराग्यवान् हुए और उनकी स्त्री बांकाजीभी विशेष भक्तिमान् थी. पंढरपुर ग्राममें उनका स्थान था. यह वनसे लकडी काटकर लाते और अपना निर्वाह करते थे. इनको दिनरात भगवान्के भजनके सिवाय और कुछभी काम न था. एक दिन नामदेवजीने भगवान्के चरणोंमें प्रार्थना करी कि मुझको बडाही संदेह है कि रांकाबांका भगवान्के भक्त अत्यन्तही दरिद्री हैं, काष्ठको बेंचकर अपना निर्वाह किस प्रकारसे करते हैं. तब भगवान्ने कहा कि वे कदाचित्भी किसीका द्रव्य ग्रहण नहीं करते हैं. यदि तुमको विश्वास न हो तो चलकर अपने नेत्रोंसे देख लो. यह कहकर नामदेवजीको साथ लेकर वनमें गये और जिस मार्गसे रांकाबांका लकडी लेनेको जाते थे उसी मार्गमें एक मोहरोंकी थैली डाल दी. रांकाजी जब लकडी लेकर आ रहे थे तब उसकी नजर उस थैलीपर पडी तो उन्होंने विचारा कि पीछे स्त्री आ रही है, ऐसा न हो कि वह लोभके वश होकर इसको ग्रहण कर ले, इस कारण उसपर पृथ्वीपरकी

धूलि डाल दी जिससे कि स्त्रीकी दृष्टि न पडे. जब स्त्री रांकाजीके समीप पहुँची तो रांकाजीसे बोली कि तुम धरतीमें क्या देखते थे ? रांकाजीने समस्त वृत्तान्त वर्णन किया तब स्त्रीने पूछा कि महाराज ! मोहर और धूलिमें कितना अंतर है और धूलपर धूल गेरनेका क्या आशय है ? यह बात सुनकर रांकाजी अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उसी दिनसे स्त्रीका नाम बांका रक्खा और बोले कि हे प्रिये ! तेरे वैराग्यने तो मेरे वैराग्यपरभी धूलि डाल दी. तब भगवान्‌ने नामदेवजीसे कहा कि देखा कितना वैराग्य दोनों भक्तोंका है; इसके उपरान्त फिर परीक्षाके निमित्त भगवान्‌ने और नामदेवजीने मिलकर बहुतसी लकडी इकट्ठी कर उसका बोझ बांधकर उसी वनमें रख दिया. जब रांका बांका लकडी लेनेको आये तो उन्होंने इस ढेरको बांधे हुए देखा तो देखातकभी नहीं कारण कि यह पराये मनुष्यका है, और खाली हाथों घरको चले आये. फिर विचारने लगे कि देखो आजही मोहरें देखीं थी सो उनका यह फल हुआ कि आज लकडी-भी न मिली और जो यदि मोहरोंको हाथ लगाया जाता तो नहीं कह सकता कि जाने क्या होता. भगवान्‌ने वह इकट्ठी करी हुई लकडी रांकाजीके घर पहुँचा दी और फिर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया. रांकाजीने जब वह अत्यन्तही मनोहर रूप अनूप देखा तो उन्मत्त हो गये, उनको कुछभी ज्ञान न रहा. अंतको उन्होंने भगवान्‌के प्रसादको भगवद्रूपही जानकर ग्रहण किया पीछे उन रांकाजीने नामदेवजीसे कहा कि हे महाराज ! इस शोभाके धाम परम सुकुमारको वनमें ले जाना और दुःख देना तुमको किस प्रकार अच्छा लगा था. अब विचारना योग्य है कि नामदेवजी और रांकाभी दोनोंही भगवान्‌के बालरूपके उपासक थे; तो भगवान् उनकी प्रीतिके अनुसार उनपर प्रगट हुए.

रघुनाथ गुसांईकी कथा ४.

रघुनाथगुसांईकी भक्ति और भाग्यकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है कि जिनकी सेवा स्वयं भगवान्‌ने करी थी और सर्वदाही भगवान् इनकी इच्छाके अनुसार इनके समीप रहे और उत्कलदेशमें उडीसा शहरके बसनेवाले थे और इनके पास बहुतसा धन और द्रव्य था. इन्होंने सबकोही नाशवान् जानकर छोड दिया और आपने जगन्नाथपुरीमें निवास किया. उनके पिता उनके लिये बहुतसा धन माल भेजते थे परन्तु वे कुछभी नहीं लेते थे. वह तो केवल भगवान्‌केही दर्शन कर अपनेको कृतार्थ मानते थे और अपने गुरुकी सेवा किया करते थे. श्रीजगन्नाथस्वामीके दर्शन करके उष्ण शीत इन सबसे पृथक् रहते थे अर्थात् इनको उष्ण शीत वर्षा कुछभी नहीं व्यापती थी. एक दिन इनको शरदृऋतुमें शीत मालूम हुआ तो जगन्नाथस्वामीने कृपा कर इनके लिये बनात दुशाला इत्यादि गरम वस्त्र दिये; फिर एक दिन कुछ रोगग्रासित हुए तो जगन्नाथजीने जिस प्रकार माधोदासजीकी चाकरी करी थी उसी प्रकार इनकी सेवा की. गुसांईजीके गुरुने वृन्दावनमें निवास करनेकी आज्ञा दी; सो यह वृन्दावनमें आये और राधाकुंडपर विश्राम किया और यह सर्वदाही भगवान्‌का मानसी पूजन किया करते थे. भगवान्‌के परम सुन्दर अनूप रूप अमृतकी तृष्णा रहती थी. दिनरात भगवन्नामके कीर्तनमें रहते थे और भगवान्‌के चरित्र तथा उनकी कथाका उनको आधार था. एक समय दूध और चावल भगवान्‌के मानसी पूजनमें भोग लगाया, तो महाप्रसादको बहुत अच्छा समझकर आपनेभी भोजन कर लिया तो अधिक भोजन खानेके कारण इनको अजीर्ण हो गया इस कारण रोगग्रासित हो गये; तब वैद्यने इनकी नाडी देखकर कहा

कि दूध और चावल खानेसेही यह रोग उत्पन्न हुआ है. गरिष्ठता दूर करनेकी पाचक औषधी की जाय औषधीभी लिखी. गुसांईजीने उत्तर दिया कि जिस भोजनसे गरिष्ठता हुई है वह अज्ञान रोगके निमित्त औषधी सिद्ध और सदा जीवनको अमृत है; आप औषधी अपने पास रख लो और मुझे छोड दो जिस दशामें हूं रहने दो. इस चिन्तवन और ध्यानकी सिद्धताको देखो कि भगवान् सबपर ऐसी कृपा करे और उसमेंसे कुछ इस दासकोभी मिले.

श्रीधरजीकी कथा ९.

श्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतका टीका ऐसा उत्तम बनाया कि भागवतका परम अमृत और यथार्थ अर्थ सबको विना परिश्रम प्राप्त होने लगा. दूसरे टीकाकारोंने द्वेषसे अर्थमे खेंचाखांची की है. कर्मउपासकोंने कर्मभक्ति ज्ञानवानोंने भक्तिज्ञानपरही दृढता की है और मुख्य आशयपर दृष्टि नहीं की. परन्तु श्रीधरस्वामीने तीनों कांड ज्ञान भक्ति और कर्मके जैसा टीका जिस स्थानपर होना योग्य था. वैसाही किया; फिर परमानंदजी महाराज अपने गुरुजीसे पूछकर वैसाही लिखा और परम संदेहोंको दूर किया और फिर वेदकोही मुख्य रक्खा. जब वह टीका तैयार हो गया, तो काशीजीमें पंडितोंका समाज हुआ और २ पंडितोंनेभी अपना २ टीका आगे धरा. एक २ पंडित अपने बनाये टीकेको दूसरेके टीकेसे अधिक बतावे था और श्रीधरस्वामीको अपने टीकेकी प्रशंसाकी इच्छा नहीं थी. अंतमें सब पंडितोंने यह सिद्धान्त करा कि बिंदुमाधव महाराज जिस टीकेको ग्रहण कर लें तो वही उत्तम माना जायगा. तब फिर जितने टीके थे उन सबकोही मंदिरमें भगवान्‌के समीप धरा और मंदिरको भीतरसे बंद करके आगे लोहेके तालेसे जड

दिया; इसके उपरान्त जब मंदिर खुला तो श्रीधरके टीकेपर भगवान्के हस्ताक्षर थे और जो शेष थी वह वैसेही धरी रहीं; यह देखकर सबको विश्वास हुआ और उस श्रीधरके टीकेको सब पंडितोंने ग्रहण कर लिया. स्वामीजीको तो अन्तःकरणसे भगवान्की भक्तिमें प्रीति थी; जिस कारणसे उन्होंने अपने गृहको त्यागन कर दिया था उसका यह कारण है कि स्वामीकी सेवाके लिये आगरेसे कुछ धन लेकर कहींको जाते थे, मार्गमें इनको ठग मिल गये और इनसे पूछा कि तेरे साथ कौन है तब इन्होंने उत्तर दिया कि मेरे साथ मेरा धनी और जीवनआधार श्रीरघुनंदनस्वामी हैं. यह सुनकर ठगोंने परस्पर बातें करीं कि यह मनुष्य अकेला है इसको सावधान होकर लूट लो. जभी उनमेंसे लूटनेकी एकने अभिलाषा करी तो धनुषबाण धारण किये हुए उनके साथ श्रीरघुनन्दनस्वामीको देखा. इस प्रकार कई वार इच्छा की परन्तु वारंवार वही रक्षक शस्त्र बांधे हुए दृष्टि आये; तब ठगोंने पूछा कि महाराज! वह श्यामस्वरूप अत्यन्त सुकुमार युवा पुरुष तुम्हारे साथ कौन है? जो मार्गमें तुम्हारी सहायता करता रहता है. तब स्वामीजीने उसी समय समस्त घरवार और द्रव्यको त्यागन कर दिया, कारण कि इसके रखनेसे मेरे स्वामीको दुःख होता है. जब उन ठगोंने यह चरित्र देखा तो वहभी भगवान्के सन्मुख हो गये.

चौपाई—रमाविलास रामअनुरागी। तज तन मन जिमि नर बडभागी॥

जिस प्रकार भगवान्के चरणोंमें जिन मनुष्योंकी प्रीति होती है तो वह समस्त संसारके पदार्थोंको त्यागन कर देते हैं.

कामध्वजजीकी कथा ६.

कामध्वजजी जातिके क्षत्री चार भाइयोंमें आप भगवान्के परम भक्त और वैराग्यवान् हुए; कि जिन्होंने वनमें रहकर भगवान्का

भजन और उनकी सेवाही की थी. उनको किसीसेभी कुछ काम और प्रयोजन न था. वह केवल भगवान्के प्रसादकेही निमित्त नगरमें आया करते थे और फिर उसी समय चले जाते थे. एक दिन इनके भाइयोंने कहा कि यदि जो तुम साथ चलकर राणाको हाजरी दो तौ तुम्हारीभी तनखाह ली जावे. तब कामध्वजने उत्तर दिया कि मैं जिसका नोकर हूं सो वहांही मैं हाजिर रहता हूं. यह कहकर आप वनको चले गये फिर कितनेही दिनोंके पीछे जब इनका अंतसमय आया तौ श्रीरघुनंदनस्वामीकी आज्ञासे उसी समय हनुमान्जी आ गये और चंदनादिसे कामध्वजजीका दाहकर्म किया. फिर श्रीरामचंद्रजीने उनकी कीर्ति संसारमें प्रचारित होनेके लिये एक यह चरित्र किया. जितने प्रेत पिशाच उस वनमें रहते थे वह सबही कामध्वजजीकी दाह चितासे पवित्र होकर परम पदको चले गये और एक प्रेत कहीं चला गया था. जब उसने यहां आकर अपनी जातिके न पाया तौ उसने एक संन्यासीसे पूछकर इस बातका निश्चय किया तौ वहभी कामध्वजजीकी भस्ममें लोटकर सद्गतिको गया. अब विचारना योग्य है कि भगवान्ने कहा है कि मेरे भक्त तीन लोकोंको पवित्र करते हैं. प्रयागराज और गंगा इत्यादि तीर्थोंको यह सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण पापोंको दूर कर सकते हैं और उनके जो पाप हैं सो भगवद्भक्तोंके चरणोंहीकी कृपासे निवृत्त हो जाते हैं.

गदाधरस्वामीकी कथा ७.

गदाधरस्वामी परम भागवत और भगवान्के भक्त हुए और वह सर्वदाही श्रीविहारीलालजीकी सेवा और उनकी छविके देखनेवाले और उनके शृंगारमें सर्वदा मदमाते और उनके ध्यानमें मग्न रहते थे. वह भगवान्के चरित्र कीर्तन करनेमें ऐसे हुए कि उनका वर्णन नहीं हो सक-

ता. उनका भगवान्के ध्यानमें ऐसा इष्ट था कि स्वप्न और प्रगटमेंभी वह दूसरे देवताको नहीं देखते थे. उन्होंने इस समस्त संसारके कामोंका त्यागनकर केवल एक भगवान्की भक्तिही ग्रहण की थी और बुढानपुर-के निकट एक बागमें आकर बैठे रहे. इनसे कईवार गांवमें चलनेके लिये प्रार्थना करी; परन्तु जो इनको भगवान्के चरणोंमें निष्काम प्रीति थी इसी कारणसे उसी बागमें रहे और यह सर्वदाही भगवान्के रूपमें मग्न रहा करते थे. एक दिन बहुतही वर्षा हुई, भगवान्ने विचारा कि मेरे भक्तको विना स्थानके दुःख होता है इस कारण एक साहूकारसे कहा कि तुम मेरे भक्तके लिये एक स्थान तैयार कर दो और तुम नित्यप्रति उसकी सेवामें उपस्थित रहा करो. साहूकार भगवान्की ऐसी आज्ञाको सुनकर तत्कालही गदाधरजीकी सेवामें उपस्थित हुआ और उनको भगवान्की आज्ञा सुनाकर मंदिरमें ले आया और साधुओंके लिये अनेक शोभाके मंदिर बनवा दिये और सेवाको गदाधरजीने स्वामी लालविहारीजीकी मूर्ति अति शोभायमान विराजमान करी. फिर इसके पीछे साधुओंकी सेवा करनी प्रारम्भ करी. जो कुछ इनके पास आता वह प्रतिदिनही बांट देते थे. दूसरे दिनके लिये नहीं रखते थे परन्तु जो रसोइया था वह इस कारणसे कुछ सामग्री गुप्त रख लेता था कि कहीं कलको भगवान् भूंखे न रहें. एक दिन रात्रिके समय साधु आये तो गदाधरजीने उनके लिये रसोईकी सामग्रीको पूछनेके लिये रसोइयेको बुलाया और उससे बुलाकर पूछा कि कुछ रसोईकी सामग्री है या नहीं? तब वह बोला कि भगवान्के भोगके निमित्त कुछ सामग्री रक्खी है; तब गदाधरजीने कहा कि भगवान्के लिये कल और आ जायगी, जो कुछ इस समय उपस्थित है उससे भगवान्के भक्तोंकी सेवा करो. जब प्रभात हुआ और तीसरे प्रहरतक कुछभी न आया तो भगवान्को भोगभी न लगा.

चेले बोले कि देखो अत्यन्त खर्च करनेसे सब कोई भूंखे हैं. हे परमेश्वर! जाने कब गदाधरजीके हाथसे छुटावेगा, इसी अवसरमें एक साहूकार आ गया तौ उसने २०० रुपये भेंट करे; तब गदाधरजीने कहा कि यह रुपये जो आपने दिये हैं सो जो लोग हाय २ कर रहे थे जिनको संतोष नहीं था उन्हींके शिरसे मारो. यह सुनकर साहूकारको क्रोध आ गया और विचारने लगा कि इन्होंने मेरी हँसी की. तब गदाधरजीने समस्त आद्योपान्त वृत्तान्त साहूकारको कह सुनाया. तब वह प्रसन्न हुआ और उसके मनका क्रोध गया. इसके उपरान्त फिर गदाधरजी कितनेही दिन वहां रहे फिर बहुत दिनोंके बाद मथुराजीको गये और जो कुछ उनकी शेष अवस्था रही थी वह श्रीव्रजकिशोरके चरित्रोंके कीर्तन तथा भजनमें व्यतीत करी.

माधोदासजीकी कथा ८.

माधोदासजीकी भक्ति वैराग्य और भाग्यका वर्णन कौन कर सकता है. जिस प्रकार वेदव्यासजीने अवतार धारण करके वेदका विभाग किया था और पुराण बनाये थे तथा महाभारत और सूत्र आदिको इस संसारमें प्रगट किया. फिर उनका सार और हार्द श्रीमद्भागवतमें वर्णन करके भगवान्की भक्ति और भगद्धर्मको इस संसारमें प्रवृत्त किया इसी प्रकार माधोदासजीने वेदव्यासजीके समान अवतार लेकर भगवान्की भक्ति और शास्त्रोंका सार निकाल कर संसारमें प्रचारित किया और भगवन्नाम और कीर्तन करके सहस्त्रों मनुष्योंको इस संसारसमुद्रसे पार किया और फिर श्रीजगन्नाथरायजीके परम उपासक और प्रामर्याके अधिष्ठाता हुए. यह जातिके कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे. जब इनकी स्त्री मर गई तब इनको ज्ञान हुआ कि यह संसार स्वप्नवत् है. मनमें तौ यह विचार रहे थे कि, संतान होगी फिर हम उनके

विवाह इत्यादि कर्म करेंगे फिर उनकेभी संतान उत्पन्न होगी सो उसमेंसे यह तौ कुछभी न हुआ. भगवान्‌ने यह नवीन चरित्र दिखाया कि निश्चयही यह संसार निष्फल है. इसके पीछे रहनेका क्या शोच करना है? मनुष्य तो मूर्ख है क्योंकि सबही रक्षा और समस्त कार्य करनेवाले भगवान् हैं; जो मनुष्य यह चिन्ता करे कि यह मेरा है तो वह मूर्ख है. ऐसा विश्वास कर उन्होंने संसारके समस्त कार्योंको छोड दिया और आप श्रीजगन्नाथरायजीको गये और वहां जाकर भगवान्‌के दर्शन किये और फिर समुद्रके किनारे जा बैठे और इन्होंने अपना मन भगवान्‌के ध्यानमें ऐसा लगाया था कि इनको तीन दिन तक कुछभी वस्तु खानेकी नहीं मिली और यह वैसेही भगवान्‌का भजन करते एक जगह बैठे रहे. इसके उपरान्त फिर भगवान्‌ने अपने मनमें विचारा कि देखो हमारे निमित्त तो विविध भांतिके भोजन तैयार होते हैं और हमारा भक्त तीन दिनसे निराहार है. भगवान् भक्तके वशीभूत होकर यह चिन्ता करने लगे और उसी समय अपने महाप्रसादका थाल लक्ष्मीजीके हाथ भेजा है और आप इस कारणसे लज्जित हो न गये कि एक तौ महमानी करनी योग्य थी सो उसके विपरीत तीन दिनतक भोजन न दिया. अब उसके सन्मुख जाना उचित नहीं; फिर जब लक्ष्मीजी गई और भोजनका थाल अपने करकमलमें धर लिया, तब भगवान्‌ने विचारा कि पिता तो पुत्रोंके खाने पीनेकी चाहे सुधि नभी ले परन्तु माताका तो धर्म यही है तौभी इतने दिनतक सुधि न ली. माधोदासजी तो भक्तिके स्थानमें अबतक बालक हैं; जब उनकी भोजन पानकी सुधि न ली तो अत्यन्तही लज्जाकी बात है. इस कारण लक्ष्मीजी उस ओरको गई कि जिस ओर माधोदासजीकी पीठ थी. जब इनके नूपुरकी झनकार माधोदासजीके कानमें पडी तो उनको चेत हुआ, परन्तु वह तो

भगवान्‌के ध्यानमें ऐसे मग्न थे कि आंख खोलकरभी न देखा; तब लक्ष्मीजीने वह थाल उनके समीप धर दिया और आप चली आई फिर जब माधोदासजीने महाप्रसादको देखा तो आनंदसहित भोजन किया और अपने भाग्यका उदय जाना और उस सोनेके थालको पत्तलकी समान जानकर एक कोनेमें डाल दिया; इसके पीछे जब पुजारियोंने मंदिर खोला और थालको न पाया तो उसको ढूंढते २ माधोदासजीके समीप पहुँचे और जब वह थाल वहांपर पडा हुआ देखा तो उनके ऊपर क्रोधित हो बहुतसे बेंत मारे और फिर चले आये, भगवान्‌ने उन बेंतोंकी चोट अपने शरीरपर सहन कर ली और जब पुजारियोंने भगवान्‌के शरीरपर बेंतोंके चिह्न देखे तो चिन्तित हुए तब भगवान्‌ने कहा कि वह थाल तो हमने माधोदासजीके पास भेजा था सो तुमने जो उसको विना अपराध दंड दिया सो हम कोही यह दंड हुआ इसी कारणसे हम बहुत दुःखी हैं. पुजारी यह सुनकर अत्यन्तही भयभीत हुए और डरते कांपते माधोदासजीकी सेवामें उपस्थित हुए और चरणोंमें गिर दंडवत् कर कहने लगे कि हमने जो आपको विना अपराध दंड दिया था सो आप वह हमारे अपराधोंको क्षमा कर दीजिये. इसके पीछे यह चरित्र समस्त संसारमें प्रचलित हो गया और भगवान्‌की ऐसी कृपा तथा भक्तोंके ऊपर ऐसी दया है इस भक्तवत्सलताको सुनकर जो भगवान्‌के भक्त थे सो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और प्रफुल्लित हो अपने तनमेंभी न समाये. माधोदासजीको भगवान्‌के स्वरूपमें इतना प्रेम था कि उनके दर्शन करते २ मंदिरमें व्याकुल होकर अचेत हो जाते थे और जिस समय पुजारी मंदिरको बंद करते थे तो उनको भगवत्‌की इच्छासे यह दृष्टि नहीं आते थे. एक समय हेमंतऋतुमें रात्रिके समय माधोदासजीको शरदी जान पडी; तब भगवान्‌ने उसी समय पुजारियोंसे

कहा कि, हमको सरदी लगती है. पुजारी तत्कालही अनेक प्रकारके दुशाले लाये. भगवान्ने अच्छे २ वस्त्र तौ माधोदासजीको उढा दिये और एक सुरख वस्त्र आपने ले लिया. तब उस समय सरदी दूर हो गई. एक दिन माधोदासजीको रेचकका रोग उत्पन्न हुआ तो यह अत्यन्तही दुःख जानकर समुद्रके किनारेपर जा बैठे. जब इनको हाथ धोनेतककीभी श्रद्धा न रही तब भगवान्ने स्वयं लोटेमें जल लाकर इनके शरीरको शुद्ध किया. तब माधोदासजीने विचारा कि यह मनुष्य कौन है जो हमारी इतनी सेवा करता है. फिर देखा तो स्वयं भगवान् इनकी सेवा करते हैं. तत्कालही इन्होंने हाथ जोड-करके प्रार्थना करी कि हे भगवन् ! आपको इतना कष्ट होना कब योग्य है. जो आप इस दासकोभी लज्जित करते हैं. तब भगवान् बोले कि जब मेरे भक्तको दुःख होता है तब मुझसे नहीं सहा जाता. मैं आप चला आता हूं माधोदासजी बोले कि रोगको दूर करते तो ऐसा परिश्रम न होता. भगवान्ने कहा रोगका होना प्रारब्धका भोग है और प्रारब्धका दूर करना उचित नहीं इससे कर्मकी पद्धति बिगडती है. जब कि हमारे भक्त विना कष्टके प्रारब्धकर्मोंको भोग लेते हैं तो उनके ध्वंस करनेका क्या प्रयोजन है ? यौं कर्मकी रीति दिखाकर भगवान्ने वह रोगभी दूर किया; इस कारण कि किसी साधक भक्तका विश्वास न छूट जाय. कर्म तीन प्रकारके हैं उसमें संचित और क्रियमाण तो उसी समय दूर हो जाते हैं जब यह भगवान्की शरण होता है. केवल प्रारब्धकर्म भोगने पडते हैं. जब यह माधोदासजीका चरित्र समस्त संसारमें प्रगट हुआ तो सैकडों मनुष्योंकी भीड इनके निकट रहने लगी तब माधोदासजीने इसको दूर करनेके निमित्त टुकडोंका मांगना प्रारम्भ किया. फिर एक आदमीके स्थानपर जाकर शब्द उच्चारण किया. उस समय वह स्त्री चौका देती थी सो उसने

वही कपडा माधोदासजीके शिरपर अति क्रोध करके दे मारा तब माधोदासजीको उसपर अत्यन्तही दया आई और हँसकरही वह कपडा उठा लिया. उसको पानीसे धोकरके रात्रिके समयके लिये उसका पलीता बनाया और फिर जगन्नाथरायजीके मंदिरमें रक्खा उसका यह प्रताप हुआ कि भगवन्मंदिर उस स्त्रीके मनमें अच्छी रीतिसे प्रकाशित हुआ और उस स्त्रीके मनमें भगवान्‌की भक्ति अच्छी रीतिसे उत्पन्न हो गई. जब फिर दूसरा दिन हुआ और माधोदासजी उस द्वारपर गये तो वह बहुतही भक्तिसे तत्कालही दौडकर उनके समीप आई और उनके चरणोंमें गिर पडी. भगवान्‌के भक्तकी महिमा किससे वर्णन करी जाय कि जो कोई उनके साथ बुरा करता है वह उसके साथ भला करते हैं. एक समय एक पंडित सम्पूर्ण पृथ्वीके पंडितोंसे झगडा करता हुआ और उनको शास्त्रोंमें निरुत्तर करता और दिग्विजय करता हुआ पुरुषोत्तमपुरीमें आया और माधोदासजीकी पंडिताईको सुनकर उनसे कहने लगा कि तुम मेरे साथ शास्त्रार्थ करो. तब उसकी यह बात सुनकर माधोदासजीने शास्त्रार्थ तो न करा परन्तु कुछ कागजपर लिखकर दे दिया कि माधोदास तो हार गया और पंडितजी जीत गये और फिर वह पंडित अपनी श्लाघा करके कहने लगा कि मैं माधोदासकी पराजय कर आया; जब उसने वह कागज पंडितोंकी सभामें दिखाया तो उसमें ऐसा लिखा था कि माधोदास जीता और पंडित हारा. यह देखकर पंडितको अत्यन्तही क्रोध आया और फिर जगन्नाथपुरीमें आया और माधोदासजीको अनेक प्रकारके कटु वचन कहकर उनके मारनेको तैयार हुआ. तब माधोदासजीने कहा कि जो तुम कहो सोई हम लिख दें. पंडितजीने कहा कि तू विश्वासघातक है, मैं तुझको गधेपर चढाकर काला मुँह करके नगरके चारों तरफ फिराऊंगा. माधोदासजी

तो चुप हो रहे और पंडित स्नान करनेको चला गया; तब भगवान् उसके पास उपस्कारके साथ पहुँचे और चरचा करके उसको निरुत्तर किया और उसको गधेपर चढाकर सौ दो सौ लडकोंके साथ उसकी खूब तालियें पिटवाई अचानक माधोदासजीभी उसी मार्गमें आये और प्रार्थना करा कि ऐसे पंडितका अनादर करना कब योग्य है. भगवान्ने कहा कि दुष्टोंको दंड देनाही कर्तव्य है. यह मूर्ख मेरे भक्तको गधेपर चढाये था उसीका यह फल है. माधोदासजीने उस पंडितको गधेपरसे उतारा और उस समय अपना अपराध क्षमा कराया.

कवित्त—धूरिइ भूरि भरे सब गात सुजान पुकारत डोलत हैं ।
अलकावलि राजत है विथुरी सुथने पर गाल गलीलत हैं ॥
अंबुज लोचन चारु विचित्र सो भाल विशाल विलोलत हैं ।
लडकानपै डोलत है जगनाथ सो हुररूहर मुख बोलत हैं॥ १ ॥

एक समय माधोदासजीने यह विचारा कि यहांपर पुरुषोत्तम पुरीमें व्रजके चरित्र बहुत मनुष्य कीर्तन किया करते हैं सो जाकर व्रजके दर्शन करने चाहिये. यह विचारकर व्रजके दर्शन करनेके निमित्त गये और मार्गमें एक बाई भगवान्के भक्तोंके निमित्त प्रसाद करानेको लिये जाती थी. जब भगवान्के भक्तोंने उसका भोग लगा लिया तो यह जगन्नाथजीको गई. माधोदासजी तो उस समय भोजनमें लग रहे थे उसने जब इनका अत्यन्तही सुन्दर स्वरूप देखा और इनकी बालअवस्थाको देखकर रुदन करने लगी. तब माधोदासजीने पूछा कि हे अबले! तेरे इस समय रुदन करनेका क्या कारण है ? उस स्त्रीने कहा कि हे महाराज! यह लडका जो अत्यन्त सुकुमारस्वरूप अवस्थाका थोडा जो तुम्हारे साथ है सो इसकी माता याद कर किस प्रकारसे जीवित रही होगी ? तब माधोदासजीने मुख जो फेकर देखा तो उन्होंने अपने स्वामी श्रीकृष्ण भगवान्को अपने निकट पाया और

उनका वह अत्यन्त सुन्दर स्वरूप देखकर उनके प्रेममें व्याकुल हो गये और उस बाईको ज्ञान दिया, फिर आगेको चले. किसी और गांवमें एक महाजन भक्त रहता था और उससे माधोदासजीने पहले कभी कुछ कह दिया था कि, हम तेरे घरपर आवेंगे सो आप उसके स्थानपर गये. उस समय वह महाजन किसी कामको गया था अपने स्थानपर नहीं था. इनकी आवाजको सुनकर उसकी स्त्री आई और इनको देखकर इनके चरणोंमें गिर पडी. एक महंत उस महाजनके घरमें छत्तपर रसोई बना रहा था तब उस स्त्रीने उस महंतसे कहा कि, इस समय एक हरिभक्त आ गया है; यदि कहो तो वहभी तुम्हारेही यहां रसोई कर लेगा. यह सुनकर महंतको अत्यंत क्रोध आया और बोला कि यहां और किसीकी रसोई नहीं होती. तब वह स्त्री वहांसे चली आई और लज्जित होकर हाथ जोड माधोदासजीसे बोली कि महाराज ! इस समय सीधा तो उपस्थित है सो आप रसोई कर लीजिये. तब माधोदासजीने कहा कि अब रसोई तो नहीं हो सकती. यदि कुछ बना बनाया भोजन हो तो लेते आ. तब वह स्त्री तत्कालही गरम दूधको ले आई और इन्होंने उसको पी लिया फिर वहांसे चल दिये और उससे कह गये कि तू अपने पतिसे कहना कि जगन्नाथजीके माधोदासजी आये थे सो अब वह थोडीसी दूर गये हैं. इसके पीछे जब वह महाजन अपने घरपर आया और उसने अपनी स्त्रीसे पूछा तब उसकी स्त्रीने माधोदासजीका वृत्तान्त कह सुनाया वह यह सुनतेही तत्काल वहांसे गया और उनके समीप जाकर चरणोंमें गिर पडा और हाथ जोडकर कहने लगा कि महाराज ! अब आप मेरे स्थानको पवित्र कीजिये. माधोदासजीने उसकी बहुतही शुश्रूषा करी और कहा कि तेरे घरमें तेरी स्त्री बडी भाग्यशाली है उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती फिर तेरी उत्तम गति और उद्धार होनेमें

क्या संदेह है. ऊपरका महंतभी माधोदासका नाम सुनकर महाजनके साथ आया था सो उसनेभी अपने अपराधोंको क्षमा कराया. तब माधोदासजीने कहा कि तुम जब हरिद्वारमें जाओगे और भगवान्का शीतप्रसाद भोजन करोगे तभी तुम्हारा कुछ उद्धार होगा. फिर उन्होंने महाजन और महंतको विदा किया और फिर आप वृन्दावनको चले और वृन्दावनमें आकर श्रीवृन्दावनचंदके दर्शन करके उनके प्रेममें मग्न हो गये फिर बांके विहारीजीके मंदिरमें दर्शन करनेके लिये गये सो इनको भगवान्के प्रसादके चने मिले और जो कुछ द्वारपाल कह रहे थे कि जब भगवान्को रसोईका भोग लग जायगा तभी तुमको प्रसाद मिलेगा. परन्तु भूंखेको तो चनेही खाना बहुत है, यह समझकर वह यमुनाजीके किनारेपर आये और उन चनोंको भगवान्के अर्पण कर भोग लगाया फिर जब मंदिरमें रसोई तैयार हो गई और विविध भांतिके भोजन पुजारी लोग भगवान्के भोगके लिये ले गये तो भगवान्ने उनका भोग न लगाया और कहा कि आज हमको माधोदासजीने चनेका भोग लगाया है सो इस कारण अब हमको कुछ भूंखकी इच्छा नहीं रही. यह सुनकर गुसांईजी और पुजारी माधोदासजीको ढूंढनेके लिये दौडे और इनको ढूंढकर लाये, तब भगवान्ने भोग लगाया. पीछे श्रीवृन्दावनके दूसरी ब्रजभूमिके दर्शनको पधारे और भांडीरवनमें खेमनामी साधु रहता है, उसके स्थानपर ठहरनेका विचार किया परन्तु उसने इनको न ठहरने दिया तब यह आगे जाकर ठहरे. फिर जब इस साधुने अपने निमित्त दूध और चावल तैयार किये और भोजन करनेके लिये बैठा तो चावलोंकी जगहमें कीडे दृष्टि आने लगे तब वह लज्जित होकर माधोदासजीके चरणोंमें गिर पडा तब माधोदासजीने दया कर उसका अपराध क्षमा किया और उसको भगवान्के

भजनका उपदेश सुनाया; फिर वह शहरमें पहुँचे वहांपर एक स्थान वैरागियोंका साधुसेवाका है और वहांपर सत्पुरुष रहते हैं, और उसी स्थानमें भगवान्‌की कथाभी हुआ करती है, तो यह वहांपर भगवान्‌के चरित्र सुननेके लिये ठहर गये और वहांपर इन्होंने यह सेवा करनी स्वीकार करी कि समस्त गोबरको इकट्ठा करके उपले थाप दिया करते थे. एक दिन एक साधु आ गया और माधोदासजीको पहँचानकर दंडवत् और प्रणाम करी फिर जब स्थलके महंतने माधोदासजीको पहचान लिया तो उन्होंने-भी इनके चरणोंमें दंडवत् करी. माधोदासजी कितने एक दिनतक तो उस स्थलमें ठहरे रहे और जब चले तो ऐसी शुभ चिन्तकी कर गये कि वह स्थान अबतक बन रहा है और वहांपर साधुओंकी सेवाभी हुआ करती है. चलते समय यह अपने घरभी गये और फिर माता और लडकोंको भक्तिका उपदेश करके चल दिये. फिर जब उसी महाजनके गांवके निकट पहुँचे तो स्वप्नमें उसको अपने आनेकी खबर दी. तब वह उसी समय आया और उनके दर्शन किये. फिर वहांसे चलकर पुरुषोत्तमपुरीको गये और भगवान्‌के मंदिरमें जाकर उनके ध्यानमें मग्न हो गये औरभी माधोदासजीके चरित्र तो अनेक हैं परन्तु जो जानते थे सो समस्तही लिख दिये.

दोहा—हरिदासनकी कीर्ति, कापै वरणी जाय ।
जिनके हित अव्यक्त प्रभु, धारत हैं तन आय ॥

नारायणदासजीकी कथा ९.

नारायणदासजी जातके चारण थे यह भगवान्‌के भक्त और वैराग्य-वान् हुए. उनका जो बडा भाई था वह द्रव्य उपार्जन करनेवाला था और नारायणदासजी लुटानेवाले थे. एक दिन इनकी भाभीने इनको

ठंडा भोजन खानेके लिये दिया तो नारायणदासजीने गरम भोजन मांगा. तबभी भाभीने इनको नहीं दिया और इनके ऊपर आक्षेप किया कि भगवान्‌का भक्त तो ऐसा होना चाहिये जैसे कि तुम्हारे पिता हुए थे. वह पदार्थ अपने स्वामीसे क्यों नहीं मांग लेते. भाभीकी यह बात सुनकर नारायणदासजी अत्यन्तही लज्जित हुए और विचारा कि भगवान्‌की भक्तिके विना यह जीवन वृथा है. मनुष्यका जो शरीर है सो केवल भगवान्‌कीही भक्तिके अर्थ है; नहीं तो बुरा है. इस कारण संसारको असार जानकर उन्होंने त्यागन कर दिया और द्वारकाजीमें जाकर भगवान्‌की सेवा करनेमें ऐसा मन लगाया कि भगवान् उनकी भक्तिको देखकर उनके वशीभूत हो गये- जो कृपा प्रथम इनके पितापर करी थी वही कृपा आप प्रगट होकर उनके ऊपर करी. भागवतके नवमस्कंधमें वर्णन किया है कि मुझको भक्ति और भक्त इतना प्रिय है कि मैं उनकी चाहनासे उनके कार्यमें प्राप्त हो जाता हूं उसकोही सत्य किया.

दोहा—कथा नारायणदासकी, जो सुनि है मन लाय ।
रामभक्ति दृढ पावही; जन्म सुफल हो जाय ॥

जीवगुसांईजीकी कथा १०.

कलियुगमें रूपसनातनजी तो भक्तिके जलकी समान हुए और जीवगुसांई मानससरोवरके समान और भगवद्भजन उस मानससरोवरके दृढ घाटकी समान है. भक्ति फूले कमलकी समान है. कलिप्रपंचकी कोई जिसके समीप नहीं गई और श्रीकृष्णभगवान्‌के भक्त जो हंसकी समान हैं; उनको परमानंदका देनेवाला है. जिन्होंने वृन्दावनमें निवास करके प्रियाप्रीतमकी सेवामें मन लगाया और संसारके उद्धारके निमित्त सम्पूर्ण शास्त्र और पुराणोंको इकट्ठा करके उनका

जो सार तथा हार्द था उसको भली प्रकार समझकरके ऐसा भगवान्की भक्तिका प्रचार किया कि करोडों मनुष्य इस संसारसमुद्रके पार हो गये और भ्रम दूर करनेके लिये ऐसे हुए कि जिस प्रकार अंधकारका शत्रु सूर्य है और यह सभीके साथ मित्रता रखते थे. यह भगवान्की उपासना माधुरीभावसे करते थे और इस चरित्र तथा दूसरी लीलाको परम तत्व और सार जानते थे; यह रूप-सनातनजीके भतीजे थे यह अपने पास धन द्रव्य बहुतसा रखते थे. इन्होंने सबकोही असार जानकर त्यागन कर दिया और फिर वृन्दावनमें आये और धोती चादर बहुमूल्यके रेशमीन वस्त्र इनके शरीरपर थे. रूपसनातनजीने मिलनेके समय कहा कि नाम तो आपका वैराग्यवान् और शरीरपर वस्त्र ऐसे हैं यह बात हँसकर कही तब जीवगुसांईजीने उनकोभी त्यागन कर दिया और नगरसे बाहर यमुनाजीके किनारेपर कुटी बनाकर भगवान्केही भजनको सार समझकर माधुरीरूपमें लग गये. एक दिन गुसांई रूपजीका जाना उस ओर हुआ बडे गुसांईजी महाराजके दर्शन करके उस ओर आये कि जहांपर जीवगुसांईजी थे. इनको देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उनको छातीसे लगा लिया. फिर इनको अपने पास ठहराकर सम्पूर्ण शास्त्र पढाये; और भगवान्के बहुतसे चरित्रभी कीर्तन किये जीवगुसांईजीने उनको ऐसा प्रवृत्त किया कि संसारमें व्याप्त हो गये. जहां तहां गुसांईजीकी विद्या और पाण्डित्यकी विख्याती हो गई. एक समय बादशाह अकबरने इनको इस निर्णयके निमित्त बुलाया कि गंगा और यमुनाके बीचमें कौन बडा है. यह रात्रिको वृंदावनके सिवाय कहीं निवास नहीं करते थे. इस कारण घोडोंकी बग्घीमें पहरभरके बीचमें लौटा देनेकी प्रतिज्ञासे इनको बुलाया, सो आगरेमें आनकर इन्होंने इस प्रकार यमुनाजीका प्रभाव वर्णन किया कि

किसीको कुछ कहनेका अवकाश न रहा और यहभी कहा इस छोटे विचारके निमित्त हमको बुलानेकी आवश्यकता न थी कोईसा पुराण देख लिया होता. गंगाजी उस पूर्णब्रह्मका चरणामृत है और यमुनाजी उनकी पटरानी हैं. अब विचारना चाहिये कि बडाई किसकी हुई. इस उत्तरसे किसी प्रकारका कोई संदेह न करे. यह उपासना और सिद्धान्तकी परम पक्कता है. जिस ओर जिस किसीका जैसा विश्वास है उसको वह देवता वैसाही फल देता है. बादशाह गुसांईजीका यह निर्णय सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और विनय की कि कुछ सेवाके निमित्त आज्ञा होय. गुसांईजी बोले किसी बातका प्रयोजन नहीं है. जब बादशाहने बहुत कहा तब कहा कि जब पुराण और स्मृति आदि काशीजी आदि स्थानोंसे मंगवाकर वृंदा-वनमें इकट्ठे करा दो. बादशाहने अल्पकालमें गुसांईजीकी आज्ञा पूर्ण कर दी. अबतक सब पुराण, स्मृति, शास्त्र आदि वृंदावनमें स्थित हैं. गुसांईजीने जिस प्रकार मानसिंह अजमेरके अधिपतिसे गोविन्ददेवजीका मन्दिर बनवाया सो वृत्तान्त रूपसनातनजीकी कथामें लिखा है. बादशाह अकबर जब वृंदावनमें रूपसनातनजीके दर्शनको गये तो चलते समय स्थान आदि बनवानेको कहा, गुसांईजीने कहा कुछ प्रयोजन नहीं. जब बादशाहने हठ की तब गुसांईजीने हृदयकी आंखोंसे वृंदावनकी सजावट देखकर पीछे स्थान बनवानेको कहा. जब बादशाहने आंख बंद करके देखा तो धरती मन्दिर कुञ्जे आदि मणियोंसे जटित सुवर्णके दिखाई दिये कि जिनसे नेत्र झपे जाते थे. तथा दूसरी सामग्रीभी इस प्रकार देखी कि जो कभी ध्यानमें-भी नहीं आई थी. तब चरणोंमें गिरकर विदा हुआ. गुसांईजीकी यह रीति थी कि जो कोई भेंट पूजा ले जाता था. यमुनाजीमें डाल देते थे. अपने पास कुछ नहीं रखते थे. सेवकोंने हाथ जोड विनय

किया कि यमुनाजीमें क्यों डालते हो? उत्तम है यदि इससे साधुसेवा हुआ करे, तब बोले तुममें कोई साधुसेवा करनेयोग्य देखनेमें नहीं आता; एक चेलेने कहा जो आज्ञा हो तो यह दास आपके मनोनुकूल सेवा करे. तब गुसांईजीने आज्ञा दी. वह सेवा करने लगा एक समय रात्रिमें एक साधुने असमयमें आनकर भोजन मांगा, उस समय वह सेवा करनेवाला सेवाके परिश्रमसे थकित हो गया था, रिसकरके बोला इस समय भोजन कहां है, प्रभातको मिलेगा जो बडी भूंख हो तो मुझे खा ले. यह सुनकर गुसांईजी बोले इसी श्रद्धापर साधुओंकी सेवा अंगीकार की थी, कि उनको आदमी खानेवाला कहता है, फिर पीछे हरिभक्तोंका माहात्म्य और उनकी बडाई तथा सेवाका फल सबको समझाया. श्रीगुसाईं गोविंददेवजीकी सेवा पूजामें गुसांईं रूपजीकी आज्ञासे रहते थे. बहुतकालपर्यंत बडी प्रीति और स्नेहसे पूजा की. जब एक चेलेकी भगवद्भक्ति और प्रेमकी सब प्रकारसे परीक्षा कर ली. तब उसको भगवत्सेवा सौंपकर आप श्रीवृंदावनकी लता कुंज यमुनाकिनारे वन इत्यादिकमें भगवद्रूपके मनन ध्यानमें बेसुध और निमग्न रहने लगे.

सुरसरिजीकी कथा ११.

सुरसरिजी परम सती भगवद्भक्त ऐसी हुई कि जिनका सत रखनेके निमित्त आप भगवत्स्वरूप धारण करके आये. धन सम्पत्ति व इस अनित्यसंसारको असार समझकर अपने पति सुरसुरानन्दके साथ वृंदावनमें आनकर भगवद्भजन और ध्यान करने लगी. रूप अति सुन्दर था, उनकी कुटीके निकट मुसलमानोंका डेरा आ पडा उनका अधिपति सुरसरिजीके स्वरूपको देखकर मोहित हो गया और अपने सेवकोंको पकड लानेकी आज्ञा दी. उस समय सुरसरि-

जीने धनुषधारीका ध्यान किया. भगवान्ने तुरन्त व्याघ्रके रूपसे प्रगट होकर सब दुष्टोंको बिडारा, कितनेको मार डाला और कितने एक घायल हुए. व्याघ्रके रूपसे इस कारण प्रगट हुए कि तरकससे तीर निकालते धनुष चढाते विलम्ब होगा और व्याघ्ररूपमें सब अंग शस्त्ररूप हैं दुष्ट शीघ्र मरेंगे इस कारण व्याघ्रका रूप धारण किया.

द्वारिकादासजीकी कथा १२.

द्वारिकादासजी स्वामी कील्हके शिष्य परम भक्त और श्रीरामके उपासक हुए. पातञ्जल दर्शनके अनुसार शरीर त्यागन करके भगवत्का परम धाम पाया. कूकसगांवके निकट नदी बहती है उसके जलमें जाकर भगवान्का ध्यान किया करते थे और रघुनंदनस्वामीके चरणोंमें ऐसा दृढ विश्वास था कि संसारकी अनेक मोहकी फांसीको काटकर उसी ओर दृढकर चित्त लगाया.

राघवदासजीकी कथा १३.

यद्यपि कलियुग सबको अपने वशीभूत करता है परन्तु राघवदासजीने इसको अपने आधीन कर लिया और भगवद्भक्तिको ऐसा निवाहा कि उसमें कभी भेद न पडा काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षाकी पवननेभी इनको स्पर्श न किया. जिस प्रकार सूर्य जलको आकर्षन कर फिर वरसा देता है. परन्तु सूर्यको वरसाने और आकर्षणकी इच्छा नहीं होती है. ऋतुपर स्वयं आकर्षण और वर्षा होती है, इसी प्रकार राघवदासजीको सम्पत्ति और ऐश्वर्यकी इच्छा नहीं थी. जो कुछ स्वयं द्रव्य आता था उसको व्यय कर देते थे. भगवद्भक्तिकी सेवामें विश्वास, सहिष्णुता, प्रिय वचन बोलना, इनको इष्ट था. रूपवान् थे अल्हराम जो रावलके नामसे विख्यात थे इन अपने गुरुकी सेवा भगवत्सेवाकी समान करके संसारमें विख्यात हुए.

हरिवंशकी कथा १४.

भगवान्‌ने कहा है जो निष्किंचन मेरा भजन करते हैं मैं उनको शीघ्र प्राप्त होता हूं इस वचनपर हरिवंशजीको दृढ विश्वास था. जैसे उस घसिहारेने कि जिसके पास केवल खुरपा जाली था गंगास्नानके समय दान कर दिया. उसी प्रकार सब वस्तु दान करके व त्यागी होकर भगवद्भजनमें लगे और विना भगवद्भजन स्मरणके एक घडीभी व्यर्थ नहीं जाती थी. जबतक रहे कोई वचन कठोर न बोले. रामानुजसंप्रदायमें श्रीरंगजीके शिष्य थे. सन्तोषी, सहिष्णु, प्रियदर्शन और श्लाघी हुए.

दोहा-जिनसे यों विश्वाससे, तिन्हें मिले यदुराय ।
यासों भजिये कृष्णको, सब छल कपट विहाय ॥

अथ

सत्रहवीं निष्ठा भगवत्सेवाका वर्णन ।

(इसमें दश भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी ऊर्ध्वरेखाको प्रणाम करके बुद्धावतारको जो गयाजीमें धारण करके कलिमें असुरोंको यज्ञका निषेध किया उसको दंडवत् करता हूं. सेवानिष्ठाके वर्णनसे प्रथम एक संदेहका निवृत्त कर लेना उचित है कि भागवतादि पुराणोंमें नौ प्रकारकी भक्तिमें सेवा पूजन और दासनिष्ठाको पृथक् २ वर्णन किया और विचारमें प्रगट कोई भेदभी विदित नहीं होता तो फिर शास्त्रोंने इसको भिन्न २ क्यों लिखा है सो सेवानिष्ठाका स्वरूप यह है कि निरन्तर

भगवान्‌की सेवामें सन्मुख रहना क्षणमात्रको विश्लेष न करना. समय समय मन वचन कर्मसे सेवा करना. पूजानिष्ठासे इसमें यह भेद है कि पूजन तौ षोडशोपचारसे होता है. जिसका वर्णन आठवीं निष्ठामें कर चुके हैं उसमें अनुक्षण सन्मुख प्राप्तिका नियम नहीं है. उपासक वियोगभी सह सकता है और दासानिष्ठासे यह भेद है कि दास किंकरको कहते हैं. दासता निकट और दूर दोनों स्थानोंमें बनती है. दासको स्वामीकी प्रसन्नतापर दृष्टि रहती है, किसी बातमें हठ नहीं कर सकता इस सेवानिष्ठाकी महिमा वर्णन नहीं हो सकती कि जिसके प्रभावसे पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघनका सामीप्य प्राप्त होता है. जिनको नित्यमुक्त कहते हैं वह इसी निष्ठासे उस पदवीको प्राप्त हैं. भागवतमें लिखा है देवता, राक्षस, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, कोई हो नारायणके चरणसेवनसे परम कल्याणको प्राप्त होता है. भगवान्‌के चरणकमल नौकाकी समान है उनकी सेवामें जिसका मन लगता है वह संसारसागरको गोपदके जलकी समान तर जाता है. कपिलदेवजी कहते हैं मेरे चरणसेवीको संसारका दुःख नहीं होता. सप्तम स्कंध भागवतमें लिखा है कि तबतक भय, शोक, लोभ, स्पृहा आदि दुःख देनेवाले हैं जबतक भगवत्सेवामें मन नहीं लगता. शास्त्रोंमें जो शेषशेषीभाव लिखा है उसका विचार यह है कि जो किसी औरके निमित्त होवे उसका नाम शेष है और जिसके निमित्त वह वस्तु होय उसको शेषी कहते हैं. जिस प्रकार राजाका राज्य सेना प्रजा सम्पत्ति है इसमें राजा तौ शेषी है और राज्य आदि सब शेष इसी प्रकार अश्ववार शेषी और घोडे सईस सब शेष हैं. जब क्रमसे एक दूसरेका शेषी विचार किया जाय तौ परिणाममें शेषीभाव भगवत्पर समाप्त होता है. कारण जहांतक देखने सुननेमें जो कुछ ब्रह्मांडकी वस्तु आती है वह सब भगवत्‌के निमित्त है. भगवत्से अधिक कोई नहीं और

इसी प्रकार जब शेषका परिणामपदवीका विचार किया जाता है तो शेष नागपर समाप्त होता है क्योंकि जब सब वस्तु भगवत्की की गई तो सबसे अधिक कौन वस्तु निज भगवत्की है ? जो अतिशय भगवान्के संबन्धवाली हो, वही सब शेष वस्तुओंमें वास्तव अतिशय शेष है. सो यह सब लक्षण शेषनागजीमें पाये जाते हैं. शेषजीका कोई अंग ऐसा नहीं जो भगवत्सेवासे रहित हो. शरीर शय्या है, कोमल भाग तोसकके समान है, सहस्रों फण चंदुएके स्थान और फणोंपर जो मणि है; सोई मानो दीपमालिका है, विष भरे श्वास रोककर जो शीतल श्वास लेते हैं सोई व्यजन है; जिह्वासे भगवन्नाम स्मरण करते; गुप्त और प्रगट नेत्रोंसे अनन्तगुण शोभाधाम भगवत्के रूप अनूपका दर्शन करते हैं, नासिकासे भगवत्शरीरकी सुगंध और तुलसी सूंघते हैं, और सर्प आंखोंहीसे सुनते हैं कान नहीं होते इस कारण आंखोंके मार्गसे जो भगवत्के श्वाससे वेद मंत्र निकलते हैं, उनको सुनकर धारण करते हैं. तात्पर्य यह है कि शेषजीके सब अंग भगवत्सेवामें लगे हैं और सब भगवत्सेवाके निमित्त हैं. इसी कारण उनका नाम शेष विख्यात होकर पदवी अन्त व परिणाम शेष होनेका उनपर समाप्त हुआ है. सो इस लिखनेका प्रयोजन यह है कि, भगवान्की सेवा ऐसी हो कि गुप्त और प्रगटके अंगमेंसे कोई अंग सेवासे रहित न हो. इस अवस्थाको जिसकी सेवा पहुँच जाती है उसीका नाम शेष है. वहही अनन्त और वही नित्यमुक्त है. वही समीपी सेवक और पार्षद है और उसीका नाम सामीप्य मुक्तिवाला है. रामानुजसम्प्रदायमें जो जो शब्दकैंकर्य विख्यात हैं, वह तात्पर्य भगवत्सेवासे है. मूल उस पदके प्राप्त होनेका यह है कि जितना काम प्रभातसे अगले प्रभाततक जिस अंगसे यह मनुष्यका अपने तनके निमित्त करता है वह सब भगवत्सेवाके सम्बन्ध

विचार करके करता रहे अपने निमित्त किंचित्भी नहीं न समझे, जैसे चौका देना, रसोईका देना, जलका ले आना, रसोईका बनाना, इसमें भगवत्की रसोईकाही विचार हो. अपने निमित्त न हो भगवान्के निमित्त जाने. घोडा वस्त्रादि जो सामग्री बिसानी है सो केवल भगवत्के उद्देशसे हो निजके निमित्त नहीं. सब वस्तु पहले भगवान्के निमित्त अर्पण करे पीछे प्रसादरूप आप स्वीकार करे. इस प्रकार रात दिन सब कार्य भगवान्के उद्देशसे करे और त्यागी हो तो जो कुछ वन पर्वतमें शरीरसे कर्म हो सब भगवत्सेवाके निमित्त विचारसे करे, अपने शरीरकी मुख्यता दूर करके भगवन्मूर्तिकीही सब सेवा करे और उन्हींके ध्यानमें तत्पर रहे. यह सेवा ध्यानमें वा भगवन्मूर्तिके उद्देशसे करे और अपने सब वस्त्र भोजन आदि भगवान्के प्रसादरूप हैं ऐसा जाने परन्तु यह वार्ता कथनही मात्र न हो किन्तु मनसे हो. प्रत्येक बातमें ऐसा विचार करता रहे और यहभी विदित रहे कि कोई विधान भगवत्सेवासम्बन्धी जो प्रतिमा अर्चामें लिखा है, न रहे. आशय यह है कि जो अधिक न हो सके तो जितना कार्य यह प्राणी अपने निमित्त करता है वह सब भगवान्के निमित्त किया करे. यद्यपि यह सब वस्तु मनुष्यहीके विश्रामके निमित्त हो जाती है परन्तु भाग्यहीनताके कारण यह पुरुष भगवान्का विचार नहीं करता. हे भगवन्! इस भाग्यहीन मनको मैंने बहुत समझाया है, परन्तु इसके ध्यानमें एक नहीं आता है. अब मुझे अपने पुरुषार्थपर तो कुछभी भरोसा नहीं है, केवल आपकी कृपाके ऊपर आसरा करके प्रार्थना करता हूं कि किसी प्रकार मेरा मन आपके चरणकमलोंमें लग जाय और आपका वह चरित्र मेरे हृदयमें पूर्ण चन्द्रकी भांति उदय रहे; तथा सब रसिकजनोंको आनंदका देनेवाला होय, कि जब परम रिझवार श्रीव्रजचंद्र महा-

राजको यह समाचार विदित हुआ कि, वरसानेमें वृषभानुनन्दिनी शोभायमान है; कि, तीन लोकमें जिनकी उपमाको कोई नहीं है. तब देखनेकी इच्छा हुई और यहभी सुना कि संध्याको फुलवाडियेंमें पुष्प लेनेको सदा आती हैं, सो आपभी उन परम मनोहर फुलवाडियेंमें पहुँचे और फूलकी समान खिले नेत्रसे मानो सबही अंगोंसे प्रियाके आनेकी वाट निहारने लगे कि उसी समय उत्तरकी ओरसे अनगिन्त सखियोंको साथ लिये परम मनोहर मूर्ति आती दिखाई दी, कि जिसके मुखके प्रकाशसे सब फुलवाडी प्रकाशित हो गई आभूषण और वस्त्रोंकी शोभाभी जिनकी शोभासे दब गई है. इस प्रकार अपने रूप रूपमाधुरीसे मनमोहनके मनको मोहित करती नवलकिशोरीजी बागमें पधारी. व्रजचंद महाराजने प्रियाजीके निकट चलनेकी इच्छा की परन्तु उनके प्रभावके कारण थकेसे रह गये और व्रजरानीजी उनका समाचार पाकर अपनी सखियोंके साथ हँसती खेलती फूल तोडती हुई निकट आ पहुँची. देखा कि एक किशोर अवस्था श्याम शरीर, बहुमूल्य वस्त्राभरण पहरे, कोटि कामके लजानेवाले, सजे हुए, शरीर रोमाञ्चित, एकटक नेत्र किये चित्तचोर खडे हैं. उनकी वह बांकी झांकी प्रियाजीके मनमें समा गई और उनको देखतेही सुधबुध भूल गई, दोनोंके नेत्र रूप देखकर थक गये , तब वृषभानुनंदिनी लजाकर सखियोंसे पूछने लगी कि आज यह कौन व्रजवासी हमारी फुलवारीमें नये २ फूल विना पूछे तोडता फिरता है. सखियें प्यारीके इस वचनसे उनके मनकी बात जान गई और इस वाक्यमेंसे ऐसे २ व्यंग वचन प्रगट किये कि जिससे दोनों ओरकी चौगुनी चाह हो गई और नित्यके मिलनेकी रीति बंध गई कोई कहते हैं लाडिलीजीका यहां गन्धर्वविवाह हुआ, परन्तु दूसरे परकीयाभाव-

वाले इनको अंगीकार नहीं करते इस कारण इस बातका निर्णय उपासकोंके विश्वासपरही छोड दिया है और इसका रहस्य उपासकोंके मनकी भावनापरही छोड दिया है. जैसी जिसकी रुचि हो वह अपने मनकी भावनाके अनुसार प्रियाप्रीतमका ध्यान करें उसी ध्यानसे वह पदका अधिकारी हो जायगा.

पद ।

अपनी शरण नाथ रख लीजे ॥
तुम अन्तर्यामी नँदनंदन दास जानके रक्षा कीजे ।
अर्थ धर्म निर्वाण न चहिये प्रेमभक्तिको मोहिं वर दीजे ॥
भवसागरसे तुम्ही उबारो जनहित दीनानाथ पसीजे ।
निष्ठा चरणकी नित बलिहारी कृपा करहु जन हेत पतीजे ॥

दोहा–अति छबिसो राजत दोऊ, श्रीराधा घनश्याम ।
युगलरूपको ध्यान कर, पावत मन विश्राम ॥

लक्ष्मीजीकी कथा १.

लक्ष्मीजी जगज्जननी भगवान्‌की परम प्रिया, जिनको भगवत्‌की सेवामें मुख्य पदवी है एक क्षणकोभी भगवत्‌की चरणसेवासे अलग नहीं होती. यद्यपि लक्ष्मीजी और भगवान्‌में कुछभी भेद नहीं नाममात्राको पृथक् दिखाई देती हैं. जिस प्रकार कि शब्द और अर्थ वास्तवमें एक बात है, कथनमात्रको पृथक् पृथक् हैं, इसी प्रकार दोनोंको सिद्धान्तवादियोंने एकही लिखा है. प्रगटमें भगवान् सेव्य और लक्ष्मीजी उनकी सेवा करनेवाली है. इस कारण शास्त्रोंने लक्ष्मीजीको सेवानिष्ठाकी कक्षामें लिखा है. उनके चरित्र इस कारण नहीं लिखे जाते कि जितने चरित्र भगवान्‌के और पुराणोंमें स्थित हैं वे सब चरित्र लक्ष्मीजीकेही जानने चाहिये कारण कि उनसे

मिश्रित हैं. भगवान्‌के चरित्र सब लक्ष्मीजीकेही जानने चाहिये समुद्र-मथनके समय सागरसे अपना विग्रह प्रगट कर भगवान्‌की सेवाकी पराकाष्ठा दिखाई. राधिका, सीता, रुक्मिणीके चरित्रोंका वृत्तान्त सम्पूर्ण भगवत्‌की प्रियाकाही वृत्तान्त जानना चाहिये कुछ भेद नहीं उपासकोंकी उपासना और विश्वासका भेद है.

शेषजीकी कथा २.

सेवानिष्ठा शेषजीपर पूर्ण हुई है सो इस भूमिकामें पहलेही लिख आये हैं. अब फिर लिखना प्रयोजन नहीं. जगत्‌के उपकार और उद्धारमें ऐसी प्रीति है कि सदा भगवद्भजन और वेदश्रुतिका उपदेश करते हैं. कई पिङ्गलादि नवीन शास्त्र रचना कर जगत्‌में प्रसिद्ध किये हैं. संसारसागरसे पार उतारनेको इनकी वाणी सेतुरूप है. उनमें एक व्याकरणशास्त्रही ऐसा है कि यदि वह न हो तो शब्द-शास्त्रके विना जगत्‌का अंधकार हो जाता. तथा पातंजलयोग ऐसा है कि जिसके द्वारा प्राणी योगगतिमें प्राप्त होकर मुक्त होता है. साहित्यमें रसभेद काव्यादिके लक्षण बताकर जगत्‌की विद्याको अलंकृत किया है. जब २ धर्मकी हानि हुई तब तब अवतार धारण कर भगवद्भक्तिका प्रचार किया और विघ्न दूर किये. शेषजीके चरित्र भगवच्चरित्र जानने चाहिये जिनकी अलौकिक महिमाको वेदादि शास्त्र और पुराण वर्णन नहीं कर सकते तो मुझ मंदबुद्धिको क्या सामर्थ्य है जो एक अक्षरभी लिख सकूं. शेषजीके नाम तो अनंत हैं, तब फिर उनके चरित्रोंका अंत किससे हो सकता है.

विश्वक्सेनकी कथा ३.

विष्वक्सेन १, सुषेण २, बल ३, प्रबल ४, जय ५, विजय ६, भद्र ७, प्रभद्र ८, नन्द ९, सुनंद १०, चंड ११, प्रचंड १२,

कुमुद १३, कुमुदाक्ष १४, शील १५ सुशील १६ ये षोडश द्वारपाल भगवान्के हैं और सर्वदाही भगवान्की सेवामें उपस्थित रहते हैं. चाहे कोई पृथ्वीकी कणिका गिन ले, परन्तु भगवान्के पार्षदोंकी गिन्ती नहीं हो सकती मुख्य लिखे गये हैं, इनकी भगवत्सेवामें ऐसी दृढ प्रीति है कि इनको भगवत्सेवाके सिवाय किसी समयभी दूसरा काम नहीं. सबके सब यह सदाही भगवान्के स्वरूपका चिन्तवन करके सेवा और रूपके आनंदमें मग्न रहते हैं और कभी उससे पृथक् नहीं होते; उनमेंसे एक एकको यह सामर्थ्य है कि, करोडों ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न कर पालन और नाश कर सकते हैं, भगवान्के पार्षद भगवान्केही स्वरूप हैं. यदि कोई कहे कि जन्ममरणसे बाहर है तो सनकादिके शापसे जय विजयके तीन जन्म किस कारणसे हुए तो उसका उत्तर यह है कि, यदि मुक्त पुरुष मनुष्य तन धारण करके पृथ्वीपर रहे तौभी उनके निमित्त आवागमन नहीं लगता. जैसे नारद सनकादि, वशिष्ट आदि सिवाय इसके प्रयोजन होनेपर परब्रह्म परमात्माभी अवतारद्वारा शरीर धारण करते हैं. यदि उस सर्वज्ञ भगवान्के निमित्त आवागमनका निश्चय किया जाय तो पार्षदोंके निमित्तभी हो सके और ऐसा संयोग कभी न हुआ कि जब पार्षदोंके जन्म हुआ तो उस अजन्मा अविनाशीका जन्म न हुआ हो. इससे यह निश्चय हुआ कि जिस प्रकार कोई राजा विदेशको जाता है तो पहले अपनी सब सामग्री डेरे और नौकरादिको भेज देता है, पीछे आप जाता है. इसी प्रकार जब कभी भगवान्का पूर्ण अवतार हुआ तो जो २ चरित्र करना विचारा उसकी उपयुक्त सामग्री पहलेहीसे भेज दी. यह बात वाराहीसंहिता और गर्गसंहितामें लिखी है कि भगवान् अपनी इच्छा इस संसारमें भक्तोंके उद्धारके निमित्त अपना रूप प्रगट कर लेते हैं और हरिलीला विस्तार कराते हैं, फिर

संदेहकी कौनसी बात है. जब कि उन्होंने केवल भगवान्‌की इच्छानु-सार देह धारण करी है और उनकी आज्ञाके अनुसार काम करके फिर उसही लोकको चले गये, तब फिर आवागमन कब हो सकता है. अब इससे यह इष्ट उत्पन्न हुआ कि भगवान्‌की सेवाके उपासक एक क्षणकोभी वियोग नहीं कर सकते. जैसे वनमें चलते समय श्री-रामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे अयोध्यामें रहनेके लिये कहा था, तो वहभी भगवान्‌की सेवाके उपासक थे. उन्होंने उसकी आज्ञाको नहीं माना और उनके साथ चले गये. फिर ईश्वरके दो पार्षद जय विजयको भगवान्‌की सेवाका वियोग किस कारणसे हुआ ? इस प्रश्नका उत्तर इतना उत्तम है कि उन्होंने वियोगका हार्द यह समझा कि, भगवान्‌-का अवतार जो हमारे मारनेके निमित्त कईवार होगा और उनके चरित्रोंको कीर्तन करके संसारके मनुष्य भगवान्‌की सेवा करेंगे तो वह सेवा हमारे पक्षसे होगी फिर इससे उत्तम और क्या है. जो कि हमारी सेवाकी संप्रदायसे और अगणित सेवा करनेवाले हो जांय इसी कारणसे वियोगका आग्रह किया और उनका वह विचार सत्यही हुआ और अगणित राक्षस दैत्य भगवान्‌की भक्ति करनेसे भगवान्‌के पदको प्राप्त हो गये.

हनुमानजीकी कथा ४.

श्रीमान् हनुमान्‌जीके चरित्र और उनकी भक्ति कौन कह सकता है. हनुमान्‌जीके ऐसे पवित्र चरित्र हैं कि उनके चरित्रोंको श्रवण कर स्वयं श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न होते हैं कि महावीरकी समान कोई उपकारी नहीं, यह बार २ कहते हैं. श्रीरामचंद्रजीके चरित्र जो संसारसमुद्रको पार उतारनेके लिये दृढ जहाज है और हनुमान्‌जीके चरित्र उनके निमित्त वर्द्धवान हैं. हनुमान्‌जीकी महिमाका कौन वर्णन

कर सकता है कि, समस्त ब्रह्मांड उनकी सेवा और कृपाको धन्य २
कहता है कि सीता महारानी जगज्जननीको तो भगवान्‌का संदेशा
और रावणके मारनेका समाचार सुनाकर और फिर रामचंद्रजीकी
सेवामें उनको प्राप्त कर बडाई पाई और श्रीलक्ष्मणजीके निमित्त संजी-
वनी लाये और उनको मृत्युके हाथसे छुटाया. फिर भरत और शत्रुघ्न
तथा समस्त अयोध्यावासियोंको भगवान्‌के आनेका समाचार
सुनाया. जब रावण मारा गया तो संपूर्ण देवताओंने हनुमान्‌जीकी
प्रशंसा करी. भगवान्‌के चरित्र समस्त संसारमें प्रगट करके सब
संसारी मनुष्योंको उपासक और अपनी कृपासे परम पदका अधिका-
कारी किया. ऐसा कोईभी नहीं कि जिसके निमित्त हनुमान्‌जीने
उपकार न किया हो. जो कि आप श्रीरामचंद्रजीने अपनी जिह्वासे
कहा है कि हे हनुमान् ! मैं तेरा बदला नहीं दे सकता. मैं सर्वदा
तुम्हारा ऋणी हूं, जो कि बहुत विद्वान् होनेसे हनुमान्‌जीका आचार्य
होना शास्त्रोंमें लिखा है. शास्त्रविद्या, ब्रह्मविद्या, गानविद्या, व्याक-
रण और साहित्यशास्त्रमें आचार्य और गुरुकी पदवी हनुमानजीको
दी है. यह शिवजी महाराजका अवतार है और केवल श्रीमहाराज
रामचंद्रजीकी सेवा करनेके निमित्त अवतार लिया है, परन्तु सेवा-
निष्ठामें इस कारण लिखा गया कि स्वयं भगवान्‌ने उनको सेवाके
प्रमाण वर्णन करे और यह सर्वदाही उनकी सेवामें उपस्थित रहे
उनको भगवान्‌के नाममें इतना प्रेम है कि जब श्रीरामचंद्रजी
लंकाको जीतकर अयोध्याजीमें आये तो बिभीषणजी भगवान्‌के
निमित्त भेंट करनेको एक अत्यन्त सुन्दर रत्नोंकी माला समुद्रसे
मांगकर लाये और फिर जिस समय श्रीरामचंद्रजी राजसिंहासनपर
शोभित हुए तो उस समय वह माला भेंट करी. उस समय देवता
इत्यादिक समस्तही यह चरित्र देख रहे थे. उसे देखकर देवताओंको

यह इच्छा हुई कि, यह माला हमको मिल जाय, तब भगवान्ने विचारा कि, माला तो एक है और इनके लेनेवाले असंख्य हैं इस कारण ऐसे मनुष्यको देनी उचित है कि जिसको इसकी इच्छा न हो यह विचारकर हनुमान्जीको पहरा दी; तब हनुमान्जीने उसको देखकर यह विचारा कि इस मालामें प्रगटमें तो कोई भगवान्की भक्तिकी बात दृष्टि नहीं आती, परन्तु इसके भीतर कोई बात अवश्यही होगी इस कारण एक दानेको प्रथम तोडा परन्तु जब उसमें भगवान्की भक्तिका कोई चिह्न न देखा तो दूसरा तोडा जब उसमेंभी कोई चिह्न न पाया तो पृथ्वीपर डाल दिया इसी प्रकार बहुतसे दाने तोड डाले. हनुमान्जी जो दाना तोडते थे तो मालाके चाहनेवालोंका मन दुःखित होता था और अपने मनही मनमें यह कहते थे कि भगवान्ने यह माला विना विचारे कैसे अज्ञानीको दे दी है कि वह जिसका गुण नहीं जानता. अंतमें जब एक मनुष्यसे न रहा गया तो उसने हनुमान्जीसे पूंछा कि हे कपिराज ! तुम किस कारणसे इस अमोल रत्नोंकी मालाको तोड डालते हो? तब हनुमान्जी बोले कि मैं इस मालाको बिगाडता नहीं हूं केवल इन दानोंमें रामनामको ढूंढता हूं तब उस मनुष्यने कहा कि हे महाराज! कहीं ऐसी वस्तुमेंभी रामनाम होता है? तब हनुमान्जी बोले कि रामनामके विना यह किस अर्थकी है. तब उसने कहा कि जब यह दशा आपके इष्टकी है तो अवश्यही आपके शरीरके भीतरभी रामनाम होगा. तब हनुमान्जीने कहा कि इस बातको प्रत्यक्ष दिखाना योग्य है, यह विचार कर अपना चर्म उतारकर दिखाया तो उनके शरीरके एक २ रोममें रामनाम लिखा हुआ था, तब सब मनुष्य हनुमान्जीकी ऐसी भक्तिको देखकर अचंभित हो गये और फिर सब हनुमान्जीकी भक्तिके इष्ट हुए. गीताशास्त्र जो महाभारतमें भगवान्ने अर्जुनको

उपदेश किया था तो उस समय हनुमान्‌जीभी अर्जुनके रथपर विराजमान थे. अर्जुन तो उस उपदेशको भूल गया परन्तु इनको एक २ अक्षर याद रहा. भगवान्‌ने टीकाके निमित्त आज्ञा दी तब हनुमान्‌जीने शास्त्र और मर्यादाकी अनुसार टीका बनाया, सो आजतक हनुमान्‌भाष्य प्रगट है. जो भारतके समय स्वयं भगवान्‌ने अर्जुनकी सहायता करी थी. परन्तु हनुमान्‌जीकाभी वह प्रताप हुआ कि भगवान्‌ने आप उनकी प्रशंसा करी. जो कि महाभारतमें उत्तम रीतिसे प्रगट है.

दोहा—पवनतनयके दृढ चरित, को कवि पावै पार ।
जिनके सुमिरण ध्यानसे, सहज छुटै संसार ॥

राजा जगत्सिंहकी कथा ९.

राजा जगत्सिंह आनंदसिंहके बेटे भगवान्‌की भक्ति और साधुओंकी सेवा करनेवाले देशमें विख्यात हुए यह सच्ची प्रीति भगवान्‌की सेवामें ऐसी रखते थे कि कभी डगमग नहीं हो सकती थी. जितना जगमें ऐश्वर्य और धन असंख्य था वैसाही भक्तिका ऐश्वर्यभी था. प्रेमसे भक्तोंको अर्पण करते थे. अपने मनमें प्रीति रखते थे जिन्होंने लक्ष्मीनारायणको अपनी सेवासे वशीभूत कर लिया और संसारमें ऐसी निर्मल कीर्ति फैलाई कि जो करोडों मनुष्य भगवान्‌से विमुख थे वेभी भगवान्‌की भक्ति करने लगे. उनका दंड ऐसा था कि शत्रु बेंतकी समान कांपते थे. जिस प्रकार सूर्यके तेजसे अंधकारका आपही नाश हो जाता है इसी प्रकार सब शत्रु नाश हो गये. उनकी आज्ञा ऐसी थी कि, समस्त प्रजाको अपने न्यायसे प्रसन्न रखते थे. उनकी लक्ष्मीनारायणकी सेवाका यह नेम था कि जब कभी अपनी राजधानीसे बाहर जाते तो भगवान्‌की पालकी सबसे प्रथम चलती

और आप चाकरकी समान उसके पीछे २ चलते. फिर जब कभी किसीसे लडाई होती और इनके बराबरका शत्रु इनके पास आ जाता तो सेनाके पति स्वयं भगवान् होते और आप मंत्रीका काम करते थे. जितना काम प्रातःकालसे लेकर भगवान्की सेवा बुहारी, चौका, पाक, पात्र. मंजन, शृंगार आदिका होना सो सब अपनेही हाथसे करते और भगवान्की सेवाके लिये पानी अपने हाथसे भर लाते थे. शाहजहानाबादमें जगत्सिंह और दूसरे राजा जैसे जसवंत-सिंह उदयपुरके और जयसिंह जैयपुरके टिकेत थे. जब सबने यह स्व-रूप भगवान्की सेवाका देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और अपनी तरफको देखकर मनही मनमें अत्यन्तही लज्जित हुए. एक समय राजा जसवंतसिंह और जयसिंहको जल लाते समय राजा जगत्सिंहके दर्श-नोंकी इच्छा हुई, तो दो चार घडी रात्रि रहे उसी मार्गपर जा बैठे और उनको इस समाजके साथ दर्शन हुए कि सौ दो सौ सिपाही सैकडों नौकर चाकरोंके सहित स्वयं राजा अपने शिरपर जलका घडा भगवा-न्की सेवाके लिये आ रहे हैं. जिह्वापर रामनाम तथा मनमें भगवान्का स्वरूप तिलक और माला धारण किये हुए नंगे पैरों जाते थे. उस समय दोनों राजाओंकी सामर्थ्य न रही और साष्टांग दंडवत करके उनके चरणोंमें गिर पडे. फिर हाथ जोडकर विनती करके बोले कि, जीवनका सुख भगवान्ने तुम्हीको दिया है कि भक्तिका सुख और राज तो इस संसारमें प्राप्त हुआ परमधाम और भगवान्का स्वरूप उस लोकमें प्राप्त होगा. फिर राजा जगत्सिंहने राजा जयसिं-हसे कहा; कि मैं अधम भगवान्की 'सेवाके योग्य किस प्रकारसे हूं. तुम्हारी बहन अवश्य भगवद्भक्त है, उसीके सत्संग और कृपासे थोडी २ मेरी चित्तकी वृत्तिभी भगवत्सेवाकी ओर लगी है. तब राजा जयसिंह अपनी बहन द्वीपकुँवरिकी भक्तिका प्रताप देखकर

बहुतही प्रसन्न हुआ और किसी कारणसे जो बहनसे अप्रसन्नता थी उसको मनसे दूर कर दिया और जो उसके गांव अपने अधिकारमें कर लिये थे सो सब छोड दिये और बहुतसे आभूषण तथा वस्त्र उनकी भेंट कर अपना अपराध क्षमा कराया. फिर द्वीपकुँवरिने अपराध क्षमा कर दिया. इसके पीछे एक पत्र अपने भाईको लिखा और उसमें भगवान्‌की भक्ति तथा साधुसेवा करनेकी आज्ञा दी. हे भगवन् कृपासिंधो महाराज ! इस पापी और मंदमतिपरभी ऐसी कृपा करो कि, जो अहंकारादि दुर्मतिको छोडकर यह आपकी चरणशरणमें प्राप्त हो.

कुँवरकिशोरजीकी कथा ६.

राजा खेमालके पोते कुँवरकिशोरजी भगवान्‌की भक्तिमें परम भक्त हुए और उन्होंने भगवान्‌की भक्तिका प्रचार करके अपनी समस्त प्रजाको भगवद्भक्त बना दिया. इनकी अवस्था तो थोडीही थी परन्तु वृद्धोंसेभी अधिक भगवान्‌की भक्ति करी. जो मार्ग इनका परम्परासे चला आता था; उसका ऐसा निर्वाह किया कि, रेखामात्र न चलायमान हुए. फिर कितनेही दिनोंके उपरान्त जब इनके दादा खेमालका देहान्त होने लगा तो इनके बेटे उनके समीप हाथी, अश्व और समस्त संसारकी वस्तुएँ लाये और बोले कि हे पिता ! यह सब आपके सन्मुख उपस्थित हैं; इसमेंसे जो तुम्हारी इच्छा हो सो संकल्प कीजिये; शोच न करो. राजाने उनसे कहा शोच कुछ नहीं है, जो काम संसारमें विख्यात होनेके थे और दान करनेके योग्य थे सो सब कर लिये; परन्तु दोही बातोंकी चिन्ता रही; एक तो भगवान्‌की सेवाके निमित्त कभी जलका कलशा भरकर शिरपर नहीं लाया और दूसरी बात यह है कि न कभी नूपुर बांधकर भगवान्‌के

सन्मुख नृत्य किया. राजाके बेटे इस बातको सुनकर चुप हुए परन्तु पोते कुँवरकिशोरजीने खडे होकर हाथ जोड यह विनती करी कि हे पितामह ! मुझ दासको कुछ आज्ञा दीजिये; मैं जबतक जीवित रहूंगा तबतक आपकी आज्ञा पालन करनेमें कटिबद्ध रहूंगा और मेरी बात कभी असत्य न होगी. राजा कुँवरकिशोरजीके ऐसे वचनोंको सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुआ और उसी अवस्थामें खडा हो गया और फिर कुँवरकिशोरजीको छातीसे लगा लिया. फिर उसे दोनों बातोंकी आज्ञा दी और परमधामको चला गया. इसके उपरान्त कुँवरकिशोरने उस राजाकी आज्ञाका ऐसा निर्वाह किया कि लेखनीको लिखनेकी सामर्थ्य नहीं है. देह तो उन्होंने भगवान्‌की सेवामें लगा दी और जिह्वासे भगवान्‌के चरित्रोंका कीर्तन किया और उसने भगवान्‌की भक्तिका ऐसा प्रचार किया कि उनकी समस्त भक्तोंने उस समयमें प्रसंशा करी.

नरहरयानंदकी कथा ७.

नरहरयानंदजी ऐसे परम भक्त हुए कि इनको दिन रात भगवान्‌की सेवाके अतिरिक्त और कुछभी काम न था और वह सर्वदाही भगवान्‌की सेवाकी तैयारीमें थे, एक दिन वह भगवान्‌की रसोईके चौका बरतन करके भगवान्‌की रसोई करनेको चले तो उनको घरमें लकडियें न मिलीं और उस समय जल अधिक वर्ष रहा था, इस कारण बाजारमेंभी न मिली. जो कि भगवान्‌की सेवा मुख्य है; और जिससे सब देवताभी प्रसन्न होते हैं. इस कारण भगवान्‌की रसोईमें विलम्ब होना उन्होंने योग्य नहीं समझा. एक स्थान दुर्गाका उनके समीप था उसका छप्पर उतारने लगे तब दुर्गाजी इनकी भगवान्‌की सेवामें इतनी प्रीति देखकर प्रसन्न हुई और नरहरयानंदजीसे बोली कि

तुम मेरे स्थानको मत बिगाडो. लकडियें तुम्हारे घर पहुँच जांयगी. नरहरयानंदजी दुर्गाजीकी ऐसी आज्ञाको सुनकर वहांसे चले आये और लकडियें थोडी २ एक २ दिनकी पहुँचती रहीं. एक स्त्री इनके पडोसमें रहती थी वह इस चरित्रको जान गई और वह अपने पतिसे बोली कि नरहरयानंदजीने दुर्गाजीको धमकाया और उनको भयभीत करा था सो दुर्गाजी इसके यहां इस कारणसे लकडियें रोज भेजती है. यदि जो तुमभी ऐसा करो तो तुम्हारे घरभी नित्य-प्रति लकडियें आ जाया करेंगी. वह तो मूर्खही था. स्त्रीके ऐसे वचन सुनकर दुर्गाजीके स्थानपर पहुँचा और प्रथमही हाथ डाला कि दुर्गा महारानीने उसका शिर तो नीचेको और पैर ऊपरको करके लटका दिया. फिर जब यह अत्यन्तही दुःखित हुआ तो इसने चिल्लाना प्रारम्भ किया हे दुर्गा महारानी ! मेरी रक्षा करो. मैं तुम्हारी शरण हूं; फिर मैं कभी ऐसा नहीं करनेका. तब दुर्गाजीने कहा कि, जो तू मेरी लकडियें सर्वदा नरहरयानंदजीके स्थानपर पहुँचाता रहे तो तुझको जीवदान दिया नहीं तो मैं अभी मार डालूंगी. तब उसने पराधीन होकर लकडियोंका पहुँचाना स्वीकार किया, दुर्गाजीके पास जो बेगार थी सो टल गई. सत्य है कि माताका स्वभाव पुत्रकी पालनामें रहता है. दुर्गाजीने देखा कि भगवान् भूंखे रहेंगे, इस चिन्तासे लकडियोंका पहुँचाना स्वीकार कर लिया नहीं तो करोडों ब्रह्मांडोंका नाश करनेकी उस भगवतीमें सामर्थ्य है उसे कौन भय दे सकता है ?

प्रेमनिधिजीकी कथा ८.

आगरेके रहनेवाले जातिके ब्राह्मण प्रेमनिधिजी अपनी भक्तिसे भक्तोंके मनको आनंदके देनेवाले हुए और यह अपना समय भग-

भगवान्के भजनमेंही व्यतीत करते थे. यह सर्वदा प्रभातही उठकर भगवान्की सेवाके लिये यमुनाजीसे जल भरकर लाते. एक समय वर्षाऋतुमें एक स्थानपर अधिक कीचड हो रही थी सो यह विचार करने लगे कि यदि जो सूर्योदय होनेपर जल लावेंगे तो रस्ता चल निकलेगा और जो किसी नीचजातिके मनुष्यसे जल छू गया तो वह फिर किसी अर्थका न रहा, और जो सूर्योदय होनेसे प्रथम जाते हैं तो मार्गमें कीचड अधिक है. यदि कहीं रपटकर गिर गये तो यों गये. अंतमें उन्होंने यही विचारा कि सूर्योदयसे प्रथमही चलना योग्य है. यह विचार कर कलशा शिरपर धरकर जल लेनेके निमित्त चले. उनकी ऐसी सेवासे भगवान् तत्काल प्रसन्न हो गये और बारह वर्षके लडकेका स्वरूप धारण कर प्रेमनिधिजीके आगे २ हो लिये. प्रेमनिधिजीने उस मसालचीका स्वरूप देखा कि नेत्र तो रसीले, रंग हरा, घूंघरवाली अलकें, कुसुंभी चीरा बांधे, कमर मसालचियोंकी समान कसी हुई और हाथमें मसाल. ऐसे परम सुन्दर स्वरूपको देखकर प्रेमनिधिजी मोहित हो गये. विचारने लगे कि यह अपने स्वामीको घर पहुँचाकर घरको जाता होगा परन्तु उसके देखनेकी लालसा इनके मनमें रही. जिस मार्गपर प्रेमनिधिजी चले इनके साथ २ ही वह चला. जब प्रेमनिधिजी यमुनाजीपर पहुँचे और स्नान करके यमुनाजलका घडा अपने शिरपर रखकर चले तो वह साथ आया. फिर घर आकर घडेको तो भगवान्के मंदिरमें रख दिया और आप उस मसालचीको ढूंढने लगे, परन्तु उसका कुछभी पता न चला. तब विचारने लगे कि ऐसा परम सुन्दर लडका व्रजकिशोरके अतिरिक्त और कौन हो सकता है और उस जगदीश्वरके सिवाय ऐसा कौन है कि जो अपने सेवकके किंचित् दुःख होनेके निमित्त मसाल हाथमें लेकर मार्ग बताता

हुआ चले, कि जिसका पार वेद और ब्रह्माभी नहीं पाते, उसके साक्षात् हमको दर्शन हुए, यह विचारकर उनके प्रेममें मग्न हो गये. उनका यह नेम था कि जब वह भगवान्‌की सेवासे निवृत्त होते तो भगवान्‌के चरित्र कीर्तन किया करते थे और अत्यन्तही प्रेमसे उनकी कथा कहते. उनकी कथामें श्रोता अधिक आते थे, फिर जब कथा समाप्त हो जाती थी तो गाना होता था और समस्त मनुष्य भगवान्‌की भक्तिमें पूर्ण हो जाते थे और जो पापी तथा दुष्ट मनुष्य थे उनको यह वार्ता अच्छी नहीं लगती थी तब वह विघ्न करनेको तैयार हुए और कहने लगे कि प्रेमनिधि कथाके बहानेसे तमाम नगरकी स्त्रियोंको इकट्ठा करता है यही कारण मुख्य रखकर उन्होंने झगडा किया; तब बादशाहसे कहा. उन्होंने एक चोबदारको प्रेमनिधिजीके पास भेजा, उसने आकर इनसे कहा कि, तुम बहुत शीघ्र हाजिर हो ऐसी बादशाहकी आज्ञा है. उस समय प्रेमनिधिजी भगवान्‌के लिये जल लेकर जाते थे चोबदारकी शीघ्रताके कारण भगवान्‌को जलपान कराना भूल गये और उसी समय बादशाहके पास गये फिर बादशाहने इनसे पूछा कि यह लोग तुम्हारे विषयमें वार्ता कहते हैं सो क्या सत्य है? तब प्रेमनिधिजीने जो कुछ वृत्तान्त था सब बादशाहके समीप सत्य २ वर्णन कर दिया और कहा कि मैं तो भगवान्‌की कथाका कीर्तन किया करता हूं, उस समयमें किसी स्त्री पुरुषके आनेको नहीं रोका जाता और उनको बुरी दृष्टिसे बुरा देखना तो क्या मनसेभी बुरा नहीं देखा जाता. तब बादशाहने कहा कि, तुम्हारे साथियोंनेही कुछ तुम्हारी खोटी कही है; यह कहकर प्रेमनिधिजीको महलमें नजरबंद कर दिया और फिर अपने महलको चला गया. फिर जब रात्रिको बादशाह सोया तो भगवान्‌ने उसको स्वप्न दिया कि इस समय हमको

प्यास लगी है, तब बादशाहने कहा कि पानी घरमेंसे लिये आता हूँ उसको पी लेना, तब तो भगवान्‌को क्रोध आ गया और बादशाहसे बोले कि तुम्हारे घरका पानी कौन पीता है और उसके एक लात मारी कि तू हमारी बात नहीं सुनता. बादशाहने कहा कि जिसको आप आज्ञा दें वही पानी लावे तब भगवान्‌ने कहा कि जो हमको पानी पिलानेवाला है उसको तो तैंने बंधनमें डाल रक्खा है, अब पानी हमें कौन पिलावे ? बादशाहकी उसी समय आंख खुल गई और उठतेही प्रेमनिधिजीको बुलाया और अपना शीश उनके चरणोंमें रखकर कहा कि आप अतिशीघ्र घरको पधारिये जो कि भगवान् प्यासको दूर करनेवाले हैं वह स्वयं प्यासे हैं. उन्हें पानी पिलाओ और आप मुझको अपना दास समझो और जो कुछ आज्ञा दो तो उसको मैं कर लाऊं. यह द्रव्य धन जो चाहिये सो लो. प्रेमनिधिजीने विचारा कि भगवद्भक्तोंको भगवान्‌के सिवाय किसी अनित्य पदार्थकी इच्छा नहीं होती, इस कारण कुछभी न लिया, और बादशाहने मसाल साथ देकर प्रेमनिधिजीको उनके स्थानतक पहुँचा दिया और प्रेमनिधिजीने उसी समय भगवान्‌को जल अर्पण किया भगवान्‌की तृषा दूर हुई.

जयमलकी कथा ९.

मीरथके राजा जयमलभी भगवान्‌के परम भक्त हुए. कोई २ इनको मीराबाईका छोटा भ्राता बताते हैं. यह दस घडी दिन चढे तब भगवान्‌की पूजा तथा उनकी सेवामें लगे रहते थे और इनकी यह आज्ञा थी कि जिस समय हम भगवान्‌की पूजा करता हूं उस समय कोई मनुष्य हमारे सन्मुख न आवे. यदि जो आवेगा तो दंड मिलेगा इसका कारण यह है कि भगवान्‌की सेवाके समय जो कोई आ

जायगा तो उसकी ओर ध्यान चला जायगा, इससे भगवत्सेवामें विघ्न पडेगा. उसके शत्रुओंने जब यह जाना तो जिस समयमें राजा पूजन करते थे, उसी समय फौज लेकर राजाकी राजधानीपर चढ आये और जब उसके चढ आनेका कुलाहल हुआ तो राजाकी समस्त प्रजा भयभीत हुई और राजाके भयके मारे राजासे कहनेको न गई परन्तु राजाकी माताने राजासे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, तब राजाने उत्तर दिया कि तुम किसी बातकी चिन्ता न करो. भगवान् सब कृपा करेंगे. यह कहकर भगवान्की सेवामें मन लगाये रहे, शत्रु सूदन महाराज श्रीभगवान् अपने भक्तोंकी सहायतामें आठों पहर शस्त्र और खड्ग बांधे हुए उपस्थित रहते हैं, सो उसी समय राजाके घोडेपर सवार होकर शत्रुकी सेनापर पहुँचे और एक पलभरमें सम्पूर्ण लश्करको भगा दिया. फिर जब राजा जयमल भगवत्पूजासे निवृत्त हुआ तो आप शत्रुसे लडाई करनेके लिये चला, तो जो उसकी सवारीका घोडा पसीनेमें भीगा हुआ था उसको देखकर राजाको बडा आश्चर्य हुआ, परन्तु लडाईमें जानेकी शीघ्रतासे कुछभी विचार न किया और उसी समय दूसरे घोडेपर सवार होकर अपनी सेनाके सहित लडाई करनेको चल दिये. तब जातेही संग्राममें अपने शत्रुको पृथ्वीपर अचेत पडा हुआ देखा. उसने राजासे पूछा कि, तुम्हारी सेनामें श्यामसुन्दरस्वरूप परम अनूप सिपाही कौनसा है, कि जिसने अकेलेही आकर मेरी सम्पूर्ण सेना मार डाली और मेरा जीवनभी अपने साथ ले गया. तब राजा जयमलने उत्तर दिया कि मुझको उस सिपाहीने आजतक स्वप्नमेंभी दर्शन नहीं दिये थे सो आज तुमको प्रत्यक्ष दर्शन हुए; तब उसको यह विश्वास हो गया कि यह भगवान्‌ही थे. तब वहभी भगवान्‌की भक्ति करके कृतार्थ हो गया. एक समय राजा जयमलको ग्रीष्मऋतुमें यह विचार हुआ कि भगवान् तो

नीचेके मंदिरमें शयन करे हैं जहां कि पवन भली प्रकारसे नहीं आती है और हम ऊपरके स्थानपर शयन करें, यह विचार कर उस मकानको दुमंजला और तिमंजला बनवाया और उसे छत्त परदे इत्यादिकसे भली प्रकार सजाया. उसमें एक सोनेका पलंग अति सुन्दर तोसक तकियेसे सजाया और रात्रिके आनंदकी सम्पूर्ण सामग्री मिठाई, पानदान, अतरदान, उगालदान इत्यादि समस्त वस्तु रखकर भगवान्‌को मानसी ध्यानसे उसमें शयन कराया और आप शस्त्र बांधकर भगवान्‌के ध्यानमें बंगलेके चारों तरफ चोकसी करते फिरते रहे. वह सर्वदाही बंगलेके सुधारने और बरतन धोने तथा बुहारी देनेकी सेवाको अपने हाथसेही किया करते थे और उस सेवामें नोकर चाकरोंको हाथ न लगाने देते थे. जब भगवान्‌ने अत्यन्तही प्रेम राजाका अपनी सेवामें देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए. गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि जिस प्रकार मेरे भक्त मेरा सेवन करते हैं मैं उसी प्रकार उनको दर्सोता हूं. भगवान् उस सेवासे ऐसे प्रसन्न हुए कि जो कुछ उसमेंसे मिठाई खाते, दँतोन करते, उगालदानमें पीक डालते. पान चाबते थे सो उसके चिह्न प्रभातकोही दृष्टि आते थे. राजा ऐसी भगवान्‌की कृपाको देखकर उनके आनंदमें मग्न होकर प्रेमके समुद्रमें गोते लगाये करता था इसी प्रकारसे बहुत दिन व्यतीत हो गये. बहुत दिनतक राजा महलमें न गये तो रानीने विचारा कि राजा उस बंगलेमें किसी स्त्रीको बुलाता है. इस संदेहके निवृत्त होनेके निमित्त अपनी छत्तपर चढकर देखा तो एक लडका तरुण अवस्थाका, परम शोभायमान, अत्यन्त सुन्दर, श्यामस्वरूप पीताम्बर पहरे हुए, सुखपूर्वक शयन करता हुआ पाया. तब वह भगवान्‌की भक्तिकी विश्वासी हुई और प्रातःकाल होतेही समस्त वृत्तान्त राजाके आगे वर्णन किया. प्रथम तो राजा रानीके इस भांति

छिपकर देखनेसे अत्यन्तही क्रोधित हुआ. परन्तु फिर विचारा कि स्त्री अत्यन्तही भाग्यवान् है, जो इसको भगवान्के दर्शन हुए.

आसकर्णराजाकी कथा १०.

महाराज भीमसिंहका पुत्र नरवरगढका राजा कछवाहे आसकर्ण-स्वामी कील्हजीका शिष्य धर्मात्मा और अत्यन्तही बुद्धिमान् मधुर-भाषी साधुओंकी सेवा करनेवाला श्रीजानकीवल्लभ और राधावरका प्रेमी हुआ. यह श्रीरघुनंदनस्वामी और श्रीकृष्ण महाराजको एकही स्वरूप जानते थे और उपासकोंकी भांति दोनोंमेंसे किसीकोभी कम नहीं समझते थे और दस घडी दिन चढेतक भगवान्की सेवा किया करते थे और उन्होंने द्वारपालोंको यही आज्ञा दे रक्खी थी कि हमारी पूजाके समय कोई मनुष्य हमारे सन्मुख न आने पावे और चाहे जितनाही आवश्यकीय कार्य क्यों न हो हमको खबर न दी जाय. दैवसंयोगसे उसी समय बादशाहकी सवारी आई और प्रातःकाल किसी आवश्यक कार्यके लिये इन्हें बुलाया; जब शाहके दूत आये तो किसीने उनके नोकरोंकी आज्ञापर कुछभी ध्यान न दिया और राजा-कोभी खबर न पहुँचाई फिर बादशाहके नोकरोंने जाकर बादशाहसे कहा कि हमारी बात किसीने कुछभी नहीं सुनी; तब बादशाहने लड-नेके लिये सेनाको तैयार किया; परन्तु राजाको जबभी कुछ खबर नहीं मिली, तब बादशाहके सेनापतिने कहला भेजा कि आपके सेना भेजनेपरभी किसीने राजाको कुछभी खबर नहीं करी. यदि आज्ञा हो तो युद्ध करना प्रारंभ करें. यह सुनकर बादशाह आप आया, तब द्वारपालोंने केवल बादशाहहीको भीतर जाने दिया. तब बादशाहने देखा कि आसकर्ण भगवत्सेवासे निवृत्त होकर साष्टांग दंडवत् कर रहे हैं, बहुतही देरतक बादशाह खडा रहा और अंतमें उसने अपनी

तलवार निकालकर राजाके पैरमें मारी, उसके प्रहारसे एडी कट गई तथापि राजाको विदित न हुआ और न कुछ प्रहारका दुःख हुआ. कारण कि उसका तो चित्त भगवान्‌के स्वरूपमें मग्न हो रहा था. जिस प्रकार भगवान्‌ने कहा है कि जिसका चित्त मेरे चरित्रोंमें लगा है तो उनको सुख दुःख विदित नहीं होते हैं. फिर राजाने साष्टांग दंडवत् कर भगवान्‌के द्वारपर परदा डाल दिया और आप बाहरको आये तो बादशाहको अपने स्थानपर खडा हुआ देखा तब तो उसका यथायोग्य आदर सत्कार किया; फिर जब बादशाहने राजाका भगवान्‌की भक्तिमें ऐसा दृढ विश्वास देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और लज्जित होकर अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना करी और समस्त राजाओंमें उपमायोग्य समझा और फिर थोडेही दिनोंके पीछे राजा परमधामको गया तो बादशाहको महादुःख हुआ और श्रीमोहनजीकी सेवाके निमित्त कई एक गांव उनके नाम लिख दिये सो वह आजतक माफ हैं.

अथ

अठारहवीं निष्ठा उपमा और सौहार्दमहिमा।

(इसमें छः भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी अष्टकोण रेखाको दंडवत् कर कल्किअवतारको प्रणाम करता हूं कि जिसको निष्कलंक कहते हैं और यह निष्कलंक अवतार संभलग्राममें कलियुगके अंतमें होगा, तब कलियुग और समस्त पापोंका नाम इस

संसारसे उठा देंगे. यह तो प्रत्यक्षही है कि जितने सम्बन्ध संसारपर हैं वह नौ सम्बन्धोंमेंसे निकले हैं. शेष शेषी, दूसरा अंश अंशी और तीसरा शरीर शरीरी और चौथा पति पत्नी और पांचवां पूज्य और पूजक और छठा सेव्य और सेवक और सातवां रक्ष्य और रक्षक आठवां जनक जननी और नववां गुरु और शिष्य, सो जो ऊपरके सम्बन्धोंमें भली प्रकार दृष्टि कर देखा जाय तौ अंतकी पदवी ईश्वरहीपर समाप्त होगी. इस ओर तो जीवपर प्राप्त होती है सो विस्तारसे सेवानिष्ठामें लिखी गई और जो वर्णन वहां शेषशेषीका लिखा गया, वही सम्बन्धोंके लिये यहां समझ लेना उचित है, परन्तु शीघ्रतासे समझनेके लिये एक दो सम्बन्धका वर्णन यहांभी लिखता हूं जिस प्रकार पूजनके योग्य या सेवाके योग्य या रखवाला वा किसी सम्बन्धवाला जो सबसे बडा हो और तीनों कालमेंभी सदा उस सम्बन्धकी रीतिको जाननेवाला और निर्वाह करनेवाला और देनेवाला जो अच्छी तरह ढूंढा जाय तो भगवान्के अतिरिक्त और कोई अच्छा नहीं, इसी कारण अंशी रक्षक और पति वा पूज्य अथवा पिता इत्यादिक नाम भगवान्के विष्णुसहस्रनाम और सहस्रनामस्तोत्रोंमें लिखे गये हैं इसी रीतिसे उधरकी अंतकी कक्षा भगवान्पर समाप्त हुई है और पूजा करनेवाला, सेवा करनेवाला या रखवाली करनेवाला ढूंढा जाय तो जीवपरही यह दशा समाप्त होती है. जीवसे अच्छा इस सम्बन्धमें कोई नहीं है, उस मनुष्यका शरीर मुख्य सम्बन्ध अर्थात् नातेदारी ईश्वर और जीवपर समाप्त हुई है और यह सम्बन्ध सनातन आदि अर्थात् जिस दिनसे यह जीव ईश्वरके अंशसे प्रगट होकर जीवनामवाला हुआ है, तबसे इसमें बडाई यह है कि आगेकोभी सर्वदा बना रहेगा; जब कि ऐसा सम्बन्ध अनादिसे ईश्वर और जीवसे बन रहा है तो अत्यन्त योग्य आवश्यक

है कि जो सम्बन्ध और नाते प्रत्यक्ष संसारमें हैं वह भगवान्के साथ समझने चाहिये और इसी विषयमें भगवद्वाक्य है जो मुझको अपना सम्बन्धी जानकर सेवन करता है वह मुझको प्राप्त होता है और श्रीमद्भागवत महाभारत इस बातकी साक्षी देते हैं और गीता तथा महाभारतके शांतिपर्वमें वारंवार यह संवाद आया है कि जिस भावसे मनुष्य भगवान्का आराधन करता है, वह उसी भावसे उसको प्राप्त होते हैं और सैकडों हजारों कथा पुराण इस भक्तमालकी साक्षी देते हैं नहीं तो कहां वह पूर्ण सच्चिदानंदघन जिसको वेद नेति २ कहते हैं और जिसके स्वरूप ज्ञान और महिमाके वर्णनमें ब्रह्मा शिवभी थकित हो जाते हैं और कहां उसके राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन इत्यादि अवतार धारण करके प्रत्येक भक्तकी भावना और इच्छाको पूर्ण करना, अर्थात् इस संसारमें नाते और सम्बन्धकी ऐसी रीति है कि उसीके कारणसे वरवशसे प्रीति और प्यार अपने सम्बन्धियोंसे होता है, फिर भगवान्में सुहृद्भावसे चित्त लगाया जाय तो भगवान्की प्राप्तिमें कभी संदेह नहीं होगा. वह निश्चयही शीघ्र प्राप्त होगा और जो कोई यह संदेह करे कि भगवान्को भाई या पिता अथवा जमाई या भतीजा वा देवर तथा ज्येष्ठ आदि सम्बन्धियोंसे समझना कब योग्य है? इसका उत्तर यह है कि जो यह समझा जाय तो दास्य, शृंगार, वात्सल्य आदि उपासनाभी न रहेगी. कारण कि जिन प्रमाणोंसे संदेह त्याज्य होगा वही प्रमाण दास्य आदिक भावकोभी भेटनेको समर्थ होंगे कि भगवत्स्वामी मित्र और पुत्र पति नहीं हो सकता और जिन समाधानोंसे दास्य आदिक निष्ठा माननेके योग्य है उन्हीं समाधानोंसे यह सुहृद्‌निष्ठाभी माननेके योग्य है. कि जैसी शास्त्रोंकी आज्ञा उन निष्ठाओंके लिये है और इसके सिवाय साक्षी राजा युधिष्ठिर व कुंती वा द्रौपदी अथवा उग्रसेन वा लक्ष्मण

शत्रुघ्न, भरत, बलदेवजी, लव, कुश, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और जनक इत्यादि सैकडों हजारों भक्तोंकी हैं. फिर स्वामी रामप्रसादसे आदि लेकर अबके भक्तोंकी साक्षी बहुत है और इस समय एक औरभी बात मेरे चित्तमें आई है कि सम्पूर्ण शास्त्रोंम यह लिखा है कि सब सम्बन्धियोंको भगवान्के नातेसे मानना चाहिये. जिस प्रकार पुत्र और पौत्र भाई और नातेदारको भगवद्दास और किसीको पानी भरनेवाला अथवा किसीको चौका देनेवाला और किसीको टहलुआ जानना और उनको अपना अनेक प्रकारसे पुत्र पौत्र मानना योग्य नहीं और जो कोई उनमेंसे भगवान्से विमुख हो उसका त्यागन कर दे. जिस प्रकार प्रह्लादजीने अपने पिताको और बिभीषणने अपने भाई रावणको और भरतजीने अपनी माताको और राजा बलिने शुक्राचार्य अपने गुरुको और गोपियोंने पतियोंको त्यागा और फिर उसके त्यागनसे यह नहीं हुआ कि किसीको हानि पहुँचे वह ऐसे हुए कि जिनका नाम संसारको आनंदका देनेवाला है; जब कि और सम्बन्धियोंकोभी भगवान्के सम्बन्ध मानना लिखा है तो स्वयं उचित और आवश्यक करनाही हुआ कि अपना नाताभी स्थिर कर ले और वह नाता मनकी रुचि और प्रीतिसे आरोपण करना योग्य है. सब शास्त्रोंका मूल यह है कि किसी रीतिसे और किसी स्वरूपमें भगवान्का आराधन हो अद्वैतता और ईश्वरताको मुख्य समझकर विश्वास पूर्णकर लेना चाहिये फिर इसमें संदेह नहीं कि भगवत्प्राप्ति न हो और जबतक अद्वैतता और ईश्वरताका विश्वास न होगा तबतक तुमको कुछभी प्राप्त नहीं होगा, फिर इस सुहृन्निष्ठाकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है ? भगवान्ने इन संसारी जीवोंको मोक्षकी प्राप्तिके लिये एक ऐसा सरल मार्ग बताया है और इस निष्ठाका प्रताप ऐसा उत्तम है। कि

इससे स्वयं चित्तकी वृत्ति भगवान्में लगती है. ऐसा प्रताप क्यों न इस निष्ठाका हो जब कि पूर्णब्रह्म अंतर्यामी व्यापक ब्रह्म सब प्रकारसे इस निष्ठावालोंका मनभाया करते हैं और आगेको करेंगे. इसका ऐसा प्रताप होनेका कारण यह है कि और निष्ठा तो ऐसी है कि प्रत्येकमें अपने आपको सेवक वा भगवान्का उत्पन्न किया माने अथवा कोई बात अपने मत मतान्तरकी जानता हो वा न जानता हो और इस निष्ठामें उसीका मन लगेगा जो कुछ भगवान्के सिद्धान्त चरित्र और शास्त्रोंका जाननेवाला होगा और जब कि शास्त्रोंके सब अभिप्राय जाननेके पीछे भगवान्में मन लगेगा तो शीघ्र भगवान्की प्राप्ति हो जायगी, इस निष्ठापर चलनेवालोंको चाहिये कि जिस सम्बन्धसे भगवान्का आराधन करे उस सम्बन्धकी बडी पदवी कि जो प्रत्यक्षमें भाई या जमाई या भतीजेके साथ रहती है बडे विश्वास और सत्यतासे भगवान्के साथ परिपूर्णको पहुँचा दे और जिस नाते और सम्बन्धकी जो मानता संसारमें है उसको भगवान्के लिये ऐसी करे कि उसमें कुछभी कसर न करे. थोडे दिन व्यतीत हुए कि स्वामी रामप्रसाद जनकपुरके पासके रहनेवाले श्रीरघुनंदनस्वामीको अपना जमाई मानते थे. जब यह दर्शन करनेके लिये अयोध्याजीमें आये तो कौशलदेशकी रघुनंदनस्वामीकी राजधानीमें आये. जबसे वहां जल पीना छोड दिया और जब श्रीरघुनंदनस्वामीके दर्शन करनेके लिये गये तो उनकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये भक्तिका प्रताप प्रगट करनेको भगवान् मूर्तिमान् रत्नजटित सिंहासनसे उतरकर थोडीसी दूरतक लेनेको आये और जो व्यवहार राजा जनकको होने चाहिये थे सो सब उनके हुए. यह बात तो विख्यातही है और स्वामी रामप्रसादजीके सेवक अबतक स्थित हैं. आशय यह है कि इस निष्ठामें परिपूर्ण होना चाहिये, जिससे कि तुरन्तही बेडा पार हो जाय. एक वैष्णव

श्रीरघुनंदनस्वामीको अपना बहनोई मानते थे उनको एक क्षणभी भजन विना नहीं बीतता था. वह जिस समय अपनी निष्ठा और विश्वासका वर्णन करते तो सुननेवाले प्रेममें मग्न हो जाते थे और उनके चरित्रोंका तो वर्णन कहांतक हो सके. प्रतिमाका तो वर्णन इस स्थानपर लिखना अब उचित नहीं, कारण कि लिख चुके हैं. व्रजमें बरसाना ग्राम श्रीराधिकामहारानीके पिताका है. एक समय यात्राको वहांपर मैं गया, तब वहांकी स्त्रियोंकी बोल चाल यात्रियोंके संग सुनी और उस समाजमें जो आनंद भगवान्‌के भक्तोंके देखे सो भगवान् सब किसीको वैसे आनंद प्राप्त करें; सारांश यह है कि, इस निष्ठावालोंकी बोलचाल सुननेवालोंको स्वयंही भगवान्‌में प्रीति होती है और उनके प्रेम प्रीतिका वर्णन तो किसीसे हो सकता है ? हे रघुनंदन ! हे दीनदयाल ! हे पतितपावन ! कभी कोई शुभ घडी मेरे लियेभी ऐसी आवेगी कि, जितने इस संसारमें नाते और प्रीति हैं वह सब आपके चरणकमलोंमें धारण करूंगा और कभी यहभी दिन होगा कि सब संसारी व्यवहारोंको छोडकर आपके चरणकमलोंका विश्वासी हूंगा, जो कि शिव और ब्रह्मादिक देवता परम योगियोंके इष्ट देव हैं और नारद प्रह्लाद सनकादिक भक्तोंके स्वामी कि जिनकी रजसे अहल्याके महापाप दूर हुए और उनकी पादुका भरतजीके मस्तकका आभूषण हैं और एक वारकेही प्रणाम करनेसे बिभीषण और सुग्रीवादि राक्षस और वनवासी अपनी इच्छाको प्राप्त हुए थे और जिनका ध्यान परम पदका देनेवाला है और जिनका चरणोदक गंगाजलकी तुल्य है और वह त्रिलोकीको पवित्र करता है और मुझसे संसारसागरमें डूबे हुएको नौकाकी समान है. अत्यन्त शोभायमान शिवरामकी जोडीकी छवि मेरे मनमें बस रही है.

दोहा–रामजानकीकी अधिक, छवि को सकै बखान ।
मुनिजनके हियमें बसैं, कृपासिंधु भगवान ॥

राजा जनकजीकी कथा १.

श्रीमान् राजा जनकजीकी महिमा सब शास्त्रोंमें लिखी है. जिनका नाम सूर्यकी समान संसारमें ऐसा प्रकाशित हुआ कि शुकदेव आदि ऋषीश्वर ज्ञानवान् और वैरागवानोंके चित्तको कमलकी समान खिलाय और उनके आवागमनके अंधकारको दूर कर दिया. सीता महारानी सब ब्रह्मांडके ईश्वरोंकी माता और रघुनंदनस्वामीकी परम प्रियाने जिन जनक महाराजके घर अवतार धारण करके परम पवित्र चरित्र किये थे. ऐसे महाराजकी महिमाका वर्णन किस प्रकार हो सकता है जब श्रीरघुनंदनस्वामी धनुषयज्ञमें अर्थात् स्वयंवरमें श्रीजानकी महारानीकी खबर सुनकर विश्वामित्र ऋषीश्वरके साथ जनकपुरमें पधारे और फिर राजा जनकजी मिलनेके लिये आये तब उन्होंने श्रीरामचंद्रजीको देखा तो उसी समय उनका ज्ञान और वैराग्य तो विदा हो गया और उनका मन अत्यन्तही मनोहर रूप देखकर उनके प्रेममें विकल हो गया और फिर जब उस प्रतिज्ञाका ध्यान किया कि, जो कोई शिवजीका धनुष तोडेगा उसीको सीताजी मिलेगी. यह विचारकर अत्यन्त घबराये और व्याकुल हो गये वह कभी तो अपनी बुद्धिपर पश्चात्ताप करते थे कि मैंने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा क्यों करी और कभी अपने कर्मोंसे दुःख पाकर कहते थे कि, वह प्रतिज्ञा किस कारण करी थी और कभी देवताओंका ध्यान अपने हृदयमें करते थे कि यह श्यामसुन्दर स्वरूपवाला वर सीताजीको मिले और कभी अपने ज्ञान और वैराग्य और कर्मोंका फल अपनी इच्छा पूर्ण होनेके निमित्त हृदयमें संकलप करते थे. फिर जब किसी

प्रकारसे अपने हृदयकी चिन्ता दूर होती न देखी तो उन्होंने श्रीरघुनं-
दनस्वामीके चरणकमलोंकी शरण ली और अपने मनको दृढ करके
अपनी अभिलाषा पूर्ण होनेके निमित्त विश्वास कर लिया फिर जब
श्रीरामचंद्रजीने जनकजीका ऐसा भक्तिभाव देखा और जनकपुरवा-
सियोंके चित्तकी अभिलाषा राजासे दशगुनी देखी कि यह सभीकी
इच्छा है कि श्रीरामचंद्रजीके हाथसे धनुष टूटे, फिर इन्होंने जान-
कीजीकाभी प्रेम अपने ऊपर अपार पाया, कि सब ब्रह्मांडोंके प्रेमकी
जिनके करोडों हिस्से प्रेमकी छाया है तो उन्होंने अपने करकमलसे
धनुष तोडा और श्रीसीताजीने राजसभामें श्रीरामचंद्रजीके गलेमें
जयमाला पहराई. जब राजकुमार रामचंद्रजीको सीताजीकी ऐसी
सुन्दर छबि राजा जनकजीने देखी तो अपनेको भाग्यशाली समझा
और उनके प्रेमके समुद्रमें गोता लगाकर अपने आपको भूल गये.
इसके उपरान्त जब विवाह हो गया तब श्रीरामचंद्रजी और सीताजी
एक सिंहासनपर विराजमान हुए; उस समयकी शोभाको कौन वर्णन
कर सकता है कि ब्रह्मानंदका परम आनंदभी उस आनंदके आगे
तृणकी समान और वह प्रत्यक्ष वृत्तान्त सूक्ष्मतासे वर्णन हो सकता
है; कि राजा जनकजी तो प्रेममें इस प्रकार व्याकुल हो गये थे, कि
उनको अपने तनमनकीभी सुधि नहीं थी; और स्थित हो गये थे
और पहले तो राजाका विदेह नाम था परन्तु सच्चा विदेह अब हुआ.
जो उस समयके आनंद और राजा जनक और रानी सुनैनाके प्रेमका
वर्णन लिखा जाय तो सैकडों करोडों शेष और शारदाभी नहीं लिख
सकती. मुझ पापीको तो लिखनेकी क्या सामर्थ्य है. रनवासको प्रीति
और हास्य विलासकारक ऐसे आनंदका देनेवाला है कि उस रसको
पीकर बुद्धि और इन्द्रिय मोहित हो जाती हैं तो फिर उसका वर्णन
किस रीतिसे हो सके और निज सेवकोंसे तो किस प्रकार हो सकता

है; परन्तु गूंगेका गुड है. अपने मनही मनमें स्वादका आनंद उठाते हैं जो कि विश्वामित्रजीकी राजाकी भक्ति और प्रेमका वृत्तान्त कुछ २ धनुष टूटा जब और कुछ विवाहके हो लेनेपर प्रगट हो गया था; परन्तु सबसे अत्यन्त भक्ति और भाव उस समय प्रगट हुआ कि जिस समय श्रीजानकीजीको पालकीपर सवार कराकर श्रीरघुनंदनस्वामीसे विदा हुए और विविध भांतिसे श्रीरामचंद्रजीकी स्तुति कर अपने जीवको सीता और रघुनंदनस्वामीके साथ भेजा.

दोहा—महिमा राजा जनककी, कापै वरणी जाय ।
जिनके वचनामृत श्रवण, मुनिजन रहत लुभाय ॥

श्रीवृषभानुजीकी कथा २.

श्रीवृषभानुमहाराजकी कीर्तिकी महिमा और उनकी धर्मपत्नीका धर्म किसकी जिह्वासे वर्णन हो सकता है कि जिनके घर श्रीराधिकामहारानी जनकजननीने अवतार लेकर त्रिलोकीको पवित्र किया और संपूर्ण रसिक मनुष्योंको विदित रहे कि श्रीराधिका महारानीमें उपासिक मनुष्य दो प्रकारका भाव रखते हैं निम्बार्कसंप्रदायवालोंका तौ यह विश्वास है कि राधिका महारानी और नंदकिशोर महाराजका विवाह सम्पूर्ण रीतिके अनुसार हुआ और विष्णुस्वामी संप्रदायवाले उनके वाक्यके विश्वासी हैं और उस भावका नाम स्वकीया है. माधवीसंप्रदाय और हितहरिवंशसंप्रदायवाले विश्वास परकीयाभाव रखते हैं कि विवाह नहीं हुआ परस्पर प्रीति होनी प्रियाप्रीतममहाराजकी वर्णन करते हैं; सो यदि पुराणादिकसे दोनों भावोंमेंसे किसी एक भावको दृढ किया जाय तो दूसरे भाववाले दुःखित होंगे इस कारण इतनेहीपर सूक्ष्मतासे वर्णन किया है कि दोनों भावसे वृषभानुमहाराज श्वशुर और कीर्तिजी सास श्रीवृषचंद्र

महाराजकी हैं; परन्तु यहभी विचारना चाहिये कि अबतक सब जात बरसानेमें श्रीराधिकाजीकी जन्मभूमिके नंदगाँववालोंको अपनी पुत्री बहुतही प्रसन्नतासे देते हैं और नंदगांवकी बेटी नहीं लेते और वल्लभाचार्यके कुटुम्बमें निष्ठा वात्सल्य है. वे भगवान्‌में पुत्रभाव रखते हैं कि उसका वर्णन वल्लभाचार्यकी कथा और वात्सल्यनिष्ठामें अच्छी रीतिसे हुआ है उनकी यही रीति है कि व्रजकी यात्रामें जब किसी मंदिरमें दर्शनोंको जाते हैं तो आपही सेवा और पूजा किया करते हैं और जब बरसानेमें आते हैं और लाडलीजीको जाते हैं तो बरसानेवाले मंदिरके भीतर नहीं जाने देते. भाव इसमें यह है कि, समधीको महलमें किस प्रकार जाने दे और दूसरे बापके घर बेटी अपनी ससुरालवालोंके सामने नहीं जाती. ऐसे २ निर्मल भाव व्रजवासियोंके हैं. रसिकमनुष्य मन लगाकर अपने २ भाव और विश्वासके अनुसार वृषभान और कीर्तिजीमें भाव रखते हैं जो भक्ति और भाव परम आनंदका देनेवाला है. वृषभान और कीर्तिजीका यश चंद्रमाकी समान निर्मल है. जिसने उनके यशकी शरण ली उसके समस्त संसारके पाप दूर हो गये.

दोहा—श्रीकीरतिजूको चरित, कापै वरणों जाय ।
जिनके घर प्रगटी सुघर, राधारानी आय ॥

राजा उग्रसेनजीकी कथा. ३.

कंसके पिता राजा उग्रसेनजी श्रीकृष्णमहाराजके नाना थे फिर उनकी भक्तिका भाव ऐसा अलौकिक हुआ कि वह भगवान्‌की भक्तिका उत्पन्न करनेवाला है. श्रीकृष्णजी महाराजको पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघन मानते थे और उनको अपना धेवोता जानकर अत्यन्तही प्रीति करते थे और इस भक्तिभावको दृढ करना चाहिये कि कंस आदि

आठ पुत्र उनके श्रीकृष्ण महाराजने मारे, परन्तु उन्होंने भगवान्के दर्शनका ऐसा परम आनंद माना कि अपने पुत्रोंके मारे जानेका क्लेश किंचित्भी न किया और भगवान्की भक्ति और भावमें मग्न होकर उनकाही भजन करते रहे और भगवान्भी उग्रसेनजीसे प्रसन्न होकर उनकी भक्तिके वशीभूत हो गये कि ब्रह्मा और शिव सूर्य और चंद्रमा यम और काल वरुण आदि सब जिसकी मायासे डरते और कांपते हैं और यही अभिलाषा करते हैं कि हमपर इनकी कृपादृष्टि रहे. भगवान्ने इस ईश्वरतापर कुछभी संकोच न किया और स्वयं छत्र और चमर आदि लेकर सेवककी रीतिसे उनकी नौकरी करी. निश्चय है कि भक्तिही भगवान्को वशीभूत करती है. यह आपही विचारना चाहिये कि सुदामाका क्या दृढ प्रभाव था और उग्रसेनकी क्या सामर्थ्य थी और कुब्जाको क्या रूप और व्याधाने कौनसे शुभ कर्म किये थे और विदुरजी कौनसे उत्तम वर्ण थे और फिर ध्रुवको क्या बुद्धि थी और प्रह्लादकी क्या अवस्था थी अर्थात् भगवान्की भक्तिही सार है.

कुंतीजीकी कथा ४.

कुंतीजी भगवान्की परम भक्त हुई और श्रीकृष्णमहाराजको अपना भतीजा जानती थी और इनको भगवान्में इतनी प्रीति थी कि हर समय भगवान्की मूर्ति उनके नेत्रोंके सामने प्रत्यक्ष रहती थी और जिस समय दुर्योधनको जीतकर राजा युधिष्ठिरको राज्य मिला था तब भगवान्ने द्वारिकाके जानेका मनोरथ किया तो कुन्तीने इनको नहीं जाने दिया और यह जब कभी जानेका मनोरथ करते तो कुन्ती अत्यन्तही व्याकुल होकर कहती कि इस राज्य और सुखसे तो यदि जंगलमें रहते तो भला था श्रीकृष्ण तो सर्वदा साथ रहते वह भग-

वान्से कहा करती कि हे श्रीकृष्ण! हमको तो वह जंगल भी अच्छा था; अबभी वही देना चाहिये, जिससे कि तुम्हारे दर्शन होते रहें. एक दिन भगवान्ने जाना विचारा और रथमेंभी सवार हो गये और फिर कुंतीजीके आगे गये और उनकी यह दशा देखकर भगवान्को निश्चय हो गया कि अब जो मैं जाता हूं तो कुंतीजी मृतक हो जायगी; इस कारण जानेका विचार दूर किया और कुंतीजी रथसे उतारकर श्रीकृष्णको ले आई, महाभारतमें कुंतीके परम धाम जानेकी कथा और प्रकारसे लिखी है; परन्तु इस भक्तमालके बनानेवालेने किसी पुराणमें यह लिखा देखा है; कि, जब कुंतीजीको भगवान्के अंतर्ध्यान होनेकी खबर पहुँची तो उन्होंनेभी तुरन्त अपनी देहको छोड दिया और जहांपर भगवान् थे वहीं पहुँची. अब विचारना चाहिये कि जो पुराणकी कथासे दूसरे पुराणमें कुछ भेद पाया जाय तो वह भेद कल्पान्तरसे समझना चाहिये कि प्रत्येक कल्पमें युधिष्ठिर और कुंती आदिके सब चरित्र महाभारतके लिखे अनुसार होते हैं परन्तु यह नहीं उसमें कुछ घटा बढी अवश्यही हो जाता है.

दोहा—कुन्तीकी महिमा अमित, को कवि वरने पार।
जिहिकी शुश्रूषा करी, नितप्रति नन्दकुमार॥

पांचों पांडवोंकी कथा ५.

युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवोंमेंसे अर्जुनकी कथा तो सखानिष्ठामें लिखी गई और राजा युधिष्ठिर और भीमसेन और नकुल सहदेवकी कथा यहांपर लिखी जाती है. पांडव भगवान्को अपने मामाका पुत्र भाई जानते थे और पूर्णब्रह्म स्वामी भगवान् श्रीकृष्णभी अपनी कृपा और भक्तवत्सलतासे वही भाव उनका पूर्ण करते थे अर्थात् प्रभातकोही उठकर युधिष्ठिर और भीमसेनको नित्यप्रति भगवान् प्रणाम किया करते थे और नकुल और सहदेव उनसे छोटे थे;

इस कारण उनसे प्रणाम और वंदना कराया करते थे और कभी उनको अपनी ईश्वरताका चमत्कार ऐसा दिखला दिया करते कि वह भाव ईश्वरताकाभी हर समय उनके हृदयपर बना रहता और वह भीमसेनके साथ ऐसी नम्रतासे व्यवहार करते थे कि इतनी प्रीति राजा युधिष्ठिरकेभी साथ न थी और हँसी चोहल भाइयोंकेसी उनके साथ किया करते और कभी उनके बहुत भोजन करनेपर उनके शरीरको लंबा और मोटा देखकर हँसा करते और इसी प्रकार भीमसेनभी जो जीमें आता सोही कह देते थे. इन चारों भाइयोंका भायपके सुखका वर्णन अपार है. व्यासजी महाराजने थोडासा महाभारतमें लिखा है कि उन कथा और चरित्रोंको सुनकर करोडों पापी आवागमनके पापसे छूट गये और छूटेंगे. युधिष्ठिर महाराज धर्मका अवतार और नकुल सहदेव आश्विनीकुमार देवताओंके वैद्यसे हुए और जो जो विपत् दुर्योधनके वैरसे उनपर हुई, भगवान्ने कृपा कर उन सबसे बचाया प्रथम तो दुर्योधनने भीमसेनको विष दिलाया और समुद्रमें हाथ पैर बांधकर डाल दिया, तब भगवान्ने यह कृपा करी कि वरुणदेवता उन्हें अपने घर ले आया और अमृत और दश हजार हाथियोंका बल दिया; पीछे लाक्षामंडपमें भस्म करनेका उपाय करा तोभी भगवान्ने ऐसी कृपा करी कि वह भस्म न हुए और अत्यंतही प्रशंसाके साथ सैकडों राजाओंकी सभासे द्रौपदीजी मिली. फिर इन्द्रप्रस्थ दिल्लीमें आकर पृथ्वीके राजाओंका विजय करके राजसूय यज्ञ पूर्ण कराया. उस यज्ञमें जब दुर्योधनकी हँसी हुई तो उसने इनसे जुएमें छलकरके समस्त माल और असबाब जीत लिया और फिर द्रौपदीको राजाओंकी सभामें नग्न करना ठहराया, परन्तु उस समयभी भगवान्ने रक्षा करी. फिर जब पांडवोंको वनवास दिया

तो तेरह वर्षतक वन और जंगलमें जो दुर्योधनसे वचन हुए थे उसीके अनुसार रहे. फिर गंधर्व और राक्षसोंको जीता और अनेक प्रकारकी लब्धि इनको देवता और ऋषीश्वर, शिवजी इन्द्रादिक देवताओंसे हुई और भगवान्ने दुर्वासाके शापसे इनको बचाया और फिर महाभारतके युद्धके समय दुर्योधनके साथ ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी और भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, सोमदत्त, जयधृति और विकृत आदि ऐसे २ शूर वीर थे कि प्रत्येक पांडवोंको जीतनेका विश्वास रखते थे और दुर्योधन तो आपही अकेला अत्यन्तही बली था और दुःशासन दस हजार हाथियोंका पराक्रमवाला और निन्यानवें भाई दुर्योधनके सब बलवान् और पराक्रमी थे. ये सब दुर्योधनकी ओर थे और पांडवोंकी ओर पांचों भाई आप दो चार मनुष्य तथा सात अक्षौहिणी सेना थी. भगवान्ने उस युद्धके समुद्रमेंसे पांचों भाइयोंको आप मल्लाह होकर पार उतारा और दुर्योधन आदिको समस्त सेनाके साथ उसी समुद्रमें डुबोदिया. इसके पीछे राजा युधिष्टिर राजसिंहासनपर विराजमान हुए. यह बडीही राजनीति और धर्मके सहित प्रजाका लालन पालन करते रहे. जब उन्होंने सुना कि हमारे परमस्नेही भ्राता भगवान् श्रीकृष्णजी अंतर्ध्यान हो गये; तो उसी समय राज्यको त्यागन कर दिया और आप उत्तराखंडमें सुमेरुपर्वतके पास हिमालयमें जाकर परमधामको गये. वह सब कथा पांडवोंकी विख्यात है और महाभारतादिमें विस्तारपूर्वक लिखी है; इसी कारण यहां सूक्ष्म रीतिसे लिखी गई.

द्रौपदीजीकी कथा ६.

श्रीमती द्रौपदीजीकी भक्तिभावकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है कि वह भगवान् कि जिसको वेद और ब्रह्मादिक देवताभी

वर्णन नहीं कर सकते. जिसकी इच्छाके लिये इच्छाचारी हुए. जब द्रौपदीजीने इनको स्मरण किया तब तुरंतही आये और उनके मनोरथहीको मुख्य समझा. श्रीमती द्रौपदीजी परब्रह्म श्रीकृष्ण महाराजको परमात्मा मानती थी, परन्तु देवरकाभी भाव रखती थी. उस भावमें परम आनंद अपार है. द्रौपदीजीका उत्पन्न होनेका वृत्तान्त पांडवोंकी कथाके साथ विस्तारपूर्वक महाभारत और पुराणोंमें लिखी है. यहांपर एक दो कथा लिखी जाती हैं. जिस समय राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके हाथ अपने भाइयोंके सहित समस्त राज्य और अपनी स्त्री द्रौपदीको हार दिया तब दुर्योधनने पांडवोंको दुःख देना विचारा और द्रौपदीको नग्न करनेका विचार किया और सभामें युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन, अर्जुन जिस समय ये सब उपस्थित थे तब द्रौपदीको बुलाया और दुःशासनको द्रौपदीके नग्न करनेकी आज्ञा दी. भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य ये उस समय कुछभी न बोल सके या तो इस कारणसे न बोले कि द्रौपदीजी तो स्वयंही भगवान्की भक्त हैं. उनपर जो कौरवोंने यह अन्याय करा है सो कदापि नहीं चलनेका और दुःशासनके भयके मारे न बोले और युधिष्ठिर आदि धर्मको विचार करके कुछ न बोल सके. जो सारी द्रौपदीजी ओढे हुए थी, उसके उतारनेका दुःशासनने अपने मनमें विचार किया और द्रौपदीजीने उसी समय भक्तवत्सल दीनबंधु कृपासिंधु श्रीकृष्ण महाराज अपने देवरको स्मरण किया.

जब पट गह्यो दुशासन करसों ।
इत उत चितय सकुच कमठी ज्यौं करी पुकार राधिकावरसों ॥
हा यदुनाथ अनाथ होत हौं कुल परिवार सभापति घरसों ।
बूडत वेग बांह गहि लीजे दीनानाथ दुःखके सरसों ॥

गिरधरलाल काज कब ऐहो जनकी लाज जब जायगी जरसों।
युगल करी मनो वसन तरी लई लपेट सीस पग तरसों॥

जो कि भगवान् अपने भक्तकी सहायताके निमित्त सर्वदा भक्तोंके साथ २ रहते हैं वे द्रौपदीजीकी ऐसी अवस्था देख तुरन्तही उस सभामें आ उपस्थित हुए उस समय द्रौपदीजीका चीर वामनजीके शरीरकी तुल्य अथवा कुरुक्षेत्रमें सुवर्णके दानकी समान था जो कर्म भगवन्के अर्पण कर दिये, वह घटतेही नहीं उनकी समान बढने लगा. वह चीर यहांतक बढा कि जो दुःशासन दश सहस्र हाथीका बल रखता था परन्तु सो इस समय एक द्रौपदीका चीर खैंचते २ थकित होगया; तब सब दुष्ट लज्जित हो गये और उसी समय सब अपराधियोंके राज और धर्मबुद्धि और बढाईने विदा मांगी.

दोहा–कहा करै वैरी प्रबल, जो सहाय रघुवीर।
दस सहस्र गजबल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर॥

इसके उपरान्त फिर जब दुःशासन श्रीमती द्रौपदीजीके चीरको खैंचता खैंचता हार गया और उसका पार न पाया; तब भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि समस्त आपसमें यह कहने लगे.

कवित्त–दुर्जन दुःशासन दुकूल गह्यो दीनबंधु दीन होकै द्रुपद-दुलारी यों पुकारी है। आपनो सबल छांडि ठाढे पति पारथसे भीम महाभीम ग्रीवा नीचे कर डारी है॥ अम्बरलों अम्बर पहाड कीन्हो शेष कवि भीषम करण द्रोण सभी यों विचारी है। सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है। कि सारी है कि नारी है कि नारी है कि सारी है॥ २॥

अब यहांपर एक शंका यह है कि, भगवान् तो विना बुलायेही द्रौपदीजीकी आप सहायताके निमित्त आते फिर उन्होंने किस कारणसे व्याकुल होकर भगवान्से अपनी सहायताकी प्रार्थना करी.

एक समाधान प्रेम और आनंदका भरा हुआ तो यह है कि, भगवान् द्रौपदीजीको उलाहना देकर किसी न किसी बातपर सर्वदा हँसी कर लिया करते थे और जैसा आप कहते थे द्रौपदीजीसेभी वैसाही उत्तर पाते थे और उस बातमें कभी तो द्रौपदीजीसे उत्तर न आता था और कभी श्रीकृष्णमहाराज न दे सकते थे; सो जब यह कष्टका समय द्रौपदीजीपर आया तो उस समय द्रौपदीजी अपनी सहायताके निमित्त भगवान्को स्मरण कर रही हैं और अपने मनमें विचारती है कि यदि जो विना बुलाये भगवान्की सहायता हुई तो मेरे परमसनेही देवर श्रीकृष्ण मेरे हास्यसे निरुत्तर होंगे उत्तर न आवेगा जब कहूंगी कि कष्टके समय मेरी सहायताके निमित्त तुम नहीं आये थे; इस कारण इस समय उनको स्मरण करना योग्य है. जिससे कि वह निरुत्तर न हो जाय और मुझकोही अपने उपकारसे संकुचित जानकर ताना दिया करे कि उस समय हमने तेरी सहायता करी थी दूसरा समाधान यह है कि द्रौपदीजी भगवान्को स्मरण करके उलाहना देती है कि तुम अपने राज्य और अपनी बडाईकी सराहना करके मुझको उलाहना दिया करते थे. अब देखो कि तुम्हारी भाभीको दुष्ट मनुष्य किस प्रकारसे नग्न किया चाहते हैं और तीसरे यह है कि द्रौपदीजी भगवान्की याद करके सब भगवान्के भक्तोंको दिखाती है कि भगवान्के याद करनेसे चीर तो जड है सो अनंत हो जायगा तो जीव उसकी यादसे अनंत और अच्युत क्यों न हो जायगा. पीछे दुर्योधनने पांडवोंके लिये बारह वर्षका वनोवास और एक वर्ष गुप्त रहना बताया. जब वह वन और जंगलको चले गये तो शस्त्रोंके अतिरिक्त और कुछ सामग्री न थी. भोजन करनेका सामानभी न था उस समय सूर्यनारायणने एक टोकनी दी उसमें यह सिद्धि थी कि जबतक द्रौपदीजी भोजन न कर लेती तबतक

समस्त खाने पीनेकी सामग्री इच्छापूर्वक उसमेंसे निकलती फिर जब द्रौपदीजी भोजन कर लेती तब उसमेंसे निकलना बंद हो जाता एक दिन दुर्वासाजी अपने दश सहस्र शिष्योंके सहित दुर्योधनके भेजे हुए उस समय आये कि जिस समय द्रौपदीजी भोजन कर चुकी थीं राजा युधिष्ठिरने इनको देखकर प्रणामादि कर बहुतसा आदरसत्कार किया और पीछे भोजन करनेके लिये कहा, तब दुर्वासाजीने कहा कि हम स्नान कर आवें, तब भोजन करेंगे यह कहकर दुर्वासाजी तो स्नान करनेको चले गये, तब राजा युधिष्ठिरने द्रौपदीजीसे कहा कि अभी तुम भोजन मत करना क्योंकि आज दुर्वासाजीकी पहुनई होगी. द्रौपदी बोलि बहुतही देर हुई मैं तो भोजन कर चुकी. राजा युधिष्ठिरने जब यह द्रौपदीजीके वचन सुने तो तत्कालही व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पडे और फिर दुःखित होकर रुदन करने लगे और बोले कि अब किस प्रकारसे लज्जा रहेगी और दुर्वासाके शापसे कैसे बचेंगे जब फिर द्रौपदीजीने राजा और भीम आदिकी ऐसी दशा देखी तो अत्यन्तही भक्तिसे कहने लगी कि हे राजन्! तुम दुःखित न हो. वह श्रीकृष्ण तुम्हारे भाई क्या तुमसे दूर हैं? क्या वह इस समयमें तुम्हारी सहायता न करेंगे यह कहकर द्रौपदीजीने उसी समय श्रीकृष्णजीका स्मरण किया तो श्रीकृष्ण महाराज रुक्मिणीजीको छोड तुरन्तही द्वारिकाजीसे पधारे और क्षणभरमें वहां उपस्थित हो गये और फिर अत्यन्त स्नेहके सहित

युधिष्ठिरजीसे मिले फिर अपनी भाभी द्रौपदीजीकी ओर देखकर बोले कि, इस समय कुछ भूंख लगी है, कुछ भोजन दो. तब द्रौपदीजी बोलीं कि देवर! यहां तो पहलेहीसे एकके भोजनके लिये चिन्ता हो रही है, यह एक दूसरे भूंखे आये. मेरे पास तो कुछभी खाने पीनेको नहीं है. श्रीकृष्ण बोले, भाभी! कुछ थोडासा तो दो-

द्रौपदीने कहा कि इस समय तो कुछभी नहीं है. वहुतही काल व्यतीत हुआ कि टोकनी मांजके रख दी है, तब भगवान्‌ने युधिष्ठिरकी ओर देखकर कहा कि; यह पुरविषे भूंखे घरकी बेटी ऐसी मिल गई है, कि जब हम इससे भोजन मांगते हैं तो यह विना झिक २ किये हमको भोजन नहीं देती अच्छा तुम वह टोकनी उठा लावो हम आपही ढूंढ लेंगे. द्रौपदीजीने उसी समय टोकनी उठा ई और भगवान् श्रीकृष्णजीके सन्मुख रख दी और बोली कि जो तुम आपही ढूंढ लोगे तो किसपर अहसान है इसके पीछे जब फिर भगवान्‌ने टोकनी लेकर देखा तो एक पत्ता सागका किसी तरफ लगा हुआ पाया, उसको निकालकर द्रौपदीजीको दिखाया कि देखो यह क्या है जो तुमने न दिया तो जने हमको भोजनही न मिला. यह सुनकर द्रौपदीजीको हँसी आ गई और बोली कि श्रीकृष्ण साग पात खाकर पाले हैं सो वही वस्तु अपने लिये ढूंढ ली फिर श्रीकृष्णने उस शाकके पत्रको अपनी हथेलीपर रखकर खा लिया और थोडासा जल पिया तो उसी समय तीनों लोक तृप्त हो गये और दुर्वासाजीकी तो यह दशा हुई कि तृप्तिके मारे स्थानसेभी न उठ सके, फिर जो उस तृप्तिका कारण अपने हृदयमें विचारा तो भगवान्‌के भक्तोंका प्रताप समझकर राजा अंबरीषके पीछे जो क्लेश उठाये थे उनको स्मरण किया और फिर राजा युधिष्ठिरसे विना मिलेही मुँह छिपाकर भाग गये. यहांतक हुआ कि भीमसेनभी ढूंढ आये और तबभी उनका पता न मिला इस प्रकारके चरित्र द्रौपदीजीके अनेक हैं. किसीकी क्या सामर्थ्य है जो लिख सके.

राग कान्हरा।

देखो री छवि रामवदनकी।
कोटि २ दामिनि दर्पण द्युति निंदत कांति कपोल रदनकी ॥

नासा मृदु मुसकान माधुरी मंद करी अति घुमड मदनकी ।
फव रह्यो क्रीट मुकुट अलकनपर मानो फांस दृगमीन फसनकी ॥
चोरत चित भृकुटी दृग शोभा कुंडल झलक खोर चंदनकी ।
राम सखे छबि कहि न जात जब सुध रहत लख वदन वसनकी ॥

अथ

उन्नीसवीं निष्ठा शृंगार और माधुर्यकी महिमा ।

(इसमें बीस भक्तोंकी कथा है.)

श्रीकृष्णस्वामीके चरणकमलकी त्रिकोणरेखा और श्रीकृष्ण अवतारको दंडवत् करता हूं कि गोकुलमें वह अवतार धारण कर ऐसे पवित्र चरित्र जगत्में प्रचार किये कि जिनके प्रभावसे महापापीभी ब्रह्मानंदकी पदवीको प्राप्त हो गये. शृंगाररसको उज्ज्वल और शुक्ल रसभी कहते हैं. यह वह रस है कि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सब इसके दास हैं और धर्म तो किस गिन्तीमें है. शृंगाररसका वह गुण है कि एक क्षणमें महाप्रेम प्रगट करके धनीको निर्धन और निर्धनको धनी बना देता है. इस रस अर्थात् सुन्दरताकी बराबर गुण, तंत्र, मंत्र, रागादि किसीमें नहीं हैं जितने भक्त हो गये हैं और आगेको होंगे तथा हैं इस रसके अवलम्बनसेही उत्तम पदवीको पहुँचे पहुँचेंगे और पहुँचते हैं. इसकी महिमा अकथनीय है. जो कोई भगवान् और उनके चरित्रोंकी महिमा कहनेमें समर्थ हो वह इस रसकीभी महिमा कथन कर सकता है. देखो गोपिका एक तो स्त्री दूसरे गांवकी रहनेवाली न कुछ

विद्या पढ़ी और न कुछ साधन किया न कुछ उत्तम जाति थी, परन्तु इस रसके प्रभावसे उस गतिको पहुँचीं, कि सब जगत्‌के रचनेवाले ब्रह्माजीने जिनकी चरणरजको अपने शिरपर धारण किया और जिनके चरित्रोंका जहाज संसारसे पार करनेको ऐसा प्रवृत्त है कि कर्मभोगरूपी आंधीका कभी भय नहीं. शृंगारउपासक जो इसको मुख्य वर्णन करके कहते हैं कि ब्रह्मानंद इसी रससे प्राप्त होता है उनका यह कहना बहुतही सत्य है. कारण कि जब भगवान्‌का आराधन ज्ञान और भक्तिके द्वारा होगा, तो कोई झलक सुन्दरता माधुर्यता भगवान्‌की उपासकके मनमें ऐसी समावेगी कि उसके सामने त्रिलोकीके उत्तम पदार्थ तृणके समान जान पड़ेंगे और उस ध्यानमें मग्न हो संसारसे अचेत हो जायगा. जबतक भगवान्‌की सुन्दरताकी झलक मनमें न समावेगी, तबतक कभीभी भगवान्‌की प्रीति नहीं होगी. इससे यह निश्चय हुआ कि ब्रह्मानंद केवल शृंगाररससेही प्राप्त होता है. यदि कहो कि जो शृंगाररस मुख्य है तो शास्त्रोंमें दास्य सख्य वात्सल्यादि कई प्रकारकी निष्ठा और भक्ति लिखी है उनके लिखनेसे क्या प्रयोजन था ? केवल शृंगारनिष्ठाका लिख देनाही बहुत था और नौ प्रकारकी भक्तिमें शृंगारका कहीं नामभी नहीं है, सो इसका समाधान यह है कि जो शास्त्र, पुराण, श्रुति आदिकी आज्ञा है और जो दूसरे ग्रंथ हैं सब शृंगाररसकाही वर्णन करते हैं मुख्य शृंगारही है. जो वर्णन जहां भगवान्‌के आराधनका है, वह सब शृंगारका अर्थ समझना चाहिये, कारण कि विना सुन्दरताकी झलकके साक्षात्कार हुए भगवान्‌की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती और दास, सख्य, वात्सल्य आदि जो भक्तिके प्रकार हैं वेभी शृंगारहीके विस्तार हैं. जैसे भक्तिके स्वरूपवर्णनमें प्रथम भूमिकामें लिख आये हैं, कि भक्ति एक है जिस २ रीतिसे जिसने मन लगाया, वही

उसका प्रकार भगवान्‌की शोभा और माधुर्यका चिन्तवन सब दास्य आदि निष्ठाओंमें योग्य निश्चय हुआ है. जिस किसीने भगवान्‌को अपना स्वामी ध्यान करके उस रीतिसे सुन्दरता और माधुर्यका चिन्तवन किया सो दासनिष्ठा हो गई और जिस किसीने मित्र जानकर उस रूपका ध्यान किया वह सख्य और जिसने पुत्र जानकर चिन्तवन किया सो वात्सल्य, इसी प्रकार सेवा अर्चा और शरणागतिका विचार कर लेना. इस प्रकार वेदशास्त्रके प्रमाणोंसे निश्चय है कि भगवान्‌का शृंगार और माधुर्य मुख्य है. यदि कोई यह कहे कि भगवान्‌को करुणा, दयालुता, भक्तवात्सल्यता आदिभी तो स्थान २ पर लिखी हैं, कि इस कारणसे भगवान्‌में प्रीति होती है, सो एक उत्तर तो यह है कि प्रीति जिसका वर्णन करते हो किस वस्तुमें होती है. जो किसी रूप और झलकमें होती है उसीका नाम शृंगार है और माधुर्य है और जो कुछ शोभा और झलकके चिन्तवनमें नहीं होती किसी और बातमें होती है तो मिथ्या है, कारण कि विना सुन्दरताकी झलकके प्रकाश हुए कभीभी दृढ प्रेम नहीं हो सकता. दूसरा उत्तर यह है कि जिस प्रकार किसी संसारी प्रीति अर्थात् मानुषीप्रीतिमें कोई आसक्त होता है, तो किसीकी सुन्दरतापरही रीझकर उसका वर्णन करता है इसी प्रकार भगवान्‌के प्रेमवर्णनमें भगवान्‌के रूप और माधुर्यका वर्णन करना तो मित्रकी सुन्दरताके वर्णनकी समान है और भगवान्‌की अद्वैतता, कृपालुता, करुणा, भक्तवत्सलता, ईश्वरता, सर्वज्ञता और दूसरे गुण जैसे अच्युत, अनन्त, व्यापक, अन्तर्यामी, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानंदघन इत्यादि वर्णन मित्रके स्वभाववर्णनके समान है; अब यह शंका होती है कि एक वचनसे भक्ति और शृंगार एकही प्रकारके जाने जाते हैं और कहीं दास्य सख्य वात्सल्यादिको भक्तिके प्रकारमें लिखा है.

इस शृंगारनिष्ठामें वर्णन शृंगारका अंग और भेद उन दास्य इत्यादि निष्ठाओंको लिखा जब भक्ति दशा प्रेमासक्तकी है और शृंगारप्रिय वल्लभकी सुन्दरताको कहते हैं तो दो दशा भिन्न २ एक कब हो सकती है, सो सत्य है कि दोनों प्रकार भिन्न २ हैं परन्तु एकसे एकका सम्बन्ध ऐसा है कि एकके विना एकका प्रकाश नहीं हो सकता. इसी प्रकार प्रेमके विना सुन्दरताका ग्राहक कोई नहीं, जैसे जब जगत् न रहा तब भक्तभी नहीं थे उस कालमें ईश्वरकोभी कोई नहीं जानता था, तथा आगे जब प्रलय होगी तब उसको कौन जानेगा और उसकी सुन्दरतापर कौन रीझेगा, तो जब प्रेम और सुन्दरता इस प्रकार सम्बन्धी हैं तो सब उनके अंग परस्पर मिलकर एकके सदृश हो जांय तो क्या आश्चर्य और विरुद्ध है । सिवाय इसके परिणाममें स्नेह करनेवाला और जिसमें स्नेह हुआ यह दोनों एक हो जाते हैं अर्थात् प्रेम करनेवाला अपनी सब दशा भूलकर सब अंगमें अपने प्रियवल्लभका रूप हो जाता है. इससे एक कहनेमें कुछ शंका नहीं हो सकती, इसके सिवाय शृंगार और भक्ति दोनों भगवद्रूप हैं भेद नहीं इससेभी शंका नहीं अवश्यही शृंगाररस सब रसोंमें मुख्य है और अवश्यही भगवान्‌में प्राप्त कर देता है. यहभी विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी इन चार सामग्रीसे प्राप्त होता है. पहली विभाव जिसमें भगवान् सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्म नवयौवन सब शोभा व सुन्दरका श्यामसुन्दर स्वरूप दिव्य भूषण वस्त्र धारण किये कि जिनके सब अंगोंपर करोडों कामदेव न्योछावर होते हैं, विषयालम्बन है और जिस उपासककी भगवान्‌के सुन्दरता और शृंगारपर जैसी प्रीति है वह उपासनाके अनुसार भगवान्‌का ध्यान जैसा कि स्थान २ पर शास्त्रोंमें वर्णन किया है विचार ले. भगवद्भक्त जो उस सुन्दरता और शृंगारके ध्यान करनेवाले हैं वह इस विभाव आश्रयावलम्बन है. दूसरी

सामग्री विस्तारसे इस ग्रंथकी आदिमें लिखी है, फिर लिखनेका प्रयोजन नहीं है. शृंगारमें उपासक लोग दो भेद वर्णन करते हैं एक शृंगार और दूसरा माधुर्य, शृंगार तो उस सुन्दरता और प्रेमसे तात्पर्य है, कि जो नायक और नायकाके मध्यमें हो और विना इन दोनोंके शृंगार नहीं कहा जाता. सो इसमें उत्तम पद स्वकीया नायका अर्थात् व्याही स्त्री और पतिके शृंगारका है. भगवद्भक्तोंमें यह पदवी लक्ष्मी जानकी और रुक्मिणीजीपर समाप्त हुई है. किन्हीं २ के कथनसे राधिकाजीभी स्वकीया है. कोई उपासक इस पदवीका देखा सुना कि दूसरी पदवी शृंगारकी परकीया नायका है सो गोपिकाओं-पर समाप्त हुई है. अब यह भाव किसको हो सकता है जो कोई किसी गोपिकाका अवतार ले तो हो सकता है. जैसे मीराबाई, करमें-तीजी आदि हुए और यहभी जाने रहो कि रीति शृंगार और प्रीतिकी विशेष कर इसी पदवीसे बन आती है, अब जो उपासक हैं उनका यह भाव है कि कोई तो सख्यताकी मुख्यतासे दास्यभाव रखते हैं कोई दास्यकी मुख्यता सख्यताकी गौणता जानते हैं, कोई अपनेको युगलरूपकी दासी जानते हैं, सख्यतासे प्रयोजन नहीं और कोई अपनेको प्रियाजीकी दासी मानकर उनकी प्रसन्नतामें प्रीतमकी प्रसन्नता मानते हैं और इस अन्तपदवीके निज उपासक हितहरिवंश-जीकी संप्रदायवाले हैं. सब शृंगारउपासकोंकी यह रीति है कि युगल शृंगारविहारमें अपने भावके रूपसे सब समय प्राप्त रहते हैं. कोई समयभी अप्राप्ति और परदेका नहीं है. प्रियाप्रीतमकी बात जानने-वाले संदेशेमें चतुर और मानके समय मनाने और मिलनेमें प्रवीण ऐसे ऐसे सहस्रों भावसे सेवा और चिन्तवन कहते हैं भावही सूक्ष्म और कठिन है, इसका विस्तार करना उचित नहीं, शृंगारकी उपासना चारों युगोंसे चली आती है बहुतसे ऋषि और योगी रघुनंदन महाराजके

अपार रूप देखकर मोहित हो गये थे और उस रूप और शृंगारके पूर्ण सुख और आनंदकी प्राप्ति श्रीमहारानीजीको देखकर उनमें मानसी दासीभाव और सख्यतासे मन लगाया. माधुर्य्यका अर्थ यद्यपि मिष्टान्नका है, परन्तु तात्पर्य्य सुन्दरतासे है. माधुर्य्यउपासक अपनेको सखीभाव नहीं मानते. भगवान्के माधुर्य्य और सुन्दरतामें अनुरक्त रहते हैं, उनके कई भेद हैं एक तो वह जो भगवान्के माधुर्य्य उपासक हैं. प्रियाजीके ध्यानसे कुछ सम्बन्ध नहीं. दूसरे वह जो युगलरूपकी चिन्तवन ध्यान करते हैं, उनमेंभी एक यूथवाले तो भगवान्की ईश्वरता मुख्य मानते हैं और प्रियाजीको आद्य तथा सब ब्रह्माण्डोंकी माता और भगवान् आश्रयीभूत जानते हैं. कोई प्रियाप्रीतमको एक जानते हैं जैसे जलतरंग शब्द और अर्थ एकही है इसी प्रकार प्रियाप्रीतममें नाममात्र भेद है. एकही हैं. तो एक प्रियाजीको परत्व अधिक और प्रीतमको न्यून मानते हैं. दूसरे भावकी बात आगे कहेंगे. माधुर्यउपासकोंकी सेवा पूजाकी रीति ऊपर लिखे भावोंके अतिरिक्त औरभी कई प्रकारकी है, कोई युगलस्वरूपकी सेवा पूजाके समय अपनेको दो चार वर्षका बालक जानकर सेवा पूजा करते हैं और कोई भगवान्की सेवा तो आप हैं, और महारानीजीकी सेवाके निमित्त अपनी माता स्त्री भगिनी आदि वासवास्त्रियोंको उपचारमें दासीवत् समझते हैं; किसीकी यह रीति है कि ब्रह्माणी आदि देवियोंको महारानीकी सेवा करनेवाली जानकर भगवान्की सेवा पूजा आप कर लेते हैं और स्वकीया परकीया भाव अलग रहा, सो रामानुजसंप्रदाय और रामउपासकोंमें तो परकीया भाव है नहीं, स्वकीयाभावसे आराधना है. श्रीकृष्ण-उपासनामें विशेष कर परकीयाभावसे उपासना है और ऐसेही करते हैं. उसका भेद यह है कि निम्बार्कसम्प्रदायमें स्वकीयाभावसे सेवा

पूजा करते हैं और पुराणोंके प्रमाणसे श्रीकृष्णराधिकाका विवाह मानते हैं. विष्णुस्वामीके संप्रदायमें यद्यपि बालचरित्रके उपासक हैं, परन्तु राधिकाजीकी निम्बार्कसंप्रदायके प्रमाणके अनुकूल स्वकीयाभावसे श्रीकृष्णको परम प्रिया जानते हैं. माध्वसम्प्रदायमें परकीयाभावकी रीति है; मनकी रुचि दूसरी बात है. स्मार्तमतमें इन बातोंसे प्रयोजन नहीं जैसे चरित्र वा भावपर मन सन्मुख हो नहीं मानते हैं. शृंगार और माधुर्यभावमें जो साज शृंगार प्रियाप्रीतमका ध्यान अथवा प्रत्यक्ष करना चाहिये और जो प्रियाप्रीतम स्वयं परस्पर मिलने देखने दिखाने सजावट रखते तथा विहार और आनंदकी सामान मनसे सजाकर उमंग करते हैं. जो हास्यरसके वचन परस्पर कहते हैं उनका वर्णन शेष शारदा कल्पोंतकभी नहीं कर सकते. जिन भक्तोंकी उपासना सिद्ध होकर वह झांकी कि उनके मनमें बस गई है वहभी नहीं कह सकते मनमेंही उसका अनुभव करते हैं, तो मैं क्या लिख सकता हूं, वे मित्र परमप्रेमी और स्नेही कि जिनका मन परस्परकी सुन्दरतापर परस्पर आसक्त हो मिलनेकी चाह भरे हुए तीन लोकका ऐश्वर्य और सम्पत्तिसे जहांतक सामग्रीके निमित्त आनन्द और शोभा जो कि शास्त्रोंसे सुनते हैं देखते हैं वा जहांतक मन पहुँचता है, सो सब उपस्थित करते हो, सो सब प्रियाप्रीतमके शृंगार, विहार, आनंद, सुखशोभा, सुन्दरताकी सामग्रीके आगे ऐसे हैं जैसे कोटि सूर्यके सन्मुख एक चिनगारी. इस कारण उपासक अपनी शक्ति और मनके अनुसार जिस प्रकार जितना युगल-स्वरूपका ध्यान आराधन कर सके उतनाही अच्छा है, जिस प्रकार जो मनसे चिन्तवन करेंगे वही उस पदको पहुँचेंगे और यहभी जाने रहो कि प्रियाप्रीतम परस्पर प्रेमासक्त स्नेहियोंमें शिरोमणि हैं, जो चरित्र शृंगार और माधुर्य हृदयकी आंखोंकी दीखे, सो सब भगवान्के

किये हुए होंगे नये न होंगे, सो उस रूप अनूपमें जिस प्रकार मन लगे लगाना चाहिये. परमानन्द ब्रह्मानंद ज्ञान और भक्ति वैराग्य चारों पदार्थ स्वयंही प्राप्त हो जाते हैं. ऊपर जो कहा है कि कोई २ प्रियाजीको परत्व कहते हैं और प्रीतमको कुछ न्यून जानते हैं, सो चारों संप्रदायोंमें यह रीति किसीने प्रगट नहीं की थी. अब यह किसीने नई शाखा निकाली है, अर्थात् रामानुजसम्प्रदायमें पहले दो मार्ग हैं. एक तेंगल दूसरेमें वडगल तेंगल जो निज रामानुजस्वामीकी रीतिके अनुकूल है और उनके सिद्धान्तमें विष्णुनारायण ईश्वर हैं और लक्ष्मीजी जीव. और वडगल वे हैं कि वेदान्ताचारीने नई रीति चलाई है कि विष्णु और लक्ष्मीको बराबर जाना. और युगलस्वरूपके आराधनकी परिपाटीको प्रवृत्त किया. अब थोडे काल अर्थात् सौ दो सौ वर्षसे वेदान्ताचारीके पन्थमें वीरराघवाचारीने यह शाखा निकाली है कि विष्णु, नारायणसे लक्ष्मीजीको अधिक लिखा और राघवीमत चलाया. दुर्गांउपासकोंसे कुछ यह बात मिलती है, परन्तु इस मतके थोडे लोग हैं. मदरासके एक मंजिल पश्चिम उनका गुरुद्वारा है शृंगार और माधुर्य्यके उपासक लोग ध्यान करनेमें प्रियाप्रीतमकी सुन्दरता और शृंगारकी उपासनामें एक मत हैं. आरंभ और परिणाम दोनोंका एकही भांति है इस कारण शृंगार और माधुर्य्यके उपासकोंको एकही निष्ठामें लिखना उचित जाना. हे कृपासिन्धो ! हे दीन वत्सल ! हे करुणाकर ! अब इस दीनकी ओरभी कुछ ऐसी कृपादृष्टि हो कि आपके माधुर्य्यका चिन्तवन करता हुआ आनंदमें रहूं यद्यपि मेरे आचरण आपकी कृपा और दयाके योग्य नहीं है परन्तु जब आपकी बिरद दीनवत्सलता और प्रणतार्तिभंजनकी ओर दृष्टि जाती है तो दृढ आशा होती है सो अपनी बिरदकी ओर दृष्टि करके ऐसी कृपा करो कि आपके ध्यानमें मग्न रहूं.

कवित्त–जिन जानो वेदते तौ वेदविद विदितही हैं जिन जान्यो लोक लोक लीकनपर लड मरें। जिन जानो तप तीनों तापनसे तपत ते पंच अग्नि संग ले समाधि धर धर मरें॥ जिन जानो योगतें तौ योगी युग २ जिये जिन जानो ज्योति सोउ जोति ले जर मरें। हूं तौ देव नन्दके कुमारते री चेरी भई मेरो उपहास कोऊ कोटिन कर मरें॥ १॥ कोऊ कहो कुल्टा कुलीन अकुलीन कोउ कोऊ कहो रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं। केशव देवलोक परलोक त्रयलोकमें तौ लीन्हो है अलौकिक लोक लोकनते न्यारी हौं॥ तन जाहु धन जाहु देव गुरु जन जाहु जीव क्यों न जाहु नेक टरत न टारी हौं। वृंदावनवारी वनवारीके मुकुटवारी पीत पट वारी वा मूरतिकी वारी हौं॥२॥ माथेपै मुकुट देख चन्द्रका चटक देख छबिकी लटक देखि रूप रस पीजिये। लोचन विशाल देख गरे गुंजमाल देख अधर रसाल देख चितचोव कीजिये॥ कुण्डल हलन देखि अलकैं वलन देखि पलकैं चलन देखि सर्वस दीजिये। पीताम्बर छोर देखि मुरलीकी घोर देखि सांवरेकी ओर देख देखिवोई कीजिये॥ ३॥

व्रजगोपिकाओंकी कथा १.

व्रजगोपिकाओंके चरित्र त्रिलोकीको ऐसे पवित्र करनेवाले हैं कि जिनकी महिमा और उपमा देखनेमें नहीं आती. यदि गंगा आदि तीर्थोंसे बराबरी की जाय तो वे एक देशमें स्थित हैं और जो लोग दूर रहते हैं उनको बडे परिश्रमसे मिलते हैं और पर्व आदिके भेदसे पुण्यकी न्यूनाधिकता अलग रही. और यह परम पवित्र चरित्र अनायास सबको प्राप्त है और चारों पदार्थके देनेके निमित्त सब समय बराबर हैं यदि अपने अभाग्यसे उसमें प्रीति न हो तो दूसरी बात है. गोपिकाओंकी महिमा वेद, ब्रह्मा, शेष, शारदा आदिभी नहीं कह

सकते. ब्रह्माजीने जिनकी चरणरज अपने शीशपर धारण करी और अपने भाग्यकी बडाई की. फिर उनकी महिमा कोन वर्णन कर सकता है? यदि इनको भगवद्भक्तोंके यूथमें गिने तो शंका होती है, प्रथम यह कि जिनके चरित्र गाकर भक्तजन भक्त नाम पाते हैं उनको भक्त कहा जाय तो ढिठाई है. दूसरे वेद पुराणोंमें कई प्रकारकी भक्ति लिखी है, उनके साधनसे भक्त नाम होता है, सो गोपिकाओंने उन सबमें कोनसा साधन किया कि, उनको भक्तोंमें गिना जाय इसमेंभी शंका है, पहले तो यह कि किसीने भक्ति विना भगवान्‌को नहीं पाया. दूसरे यह कि जो वे भक्त नहीं तो भक्तमालमें क्यों लिखा? इस कारण उनको भगवान्‌की परम प्रिया और भगवद्रूप जानना चाहिये और जो उनकी महिमा वर्णन हो सो भगवान्‌की महिमा विचारनी चाहिये और गोपिकाओंकी महिमा अधिक है, कारण कि प्रबल निर्बलको अपनी ओर खैंच लेता है, सो गोपिकाओंने गोलोकसे भगवान्‌को अपनी ओर खैंच लिया. इसके सिवाय संसार कहता है कि भगवान् इस संसारके कर्ता हर्ता और स्वामी हैं, परन्तु ऐसा कहकरभी किसीको विश्वास नहीं होता कि भगवान्‌का भजन स्मरण करके उसका ध्यान करें, गोपिकाओंके चरित्रका वह प्रभाव और प्रताप है कि जो थोडाभी सुन ले यह नहीं हो सकता कि भगवान्‌का स्वरूप उसके हृदयमें न आवे और भगवान्‌में विश्वास न हो. गोपिकाओंके कुछ चरित्र लिखनेकी इच्छा थी परन्तु उन अपार चरित्रोंमें एकभी पूरा चरित्र नहीं लिख सकते. गोपिकाओंका भगवान्‌में अनिर्वचनीय भाव है जो भक्तोंको परम आनंद देनेवाला है, तथा दूसरे जनोंको भगवान्‌की ओर लगानेवाला है. गोपिका भगवान्‌को एक तौर सबसे पृथक् पूर्णब्रह्म परमात्मा जानती थी और उन्हीको मित्र, परम स्नेही, प्राणप्रीतम समझकर मित्रता, प्यार और प्रेमके

नेमकी रीतिसे सब आचरण करती थीं यद्यपि यह दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं, जैसे अंधकारको प्रकाशको परस्पर विरुद्धता है. परन्तु गोपियोंमें यह दोनों बने रहे इस कारण शास्त्रोंने उनका अलौकिक भाव कहा है, सो इसमेंसे दृष्टान्तकी समान एक दो चरित्र लिखता हूं. एक समय व्रजचन्द्रमहाराज किसी व्रजगोपिकाके घर रहे, जब बडे भोर वहांसे चलनेकी इच्छा की और शब्द सुनकर कोई जाग न उठे इस कारण अपने घूंघरू उतारने लगे. तब उस गोपिकाने इनका हाथ पकड लिया और कहा जो मेरा उपहास हो तो चिन्ता नहीं. परन्तु तुम्हारा यह उपहास न होना चाहिये, कि श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्मभी अपने चरणोंसे लगे हुएको पृथक् कर देते हैं.

एक समय व्रजगोपिका माखन बेचनेको यमुनापर जाती थीं और उनको व्रजचन्द महाराजसे हँसने बोलने और देखनेकी प्रीति निरन्तर रहती थी, इस कारण उसी ओर गईं. जिस ओर व्रजराज थे परस्पर दर्शन होनेके पीछे दधिदानका झगडा और रसवाद होनेपर यमुनापार जानेकी इच्छा की, तब कृष्णचन्द्र बोले नाव तो यमुनामें है पर खिवैया नहीं है. जो तुमको जरूरी जाना हो तो हम तुमको पार उतार देंगे. तब सब गोपिका उस नावपर चढ गईं और व्रजकिशोर महाराज मल्लाह बने संयोगवश वह नाव पुरानी थी, जब बीचधारामें पहुँची तो उसमें पानी आने लगा. महाराज बोले सावधान हो जाओ नाव डूबी उनमें जो नंदनंदन महाराजको हँसी खेल और स्वभावकी जाननेवाली थी वह बोली चिन्ता नहीं डूबने दो हम वह मतिहीन नहीं हैं कि तुम्हारी धमकीसे डरकर जो तुम कहो सो मान ले और कोई २ जो थोडी अवस्थाकी थीं नंदनंदनके स्वभावकी नहीं जाननेवाली नई वनमें आई थीं वह व्याकुल हो गईं और दौडकर व्रजराजसे लिपट गईं. किसीने हाथ पकडा कोई चरण

पकडकर बैठ गईं, किसीने गलेमें हाथ डाला. जब ब्रजचन्दने देखा कि, बहुतोंसे तो मनभाई सिद्ध हुई परन्तु कितनी एक हमारी घमकीमें नहीं आती हैं तो नावकी वार जलकी बराबर कर दी, तब सबको निश्चय हो गया कि अब नाव डूबी और गोप ग्वाल जो किनारेपर खडे थे ताली बजाकर हँसने लगे कि, मूर्ख गोपी इस नंदलालके भरोसे पर नावमें चढी थीं सो फल पाती हैं. उन ब्रजनागरियोंको अपने प्राणका तनक शोच न हुआ और बोलीं यह गोरस और माखन सब डूब जाय तो क्या चिन्ता है यदि प्राणभी जाते रहें तबभी चिन्ता और शोच नहीं परन्तु इस बातका शोक है कि सब जगत्में यह बात फैलेगी कि जिस नावके खिवैया भवसागरसे पार उतारनेवाले श्रीकृष्ण थे सो नाव डूब गई. यह सुनकर भगवान्ने लजाय नाव पार करी.

जिस समय यशोदामहारानीने देवताओं तककी संसारकी माया-पाशके छुटानेवालेको रस्सीसे बांधा, तब सब गोपी लीला देखने आईं और बोलीं कि हे नन्दकुमार! बहुत उत्तम वार्ता हुई जो यशोदाने तुमको ऊखलसे बांधा, अब तुमको दूसरेके बंधनका दुःख जान पडेगा; अर्थात् अब कृपा कर जीवोंकी मुक्ति करोगे. जब ऊधोजी श्रीकृष्णका संदेशा लेकर मथुरासे ब्रजमें आये और गोपिकाओंसे ज्ञानवैराग्य कहने लगे तब ब्रजगोपिकाओंने ऐसे २ उत्तर दिये कि ऊधोजी ज्ञान भूल गये. संयोगवश वहां एक भ्रमर आ गया. गोपिका उसके मिषसे ऊधोजीसे कहने लगीं; हे भ्रमर! तू उसी निर्दयी कपटीकी बडाई स्तुति करता है, जिसने राजा बलिसे कपट और धूर्तता करके उसका राज्य हरण किया. रामावतारमें शूर्पनखाको अपने मुखकी शोभापर वशीभूत कर फिर उसके नाक कान कटवाये. न जाने उस छली कपटीको लोग अन्तर्यामी क्यों कहते हैं! यदि वह

अन्तर्यामी होते तो हमारी अन्तर्दशा देखकर क्यों नहीं आते और तथा हमारे दुःखकी दशापर दया क्यों नहीं करते, सो या तो वे अन्तर्यामी नहीं हैं अथवा निर्दयी और शीलहीन हैं. इस प्रकारके चरित्रोंसे गोपिकाओंका अनन्त अलौकिक भाव प्रगट होता है.

महाभारत, भागवत, गर्गसंहिता, विष्णुपुराण तथा दूसरे पुराणोंसे प्रगट है, कि गोपिका वेदोंकी श्रद्धा और जनकपुरवासी स्त्रियोंका अवतार है. जितना ज्ञान प्रेमभाव उनको हुआ, सबही उचित है, गोपिकाओंको ऐसा प्रेम हुआ कि ऋषियोंनेभी पहले और अबके प्रेमका अन्त गोपिकाओंपर समाप्त किया, तथा इस ग्रंथमें जो प्रेमकी दशा प्रेमनिष्ठामें लिखी जायगी और उनके दृष्टान्त वर्णन होंगे सो गोपिकाओंके प्रेमका करोडवां भाग है. विचारा था कि इस कथामेंभी कुछ उनका प्रेम लिखा जाय, परन्तु अपार देखकर मौन धारण किया. शृंगाररसका वर्णन जो प्रथम हुआ है यह उस रसकी निधिकी ध्वजा अथवा उस रसके देशकी सम्राट् अथवा चक्रवर्ती राजा व्रजगोपियां हुईं और उस रसका अन्त व्रजगोपिकाओंपर पूर्ण हो चुका. अब थोडा थोडा जिस किसीको प्राप्त होता है, तो इन्हींकी कृपासे मिलता है तथा जिस किसीको उसके स्वादकी इच्छा हो वह गोपिकाओंके चरित्रकी शरण लेवें, व्रजगोपिका और व्रजराजके जो चरित्र शास्त्रोंमें कहे हैं भगवान् वे चरित्र निरन्तर करते हैं. इनके देखनेकी कृपा कर जिसको आंखें दी हैं वह उन चरित्रोंको देखते हैं. व्रजराज कहींभी व्रजको छोडकर नहीं जाते, कहाभी है. दोहा–भूतल भार उतारि हौं, धरि हौं वपुष अनेक। व्रज तज अन्त न जाय हौं, मेरे येही टेक॥ भागवतादिमें जो उनका जाना लिखा है वह कार्यके उद्देश्यसे है, एक रूपसे तो मथुरा आदिमें चरित्र किये और दूसरा निजस्वरूप पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघन नन्दनन्दन महाराजका व्रजमें रहा

अबतक वे चरित्र ज्योंके त्यों होते हैं. उपासकोंने इसका सिद्धान्त भली प्रकारसे पुराणादिसे निश्चय कर लिया है. उसका विस्तार लिखना उचित नहीं है, परन्तु एक वार्ता लिखते हैं कि जब उद्धवजीने विरहसे गोपिकाओंको अत्यन्त व्याकुल देखा तो आपभी दयासे व्याकुल और उचित होगये और भगवान्की ओर निर्दयताकी बात धरने लगे. यह विचार करतेही थे कि एक चरित्र देखा कि नन्दनंदन महाराज किसी व्रजगोपिकासे हँसते हैं और किसीका माखन खाते हैं. नन्दरायके घरमें गो बछडोंकी रक्षा गोदोहन आदि करते हैं. वनसे गऊ चराये लिये आते हैं, गोपिका भगवान्के दर्शनोंकी इच्छासे द्वारपर खडी हैं ऐसे २ चरित्र जो भगवान् नित्य किया करते थे देखे और आश्चर्यमें चकित होकर बेसुध हो गये. तब व्रजगोपिकाओंने समझाया कि उद्धवजी तुम ज्ञान किसको देते हो और इसका क्या प्रयोजन है ? यहां श्रीकृष्ण सदा विराजमान रहते हैं कभी व्रजसे अलग नहीं होते.

मीराजीकी कथा २.

गोपिकाओंकी प्रीति और भगवद्भक्तिके अनुसार कलियुगमें अशंक और निर्भय प्रीति मीराबाईजीकी हुई. संसारकी और कुलकी लाज छोडकर बलपूर्वक गिरिधरलालमें प्रेम लगाया जिनका निर्मल यश सब भगवद्भक्तोंने गाया है. मेरतेके राजाके घर इनका जन्म हुआ, लडकाईसेही गिरिधरलालजीके रूप अनूपमें प्रीति हो गई इसका कारण भगवद्भक्त यह कहते हैं कि किसी बडे घरमें वरात आई थी उसकी धूम धाम देखनेको स्त्रियें कोठेपर चढी उस समय मीराबाईजीकी माता गिरिधरलालजीके दर्शनको जो महलमें विराजते थे गई थीं. मीराबाईभी चार पांच वर्षकी थी खेलती हुई चली गई

और अपनी मातासे पूछा कि हे मइया! मेरा दूल्ह कौनसा है.
माताने हँसकर प्रसन्नतासहित पुत्रीको बडे प्यारसे अपनी गोदमें बैठा लिया और फिर गिरिधरलालजीकी ओरको इशारा करके बोली कि तेरा दूल्ह यह है. मीराजीने तत्काल मातासे लज्जा करके अपने दूल्हसे घूंघट काढ लिया और फिर गिरिधरलालजीसे उनका ऐसा प्रेम हुआ कि गिरिधरलालजीको विना देखे एक पलभी चैन नहीं पडता था, भक्तमालके बनानेवालेने लिखा है कि मीराजीकी सगाई इनके माता पिताने चित्तोरके राजाके बेटेके साथ की थी और वह बडी धूमधामसे वरात लेकर आया. फिर जब फेरे फिरने लगे तो मीराजीने यह समझा कि मेरे फेरे गिरधरलालके साथ फिर रहे हैं, यह उन्होंने न विचारा कि राजाके साथ विवाह हो रहा है, फिर जब विदा होनेका समय आया तो उनके माता पिताने यथायोग्य इनको दहेज दिया, तब तो मीराबाई गिरिधरलालजीका वियोग न सहन कर सकी और अत्यन्तही व्याकुल होकर रुदन करने लगी. यह इनकी दशा देखकर इनके मातापिताने अत्यन्त प्यार कर अनेक भांतिसे समझाया और कहा कि जो इच्छा हो सो विना पूछे ले जाओ. तब मीराजीने व्याकुल होकर कहा कि जो तुम मेरा जीवन और सुख चाहते हो तो गिरिधरलालजीको मेरे साथ भेज दो, मैं उनकी तनमनसे सेवा करूंगी, मीराबाईके माता पिता उनसे बहुत प्यार करते थे और इनका गिरिधरलालजीमें प्रथमसेही बहुत प्रेम था, इसलिये गिरिधरलालजीको मीराबाईके अर्पण कर दिया. तब मीराबाईजीने भगवान्को अपने डोलेमें विराजमान किया और उनकी छविको देखती हुई प्रसन्न हो राणाजीके घरपर पहुँची. तब सासने आनेकी समय प्रथम तो अपने बेटेसे दुर्गाजीकीका पूजन कराया और फिर मीराजीसे

कहा कि हे वधू ! अब तुम दुर्गाजीका पूजन करो. तब मीराजी बोली कि मैं तो गिरिधरलालजीका पूजन कर चुकी और उन्हींको अपना शरीर अर्पण कर दिया है. अब उनके अतिरिक्त मैं और किसीको अपना शीश नहीं नवाऊंगी, तब सासने कहा कि, दुर्गाजीके पूजन करनेसे तो सुहागकी वृद्धि होती है, तब फिर मीराबाईजीने कहा कि इसमें कुछ हठ नहीं करनी योग्य है जो कुछ हमारी प्रारब्धमें लिखा है सोही होगा. यह उत्तर सुनकर मीराजीकी सास क्रोधित होकर अपने पतिसे कहने लगी कि स्वामी ! यह बहू तो हमारे किसी अर्थकीभी नहीं. जिसने पहली पहलही मुझको जवाब दिया. राणा सुनकर अत्यन्तही क्रोधित हुआ और मीराबाईके मारनेको उपस्थित हुआ परन्तु उसकी स्त्रीने मारनेका निषेध किया, इस कारण उसने नहीं मारा, उनको एक अलग हवेली लिवाकर वहांपर रख दिया. अब विचारना चाहिये कि रुक्मिणी और गोपिकाओंने जो दुर्गापूजन किया था. उनको तो जब यह श्रीकृष्ण नहीं प्राप्त हुए और मीराजीको प्रथमसेही श्रीकृष्ण पति हो गये, इस कारण दुर्गाका पूजन करना आवश्यक नहीं. मीराबाईजी जब अलग मकानमें रहने लगी तो बहुतही प्रसन्न हुई और गिरिधरलालजीको विराजमान करके भगवान्‌का शृंगार किया करती और उनकी शोभाको निहारकर अत्यन्तही आनंदित होती थी. ऊदाबाई राणाजीकी बेटी मीराबाईजीको समझाने लगी और बोली कि भाभी ! तुम बडे घरकी बेटी हो, कुछ तो बुद्धि सीखो और साधुओंकी सत्संगतिको छोडकर अच्छी संगति लो. देखो ! साधुओंकी संगतिसे दोनों कुलोंको कलंक लगता है. मीराबाईने उत्तर दिया कि हे ननँद ! सत्संगसे करोडों जन्मके महापाप कट जाते हैं जिसको इस संसारमें सत्संग प्यारा नहीं वही कलंकित है, मेरा जीवन तो सत्संगसेही है; जिसको दुःख होगा उसको होगा

तुम्हारा समझाना जिसको अच्छा लगे उसको समझाओ. उदाबाई यह सुनकर उलटी चली आई और आकर अपने मातापितासे बोली कि उसकी तो भगवान्में ऐसी अचल भक्ति है वह तो किसीकाभी कहना नहीं मानती. तब राणाने अत्यन्त क्रोधित हो एक कटोरेमें विष घोल-कर उसको चरणामृत कहकर मीराजीके पास भेज दिया; तब मीराबाईने प्रसन्न हो शीशपर चढाकर आनंदसहित पी लिया. राणाजी यही देखते रहे कि अब मीराजीके मरनेका समाचार आता है; परन्तु मीराजीकी कांति छिन छिन दूनी होती गई. वह भगवान्की शोभामें छकी हुई अनेक भांतिसे भगवान्की सेवा किया करती और भगवान्के चरित्रोंका कीर्तन करके रस और प्रेममें मग्न रहती. उस समय मीराबाईजीने एक विष्णुपद भगवान्के आगे कहा; उसका प्रथम पाद यह है.

राणाजी जहर दियो हम जानी । जब जहरका असर मीराबाईजीपर कुछभी नहीं हुआ तब राणाजीने एक प्रतिहारी उनके द्वारपर रक्खा और उसको यह आज्ञा दी कि जिस समय मीराजी साधुओंसे वार्ता करती हो उसी समय तुम हमको खबर दो. एक दिन मीराजी गिरिधर-लालजीके समीप हँसी और खेलकी बातें कर रही थीं तो एक दिन चोबदारने राणाजीको जाकर खबर सुनाई कि इस समय मीराबाईजी किसी मनुष्यके साथ हँसीकी वार्ता कर रही है; तब यह सुनतेही तत्काल राणा खड्गको हाथमें लेकर मीराजीके स्थानपर आया और द्वारपर आकर आवाज दी कि किंवाड खोलो. मीराबाईने आवाजको सुनतेही तत्काल किंवाड खोल दिये. राणा भीतर गये और किसीको वहांपर न देखा तो बोला कि तुम किस मनुष्यके साथ हँस बोल रही थी सो वह अब कहां है. मीराबाईजीने कहा कि वह तो तुम्हारे आगेही है. आंख खोलकर देख लो. इसको तो तुमसे लज्जा और छिपाव नहीं है.

अब विचारना योग्य है कि उस समय मीराबाई और भगवान् दोनों जने आपसमें चौपड खेल रहे थे और जब राणा पहुँचा तब भगवान्‌ने पासा डालनेको अपना हाथ लंबा किया था. राणाने जो भगवान्‌का हाथ लम्बा देखा तो लज्जित हो गया और भगवान्‌का यह प्रताप अपने नेत्रोंसे देख लिया, परन्तु जबभी कुछ प्रतीत नहीं हुई. सत्य है जबतक भगवद्भक्तोंकी कृपा नहीं होती तबतक भगवान् कदाचित् कृपा नहीं करते. राणा तो मीराबाईके मारनेके उपायमें था फिर भगवान्‌की कृपा किस प्रकारसे हो सकती थी. एक कपटी और पापी पुरुष साधुरूप बनाकर मीराबाईजीके समीप आया और बोला कि गिरिधरलालजीकी परवानगी है कि मीराबाईजीको पुरुषके अंगसंगका सुख दे, इस कारण मैं तुम्हारे समीप आया हूं. मीराबाईजी बोली कि गिरिधरलालजीकी आज्ञा मेरे शिर माथेपर है. प्रथम आप भोजन प्रसाद करिये. मीराबाईजीने उस स्थानके चौकमें जहां भगवद्भक्तोंका समाज था पलंग बिछवाया और शृंगार करके उस कपटी साधुको बुलवाया और आज्ञा दी कि पलंगपर बैठें इस समय किसी प्रकारका भय और लज्जा करनी योग्य नहीं गिरिधरलालजीकी आज्ञा सर्वोपरि है. वह पुरुष यह सुनतेही पीला पड गया और जो उसके मनमें अंधकार था सो प्रकाशित हो गया और मीराबाईजीके चरणोंपर गिर पडा और हाथ जोडकर भगवान्‌की विनती करने लगा तब मीराजीको उसपर दया आई और भगवान्‌का भक्त कर दिया. फिर अकबर बादशाहने जब मीराजीके स्वरूपकी महिमा सुनी तो तानसेनको लेकर उनके दर्शन करनेके लिये गया और मीराबाई तथा गिरिधरलालजीके दर्शन करके और उनकी भक्तिका प्रताप देखकर अपना अहोभाग्य

समझा. फिर जब तानसेन एक विष्णुपद भगवान्के अर्पण कर चुका तब उलटा आया फिर मीराबाईजी दर्शनोंके लिये वृन्दावनमें आई और जीवगुसांईजीके दर्शनोंको गई तब गुसांईजीने कहला भेजा कि हम स्त्रीके दर्शन नहीं करते, तब मीराजीने कहा कि हम वृन्दावनमें सबको सखीरूप जानती थी, केवल गिरिधरलालजीकोही पुरुष जानती थी. अब जाना कि इस वृत्त और व्रजराजके औरभी बांटनेवाले हैं. यह बात सुनकर गुसांईजी नंगे पैर तुरन्तही आये और मीराबाईजीके दर्शन करके भगवत्प्रेममें पूर्ण हो गये. फिर मीराबाईजीने एक २ वन और कुंजके दर्शन किये और भगवान्के अत्यन्त मनोहर माधुरी स्वरूपको अपने मनमें विराजमान करके अपने देशको चली आई. फिर आकर देखा कि राणाकी बुद्धि वैसीही भ्रष्ट है; तब उन्होंने इसके देशमें रहना त्यागन कर दिया और फिर आप द्वारिकाजीको चली गई और गिरिधरलालजीकी शोभाको अपने हृदयमें धारण कर आनंदसहित रहने लगीं. इसके उपरान्त जब राणाकी नगरीमें भगवान्के भक्तोंने आना छोड दिया और अनेक प्रकारके उपद्रव होने लगे तब राणाने मीराबाईकी भक्तिका प्रताप जाना और उनको अपनी नगरीमें लानेके लिये बहुतसे ब्राह्मण भेजे और उनसे यहभी कहा कि तुम मीराबाईजीकी अनेक प्रकारसे विनती कर जिस तरहसे हो उस प्रकार उनको मेरी नगरीमें ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि आपके आये विना मेरा जीवन नहीं हो सकेगा. यह राणाकी आज्ञाको सुनकर वे ब्राह्मण द्वारिका-जीमें आये और जो कुछ राणाने कहा था वह समस्तही मीराजीसे कह सुनाया; परन्तु जो ब्राह्मणोंने कहा था सो मीराने उसपर कुछ ध्यान न दिया. ब्राह्मणोंने देखा कि मीरा किसी प्रकारसेभी नहीं चलती; तौ सबने मिलकर उनकेही स्थानपर धरना दे दिया और

कहा कि जब तुम चलोगी तभी हम चलेंगे और ब्राह्मणोंने अन्न जल-काभी त्यागन कर दिया. मीराबाईजीने कहा कि इस द्वारिकामें मेरा ठहरना श्रीरणछोडजीकी कृपासे हुआ है सो उनसे विदा हो आऊं, फिर आप वहां गईं और गिरिधरलालजीके प्रेममें मग्न होकर एक विष्णु-पद भगवान्‌की भेंट किया. उसके अंतका पाद यह है "मीराके प्रभु गिरिधरनागर मिल बिछुडन नहिं कीजे" भगवान्‌ने जब मीराजीकी ऐसी सच्ची प्रीति और अपने प्रति प्रेम देखा तौ उनको अलग न कर सके उनको उसी समय अपने अंगमें मिला लिया; फिर ब्राह्मण ढूंढते २ वहांही गये परन्तु मीराजीका कहीं कुछ पता न चला. जो सारी मीराजी पहरे हुए थीं उसीको पीतांबरकी जगह भगवान्‌की देहपर देखा तो उनको भगवान्‌की भक्तिमें श्रद्धा हुई और फिर अपने देशमें आये और राणाजीकी नगरीको मीराजीके चले जानेपर अकबर बादशाहने विजय किया.

करमेतीजीकी कथा ३.

शेखावत राजाकी कन्या करमेतीजी ऐसी भगवान्‌की भक्ति करने-वाली हुई कि, जो कलियुग अनेक पापोंसे भरा हुआ है; उसने अपना प्रभाव करमेतीजीपर नहीं किया. उन्होंने अपने पतिको त्यागन करके एक नित्य निर्विकार श्रीकृष्ण महाराजको अपना पति किया और संसारी समस्त फांसियोंको तृणकी समान तोडकर वृन्दावनमें निवास किया. निर्मल कुलवाला जो परशुराम है उसीको धन्य है कि; जिसके घर ऐसी धर्माचरण करनेवाली कन्याका जन्म हुआ. जिसकी भक्तिकी प्रशंसा समस्त भक्तोंकी जिह्वापर चढी हुई है और भगवान्‌में प्रीति उत्पन्न करनेवाली है. श्रीकृष्णमहाराजकी छबिको निहारकर करोडों कामदेव बलिहारी होते हैं. उनमें ऐसा अपना मन

करमेतीजीने लगाया, कि वह लिखनेसे बाहर है और वह सर्वदा उसी छबिके चिन्तवनमें मग्न रहा करतीं और ध्यानसे सुखसे ऐसा आनंद पाती कि अंगमें न समाती थीं। वरन यहांतक हुआ कि उनको समस्त संसारी कार्य तुच्छ दृष्टि आते थे करमेतीजीका पति इनके गौनेके लिये आया तब करमेतीजीके माता पिताने समस्त गौनेकी तयारी करी. तब करमेतीजी विचारने लगीं कि यह देह तो भगवद्भजनके लिये है. संसारी भोगविलास और सुखके लिये नहीं. इस कारण इस देहका त्याग नहीं करना योग्य है. यह करमेतीजीने विचारा कि भगवान्‌की प्रीति और उनका भजन सबसे मुख्य है और यह संसारी सम्बन्ध तथा प्रीति आदि सब तुच्छ हैं; जो कि भगवान्‌का भजन देहके विना नहीं हो सकता इस कारणसे देहका तो त्याग करना योग्य नहीं. फिर जो भगवान्‌के भजनमें विघ्न करते हैं उन्हींका त्यागन करना योग्य है. यह मनमें विचार जिस दिन गौनेका मुहूर्त था उसी दिनकी रात्रिमें भगवान्‌के रूपमें मग्न हो उनका ध्यान करती अकेली घरसे चल दी. फिर जब प्रभात हुआ और इनके माता पिताने करमेतीजीको घरपर न पाया तो अत्यन्तही चिन्तित हुए और जिधर तिधरको करमेतीजीके ढूंढनेके लिये आदमी भेजे. करमेतीजीने जब अपनी ओरको आदमियोंको आता हुआ देखा तो एक ऊंट मरा हुआ पडा था उसकी ओटमें जा छिपी जो कि कलियुगके पापोंकी दुर्गन्धि इस मृतककी दुर्गन्धसे कहीं विशेष है, सो करमेतीको उस ऊंटकी दुर्गन्ध किंचित्‌भी नहीं जानी गई और जो भगवान्‌के शृंगारकी सुगन्ध इनके मनमें समाई थी उसीके प्रभावसे उसकी दुर्गंध इनके पास न आ सकी. तीन दिन-तक उस खाकरमें छिपी रहीं फिर तीन रोजके पीछे उसमेंसे निकलीं तो एक मनुष्य गंगास्नान करनेको जाता था उसीके साथ आप गंगा-

जीपर आई और वहांपर स्नान कर जितने इनके पास आभूषण थे उन सबकोही दान कर दिया और फिर आप मथुराजीमें आई; वहांपर स्नान कर यात्रा करी और फिर वृन्दावनमें ब्रह्मकुंडपर ठहरकर भगवान्‌के चिंतवन और ध्यानमें मग्न रहने लगीं. करमेतीजीके पिता परशुरामजी ढूंढते २ मथुराजीमें पहुँचे. तब इन्होंने एक मथुराके निवासी चौबेसे अपनी कन्याका समाचार पाया कि वह वृन्दावन है सो आप वृन्दावनको गये; उस समय वृन्दावनमें इतने कुंज और बाडे नहीं थे जितने कि आजकल हैं. इन्होंने वटवृक्षपर चढकर देखा कि करमेतीजी भगवान्‌के ध्यानमें विराजमान हैं तब वृक्षसे उतरकर उनके पास गये और अत्यन्त प्रीतिसे रुदन कर उनके चरणोंमें गिर पडे और बोले कि हे बेटी ! तेरे चले आनेसे मेरी नाक कट गई. बिरादरीवालोंको अनेक प्रकारके भ्रम होते हैं और सब देशवाले बोली मारते हैं अब तुम घरपर चलो और अपनी सुसरालमें जाकर भगवान्‌की भक्ति और उनकी सेवा तथा पूजन किया करना. यहांपर तो वन है इसमें अनेक प्रकारके जीव जन्तु सिंह इत्यादिक हैं कोई तुमको भक्षण कर जायगा तो मुझको महान् दुःख होगा और जो तुम्हारे वियोगसे तुम्हारी माता मृतककी तुल्य हो गई है उसको जाकर जीवित करो. तब पिताकी यह बातें सुनकर करमेतीजीने उत्तर दिया कि जिस देहमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है वह मरेकी समान है. यदि जो तुमको जीवनकी इच्छा है तो भगवान्‌की भक्ति करनी उचित है और जो तुम यह कहते हो कि हमारी नाक कट गई सो नाक तो प्रथमसेंही तुम्हारे मुखपर न थी, क्योंकि मुख और नाक तो भगवान्‌की भक्ति और भजनसेही होती है सो उसके विना नाक नकटेके नकटे हो. विचार लो कि पचास वर्ष संसारके भोग विलासमें तुम्हारे व्यतीत हो गये और तबभी तुम्हारा मन तृप्त न हुआ सो अबभी तुम इस

स्वप्नसे जागो कि यह सम्पूर्णही भोगविलास नाश होनेवाले और तुच्छ हैं और भगवान्का भजन और भक्तिसारही है यह सब झगडे छोडकर उसकी ओर मन लगाओ. इस सूक्ष्म शिक्षासे परशुरामका अंतःकरण निर्मल हो गया और उसके हृदयके अज्ञानका इस प्रकारसे नाश हो गया जिस प्रकारसे सूर्यके निकलनेसे अंधकारका नाश होता है. इसके उपरान्त करमेतीजीने एक भगवान्की मूर्ति उनकी सेवाके लिये दी और फिर उनको विदा किया फिर यह वहांसे चलकर अपने घरपर आये और भगवान्की मूर्तिको अपने स्थानपर विराजमान किया और उनकी सेवामें ऐसा मन लगाया सो किसी ओरकोभी इसका मन न गया. इन्होंने समस्त मनुष्योंके पास जाना आना छोड दिया. एक दिन राजाने ब्राह्मणोंसे पूछा कि बहुत दिन हो गये परशुराम ब्राह्मण हमारे पास नहीं आया, उसकी क्या दशा है तब किसी ब्राह्मणने विस्तारपूर्वक परशुरामकी भक्तिका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, तब राजाने उसका समाचार और बुलानेके लिये अपने नौकरोंको भेजा तब परशुरामजीने कहा कि अब हमको राजासे कुछभी प्रयोजन नहीं मनुष्यदेह पाकर जो कर्म करना चाहिये सोही मैं करता हूं. जब राजाने यह वार्ता सुनी तो उनकी भक्ति और वैराग्यपर ध्यान करके दर्शनोंके निमित्त स्वयं आया और उनकी अचल प्रीतिको देखकर करमेतीजीकी भक्ति और वैराग्यका वृत्तान्त सुनकर प्रेमसे विह्वल हो गया. फिर राजाको करमेतीजीके दर्शनोंकी इच्छा हुई; कि जो मेरे भाग्य बलवान् हों तब क्या आश्चर्य है कि आ जाय और दर्शन देकर कृतार्थ कर दें. यह अभिलाषा कर वृन्दावनको गया और वहां जाकर करमेतीजीके दर्शन किये. देखा कि निष्कम्प और दृढतासे करमेतीजी नंदनंदनकी प्रीतिमें उस पदवीको पहुँच गई है कि वह कहने

सुननेकी कुछ बात नहीं रही. उनकी इस मूर्तिको देखकर राजा अपने देशको चलनेके लिये कुछभी न कह सका और उसने करमेतीजीके लिये एक कुटी बनवा दी और दंडवत् प्रणाम कर अपने देशको चला आया. अबतक करमेतीजीकी कुटी ब्रह्मघाटपर उपस्थित है.

नरसीजीकी कथा ४.

महताकी पदवीसे नरसीजी महाराज गुजरातदेशमें ऐसे भगवान्के भक्त हुए कि इनके देशमें कोई भगवद्भक्तिका नामतकभी नहीं जानता था और जो किसीको तिलक और माला पहरे हुए देखते तो उसकी निन्दा करते थे. ऐसे कुलमें इनका जन्म हुआ और यह ऐसे परम भक्त हुए कि उस देशके समस्त पापोंको निवृत्त करके समस्त मनुष्योंको भगवद्भक्त बना दिया. वह शृंगार और माधुर्यकी उपासनामें ऐसे हुए कि उनको गोपिकाओंके तुल्य कहना योग्य है. यह जूनागढके वासी थे, जब इनके माता पिता मर गये तो यह अपने भाई और भाभीके पास रहने लगे. एक दिन बाहरसे खेलते २ घरमें आये और बोले कि भाभी ! जरासा पानी मुझे पीनेको दे दो. तब भावजने अपनी प्रकृति बुरी कर और क्रोधित हो उत्तर दिया कि तू ऐसी कमाई करके लाया है जो मैं तुझे पानी दूं. यह कठिन बात सुनकर नरसी लज्जित हो गये और उनको अपना जीवन भार विदित होने लगा, तब वह शिवजीके पास गये और सात दिनतक विना अन्न जल किये हुए शिवालेमें पडे रहे; तब शिवजीने विचार किया देखो जो किसी असमर्थकेभी द्वारपर कोई आ जाता है तो वहभी उसकी सुधि लेता है और मैं तो जगत्का ईश्वर हूं तबभी उसकी सुधि नहीं लेता. यह विचार कर साक्षात् होकर दर्शन दिये और बोले कि जो तुम्हारी इच्छा हो सोही वर मांगो. तब शिवजीकी ऐसी

आज्ञाको सुनकर नरसीजी बोले कि, हे नाथ ! मुझसे मांगना तो आता नहीं जो तुमको प्रिय हो वही आप मुझको दीजिये. तब शिवजीको यह चिन्ता हुई कि मुझको तो वह वस्तु प्रिय है कि जिसको वेद नित्य नेति २ कहते हैं और जिसका वृत्तान्त परम प्रिया पार्वतीकोभी नहीं बताया सो मैं इसको एक बारही किस प्रकारसे बता दूं और फिर जो अपने वाक्य और इस बातपर ध्यान किया कि इसके द्वारा एक देशका उद्धार होगा इस कारण अपना और नरसीजीका सखीरूप बनाकर वृन्दावनमें आये तो आकर देखा कि सारी भूमि रत्नोंसे जडित है उसके बीचमें रासमंडल और रासमंडलमें अगणित गोपिकाओंके बीचमें सिंहासनपर प्रिया और प्रीतम विराजमान हैं. जिनके स्वरूपकी चांदनीसे चंद्रमाकीभी ज्योति फीकी जान पडती है और रासविलास हो रहा है फिर ताल देकर कभी प्रीतम प्रियाजीको और कभी प्रियाजी प्रीतमको संगीतकी रीति सिखाते हैं फिर कभी गलबैंया डालकर नृत्य करते हैं और कभी गोपिकाओंके राग और नाचपर ध्यान है और कभी हास्य होता है और कभी पखावज वीणा आदि सब भांतिकी ताल बजती हैं, छहों राग और रागिनी सहित सखीरूप बनाये हुए हैं. नरसीजीने जब यह समाज देखा तो कृतार्थ हो गये और तत्कालही सुख दुःखसे निवृत्त हो गये और शिवजीकी आज्ञानुसार समाजमें दीपक दिखाने लगे व्रजकिशोर महाराजने प्रियाजीको आज्ञा दी कि आज यह सखी कोई नवीन आई है; प्रियाजीने उत्तर दिया कि शिवजीके साथ है. तब नटनागर महाराजने मंदमुसकान और कृपाकी दृष्टिसे नरसीजीकी ओर देखा और फिर प्रियाजीनेभी श्लाघा करी; तब फिर आज्ञा हुई कि अब तुम जाओ और जो तुमने देखा है उसीका ध्यान करते रहो. तुम जहां पर मुझको बुलावोगे मैं उसी समय उसी स्थानपर आ उपस्थित हूंगा.

तत्काल नरसीजी भगवान्की आज्ञानुसार परम आनंदमें मग्न होकर अपने स्थानको चले आये और अपना एक पृथक् स्थान बनाया और उसमेंही भगवान्के समाजके ध्यानमें मग्न होने लगे. फिर एक ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह हो गया, उससे एक पुत्र और दो कन्या उत्पन्न हुईं. संसारमें भगवान्की भक्तिका प्रचार किया; जो साधु इनके स्थानपर आते यह उनकी सेवा करते. दिनरात भगवान्के भजन और कीर्तनके अतिरिक्त और कुछ काम नहीं करते थे. जब यह इनकी वार्ता देखी तो इनकी जातिके ब्राह्मण इनसे शत्रुता करने लगे, परन्तु नरसीजी तो भगवद्रूपी समुद्रमें डूबे हुए थे और सर्वदा भगवान् उनकी रक्षा और सहायता करते थे, इस कारण उन ब्राह्मणोंसे कुछभी नहीं हुआ. इनके घर एक वार साधु आये और लोगोंसे पूछा कि हमको द्वारिकाकी हुंडी करनी है. कोई साहूकार यहांपर हो तो हमको बताओ तो लोगोंने हास्य करके नरसीजीका पता बता दिया और यहभी कहा कि जब वह तुमसे मना करे तो तुम उनके चरण पकड लेना. साधु यह सुनकर नरसीजीके पास गये, और सात सौ रुपये नरसीजीके आगे धरकर उनके चरण पकड लिये. नरसीजीने मना किया परन्तु साधु न माने और विनती करने लगे. नरसीजीने जाना कि यह किसीके बहकानेसे आये हैं या भगवान्ने द्रव्य दिलानेके लिये द्रोहियोंके मनमें यह इच्छा उत्पन्न करा है. यह विचारकर तत्कालही हुंडी लिख दी और समझा दिया कि जिसके नाम हुंडी लिखी है उसका नाम शामलशाह है उसीके हाथमें देना. साधु वहांसे हुंडीको लेकर द्वारिकाजीमें आये और शामलशाहको ढूंढा तो कहींभी पता न चला. अंतमें घबडाकर भूखे प्यासे नगरसे बाहर आये कि भोजन प्रसाद कर फिर ढूंढेंगे; तो शामलशाहने विचारा कि मेरा मिलना तो

पूर्ण ढूंढ बिना नहीं हो सकता; परन्तु जो इससे और ढूंढनेका परिश्रम करता हूं तो मेरी गुमास्तेगिरी और नरसीजीकी साहुकारीमें बट्टा लगता है; इस कारण बडी पगडी और लम्बी धोती और नीचा जामा पहनकर कानमें कलम रखकर एक बहीको बगलमें दाबकर साहुकारका रूप बनाय रुपयोंकी थैली कंधेपर धर जहां साधु ठहर रहे थे वहां आये और पूछा कि नरसीजीकी हुंडी कौनने लाया है. साधु प्रसन्न हुए और बोले कि महाराज ! हम लाये हैं; हम तो आपको ढूंढते २ हार गये. आपने बडी कृपा करी; शाहजीने कहा कि लज्जित क्यों होते हो हम तो तुमको कई दिनसे ढूंढते हैं और नगरमें जो मेरा पता न लगा उसका कारण यह है कि जो भगवान्‌का निजदास है वही मुझको जानता है. साधुने हुंडी सौंप दी और शाहने रोकडी रुपया देकर नरसीजीके नाम उत्तर लिख दिया कि चिट्ठी आई. रुपया रोक दे दिया और मुझको अपना गुमास्ता जानकर कामकाज लिखते रहना. साधु वहांसे यात्रा करके फिर नरसीजीके पास आये और वह चिट्ठी उनको दी; तब नरसीजीने पूंछा कि शामलशाहको देख आये; साधुने उत्तर दिया कि हां महाराज ! देख आये। नरसीजीने प्रसन्न हो बहुत प्रेमसे पत्र ले लिया और जब साधुको यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वहभी भगवान्‌की भक्ति करने लगे. नरसीजीने उन समस्त रुपयोंको साधुओंकी सेवामें लगा दिया क्योंकि शाहका द्रव्य देना तो अवश्य था और किसी प्रकारसे उसके पास पहुँच नहीं सकता. फिर साधुसेवाके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं दृष्टि आया. नरसीजीकी बडी पुत्रीके एक लडका उत्पन्न हुआ और छोछककी सामग्री कुछभी नहीं पहुँच सकी तो इनकी पुत्रीको सास इत्यादिक स्त्रियां सर्वदा ताना देती थीं कि तुझको तेरे पिताने छोछकतकभी नहीं दिया; तब लडकीने नरसीजीको कहला भेजा कि पिता !

इस सासने मुझको कठिन दुःख दिया है; सो जो तुमसे कुछ दिया जाय; तो ले आवो. नरसीजी एक पुरानी गाडीपर चढकर उस नगरीके किनारे पहुँचे. लडकीने उनकी ऐसी कंगाल दशा देखकर कहा कि जो तुम्हारे पास कुछ न था तो क्यों आये ? तब नरसीजी बोले कि तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो अपनी सासके पास जाकर जो सामग्री छोछककी हो सो लिखा लाओ. सासने क्रोधित हो समस्त वस्तु, आभूषण, वस्त्र लिखवा दिये. जब नरसीजीकी लडकी सूची लेकर आई तो नरसीजीने कहा कि अब फिर जाओ और किसीके लिये रह गया हो तो उसेभी लिखा लाओ. सासने क्रोधित हो कह दिया कि दो पत्थरभी ले आना फिर उसने ठहरनेके लिये एक पुरानी फूटी पोली बता दो और जो स्नानके लिये पानी भेजा तो ऐसा उष्ण था कि हाथ न लगाया जाय. भगवान्की इच्छासे उस समय मेह वर्षा और पानी ठंढा हो गया. नरसीजीने आनंदपूर्वक स्नान किया और कोठरी जो कि उस पोलीमें थी सुधारी और उसके द्वारपर परदा गेरकर भगवान्के कीर्तनका आरंभ किया. उनके कीर्तनसे भगवान् प्रसन्न हो गये और जो सामग्री उस पत्रमें लिख रही थी सो रुक्मिणीजीके साथ लेकरके आये और रुक्मिणीजीको इस कारण साथ लाये कि मरदानी वस्तुमें जो यदि कमी होगी तो उसका दोष तो मेरे शिर और जो स्त्रियोंकी कोई वस्तु कम पडी तो उसका दोष तुम्हारे शिर है. अब यहांपर यह संदेह हुआ कि नरसीजी शृंगारके उपासक थे. यह उचित था कि उनके इष्टदेव अर्थात् नंदनंदन महाराज राधिकाजीके सहित आते. रुक्मिणी और द्वारिकानाथ महाराज किस कारणसे आये ? उसका उत्तर यह है कि नरसीजीने प्रियाप्रीतमको दुःख देना और उनके विहार और सुखसमाजमें विघ्न डालना उचित न जाना; इस कारण

द्वारिकानाथ और रुक्मिणीजीको बुलाया. इसके उपरान्त भगवान्ने यहभी समझा कि यह कार्य शृंगारके सम्बन्धी नहीं हैं वरन गृहस्थका है; इस कारण उस रूपसे चलना चाहिये कि जिस कामसे विवाह छोछक भात आदिके जिसने किये हों, सो द्वारिकानाथ रुक्मिणीजीके रूपसे प्रगट हुए. फिर समस्त नगरीके निवासीको एक २ वस्त्र और एक २ आभूषण बांटने लगे और ऐसा छोछक दिया कि किसीने आंखोंसेभी नहीं देखा था फिर सबसे पीछे दो पत्थर चांदी सोनेके दिये. सारे नगर और आसपासमें नरसीजीका यश हुआ, सो अबतक साधुसमाजमें गाया जाता है. फिर नरसीजी अपने घरको चले; एक स्त्री उस पत्रमें लिखनेसे रह गई थी तो नरसीजीकी पुत्री उसको अपने वस्त्र उतारकर देने लगी तब उसने कहा कि जिसके हाथसे सबने लिया है उसीके हाथसे मैं लूंगी. नरसीजीने अपनी पुत्रीके लिये फिर भगवान्को बुलाया और उसकोभी समस्त सामग्री दी. नरसीकी पुत्री इस दानसे ऐसी प्रसन्न हुई कि फूली अंगमें न समाई और अपने पिताकी भक्तिका प्रताप देखकर अपने पति इत्यादिकको छोड दिया और नरसीजीके साथ चली आई और भगवान्के भजनमें लगी और इनकी दूसरी कन्याने अपना विवाह नहीं कराया और वहभी भगवद्भक्त हो गई. नरसीजीकी नगरीमें दो गानेवाली गाना गाती फिरती थीं उनको एक कौडी प्राप्त नहीं हुई; किसीने उनको नरसीजीका नाम बता दिया और कहा कि उनके घरमें तुमको बहुतसा धन मिलेगा तो वह इनके स्थानपर आकर नाचने और गाने लगीं, नरसीजीने उनसे कहा कि हम फकीर हैं हमसे तुम क्या अभिलाषा करती हो चली जाओ. उन्होंने इनके कहनेको एकभी न माना; तब नरसीजीने कहा कि यहां तो भगवान्की भक्ति है जो तुमको चाहिये तो शिर मुंडाकर हमारे पास चली

उन्होंने तत्कालही शिर मुंडा लिया और नरसीजीकी समाजमें मिल गयीं. नरसीजीकी दोनों पुत्री और दोनों गायन प्रेम और भक्तिसे भगवान्का भजन और कीर्तन करके जो भाव भगवद्भक्ति और प्रेमके परमानंद देनेवाले होते हैं सो प्रत्यक्ष किया करते. साहलंगनामें नरसीजीका मामा देशके राजाका दिवान था, उसको नरसीजीके यह आचरण बुरे लगे और राजासे इनकी बुराई करी और यह कह दिया कि दंडी साधु और ब्राह्मणोंका समाज करके नरसीजीको इस देशसे निकाल दिया जाय कारण कि वह यहांपर लोगोंको छलता है. सो राजाने नरसीजीके बुलानेके लिये चार चोपदारोंको भेजा; तब नरसीजीने अपनी दोनों पुत्री और गायनोंसे कहा कि तुम किसी दूर स्थानपर चली जाओ. हम राजाके पास जाते हैं; उन्होंने कहा कि राजाका क्या भय है ? हमभी तुम्हारे साथ हैं. निदान सब भगवान्का कीर्तन करते हुए राजाके दरबारमें आये. नरसीजीके प्रतापसे सभावालोंके मुख तो उतर गये परन्तु एक पंडितने पूछा कि स्त्रियोंको साथ रखना कौनसी रीति है. नरसीजीने उत्तर दिया कि सब शास्त्र और पुराण तथा वेदोंका सार भगवान्की भक्ति है. जिसको यह प्राप्त हो वह परम भागवत है और भगवद्रूप है. स्त्री हो अथवा पुरुष और उसका एक क्षणका सत्संग भगवद्भक्तिका देनेवाला है. भगवान्ने अपनी जिह्वासे मथुरावासी स्त्रियोंकी श्लाघा करी है और उनके पतियोंने उनके भागकी बडाई करके कहा कि यह स्त्री परम बडभागी हैं कि भगवान्के दर्शन पाये और सर्वज्ञानी और वेदपाठी होनेपर धिक्कार है कि भगवान्से विमुख हैं भागवतमें लिखा है कि जिसको भगवान्की भक्ति है वही बडा है और वही मुक्तिके योग्य है और वही सत्संगी है और वही सेवा करनेवाला है. फिर भगवान्ने कहा है कि मैं भक्तिके वशीभूत हूं.

एकादशस्कंधमें भगवान्ने आज्ञा करी है कि मेरा भक्त जो नीचभी हो और जो जाति भगवद्भक्त न हो तो वह उन सबसे बडा है; फिर जिस किसीको भगवान्की भक्ति प्राप्त हुई है उसको स्त्री वा पुरुष वा नीच या उच्चजाति कहना शास्त्रके विपरीत है. वह भागवत भगवत्का प्रिय है. शास्त्रके सिद्धान्तको समझकर जो भगवान्के आश्रय होते हैं वही पंडित सर्वज्ञानी हैं; नहीं तो सब गुण और पंडिताई तुच्छ है. निदान इस भांतिके उत्तरसे सब सभाको चुपकर दिया, उसी समय राजाने एक ब्राह्मणने नरसीजीके छोडके देनेका वृत्तान्त वर्णन करा, तब राजाको विश्वास हो गया और इनके चरणोंपर गिरकर अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना करने लगा. और हाथ जोडकर फिर बोला कि, महाराज ! आप मेरे घरमें विराजिये, आपके रहनेसे मेरी बडाई होगी. नरसीजी राजाको समझा बुझाकर चले आये और भगवान्का भजन करने लगे. भगवान्की मूर्ति जो विराजमान थी सो सर्वदा उसके सामने भजन और कीर्तन किया करते, और जब रागके द्वारा गाते थे उस समय भगवान् इनको अपने गलेकी माला देते थे. एक समय साधुओंकी सेवाकी भीडसे केदाराराग किसी साहूकारके पास गिरवी रख दिया और कहा कि जबतक रुपया नहीं देंगे तबतक केदारा राग भगवान्के आगे नहीं गावेंगे, उसी समय द्वेषियोंने राजाको बहकाया कि नरसीजीकी बडाई और महिमा वृथा हो रही है. एक कच्चे सूतके डोरेमें फूलोंकी माला भगवान्को पहरा देता है और वह आपही आप फूलोंके बोझसे टूट जाती है. राजाने यह बात सुनकर नरसीजीकी परीक्षा करनी विचारी जो कि राजाकी माता भगवद्भक्त थी उसने इनको बहुतही समझाया परन्तु राजाने एक न माना. एक रेशमके मजबूत डोरेमें माला बनवाई और

भगवान्‌को पहराकर नरजीसे कहा कि हमभी तो देखें कि भगवान् तुमको माला किस प्रकारसे देते हैं. नरसीजीनें राजाकी यह बात सुनकर भगवत्कीर्तनका गाना आरंभ किया केदारारागके अतिरिक्त और समस्त राग गाये परन्तु न भगवान् तोभी प्रसन्न हुए और न माला दी; तब तो नरसीजीने उलाहने देने प्रारंभ किये; कि आखिरको तो ग्वालबाल हो जो एक मालाके लिये इतने कंजूस हो गये कि उस मालाको अपनी छातीसे लगा लिया है और केदारारागके अतिरिक्त आप किसी रागसे प्रसन्न नहीं होते. देखो विष्णुनारायण बडे दाता हैं समस्त संसारका पालन करके अपने दासोंकी इच्छाको पूर्ण करते हैं; सो मेरे भाग्यमें तो तुम ग्वालबाल लिख दिये हो. एक मालाके लिये आपकी यह दशा है और इतने देनेवाले होकर अपने अंगसे अलग नहीं करते अपना अत्यन्त मनोहर स्वरूप दिखाकर मेरा मन हरण कर लिया है, सो जो तुम यह कृपणता कर रहे हो इसमें मेरी कुछ हानि नहीं तुमहीको कलंक लगेगा. फिर जब भगवान्‌ने नरसीजीकी यह बातें सुनी तो तत्कालही नरसीजीका रूप धारण किया और रुपयेको लेकर उस साहूकारके स्थानपर गये; वह मंदभागी साहूकार उस समय सोता था, सो उसने कहला भेजा कि मेरी स्त्रीको रुपया देकर लिखत ले जावो. जब यह स्त्रीके पास गये तो उसने हाथ जोडकर दंडवत् और प्रणाम करी और रुपये लेकर लिखत दे दी और इनको कुछ भोजन कराया और विदा किया साहूकारकी स्त्रीने नरसीजीकी विनती करी थी कि भगवान्‌के दर्शन करा दो सो नरसीजीने भगवान्‌के दर्शन करा देनेकी प्रतिज्ञाभी कर ली थी सो भगवान्‌ने इस स्त्रीको दर्शन देकर इनकी प्रतिज्ञा पूर्ण करी. इसके पीछे जब भगवान्‌ने केदारा रागको

गिरवीसे छुटाकर लाये तो लिखतम नरसीजीकी गोदीमें डाल दी. नरसीजी उस लिखतमको देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और फिर उस रागको ऐसा गाया कि और दिन तो माला भगवान्के गलेसे अलगही हो जाती थी और उस दिन भगवन्मूर्तिने अपने हाथसे आकर माला पहरा दी. यह देखकर सबने " धन्य है धन्य है " ऐसा शब्द उच्चारण किया और राजा उसी समय श्रद्धावान् होकर नरसीके चरणोंमें गिर पडा और जो दुष्ट थे सो लज्जित हो गये और भगवान्की भक्तिमें विश्वास करके भगवान्की शरण हो गये. भगवान्ने जो बिना केदारा रागके माला नहीं दी थी, उसका यह कारण है कि प्रथम तो नरसीजीके मनसे उस रागकी महिमा और प्रीति जाती रही. तिसके उपरान्त फिर साहूकार और दूसरे मनुष्योंको उस रागकी साख नहीं रहती और नरसीजीने जो माला मिलने और चमत्कार दिखानेका हठ किया था उसका यह कारण कि उस देशमें भक्तिका प्रचार न था और बहुतसे मनुष्योंने यह चमत्कार देखकर भक्ति स्वीकार करी थी, जो इस विवादमें सत्य भक्तिका कुछ दूषण प्रगट होता तो समस्त मनुष्योंकी श्रद्धा जाती रहती और इस देशमें भक्तिका प्रचार न होता. एक समय ब्राह्मण अपनी कन्याकी सगाई करनेके लिये जूनागढमें आया, कोई वरभी उसकी इच्छानुसार नहीं मिला फिर किसी मनुष्यने नरसीजीके पुत्रका पता बता दिया कि वह लडका अत्यन्तही सुन्दर है. ब्राह्मणने जो नरसीजीके पुत्रको देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुआ और तत्कालही सगाईका तिलक कर दिया. नरसीजीने कहा कि हम तो निर्धन हैं तुम किसी धनवान्के घर सगाई करो. ब्राह्मण नरसीजीकी स्तुति करके अपनी नगरीमें पहुँचा और कन्याके पितासे नरसीजीके पुत्रसे सगाई कर देनेका वृत्तान्त कहा कन्याका पिता नरसीजीके नामको सुनकर

अत्यन्तही दुःखित हुआ और ब्राह्मणसे बोला कि इसके यहा मुझे अपनी कन्याका विवाह करना स्वीकार नहीं. जो कुछ तुम सगाईके लिये दे आये हो सो फेर लाओ. तब ब्राह्मण बोला कि जिस अंगुलीसे मैं सगाईका तिलक कर आया हूं यदि वह कटा ली जाय तो कुछभी हानि नहीं परन्तु सगाई तो नहीं फिर सकती. तब तो वह कन्याका पिता निराश हो गया और बोला कि जो कन्याके भाग्यमें लिखा है वही होगा और विचार करने लगा कि कन्याके विवाहमें दहेज इतना दिया जाय कि नरसीजी धनवान् हो जाय. इसके उपरान्त जब विवाहके दिन निकट आये तो इसने विवाहपत्र नरसीजीके यहां भेजा. नरसीजीने उसको कहीं फेंक दिया और विवाहकी कुछभी तैयारी अथवा चिन्ता नहीं करी; इसके पीछे जब विवाहके चार दिन रह गये और नरसीजीने विवाहका नामतकभी नहीं लिया तो श्रीकृष्णस्वामी और रुक्मिणी महारानी विवाहके कार्य करनेके लिये आये. रुक्मिणीजीने तो स्त्रियोंके कामकाज किये और जगह २ मिठाई और पकवान तैयार होने लगे, नौबतखाने बजने लगे. श्रीरुक्मिणीजीने अपने हाथसे लडकेके मुखपर तिलक किया, जिसको चक्रसूत अथवा मुखमंडन कहते हैं और समस्त दूलहका शृंगार अपने हाथसे किया फिर लडकेको घोडेपर चढाया और जहांपर देनेके नेग थे सो दशगुने दिये. इसके पीछे फिर ज्योनार करी. अगणित मनुष्य जीमनेके लिये आये और ब्राह्मणोंने द्वेष और डाहसे इतना पकवान और मिठाई ली कि पोट बांधकर ले गये. फिर बरातकी तैयारी हुई और अगणित घोडे, हाथी, पालखी आदि परम सुन्दर २ बराती साथ चले; फिर जब बरात चली तो स्वयं श्रीकृष्णमहाराजने नरसीजीका हाथ पकडकर कहा कि तुमभी बरातको चलो, मैं तो गुप्त साथी हूं प्रगटमें तो सब काम काज तुमही करना.

नरसीजी बोले कि हे भगवन्! आप जाने और आपका काम जाने मुझपर तौ ताल बजाकर आपके भजनका कीर्तन करना आता है, सो यह काम जहां चाहो वहां मुझसे ले लो, भगवान्ने विचारा कि भजन और कीर्तनके अतिरिक्त नरसीजीसे और कुछभी काम न होगा; यह विचारकर समस्त काम आपही करने लगे. इसके पीछे फिर जब वरात समधीके नगरके निकट पहुँची समधीने वरात आनेसे प्रथमही एक अपना आदमी भेजा था कि विवाहका दिन आ पहुँचा है जो लडका और दो चार आदमी आने हों तो ले आओ. जब इन लोगोंने यह वरात बडी धूमधामके साथ आती देखी तौ वरातियोंसे पूछा कि यह वरात किसकी है. वरातियोंने कहा कि यह वरात नरसीजी मेहेताकी है; तब वह लोग प्रसन्न होकर समधीके घर आये और वरातकी बडाई करने लगे. समधीने नरसीजीको निर्धन समझ रक्खा था इस कारण कुछ सामग्री नहीं तैयार करी थी, उसको विश्वास न आया और बोला कि तुम मेरी हँसी करते हो; तब उन्होंने कहा कि हम हँसी नहीं करते सत्यही कहते हैं. तब तौ समधी घवराया और जो ब्राह्मण सगाई कर आया था उसको देखनेके लिये भेजा. वह ब्राह्मण वरात देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुआ और आकर समधीसे कहने लगा कि इतनी वरात आई है कि तुम उसके घोडोंको घासतकभी नहीं दे सकोगे. जिस ओरको दृष्टि जाती है वरातके अतिरिक्त और कुछभी दृष्टि नहीं आता. समधी यह सुनकर बहुतही घबडाया और स्वयं वरातके देखनेके लिये गया और वरातको देखकर चिन्ता करने लगा. उस समय धन और द्रव्यका गर्व जाता रहा वरन उसको अपनी लज्जाका रहनाभी कठिन दृष्टि आया फिर निर्बल हो जो ब्राह्मण सगाई करने गया था उसके चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा कि महाराज! इस समय मेरी लज्जा

रखनी आपहीके आधीन है. ब्राह्मण उसके यह वचन सुनकर उसको नरसीजीके पास ले गये. इसने जातेही नरसीजीके चरण पकड लिये और हाथ जोड विनती करने लगा; कि मेरी लज्जा रक्खो. मुझे अपना दास जानकर मेरे ऊपर कृपा करो. यह कहकर रुदन करने लगा; तब नरसीजी उससे अतिप्रेमके साथ मिले उसको भगवान्‌के दर्शन कराये और धीरज देकर कहा कि दोनों तरफकी लज्जा और शरम तुमको है यह कहकर उसको विदा किया फिर भगवान्‌ने आपही दोनों ओरका कार्य किया और ऐसी धूमधामके साथ विवाह हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता; फिर जब विवाह करके नरसीजी अपने घरपर आये तब भगवान् द्वारिकाको गये और भगवद्भक्तिका यश समस्त संसारमें विख्यात हुआ. इस नरसीजीके प्रसंगको सुनकर जिसको भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति न हुई तो उसके सिवाय और कोई अभागी नहीं, क्योंकि यह चरित्र विस्तारपूर्वक तृप्त करता है. भगवान्‌की शरण होनेसे इस लोक और परलोककी कुछभी चिन्ता नहीं रहती. स्वयं भगवान् समस्त कार्य सिद्ध करते हैं.

दोहा—नरसीजीके चरित लख, भजिये श्रीनँदलाल ।
मिश्र सुधारेंगे सभी, करि हैं तोहिं निहाल ॥

हरिदासजीकी कथा ९.

स्वामी हरिदासजी शृंगार और माधुर्यमें सबउपासकोंके ऐसे शिरमौर हुए कि जैसी दृढ धारना और उपासना उनकी हुई उसका वर्णन नहीं हो सकता कि वह अपने समय अद्वैत थे. वह सर्वदा सखी-भावनासे प्रियाप्रीतमके सुखसमाज और नित्य विहारमें संग रहते थे और जिह्वापर कुंजविहारी, राधारमण, राधाकृष्ण नाम रहता था उनकी भक्तिका प्रताप यह था कि देश २ के राजा दर्शनकी अभिला-

षासे द्वारपर खडे रहते थे. फिर भगवान्‌को भोग लगानेके पीछे जो मोर और बंदर दृष्टि आते उनको अत्यन्त प्रीतिसे भोजन कराते यह विचार कर कि नटनागर महाराज उनकेसे खेल किलोल करते हैं, जिनके कीर्तन और गानविद्याके आगे गंधर्वभी लज्जित होते थे. कोई सेवक स्वामीजीके लिये अत्यन्त प्रीतिसे बडी खोजकरके उत्तम अतर लाया; उस समय स्वामिजी महाराज यमुनाके पुलिनमें बैठे थे. शीशीको लेकर समस्त अतर उस रेतमें डाल दिया, तब उस सेवकको अत्यन्तही शोक हुआ और अपने मनमें कहने लगा कि देखो मैं तो इस अतरको इतने परिश्रमसे लाया था परन्तु स्वामीजीने इसका गुण न जाना. स्वामीजी उसके मनकी वृत्तिको जान गये. उसी समय उससे कहा कि तुम विहारीलालजीके दर्शन कर आओ फिर जब वह मंदिरमें आया तो समस्त मंदिरमें उस अतरकी सुगंधि आ रही है और फिर जब भगवान्‌के दर्शन किये तो शिरसे पैरतक भगवान्‌की पोशाक अतरकी सुगंधिसे सुगन्धित हो रही है, तब उसको भगवान्‌की भक्तिपर विश्वास हो गया और जो वृथा विचार किया था सो उसपर पछतावा करने लगा. सारी शीशीको भूमिमें डालनेका यह कारण था कि हरिदासजी अपने चित्तमें होली खेल रहे थे, भगवान्‌ने हरिदासजीके ऊपर रंग और गुलाल डाला. स्वामीजीके हाथमें उस समय अतरकी शीशी आ गई सो रंगकी जगह भगवान्‌की देहपर डाल दिया. इसके पीछे कोई मनुष्य स्वामीजीका सेवक होनेके लिये आया और पारसपत्थरको स्वामीजीकी भेंट किया स्वामीजीने विचारा कि इसको पत्थर अधिक प्यारा है; जबतक उसकी प्रीति नहीं जायगी तबतक प्रियाप्रीतमकी प्रीति कब आवेगी, इस कारण उसको आज्ञा दी कि इस पत्थरको यमुनाजीमें डाल दे. उसने स्वामीजीकी आज्ञानुसार वैसाही किया; परन्तु उसके मनमें यही

विचार रहा कि पारस होता तो साधुओंकी सेवा और भगवान्‌के शृंगारकी तैयारी भली प्रकार होती. स्वामीजीने देखा कि अभी पारसकी प्रीति नहीं गई. इस कारण अपने साथ जंगलमें ले गये और हजारों पारस पत्थरको दिखाकर आज्ञा दी कि जितना धन द्रव्य है सो सब भगवत् प्राप्तिका बटमार है और जबतक सब ओरसे प्रीति दूर होकर भगवान्‌के चरणोंमें मन नहीं लगे, तबतक भगवत्प्राप्तिका परमानंद नहीं प्राप्त होता, इस कारण सब ओरसे मनको खैंचकर एक भगवान्‌के प्रति लगाना चाहिये और जो तुमको पारस पत्थर प्रिय हो तो जितने चाहिये उठा लो. वह यह सुनकर स्वामीजीके चरणोंमें गिर पडा और एकाग्रचित्त हो भगवान्‌का भजन करने लगा. एक समय अकबर बादशाहने तानसेनसे पूछा कि तुम्हारा गानविद्याका गुरु कौनसा है, तब उसने स्वामी हरिदासजीको बताया. बादशाहको उनके दर्शनकी अत्यन्त इच्छा हुई और साथही तानसेन तंबूरा लेकर दर्शनको आया. उस समय तानसेनने एक पद गाया और जानबूझकर एक जगह तालसुरसे चूक गया. स्वामीजीने अपने आप तंबूरा लेकर उस पदको गाया कि समस्त श्रोता भगवद्रूपमें मग्न हो गये. फिर जब बादशाह उलटा आया और तानसेनसे उसी पदको गानेके लिये कहा तो जो स्वाद स्वामीजीकी जिह्वासे सुनकर आया था सो तानसेनकी जिह्वासे नहीं आया. बादशाहने तानसेनसे इसका कारण पूछा. उत्तर दिया कि स्वामीजी तो उसके आगे थे जो सबका स्वामी और उत्पन्न करनेवाला है और मैं तुम्हारे आगे गाता हूं. बादशाह यह सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुआ, फिर विदा होनेके समय बादशाहने स्वामीजीसे कहा कि जो तुम मुझे जिस कार्यकी आज्ञा करो मैं उसीको कर लाऊं. स्वामीजीने कहा कि मुझको कुछभी इच्छा नहीं है, फिर जब बादशाहने बहुतही हठ करी तो स्वामीजीने बादशाहके

अंतःकरणको निज व्रजभूमिके दर्शन कराये सो यह वृत्तान्त धामानि-ष्ठामें लिखा गया है. फिर बादशाह चरणोंमें गिर पडा और विनती करके बोला कि महाराज! मैं किसी सेवाके योग्य हूं तो नहीं परन्तु किसी छोटे कार्यहीकी आज्ञा करो तो मेरे भाग्यका उदय हो. स्वामीजीने आज्ञा दी कि प्रथम तो बंदरोंके लिये नाज भेजते रहो और दूसरे व्रजभूमिके वृक्ष और शाखाको कोई नहीं काटने पावे. तीसरे तुम कभी हमारे पास न आना. बादशाहने यह सब कार्य स्वामीजीकी आज्ञानुसारही किया.

रत्नावलीजीकी कथा ६.

श्रीमती रत्नावलीजी भगवान्‌के भक्तोंमें राजा हुई है. यह भगवान्‌के कीर्तन और सत्संग तथा उनके शृंगारमे सर्वदा लगी रहती थीं इनको पतिके प्रीतिकी कुछभी चिन्ता नहीं थी; यह भगवान्‌की प्रीतिकोही मुख्य समझकर अपने विश्वासमें फिरी और अपनी भक्तिकी प्रतिज्ञाको पूर्ण किया. यह निःसंदेह अंधेरे घरकी चांदनी थी; यह आमेरवाले राजाके छोटे भाई माधोसिंहकी रानी थी. एक दासी भगवद्भक्तिमें पकी हुई भगवान्‌का नाम नवलकिशोर मनमोहन विहारीजी आदि लेकर प्रेमसे आंखोंमें जल भर लाती और प्रसन्न हुआ करती. रानीने जो भगवान्‌के नाम सुने तो भगवान्‌में स्नेह उत्पन्न हुआ और दासीसे पूछा कि वारंवार किसका नाम लेती है, जो कि मेरे मनको अपनी ओर खैंचते हैं. दासीने उत्तर दिया कि तुम क्या पूछती हो; तुम अपने सुख और दुःखमें लगी रहो. भगवान्‌के भक्तोंकी कृपासे यह अलभ्य पदार्थ मुझको मिला है. यह सुनकर रानी-जीको भगवान्‌में विशेष प्रेम और स्नेह उत्पन्न हुआ और दासीसे बोली कि कोई ऐसा यत्न बता कि जिससे वह मनमोहन महाराज

मुझकोभी मिले जब दासीने रानीका ऐसा प्रेम देखा तो जो भगवान्के भक्त और रसिक शृंगारके उपासक हुए सो उसने उनकी कथा कही; तब रानीने उस दासीसे सेवा करानी छोड दी और उसको अपने गुरुकी समान समझा और वह उसका अत्यन्त आदर सत्कार करती थी और दिनरात भगवान्के चरित्र सुना करती. इसके उपरान्त जब भगवान्के चरित्रोंमें रानीका मन लग गया तो रानीको भगवान्के दर्शनोंकी इच्छा हुई और दासीसे बोली कि कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे कि भगवान्के दर्शन हों और मेरी जीनेकी आशा हो वह मनमोहन मेरे हृदयमें समा गया है. दासी बोली कि रानीजी ! उसके दर्शन तो अत्यन्त कठिन हैं; सहस्रों ऋषि और राजा आदि सर्वस्वको त्यागन कर धूरिमें लोटते हैं परन्तु तबभी उनको दर्शन नहीं होते; परन्तु प्रेमसे उसकी प्राप्ति हो सकती है; सो तुम भक्ति और भावसे भगवत्सेवा स्वीकार करो और उनके शृंगार और रागभोगमें रहा करो. रानीने उस समय अपने हृदयमें भगवान्का नीलमणि स्वरूप धारण किया और अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान्की सेवा करने लगी. नानाप्रकारके शृंगार और लाड लडाने और रागभोग करने लगी. कई दिनमें उस पदवीको पहुँच गई कि उससे स्वप्नमें भगवान् वार्तालाप किया करते थे. निःसन्देह करोडों उपायोंसे प्रेमका मार्ग निराला है. फिर रानीको यह इच्छा हुई कि भगवान्के साक्षात् दर्शन हों; सो फिर उसी दासीसे कहा कि किसी प्रकारसे भगवान्के साक्षात् दर्शन हो जांय ऐसा कोई उपाय करना चाहिये; तब दासीने कहा कि तुम अपने मंदिरके निकट एक स्थान बनवाओ और चारों ओर अपने आदमी बैठा दो और ऐसी आज्ञा दो कि जो कोई हरिभक्त तथा साधु आया करे उसको इस मंदिरमें उतारे और उसकी भोजन इत्यादिकसे सेवा करे और तुम परदेमें

बैठकर उनके दर्शन किया करो. इस उपायके करनेसे निश्चयही तुमको व्रजकिशोरके दर्शन हो जांयगे. रानीने यह सुनकर ऐसाही किया और साधुओंकी सेवामें वियोगी प्रेमियोंकी सदृश अपना समय बिताने लगी. एक समय निज भूमिके रहनेवाले साधु आ गये वह जुगलकिशोर महाराजके रंगमें रंगे हुए थे उनके दर्शन और उनकी बातोंको श्रवण कर रानीका मन व्याकुल हो गया और दासीसे बोली कि सत्संगति विना सामने हुए यह मन अपनी इच्छाको नहीं पहुँचता इस कारण यह परदा इत्यादिक संसारके बखेडे हैं, भगवत्स्वरूपके रसमें आनंद और मग्न होना यही सार है और इसके आगे सब तुच्छ है. दासीसे यह कहकर जहां भगवान्के भक्त थ वहां चली गई और हाथ जोडकर अत्यन्त नम्रतासे विनती करने लगी कि, मैं अपने हाथसे भोजन कराऊंगी. उस समयकी दशा रानीजीकी लिखनेसे बाहर है और किस प्रकारसे वर्णन कर सकता है; प्रेममें नेम नहीं रहता. रानीने अपने हाथमें भगवत्प्रसादका थाल भरकर सबको भोजन कराया और चंदन लगाया फिर पान दिये और चरणोंमें गिर पडी जब हरिभक्तोंने रानीकी ऐसी सेवा और भक्ति देखी तो प्रेमसे निर्बल हो गये और जो रानीने परदा दिया था, यह समस्त नगरमें विख्यात हो गया. बहुतसे लोग देखनेके लिये आये और मंदिरके मुसद्दीने एक पत्र लिखकर इसका समाचार राजाको दिया और कहा कि रानीने निडर होकर सब लज्जाको छोड दिया है और बैरागियोंके साथ बैठी रहती है. जब राजाने पत्र पढा और पत्र लानेवालेकी जबानी यह समाचार सुना तो उसका शरीर क्रोधके मारे कांपने लगा. दैवसंयोगसे उस समय रानीका पुत्र प्रेमसिंह आ गया और वह इस स्वरूपसे आया कि उसके माथेपर तिलक था और गलेमें कंठी माला पहरे हुए था और लोगोंने कुँवरका साधुके स्वरू-

पमें आनेका वृत्तान्त कहा तो माधोसिंहने कुँवरको मुंडी अर्थात् वैराग-
नका कहा और मंदिरमें चला गया. प्रेमसिंहको अपने पितापर क्रोधका
भय हुआ और लोगोंसे इसका कारण पूछा; फिर सब हाल अपने
मनमें शोचा कि जो हम साधु हैं तो इससे भला क्या है. भगवद्भक्ति
करनी चाहिये और फिर माताको लिख भेजा कि जो भगवच्चरणोंमें
तुम्हारी प्रीति सत्य है तो राजाने आज मुझको मुंडी कहा है. इस
बातको सत्य करना योग्य है और मृत्युको निश्चय समझकर कुछ चिन्ता
करनी उचित नहीं. रानीने पत्र पढा और भगवद्भक्तिके रंगमें रंगीन
होकर उसी समय शिरके बाल जो अतर और फुलेलसे सुगंधित थे
सो मुंडवा दिये और प्रथम साधुओंकी सेवा करके उनको भोजन करा-
कर रात्रिके समय अपने मंदिरमें चली आया करती. फिर उस दिन
रानीने मंदिरका जानाभी त्यागन कर दिया और उसी स्थानमें रहने लगी
जिसमें कि साधुओंकी सेवा किया करती थी और जो कुछ खर्च राजा
देता था उसकोभी लेना छोड दिया और अपने पुत्रको लिख भेजा कि
मैं आज मुंडी हो गई; तुम आनंदसहित रहो प्रेमसिंह यह उत्साहके
समाचारको सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुआ और बहुत दान किया और
फिर नौबतखाना बजवाया. माधोसिंहने पूछा कि आज कुँवरप्रेमसिंह-
जीको किस बातकी खुशी है. लोगोंने कहा कि पहले तो रानीजीने
मुंडीका स्वांग बना रक्खा था और अब अपने कुँवरप्रेमसिंहको मुंडी
कहा तो रानी सत्यही मुंडी हो गई और उसने शिरके बालभी
दूर कर दिये हैं. राजाने जब यह वार्त्ता सुनी तो अत्यन्त क्रोधित
हुआ. कुँवर और उसकी माताका शत्रु हो गया वरन हथियार बांध
सेना लेकर कुँवरके मारनेको उपस्थित हुआ. यहांतक हुआ कि
लडाई होनेको थी कि हलकेवालोंने राजाको समझा दिया कि राजन् !
पुत्रपर शस्त्र चलाना योग्य नहीं समस्त संसारमें आपका अपयश

होगा और उधर कुँवरप्रेमसिंहको समझाया तब कुँवरने उत्तर दिया कि संसारी भोगोंके लिये अगणित देह धारण करी है और जब यह देह जाती रही फिर क्यों नहीं इसको एक वार भगवान्के मार्गमें चलाना चाहिये, इससे उत्तम और क्या पदार्थ है? फिर समस्त राजाके मंत्रियोंने कुँवरको समझाया और हाथ जोडकर उनकी विनती करी और फिर उनके चरण पकड लिये तब कुँवरने कहा कि जिस समय कमर खोलकर माधोसिंह अपने स्थानको चले जांयगे तब हमभी नहीं लडनेके फिर राजा चला गया. एक दिन राजा दिल्लीसे चलकर रानीके मारनेको अपने नगरमें आया और लोगोंसे मिला, फिर रानीके समस्त समाचार सुनकर अपने मंदिरमें गया और जाकर अपने मंत्रियोंसे बोला कि देखो; रानीने हमारी बडी बदनामी का है और वह हमारा कुछभी कहना नहीं मानती ऐसी स्त्रीको मार डालें तो कुछ पाप नहीं होगा. इस कारण रानीको मारना कर्तव्य है. मंत्रीने कहा कि खड्गसे मारना तो योग्य नहीं पर जिस स्थानमें रानी रहती है उसमें आप सिंहको छोड दीजिये, बस उसीसे रानीका मरण हो जायगा. उसकी यह वार्त्ता सुन सबने राजासे कहा कि बस यही कार्य करना कर्तव्य है और प्रभात होतेही रानीके मंदिरमें सिंह छोडा गया रानी उस समय भगवान्की सेवा करके उठी थी उस समय उसके नत्रोंमें भगवान्के रूपको देखकर प्रेमका जल भर रहा था. दासीने सिंहको देखकर कहा कि देखो रानी! सिंह आया; रानीने देखकर कहा कि यहांपर तो नृसिंहजी आये हैं और अत्यन्त भक्तिभावसे उनके समीप आई और दंडवत् प्रणाम कर बोली कि आज मेरे बडे भाग्य हैं जो आपने दर्शन दिये. फिर जब भगवान्ने रानीके अंतःकरणका ऐसा शुद्ध भाव देखा तौ उस सिंहमेंही अपना नृसिंहरूप दिखाया. रानीने फिर पूजन किया और फल माला इत्यादि पहराकर नृसिंह-

जीकी आरती करी. भगवान्‌ने विचारा कि हमने पूजा तो करा ली परन्तु नृसिंहका कुछ कामभी तो करना चाहिये, इस कारण जिस प्रकार हिरण्यकश्यपके मारनेको खंभको फाडकर नृसिंहजी प्रगट हुए थे, उसी प्रकार आप मंदिरसे बाहर आये और जितने मनुष्य द्वारपर खडे थे एक एकको मारना प्रारंभ किया. फिर जब यह समाचार माधोसिंहको ज्ञात हुआ और सुना कि वह तो भगवान्‌के भजनमें मग्न है, तो भगवान्‌का विश्वासी होकर उसी समय रानीके मंदिरमें आया और भूमिपर गिरकर साष्टांग दंडवत् करी दासीने रानीसे कहा कि हे रानी! तुम्हारे सन्मुख राजा दंडवत् कर रहे हैं; रानीने कहा कि लालजी महाराजको दंडवत् करते हैं. फिर दासीने कहा कि एक दृष्टि उठाकर देख तो लो. रानीने उत्तर दिया कि अब वह आंखें एक ओर लग गई दूसरी ओरको किसी प्रकार नहीं जा सक्तीं. राजाने हाथ जोडकर कहा कि प्रिये! यह समस्त राज्य धन द्रव्य आपहीका है जो इच्छा हो सो ले लीजिये. राजाके ऐसे वचनोंपर रानीने कुछभी ध्यान नहीं दिया और एकाग्र मन किये भगवान्‌के भजनमें लगी रही. एक समय राजा माधोसिंह और मानसिंह एक गहरी नदीमें पारको जाते थे. उस समय नाव डूबने लगी दोनों जने व्याकुल हो गये और बोले कि अब क्या उपाय करना कर्तव्य है. माधोसिंहने उसी समय रानीकी भक्तिका वृत्तान्त कहा और फिर रानीका अंतःकरणमें चिंतवन किया तो उसी समय नाव पार हो गई और दोनोंका पुनर्वार जन्म हुआ. राजा मानसिंहको रानीके दर्शनोंकी अत्यन्त अभिलाषा हुई और जब नगरीमें आया तो प्रथम रानीजीकेही दर्शन करनेके लिये गया और हाथ जोडकर बहुतसी विनती करी फिर उसकी भक्तिको देखकर भगवान्‌में प्रीति हो गई.

गुहनिषादकी कथा ७.

भीलोंके राजा गुहजीकी कथा समस्त रामायणोंमें विस्तारपूर्वक लिखी है; इसी कारणसे गुहजीकी कथाको यहांपर सूक्ष्मतासे लिखता हूं. जिस समय श्रीरामचंद्रजी दशरथजीकी आज्ञासे वनको गये थे तो शृंगवेरपुरमें जो अब सिंहरूरकरके विख्यात हैं गुहजी वहांके राजा थे, वहांपर पहुँचे. गुहजीने जब रामचंद्रजीके आनेका समाचार सुना तो उसी समय भेंट लेकर इनके समीप आये और इनकी माधुरी मूर्तिके दर्शन करके तनमनसे प्रेमी हो गये और उसी समयसे अपना तन मन धन समस्तही भगवान्के अर्पण कर दिया. फिर जब रामचंद्रजी चित्रकूट पर्वतपर गये तो अत्यन्त प्रीतिके सहित गुहजीको विदा किया तो यह व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये और उसी रूपके ध्यानमें मग्न रहने लगे. फिर जब भरतजी महाराज रघुनंदनस्वामीके मिलनेको चित्रकूटपर गये; तो गुहजीको यह समाचार ज्ञात हुआ तो इन्होंने अपने मनमें विचार किया कि यह सेना मेरे स्वामीसे लड-नेके लिये जाती है उसी समय अपना जीवन त्याग करनेको उप-स्थित हुए. उन्होंने उस महाबली सेनाका कुछभी भय नहीं किया; फिर जब इनको भरतजीकी भक्ति और उनके निर्मल अंतः-करणका विचार ज्ञात हुआ तो अत्यन्त प्रीतिसे भरतजीसे मिले और भरतजीके साथ चित्रकूटतक गये; फिर जब वहांसे उलटकर आये तो भगवान्के वियोगसे ऐसे व्याकुल हुए कि रुदन करते आंखोंसे रुधिर जाने लगा और भगवद्रूपके चिंतवनमें अपने परा-येकी सुधि जाती रही और विचार करने लगे कि मुझसेती मछली इत्यादिक सहस्रगुणों अच्छे हैं जो कि अपने प्रीतमसे अलग होतेही मर जाते हैं. अंतमें इस आशापर मनको धीरज दिया कि फिर जब

यह लौटकर आवेंगे तो फिरभी दर्शन होंगे; परन्तु उन्होंने यह विचारा कि इन नेत्रोंसे भगवान्के रूपके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा जायगा; इसी कारणसे नेत्र बंद करके उसी चिंतवनमें लगे. चौदह वर्षमें जब फिर रामचंद्रजी आये तो इनको विश्वास न आया और कहने लगे कि ऐसे मेरे भाग्य कहां हैं जो रामचंद्रजीके दर्शन हों और फिर इन नेत्रोंसे रामचंद्रजीको देखूं. उनकी ऐसी प्रीतिको देखकर रामचंद्रजी स्वयं उनके समीप गये और उनको उठाकर छातीसे लगा लिया, तब उसी समय गुहजीने आंखें खोलीं और अपने परम प्रिय स्वामी रामचंद्रजीके दर्शन कर दोनों लोकमें कृतार्थ हो गये.

बिल्वमंगलजीकी कथा ८.

बिल्वमंगलजी श्रीरामचंद्रजीकी कृपाके पात्र और आनंदस्वरूप परम भगवान्के भक्त हुए. उन्होंने कृष्णकरुणामृत वा गोविंदमाधो ग्रंथ औरभी अनेक स्तोत्र संस्कृतमें ऐसे उत्तम बनाये कि वह ग्रंथ रसिक और भक्तोंको माला तथा हारकी समान है. उन्होंने चिंतामणिके संगको पाकर व्रजसुंदरियोंके विहार और परमानंदको वर्णन किया. वह दक्षिणदेशमें कृष्णावेणीनदीके तीरपर रहते थे और वह चिंतामणि वेश्याके प्रेममें ऐसे लिप्त थे, कि उन्होंने संसारी लज्जाको त्यागन कर रात्रि दिवस उसीकी प्रीतिमें रहते थे और अपने घरका रहनाभी छोड दिया, उसीके घर आप रहा करते. यह जातिके ब्राह्मण थे. एक दिन पिताके श्राद्धके दिन कर्म करने और ब्राह्मण जिमानेमें थोडा दिन रह गया तो अत्यन्तही व्याकुल होकर वेश्याके स्थानको चले, वह वेश्या नदीके उस पार रहा करती थी, जब यह नदीके किनारेपर पहुँचे तो उस समय घनघोर नदी चढ रही थी और नांवभी

वहांपर नहीं थी तो औरभी व्याकुल हो गये. प्यारीके विना अपने जीवनको निरर्थक समझकर नदीमें कूद पडे और इनको अपने परायेकी कुछभी सुधि नहीं थी. इनको केवल एक वेश्याहीके मिलनेका ध्यान था. जब यह गंगाजीमें कूद पडे तो एक मृतक शरीर वहा जाता था. उसको पकड लिया और विचारा कि प्रियाने मेरे निमित्त नौका भेजी है, फिर उसपर चढकर किनारेपर पहुँचे और फिर वहांसे गिरते पडते अति शीघ्रतासे उस वेश्याके द्वारपर आये, उस समय अर्धरात्रि थी; इस कारण वेश्याके घरका द्वार बंद था, यह विचार रहे थे कि किसी प्रकारसे भीतर चले जांय. इतनेहीमें दैव-संयोगसे एक सर्प लटकरहा था, शोचा कि मेरी प्यारीने मेरे ऊपर कृपा कर रस्सी लटकाई है, इस कारण उसके सहारे छत्तपर चढ ये. और जब वहांसे उतरनेका मार्ग न मिला तो आप चौकमें कूद पडे. इनके कूदनेके शब्दको सुनकर वेश्या और उसके घरके लोग सोतेसे जाग गये और दीपकको लेकर देखनेके लिये गये तो क्या देखते हैं कि मंगलजी खडे हैं तब इनको स्नान कराया और सूखे हुए वस्त्र पहराये और बोले कि रात्रिके समयमें आपका आना किस कारणसे हुआ; उत्तर दिया कि तुमने मेरे आनेके लिये नदीपर नाव भेजी थी और फिर द्वारपर रस्सी लटकाई थी उसीकी सहायतासे मैं यहांतक आया हूं. इनकी यह वार्ता सुनकर वेश्याको बडा आश्चर्य हुआ और उसी समय छत्तपरको गई तो रस्सीकी जगह सर्पको लटका हुआ देखकर क्रोधित होकर इनसे बोली कि अरे मूर्ख ! जिस प्रकार तैंने इस मेरे मांस अस्थिके शरीरपर मन लगाया है, इस प्रकारसे यदि जो तू उस श्यामसुन्दर शोभाके धाम ब्रजकिशोर महाराजपर अपना मन लगाता; तो तू इस संसारके समुद्रसे पार हो जाता और दोनों लोकमें तेरी शुद्धता होती, सो मैं तो प्रभातसेही

उन्हीं मनमोहन व्रजकिशोरका भजन और स्मरण करूंगी; तू चाहे कर अथवा न कर बिल्वमंगलजीके चित्तपर यह बात चढ गई और उसके अंतःकरणके नेत्र खुल गये और व्रजचंद महाराज मनोहर स्वरूपने उनके हृदयमें तत्काल प्रवेश किया और तत्कालही उस रूपने इनके ऊपर अपना प्रभाव ऐसा दिखाया कि यह उन्होंके ध्यानमें मग्न हो गये. वेश्याकी इनके हृदयमें किंचित्भी प्रीति न रही. वह रात्रि तो भगवान्के भजन और उनके चरित्रोंके कीर्तनमें व्रजकी कुंजोंमें व्यतीत कर प्रभात होतेही दोनोंने अपना अपना मार्ग लिया. मनमें तो परमधाम शोभाधामका रूप था. और जिह्वापर प्रणाम और नेत्रोंमें प्रेमका जल था. यह बिल्वमंगलजी सुभगिरनामी संन्यासीकी मध्वसंप्रदायमें सेवक हुए, और भगवान्के रूप अनूपका चिंतवन करते हुए हजारों श्लोक रस चरित्र और भगवत्के ध्यानके इन्होंने अपने गुरुसे पढे और कुछ आपनेभी बनाये. एक वर्षतक गुरुकी सेवामें रहे और फिर श्रीवृंदावनमें दर्शनोंकी इच्छा इनको हुई तो यह वृंदावनकी शोभाको अपने हृदयमें धारण किये हुए वृन्दावनको गये. मार्गमें किसी नदीके तटपर पहुँचे वहांपर स्त्रियां स्नान कर रही थीं, एक सुन्दर स्वरूपवती स्त्रीको देखकर उसके प्रेममें उन्मत्त हो गये और अपने आपको भूलकर उसीके पीछे २ हो लिये. वह स्त्री तो अपने घरमें चली गई और बिल्वमंगलजी उसके देखनेकी तृष्णासे द्वारपर खडे रहे; उस स्त्रीका पति भगवद्भक्त था; इनको भगवान्का भक्त जानकर अपने द्वारपर खडा देख अपनी स्त्रीके पास गया और अपनी स्त्रीसे इसका वृत्तान्त पूछा तो उसने समस्त वृत्तान्त वर्णन किया. तब वह उसका पति बिल्वमंगलजीके पास आया और हाथ जोडकर बोला कि आप मेरे घरको चलें आपके चलनेसे मेरा घर पवित्र हो जायगा और

आपकी सेवा करनेसे मुझेभी दोनों लोकोंकी प्राप्ति होगी. तब उनके साथ २ बिल्वमंगलजी घरमें गये और उनको अपने दुवारेमें टिकाया और भली भांतिसे उनकी सेवा करी और अपनी स्त्रीसे कहा कि तू श्रृंगार करके इनकी उत्तम रीतिसे सेवा कर. भगवान्‌के भक्तोंकी सेवा करनेसे भगवान् शीघ्रही प्राप्त होते हैं. स्त्रीने तुरन्तही पतिकी आज्ञानुसार श्रृंगार किया और एक अत्यन्त सुन्दर थालमें भगवान्‌के प्रसाद् रखकर इनके समीप लाई. बिल्वमंगलजीने उनकी भक्तिको देखकर और साधुकी सेवाको विचारकर अपने व्याकुल मनको थामा और विचारने लगा कि यह समस्त उपद्रव मेरेही नेत्रोंका है. जो ऐसा न होता तो मन काहेको अपने हाथसे जाता. बिल्वमंगलजी उस स्त्रीसे बोले कि, तुम हमारे लिये दो सुई ले आओ. उनकी ऐसी आज्ञाको सुनकर स्त्री तत्काल दो सुई ले आई; तब बिल्वमंगलजीने उन सुइयोंको लेकर अपने दोनों नेत्र फोड लिये. जब स्त्रीने यह चरित्र देखा तो अत्यन्त भयभीत हुई और व्याकुल होकर अपने पतिके पास गई और समस्त वृत्तान्त कह सुनाया. उसका पति उसी समय बिल्वमंगलजीके निकट आया और उनके चरणोंमें गिर पडा और हाथ जोडकर बोला कि महाराज ! मुझ दाससे आपका क्या अपराध हुआ जिससे आपने दुःखित हो अपने नेत्र फोड लिये. बिल्वमंगलजी बोले कि तुम किसी प्रकारकीभी चिन्ता मत करो; तुम्हारी भक्तिमें किंचित्‌भी त्रुटि नहीं हुई है वरन मेरेही साधु होनेमें संदेह है उसका पति बोला कि आप मेरे स्थानपर थोडे दिनोंतक ठहरे रहें तो हम आपकी सेवा करके कृतार्थ हो जांय. बिल्वमंगलजी बोले, कि तुमने हमारी ऐसी सेवा करी है जो कोईभी नहीं कर सकता है. मैं तुमसे बहुतही प्रसन्न हुआ हूं. अब तुम आनंदसहित भगवान्‌का भजन किया करना, यह कहकर बिल्वमंगलजी वृन्दाव-

नको चले गये और इन्होंने जो इनकी दृष्टि प्रगट थी उसको दूर किया और अपने अंतःकरणकी दृष्टिसे काम लिया. इन्होंने वृन्दावनमें जाकर एक वृक्षके नीचे निवास किया और वहांपर एकाग्र मनसे भगवान्का भजन करने लगे. इनकी भक्तिको देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये. उन्होंने विचारा कि मेरा भक्त भूंखा प्यासा है, यह विचारकर सुवर्णके थालमें भोजन परोसकर बिल्वमंगलजीके लिये आये अपने हाथसे उनको अपना महाप्रसाद भोजन कराया। फिर जिस स्थानपर बिल्वमंगलजी बैठे थे वहांपर धूप अधिक आगई भगवान्ने कहा कि बिल्वमंगल ! इस समय यहांपर धूप अधिक आ गई है चलो किसी और वृक्षकी छायामें बैठेंगे यह कहकर उनको छायामें ले गये. बिल्वमंगलजीने जब ऐसे मधुर वचन सुने तो उसी समय उनका हाथ पकड लिया और कहा कि तुम्ही श्रीकृष्ण विहारी हो आज मेरे अहोभाग्य हैं. यह कहकर अधिक दृढताके साथ भगवान्का हाथ पकड लिया. श्रीकृष्णने हाथके छुटानेके लिये अनेक यत्न किये पर सब निरर्थक हुए. इधर तो भगवान् श्रीकृष्णका बल था और उधर बिल्वमंगलका अंतमें श्रीकृष्ण बलकरके अपने हाथको छुटाकर भाग गये; तब बिल्वमंगलजी बोले कि हे कृष्ण ! तुम मेरे हाथसे छूटकर तो चले गये; परन्तु अब मनमें तुमको पकडता हूं देखूं तुम्हारा बल कि मेरे मनके फंदेमेंसे निकल कैसे जाओगे. यह कहकर बिल्वमंगलजीने सब ओरसे मनको खेंचकर एक श्रीव्रजचंद्र महाराजके भजनमें ऐसा लगाया कि जो योगियोंके मनसेभी निकल जाता है, वह बिल्वमंगलजीके मनमें स्थिर हो गया फिर जब इनका मन स्थिर हो गया तब जंगलमेंसे चलकर आप वृन्दावनमें आये और यह इच्छा करी कि यदि जो हमारे नेत्र होते तो भगवान्के कुंजमहल और उनके विहारका

स्थान तथा उनकी मूर्तिका दर्शन करते. जब भगवान्‌ने उनके अंतः-करणकी यह वृत्ति देखी तो प्रथम तो उसे मुरलीका शब्द सुनाया जो कि योगमायाकीभी महामाया है और उनको परमानंदमें पूर्ण किया और फिर उनके दोनों नेत्र प्रकाशित कर दिये. जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे कमल खिल जाता है, उसी प्रकार इनके नेत्रोंके खिल जानेसे कमलरूपी मन इनका खिल गया. इसके पीछे फिर बिल्वमंगलजीने वृन्दावनके कुंज और लता तथा भगवान्‌के दर्शन किये और फिर अत्यन्त शोभित मूर्तिको देखकर फिर इनकी इच्छा तृष्णारूप परम अमृतके चिन्तवनकी हुई क्योंकि उस परम सुन्दर शोभायमान ब्रजकिशोरकी मूर्ति ऐसी नहीं है कि जिसको एक वारही दर्शन कर तृप्त हो जाय; वरन वह मूर्त्ति जितनी मनमें समाती जायगी उतनीही तृष्णा और इच्छा बढती जायगी. इसके उपरान्त फिर बिल्व-मंगलजीने कृष्णकरुणामृत ग्रंथ और कई एक स्तोत्र बनाये जिससें मनुष्यके अंतःकरण निर्मल होकर भगवान् जुगलरूपके चिंतवनमें-लगता है. वह मनुष्य अत्युत्तम पदका अधिकारी होता है. बिल्वमंगल जीने कृष्णकरुणामृत ग्रंथके मंगलाचरणमें जो प्रथम चिंतामणि नाम लिखा है, और पीछे अपने गुरुको लिखा है, तो उससे दो बातें पाई जाती हैं. एक तो यह है कि प्रथम उपदेश चिन्तामणिसे हुआ था; इस कारणसे उसको प्रथमही गुरुकी जगह लिखा और दूसरा यह है कि भगवान्‌के भक्त किसीके किंचित् उपकारकोभी अधिक मानते हैं; इस कारण यद्यपि वह वेश्या थी तोभी इन्होंने उसका गुण ऐसा माना कि गुरुसेभी अधिक पदवी उसको दी आर जयका पद उसके लिये लिखा. चिंतामणिने जब बिल्वमंगलजीका यह वृत्तान्त श्रवण करा कि बिल्वमंगलको भगवान्‌के दर्शन हो गये तो वह पहली प्रीतिको विचारकर वृन्दावनमें आई, उसको देखतेही बिल्व-

मंगलजी तुरन्त उठ खडे हुए और उसका आदरसत्कार भली प्रकारसे किया और फिर भगवान्के महाप्रसादका दोना उसको दिया. चिन्तामणिने पूछा कि यह भोजन कहांसे आया; तब बिल्वमंगलजी बोले कि भगवान्ने मेरे ऊपर कृपा कर यह भोजन मुझको दिया है; तब चिन्तामणि बोली कि जब तुमको भगवान्ने यह महाप्रसाद कृपाकरके दिया है तो मैंभी उन्हींके हाथसे लूंगी. यह कहकर भगवान्के भजनमें लग गई. जब भगवान्ने चिन्तामणिकी ऐसी प्रीति देखी तो अपने हाथमें खीरका दोना चिन्तामणिके लिये लाया. जिस प्रसादकी ब्रह्मादिक देवताभी इच्छा करते हैं वह प्रसाद भगवान्ने स्वयं अपने हाथसे चिन्तामणिको दिया और उसको अपने दर्शन देकर कृतार्थ किया.

दोहा--चरणकमलकी ध्यान कर, वृथा समय मत खोय।
अन्तसमय हरनामही, मिश्र सहायक होय॥

सूरदास मदनमोहनजीकी कथा ९.

किसी भगवान्की सखीका अवतार मदनमोहन सूरदासजी माध्वसंप्रदायमें अत्यन्तही भगवान्के भक्त हुए. उनका निज नाम सूरदासजी था, परन्तु वह श्रीमदनमोहनजी महाराजमें अधिक प्रेम रखते थे; इस कारणसे वह मदनमोहन सूरदासनामसे विख्यात हुए. उनके हृदयके नेत्र कमलके पुष्पोंकी समान खिले हुए थे और गानविद्या तथा काव्यमें बडे चतुर थे. श्रीराधाकृष्णके गुप्त चरित्र हैं, यह उनके परमआनंद और रस तथा सुखके अधिकारी हुए और जो नौ रसोंमें शृंगाररस प्रधान है इन्होंने उसको अपनी कवितामें अति उत्तम रीतिसे वर्णन किया; उनके मुखसे उनका कवित्त निकलतेही विख्यात हो जाता था. वरन एक दिनमें चार सौ कोस पहुँच जाता

था; मानो उस कवित्तकोभी प्रत्यक्ष प्राप्त हो जाता था, एक समय बादशाहकी ओरसे सूबेदार पूर्व देशके संदेशे लेकर आये उन्होंने बाजारमें अति उत्तम गुडको विकते हुए देखा तो यह विचारा कि यह गुड मदनमोहनके मालपुएके योग्य है, सो उसके मोल लेनेके लिये अपने नोकरोंको आज्ञा दी, तब नोकर बोले कि महाराज ! इस गुडकी कीमतसे दशगुण अधिक भाडा लगेगा और वृन्दावनतक मिश्रीसेभी महंगा पहुँचेगा, यह सुनकर सूरदासजी बोले कि भाडेका क्या है भगवान्‌की प्रीतिपर दृष्टि डालिये यह कहकर गाडियोंमें गुड भरवाकर भिजवा दिया. दैवसंयोगसे वह गुड रात्रिके समयमें वृन्दावनमें पहुँचा. पुजारियोंने कहा कि इस समय तो भंडारमें रख दो कल प्रभातकोही भगवान्‌का भोग लगेगा. जो कि भगवान् अपने भक्तके भेजे हुए पदार्थकी वाट देख रहे थे वह इस समय क्षुधाके मारे संतोष नहीं कर सके उसी समय गुसांईजीको स्वप्न दिया कि हमको अधिक क्षुधा लगी है तुम इसी समय मालपुए बनाओ. पुजारियोंने भगवान्‌की आज्ञानुसार उसी समय मालपुए बनाये और भगवान्‌को भोग लगाया; तब भगवान् भोग लगाकर तृप्त हो गये. देखो भगवान्‌की भक्तवत्सलता और कृपालुता कि जिसकी माया करोडों ब्रह्मांडोंका एक क्षणमें ग्रास कर लेती है, वह भगवान् भक्तके वशीभूत होकर क्षुधाको प्रगट करे; इसके पीछे सूरदासजीने एक विष्णुपदके अंतमें यह वर्णन किया कि मुझको भगवान्‌के भक्तोंकी जूतियोंके रक्षा करनेकी पदवी मिले. इसकी परीक्षाके लिये किसी साधुने सूरदासजीसे कहा कि हम मदनमोहनजी महाराजके दर्शन कर आवें इतनेमें तुम हमारे उपानहोंकी रक्षा करते रहना. सूरदासजीने प्रसन्न हो उसके उपानह अपने हाथमें उठा लिये और बोले कि आजतक तो यह बात कहनेहीकी थी परन्तु आज मेरी इच्छा

पूर्ण हो गई, जो मुझे यह सेवाका अधिकार मिला. गुसांईजीने कई वार बुलानेके लिये आदमीको भेजा परन्तु यह न गये और कह दिया कि अभी तौ साधुओंकी सेवा कर रहा हूं. जब मैं सेवा करके निश्चिन्त हो जाऊंगा तभी आऊंगा, गुसांईजी और साधु उनकी ऐसी श्रद्धाको देखकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए. संदेशेके सूबेसे तेरह लाख रुपया वसूल होकर आया सो इन्होंने उन सब रुपयोंको साधुओंकी सेवामें लगा दिया और बादशाहके हिसाबका कुछभी भय नहीं किया; इसके पीछे जब बादशाहके आदमी रुपया लेनेके लिये आये तौ आपने पत्थरोंसे संदूक भरकर एक २ संदूकमें एक २ पत्र लिखकर डाल दिया. उन पत्रोंमें यह लिखा था " कि तेरह लाख संदेली उपजे सब साधन मिल गिटके सूरदास मदनमोहनजी आधी रातको सटके. " और संदूकोंपर अपनी मोहर लगा दी और आप अर्धरात्रिके समय भाग गये. जब वह संदूक बादशाहके दरबारमें पहुँची तो बादशाहने खोलकर देखा तौ उनमें कंकड भरे हुए थे इनको देखकर बादशाहको बडा आश्चर्य हुआ और जो उसने पत्र रक्खा था उसको खोलकर पढा तौ यह आज्ञा दी कि गटकना तो अच्छा हुआ परन्तु सटकना अच्छा नहीं हुआ और साधुओंकी सेवाके उद्धारका वृत्तान्त सुनकर बादशाह बहुतही प्रसन्न हुआ और उसने इनके अपराध क्षमा कर साधुओंकी सेवा करनेको क्षमापत्र भेजा और अपने निकट बुलाया, तब सूरदासजीने वहांहीसे उसका यह उत्तर लिख भेजा कि हमको बादशाहकी नौकरीसे कुछभी प्रयोजन नहीं. सूबेदारीको छोडकर अब वृन्दावनकी गलियोंमें बुहारी देना सहस्रगुण अधिक है. इस उत्तरको पढकर बादशाहके दीवान टोडरमलने बादशाहसे कहा कि हुजूर ! जो ऐसेही लोग राज्यका द्रव्य लुटाकर भाग जाया करेंगे तौ आपका हुकुम कोईभी नहीं मानेगा. यह कहकर उसने मदनमोहन सूरदासजीको पकड-

नेका हुकुम दिया; जब यह पकडे हुए गये तो उनको जेलखाने भेज दिया. सूरदासजीने जेलखानेहीमेंसे एक दोहा बादशाहके पास लिख भेजा, उसमें एक तो बादशाहकी स्तुति और कैदकी कठिनाई और अपना सूक्ष्म वृत्तान्त लिख दिया. बादशाहने उस दोहेको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो तत्कालही इनको जेलमेंसे छोड दिया. जब सूरदासजी जेलमेंसे छूटे तो फिर श्रीवृन्दावनमें आये और श्रीराधारमण श्रीकृष्णविहारीजीके ध्यानमें मग्न हो गये.

अग्रदासजीकी कथा १०.

कृष्णदासजी पैहारीके शिष्य स्वामी अग्रदासजी रामानंदजीकी तीसरी पीढीमें भगवान्‌के परम भक्त हुए सो उनकी माधुर्य उपासिका संप्रदाय आजतक विख्यात है. चाहे कथासे माधुर्य और शृंगारका कोई चरित्र न जाना जाय परन्तु इसी कारणसे उनको इस निष्ठामें लिखा; वह ऐसे भजनानंदी थे, कि उनको भगवान्‌के भजन और उनके ध्यानके विना एक क्षणकोभी चैन नहीं पडता था. वह प्रभातही उठते और भगवान्‌के भक्तोंकी रीतिके अनुसार आचार और कृपासे श्रीसीतापति अवधविहारीकी सेवामें मग्न रहते थे और अपने वचनामृतकी वर्षासे सबको ऐसा आनंदित करते थे कि जिस प्रकार मेघकी सबपर समान दृष्टि होती है. यह सिद्ध ऐसे हुए कि जो नाभाजी भक्तमालके बनानेवाले जन्मके अंधे थे उनकेभी नवीन नेत्र कर दिये और समुद्रमें डूबते हुए जहाजको बचा लिया. ये दोनों वृत्तान्त ग्रंथारंभमें लिखे हैं. इन्होंने श्रीजानकीजीके प्रत्यक्ष दर्शन पाये. यह वैरागी ऐसे थे कि समस्त संसारके कामोंको त्याग करके गलताजीमें जा निवास किया और भगवान्‌के भजनमें निमग्न रहे. यह अपने वाडेमें बुहारी देते, विचारते कि यहांपर हमारे स्वामी

भ्रमण करनेके लिये आवेंगे. उनके नाभाजीकी समान सैकडों मनुष्य चेले थे परन्तु अपनी सेवा वह किसीसेभी नहीं कराते थे. एक दिन प्रभातकोही उठकर बुहारी दी और जो कूडा उठाकर बाहर फेंकनेके लिये चले तो उसी समय महाराजा मानसिंह आमेरका निवासी इनके दर्शन करनेके लिये आया. स्वामीजीने जो अपने आश्रमपर अधिक भीड देखी तो आप भीतरको न गये और उसी जगह एक वृक्षकी छायामें बैठ रहे. राजाको बैठे २ बहुत देर हो गई और स्वामीजी न आये. तो भक्तमालके बनानेवाले नाभाजी गये. नाभाजीने हाथ जोड दंडवत करी परन्तु कुछ कह न सके. राजा इनके आनेकी बहुत देरतक बाट देखता रहा परन्तु स्वामीजी तबभी न आये तब अंतमें वहांसे उठ खडा हुआ और जिस वृक्षके नीचे स्वामीजी बैठे थे वहांही गया और उनके दर्शन कर चरणोंमें गिर पडा. स्वामीजी जो भीतर न गये तो उनका यह अभिप्राय था कि वृक्षके नीचे सबको समान दर्शन होंगे और मंदिरमें और सब दर्शनोंसे वंचित रह जांयगे. इसके उपरान्त यहभी विचारा कि धनवानोंका सत्संग जितना थोडा रहे उतनाही अच्छा है; सो वृक्षके नीचे तो राजा थोडीही देर ठहरेगा कारण कि यह स्थान धूल आदिका है और फिर कभी आनेकी इच्छा न करेगा और जो हम स्थानपर होंगे तो न जाने कितनी देरमें जायगा और हमारे भजनमें विघ्न होगा इसी कारणसे वृक्षके नीचे बैठे रहे.

कील्हजीकी कथा ११.

स्वामी अग्रदासजीके गुरुभाई कृष्णदासजी पैहारीके शिष्य स्वामी कील्हजी माधुर्यशृंगारके उपासक परम भगवान्‌के भक्त हुए. उनका मन दिनरात श्रीरघुनंदनस्वामीके ध्यानमें मग्न रहता था जिनका

निर्मल यश अबतक समस्त संसारमें विख्यात है, वह भगवान्के भजनमें शूर वीर और सांख्ययोगके अभिप्रायको जाननेवाले हुए. इन्होंने भीष्मपितामहकी समान मृत्युको अपने वशमें कर रक्खा था; इनके पिता सुमेरदेव गुजरातमें सूबेदार थे. जब उनका देहान्त हो गया तो विमानपर चढकर परम धामको गये; इस समय कीलहजी मथुरामें राजा मानसिंहके पास बैठे थे. इन्होंने जो विमान जाता हुआ देखा तो उसी समय उठ खडे हुए और दंडवत् करते बोले कि अच्छा हुआ तब राजा मानसिंहको बडा आश्चर्य हुआ और बोले कि तुमने किससे बात करी ? कीलहजीने प्रथम तो उस बातको छिपाया परन्तु जब राजाने बहुतही हठ करी तो अपने समस्त वृत्तान्तको कह सुनाया. राजाने इसका निश्चय करनेके लिये हलकारेको भेजकर सुमेरुजीके देहान्तका दिन पुछवाया तो उन्होंने आकर वही दिन बता दिया. राजाको विश्वास हुआ और उसी समय उनके चरणोंमें गिर पडा. एक समय कीलहजी भगवान्की पूजा कर रहे थे और इनके पास फूलोंकी पिटारी रक्खी थी; उसमेंसे फूल लेनेके लिये जो हाथ डाला तो उसमें एक सर्प बैठा था उसने अंगुलीमें काट खाया. कीलहजीने विचारा कि अभी इस सर्पकी काटनेसे तृप्ति नहीं हुई है इस कारण फिर अंगुली डालकर कहा कि अबके फिर काट उसने फिर काटा. निदान इसी प्रकार कीलहजीने तीन वार कटवाया परन्तु उसके विषने इनके ऊपर किंचित्भी असर न किया. इसके उपरान्त जब इनको परम धामके जानेका मनोरथ हुआ तो आपने भगवान्के भक्तोंका समाज करा और उस समाजके दर्शन कर सत्संगतिके द्वारसे प्राण त्याग दिये. इस वृत्तान्तको सुनकर योगीजनोंकोभी आश्चर्य हुआ और सब भक्तोंको विश्वास हो गया.

दोहा–मिश्र यही जग सार है, भजिये सीताराम ।
इस जग और परलोकके, यही साधि हैं काम ॥

गोपालभट्टकी कथा १२.

वनीकंट भट्टजीके बेटे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके शिष्य गोपालभट्टजी जातिके ब्राह्मण भगवान्‌के परम भक्त हुए. माधुर्य और शृंगाररसकी उपासनामें उनको इतना प्रेम था कि वृन्दावनमेंही इनको उस रसका स्वाद प्राप्त हुआ था; जिनकी कृपासे सहस्रों मनुष्योंको भगवान्‌की प्राप्ति हो गई. वह भगवान्‌की भक्तिके रूप हुए वह गुणोंके सिवाय कभी किसीके अवगुणोंको नहीं देखा करते थे. उन्होंने अपने राज्य और धनको त्यागनकर वृन्दावनमें निवास किया और वह सर्वदा भगवान्‌की शोभाके रसमें मग्न रहते थे. भगवान् उनकी सेवासे ऐसे वशीभूत थे कि उनको प्रसन्न होकर अपनी मूर्तिका प्रगट दर्शन दिया. एक समय शालिग्रामजीकी पूजा करनेके समयमें विचार हुआ कि जिस प्रकार भगवान्‌का शृंगार चित्तमें होता है यदि ऐसा प्रगटमें हुआ करे तो अति उत्तम है. भगवान्‌ने अपने भक्तके अंतःकरणकी इच्छा जान ली तो आपने उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अपनी परम शोभायमान शालिग्रामजीकी मूर्ति वैशाखशुदि पूर्णमासीको प्रगट करी. भट्टजीने अत्यन्त प्रसन्न हो उसको मंदिरमें स्थापित करके उसका नाम राधारमण रक्खा सो वह इस नामसे वृन्दावनमें विख्यात हुए. शालिग्रामका अर्धचिह्न चरणके नीचे और आधा कंठपर था इसके उपरान्त भट्टजी भगवान्‌की सेवा और उनकी शृंगारसेवा और रागभोग इत्यादिमें लगे; इनसे समस्त संसारका उद्धार हो गया.

केशवभट्टकी कथा १३.

केशवभट्टजी जातिके कश्मीरी ब्राह्मण ऐसे भगवान्‌के परम भक्त

हुए कि उन्होंने समस्त मनुष्योंको पापोंसे छुटाकर भगवान्के सन्मुख कर दिया, भट्टजीकी महिमा समस्त संसारमें विख्यात है, उन्होंने भक्तिके कुहाडेसे अन्य धर्मोंके वृक्षोंको काटकर भगवान्के चरित्रोंको समस्त संसारमें विख्यात कर दिया. भट्टजाको निम्बार्कसंप्रदायवालोंने अपने पुरुषवृक्षमें मिलाया है और उनकी कथाके अनुसार श्रीकृष्णचैतन्यकी शिक्षा होना जो कि वह माधवीसंप्रदायमें थे सो प्रत्यक्ष है. ऐसा जाना जाता है कि उनको भगवद्भक्तिका उपदेश श्रीकृष्ण चैतन्यसे हुआ था और यह सात वर्षकीही अवस्थामें उनके शिष्य हुए. उन्होंने जिस प्रकारसे भगवान्की भक्ति ग्रहण करी उसका वृत्तान्त यह है कि यह भट्टजी बडे पंडित थे, सो इन्होंने सहस्रों पंडितोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था; फिर यह सहस्रों पंडित और विद्यार्थियोंके सहित शांतिपुरमें पहुँचे तो वा वहांके सब पंडितोंको भय हुआ तब श्रीकृष्णचैतन्यजीने विचारा कि इसको अपना पांडिताईका अति गर्व है. उस गर्वको इसके दूर करना चाहिये. इस कारण भट्टजीके पास आये और अत्यन्त मधुर वाणीसे बोले कि महाराज ! आपकी विद्याका यश समस्त संसारमें विख्यात है सो कुछ मुझकोभी उसके श्रवण करनेकी इच्छा है. भट्टजीने उत्तर दिया कि तुम अभी बालक हो और तुम कुछ विद्याभी नहीं जानते हो सो किस कारणसे ऐसे निडर होकर हमसे संभाषण करते हो? परन्तु तुम्हारी वाणी अत्यन्त मधुर है इससे मैं बडाही प्रसन्न हुआ हूं. इस कारण जो तुम्हारी इच्छा हो सो कहो हम वही तुमको सुनावेंगे. तब इन्होंने कहा कि तुम गंगाजीके स्वरूपका वर्णन करो. भट्टजीने कई एक श्लोक अपने बनाये हुए सुनाये सो श्रीकृष्णचैतन्यजीको तत्कालही याद हो गये, वरन उन्होंने पढकर सुना दिये और कहा कि इनके अर्थ और इनके गुण अवगुणका वर्णन करो इस बातको श्रवण कर भट्टजीने उत्तर दिया कि मेरी कवितामें अव-

गुण नहीं हो सकते श्रीकृष्णचैतन्य बोले कि यह नहीं हो सकता जो कि आपकी कवितामें अवगुण न हों. यदि मुझको आप आज्ञा दें तो गुण अवगुण और अर्थका वर्णन करूं. भट्टजीने आज्ञा दी कि करिये तो इन्होंने ऐसा अर्थ करा कि जो बनानेकी समय इनके चित्तमेंभी न आया था और जो गुण अवगुण थे वे भी विस्तारपूर्वक कह सुनाये. भट्टजी इनकी बातका कुछभी उत्तर न दे सके. श्रीकृष्णचैतन्य तो अपने स्थानको चले आये और भट्टजीने लज्जित होकर उसी रात्रिको सरस्वतीजीका ध्यान किया. सरस्वतीजी उसी समय आई भट्टजी बोले कि हे देवी! तुमने समस्त संसारके पंडितोंको तौ मुझसे विजय कराया और एक बालकसे मुझको परास्त करा दिया इसका क्या कारण? ऐसा मुझसे तुम्हारा क्या अपराध हुआ था? तब सरस्वतीजीने उत्तर दिया कि श्रीकृष्णचैतन्यजीको तुम बालक मत समझो. वह भगवान्‌का अवतार और मेरे स्वामी हैं, मैं उनके निकट क्या बात कर सकती हूं? और तुम्हारा बडा भाग्य है जो तुमको उनके दर्शन हुए. यह कहकर सरस्वतीजी तो अंतर्ध्यान हो गई. और भट्टजी प्रभातकोही श्रीकृष्णचैतन्यके पास आये और हाथ जोडकर उनके चरणोंमें गिर पडे और बोले मुझको कुछ आज्ञा दो. उनके इस वचनको सुनकर श्रीकृष्णचैतन्यने उत्तर दिया कि तुम भगवान्‌की भक्ति ग्रहण करो और आजसे किसी पंडितके साथ कदापि शास्त्रार्थ न करना. भट्टजीने यह वार्ता स्वीकार करी और जितने पंडित उनके साथ थे उन सबको विदा किया. वह पंडितभी भगवान्‌के भक्त हो गये फिर यहभी अपने देश काश्मीरको चले गये. थोडे दिनोंतक तो यह वहां रहे; फिर इनके पास मथुराजीसे यह समाचार पहुँचा कि मुसल्मानोंने विश्रामघाटपर ऐसा यंत्र लगा दिया है कि जो कोई वहांपर होकर जाता है; उसकी आपही आप सुन्ता हो जाती है और

मुसलमान बलपूर्वक अपने धर्ममें मिला लेते हैं भट्टजीने जब यह समाचार सुना तो उसी समय काश्मीरसे चले और अपने सहस्रों चेलोंसहित मथुराजीमें आये. प्रथम तो विश्रामघाटपर गये तो इनको देखतेही यवनोंने औरोंकी तरह इनसेभी कहा कि नग्न होकर हमको दिखाओ. यह सुनकर भट्टजीने उनको मारा और उस यंत्रको तोड-कर यमुनाजीमें फेंक दिया. वह समस्त यवन सूबेके पास पुकारनेके लिये गये, यह समस्त उत्पात सूबेहीकी कुटिलतासे था, तब उसने अपनी सेनाको यवनोंकी सहायताके निमित्त भेजा. तब भट्टजी उस सेनामें ऐसे लडे कि उनमेंसे बहुतोंको तो मार डाला और अनेकोंको यमुनामें डुबो दिया और जो शेष रहे सो भाग गये. इस युद्धका वृत्तान्त एक कविने विस्तारपूर्वक लिखा है; उससे जाना जाता है कि भगवान्‌के चरित्रका आराधन करके ऐसी अग्निकी वर्षा करी कि मनुष्योंकी देहपर हिन्दुओंके चिह्न दीखने लगे. जब उन लोगोंने इनका यह चमत्कार देखा तो श्रद्धावान् हुए और हाथ जोडकर प्रार्थना करी कि आप हमको अपना दास कर लीजिये और बोले कि हमारे अपराधोंको क्षमा कर अब हमारी रक्षा करिये. तब भट्टजीने समस्त ब्रजके हिन्दुओंको एकत्रित किया और सम्पूर्ण मुसलमानोंको निडर कर दिया और फिर भगवान्‌की भक्तिका प्रचार किया.

वनवारीजीकी कथा १४.

वनवारीजी भगवद्भक्तिके रंगमें रंगे श्रृंगाररसके रसिक और भजनके सदेह हुए. यह कवित्तोंके सारको समझनेमें परम प्रवीन थे और उनके विचारमें परमहंसोंसेभी अधिक सदा आचारके करने-वाले हुए और अत्यन्त दयावान् और अगणित गुणोंके जाननेवाले पंडित और दश प्रकारकी भक्तिके साधनमें सावधान हुए. उनके

दर्शन करतेही मनुष्य पवित्र होते थे. यदि जो यह किसी भगवद्विमु-खसेभी वार्ता करते तो निःसन्देह वही भगवान्‌का भक्त हो जाता था. वह व्रजभूषण महाराजके चरित्र आलापनेमें बडे चतुर थे.

जसवंतसिंहकी कथा १५.

जसवंत राजपूत राठोड भगवद्भक्तिमें सावधान और भक्तिकी सब रीतियोंके साधक हुए. उनकी प्रीति भगवान्‌के भक्तोंमें ऐसी अचल थी कि हाथ जोडे हुए एकाग्र मनसे एक चरणसे उनकी सेवामें खडे रहते थे और यही अभिलाषा करते थे कि मुझे कोई आज्ञा दें तो मैं तुरन्त कर लाऊं. उन्होंने श्रीवृन्दावनमें निवास किया था और श्रीराधावल्लभ विहारी लालजीमें मनको लगाकर नित्यप्राति उनकेही चरित्र कीर्तन किया करते थे. जो समस्त धर्मोंका सार नवधा भक्ति है उसके भांडार और सत्यवचनरूपी द्रव्यके द्रव्यवान् हुए और वह भगवान्‌की प्रीतिमें व्याकुल हो जाते थे.

कल्याणदासजीकी कथा १६.

कल्याणदासजीभी भक्ति और भलाई तथा गुणोंके तत्त्वको जाननेवाले हुए. सर्वदाही नवलकिशोर श्रीव्रजचंद महाराजके प्रेममें मग्न रहते थे और जिस प्रकार समुद्र रातदिन गंभीर रहता है, इसी रीतिसे यह दिनरात भगवान्‌के माधुरीरूपके ध्यानमें निमग्न रहते थे. इनकी वाणी ऐसी मधुर थी कि श्रवण करनेवालोंका मन आनंदमें मग्न हो जाता था और यह परोपकारी तथा दयालु और विचारवान् हुए और जिसने यह बात लिखी है कि यह मन कर्म वचनसे रूप भक्तके चरणरजके उपासक थे. उसका अर्थ यह है कि रूपभाई सनातन जो भक्त हैं उनके चरणोंके उपासक आठ चेले थे और जो

भक्त उनके उपासक थे वे रूप अर्थात् माधुर्य और भगवान् दोनोंके उपासक थे.

कर्णहरिदेवजीकी कथा १७.

कर्णहरिदेवजी विख्यात कन्हडदासजी वासी बोडियाके भगवान्के परम भक्त हुए और अपनी आत्मामें आनंद करनेवाले आगे होनेवाली बात जाननेवाले हुए. यह श्रीकृष्णकी भक्तिको स्थापन करके ब्राह्मणकुलमें सूर्यकी समान प्रकाशमान और धीर्यमान तथा स्थिर-बुद्धि और समस्त गुणोंकी खान हुए और भगवान्के भक्तोंकी तनमनसे सेवा करते थे. जो जिसकी इच्छा होती सो आनंदसहित उसकी इच्छानुसार उसको देते थे, सो भूरामजीकी कृपा उनपर हुई थी. वह शृंगार और माधुर्यभावकी मूर्ति थे और समस्त संसारपर कृपादृष्टि रखते थे.

लोकनाथजीका कथा १८.

लोकनाथजीको भगवान्में इस प्रकारका प्रेम था कि जिस प्रकारसे उनके पार्षदोंको था यह श्रीकृष्णचैतन्यजीके शिष्य थे और प्रियाप्रीतमके चिंतवनमें सर्वदा मग्न रहते थे कि कभी एक निमिष मात्रकोभी भगवान्के स्वरूपका चिंतवन नहीं करते थे तो व्याकुल हो जाते थे. इनको श्रीमद्भागवतका गान और कीर्तन प्राणोंसेभी अधिक प्यारा था. जो कोई भगवान्का रास और उनके चरित्रोंका कीर्तन करता तो यह उसको अपना मित्र जानते थे सो इन्होंने एक मनुष्यको देखा कि भगवान्के चरित्रोंका कीर्तन करता है; उसको औरभी प्रेमी जानकर विह्वल होकर उसके चरणोंमें गिर पडे और इस चरित्रसे मनुष्योंको शिक्षा दी और कहा कि भगवान्की भक्तिही संसारमें सार है.

मानदासजीकी कथा १९.

मानदासजी भगवान्के परम भक्त और दयावान् परोपकारी और सुशील हुए. इनको श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंमें अनन्य-भक्ति थी. श्रीजानकीजीवन महाराजके चरित्र जो रामायण और हनुमाननाटक तथा दूसरी रामायणोंमें लिखे हैं; उनको मानदासजीने भाषामें कर अपनी कवितामें वर्णन किया है कि जो कोई श्रवण करता है उसको मनइच्छित फलकी प्राप्ति होती है; सब रसोंका वृत्तान्त जो ग्रंथारम्भमें लिखा है, सो इन्होंने अपने ग्रंथमें सब प्रकारसे वर्णन किया है, परन्तु भगवान्का शृंगार रस और माधुर्य ऐसा लिखा कि जिसके पढने और सुननेसे तुरन्तही भगवत्स्वरूपमें मन लग जाता है और जो शृंगारकी रीति श्रीकृष्णचरित्रमें उपासकोंने वर्णन की है; उसी रीतिके अनुसार रामचरित्रमें मानदासजीने वर्णन किया है.

कृष्णदासजीकी कथा २०.

कृष्णदासजी परम भक्त और पंडित हुए. यह श्रीगोविंदचंद्र महाराजके माधुरीरूप और शृंगारमें मग्न रहते थे और भगवान्की सेवा अत्यन्त प्रीतिसे करते थे और उनकी सेवाका रूप हो जाते थे और वह भगवान्के भक्तोंको नाना प्रकारके भोजन और प्रसाद जिमाया करते वह भगवान्के चारित्रोंके कीर्तनमें ऐसे मग्न रहते थे कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता.

आनंदकन्द नंदन बँसुरी मधुर बजावे ।
निश है उजारी प्यारी चन्दा अमी चुवावे ॥
अधरनपै बंशी धारी गिरधारी तान गावे ।
श्रवण सुनो री ग्वालन नंदलाल अब बुलावे ॥

व्रजराज राधा वंसीमें कह सुनावे ।
उठ चल सखी दरसको मिलनको मन ललचावे ॥
बुलबुल सदा तिहारे चरणनमें शिर नवावे ॥ १ ॥
मेरे मन वस रह्यो श्याम सुजान । शिरपै मुकुट और कुण्डल कान ॥
भाल तिलक केसरको सोहै । जो देखै ताको मन मोहै ॥
हृदयबिचि अधिक सुख होहै । चितवन सुभग मधुरि मुसकान ॥ १ ॥
मुक्तमाल गलमाहिं विराजे । श्रवणबीच कुंडल अति साजे ॥
रुनक रुनक घुंघरू पग बाजे । मुखमें सोहत नागरपान ॥ २ ॥
थिरक थिरक गिरिधारी नाचत । प्रीति परस्पर अधिक बढावत ॥
मनमोहन सबके मन भावत । गावत मुरलीमें कछु तान ॥ ३ ॥
सब जग वाहीके गुण गावत । प्रेम सखी तन मन धन वारत ॥
बुलबुल कहै वसो वृंदावन । जीवनमूल हमारो प्रान ॥ ४ ॥

अथ

बीसवीं निष्ठा वात्सल्यमहिमा ।

(इसमें नो भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं रघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी इन्द्रधनुष रेखाको दंडवत् करके फिर हरिअवतारको प्रणाम करता हूं. जो कृपासिंधु गजके उद्धारके निमित्त अपना स्वरूप प्रगट कर स्वयं पधारे थे और ग्राहसे छुटाया था. वात्सल्य निष्ठा वह है कि जो अपने पराक्रमसे भगवान्‌को अपनी ओर खैंचकर उपायकरके चित्तमें स्थापन करते है और किसी प्रकारसे ऐसा नहीं होता कि इस निष्ठाके पक्षसे उप-

सना करनेवालेको भगवान् न मिले हों. हार्द उसका यह है कि भगवान्का प्राप्त होना दृढ प्रीतिसे है सो इस निष्ठासे बहुतही शीघ्र भगवान्की प्राप्ति हो जाती है और किसी निष्ठासे इतनी शीघ्र नहीं होती. प्रगट तो यह है कि सच्ची प्रीति तो पिताको अपनी संतानकी होती और चाहें पुत्र कैसाही कुरूप और कुपात्र क्यों न हो, परन्तु पिताको तो यह अत्यन्तही प्रिय है और उसके नेत्रोंका प्रकाश है. यदि इसी प्रकार प्रीति जो भगवान्में लगाई जायगी तो शीघ्रही भगवान् प्राप्त होंगे और इसके पीछे एक यहभी है कि बालकोंके चरित्र ऐसे मनको हरण करनेवाले हैं कि जैसे हो वैसेही मन लग जाता है और यह तो सबहीने देखा होगा कि जिस समय बालक अपनी तोतली बोली और भांति २ के खेल करता है, उस समय माता पिता तो क्या वरन मार्गके चलनेवालेभी यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और उसको गोदीमें लेकर खिलाते हैं. उसी लडकका ध्यान कई दिनतक चित्तपर चढा रहता है; फिर वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघनमें तो स्वरूपता और भांति २ की क्रीडा और अनेक चरित्र बालकोंकेसे सो जो कोई इस निष्ठाके पक्षसे उनका आराधन करेगा तो निश्चयही उसके मनमें अतिशीघ्र भगवान् समा जांयगे. इसके अतिरिक्त किसी वस्तुकी प्रीति किसीके न किसीके भयसे होती है. यदि जो वह दूर हो जाय तो थोडी प्रीति होती है और पुत्रकी प्रीति विना भयके अपने आपहीसे होती है. वह स्वाभाविक होती है इसी कारणसे वह दृढ रहती है. इससे यह निश्चय हुआ कि इस निष्ठाके पक्षसे मन भगवान्में लगे तो ऊपर जो दृष्टांत कह आये हैं तो उनकी रीति कभी थोडी नहीं होगी और दिन २ वह प्रीति होकर भगवत्परायण कर देगी. हमने जिस स्थानमें रसभेदकी चर्चा लिखी है तो रसके प्रमाण करनेवालोंने वात्सल्यनिष्ठाको

करुणारसका अंग लिखा है और भगवत् उपासकोंने जो उसका उत्तर दिया है और फिर रसोंका निर्णय करा है तो करुणारसको वात्सल्यनिष्ठाका अंग निश्चय कर दिया. अब दोनोंके लिखे हुएका जो विचार किया जाता है तो भगवत्उपासकोंने जो कहा है वह समस्त सत्य और स्पष्ट है. कारण कि रस तो उसको कहते हैं कि जिससे अधिक आनंद केवल उस वस्तुका कि जिसका रस विख्यात करा है और किसी वस्तुमें न होय. जिस प्रकारसे वीररसको कहेंगे कि जिसमें सब अंग शूरताईका घटेगा इसी प्रकार यहां दयाके स्थानमें स्पष्ट रस उसको कहना चाहिये कि जिसपर दया प्रगट न हो, सो अच्छी रीतिसे शोचा जाता है. दया वात्सल्यनिष्ठामें घटे है. कारण कि करुणारस उसको कहते हैं कि दूसरेके दुःखको देखकर मनमें दया उत्पन्न हो जाय और कर्म, वाणी, सेवा मनसे उसके निमित्त उपाय किया जाय और वात्सल्य वह है कि बहुत प्रीति और अति व्याकुलता होकर दया उत्पन्न हो जाय और मन वचन कर्मसे एकही वार मनके रोकनेसे एक ओर लग जाय और विचारना योग्य है कि दयाकी प्राप्ति वात्सल्यपर हुई और करुणारसमें दोनोंकी अधिकता वात्सल्यकी करुणाकी हुई इस निमित्त अच्छी प्रकार समझनेपर एक दृष्टांत याद आया है सो लिखता हूं. एक सांकरे मार्गकी गलीमें पशु आते थे और एक ओरसे एक मनुष्य स्नान करके चला आता था, वह मनुष्य ऐसा शुद्ध और पवित्र है कि किसीको स्पर्श नहीं करता. प्रारब्धके योगसे एक लडका किसीका दो तीन वर्षका खेल रहा है, उस लडकेके पास वह पशु आये; तो उस मनुष्यने अत्यन्त दयाकर पुकार करी कि कोई मनुष्य अति शीघ्र आकर इस लडकेको उठाकर ले जाओ और आपने इस कारणसे न उठाया कि मैं अशुद्ध हो जाऊंगा और जो वहांसे कुछही दूर गया तो मार्गमें उसी मनुष्यका

पुत्रभी खेल रहा था और उसका शरीर मिट्टी तथा कीचमें सन रहा था सो वह पशु उस लडकेके पासभी आ पहुँचे, तब यह अत्यन्तही व्याकुल होकर अत्यन्त शीघ्रतासे झपटा और उस समय लडकेकी अशुद्धता तथा अपनी शुद्धताका कुछभी विचार नहीं किया. और बहुतही शीघ्र लडकेको उठाकर अपने कंठसे लगा लिया. इस दृष्टांतसे वात्सल्य और करुणा रसमें विचार करना चाहिये. निश्चयही प्रधान रस वात्सल्य है और करुणारस उसका अंग है. यह उपासना श्रीदशरथनंदन अवधविहारी नंदनंदन वृन्दावनचंदकी प्रचारक है. और इस उपासनावालोंका ऐसा अलौकिक भाव है कि उसकी महिमाको कौन वर्णन कर सकता है. भगवान्‌को अपना पुत्र मानते हैं और उन्हींको पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघन परमात्मा और मुकुंद कहते हैं. कुछ एक प्रणालिका इस उपासनाकी विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्यकी कथामें लिखी हुई है और कितनीही सामग्री पीछे लिखी हुई है. इसकी महिमा और उपासना और उपासकोंकी महिमा निगमागम वा ब्रह्मा अथवा शिवभी वर्णन नहीं कर सकते. मैं मंदबुद्धि तो क्या वर्णन कर सकता हूं. यदि कोई कहेभी तो किस प्रकारसे कह सकें कि जिस पूर्णब्रह्मको अनेक जन्मतक योगिराज हजारों साधन करते हैं परन्तु भगवान् तबभी ध्यानमें नहीं आते और वही उन उपासकोंके निमित्त सगुण हुए और अपने परमरूप अनूपवाले चरित्र उनको दिखाये और अब दिखाते हैं और फिर दिखावेंगे. आप उस पूर्णब्रह्मको यह निष्ठा ऐसी प्यारी है कि अपने भक्तोंके चित्त और निष्ठाओंसे फिराकर निश्चय इस निष्ठाकी ओर लगा देते हैं; इसका निश्चय रामायण और भागवतसे भली प्रकार होता है. कौसल्या, नंदरानी, देवकी और वसुदेवको कितनी वार अपनी ईश्वरता दिखाई जब उन्हींका मन उस रूपमें लगा दिया और उनको परम आनंद

दिया. जब भगवान्ने आपही उनकी बुद्धिको फेरकर बालचरित्रोंमें लगा दिया तो जो भगवान्को यह निष्ठा और निष्ठाओंसे प्यारी न होती तो किस कारणसे ऐसा करते और उनका मन बालचरित्रोंमें क्यों लगाते ? और इस भावके अतिशय दृढ करनेको अबभी इस प्रकारसे चरित्र भक्तोंको दिखाते हैं अब विचारना चाहिये कि जो कथा विट्ठलनाथ और कृष्णदास कर्माबाई आदिसे विख्यात है और यह थोडेही कालकी वार्ता है. एक गुसांई जिनका नाम स्मरण नहीं रहा सो वल्लभकुलमें परम भक्त और वात्सल्य निष्ठाके उपासक हुए. एक समय उनकी स्त्रियोंको चूडी पहारानेके लिये मनिहारी आई. जब गुसांईजी उसको चूडियोंका मूल्य देने लगे तो उसने कहा कि सात लडकी और वधू आदिकको चूडी पहराई हैं; तब गुसांईजी बोले कि हमारी छः लडकी वधू आदिके समेत हैं इस झगडेंमे विना मोल लिये हुए मनिहारी चली गई. रात्रिमें राधिकामहारानीने गुसांईजीको स्वप्नमें कहला भेजा कि क्या मैं तुम्हारी वधू नहीं हूं ? जो तुम मेरी चूडियोंके दाम नहीं देते. फिर विचारना चाहिये कि भगवान् कैसे मनोहर चरित्र करके अपने भक्तोंके भावको दृढ करते हैं निश्चयही यह वात्सल्य निष्ठा भगवान्के शीघ्र मिलनेके निमित्त परम सार और सब निष्ठाओंका तत्त्व है. भक्तपरंपरामें लिखा है कि एक रस चार २ सामग्री विभाव अनुभाव सात्त्विक व्यभिचारीसे प्रगट होता है सो इस वात्सल्य रसमें पहलेके समान मैं पूर्णब्रह्म परमात्मा अच्युतानंद सच्चिदानंदघन श्रीरघुनंदनस्वामी वा नंदनंदन महाराज तीन वर्षसे सात वर्षतक आयुवाले कोमलवदन तोतले वचन श्यामसुन्दर स्वरूप, शिरपर छोटासा मुकुट और अतिकोमल शरीरमें कुरता पहरे गोटे पट्टेसे सुसज्जित और कर्णोंमें कुण्डल, माथेपर गोरोचनका तिलक नाकमें वेसर भालमें एक श्याम बिन्दी लग रही है और नेत्र मृगकी

समान चंचल है और गलेमें कंठमाला, जंत्र सिंहका नख शोभित है और हाथोंमें कडे और पहुँची पहरे हुए हैं, चरणकमलोंमें घुंघरू विराज रहे हैं यह विषयावलंबन है और कौसल्यामहारानी और नंद यशोदा इत्यादि आश्रयावलंबन है और अतिचंचलता और चपलतासे कभी तो माताकी गोदमें हैं और कभी खिलौनेकी ओर मनको लगाते हैं और कभी पक्षियोंपर दृष्टि और कभी भोजनकी इच्छा और किसी चीजको मांगना और कभी तोतली वाणीसे कुछ पूछना और कभी पलंगको पकडकर खडा होना और कभी माताकी अंगुली पकड पकडकर चलना सीखना, कभी नाचना और कभी आंगनमें अपने मित्र और भाइयोंके साथ क्रीडा करना और ऐसेही अनेक प्रकार चरित्र स्नान कराकर शृंगार कराना और इनके खेलके खिलौने आदि समस्त सामग्री तैयार रखनी, सब प्रकारकी कहानी कहलानी अति प्यार करना और लाड लडाना और गोदमें लेकर सेल कराना, आशीर्वाद देना इसी प्रकारके अनेक साज और सामाका चिन्तन सब सामग्री हैं. इसमें पहली विभावमेंकी और दूसरी अनुभावकी हैं. तीसरी सामा आठ प्रकारके सात्त्विक सब इस रसमें वर्तमान रहते हैं. तैंतीसों व्यभि-चारी अर्थात् सामग्री चौथीमेंसे दस २ इस रसमें प्राप्त होते हैं. पहले मनका ताप होना, दूसरी दुर्बलता, तीसरी विवरण, चौथी मनका उचाट, पांचवीं अदृढता, छठी जडता होना, सातवीं तनखेद, आठवीं उन्मत्तता, नववीं मूर्छना, दशवीं मृत्यु और इस रसका स्थायीभाव वह है कि मनकी वृत्ति दोनों लोकके सब संकल्पोंको छोडकर और एकत्व लगाकर रातादिन भगवान्के स्वरूप और प्रीतिमें दृढ हो जाय और किसी प्रकार किसी ओरको मन न जाय, हे रघुनंदन ! हे दीनवत्सल ! हे हरि ! हे आरतभंजन ! हे पतितपावन ! हे दीनबंधु ! हे कृपासिंधु महाराज ! आजतक जो बुराई और मनकी बात कही तौ एकभी

विशेष बात दृष्टि न आई. कारण कि इसकी बुराइयोंसे कभी कुछ प्राप्त न हुआ और न कुछ इस निर्भाग्य मनमें श्रवण किया और न माना, पर जो उस कृपाको और अनुग्रहका कि जिसके प्रतापसे अजामेल और गज और पशु पक्षी आदि विना काम और भजनसे एक क्षणमें परम पदको पहुँचकर जन्ममरणसे छूट गये. आशावान् होकर भगवद्भक्ति परमभक्तोंकी सेवामें निवेदन किया करता तो आपकी दयासे कभी निरास नहीं होता तो मेरी दशा ऐसीही क्यों रहती और यह मंदभाग्य मेरे वशी क्यों न होता सो अबभी उस कृपा और दयाका उपकार मानकर निवेदन करता हूं कि जिस प्रकारसे होसके उसी प्रकारसे मुझ दासपर कृपादृष्टि करिये. प्रथमका लिखा हुआ स्वरूप पहलेका और पीछेकी प्रणालिकाके अंतको रात्रि और दिन मेरे नेत्रोंमें बसा रहे.

सवैया—कबहूं शशि मांगत आर करे कबहूं प्रतिबिंब निहार डरैं । कबहूं करताल बजायके नाचत मात सबै मन मोद भरैं ॥ कबहूं रिस मारि कहै हठसौं पुनि लेत वही जेहि लाग अरैं । अवधेशके बालक चार सदा तुलसी मन मंदिरमें विहरैं ॥ १ ॥ तनकी द्युति श्याम सरोरुह लोचन कंजकि कोमलताइ हरैं । अति शोभित धूसर धूरि भरे छबि भूरि अनंगकी दूर धरैं ॥ दमकैं दँतियां द्युति दामिनि ज्यों किलकैं किल बालविनोद करैं । अवधेशके बालक चार सदा तुलसी मनमंदिरमें विहरैं ॥ २ ॥ दंतकी पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलनकी । चपला चमकै घन बिज्जु जगे मणि मोतिन माल अमोलनकी ॥ घुंघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी । नोछावर प्राण करैं तुलसी बल जाउँ लला इन बोलनकी ॥ ३ ॥ दोहतेकी समय वा मनमोहन लालजूकी ललित लुनाई कवि कहा कहै । कबहूं किलक धाय नंदके निकट आयकर उचकाय मुख

ओतरे बवा कहे ॥ ताके व्रजरानि महाकोतुक सिरानी दीठवानी मृदु सुनत बलैया लेउ मा कहैं । ओट ह्य गैयाकी ललैया बल गैय्या देकै नसु मैयासों कन्हैया जब ताकद हैं ॥ ४ ॥

कौसल्याजीकी कथा १.

कौसल्याजीके भाग्यकी बडाई और उनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है; ऐसा कौन गुणज्ञ है और होगा जो उनकी महिमाका वर्णन करे और न्यायसे तो सत्यही है कि किस प्रकारसे वर्णन हो कि जिसको मनुष्य निर्गुण निराकार निरंजन कोई मनुष्य गोलोकनिवासी और कोई वैकुंठनाथ और कोई साकेतविहारी और कहीं क्षीरसागरवासी और कोई परमतत्त्व और कोई परमज्योति और ज्ञानके समीप और शास्त्रवाले आप आपके ज्ञान विचारके अनुसार वर्णन करते हैं और तबभी पार नहीं पाते. जिसकी माया अनंत ब्रह्मांडोंके ब्रह्मा और शिव इत्यादिको रचकर फिर नाश कर देती है और जो सब वेद और शास्त्रोंका सार है और अपने भक्तोंका सर्वस्व और आधार है और वही पूर्णब्रह्म परमात्मा सच्चिदानंदघन जिस कौसल्याजीकी भक्तिके वशीभूत होकर परम मनोहर रूप धारण करके प्रगट हुआ और उनको पुत्ररूप होकर ऐसे चरित्र दिखाये कि जिनको सुनकर महापातक इस संसारसे पार होते है. फिर उनकी महिमा वर्णन करनेको कोन समर्थ है. एक समय महाराजाधिराज दशरथजीकी कथामें व्याख्यान हुआ कि पूर्वजन्ममें महाराजाधिराज दशरथजी स्वायंभू मनु और कौसल्या महारानी सत्यरूपा थी; उनको भगवान्‌ने वरदान दिया कि मैं तुम्हारा पुत्र हूंगा. उस समय सत्यरूपाने इतना वर और मांगा कि मुझको आपके स्वरूपका ज्ञान बना रहे; तब भगवान्‌ने कहा कि माताभाव और

ज्ञान दोनों तुमको बने रहेंगे; सो उसी वरदानके निमित्त कौसल्याजी भगवान्‌को शुद्ध सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्म और अपना पुत्र मानती थी जब भगवत्‌अवतार हुआ तब कौसल्याजीने यही जाना कि वह परमात्मा कि जिसको योगीजन समाधि लगाकर ध्यान करते हैं और वह मन बुद्धिसे न्यारा है; वही मेरा पुत्र हुआ. इस प्रकार आदि आचार्य वात्सल्यउपासनाका कौसल्यामहारानीसे जानना चाहिये. एक वार कौसल्या महारानी भगवान् रामचंद्रजीको पालनेमें शयन कराकर आप कुलदेवताके पूजन करनेको गईं तौ इन्होंने पूजा करते समय भगवान् श्रीरामचंद्रजीको देखा तो बडाही आश्चर्य माना और उसी समय जिस मंदिरमें रामचंद्रजीको शयन करा ग थी गईं तो वहां रामचंद्रजीको सोता हुआ पाया; फिर वहांसे पूजनके स्थानमें गईं तौ वहांपरभी रामचंद्रको देखा; इस प्रकार कई वार इधरसे उधर गईं तौ दोनोंही स्थानपर भगवान् रामचंद्रजीको देखकर विचारने लगीं कि यह क्या हुआ ? तब भगवान्‌ने माताको दुःखित देखकर अपनी मायास्वरूपके दर्शन कराये जो कि अनंत ब्रह्मांड हैं और नाना प्रकारके सब ब्रह्मांडोंकी रचना है और सबमेंही श्रीरामचं-द्रजी विराजमान हैं; परन्तु सब ब्रह्मांडोंमें भगवान्‌का स्वरूप अलग २ नहीं; सब जगह एकहीसा रूप है. शिव, सिद्ध, नाग, असुर इत्यादि स्तुति करते हैं और एक कोनेमें वह माया जो सब ब्रह्मांडोंको बनाकर नाश कर देती है; सो कंपित खडी है. कौसल्याजीने जब यह चरित्र देखा तो रुदन करने लगी और व्याकुल होकर चरणोंमें गिर पडी; तब भगवान्‌ने उसी समय हँसकर उनके मनका भ्रम दूर कर दिया और आज्ञा दी कि फिर तुमको मेरी माया कभी न सतावेगी इस चरित्रसे भगवान्‌ने यह शिक्षा दी कि जिसको मेरे रूपकी प्राप्ति है उसको मुझसे विशेष और कौन पूजनेके योग्य है ? कारण कि जिस

देवतामें ईश्वरता आदि जो कुछ है वह सब मेरी दी हुई है और वह देवता मेराही स्वरूप है. इसके पीछे फिर कौसल्याजी रामचंद्रजीके लाड लडानेमें मग्न हो गईं; उसका वर्णन नहीं हो सकता और भगवान्का रूप ऐसा उनके हृदयमें समाया कि इनके रूपके अतिरिक्त और किसीका ध्यान इनके मनमें स्वप्नमेंभी न आया और जब श्रीरामचंद्रजी वनको गये उस समयभी भगवान्का स्वरूप कौसल्याजीके निकट ऐसा रहता था कि उनको यह कभी नहीं ज्ञान हुआ कि भगवान् वनको गये हैं यदि कोई उनको रामचंद्रके वनके जानेका स्मरण करता था तब वह यह जानती थी कि रामचंद्र वनको गये हैं, परन्तु फिर उसी समय उसी प्रकार ध्यान लग जाता था. फिर जिस समय रामचंद्रजी लंकाको विजय करके फिर अयोध्यापुरीमें आये तब कौसल्याजी जिस प्रकार रोज आरती करती थीं उसी प्रकारसे आरती करने लगी सो इससे यह जाना जाता है कि यह समय कौनसा है? निश्चय यह वही है जो कि रामचंद्र कौसल्याजीके निकट सर्वदा आया करते थे और वह आज चौदह वर्षके पीछे आये हैं परन्तु उस समय यह चिन्ता हुई कि इस लडकेने ऋषीश्वरका भेष किस कारणसे धारण किया है; फिर जानकीजीके स्वरूपको देखकर कहा कि देखो इस लडकेने अपना भेष तो ऋषीश्वरका बनायाही था परन्तु मेरी प्यारी वधूकाभी वैसाही स्वरूप बनाया है उसी समय श्रीजानकीजीको उठाकर ले गई और उनको शृंगार इत्यादि कराया. फिर जब श्रीरामचंद्रजीके राज्याभिषेकका समाज और उत्सव हुआ तो संपूर्ण लोक आनंदित हुए. उस समय कौसल्याजीने यह विचारा कि रामचंद्रके राज्यतिलकमें देवता और ऋषीश्वर सबही आवेंगे तो ऐसा नहीं कि कोई मेरे पुत्र और अत्यन्त सुकुमारी वधूको देखकर कोई दृष्टि लगा जाय सो सुमित्रा आदि

रानियें तो आरती और मंगलकी तैयारीमें रहीं और आप उनके नजर न लगनेकी वस्तुकी खोजमें रहीं और जब रामचंद्र और सीताजी राज्यसिंहासनपर शोभित हुए और उनकी आरती होनी प्रारंभ हुई; तब एक श्याम बिन्दी पुत्र और वधूके मुखारविन्दपर लगा दी; कारण कि जिससे नजर न हो और पीछे आरती करी; और उनके अत्यन्त सुन्दर स्वरूपको देखकर परमानंदमें मग्न हो गईं. हे रघुनंदन स्वामी! उस समयके परमानंदका जो परमाणु और परमाणुका जो कोटि कोटिका विभाग है; सो मुझको अपना दास जानकर दो तो मैंभी भवसागरके पार हो जाऊं.

नंदबाबा और यशोदाजीकी कथा २.

नंदबाबा और यशोदारानी नौ नंदमेंसे १ धरानंद, २ ध्रुवानंद, ३ उपनंद, ४ अभनंद, ५ सुनंद, ६ भयानंद, ७ कर्मानंद, ८ धर्मानंद, ९ वल्लभानंद, इनमेंसे धरानंदजीके घर भगवान्का अवतार हुआ; सो धरानंद और यशोदाजीकी कथा इस प्रकारसे है कि, जिस प्रकारसे कौसल्याजीकी महिमाका वर्णन नहीं होता उसी प्रकार यशोदामाता और बाबा नंदजीकी महिमा है और इनमें और उनमें एक बालभरकाभी भेद नहीं और यदि जो कोई उनमें कुछ अंतर जाने; तो उस इस हार्द उपासनाके अतिरिक्त विचारना चाहिये. निश्चयही भगवान्के चरित्रोंमें अंतर हुआ कि श्रीरामचंद्र अवतारमें तो ऐसा चरित्र कोईभी नहीं हुआ कि जो कौसल्याजीसे गुप्त रहा हो; परन्तु श्रीकृष्ण-अवतारमें तो प्रथमसेही ऐसे चरित्र हुए जो कि मातासेही गुप्त करने पडे थे. इस प्रकारके चरित्र होनेका कारण सबही जानते हैं कि उस समय कलियुग अतिशीघ्र आनेवाला था और भगवान्का अवतार केवल संसारके उद्धार करनेके निमित्त होता है; तो उस समयके जैसे चरित्र उस कालके उत्पत्ति होनेवालोंकी प्रसन्नता और आपको हानि

पहुँचनेवाले देखे तो उन्होंने उसी प्रकारके किये और उन चरित्रोंको बाबा नंद और रानी यशोदा कभीभी नहीं जान सकीं और जो कभी भ्रांतिसे जाना तो विचार लिया कि हमारा बालक तो अत्यन्त भोला भाला है, उसने ऐसा कर्म कदापि न किया होगा और जब आप गोपियोंका माखन चुराकर खाते और वह इनके रूपको देखनेके मिससे यशोदारानीपर उलाहना लेकर आतीं तो यशोदाजी अपने पुत्रके अपराधको कभी स्वीकार न करती और कहती कि जा तू मेरे कन्हैयाको वृथा दूषण लगावे है. मेरे घर क्या माखन नहीं है ? जो वह तेरे घर खानेके लिये जाता. इसके उपरान्त एक समय श्रीकृष्ण राधिकाको लेकर रात्रिके समय कुंजमें विहार करते रहे. जब देखा कि अब दो चार घडी रात्रि शेष रही है तो आप मैयाके डरसे अपने पलंगपर चुपकेसे जाकर सो रहे. रात्रि बीचनेके भयसे पीताम्बरकी जगह राधिकाजीका नीलाम्बर बदल आया था सो आप उसकोही ओढे हुए शयन कर रहे थे. फिर जब प्रभात हुआ तो यशोदाजीने इनको जगाया तो यह नीलाम्बर ओढ रहे थे. इन्होंने जाना कि बलदेवजीका नीलाम्बर बदल गया होगा और परस्परके हँसी और खेल होनेमें जो राधिकाजीके नखोंका चिह्न इनके शरीरपर था तो उसको यह जाना कि कल ऐसे वनमें यह बालक गया था कि इसको बंदरोंने खसोटा है, और उनके नखोंके चिह्न इसके शरीरपर अबतक उछल रहे हैं और जब उनके नेत्रोंमें निद्रा भरी हुई देखी तो यह विचारा शरीरमें इसके नख लगनेसे अधिक पीडा हुई थी इस कारण इसको रात्रिमें नींद नहीं आई है. यह देखकर अत्यन्त स्नेहके सहित अति प्यार कर छातीसे लगा लिया और रुदन करने लगी और बोली कन्हैया ! अब तू ऐसे वनमें भूलकरभी मत जाना, फिर ब्राह्मणोंको बुलाया और बहुतसा पुण्य दान किया; उनके घरपर सैकडों दास और दासी उप-

स्थित थे परन्तु जो गऊ भगवान्की कहाती थीं उनकी सेवा दूध दूहना, दूधका तत्ता करना, जमाना, बिलोना यशोदाजी आपही करती थीं, इनका और कोईभी प्रयोजन न था और जो उसमेंसे माखन निकलता था उसको अलग २ बरतनोंमें ऐसी जगह रक्खा करती थीं कि आते जाते भगवान्की दृष्टि पडे इसका कारण यह था कि मेरा लाला मांगकर वा चोरी करके किसी प्रकारसे माखनको खा ले, इसके खानेसे उसका दुबलापन तो दूर हो; जिस स्थानपर वह ब्राह्मण और अवधूतोंको मंत्रका जाननेवाला सुनतीं; तो इनको बडे परिश्रम और आदर सत्कारसे बुलातीं और उसको बहुतसा द्रव्य देकर डोरी करातीं कि मेरा बालक अत्यन्त सुकुमार वनोंमें न जाने कैसी बुरी भली जगह फिरता है, तो कहीं किसीकी नजर और दीठ न लग जावे, जो थोडा बहुत खा लेता है इससेभी जाय, इस प्रकारके यशोदा कृष्णजीके चरित्र अनेक हैं. यदि जो करोडों जन्म शेष और शारदाके पाऊं तौभी वर्णन करनेका मेरा सामर्थ्य नहीं. यदि जो मनुष्य महापापी उन भाव और चरित्रोंका सर्वदा माताके हित स्मरण कर लता है, उसकी महिमाको कौन वर्णन कर सकता है और उसकी मुक्ति हो जाती है. जो परमानंद यशोदा माताको प्राप्त हुआ था, वह आनंद न तो ब्रह्माको और न शिवको प्राप्त हुआ. औरोंका तो कहनाही क्या है. भगवान्भी तो इस बातके साक्षी हैं यहांपर भगवान्की एक शिक्षा लिखनी उचित समझी वह यह है कि, जिस समय यशोदाजीने श्रीकृष्णका कुछ दोष देखकर उनको ऊखलसे बांधनेका यह विचार किया; तब गोपियोंको यह समाचार मिला तो वह अत्यन्तही प्रसन्न हुई और बोलीं कि आज समस्त नटखटियोंका फल मिल गया और अपने २ घरोंसे रस्से ले लेकर धाईं और उनके मनका संकल्प यह था कि इसी ओडेसे उस चितचोरके दर्शन

कर आवें जब यशोदाजी श्रीकृष्णको बांधने लगीं तो जिस रस्सीसे बांधती थी वही रस्सी एक २ अंगुल घट जाती थी; इसी प्रकार समस्त गोपियोंके घरोंकी रस्सी आ गई और उससे श्रीकृष्ण न बंधे और पूरी तबभी न हुई तब यशोदाजी अत्यन्तही व्याकुल हुई और प्रस्वेद आ गया तब कृपासिंधु महाराज श्रीकृष्ण अपने माताके दुःखको न सह सके तो अतिशीघ्र उस दाममें बंध गये, उस चरित्रके करनेसे यह शिक्षा है कि मेरे बंध जानेमें केवल दो अंगुलका अंतर है. एक अंगुलका तो भक्तकी ओरसे कि मेरी सेवा तनमनसे करना और दूसरे अंगुलका मेरी ओरसे कि जिसने शुद्ध मनसे मेरी सेवा करी उसके मैं वशीभूत होकर बंध जाता हूं और भक्तको शीघ्रही मिल जाता हूं.

विट्ठलनाथजीकी कथा ३.

विट्ठलनाथजी गुसांईजीके बेटे वल्लभाचार्य कि जिनकी कथा धर्मप्रचारक निष्ठामें लिखी गई है. ऐसे परमभक्त वात्सल्यनिष्ठाके हुए कि जो सुख और आनंद वात्सल्यका बाबा नंदको हुआ था, वही भगवान्‌ने कृपा कर उनको दिया. विट्ठलनाथजीकी यह रीति थी कि रात दिन भगवान्‌का आराधन और लाड लडाने खिलाने तथा भोजनकी सामग्री तैयार करनेमें निमग्न रहते थे. प्रभातही भगवान्‌को जगाते. उनका मुख धुलाते, स्नान कराकर वस्त्र और आभूषण पहराते. फिर उनका शृंगार कर उनके खेलनेके खिलौने ढूंढकर लाते, शय्या बिछाते, फिर उसपर शयन कराते इसी प्रकार उनके बालचरित्रके यत्नमें लगे रहते और उनका यह आराधन एकही वार न था वरन सात वार करते थे. उनका मन किसी ओरकोभी नहीं जाता था. वह एकाग्रमनसे भगवान्‌का आराधन करते थे. जैसा समाज और सामग्री गोकुलमें नंदरायके थी वैसीही समस्त सामग्री

और सामान इनके घरपर था निश्चयही विट्ठलनाथजीने कलियुगके समयमें द्वापर कर दिया था और उनको ध्यान करनेसे भगवान्के बालचरित्रोंके दर्शन साक्षात् दर्शनोंकी समान होते थे; परन्तु इनको एक वार यह इच्छा हुई कि भगवान्के बालचरित्र साक्षात् देखें भगवान्ने जब उनके मानकी यह अभिलाषा देखी तो बोले कि हम अपने आवेश अवतारसे तुमको बालचरित्रमें दिखावेंगे, सो जब इनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरजी उत्पन्न हुए तो उनके शरीरमें भगवान्का अंश आया और उन्होंने विट्ठलनाथजीको बालचरित्र दिखलाये फिर जब गिरिधरजी पांच वर्षसे छठे वर्षमें पडे तो इनसे वह भगवत्कला निकलकर इनके छोटे पुत्रमें आ गई, इसी प्रकारसे इनके सात पुत्र हुए और सातोंमें अपनी कलासे भगवान्ने बालचरित्र दिखाये, एक समय भगवान् बंदरको देखकर डरे और अतिशीघ्र दौडकर विट्ठलनाथजीकी गोदीमें जा बैठे. उस समय विट्ठलनाथजीको भगवान्की ईश्वरतापर विचार था, सो उन्होंने अत्यन्तही स्नेहसे गोदीमें बैठाकर प्यारके साथ मीठी वाणीसे भगवान्से कहा कि हे भगवन् ! जिस समय आप लंकापर चढे थे और उस समय बेप्रमाण बंदर आपके साथ थे उस समयमें तो कभी आपको भय न हुआ; अब एक छोटेसे बंदरसे किस कारणसे डरे ? तब भगवान् बोले कि जब तुम्हारा चित्त मेरी ईश्वरताकी ओर है तो फिर बालचरित्र करनेका क्याही प्रयोजन है और जो बालचरित्रोंकी उपासना आवश्यक है तो उन चरित्रोंके पूछनेको कुछ प्रयोजन नहीं. मेरे चरित्र और मेरे स्वरूप भक्तकी इच्छासे वात्सल्यता और कृपालुतासे भक्तकी इच्छानुसार होते हैं नहीं तो मैं इन समस्त कार्योंसे पृथक् और सर्व मायाके गुणोंसे रहित हूं. ऐसी भगवान्की कृपाको देखकर विट्ठननाथजी आनंदित हुए उनके सातों पुत्रोंका नाम पुरुषवृक्ष कुलाम्नाय वल्लभा-

चार्यमें लिखा गया और सब आवेश अवतार हुए. सात गद्दी अबतक गोकुलमें विख्यात हैं और प्रत्यक्ष हैं कि इस संसारसमुद्रसे पार उतारनेको सार जहाजकी समान है. सात मूर्ति भगवान्की स्वामी वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथजीके पुत्रोंकी विराजमान करी हुई थी. उनमें एक मूर्ति श्रीनाथजी महाराजकी वांछा और राणा उदयपुरके निमित्त नवरंगशाह बादशाहके राज्यमें अपनी इच्छासे पधारी और उदयपुरकी उत्तर दिशामें बारह कोस विराजमान है और नाथ द्वारा संपूर्ण संसारमें विख्यात है सो अबतक पथिककी रीतिसे वहांपर रहते हैं और स्थिर रहनेके निमित्त कोई मंदिर नहीं बनवाया. गुसांई और पुजारियोंके निमित्त बडे २ भवन तैयार हो गये हैं और विट्ठलनाथजीकी संतानमेंसे वहांके अधिकारी गुसांई हैं और इसी रीतिसे दूसरी चंद्रमामूर्ति उसकी बादशाहके समयमें जयपुरका राजा ले गया, सो वह मूर्ति अभीतक जयपुरमें विराजमान है और बहुत बडा गुरुद्वारा है और उसके पुजारी और गुसांई विट्ठलनाथजीकी संतानमेंसे हैं.

कर्माबाईकी कथा ४.

कर्माबाईजी परम भक्त और वात्सल्यकी उपासक हुईं, इनका यह नेम था कि बालअवस्थामेंही प्रभातको उठकर जिस प्रकार मातासे बालक भोजन मांगा करते हैं और माता उनके लिये जागनेसे प्रथमही उनके भोजनकी सामग्री तैयार करके रखती है उसी भावसे इनको प्रथम भगवान्की खिचडीके तैयार करनेका होता और विना स्नान किये थोडीसी खिचडा छोटेसे पात्रमें खिसपर धर दिया करती और जब वह तैयार हो जाती तो अत्यन्तही प्रीति और स्नेहसे भगवान्को भोग लगाया करती थी और इनकी प्रीतिसे प्रसन्न हो स्वयं जगन्नाथ-

राय स्वामी आनकर भोग लगाया करते थे. एक वार कोई साधु आ गया तो उसने इस प्रकारकी खिचडीके भोग लगानेका वर्जित करा और उनको आचार और क्रिया सिखाई तो कर्माबाईजीने बेवश हो उस साधुकी आज्ञानुसारही करा. ऐसा करनेसे नित्यके कृत्यमें ढील होने लगी और भगवान्‌की भूंख कर्माबाईको बाधा देने लगी. एक दिन भगवान् कर्माबाईकी गोदीमें बैठे हुए खिचडी खा रहे थे उसी समय पुरुषोत्तमपुरीमें भगवान्‌के राज्यभोगकी तैयारी हुई तब भगवान्‌को विना हाथ मुँह धोये हुए उन्होंने पाया. पंडोंने देखा कि भगवान्‌के हाथमें खिचडी लग रही है यह देखकर बडाही आश्चर्य हुआ और भगवान्‌से इसका वृत्तान्त पूछा तो बोले कि हमको कर्माबाई प्रभातही खिचडीका भोग लगाया करती थी हम उसके स्नेहके वशीभूत होकर भोजनके अर्थ जाया करते थे सो आज-कल एक साधुने उस बाईको आचार धर्म और क्रियाकी शिक्षा करदी है, सो इस कारणसे भोजनमें विलम्ब हो जाता है सो तुम उस साधुको समझा दो कि तुम उस बाईको नित्यहीकीसी आज्ञा दो तब पुजारियोंने उस साधुको ढूंढकर कर्माबाईजीके पास भेजा और वह भगवान्‌की आज्ञानुसार कर्माबाईसे कह आया, कर्माबाईजीने उस क्रिया और आचारको बडा दुःख जान रक्खा इस कारण कि मेरा अत्यन्त सुकुमार बालक दो पहरतक भूंखा रहता है इस कारण सदैव कालकी आज्ञाको पाकर हर्षके सहित उस आचार और क्रियाको छोड दिया, सो आजतक जगन्नाथजीमें प्रभातकोही कर्माबाईजीकी खिचडीका भोग लगाया जाता है, उसके दो भेद विदित होते हैं एक तो यह है कि मनुष्य जिस भावसे मरता है, उसे वही भाव प्राप्त हो जाता है, सो उस वचनके अनुसार कर्माबाई-जीको यशोदा महारानीका अधिकार मिला कारण कि उनको मरते

समय अपने वात्सल्यभावमें दृढ निष्ठा थी और अपने उपासनाकी रीतिसे अबतक भगवान्को खिचडीका भाग लगाते हैं और दूसरा यह है कि भगवान् अपने भक्तोंको आज्ञा देते हैं कि मेरी प्रीति और वात्सल्यभावका यह अधिकार है कि कर्माबाईजीकी खिचडीका स्वाद और आनंद अबतक मेरी जिह्वासे दूर नहीं हुआ सो उपासकों और भक्तोंको इस रसका स्वाद स्मरण रहे कि निश्चयही कर्माबाईजी आप आकर अभीतक वह खिचडी भोग लगाती है कारण कि हजारों प्रकारके भोजन भगवान्के निमित्त पुरुषोत्तमपुरीमें तैयार होते हैं परन्तु जो आनंद कर्माबाईजीकी खिचडीका है ऐसा और पदार्थोंका नहीं.

कृष्णदासजीकी कथा ५.

कृष्णदासजी वात्सल्यनिष्ठामें परम भक्त हुए जो कि श्रीगोवर्धनधारी व्रजभूषण महाराजने अपने नित्य परमानंदमें मग्न कर लिया उन्होंने अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञापर ऐसा विश्वास किया कि केवल वह भजन और सेवारूप हो गये और वह कवि ऐसे थे कि पंडित और भक्त जिनको सब सार जाकर दंडवत् करते हैं और वह अबतक अज्ञानी पुरुषोंको शिक्षा देते हैं उन्होंने व्रजकी रजको अपने इष्टदेवकी तुल्य जाना और प्रतिदिन भगवद्भक्त सत्संगमें रहे. एक वार श्रीनाथजीके शृंगारका सामान मोल लेनेके लिये दिल्लीमें आये तो इन्होंने अत्यन्तही सुन्दर जलेबी बनी हुई देखी; तो यह विचारा कि यह जलेबी नाथजीके लिये भेजी जांय तो वह आंगनमें खेल २ कर खाते फिरते हुए अत्यन्त सुन्दर लगेंगे और वह यहभी समझेंगे कि हमारे बाबाने दिल्लीसे हमारे लिये मिठाई भेजी है और वह अपने मित्रोंकोभी भोजन करावेंगे. निदान उनके स्वरूपमें मग्न होकर उन जलेबियोंका भोग श्रीनाथजीको लगाया और

एक आश्चर्यकी वार्ता हुई कि हलवाईकी दुकानसे जलेबियोंका थाल कृष्णदासजीके पास आपसे आप आ गया और उसका प्रसाद अपने सेवकोंको दिया कितनोंहीने न लिया और विचारा कि पुजारीकी बुद्धिमें भेद हो गया है न जाने यह जलेबी किस क्रिया और आचारसे बनी है और अनेकोंने ले लिया और उसको भगवान्का महाप्रसाद जाना और उन्होंने क्रिया और आचार्यका यह विचार किया कि बडे पुरुषोंकी बुद्धिमें कुछ संदेह न करना चाहिये. उनकी आज्ञा धारण करनी कर्तव्य है; जब यह वहांसे आगे चले तो एक वेश्या नृत्य कर रही थी उसीको देखकर आप प्रेममें मग्न हो गये और विचारा कि इस चंद्रमुखीका नृत्य नाथजीको दिखाना उचित है और उसको अपने सन्मुख बुलाकर कहा कि हमारा पुत्र नाच रागका अत्यन्त प्रेमी है, तुम उसके पास नाचनेके लिये चलो; तब वह वेश्या इनके साथ २ चली और उस वेश्याको गोवर्धनजीमें मानसी-गंगामें स्नान कराकर वस्त्राभूषण आदि पहराये और सुगंधित वस्तु लगाकर मंदिरमें ले गये. वेश्या श्रीनाथजीके स्वरूपको देखकर स्नेहमें विह्वल हो गई और मन और क्रमसे भगवान्की होकर उनके रूपमें मग्न हो गई; तब कृष्णदासजीने पूछा कि तुमने हमारे पुत्रको देखा; तब वेश्याने उत्तर दिया कि देखा और उसने तो मेरा मन हरण कर लिया है; फिर उस वेश्याने नृत्य और गानका आरंभ किया और ऐसे २ भाव अपने भ्रूविक्षेपादि बनाये और दिखाये कि उस परम रिझवार-को अपने रूप और नृत्य राग तथा भावसे वश कर लिया और फिर तदाकार रूप होकर अपनी देहको त्यागकर नित्य विहारमें मिल गई. अब भगवान्के भक्तोंको कोटिनकोटि दंडवत् हैं कि जिसके प्रभावसे एक क्षणमें परम पातकी और दुष्टोंको कि जिन्होंने कभी भगवान्का नामभी न लिया उस उत्तम पदको पहुँचा देते हैं और वह आप अग-

णित ब्रह्मांडोंका उत्पत्ति करनेवाला हो जाता है, फिर कृष्णदासजीने प्रेमरसरास ग्रंथ वर्णन किया सो उसको आप श्रीनाथजीने संमति दी सो सब भक्तोंको मान्य और प्रमाण है. सूरदासजीने मिलनेकी समय कृष्णदासजीसे कहा कि कोई पद अपना बनाया हुआ ऐसा कहो कि जिसमें मेरे कृत्यका आशय न हो; उनकी आज्ञानुसार कृष्णदास-जीने दस पांच पद सुनाये; परन्तु सूरदासजीने अपनी कृत्यका आशय सबमेंही निकाल दिया; तब कृष्णदासजी बोले कि जैसा तुम कहते हो वैसा हम प्रभातकोही सुनावेंगे, यह कहकर आप चिन्ता करने लगे. भगवान्‌ने देखा कि इस समय मेरा भक्त चिन्तित है तो आपने एक पद बनाकर उनके तकियेके नीचे धर दिया; फिर जब कृष्णदासजी प्रभातको उठे और उन्होंने तकियेके नीचे उस पदको रक्खे हुए देखा तो अत्यन्तही प्रसन्न हुए और उसी समय सूरदासको सुनाया. सूरदासजीभी भगवान्‌के परम भक्त थे, सो वह इस भगवान्‌की कृपाको जान गये और बोले कि यह कृत्य तुम्हारे कौतुकी है. यह कहकर कि अपने बाबाका पक्ष करा, दोनों भक्त भगवान्‌के प्रेममें अचेत हो गये. भगवान्‌के प्रथम पदका रचा हुआ यह अंतरा है. "आवत बनि कान्हा गोप बालक संग वच्छकी खुर रेणु छुरित अलकावली." प्रगट हो कि सूरदास और कृष्णदास यह दोनों गुरु भाई थे और वल्लभाचार्यजीके शिष्य थे. कृष्णदासजी मथुराजीसे भग-वान्‌के स्नान करानेके लिये विश्रामघाटका जल लाया करते थे, जो कि गोवर्धनजीसे नौ कोस है, तब भगवान्‌ने इनसे कहा कि कृष्णदासने इतने परिश्रम करनेका कुछभी प्रयोजन नहीं है; परन्तु कृष्णदासजीने इस कहनेपर कुछभी ध्यान न किया तो श्रीनाथजीने अपने शिरपर पानी लानेके घडेका चिह्न दिखाया, यह देखकर कृष्णदासजी अत्यन्त-ही लज्जित हुए और कूपकेही जलसे भगवान्‌को स्नान कराने लगे.

दिन कृष्णदासजीका पैर रपट गया और कूएमें गिर पडे तो भगवान्के नित्य लीला और विहारमें मिल गये, जो उनके रसिक मनुष्य थे इनको इनके कूएमें गिर जानेका अत्यन्त दुःख हुआ, तब श्रीनाथजी महाराज उस निन्दाको सहन न कर सके; तब उनको कृष्णदासजीका अपनेमें मिलना प्रत्यक्ष कर दिया. कृष्णदासजी गोवर्धनके समीप एक ग्वालको मिले और उस ग्वालसे यह वार्ता कही कि गुसांई विट्ठलनाथजीसे हमारी ओरसे दंडवत् करके प्रार्थना करना कि इस समय वह कौतुकी गिरिगोवर्धनकी ओरको अकेला चला गया है उसके ढूंढनेके लिये मैं जाता हूं; इस कारणसे मैं आपके निकट नहीं आ सकता और जिस स्थानपर मैं शयन करे था उस स्थानपर साठ हजार रुपये गडे हैं सो वहांसे निकासकर आधे भगवान्के शृंगारमें लगा दो और आधे साधुओंकी सेवामें लगाना. उस ग्वालने आकर इनकी आज्ञानुसार सब वार्ता विट्ठलदासजीको कह सुनाई तो विट्ठलदास-जीने इनके बताये हुए स्थानपर खोदा तो उसमेंसे रुपये निकले तो सबकोही कृष्णदासजीकी भक्तिपर विश्वास हुआ.

गुसांई गोकुलनाथजीकी कथा ६.

वल्लभाचार्यजीके पोते और विट्ठलनाथजीके बेटे गुसांई गोकुलना-थजी सम्पूर्ण गुणोंके समुद्र और बुद्धिमान्, रूपवान्, सहनशील, मधुरभाषी और श्रीगिरिधरजी महाराजके भजनमें दृढ हुए. इनकी भक्तिके प्रतापसे समस्त राजा इनके चरणोंमें दंडवत् करते थे; इनका मन प्रगट और अंतरमें समस्त मनुष्योंके उपकारके लिये कृपालु था; तब इनकी सेवामें एक अत्यन्त धनवान् मनुष्य शिष्य होनेके लिये आया और वह इनकी भेंटके लिये लाखों रुपये लाया तब गुसांईजीने उससे पूछा कि तुम्हारा अधिक प्रेम किस वस्तुमें है ? तब उसने उत्तर

दिया कि किसी वस्तुमेंभी नहीं; तब गुसांईंजीने कहा कि तुम और गुरुको ढूंढो. यदि जो तुम्हारी प्रीति किसी और वस्तुमें होती तो यह हम कर देते कि उस ओरसे खैंचकर भगवान्‌में लगा देते और जब तुम्हारे हृदयमें प्रीतिका बीजही नहीं तौ भगवान्‌की भक्तिका पेड कहांसे उत्पन्न होगा; जो तुम्हारा मन निश्चयही विना स्नेहके है सो पाषाणकी तुल्य है. एक कान्हा भंगी नित्य नाथजीके मंदिरमें बुहारी देनेके निमित्त आया करता था; और भगवान्‌के उस रूप अनूपके दर्शन कर उनकी छबिके ध्यानमें मग्न रहता था. गुसांईंजीने विचारा कि इस नीच जाति मनुष्यकी भगवान्‌पर दृष्टि पडनी योग्य नहीं; यह विचार कर परदा डाल दिया; तब कान्हा भंगीको भगवान्‌के दर्शन न हुए वह बडा व्याकुल हुआ भगवान्‌को कान्हाकी मंदभागता अच्छी न लगी उन्होंने उसी रात्रिको कान्हा भंगीको स्वप्न दिया कि गुसांईंजीसे कह देना कि उस परदेको वह अलग कर दे. कान्हा अपने मनमें विचार करने लगा कि गुसांईंजीतक पहुँचनेकी मेरी कब सामर्थ्य है और जो न जाता हूं तौ भगवान्‌से डर लगता है. यह समझकर वह चुप हो रहा; तब श्रीनाथजी महाराजने फिर उसे उसी प्रकार स्वप्न दिये; तब यह अवश होकर द्वारपालके पास गया और हाथ जोडकर प्रार्थना करी कि मुझको गुसांईंजीसे कुछ वार्ता करनी है. द्वारपालने समझा कि गुसांईंजी भंगीसे किस प्रकार मिलेंगे यह विचारकर उसने इनकी बातपर कुछभी ध्यान न दिया, परन्तु किसी अन्य मनुष्यने गुसांईंजीसे बातें करते २ एक यहभी बात कह दी, तब गुसांईंजीने उसी समय इसको बुलवाया और एकान्तमें ले जाकर उनसे पूछा कि क्या बात है? तो उसने भगवान्‌का संदेशा कह दिया और यहभी कहा कि उसी दिनसे मेरे ऊपर भगवान्‌का कठिन तगादा है, तब गुसांईंजी बोले कि नाथजीने मेरा नामभी लिया था; तब कान्हाने उत्तर

दिया कि आपहीके प्रति कहा है कि उनसे कहकर डोलीको दूर करा दो. गुसांईजीभी यह वार्ता जानते थे; इस कारण उसके वचनको सत्यही जानकर उसको तत्काल छातीसे लगा लिया और भगवान्की आज्ञानुसार वैसाही किया.

गुंजामालीकी कथा ७.

गुंजामाली नाम प्रसिद्ध होनेकी यह रीति है गुंजा अर्थात् चोंटली जिसको सराफ रत्तीके प्रमाणमें बाटरूप अपने पास रखते हैं; वह उसकी माला बहुतही पहना करते थे इस कारण व्रजभूषण महाराजको इसकी माला अधिक प्रिय थी इसी कारणसे गुंजामाली नाम विख्यात हुआ अर्थात् गुंजामाली लाहौरका रहनेवाला था, उसका पुत्र मर गया था तौ इन्होंने अपनी वधूसे कहा कि, पुत्री ! यह समस्त घरवार तुम्हाराही है और गोपालजी महाराज स्वामी तथा मालिक हैं. जो तुमको चाहिये वोह लेकर भगवद्भजन किया करो. कारण कि वह भगवद्भक्त थी, तब उसने उत्तर दिया कि मुझको कुछभी लेनेकी इच्छा नहीं है तुम मुझे गोपालजी महाराजकी एक मूर्ति दे दो जब गुंजामालीने वधूका ऐसा दृढ निश्चय देखा तौ भगवान्की सेवा उसके अर्पण कर दी और जो कुछ द्रव्य था सो स्त्रीको देकर वृन्दावनमें चला आया और व्रजवल्लभ महाराजके भजन और कीर्तनमें लग गया; इनकी वधू भाग्यवान् भगवान्की सेवा करने लगी और ऐसी मग्न हुई कि किसी समयभी भगवान्की सेवा किये विना उसको चैन नहीं पडता था. जिस स्थानपर भगवान्की मूर्ति विराजमान थी उस स्थानपर बहुतसे लडके खेला करते थे एक दिन उन लडकोंने ईंटोंकी रज भगवान्के ऊपर डाल दी तब वधू अत्यन्तही क्रोधित हुई और उन लडकोंको उस स्थानपर न जाने दिया. फिर

जब भोजन तैयार कर भगवान्‌के निकट ले गई तो भगवान्‌ने भोजन न किया और उदास होकर कहा कि तुमने हमारे मित्रोंको आनेसे क्यों बंद कर दिया? अब हम इसी कारणसे तेरी रोटीभी नहीं खांयगे. बहूजीने बहुतसी विनती करी. परन्तु भगवान्‌ने एक न मानी तब बहू क्रोधित होकर बोली कि हमारा क्या बिगडता है तुम्हारीही तो पोसाक मैली होगी; सो मैं जैसी राखधूलकी आपकी इच्छा होगी सो आपके ऊपर डाल दूंगी. अब तो भोजन कर लो; भगवान् अपने मित्रोंके विना आये प्रसन्न न हुए बहूने अनेक प्रकारसे विनती करी परन्तु भगवान्‌ने एक न मानी. तब वधू वहांसे उन लडकोंको लिवानेके लिये गई और उनको मिठाई इत्यादिका लोभ देकर लिवाकर लाई. तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर भोजन किया. धन्य है भगवान्‌की कृपाको! देखो वह अपने भक्तोंकी प्रीतिका ऐसा निर्वाह करते हैं कि ज्यों ज्यों मन भगवान्‌के चरित्रोंमें लगता है भगवान् उसका निर्वाह करते हैं; बहूकी भावना वात्सल्यता थी और बालकोंको खेल प्यारा होता है सो वही भाव भगवान्‌ने दृढ कर दिया.

गिरिधरजीकी कथा ८.

वल्लभाचार्यजीके पोते विट्ठलनाथजीके बेटे गिरिधरजी महाराज कल्पवृक्षकी समान हुए वह कल्पवृक्षसेभी इस प्रकारसे विशेष थे कि वह तो संसारकोही वांछित फल देता है और गिरिधरजी महाराज धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थोंके देनेवाले हुए और जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार और वेदका साक्षात् अर्थ भगवान्‌का ज्ञान है उसको यह भली प्रकारसे जानते थे. इन्होंने व्रजराज महाराजकी सेवामें वात्सल्यभावसे स्नेह लगाया था इनके दर्शन करनेसेही लोग पवित्र होते थ और यह जिस सभामें बैठते थे वह सभा शोभित हो

जाती थी. मानो उस सभामें भगवान्के प्रेमके अमृतकी वर्षा हो रही है. उनकी महिमा मैं कहांतक वर्णन करूं वह अपने समयमें एक अवधि थे.

तिपरदासजीकी कथा ९.

जातिके कायस्थ तिपरदासजी सेरगढके निवासी वात्सल्यभावसे भगवान्में प्रेम रखते थे. उनका शीतकी ऋतुमें वर्षमें दिन यह नेम था; श्रीनाथजी महाराजके लिये वस्त्र जरकसी अच्छी प्रकारसे तैयार करके भेजा करते थे. एक समय राजाने उनकी समस्त वस्तु ले ली और इनके पास कुछभी न रहा तब यह चिन्ता करने लगे कि अबके भगवान्के लिये बागा कहांसे बनाया जाय ; इसका कोई उपाय उनकी दृष्टि न आया और शीत अधिक पडने लगा तो यह विचारा कि उस सुकुमारको अत्यन्त सरदी लगती होगी. यह विचार कर अत्यन्त व्याकुल हो उच्च स्वरसे रुदन करने लगे और रोते २ अपने घरके भीतर गये और घरको बहुतही ढूंढा तो इनके हाथमें एक दावात आ गई तो यह उसको बेचनेके लिये बाजारमें गये तो एक रुपयेको बिकी तो इन्होंने उस रुपयेका एक कपडेका थान मोल लिया और कुसुंभी रंगवाया और जब भगवान्के लिये भेजनेको हुए तो यह विचारने लगे कि यह अत्यन्त मोटा कपडा उस सुकुमारके भेजने योग्य नहीं, यही चिन्ता करते २ व्याकुल हो गये. इसके पीछे कोई भगवान्का भक्त व्रजको जाने लगा; तो उसको वह कपडा देकर अत्यन्त नम्रतासे विनती कर कहा कि इस कपडेकी खबर गुसांईजीको न होने पावे क्योंकि यह कपडा तो उनके दासोंकेभी योग्य नहीं परन्तु तुम भंडारेमें डाल देना, यह मनुष्य वहांसे कपडा लेकर चला और भंडारीको जाकर वह वस्त्र दे दिया. उसने बेमनसे लेकर सब वस्त्रोंके बीचमें डाल दिया.

श्रीनाथजीको वह जडावल भेजी हुई अपने बाबाकी पहुँची तौ परन्तु भंडारेमेंसे उनको तबभी नहीं मिली, तब भगवान् सरदीके मारे कांपने लगे. गुसांईजीने उसी समय अतलसकी रजाई उढाये, परन्तु भगवान्का सरदी तबभी दूर न हुई फिर दुशाले इत्यादि उढाये, परन्तु जबभी जाडा न घटा, जब पुजारियोंने अग्नि प्रज्वलित कर उनके समीप रख दी और द्वार बंद कर दिया; परन्तु तौभी भगवान्की सरदी दूर न हुई; तब गुसांईजी विचार करने लगे और भंडारियोंसे बोले कि भाई यह सरदी नहीं है, यह तौ कोई भगवान्ने चरित्र किया है; यह तो कहो कि किस २ भक्तने भगवान्की शीतरक्षाके निमित्त वस्त्र भेजे हैं ? तब भंडारियोंने सबके भेजे हुए वस्त्र इनके समीप रख दिये तब गुसांईजीने उन सबको उढाया परतु कुछभी शीत निवारण न हुआ; फिर भंडारीको स्मरण हुआ और गुसांईजीसे बोला कि महाराज ! तिपरदास अत्यन्तही दरिद्री हो गया है. उसने एक अधिक मोटा थान भेजा है, वह थान हमने पौशाक बांधनेके निमित्त भंडारमें डाल दिया है. गुसांईजी बोले उसेभी अतिशीघ्र ले आओ; वह तुरन्तही उस थानको ले आया, गुसांईजीने उसका झूलना सावधान कर भगवान्को उढाया तो भगवान्की सरदी उसी समय दूर हो गई और भगवान्का हठ दूर हुआ. अब भक्तमालके बनानेवालेका वचन है कि भगवान्की प्रीति और भक्तिको विचार करके भगवान्में निश्चयही मन लगाना चाहिये. जो ऐसी भगवान्की कृपालुताको विचार करकेभी भगवान्में मन न लगा तो निश्चयही वह मंदभाग्य है.

अथ

इक्कीसवीं निष्ठा दास्यनिष्ठाकी महिमा।

(इसमें सोलह भक्तोंकी कथा है.)
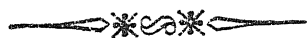
श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी पूर्ण चन्द्ररेखाको प्रणाम करके ऋषभदेव अवतारको दंडवत् करता हूं कि वह अवतार अयोध्याजीमें धारण करके ज्ञान और वैराग्यकी अन्तिम दशाको संसारमें प्रगट किया. दास्यनिष्ठाकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है? इसमें संदेह नहीं कि संसारसे उद्धारके निमित्त दासनिष्ठासे अधिक और कोई अवलम्बन नहीं है. यद्यपि भगवत्प्राप्तिके निमित्त औरभी निष्ठा है, परन्तु सब निष्ठाओंका परिणाम इसी निष्ठापर पहुँच जाता है जैसे सखा वात्सल्य है और प्रगटमें उसमें दासभाव मुख्य नहीं है, परन्तु जो मूल अभिप्रायपर दृष्टि दी जाय तो मूल उन निष्ठाओंकीभी दास्य-भावसे सम्बन्ध रखती है, सखा और वात्सल्य केवल मनकी रुचिसे चित्तके आकर्षणके निमित्त है, उनके अर्थ शरण होने और दास्य-भाव प्राप्त होनेहीके हैं, जब कि दोनों निष्ठावालोंका यह वृत्तान्त है तो और निष्ठा एक अंग और मिश्रित दास्यनिष्ठाकी स्वयंही हो गई और है. ब्रह्मस्तुतिमें भागवतमें लिखा है कि तभीतक सुख दुःख द्वैत आदि इसकी बुद्धिको चुरानेवाले हैं, तबहीतक घर कारागार है, तभीतक मोह और अज्ञानमें फँसा है, जबतक भगवान्का दास नहीं होता. भागवतमें यहभी लिखा है कि जिस भगवान्के केवल नाम लेने और सुननेसे यह प्राणी निर्मल होजाता है उसके दास होनेसे कौनसी पदवी नहीं प्राप्त होती? इस प्रकार अनेक वचन पुराणादिमें विख्यात और प्रसिद्ध हैं और यह निष्ठा ऐसी सहज और समवायीको

अंगीकार और प्राप्त है, कि जिस किसीसे पूछा जाता है तो अपनेको परमात्माका दास और ईश्वरको अपना स्वामी और अधिपति कहते हैं. सब छोटे बडोंका यह कहना सुनना स्वाभाविक है, किसी २ उपासकने जो शरणगातिको दासनिष्ठामें पृथक् वर्णन किया तौ उसका कारण यह है कि दास तौ दास्यता और सेवा टहलके करनेमें विवश और पराधीन है कि सब अवस्था और सब दशामें उसको अपने स्वामीकी सेवा करना उचित और मुख्य है. शरणागत यद्यपि दाससेभी अधिक सेवा और टहल करता है परन्तु दासकी समान उसपर आवश्यकीय सिद्धान्त नहीं कि सेवा और टहल करे. प्रसिद्ध देखने और सुननेमें आया है कि दास यदि अपने स्वामीकी सेवा टहल न करे तौ स्वामिद्रोही कहाता है और स्वामीभी प्रसन्न नहीं होता है और जो शरण आता है उसके ऊपर कोई सेवा टहल नियत नहीं परन्तु दासोंकी भांति निरन्तर सेवा और टहलभी करता है और प्रतिक्षण सन्मुख रहनेके कारण सेवाका कार्यभी शीघ्र हो जाता है दासनिष्ठाकी पद्धति अनेक स्थलमें लिखी है; तथा गुसांईजीने अयोध्याकाण्डमें दासनिष्ठाका भाव बहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया है. तात्पर्य यह है कि दोनों लोकका लाभ अर्थ धर्म काम मोक्षको मनसे दूर करके केवल अपने स्वामीकी सेवा और प्रसन्नताको सबसे मुख्य समझे, अपनेको सब प्रकार परवश अपने स्वामीके आधीन जानकर सुखदुःखमें हर्ष शोक न करे सुख स्वामीका दिया समझे और दुःख प्रारब्धभोगको जाने. विशेषकर जगत्की कथन यह है कि जो कोई बात दुःख और हानिकी आ जाती है, तो कहते हैं कि भगवान्की इच्छा ऐसीही थी, सो जानो कि अपने दासके दुःख और हानिके निमित्त भगवत्की आज्ञा कदापि नहीं होती, वह सदा अपने दासोंके निमित्त अच्छाही करता है; नहीं तो विचारना चाहिये कि उसके

क्रोधको तो ब्रह्मा काल यम आदिभी नहीं सह सकते. अपराधी मनुष्य क्या सहन कर सकता है? इस कारण भूलकर स्वप्नमेंभी किसी अपराधको दुःखके आनेसे कोईभी मनमें यह न लावे कि यह भगवत्‌की इच्छासे हुआ है. दासको जो सेवा टहल करनी चाहिये यह आठवीं सेवा महिमा सतरहवीं निष्ठामें लिख चुके हैं. उन सेवाओंका करना उचित और योग्य है, सेवा मानसी हो अथवा साक्षात् विग्रहकी, जबतक सेवा न करेगा जबतक दास्यताकी निष्ठा नहीं हो सकती. कारण कि दासका कार्य सेवा करनेका है, सैल सपाटा करनेका नहीं, जब उस सेवासे छुट्टी पावे तब अपने स्वामीके सामने विनय प्रार्थना स्तुति अपराध क्षमापनके निमित्त करे. उनके गुणचरित्र शोचकर उस आनंदमें मग्न रहे. इसके उपासकोंने इस निष्ठामें पांच रसोंमेंसे एक रस लिखा है सो रस विचारके अनुसार भगवत् सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्म परमात्मा करुणाकर दीनबंधु दीनदयाल भक्तवत्सल शरणागतपालक इस रसका विषय आलम्बन है और जो भक्त पहले हो गये वा अब है वा होंगे वे आश्रयावलम्बन हैं. तिलक माला तुलसीचिह्न धारण करना चरित्रोंका श्रवण, कीर्तन, शास्त्रोंके अनुकूल वर्तना, भगवत्सेवा टहलकी सामग्री एकत्र करनी, एकादशी आदि व्रत, सत्संग, भगवान्‌का उत्साह यह सब विभाव अनुभाव अर्थात् पहली और दूसरी सामग्री हैं. आठ प्रकारके सात्त्विक जो ग्रन्थके आरंभमें लिखे हैं अर्थात् तीसरी सामग्री वे सब इस रसमें अपनी प्रवृत्त करते हैं. चौथी सामग्री अर्थात् ३३ व्यभिचारियोंकी दश दशा जो वात्सल्यनिष्ठाकी भूमिकामें लिखी है इस दासरसमेंभी उतनीही हैं अधिक नहीं भगवच्चरणोंकी सेवा निश्चल प्रीतिका होना स्थायीभाव है और वह प्रीति ऐसी हो कि किसी प्रकारभी किसी कारणसे किसी क्षण न्यून न हो. जिस प्रकार गंगाका प्रवाह दिन रात बराबर चलता है. इसी प्रकार चित्तकी वृत्ति केवल भगव-

चरणोंमें लगी रहे. हे प्रभु हे दीनवत्सल हे करुणाकर हे पतित-पावन महाराज ! किस अवतरन और अवलम्बसे अपनी दशाके समाचार आपके समीपतक पहुँचाऊं कि मैं इस प्रकार दीन और दुःखित हूं. यदि चुप रहूं तो विना निवेदन दूसरा उपाय उद्धारका नहीं देखता हूं कारण कि आपके सिवाय ऐसा और कौन है जिसको पतित और अधम प्यारे हों. यदि कहो कि औरभी तो बडे २ देवता हैं उनके शरण जाओ तो हे प्रभो ! मुझे आपसे आशा है वह और कोई पूर्ण नहीं कर सकता और जब मैं आपसे अधिक किसीको कुछ नहीं समझता तो वे मुझपर कब प्रसन्न होंगे और एक वार्ता यहभी है कि सब अपनी सेवा और स्वार्थकी इच्छा करनेवाले हैं विना कारण दीनोंपर प्रसन्न होना यह वार्ता आपहीमें है. दूसरे देवताओंकी सेवामें तो वह जाय जिसे अपने शुभ कर्म और सब प्रकारकी सेवाका भरोसा हो, उनकी सभामें मुझसे अपराधीको कौन पूछता है, इस कारण मुझे तो न कोई स्थान जानेको है और न कोई ऐसा स्वामी दिखाई देता है न कोई दूसरा शरण है और आपके द्वारपर पडा हूं. जब कभी कुछ होगा आपहीके चरणारविंदसे होगा और निश्चयही आपके द्वारसे कोई पतित और पातकी निराश नहीं फिरा इस कारण मुझे निश्चय है कि मैं अपने मनोरथको प्राप्त हो जाऊंगा और एक विनती यह है यद्यपि मुझे मनोरथकी प्राप्ति अपने यत्नसे दुर्लभ है, परन्तु आपकी तनिकसी कृपासे दासोंमें मिल सकता हूं. केवल यही इच्छा है वह सभासमाज राज्याभिषेकका ब्रह्मादिकको आनन्द देनेवाला है; वह सर्वदा विघ्नरहित मेरे मनमें बसा रहे. भगवान्का वामन अवतार उस स्वरूपसे हुआ. जो विष्णु नारायण शंखचक्रगदाधारीका ध्यान शास्त्रोंमें लिखा है और शरणागतिनिष्ठामेंभी लिखा हुआ है कि जिस समय भगवान् राजा बलिके द्वारपर गये

और राजासे दान लिया, उस समयका भगवान्का रूप शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि. अत्यन्तही मनोहर परम शोभायमान छोटासा ब्रह्मचारीका स्वरूप जिसको देखकर सूर्य शीतल चंद्रमा लज्जित होकर छिप जाय. एक हाथमें तो जलका कमंडलु और कुशा और दूसरे हाथमें दंड लिये हुए, मुंजी तीन लडकी शोभित और छत्र छायाके निमित्त धरे राजा बलिके सन्मुख विराजमान हैं और संकल्प करा रहे हैं.

दोहा–या छबिसों बसिये हिये, नारायण भगवान।
मनवचसे नितही करैं, मिश्र तिहारो ध्यान॥

प्रह्लादजीकी कथा १.

भगवान्के दासोंमें प्रथम गिनने योग्य मनस्वी और संसारमें विख्यात दासनिष्ठा और भगवद्धर्मके अग्रणी प्रह्लादजी हुए कि, उनकी कथा सब पुराणोंमें श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, नृसिंहपुराण, महाभारतमें अच्छे प्रकारसे लिखी हुई है, इस कारण यहां तत्त्वकर लिखता हूं. जब हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यपके भ्राताको भगवान्ने वाराहरूप धारण करके मारा तौ हिरण्यकश्यप अचल राज्य होनेके निमित्त तप करनेके निमित्त पर्वतमें चला गया; पीछेमें राजा इन्द्रने इनके समस्त घरवारका नाश कर दिया उसकी स्त्री गर्भवती थी गर्भमें प्रह्लादजी थे सो उसकोभी पकडकर ले चला. फिर नारदजीने आकर इनको छुडाया और अपनी पाठशालामें रखकर इनको ज्ञानका उपदेश किया. वह उपदेश जो नारदजीने दिया था, सो निश्चयही प्रह्लादजीके लिये था और गर्भमें प्रह्लादजी सुनते थे; फिर जब बडे परिश्रम करनेसे हिरण्यकश्यप अपने स्थानपर आया तब उसने फिर अपना स्थान बना लिया और समस्त सामग्री इकट्ठी कर ली और त्रिलोकीके राज्यका अधिकारी होकर देवताओंको बंधमें डाल दिया.

इसके उपरान्त कितनेही दिनोंके पीछे प्रह्लादजी उत्पन्न हुए तब ब्राह्मणोंने हिरण्यकश्यपको आशीर्वाद दिया कि आजका दिन धन्य है. इस पुत्रके जन्मसे तुम्हारा घर पवित्र हुआ और आज तुम्हारा कुल वृद्ध परमधामका विभागी हो गया. हिरण्यकश्यपने स्नेह और प्यारसे प्रह्लादजीका लालन पालन किया; फिर जब इनकी अवस्था पांच वर्षकी हुई तो इन्होंने राज्यनीति सीखनेके लिये अपने गुरु शुक्राचार्यके पास धर्मशास्त्र पढनेके लिये भेजा. जब शुक्राचार्यने इनको पढाना प्रारंभ किया तो प्रह्लादजीने भगवान्के नामका उच्चारण किय तब गुरुने कहा अरे कुँवर ! तू किसका नाम लेता है; जिसका तू नाम ले रहा है वह तो तेरे पिताका शत्रु है; यदि जो तेरा पिता सुन लेगा तो तुझको दंड देगा. इस कारण अब तू उसका नाम भूल-करभी मत लेना. प्रह्लादजी बोले कि सब विद्याओंका पढानेका बल भगवान्के जाननेके निमित्त है, सो उसको छोडकर दूसरी विद्याका पढना उचित नहीं और मुझको अपने पिताका भय किंचित्भी नहीं है. प्रह्लादजीकी यह वार्ता सुनकर गुरुने उनकी मातासे कहला भेजा; परन्तु प्रह्लादजी अपने वचनपर दृढ रहे. एक दिन हिरण्य-कश्यपने प्रह्लादजीको अत्यन्त स्नेहके सहित गोदीमें बैठाकर बडे प्यारसे पूछा कि बेटे ! आजकल तुम क्या पढते हो ? प्रह्लादजीने उत्तर दिया कि पिता ! मैं रामनाम पढता हूं. हिरण्यकश्यप अत्यन्त क्रोध करके बोला कि यह मेरे शत्रुका नाम तुम्हें किसने पढाया है ? बेटे ! तू कभी भूलकरभी इस नामको मत लेना. प्रह्लादजी बोले पिता ! यही नाम सब नामियोंके नामका देनेवाला है और समस्त धर्मोंका धर्म और विद्याओंकी परम विद्या है पिताजी ! तुमभी उसी नामका उच्चारण और स्मरण किया करो. हिरण्यकश्यप यह सुनतेही अत्यन्त क्रोधित हुआ और अपने दासोंसे कहा कि इसको मेरे

सामनेसे ले जाओ और ले जाकर इसको दंड दो. उसी समय प्रह्लादजीको वहांसे इनके सेवक ले गये और अपने स्वामीकी आज्ञानुसार किया परन्तु प्रह्लादजीका बालभी बांका नहीं हुआ; तब अग्निमें जलानेकी आज्ञा दी, परन्तु तबभी कुछ न हुआ तब समुद्रमें डुबानेकी आज्ञा दी. जबभी यह न डूबे तो इनको पर्वतसे गिराया; परन्तु भगवान्‌ने तो समस्त संसारको उत्पन्न किया है, वह अपने भक्तोंके वशीभूत है इसी कारणसे उसने अपने भक्तकी रक्षा करी. तब हिरण्यकश्यप लज्जित हो गया और फिर गुरुजीके निकट पढनेके लिये भेजा तब प्रह्लादजीने समस्त पाठशालाके लडकोंको रामनामका उपदेश देना प्रारंभ किया और कहा कि यह संसार असार है और सब वस्तु नाशवान् हैं और भगवान्‌का नामही एक सार है सो सर्वदा उनके चरणोंमें मन लगाना कर्तव्य है और उसीमें सुख है और जो भगवान्‌में मन नहीं लगाता है वह अत्यन्त दुःखी होता है यह देह केवल भगवान्‌के भजनके निमित्त है; नहीं तो पशुपक्षीमें क्या भेद है? जो उपदेश नारदजीने मुझको दिया था, सोही मैंने तुमको सुनाया, यही उत्तम है कि भगवत् शरण होकर उन्हींका स्मरण और भजन किया करो. भगवान्‌को कुछ जाति और कुलका प्रयोजन नहीं, मैंभी तुम्हाराही सजाति हूं देखो भगवान्‌ने कैसे २ दुःखोंसे मेरी रक्षा करी है? प्रह्लादजीके ऐसे ज्ञानभरे वचनोंको सुनकर उन समस्त लडकोंके अंतःकरणमें भगवत्‌की भक्तिका बीज जम गया और उसी समयसे सब भगवद्भजन करने लगे; उसी समय गुरुजी आ गये और उन्होंने समस्त पाठशालाके लडकोंको रामनाम लेता हुआ सुना तो वह अत्यन्तही व्याकुल हुए और उसी समय हिरण्यकश्यपसे समस्त वार्ता निवेदन करी; तो हिरण्यकश्यप क्रोधित होकर मारनेके लिये खड्ग हाथमें लेकर उपस्थित हुए और प्रह्लादजीसे बोले कि, बता

अब तेरी रक्षा करनेवाला कौन है ? प्रह्लादजी बोले कि मेरी रक्षा करनेवाला वही एक भगवान् है जिसने समस्त संसारको उत्पन्न किया है और वह सबमें व्यापक है और वह निकटही है, हिरण्यकश्यपने कहा कि क्या वह भगवान् इस स्थानमेंभी है, उत्तर दिया कि हां निश्चय ही वह इस स्थानमें है; तब हिरण्यकश्यपने एक मुट्ठी स्तम्भमें मारी; तब बडा भयंकर शब्द हुआ; उसी समय भगवान्ने अपने भक्तकी रक्षा और सत्य वचन करनेके निमित्त नृसिंहरूप धारण करके वैशाख शुक्ल १४ को मध्याह्नसमय हिरण्यकश्यपकी मुल्तान-राजधानीमें प्रगट हुए हिरण्यकश्यपभी संग्राम करनेको सावधान हुआ तब परस्पर युद्ध होने लगा, युद्ध होते २ जब सायंकाल हुआ तो भगवान्ने हिरण्यकश्यपको पकडकर अपनी गोदीमें डाल लिया और उसके महलकी बीच देहलियोंमें डालकर अपने नखोंसे उसका उदर विदीर्ण कर डाला और उसको परमपद प्राप्त हुआ और समस्त वरदान ब्रह्माकी पालना भगवान्को बहुत रही, तब ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादि देवता भगवान्की स्तुति करने लगे और उसी समय आकाशसे जयजयशब्द होकर फूलोंकी वर्षा होने लगी. उस समय भगवान्का स्वरूप अत्यन्तही भयंकर और क्रोधित था, किसीको इतनीभी सामर्थ्य न हुई जो कि भगवान्के सन्मुख जाकर उनकी शांति करे. उसी समय प्रह्लादजीने जाकर दंडवत् कर भगवान्से प्रार्थना करी; कि हे प्रणतार्तिनाशक भगवन् ! आपकी महिमा वेद और ब्रह्माभी नहीं कह सकते. मुझ अधम और अज्ञान बालकसे तो उसका वर्णन किस प्रकारसे हो सकता है ? परन्तु मैं आपको कृपासिंधु और दीनवत्सल जानकर प्रार्थना करता हूं; इस आपके अत्यन्त अद्भुत स्वरूपसे समस्त देवता भय मानते हैं, सो आप कृपा कर इस समय उनका भय दूर कीजिये. भगवान् प्रसन्न होकर

बोले वत्स प्रह्लाद ! इस समय जो तुम्हारी इच्छा हो वही वर मांगो उसीको पूर्ण करूंगा. प्रह्लादजी हाथ जोडकर बोले कि हे नाथ ! मुझे आपकी भक्तिके अतिरिक्त कुछभी इच्छा नहीं है. मैं जब जन्म पाऊं तभी उस जन्ममेंभी आपके चरणकमलोंमें प्रीति बनी रहे. भगवान्‌ने कहा ऐसाही होगा. इसके उपरान्त फिर प्रह्लादजीको राजगद्दीपर सुशोभित कर अपने हाथसे तिलक किया उस समय भगवान्‌के स्वरूपका तेज ऐसा दीप्तिमान् था कि सहस्रों सूर्य यदि एकही वार उदय हों तोभी भगवान्‌के उस रूपकी कांतिको नहीं पहुँच सकते. भगवान्‌के मुखपर जगह २ रुधिरकी बूंद लगी हुई थीं नेत्रोंमें रक्त व्यापित था; जिह्वासे वारंवार अपने ओष्ठोंको चाटते थे मूंछें भूरी स्कंधको अयाल पीत और श्याम, दोनों हाथ बडे, सबल नख उग्र और चौडी छातीपर रुधिर और आंतोंकी माला विराजमान और पूंछ कटि ऊपरतक मस्तकपर चमरकी सदृश लहराती हुई ऐसे स्वरूपसे उस समय भगवान् प्रह्लादजीको अपनी गोदीमें बैठालकर राज्यतिलक करते हैं और उनके चारों ओर देवता स्तुति कर रहे हैं, आकाशसे दुंदुभी बज रही हैं, अप्सरागण नृत्य करतीं हैं, गंधर्व भगवान्‌के चरित्रोंका कीर्तन करते हैं. उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हो रही है. यह प्रगट है कि उस समय भगवान्‌का स्वरूप ऐसा न था कि कोई चिह्न सिंहका और कोई मनुष्यका हो, वरन ऐसा था कि सर्व स्वरूप भगवान्‌का कभी सिंहकी समान दीखता और कभी मनुष्यकी समान दृष्टि आता था यह वार्ता उस समय सब भगवान्‌में दृष्टि आती थी परन्तु भगवान्‌का भय सिंहकी सदृश था इसके उपरान्त भगवान् तो अंतर्ध्यान हो गये और प्रह्लादजी राज्य करने लगे. उनके राज्य न रहा और इनके राज्यमें न्याय और दंड इस प्रकारका था कि एक समय पर-

स्परमें प्रह्लादजीके पुत्र और श्रुतधन्वा ब्राह्मणकी एक स्त्री रूपवान्पर यह विरोध हुआ कि विरोचन तो उस स्त्रीको राजपुत्रके अभिमानसे लेना चाहता था और ब्राह्मण यह कहता था कि यह राजा है मेरे सामने इसका अधिकार कैसे हुआ ? इस स्त्रीका दावा प्रथम तो मेरा है फिर इसका निश्चय प्रह्लादजीपर रक्खा और परस्परमें यह सिद्धान्त हुआ कि जो राजाके समीप झूंठ हो वही मारा जायगा. प्रह्लादजीने पुत्रके स्नेहको कुछभी न विचारा और ब्राह्मणको सत्यवादी कहकर ब्राह्मणको वह स्त्री दिवा दी और अपने पुत्रको उसी समय मारनेकी आज्ञा दी. ब्राह्मण इस न्यायसे अत्यन्तही प्रसन्न हुआ और प्रसन्नताईसे प्रह्लादजीके पुत्रकी मृत्यु दूर करी. अब भगवान्की भक्तवत्सलताको विचारना उचित है कि हिरण्यकश्यप तो प्रथम राज्यसे देवतापर दंड करता रहा परन्तु भगवान्ने इसपर कभी क्रूर दृष्टि नहीं करी, फिर जब उसने भगवान्के भक्तोंको दुःख देना आरंभ किया तब तो भगवान् अपने भक्तको दुःख देना न सह सके और तत्कालही विना बुलाये आकर अपने भक्तकी सहायता करी. भगवान्के इस चरित्रसे यह शिक्षाभी होती है कि यदि पिताभी भगवान्के सन्मुख होनेमें निषेध करे तो वहभी त्यागनेके योग्य है; जिस प्रकारसे प्रह्लादजीने किया था.

अंगदजीकी कथा २.

राजा वालीके पुत्र अंगदजी जातिके बंदर ऐसे भगवान्के परम भक्त हुए कि यह बालअवस्थासेही अनेक प्रकारके सुख और राज्य शूरवीरता पराक्रम आदिकोंसे युक्त होकरभी मनकी वृत्ति भगवान्के चरित्रोंमें रखते थे और श्रीरामचंद्रजीने इनके पिताको इनके चाचा सुग्रीवकी इच्छासे मारा; परन्तु वालीके अंतःकरणकी वृत्ति भगवान्के

मार्गपर न हुई इसके अतिरिक्त भगवान् इसकी इस वार्तासे प्रसन्न हुए, वाली इस अधिकारके योग्य कब था जो भगवान्ने उसपर ऐसी कृपा करी. जिस समय सीतामहाराणीको ढूंढनेके समय और संग्राममें रावणके मारनेका जो श्रम और शूरता करी थी, वह कथा विस्तारपूर्वक रामायणमें लिखी है और कुछ संक्षेपसे मैं यहांपरभी लिखता हूं कि जब अंगदजी रामचंद्रजीके दूत बनकर लंकाको गये और इन्होंने प्रश्नोत्तर स्पष्ट दिये कि उस समय रावणकी जिह्वासे ऐसे निर्लज्ज वचन निकले कि जिस प्रकार और मनुष्य हैं उसी प्रकार तेरा स्वामी रामचंद्रभी है. जब अंगदजीने ऐसा कठोर वचन सुना तो वह क्रोधकी अग्निसे जलने लगे और उनका स्वरूप कालकी तुल्य दृष्टि आता था. सभामेंसे समस्त राक्षस भयभीत होकर भाग गये; जो रावण अपनी शूरताके समीप इन्द्रादिक देवताकाभी भय नहीं करता था सो इस समय भयभीत होकर चलायमान हो गया और शिरपरसे मुकुट गिर पडा. अंगदजीने उस मुकुटको रामचंद्रके निकटको उसी समय भेज दिया. इसके उपरान्त अंगदजी और रावणमें जो कुछ विवाद हुआ; सो रघुनंदन रामचंद्रजीके प्रतापको स्मरण करके रावणसे कहा कि यदि जो कोई तुममेंसे इस समय मेरे चरणको उठा देगा तो रामचंद्रभी सामान्य मनुष्योंकी समान होंगे और वह तुमसे फिर युद्ध नहीं करेंगे और मैंने सीताजीकोभी हार दिया, रावणकी सभामें जो इन्द्रजित इत्यादि बडे २ योधा विराजमान थे वह इस वार्ताको श्रवण कर उसी समय अंगदजीके निकट आकर उनके चरणको हटानेका परिश्रम करने लगे. परन्तु उनकी यह इच्छा फलवती न हुई. जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रीका मन कामकी बातोंसे कभी चलायमान नहीं होता. चाहे और किसीपर दुःख आ जाय परन्तु भक्तका मन अपने धर्मसे

कभी चलायमान नहीं होता. राक्षसोंने अनेक प्रकारके यत्न किये परन्तु इनका चरण पृथ्वीसे इस प्रकारसे न हटा जिस प्रकार कि विना विद्याके अज्ञान दूर नहीं होता. अंतको सब लज्जित होकर बैठ गये. अंतमें रावण अंगदजीके चरण उठानेके निमित्त उठा और चरण पकडनेको हुआ, तब अंगदजीने कहा कि अरे मूर्ख ! मेरे चरण पकडनेसे क्या होता है ? जाकर श्रीरामचंद्रजीके चरण पकड जो कृतार्थ हो जाय और दोनों लोकोंके सुखोंकी प्राप्ति हो. अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया और सिंहासन पर जा बैठा. अंगदजीको भगवान्‌की कृपालुता और अपने दासभावका ऐसा विश्वास था कि जिस समय रावणसे चरण हटानेकी प्रतिज्ञा की थी उस समय कुछभी किसी प्रकारकी शंका न की और कहा कि कोई मेरा चरण पृथ्वीसे उठा देगा, मैं जानकी हार दूंगा उस ईश्वरका प्रताप ऐसा है कि, वह एक क्षणमें तृणको वज्र और वज्रको तृण कर सकता है फिर ऐसा कौन है जो भक्तके संकल्पको उठा सके. लंकाविजय होनेके पीछे जब श्रीरामचंद्रजी अयोध्याको पधारे और जब राजसिंहासनपर सुशोभित हो गये तब अंगदजीभी अपने स्वामीकी आज्ञानुसार अपने स्थानको गये और आनंदसहित भगवान्‌का भजन करने लगे.

दोहा—मेरी भवबाधा हरो, राधानागर सोय ।
जाके तन जाई परे, श्याम हरित द्युति होय ॥

पीपाजीकी कथा ३.

पीपाजी ऐसे भगवान्‌के भक्त हुए उनकी भक्तिके प्रतापसे पशुभी भगवच्छरण हो गये और भक्तोंकी भक्तिके गुणोंको जाननेवाले हुए और समस्त संसारको भक्त कर दिया और यह गाम रोहगढके राजा

और प्रथम दुर्गाके सेवक थे. एक समय इनके स्थानपर भगवान्‌के भक्त आये तब इन्होंने उनको सब वस्तु इच्छापूर्वक दिवा दी; तब उन्होंने अत्यन्त प्रीतिसे रसोई तैयार कर भगवान्‌को भोग लगाया और भगवान्‌के आगे प्रार्थना करके बोले कि हे भगवन्! ऐसी कृपा करो कि जो यह राजा किसी प्रकारसे भक्त हो जाय, फिर रात्रिके समय किसीने राजाको स्वप्न दिया कि तू कैसा मूढ है जो भगवान्‌से विमुख होकर मुक्तिकी इच्छा करता है, फिर एक बडा भयंकर रूप प्रगट हुआ और राजाको पलंगपरसे पृथ्वीपर पटक दिया. तब राजाने उसी समय भगवान्‌की भक्तिमें मन लगाया और उसने समस्त संसारके व्यवहारोंको वृथा माना. इसके पीछे दुर्गाजी प्रगट हुई; तब पीपाजी दंडवत् कर बोले कि हे दुर्गे! भगवद्भक्ति किस प्रकारसे प्राप्त होती है ऐसा उपाय मुझको बताना चाहिये. दुर्गाजीने उत्तर दिया कि जब तुम रामानंदजीको अपना गुरु करोगे तब तुमको भगवद्भक्ति मिलेगी यह कहकर दुर्गाजी तो अन्तर्ध्यान हो गई और फिर पीपाजीको रामानंदजीके दर्शनोंकी ऐसी अभिलाषा हुई कि इनको मनुष्य बावला कहने लगे. अंतको यह काशीपुरीको गये और फिर वहां रामानंदजीके पास आये तो रामानंदजीसे इनकी वार्तालाप हुई तब रामानंदजीने इनको उत्तर दिया कि, यह स्थान तो संतोंका है यहांपर राजाका काम नहीं. पीपाजीने यह सुनकर उसी समयसे राजपाट समस्तही त्यागन कर दिया और ब्राह्मणको दान देकर फिर आपने कहा कि अब मैंभी भिक्षुक हो गया. तब रामानंदजीने कहा कि तुम कूपमें गिर पडो उनकी ऐसी आज्ञाको श्रवण कर उसी समय कूपमें गिरनेके निमित्त चले तो रामानंदजीने इनको पकड लिया और अपने निकट बैठाकर इनको अपना चेला किया और इनको भगवान्‌की भक्ति देकर कहा कि, अब तुम अपने स्थानको जाओ. वहांपर प्रसन्नतासहित

साधुओंकी सेवा करते रहो. पीछे जब एक वर्ष व्यतीत हो जायगा और तुम्हारी सेवाको हम जानेंगे, तब हमभी समस्त हरिभक्तोंको अपने साथ लेकर तुम्हारे स्थानको आवेंगे. पीपाजी ऐसी आज्ञाको श्रवण कर उसी समय अपने स्थानको गये और वहां जाकर इन्होंने भगवद्भजन और साधुओंकी सेवा ऐसे एकाग्र मनसे करी कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता. इसके उपरान्त जब इनको इसी प्रकारसे एक वर्ष व्यतीत हो गया. तब रामानंदजीने अपने आगमनका इनके पास पत्र लिखकर भेजा और फिर कबीरदास इत्यादि चालीस शिष्योंको अपने साथ लेकर उनकी नगरीके निकट पहुँचे तो उसी समय पीपाजी सवारी पालकी इत्यादि लेकर अपने गुरुके निकट आये समस्त भक्तोंको साष्टांग दंडवत् करी और इनके आगमनकी खुशीमें बहुतसा धन और वस्त्र ब्राह्मणोंको दान किया और फिर उनको अपने स्थानपर लाये और उनकी सेवा इस प्रकारसे करी कि उसका फल बहुतही शीघ्र प्राप्त हुआ फिर बहुत दिनोंके पीछे रामानंदजीने द्वारिकाजीके जानेका संकल्प किया तो पीपाजी इनके वियोग होनेसे व्याकुल होने लगे, तब रामानंदजीने कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करो या तो हमारे साथ साधुरूप धारण कर द्वारिकाजीको चलो अथवा यहीं रहो. पीपाजीने उस समय राज्य त्याग दिया और अपने गुरुके साथ हुए, तब पीपाजीके जानेके दुःखसे बारह रानियेंभी इनके साथ चलनेको सन्नद्ध हुई तो पीपाजीने उनको समझाया और मार्गका श्रम तथा भय दिखाया परन्तु उन्होंने एक न माना; तब पीपाजीने कहा जो तुम्हारी ऐसीही इच्छा है तो इन वस्त्राभूषणोंको तो त्यागन कर दो और कंबलको लेकर साथ २ चलो. ग्यारह रानी तो अपने पतिकी ऐसी आज्ञाको सुनकर अपने स्थानको चली गई परन्तु उसमें सीतानामवाली सबसे छोटी रानी वस्त्राभूषणोंको त्यागन

कर कंबलको लेकर अपने पतिके संग हुई. पीपाजी बोले कि इस कंब-लकोभी दूर कर तब रानीने उसकोभी त्यागन कर दिया. यह देखकर रामानंदजीको रानीपर दया उत्पन्न हुई और पीपाजीसे बोले कि उस-पर आपहीकी कृपा है; परन्तु इसका रहना हमारे साथ तो योग्य नहीं. यदि इच्छा हो तो साधुओंके संग रहे तब पीपाजीने रानीको ज्ञान देकर तथा संपत्ति देकर रामानंदजीके कहनेसे रानीको साथ लिया और फिर आप चले तो एक ब्राह्मणभी उनके संग २ चला; तब इन्होंने उसको अपने साथ चलनेसे रोका तो उसने उसी समय विष खाया और मर गया. यह चरित्र देख रामानंदजी बोले कि कलंक तो वृथाही लगा किसी प्रकारसे इसको फिर जीवित करना चाहिये. यह विचार कर उसके मुखमें भगवान्का चरणामृत डाला तो वह उसी समय जीवित हो गया और फिर इनके साथ २ चला, फिर इनका सब समाज द्वारिकाजीमें पहुँचा और भली प्रकार दर्शन इत्यादि कर फिर काशीजीको चले; परन्तु पीपाजी उनकी आज्ञासे द्वारकाहीमें ठहर गये. पीपाजीको एक समय श्रीकृष्ण महाराजके दर्शनोंकी अभिलाषा हुई तो आप समुद्रमें कूद पडे. भगवान्ने एकको रक्षाके लिये भेजा और फिर इनके ऊपर कृपा कर आप गये और इनको अतिप्यारसे अपने महलमें ले गये. पीपाजी भगवान्के दर्शन कर उनके आनंदमें ऐसे मग्न हुए कि सात दिन इनको एक क्षणकी समान व्यतीत हो गये; तब भगवान्ने इनको जानेकी आज्ञा दी; तब पीपाजी हाथ जोडकर बोले कि हे भगवन्! आप मुझको अपने समीपसे और किस स्थानपर भेजते हैं? भगवान् बोले कि तुम जिस स्थानपरभी रहोगे वहांही तुमको मेरा दर्शन होता रहेगा और जो तुम न जाओगे तो यह कलंक लगेगा कि भगवद्भक्त समुद्रमें डूब गये. सो इसी कारणसे तुम जाकर उन मनुष्योंके संदेहको

निवारण करो. पीपाजी भगवान्‌की ऐसी आज्ञाको सुनकर लज्जित होकर चल दिये और भगवान् अपने भक्तके स्नेहके वशीभूत होकर उनके पहुँचानेके लिये आये. पीपाजी अपनी स्त्री सीताके सहित भगवान्‌के वियोग होनेसे व्याकुल होकर समुद्रके तटपर आये. जिस प्रकार जलके विना मछली व्याकुल होती है वही दशा भगवान्‌के वियोगसे उस समय इनकी थी, इनका मुख सूखा था और वस्त्र भीज रहे थे यह देखकर समस्त मनुष्योंको आश्चर्य हुआ और उसी समय सबके हृदयमें भगवद्भक्तिका विश्वास हो गया और फिर पीपाजीके चरणोंमें गिर पडे जो छाप भगवान्‌ने चलते समय पीपाजीको दी थी सो इन्होंने पुजारियोंको दी और कहा कि जिसके शरीरपर तुम छाप लगा दोगे वही मनुष्य भगवान्‌को प्राप्त होजायगा और फिर जन्म न पावेगा. जब पीपाजीका ऐसा प्रताप समस्त संसारमें विख्यात हुआ तो इनके निकट मनुष्योंके समूहके समूह आने लगे तब सीता बोली कि स्वामी ! अब इस स्थानपर ठहरना योग्य नहीं, चलो कोई और स्थान ढूंढेंगे; तब यह वहांसे चल दिये और कोई छः मंजिल चले होंगे कि इनको पठानोंकी सेना मिली और उन्होंने सीताको स्वरूपवती देखकर छीन लेनेका विचार किया तो सीताने उसी समय भगवान्‌का स्मरण किया तो भगवान् तत्कालही आये और इन नीचोंको दंड देकर सीताको आनंदसे ले आये. तब पीपाजीने सीतासे कहा कि तुम अबभी घर चली जाओ तुम्हारे साथ रहनेसे बहुतसे विघ्न होते हैं. सीताजीने उत्तर दिया कि महाराज ! आपके विचारसे कोनसा विघ्न दूर हुआ कि जिसके कारण भजनमें विघ्न पडा हो और ऐसा समय कोनसा हुआ है जो भगवान्‌में आपकी सहायताके निमित्त न पधारे हों. मुझे और आपको भगवान्‌में दृढ भरोसा और विश्वास हो गया है; इससे विशेष ज्ञान देना और बात है. पीपाजी सीताके

ऐसे वचन सुनकर अत्यन्तही प्रसन्न हुए और दूसरे मार्गसे चले. उस मार्गकी ओर सिंह रहता था इनको देखतेही वह धावमान हुआ तब पीपाजीने उसको अपने समीप बुलाया और अपना शिष्य करके भगवान्की भक्तिका उपदेश दिया और उसने उसी समयसे भगवान्का भजन करना ग्रहण किया, सो वहां अबतक यही रीति विख्यात है कि सिंह किसी साधु तथा ब्राह्मणको नहीं मारता फिर यह वहांसे चलकर और किसी ग्राममें आये; वहांपर शेषशायी महाराजका मंदिर था. बाजारमें लाठियें बिक रही थीं; उनको देखकर एक धनीसे इन्होंने लाठी मांगी तो वह क्रोध कर बोला कि वनमेंसे जाकर काट लाओ. पीपाजीने उन समस्त लाठियोंको हरा २ वनकी समान कर दिया फिर उसमेंसे एक लाठी काट ली; वहांसे चलकर एक चिवडनाम भक्तके स्थानपर आये तो वह स्त्रीसमेत इनके दर्शन करके अत्यन्तही प्रसन्न हुआ, उसके घरमें कुछभी द्रव्य नहीं था इस कारण वह चिन्ता कर अपनी स्त्रीसे बोला कि तू अपना लहँगा दे दे तो उसको बेंचकर इनकी शुश्रूषा करूं. उस स्त्रीने तत्कालही लहँगा उतार दिया, यह उसको ले बेंचनेके लिये गये और उसको बेंचकर रसोईकी सामग्री लाये. स्त्री जो नग्न हो गई थी सो लज्जाके मारे घरके कोठेमें जा छिपी इसके पीछे जब रसोई तैयार हो गई और पीपाजी भोग लगानेके निमित्त बैठे तो उन्होंने चीघडभक्तसे कहा कि तुम अपनी स्त्रीकोभी ले आओ क्योंकि इस समय प्रसाद तैयार हो गया है; वह बोला महाराज ! स्त्री तो शीतप्रसादका भोजन करेगी. पीपाजी अपनी स्त्री सीतासे बोले कि तुम घरमें जाकर लिवाकर ले आओ. पीपाजीकी आज्ञानुसार सीता गईं तो उन्होंने जाकर देखा कि वह कोठेके एक कोनेमें छिपकी हुई बैठी है. यह देखकर बोली कि तुम्हारे छिपकर बैठ रहनेका क्या कारण है ? यह उन्होंने उत्तर दिया कि

शरीरपर कपडेका होना न होना परम आनंदका कारण नहीं परंतु इस संसारमें भगवद्रूपका चिंतवन और साधुओंकी सेवा परम सार है; सो उसीका होना उचित है. सीताजी चतुर थी इनके कहनेका समस्त अभिप्राय जान गई, उनकी भक्तिके सामने अपनी भक्तिभी तुच्छ जानी. तत्काल अपना आधा कपडा उनको देकर उस स्थानसे बाहरको लाई और उनको अपने समीप बैठाकर भोजन किया इसके पीछे फिर सीताजीने समस्त वृत्तान्त पीपाजीसे कह सुनाया और उनकी सेवासे प्रसन्न हो विचारने लगी कि स्वामी ! कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे इनके घरमें बहुतसा धन हो जाय. यह विचारकर दोनों जने बाजारमें जा बैठे, इनके सुन्दर स्वरूप और अवस्थाको देखकर बहुतसे मनुष्य इनके निकट आये और जब इनके समीप बैठे उनके मनकी कामना निष्फल हुई. फिर आंख उठाकरभी न देख सके फिर इनसे पूछा कि तुम कौन हो और कहांसे आये हो तो इन्होंने उत्तर दिया कि हम वारमुखी हैं हमारे घरबार कुछभी नहीं. यह जो मनुष्य हमारे साथ है सो डोम है, वह मनुष्य सुनकर चुप हो गये और इनसे हँसीकी वार्ता कुछभी न कर सके. फिर बहुतसा अन्न और धन इनकी भेंट किया. पीपाजीने उस सब धनको चिघडभक्तके स्थानपर पहुँचा दिया और फिर जैसे थे वैसेही रह गये. इसके उपरान्त फिर पीपाजी चिघडभक्तसे आज्ञा लेकर उस स्थानसे चले और भूंख प्यास आदि दुःखोंको सहन करते हुए ढोडाशहरमें आये यहांपर ठहरकर यह स्नान करनेके निमित्त तालावपर गये तो किनारे पर मोहरोंका भरा हुआ घडा एक पडा था. सो उसको देखकरभी इन्होंने उसके लेनेकी इच्छा न करी और स्नान करके चले आये और रात्रिके समय उसका वृत्तान्त सीताजीसे कहा. सीताजीने उसको सुनकर उत्तर दिया कि अब फिर उस तालावपर मत जाना. दैव-

संयोगसे उस समय चोरोंने उनकी यह वार्ता होती हुई सुन ली. वे तत्कालही तालावपर गये जाकर उस घडेको देखा तो उसमें सर्पोंका शब्द होता हुआ सुनाई आया. उसको देखकर परस्पर कहने लगे कि इस साधुने हमारे मारे जानेके निमित्त सर्पोंके स्थानमें हमको मोहरें बताईं; इस कारण यह सर्पोंका भरा हुआ घडा उसीके स्थानमें डालना चाहिये. यह विचारकर उस घडेको उठाकर ले गये और उस साधुके स्थानमें डाल दिया. उसमेंसे ७०० मोहरोंकी थैली निकली. एक २ मोहर पांच २ तोले भरकी थी. पीपाजीने भगवान्की इच्छा समझकर उसको ले लिया और फिर भगवान्का उत्साह और भंडारा किया. समस्त धन साधुओंकी सेवामें लगा दिया; उस समय उस देशका राजा शूरसेन था, उसने जब पीपाजीकी भक्तिकी महिमा सुनी तो वह इनके दर्शनोंके निमित्त आया और इनको देखतेही इनके चरणोंमें गिर पडा और प्रार्थना करके बोला कि, महाराज! मुझेभी मंत्रका उपदेश करो और साधु बनाकर अपनी समान कर लो. पीपाजीने राजाके ऐसे वचन सुनकर उसको बहुत समझाया और साधु होनेका निषेध किया परन्तु राजाने एक न माना और अत्यन्तही हठ किया. पीपाजीने जब देखा कि यह किसी प्रकार नहीं मानता; तो उससे बोले कि राजन्! प्रथम तो तुम अपना समस्त धन और स्त्री हमारे अर्पण करो. राजाने उसी समय समस्त धन और स्त्री लाकर इनके समीप उपस्थित करी. पीपाजीने उसकी यह परीक्षा कर फिर उसको मंत्रका उपदेश किया और पीछे उसको रानी देकर कहा कि तुमको हरिभक्तोंसे परदा करना कदापि योग्य नहीं और जो कुछ राजाने इनकी भेंट किया था उसमेंसे कुछ थोडासा रख लिया. और शेष जो रहा सो सब राजाको लौट दिया. राजाके कुटुम्बियोंको जब यह समाचार ज्ञात

हुआ तो वह अप्रसन्न हुए और पीपाजीके साथ वैरभाव करने लगे. इसके पीछे एक बनजारा आया और उसने बैल लेनेकी इच्छा करी. तब राजाके कुटुम्बियोंने उसको बहका दिया और कहा कि पीपाजीके पास बहुत उत्तम बैल है. यह सुनकर वह बनजारा पीपाजीके निकट आया और रुपयोंकी थैली उनके सामने रखकर बोला कि मैं नई उमरका युवा अवस्थाका बैल लेनेके लिये आया हूं. पीपाजी तत्का-लही उन दुष्टोंकी दुष्टताको जान गये और उस बनजारेसे बोले कि इस समय बैल चरनेके लिये गया है. जब वह आ जायगा तब आकर ले जाना. यह सुनकर बनजारा रुपयोंको उन्हींके पास धरकर चला गया. पीपाजीने उन रुपयोंका भंडारा कर दिया और प्रसन्न हो साधुओंकी सेवा करी. जिस समय साधुओंका भंडारा हो रहा था उसी समय बनजारा आया और बोला कि महाराज! बैल लाओ. पीपाजी बोले कि यह बैल तुम्हारे सामने उपस्थित है यह परम धाम-तक पहुँचा देते हैं; सो इनमेंसे जिसकी तुम्हारी इच्छा हो सोही ले जाओ. बनजारा उसी समय भगवद्भक्तोंके दर्शन करके पीपाजीके शरण हो गया और पीपाजीके भंडारेको देखकर आपनेभी भंडारा किया और अपनी ओरसे अत्यन्त महीन वस्त्र एक २ साधुओंको भेंट किया. एक दिन पीपाजी घोडेपर सवार होकर स्नान करनेके निमित्त गये थे सो उतरकर घोडेकी लगाम छोड दी. दुष्टोंने उस घोडेको चुरा लिया और जाकर अपने घरपर बांध दिया. जब पीपाजी स्नान कर चुके और चलनेके लिये विचार किया तो उसी समय घोडा आ उपस्थित हुआ. मानो कोई अभी इनके लिये सजाकर लाया है. इसके उपरान्त एक समय पीपाजी हरिभक्तोंके समाजमें गये थे और इनके स्थानपर उस समय साधु आये. इनके घरमें उस समय कुछभी सामग्री नहीं थी, सीताजीको बडी चिन्ता हुई और फिर बाजारको

गई और एक बनियेसे रात्रिमें आनेका कोल करा और उससे जिनस लेकर अपने स्थानपर आई दैवयोगसे उस समय पीपाजीभी आ गये और हरिभक्तोंके दर्शन कर सीताजीकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हुए और सीताजीसे पूछा कि यह सामग्री कहांसे लाई ? सीताजीने समस्त वार्ता सत्य २ कह सुनाई और जब रात्रि हुई तौ शृंगार करके वचन पूरा करनेके लिये बनियेकी दुकानको चली. उसी समय वर्षा होने लगी तब पीपाजीने उनको अपनी पीठपर चढा लिया और उस बनियेकी दुकानको ले गये. जिस समय सीताजीने उस बनियेकी दुकानमें अपना चरण धरा तो उस बनियेके सहित दुकानकी समस्त वस्तुएँ पवित्र हो गई. फिर जब उस वणिक्की दृष्टि सीताजीके चरणोंपर पडी तो उसको बडा आश्चर्य हुआ और पूछा कि माता ! तुम्हारे चरण जो सूख रहे हैं सो तुम किस सवारीमें आई हो ? सीताजीने उत्तर दिया कि मुझे मेरा स्वामी पीठपर चढाकर लाया है और वह द्वारपर खडा है. बनियां उसी समय दौडकर गया और इनके चरणोंमें गिर पडा और बोला कि महाराज ! मेरे ऊपर कृपा करो. पीपाजी बोले कि तुम लज्जित किस कारणसे होते हो ? अपनी दुकानके भीतर जाकर आनंद करो. तुमने तो वह रुपया हमको दिया है कि जिसके कारणसे भाई परस्पर लडते हैं. बनिया बहुतही लज्जित हुआ और लज्जित होकर रुदन करने लगा; तब पीपाजीको दया उत्पन्न हुई तो उसको मंत्रका उपदेश किया और आवागमनके दुःखसे छुटा दिया. जो लोग पीपाजीसे शत्रुता करते थे उन्होंने यह बात राजातक पहुँचाई. ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि यह बडी अनुचित बात है. राजा तो मूर्खही था उसने अपनी निन्दा समझकर निश्चयही छोड दिया. पीपाजीको उसका निश्चय छूट जानेका जब समाचार मिला तो विचारा कि सबको दुःख और कर्मोंसे गुरु छुटा

देते हैं, फिर जब गुरुहीमें श्रद्धा न होगी तो फिर क्या दशा होगी? इस अज्ञानतासे राजाका वर्ण और इष्ट भ्रष्ट हो जायगा. जिस प्रकारसे उसका अज्ञान दूर हो सो उपाय करना चाहिये. इस कारण राजाके घरपर गये और अपने आनेकी खबर राजाको कराई. राजाने कहा कि जाकर कह दो कि मैं पूजा करता हूं. पीपाजीने कहा कि राजा बडा अज्ञानी है, वह तो चमारके घरपर जूता लेनेके लिये गया है और नाम पूजाका लेता है. यह सुनकर राजा शीघ्रही उठ खडा हुआ और नंगे पैरों बाहरको आया तो इनको देखतेही इनके चरणोंमें गिर पडा. पीपाजीने विचारा कि राजा निर्बुद्धि है इस कारण इसको कुछ ज्ञान देना उचित है, इस कारण राजाने कहा कि जो तेरी रानी बांझ है उसको तू मेरे निकट ले आओ कि तैंने हमारी भेंट करी थी. राजा संसारमें निन्दित और लज्जाका शोच करता हुआ चला; तब उसने घरके चौकमें सिंहको बैठा देखा तो पीछे फिरकर चला आया और बोला कि अब मैं यही मिसले दूंगा, तब उसको पीछेभी सिंह दीखा; तब राजा समझ गया कि यह चरित्र पीपाजीका है. फिर रानीके पास गया तो उसकी गोदमें एक अत्यन्त सुकुमार लडकेको देखा, तब इसको पीपाजीकी भक्तिके प्रतापपर विश्वास हुआ और आकर साष्टांग दंडवत् करी और हाथ जोडकर गद्गद वाणीसे बोला; महाराज मुझ मंदबुद्धिने आपकी महिमाको नहीं जाना था. दया करके अब मेरे ऊपर कृपा करो. पीपाजी उस लडकेके स्वरूपसे प्रगट हुए. राजाने अति लज्जित होकर समस्त वृत्तान्त दोशियोंके बहकानेका वर्णन किया; तब पीपाजी बोले रे मूढ! उस दिनका निश्चय स्नेह स्मरण कर जिस समय तू हमारा चेला हुआ था, नित्य यह है कि दिन २ स्नेह भगवान् और गुरुमें अधिक होता और जो विमुख होता है सो नरकको जाता है,

फिर हरिभक्तोंको भगवद्रूप जानकर उनकी सेवा करनी. इसके करनेसे दोनों लोककी सिद्धि हो जाती है; इसी प्रकारके औरभी अनेक उपदेश दिये; सो राजाके मनमें वस गये. वह प्रथमहीकी समान भगवद्भजनमें तत्पर हुआ इसके पीछे पीपाजी अपने स्थानको चले गये. एक मनुष्य साधुका स्वरूप बनाये कपटी पीपाजीके पास आया और प्रार्थना कर बोला कि महाराज! तुम मेरे ऊपर कृपा कर एक रात्रिके लिये सीताजीको मुझको दे दो. पीपाजीने उसी समय सीताजीको दे दिया; उसने विचारा कि इस स्त्रीको जो रात्रिमें मैं यहांसे दूर ले जाऊंगा तो यह फिर नहीं आवेगी, इस कारण सारी रात आप दोडा और उस स्त्रीकोभी दोडाया, फिर जब प्रभात हुआ तो सीताजीने चलनेको मना किया वह साधु बोला कि चलो. सीताजीने उत्तर दिया कि स्वामीकी आज्ञा एकही रात्रिकी थी; साधुने इच्छा करी कि इनको सवारीपर चढाकर ले जाऊं. इस कारण सवारी ढूंढनेके निमित्त नगरमें गया तो वहांपर समस्त स्त्रियोंको सीताजीकेही स्वरूपमें देखा; तब वहांसे चला आया और सीताजीके चरणोंमें गिर पडा फिर विनती कर बोला कि माता! चलो. मैं तुझे शीघ्र तुम्हारे स्वामीके समीप पहुँच आऊं. यह कह सीताजीको साथ लेकर पीपाजीके समीप आया और उनके चरणोंमें गिर पडा. फिर अति विनती कर प्रार्थना करी और बोला कि भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा करो और मुझको अपना सेवक जानो. पीपाजीने उसकी ऐसी अवस्था देखकर उसको अपना शिष्य कर लिया और काम क्रोधादिसे छुटा दिया, इसही प्रकारसे चार मनुष्य कामी और विषयी साधुका स्वरूप बनाकर पीपाजीके निकट आये और इनसे सीताजीकी याचना करी, इसके पीछे जब रात्रि हुई और सीताजी शृंगार करके कोठेमें गईं तो इसके पीछे २ वह साधुभी

गये तो क्या देखते हैं कि एक सिंहिनी मारनेके लिये बैठी है और अत्यन्त भयंकर स्वरूप है. यह देखकर यह कपटी साधु भयभीत होकर पीपाजीके पास आये और बोले कि तुम कैसे साधु हो जो स्त्रीकी जगह सिंहिनीको बैठा रक्खा है. पीपाजीने उत्तर दिया कि वह तो सीताजी है परन्तु " जाके रही भावना जैसी । प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ॥ " इस कारण जैसा तुमने अपने मनमें विचार किया है वैसाही वह तुमको दृष्टि आती है. यदि जो तुम्हारा अंतःकरण शुद्ध होता तो तुमको सीताजीके दर्शन होते. इसके पीछे पीपाजीके इस ज्ञानसे उनका अज्ञान दूर हो गया फिर सीताजीके मातृभावसे दर्शन किये; तब सीताजीका परम मनोहर स्वरूप दृष्टि आया. फिर उसी समय पीपाजीके चेले हो गये और भगवान्की भक्ति कर साधुताको प्राप्त हो गये. इसके उपरान्त एक गूजरी दही बेंचनेके लिये आई तो साधुओंने उसको देखकर पीपाजीसे लेनेकी प्रार्थना करी, तब पीपाजीने उस गूजरीके दहीको लेकर भली प्रकारसे साधुओंकी सेवा करी और उस गूजरीको बहुतसा द्रव्य दिया. फिर एक ब्राह्मण दुर्गाका उपासक था सो उसके घरपर कुछ थोडा भगवद्भोग भेजा और फिर आपने भोजन किया और उस ब्राह्मणकोभी कराया, उसकीही कृपासे ब्राह्मणको दुर्गाके प्रत्यक्ष दर्शन हुए और शुद्ध अंतःकरणसे भगवद्भक्त हो गया और उसने दुर्गाकी मूर्तिको उठाकर भगवान्का आराधन किया; उसी समय एक स्वरूपवती तेलन " तेल लो ! तेल लो " कहती हुई फिर रही थी. पीपाजीने कहा कि यदि इस मुखसे तू राम २ कहती तो अच्छा था. तेलनको क्रोध आ गया और बोली कि जब कोई मर जाता है उस समय रामनाम कहते हैं; फिर जब तेलको बेंचकर स्थानपर गई तो अपने पतिको मरा हुआ देखा तो वहांसे उलटकर पीपाजीके समीप आई, और पीपाजीके चरणोंमे

गिर पडी और समस्त कुटुम्बके सहित रामनाम कहनेका पण किया; तब पीपाजीने उसके पतिको जीवित कर दिया. साधुओंकी सेवाके निमित्त कहींसे एक भैंस आ गई थी सो उसको चोर ले गये; तो पीपाजी भैंसके कटरेको लेकर पीछे २ चले और उन चोरोंसे जाकर बोले कि यह भैंस विना पुत्रके दूध नहीं देगी, सो तुम इसकोभी अपने साथ २ ले जाओ. यह सुनकर चोर लज्जित हो गये और भैंसको पीपाजीके स्थानपर बांध गये; फिर एक समय कहींसे एक गेहूंकी गाडी भरे हुए और रुपयोंकी थैलियें आ रहे थे सो उस गाडीको धाडेतियोंने लूट लिया. पीपाजी उनको रुपये देने लगे कि रुपयेके विना रसोईका कुछभी सामान न होगा; यह सुनकर लठैतोंने गाडीको ज्योंका त्यों दे दिया और इनकी शरण हो गये. फिर एक समय पीपाजीने किसी महाजनका धन साधुओंकी सेवामें लगा दिया; वह महाजन पीपाजीसे नित्य प्रति विवाद किया करता और पीपाजी उसको आज कल कर देते. एक दिन वह महाजन क्रोधित होकर पीपाजीके पास अपने हिसाबकी वहीको ले गया और जब खोलकर देखा तो वही सफेद हो गई. यह देखकर अत्यन्तही लज्जित हुआ तब हाकमने उसको दंड देनेका विचार किया; तब पीपाजीको दया उत्पन्न हुई और बोले कि वास्तवमें रुपया तो इसका हमको देना है परन्तु इसने जो हमसे झगडा करा था इस कारण भगवत्इच्छासे यह वही सफेद हो गई. यह कहकर उस बनियांको छुटा दिया. बनियां पीपाजीके चरणोंमें गिर पडा और अत्यन्त रुदन और शोक करता हुआ अत्यन्त दीनतासे बोला कि महाराज ! ऐसी कृपा करो कि जो मेरी वही फिर वैसीही हो जावे. पीपाजीने उसकी वहीको वैसाही कर दिया और जो उसका ऋण था सो सब दे दिया. भगवान्ने विचारा कि पीपाजी दरिद्री हो गये इस कारण बहुतसा धन और जिनस

बहुतसी भेज दी. पीपाजीने उस धन और मालका पुण्य कर दिया. एक समय एक मनुष्यसे गोवध हो गया था. इस कारण उसके कुटु-म्बियोंने उसको जातिसे बाहर कर दिया. पीपाजीने उससे कहा कि जो तू रामनाम लेगा तो तेरी हत्या दूर हो जायगी; उस मनुष्यने रामनाम लेना प्रारंभ किया और उसको भगवान्‌का प्रसाद भोजन कराकर भगवद्भक्त कर दिया परन्तु जातिवालेंने तबभी जातिसे बाहर रक्खा. फिर पीपाजीने समस्त वेदशास्त्रोंसे रामनाम लेनेकी महिमा प्रगट करके कहा कि जो मनुष्य अपनी जिह्वासे रामनाम लेता है उसके करोडों जन्मके पाप दूर हो जाते हैं; फिर जिसने उस रामनामको हजारों वार अपनी जिह्वासे उच्चारण किया है तब फिर एक गोहिंसाका पातक किस प्रकारसे रह सकता है. यह श्रवण कर सब निरुत्तर हो गये और उस मनुष्यको जातिमें ले लिया. फिर एक समय राजा सुषेणको पीपाजीके दर्शनोंकी अभिलाषा हुई तो पीपाजी उसके अंतःकरणकी वृत्तिको शुद्ध जानकर स्वयंही राजाके पास गये और जाकर राजाको दर्शन दिये. फिर एक साधुको बहुतसे रुपयोंकी अभिलाषा हुई तो उसने पीपाजीसे रुपये मांगे; पीपाजीने उसको उसी स्थानसे इतना रुपया दिया कि उस साधुकी तृष्णा पूर्ण हो गई. एक श्रीरंगनामके भगवान्‌के भक्त थे उन्होंने पीपाजीके बुलानेके लिये एक पत्र भेजा तो उस पत्रको पढकर पीपाजी उनके पासको गये. यह श्रीरंगजी मानसी पूजनसे भगवान्‌को पुष्पोंकी माला पहराते थे और वह उनके मुकुटमें उलझ जाती थी; उसी समय किसीने जाकर कहा कि महाराज ! कोई साधु आया है; तब श्रीरंगजीने उससे कहा कि कह दो मैं इस समय पूजा कर रहा हूं. जब पूजा कर चुकूंगा तब तुम्हारे पास आऊंगा। पीपाजी बोले कि ऐसी पूजा करते हैं कि उनसे पुष्पोंकी मालातक तो पहराईही नहीं जाती, यह सुनकर श्रीरंगजी

उसी समय अति शीघ्र उठकर चले आये और पीपाजीको छातीसे लगा लिया. फिर पीपाजी कितनेक दिनोंतक इनके पास रहे और सीताजीकी भक्तिको देखकर श्रीरंगजीका अत्यन्त स्नेह भगवान्के चरणोंमें हुआ. एक ब्राह्मणने अपनी पुत्रीके विवाहके लिये पीपाजीसे द्रव्य मांगा; पीपाजीने प्रथम तो उसको अपना गुरु किया और फिर राजाके पास ले गये और राजासे उसको बहुतसा रुपया दिलवाया. एकादशीके रोज भगवान्का जागरण हुआ करता था सो पीपाजी अचानक उठे और हाथ मलने लगे. यह देखकर राजाको बडा आश्चर्य हुआ और पूछा कि हाथ मलनेका क्या कारण है ? पीपाजीने उत्तर दिया कि द्वारिकाजीमें भगवान्के चंदोवेमें अग्नि लग गई थी उसको शीतल किया है. यह सुनकर राजाको विश्वास न आया और उसी समय सांडिनीके सवारको द्वारिकाजीको भेजा तो उसने आकर वही वार्ता कही तब राजा विश्वासी होकर इनके चरणोंमें गिर पडा और यहभी ज्ञात हुआ कि पीपाजी एकादशीकी एकादशी द्वारिकाजीको जाया करते हैं. एक दिन पीपाजी स्नान करनेके लिये नदीपर गये तो वहांपर एक तेलीका लडका अपने बैलको पानी पिलानेके लिये आया. उसी समय एक ब्राह्मण पीपाजीसे बैल मांग रहा था. पीपाजीने उस लडकेसे बैल लिया और उसी ब्राह्मणको दे दिया, फिर लडकेने जाकर अपने पितासे कहा तो वह तेली पीपाजीके पास आया और बोला कि महाराज ! उस बैलसे मेरे समस्त कुटुम्बकी पालना होती थी, पीपाजी बोले कि हमने तो तेरा बैल नहीं लिया जाकर देख ले तेरे घरपर बंधा है. उसने जाकर देखा तो बैल घरपर बंधा हुआ पाया. फिर एक समय दुर्भिक्ष काल पडा उस समय पीपाजीने बहुतसा अन्न और खानेकी सामग्री मनुष्योंको बांटी मानो कालही न पडा था किसी मनुष्यकोभी ज्ञात न हुआ कि काल पडा और सबकी दुःख दूर किया.

इस प्रकारके चरित्र पीपाजीके अनेक हैं जिनका अंतःकरण निर्मल है उनको भगवान् और भगवद्भक्तमें कुछ भेद दृष्टि नहीं आता. ऐसी महिमा भगवान्की है उनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है?

दोहा–पीपाजीको चरित यह, पढिये रखिये ध्यान।
भजन करै एहि भांति जो, कृपा करहिं भगवान।

प्रयागदासजीकी कथा ४.

प्रयागदासजी अपने गुरु अग्रदासजीमें ऐसी भक्ति करते थे कि उनहीकी कृपासे यह परम भगवद्भक्त हुए. उनको श्रीरघुनंदन स्वामीके चरणकमलोंमें मन वचनसे प्रेम था और भगवान्के भक्तों पर ऐसी भक्ति और प्रेम करते थे कि उनको साक्षात् भगवान्काही स्वरूप जानते थे और उनकी पूजा तथा सेवा प्रेमसहित किया करते थे. एक समय क्यारेगावमें भगवान्के मंदिरमें कलश चढानेका महोत्सव था और आढेवलिये गावमें भगवान्के मंदिरकी ध्वजा चढानेका उत्सव था सो इनके दोनों जगहसे साधु बुलानेके लिये आये. अब प्रयागदासजी विचार करने लगे कि जो वहां जाता हूं तो वहांके लोग अप्रसन्न होगें और जो वहां जाता हूं तो वहांके साधु बुरा मानेंगे. यह विचारकर अपने दो रूप धारण करे और दोनों जगह गये और भगवान्के मंदिरमें भगवान्के चरित्रोंको श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने हाथसे एक स्थानपर तो कलश चढाया और एक स्थानपर ध्वजा चढाई वहांपर रास हो रहा था; सो इन्होंने भगवान्का माधुरी मनोहर स्वरूप देखा तो देखते प्रेममें मग्न हो गये और उसी समय अपने प्राण भगवान्के अर्पण कर दिये और परम पदको प्राप्त हुए. प्रगट हो कि अग्रदासजी और उनकी संप्रदायवाले माधुर्य उपासक श्रीरघुनंदन-स्वामी हैं. प्रयागदासजीने रासलीलाके समय अपने स्वामीका माधुर्य जाना और उसी क्षण प्राण त्यागन किये.

सुनपतमें हुए भगवान् नाम भक्तकी कथा ५.

यह जहां कहीं धर्मका द्वेष सुनते तो वहां नानाप्रकारका उपदेश करते और फिर भागवत धर्मपर दृढ कर देते. एक पंडोरी नाम ग्राममें योगियोंकी मंडली रहती थी. भगवद्भक्त उनकी बात सुनकर वहां गये. प्रथम तो जाकर उनको ज्ञान शिक्षा दी, तिस परभी वह न जमे तो उनको सिद्धान्त दिखाया, उसके देखतेही समस्त मंडली इनकी शिष्य हो गई और भगवान्की भक्ति कर अपने धर्ममें सावध हुई. वहांका बादशाह और मतका था उसने धर्मके साथ द्वेष करना विचारा. जितने और मतके हिन्दू थे उन सबोंको विष घोलकर पिला दिया; जो कि भगवान् सर्वदा अपने भक्तकी रक्षा करते हैं उन्ही महाराजने उस विषका प्रभाव किंचित्भी न फैलने दिया, तब तो बादशाह लज्जित होकर भगवान्का दास हो गया और भक्ति करने लगा.

रामरायजीकी कथा ६.

जातिके सारस्वत ब्राह्मण रामरायजी भगवान्के परम भक्त हुए. यह ज्ञान और वैराग्यमें योगको अधिक समझते थे और इनको साधुओंकी सेवामें अधिक प्रीति थी. इनको जब किसी साधुका दर्शन होता तो जिस प्रकार सूर्यके उदय होतेही कमल खिल जाता है इसी प्रकार आप खिल जाते थे. एक समय साधुओंका समाज था वहांपर कोई दुष्ट रामरायजीकी झूंठी निन्दा करने लगा. भगवान्ने उस निन्दकको दंड देनेका विचार किया सो उसके महलमें उसके कुटुम्बी और सम्बन्धी बहुतसे बैठे थे उन सबके सामने भगवान्ने उसके शिरकी पगडी उतरवा दी. जितने छोटे बडे बैठे थे सब हँस पडे और वह दुष्ट लज्जित होकर मुँहको छिपाकर महलसे बाहर निकल गया.

रंगजीकी कथा ७.

जेपुरके इलाके देवसाग्राममें रंगजी सराउगीके बेटे थे. इनका सेवक मरकर यमदूत हो गया था, सो एक वनजारा उस ग्राममें उतरा. उसके प्राण लेनेके लिये आया तो प्रथमकी प्रीतिको विचारकर श्रीरंगजीसे मिला और उनसे अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया. रंगजीको उसके इस चरित्र देखनेकी अभिलाषा हुई; सो जिस स्थानपर वह वनजारा ठहरा था वहांही आप गये. जाकर क्या देखते हैं कि उसी समय उस यमदूतने एक बैलको भडका दिया है और वनजारा उसके पकडनेके लिये उठा है. यमदूत बैलके सींगोंपर बैठ गया और वनजारेका उसी बैलके सींगोंसे पेट फाड डाला. वनजारेके प्राण उसी समय पयान कर गये. इस चरित्रको देखकर रंगजी अत्यन्तही भयभीत हुए और उस यमदूतसे पूछा कि जिससे हमको यमदूत न ले जाय ऐसा उपाय कोनसा है सो कृपा कर कहिये. यमदूत बोला कि जो भगवान्के भक्त हैं उनको कदापि यमदूत नहीं सताते और सबकोही यमदूतोंका दंड मिलता है. श्रीरंगजीका अंतःकरण उसी समयसे श्रावकधर्मसे हट गया और दूतकी आज्ञानुसार श्रीअनंतानंदजीके शिष्य रामानंदजीके चेले हुए. इनको थोडेही समयमें अतिशीघ्र भगवान्की प्राप्ति हो गई और जन्ममरणके दुःखोंसे छूट गये. एक प्रेत रंगजीके बेटेको प्रतिदिन दीखा करता था उसके भयसे लडका अत्यन्त दुर्बल हो गया. श्रीरंगजीने उससे इसका कारण पूछा और कहा कि भगवान्के भक्तके घरपर प्रेतके आनेका क्या काम है? उसने कुछभी न कहा जब बहुतही हठ किया तो उसने समस्त वृत्तान्त बता दिया; फिर जिस जगह रात्रिमें लडका शयन किये करता था

उस स्थानपर श्रीरंगजी जा सोये और जब वह प्रेत आया तो उसने रंगजीको शयन किये हुए देखा और क्रोधित होकर रंगजीने उससे पूछा कि तू कौन है ? प्रेतने उत्तर दिया कि मैं जातिका सुनार इसी ग्रामका निवासी हूं और आपहीके कारण प्रेत हुआ हुं. जिससे मेरी मोक्ष हो जाय. ऐसा उपाय आपको बताना कर्तव्य है, मैं आपकी शरण हूं मुझको इस महापापसे छुटाओ. प्रेतके ऐसे वचन सुनकर श्रीरंगजीको दया आई और उसी समय उसको भगवान्का चरणामृत दिया. उसीके प्रभावसे वह प्रेत दिव्यस्वरूप होकर सद्गतिको प्राप्त हुआ.

हठीनारायणकी कथा ८.

पंजाबनगरके रहनेवाले कृष्णदासजीके चेले हठीनारायणजी भगवद्भक्त हुए. यह संतोषके स्वरूप थे. सर्वदा भगवद्भजनमें मग्न रहते थे. इनका सर्वदा विजया पान करनेका नेम था और कभी उसका बोध नहीं होता था. एक समय इनको बादशाहने विजयामें धतूरा मिलाकरभी इनको पिलाया परन्तु ताभी कुछ नशा न हुआ, फिर मतके द्वेषसे विष मिलाकर पिलाया और समस्त खाने पीनेकी वस्तुओंमें विष मिलाया परन्तु इनका बालभी बांका न हुआ; तब तो बादशाह लज्जित होकर इनके चरणोंमें गिर पडा और अपने अपराधोंकी क्षमा प्रार्थना करने लगा. प्रगट हो कि कोई मनुष्य इस कथाको भंगके पीनेमें दृष्टान्त न समझे. भंगके पान करनेका निषेध है. भंग मादक है उसके अवगुणोंका कौन वर्णन कर सकता है ? जो मूर्खलोग है वे शिवजीका दृष्टान्त देते हैं. यदि जो मनुष्य शिवजीकेभी दृष्टान्त विजयापान करते हैं तो शिवजीने तो उस विषका पान किया है कि जिसके तेजको देवताभी नहीं सहन कर सकते. तुम एक रत्तीभर विष

खाकर देखो तो क्या होता है. फिर शिवजीके गलेमें तो सर्पोंका हार और मुंडोंकी माला शोभित है. तुम किसी छोटेसे सर्प और किसी मनुष्यके एकही कपालको अपने पास रक्खो तो सही क्या होता है. फिर शंकरस्वामीने कांचको भट्टीमेंसे निकाल हाथपर रखकर पानीकी तुल्य पान कर गये. आजका कोई किंचित् तो हाथमें धर ले. इसी प्रकारके हजारों दृष्टान्त हैं सो पुराणोंके इस भक्तमालसे मिल सकते हैं; फिर जिन वस्तुओंका बडे पुरुषोंने निषेध किया है फिर वह वस्तु कब प्रचलित हो सकती है? "समरथको नहिं दोष गुसांई। रवि पावक सुरसरिकी नाई॥" और फिर समस्त पुराणोंके वचन एकही है. बडोंके दृष्टान्त और कर्मसे जो मनुष्य कामको अलीन और कुलीन समझ लेते हैं वे मनुष्य नरकगामी होते हैं. हठी नारायणने भंगको मन स्थिरता और सिद्धि करके पान किया था और सत्पुरुष तो जीवन और मरणते बंधनसे बाहर हैं जो भगवत्स्वरूप हो जाते हैं और भंगके पीनेका निषेधही है.

दोहा—जो सुमिरै भगवान्को, सो पावै विश्राम।
मिश्र शास्त्र ऐसे कहो, भजो राम घनश्याम॥

रैदासजीकी कथा ९.

रैदासजी भगवान्के ऐसे परम भक्त हुए कि जिनका वचन ज्ञान-भरी कविता युक्त होकर अज्ञानरूप अंधकार दूर करनेके निमित्त हृदयरूप रात्रिमें सूर्यकी समान हुआ. वेद और शास्त्रकी आज्ञानुसार काम करनेमें हंसकी समान हुए, हंस जिस प्रकार पानीको त्यागन कर दूधको ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार रैदासजीने त्याज्य वस्तु-ओंका त्यागन करके जो सार वस्तु है उसीको ग्रहण किया. इनके ऊपर भगवान्की ऐसी कृपा हुई कि यह इसही जन्ममें भगवद्धामको

गये. जिनके चरणोंमें बडे २ वर्णाश्रमवालोंने दंडवत् करी थी और पहले जन्ममें ब्रह्मचारी रामानंदजीके शिष्य थे, यह भिक्षा मांगकर गुरुकी सेवा और भगवत्प्रसादकी सामग्री किया करते थे; इनके मार्गमें एक वणिक् नित्यप्रति कहा करता कि मेरी सामग्रीभी भगवान्के प्रसादके निमित्त ग्रहण करो; परन्तु यह उससे कुछभी नहीं लेते थे. फिर एक दिन बहुतही वर्षा हुई थी सो आपने उसी वणिक्से सामग्री लाकर रसोई तैयार करी. जब रामानंदजी उस पाकका भोग भगवान्को लगाने लगे तो भगवान् ध्यानमें न आये तो उसी समय रामानंदने ब्रह्मचारीसे पूछा कि यह सामग्री किसके यहांसे आई है? ब्रह्मचारीने उस वणिकको बता दिया जिसके यहांसे सामग्री लाया था; फिर जब विचार किया तो उसका व्यवहार चर्मकारोंसे जाना गया तब रामानंदजीने ब्रह्मचारीको शाप दिया कि जा तेरा जन्मभी चमारके घरपर हो; सो ब्रह्मचारीका ब्राह्मण शरीर उसी समय छूट गया और जाकर चमारके घर जन्म लिया; परन्तु इनको भगवद्भक्ति और गुरुके प्रतापसे पूर्व जन्मका ज्ञान रहा; इन्होंने जिस समयसे जन्म लिया उसी समयसे माताका दुग्धपान करना छोड दिया; विना गुरुमंत्र उपदेशके खाना पीना निषेध है; तब फिर इसके पीछे रामानंदजीको भगवान्की आकाशवाणी हुई कि तुमने ब्रह्मचारीको कठिन शाप दिया है; तुमको उसपर कृपा करनी योग्य है; ऐसी भगवान्की आज्ञाको श्रवण कर रामानंदजी चर्मकारके घरपर गये और उनसे मिले; मातापिताने साधुके आनेका आश्चर्य माना और इनके चरण पकड लिये. फिर रामानंदजीने मंत्रका उपदेश करके रैदासनाम रक्खा और कहा कि अब तुम माताका दुग्ध निःसन्देह पान करो. फिर जब यह कुछ बडे हुए तो भगवद्भक्तोंकी सेवा अत्यन्त प्रेमसे करने लगे. जो कुछ इनको घरमें मिलता उसको भक्तोंके अर्पण कर देते जब

उसके पिताने रैदासजीके ऐसे आचरण देखे तो क्रोध कर उसको अपने घरमें न रहने दिया और एक स्थान अपने स्थानके पिछाडी रहनेको दिया. पिताके पास द्रव्य तो बहुत था परन्तु रैदासजीको एक कोडी-भी नहीं दी. रैदासजी अपनी स्त्रीके साथ आनंदसहित रहने लगे और जूतियें गांठकर अपना निर्वाह किया करते थे. यह जिस किसी वैष्णव या साधुको देखते तो उसको विनाही दाम लिये जूतियें पहरा देते थे और फिर एक छप्पर डाल लिया और उसमें भगवान्‌की मूर्ति स्थापित करी फिर उसकी भली प्रकारसे सेवा करने लगे और आप छप्परके बाहर पडे रहते. प्रगटमें शरीरको खेद ज्ञात होता था परन्तु इनका मन भगवान्‌के चिंतवन और ध्यानमें मग्न रहता था. भगवान् उससे प्रसन्न हुए और इनके दरिद्र दूर करनेका विचार किया तो भग-वान्‌ने स्वयं साधुका स्वरूप धारण किया और रैदासजीके घरपर आये. उनको देखतेही रैदासजीने दंडवत् करी और उनकी भली प्रकारसे सेवा करी फिर उनको भोजन कराया और भगवान्‌काही स्वरूप माना. रैदासजीकी सेवासे साधु अत्यन्त प्रसन्न हुआ. फिर इनको एक पारस पत्थर दिया और उसके गुणोंका वर्णन कर कहा कि रैदास ! इस पत्थरको तुम बडे यत्नसे रखना. रैदासजी बोले कि यह मेरे किसी अर्थकाभी नहीं. मेरा जो कुछ धन और माल है वह एक रामही नाम है. साधु विचारने लगा कि इस पत्थरके गुणको रैदासने न जाना. इस कारण उसकी रांपी उस पत्थरसे लगा दी. पत्थरका स्पर्श करतेही वह सुवर्णकी हो गई. रैदास मनमें विचारने लगे कि यह रांपीभी मेरे हाथसे गई; फिर साधुने विचारा कि रैदासको किसी वस्तुकाभी लोभ नहीं है तो बहुतसी प्रार्थना करके कहा कि तुम इस पारस पत्थरको अपने पास रक्खो. रैदासजी बोले कि छप्परमें रख दो, तब साधु छप्परमें रखकर चला गया; फिर वही

साधु तेरह महीनेके पीछे रैदासजीके स्थानपर आया तो रैदासजीको ज्योंका त्यों पाया. रैदासजीसे पूछा कि वह जो हम तुमको पारस पत्थर दे गये थे सो उसका तुमने क्या किया. रैदासजीने उत्तर दिया कि जहांपर आप रख गये थे वहींपर होगा मैंने तो उसका स्पर्शतकभी नहीं किया. मुझको तो उससे डर लगता है. भगवान्ने उस पत्थरको निकाल लिया और लेकर चल दिये. फिर एक दिन पूजाकी पिटारीमेंसे पांच मोहरें निकलीं तब तो रैदासजी भगवत्सेवासेभी डरने लगे; तब भगवान्ने इनको स्वप्न दिया और कहा कि मैं जानता हूं कि तुमको लोभ नहीं है परन्तु जो कुछ हम तुमको दिया करें सो ले लिया करो. रैदासजीने भगवान्की ऐसी आज्ञा स्वीकार कर ली और एक धर्मशाला बनाई और वहांपर भगवद्भक्तोंको वसाया और फिर एक अति उत्तम मंदिर बनवाया और उसमें भांति २ के चंदोवे झालरें बंदरवारें जरकसी आदि लगाईं और अति सुन्दर सजाया वह मंदिर दर्शनके योग्य हुआ, बहुतसे मनुष्य दर्शन करनेके लिये आते थे सो भगवान्के मंदिरकी शोभा तथा भगवन्मूर्तिकी शोभाको देखकर मोहित हो जाते थे, उस मंदिरकी पूजा तथा प्रतिष्ठा और राजभोग यह सभी ब्राह्मणोंके हाथ था. फिर जिस स्थानपर रैदासजी रहते थे वहांपर आपने एक दुमजला मकान बनवाया. और अतिप्रीतिसे भगवान्की आराधनाका प्रारंभ किया ब्राह्मणोंने जब यह चरित्र देखा तो इसको अनुचित माना और राजाके पास जाकर इसका निवेदन किया और कहा कि चर्मकारकी जातिको भगवान्की पूजा करनेका अधिकार किसी शास्त्रमेंभी नहीं लिखा है, सो रैदास निडर होकर भगवान्की मूर्ति विराजमान कर बराबर पूजन करता है. हे राजन्! उसको दंड देना योग्य है. ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजाने रैदासजीको

बुलाया. रैदासजीके आतेही राजापर इनका ऐसा प्रताप पडा कि राजा कुछभी न कह सका. वरन एक दो बात कहकर इनको विदा कर दिया. चित्तौरवाले राजाकी रानीका नाम झाली था, उसने जो रैदासजीका ऐसा प्रताप सुना तो वह इनकी सेवक हुई. जो ब्राह्मण रानीके पास रहा करते थे वह यह देखकर अत्यन्तही क्रोधित हुए और बोले कि अब रानीकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, फिर राजाके पास जाकर कहा. राजाने यह सुनकर रैदासजीको बुलाया और समस्त ब्राह्मणभी एकत्रित हुए. ब्राह्मण तो जातिकी बडाई करते थे और रैदासजीका यह वचन था कि भगवान्को भक्ति प्यारी है जातिका भेद कुछभी नहीं है. अंतको यह निश्चय हुआ कि जो भगवान्की मूर्ति सिंहासनपर विराजमान है वह जिसके कि समीप आजाय वही सच्चा हो. इस बातपर ब्राह्मणोंने परा काष्ठासे तीन पहरतक वेद पढा और मंत्रोंका जप किया परन्तु कुछभी न हुआ फिर पीछे रैदासजीने प्रार्थना करी कि महाराज! आप अपने पतितपावन नामको सत्य कीजे और फिर दो एक विष्णुपद उच्चारण किये और दूसरे पदका अंत यह है. "देवाधिदेव आयो तुम शरना। कृपा कीजिये जान अपनो जना" भगवान् इस पदको श्रवण करतेही सिंहासनसे उठ खडे हुए और रैदासजीके गोदमें जा बैठे. राजाको यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ और सभी उनके वशीभूत हो गये फिर वह रानी काशीजी अपनी राजधानीमें आई और आकर यज्ञके करनेका विचार किया और फिर एक पत्र रैदासजीके नाम लिखा कि महाराज! मुझ दासीके ऊपर कृपा कर आप इस यज्ञमें पधारिये. रैदासजी पत्रको पढकर चित्तौरमें आये; उनके आगमनसे रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई और बहुतसा धन द्रव्य इसको दिया. ब्राह्मणोंने विचार किया कि इस रानीका गुरु तो चमार है सो इससे

सूखी वस्तु लेकर रसोई करेंगे; सो ब्राह्मणोंने ऐसाही किया; फिर जब भोजन करनेके लिये बैठे तो प्रत्येक मनुष्यके बीचमें रैदासको बैठा हुआ देखा. तब तो इनके चरणोंमें गिर पडे और लाखों इनके शिष्य हो गये. रैदासजीने विचारा कि यह लोग इस समय तो शिष्य हो गये हैं परन्तु फिर जातिका विचार करेंगे तो अभाव हो जायगा और जो अभाव है सो नरकको ले जाता है, इस कारण प्रथम जातिका भ्रम दूर करना उचित है; सो उसी समय अपने शरीरका चर्म उतारकर सबको यज्ञोपवीत दिखाया और बोले कि, मैं ब्राह्मण हूं. गुरुके शापसे मैंने यह देह पाई थी; तब तो सभीको दृढ विश्वास हो गया, फिर रैदासजीने देहको त्यागन कर दिया और गुरुकी कृपासे परम पदको प्राप्त हुए फिर इनका जन्म न हुआ.

दोहा–मिश्र रामके भजन विनु, जो चह पद निर्वान ।
ताको मूरख जानिये, वचन न करिये कान ॥

गोपालभट्टकी कथा १०.

गोपालभट्ट ऐसे भगवान्के भक्त हुए कि समस्त संसारमें उनकी साखी विख्यात है. भगवद्भक्तिका प्रताप जिनके ललाटमें सूर्यकासा प्रकाश देता था. भक्तोंकी सभाको शोभा करनेवाले हुए. फिर श्रीमद्भागवतमें जो किसीको संदेह होता तो अपनी बुद्धिसे उस भ्रमको दूर कर देते थे. इन्होंने संसारके समस्त मनुष्योंको अपनी भक्तिके प्रतापसे भगवद्भक्त कर दिया और आप दासभावसे अनन्य भक्तिमें दृढ होकर चरणरज राधावल्लभजीके प्रेममें पूर्ण रहे और भगवद्भक्तोंके कृपापात्र और नवधा भक्तिके उपदेशक हुए.

दिवाकरजीकी कथा ११.

कर्मचंद जो कश्यपजीकी समान थे; उनके घरपर हृदयका अंध-

कार दूर करनेके लिये संसारी मनुष्योंको दूसरे सूर्य अर्थात् दिवाक-रजी हुए. इन्होंने बहुतसे राजाओंको उपदेश देकर भगवद्भक्त कर दिया. यह हरिभक्तोंके लिये ऐसे हुए कि, जिस प्रकार फल लगे हुए वृक्षकी डाली आपसे आप भूमिपर झुक जाती है और सभीको प्राप्त होती है. भोलाराम उनकी टेक थी, सभीके मित्र हुए और सबपर अपनी कृपा दृष्टि करते थे. इनको श्रीरघुनंदनस्वामीकी भक्तिके अतिरिक्त और कुछभी इच्छा न हुई और सीतापति अवधविहारी महाराजके चरित्रोंका कीर्तन और स्मरण किया करते थे.

क्षेमगुसांईजीकी कथा १२.

क्षेमगुसांईजी विख्यात हैं. वह रामदास अपने गुरुकी श्रीरघुनंदनस्वामीके अनन्य दास हुए. इस लोक और परलोकमें श्रीरघुनंदनस्वामीके अतिरिक्त और कुछभी नहीं जानते थे और इस लोकमें परलोकके दुःखसुखसे रहित थे. धनुषबाण जो भगवान्के शस्त्रको अपनी दोनों भुजाओंपर धारण करके उनको देखकर अति प्रसन्न होते थे और ब्रह्मानंदमें मग्न रहते थे. किसी समयभी स्वामीके चरणोंसे अलग नहीं रहते थे. हनुमान्जीकी समान शूरवीर और अतिप्रेमी भगवद्भक्तोंमें प्रथम गिननेके योग्य हुए.

कल्याणसिंहजीकी कथा १३.

कल्याणसिंहजी भगवद्भक्तिका पक्ष और उद्धारता करनेवाले हुए उनकी भक्तिपक्षका कुछ थोडासा वर्णन करते हैं. अपने नगर नोनेरसे वह अपने भ्राता अनूपसिंहजीके सहित श्रीनंदनंदन महाराजका जन्मउत्सव देखनेके लिये वृन्दावनमें आये. मार्गमें एक दुष्ट सराउगी मिला देखा कि वह दीन साधुको सता रहा है, कल्याणसिंहजीको यह देखकर अत्यन्त दया उत्पन्न हुई तो उस वैष्णव साधुका पक्ष किया

और दुष्टके हाथसे छुटादिया. उद्धारीका अर्थ यह है कि, द्रव्य खजाना दे देना तो थोडाही काम है, परन्तु उन्होंने प्राण जानेकाभी भय न किया और जो बातें दो ऊपर लिख आये हैं सो भगवान्ने उन दोनों बातोंका निर्वाह किया. इनको श्रीजगन्नाथराय स्वामीजीके चरणकमलोंमें प्रथमसेही प्रीति थी. जब इनका अंतसमय आया तो औरभी अधिक प्रीति हो गई तो इनको श्रीजगन्नाथरायजीने अपना पार्षद जानकर अपने निकट बुला लिया, फिर यह जगन्नाथपुरीमें रहने लगे. इनने श्रीरघुनंदनस्वामीके स्नेहके सामने दोनों लोकोंका स्नेह तृणकी समान त्यागन कर दिया; इनके मनमें तो वही माधुरी मूर्ति विराजमान रहती थी और जिह्वापर सर्वदा श्रीरघुनंदनस्वामी और जानकीजीका नाम रहता था.

राजा खेमालजीकी कथा १४.

जातिके रजपूत खेमालजीभी परम भक्त हुए. उनके कुलमें भक्तिका प्रताप अटल हुआ. रामरायबेटे कुँवर किशोरके पोते कि उनका वर्णन इस भक्तमालमें पृथक् हुआ है, यह परम पवित्र भक्त हुए. यह राजासेभी अधिक हुए उस राजाको भगवद्भक्तोंमें ऐसा स्नेह था कि जिस प्रकार चंद्रमाको देखकर समुद्र प्रसन्नतासहित बढता है, राजाभी इसी प्रकार भगद्भक्तोंको देखकर प्रसन्न होते थे. इनको भगवान्के भजनमें ऐसा प्रेम और भाव था कि यह नित्य उसीमें लगे रहते थे इनका अंतःकरण शुद्ध और निर्मल था. मन वचन कर्मसे श्रीरघुनंदनस्वामिके यह दास थे इनके स्वामीके चरणकमलोंके अतिरिक्त न किसीका विश्वास न आसरा था. यह सर्वदा उन्हींके ध्यानमें मग्न रहा करते थे.

केशवजीकी कथा १५.

केशवजी लटेरेकी पदवीसे विख्यात थे लटेरा दुर्बल और गरीबको

कहते हैं यह काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिमें दुर्बल थे, परन्तु भगवा-न्की भक्तिभावमें अधिक पुष्ट थे. सुरसुरानंदजीकी संप्रदायमें यह परमभक्त हुए. इनकी भक्ति जन्ममरणका संताप दूर करनेके निमित्त परम औषधीरूप हुई. भगवान्के पवित्र चरित्र सर्वदा इनके अन्तः-करणमें रहते थे जिह्वापर सदा भगवान्का नाम रहता था. जैसा प्रेम दास्यभाव भगवान्में केशवजीका था; वैसाही इनके पुत्रको हुआ क्यों न हो जैसा वृक्ष बोया था वैसाही फल लगा जिस भक्तिभावसे केशव सेवा करते थे वैसेही पुत्रभी थे. भगवच्चरित्रोंके कीर्तनमें यह एकही थे तथा उदारता और दयामें अद्वितीय हुए.

सोतीजीकी कथा १६.

सोतीजी हरिभक्तोंकी सभामें वन्दनीय; श्लाघनीय विख्यात सूर्यके समान हुए. भजनका प्रताप ऐसा था कि भक्ति और धर्मकी ध्वजा थे. श्रीसीतापति अवधविहारीके चरित्रोंमें निरन्तर मग्न रहा करते थे और भगवान्के दास्यभावमें मनको ऐसा दृढ किया कि तनकभी दूसरी ओर चित्तकी वृत्ति नहीं जाती थी और नरहरिजी उनके गुरुके प्रतापसे ऐसीही भक्ति उनके बेटे और पोते सबकोभी हुई.

राग कान्हरा ।

ठुमक ठुमक चलत चाल जनकनन्दिनी ।
मधुर वचन तोतरे त्रयतापमोचनी ॥
सोहत नव नील वसन मंद हास रुचिर दशन ।
झलकत उर माल सकल देववंदिनी ॥
नूपुर पग बजत मनो सामवेद करत गान ।
क्षुद्र घंट रुचिर नाद उर अनंदनी ॥

जगतमात सखिन संग विहरत बहु करत रंग।
अग्रदास निरखत छबि भवनिकन्दनी ॥

बाईसवीं निष्ठा सखाभाववर्णन।

(इसमें पांच भक्तोंकी कथा है.)

श्रीकृष्णस्वामीके चरणकमलोंकी मुकुटरेखाको दण्डवत् करके ध्रुव अवतारको प्रणाम करता हूं कि, जिन्होंने वह अवतार धारण करके भगवद्भक्ति और शरणागतिके स्वरूपको जगत्में प्रगट किया, किसी किसी स्थलमें ध्रुवके स्थानमें नारद अवतार लिखा है. सखाभावके उपासकोंका यह सिद्धान्त है कि ईश्वर और जीव दोनों परस्पर सखा अर्थात् मित्र हैं और ऐसी मित्रता और स्नेह दृढ है, कि ईश्वरको जीव विना ईश्वरता नहीं और न जीव ईश्वर विना हो सकता है अर्थात् जो जीव न हो तो ईश्वरको कोई नहीं जाने और जो केवल जीव हो ईश्वर न हो यह बात तो बनही नहीं सकती; कारण कि विना ईश्वरके जीवका भावही नहीं है यदि कहो कि; मित्रता तो बराबरवालेकी होती है सो कहां तो यह जीव जन्ममरण पापपुण्यसे संयुक्त और कहां वह ईश्वर कि जिसका स्वरूप मन और बुद्धिमें नहीं आ सकता जिसको वेद नेति २ कहते हैं. मायाके गुणोंसे अलग, नित्य, निरीह, निर्विकार, अच्युत, अनन्त, पूर्णब्रह्म, परमात्मा सच्चिदानंदघन है इनकी मित्रता कैसी, सो इसका उत्तर इस दृष्टान्तसे समझ लेना चाहिये कि, प्रथम तो मित्रताके व्योहारमें कुल, ढंग, मर्यादा, बुद्धि, चतुराई, सुन्दरताई, वस्त्रका धारण, आभूषणकी सजावट, सब सामग्री समान होनी

योग्य है तब आपना २ भाग्य है कि एक राजा और एक निर्धनी हो जाय यही वृत्तान्त ईश्वर और जीवकी मित्रताका है; अर्थात् जैसा ईश्वर निर्विकार प्रकाशमान ज्ञानानन्दस्वरूप है वैसाही दो एक बातोंकी न्यूनाधिकतासे जीव है, भेद नहीं है. दोनों बीचमें मायाने उपाधि डाल दी है अर्थात् जीव जो अणु अर्थात् छोटा और अल्पज्ञ था; इस कारण वह तो मायाको देखकर मोहित हो गया और उसके जालमें फँस गया और ईश्वर जो अनन्त और सर्वज्ञ है. वह मायासे ज्योंका त्यों पृथक् और परे रहा. यद्यपि ईश्वरने अपने मित्रके छूट-नेके निमित्त वेदशास्त्रद्वारा उस मित्रको अपना और उसका स्वरूप बतलाया और अपने नामको प्रगट किया औरभी सैकडों सहस्रों उपाय मंत्र, यज्ञ, जप, दान, ध्यान, कर्म, ज्ञान, वैराग्य, नवधा भक्ति आदिकी प्रवृत्ति की है; परन्तु यह जीव उस मायाके मोहमें ऐसा फँसा है कि कुछ नहीं समझता. अपने और अपने मित्रका स्वरूप सर्वथा भूल गया. जब अपने ईश्वर तथा मायाके स्वरूपको जानकर छूटनेका उपाय करे, तब फिर अपने मित्रके मिलन और परमानंदको प्राप्त हो. अब यह संदेह होता है कि जब ईश्वर और जीव मित्र हैं और वह ईश्वर कि जिसकी मायामें यह जीव फँसा हुआ है इसके छुटानेकी इच्छा करता है तब फिर क्या कारण है कि, यह जीव मायामें बंधा है, आप ईश्वर क्यों नहीं छुटा लेता, यह शंका नई नहीं है वही बात है जो ईश्वरकी दयालुता कृपालुता जीवपर कथन की है और संसारसृष्टिकी परंपराके बने रहनेके कारण कर्मकी विशेषता प्रगट करके मुक्तिका होना ज्ञानसे अर्थात् पाप पुण्य यह दोनों कर्मोंके दूर होनेपर वर्णन किया है. इसके समाधानका जो उत्तर सिद्धान्तशास्त्रोंमें निश्चय हुआ है सोई यहां जान लेना चाहिये और जो सखाभावकी रीतिके उत्तरकी

इच्छा होय कि इस लोक परलोक सब कार्योंकी रीति और पद्धतिका ज्ञाता ईश्वरसे अधिक दूसरा कोई नहीं इसी प्रकार मित्रताकी रीतिकोभी भगवान्से उत्तम कोई नहीं जानता. मित्रताकी रीतिमें दोनों मित्र बराबर आचरण करते हैं जो एक मित्रने शिष्टाचार किया तो दूसरा मित्र उससे उत्तम शिष्टाचार देता है और विवाहादिमें जो एक मित्रने सौ रुपये उठाये तो दूसराभी उसके विवाहमें उतनाही उठाता है. इस बराबरीकी रीतिके अनुसार जो ईश्वर विना सन्मुख हुए जीवकी मायाको दूर करके मिलनेको आवे तो मित्रताके मूलकी रीति विपरीत हो जाय जो यह कहो कि, जीवके सन्मुख होनेपर क्या प्रबन्ध था ? स्वयं ईश्वरने अपने मित्रके मिलनेके हेतु अगुआई क्यों न की, कारण कि मित्रका मित्रके घर आना अथवा स्वयं उसके घर जाना दोनों बातें बराबर हैं, सो जानो कि, भगवान्की ओरसे अगुआई भली प्रकार हुई है कभी किसी रीतिमें चूक नहीं हुई है अर्थात् अपना और मित्रका रूप वर्णन करके वेदशास्त्रका संदेह पहुँचानेवालेकी भाँति भेजकर मिलनेको संदेशा भेजा तथा अपना नाम और लक्षण प्रगट किया पीछे मिलनेका उपाय बनाया और अबतक सब काल सब स्थानमें मिलनेके निमित्त सन्मुख और प्राप्त है, ईश्वरकी ओरसे कुछ चूक नहीं सब चूक इस जीवकी है कि कभीभी उससे मिलना नहीं चाहता और न सन्मुख होता है. यदि कोई सन्देह करे कि बात तो मायासे छुटानेकी है, तुम मिलनेकी बात लिखते हो; प्रश्न उत्तर और सन्देह कुछ नहीं है मायासे छूटनेका तात्पर्य ईश्वरसे मिलनेका है और ईश्वरसे मिलनेका तात्पर्य मायासे छूटनेका है. बात एकही है कहनेका फेर है इस निश्चयको कि जीव और ईश्वर पुराने मित्र हैं. ऋग्वेदमें " द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया " इस मंत्रमें स्पष्ट लिखा है श्रीमद्भागवत चतुर्थस्कंधमें

पुरंजनके आख्यानमें इसका विस्तार लिखा है, कि जीव ईश्वर दोनों परस्पर मित्र हैं इसके सिवाय शास्त्रोंमें जहां नवधा भक्तिका वर्णन किया है तो वहां सखाभावकीभी भक्ति लिखी है. यदि जीव और ईश्वर परस्पर मित्र नहीं होते तो सखाभावकी भक्ति और उसकी रीति वेदशास्त्रोंमें क्यों लिखी होती ? इसके आराधनाकी रीति दूसरी निष्ठाओंके अनुसार है भेद यह है कि उनमें स्वामी जानकर सेवा पूजा करते हैं और इसमें मित्ररूपसे सेवा पूजा होती है पुरंजन उपाख्यानमें कहा है कि और भक्ति तो गुरुके उपदेशसे मिलती है, सखाभाव और आत्मनिवेदनकी मैं स्वयं शिक्षा करता हूं जब सखाभावसे भक्तका मन मुझमें लीन होता है, उस समय भगवान् स्वयंही उसके हृदयमें प्रकाश करते हैं. यह रस जिसने पान किया मत्त हो गया. सखाभाववालोंका भाव मनकी रुचिके अनुसार है. जैसे बद्रिकाश्रममें नरनारायण सखा हैं, उनकी प्रीति तप और ज्ञानके चरित्रोंमें है, अर्जुन और भगवान् कृष्णकी प्रीति महाराजोंकी समान, ग्वालबालोंकी खेल और हँसी गोपकुमारोंके समान तथा अयोध्याराजकुमारोंकी प्रीति भगवच्चरित्रोंमें महाराजकुमारोंकी हँसी खेलके समान है, इसी प्रकार सबके भाव पृथक् २ हैं. जिस ओर जिसकी चाह है, उसी भांति वह उसकी आराधना करता है सेवा पूजा तो सात वार नित्य न हो सके तो तीन वारसे तो न्यून न करे स्तोत्रपाठ नाममंत्र जप यह इससे पृथक् है. किसी क्षण ध्यानको उनसे अलग न करे; सब सेवा पूजा उपासना उसीके निमित्त है. यह उचित और परम सिद्धान्त है. इस समय सखाभावकी उपासना माधुर्य और शृंगारके विचारसे विशेष प्रवृत्त है. रामउपासक हो चाहे कृष्णउपासक हो; सिद्धान्त विचारसे जितनी प्रीति और दृढताकी वृद्धि माधुर्यभावसे शीघ्र होती है और भावसे

ऐसी शीघ्र नहीं होती. कुछ दिनोंकी बात है कि; अयोध्यामें महाराजा रामसखा और उनके शिष्य प्रेमसखेजी सखाभावकी भक्ति और ध्वजा तथा भक्तिके देशके राजा हुए. रामसखेजीने इस भावमें एक ग्रंथ लिखा है; उसमें माधुर्यभाव मुख्य रक्खा है तथा व्रजमें जो इस बातका निर्णय किया गया तो वहां विशेप माधुर्यकी प्रधानता सब अवस्थामें योग्य और उचित ठहरी कि; भगवान्‌के व्रजचरित्र सब शृंगार और माधुर्यकेही हैं. भगवान्‌में अनन्यभाव और यह बात कि, उपासकको भूलकरभी अपने उद्धार और मुक्तिके निमित्त दूसरे देवताका चिन्तवन न हो. जिस प्रकार सब निष्ठाओंमें अनन्यता सिद्धान्त है; इसी प्रकार इस निष्ठामें ज्योंकी त्यों है; इस निष्ठा और इसके उपासकोंकी महिमा वर्णन नहीं हो सकती. इस निष्ठासे भगवान् और उनके उपासकोंमें भेद नहीं है. भगवत्‌उपासकोंने इस सखा-निष्ठाकी पांच रसोंमें एक रस वर्णन किया है उसके अनुसार भगव-द्रूप श्रीराम वा कृष्ण, विष्णु, चतुराई, बोल चाल, कटाक्ष हावभाव, पूछने, उत्तर देनेमें प्रवीण, प्रगल्भ, नवयोवन, शोभायमान कि जिनके मुखके सामने सब शोभा और सुन्दरता फीकी है वस्त्राभूपण अंगोंमें सजाये विषयावलम्बन हैं अर्जुन, श्रीदामा, व्रजके ग्वालबाल, दूसरे भक्त सखाभावके आश्रयावलम्बन हैं. सामग्री शृंगार, माधुर्य, हँसी, ठट्ठा, परस्पर खेलना, एक साथ भोजन, शयन, बैठना, उठना आदि विहारवाटिकाको जाना, शृंगार छबिकी सजावट आदि करना यह विभाव और अनुभावकी सामग्री है, तीसरी सामग्री आठों सात्त्विक इस रसमें अपनी प्रवृत्ति करते हैं. यह सखारस शृंगारसे मिश्रित है इस कारण ३३ व्यभिचारी चौथी सामग्री इस रसमें वर्त-मान जाननी. स्थायीभाव इसका यह है कि उस परममनोहर मित्रके स्नेहमें इतनी दृढता और पक्कता हो कि स्वप्नमेंभी मनकी लगन उनके

दूसरी ओर न जाय, उसके प्रेममें चित्तकी वृत्ति अचल मग्न रहे और यही प्रार्थना रहे.

हे श्रीकृष्ण! हे दीनवत्सल! हे प्रणतार्तिभंजन! हे महाराज! मैंने सुना है कि, आपके न्याय और रक्षासे कोई बली किसी दुर्बलको नहीं सता सकता. दीन दुःखी न्याय पाते हैं मेरे निमित्त न जाने वह न्याय और कृपा कहां गई? यह मो भांति भांतिके उपद्रव मुझसे करता है और अनेक जन्मोंसे दीन और दुःखी कर रखा है सो आपकी दयालुता तथा न्यायमें कुछ सन्देह नहीं परन्तु यह मेरी अभाग्य दशा है कि उस पापीके पंजेसे नहीं छूटने पाता. अब आपके द्वारपर दीन हो पुकारता हूं कि एक वार किसी प्रकार उसके उपद्रव और उपाधिसे छुटाकर मेरे मनको अपने रूप अनूपके चिन्तवनमें लगा दीजिये. जो सब वेद और शास्त्रोंका सार है तथा एकान्तभक्तोंका जीवनाधार है.

कवित्त–कर कंजन मंजु बनी पहुँची धनुही शर पंकजपानि लिये। लरिका सँग खेलत डोलत है सरयूतट चौहर हार हिये॥ तुलसी अस बालकसों नहिं नेह कहा जप योग समाधि किये। नर सो खर शूकर श्वान समान कहो जगमें फल कौन जिये॥ १॥ विन गुन मालवारे चलन मरालवारे अधरन लाल वारे शोभा मदभारे हैं। तिलकन भालवारे जलज तमालवारे मूरति विशालवारे दृग अनियारे हैं॥ पीत पटवारे लटवारे नटवारे पूषीकारी लटवारे तू तो मोहनी मन डारे हैं। चोर परवारे चितचोर परवारे सुन मोर परवारे तेरी मोर परवारे हैं॥ २॥

गूढार्थ–श्याम रातको सखीके रहे उससे उसकी मालाका चिह्न इनकी छातीपर होगया जागनेसे मरालसी चाल है, सखीका तिलक लगकर भालपर कई तिलक हो गये हैं वा तिलक बिगन गया है,

पीताम्बरवाला कहनेसे छबि संवारकर जानेका है, लटवाला कहनेसे केश गुंथवानेका भाव है, शेष सरल है धीरा खण्डिता है परन्तु पदपदमें प्रेमरस टपकता है इस भागका उपयोगी है.

अर्जुनकी कथा १.

श्रीअर्जुनके सखाभावका वर्णन किससे हो सकता है कि जिनकी भक्तिभावके वशीभूत होकर पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघन जो बुद्धि और मनसे पृथक् है वह श्रीकृष्ण उनके सारथी हुए. अर्जुन श्रीकृष्णकी बुआके बेटे इनके फुफेरे भाई थे; परन्तु इनका सखाभाव मुख्य था उठना, बैठना, खाना, पीना, क्रीडा, गुप्त मंत्र, मिलना, बोलना, मित्रवत् था. युधिष्ठरभीमादिके सदृश भाईचारेकी रीति न थी. भगवान्‌ने जिस प्रकार इनकी सहायता की थी वह कथा महाभारतमें विस्तार-पूर्वक लिखी है. यहां उसका लिखना उचित नहीं, कारण कि मित्रतामें किसीसे जो कुछ परस्पर भलाई वा उपकार हो तब योग्य है. एक वृत्तान्त निष्कपटताका लिखा जाता है. जब अर्जुन सुभद्राकी अलौकिक सुन्दरता देखकर मोहित हुए और मिलनेके निमित्त अत्यन्त व्याकुल हुए और अपना सम्पूर्ण वृत्तांत श्रीकृष्णसे कह दिया तब श्रीकृष्णको अपने मित्रका पक्षपात अवश्य करना पडा तो आपने लज्जा और कुलकी रीतिको त्यागनकर अर्जुनसे यह कहा कि, भाई! जो मैं तुम्हारे विवाहके निमित्त वसुदेवजी और बलदेवजीसे कहता हूं तो नहीं कह सकता कि वह स्वीकार करेंगे या न करेंगे इस कारण तुम साधुका स्वरूप बनाकर द्वारिकाको जाओ और बलसहित सुभद्राको ले आओ. फिर वसुदेवजी बलदेवजीको आपही प्रसन्न कर लेंगे अर्जुनने श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार ऐसाही किया तो यह देखकर बलदेवजीको अत्यन्तही क्रोध आया और अर्जुनको मारनेके लिये तैयार

हुए तो उसी समय श्रीकृष्ण महाराजने ज्ञान देकर बलदेवजीका क्रोध दूर किया. एक समय अर्जुन महाराज सुभद्राजीके सहित विहारमें थे उस समय श्रीकृष्णने उनको बैठनेके स्थानमें न देखा तो व्याकुल हो गये और उनके वियोगको न सहकर सुभद्राकेही महलमें चले गये और वहां अपनी मित्रताके आनन्दमें मग्न हुए, तथा प्रीतिको पुष्ट किया. इस भगवान्की कृपालुता दीनवत्सलतापर विचारना चाहिये कि आप मित्र, शत्रु, सुख, दुःख, पुण्य, पाप इत्यादि मायाके प्रपंचसे जहांतक मन वाणीकी पहुँच हो परे और निर्लेप हैं, ऐसे होकरभी जो ऐसे चरित्र किये तो भक्तोंको बोध और दूसरोंको भक्तिके निमित्त शिक्षा करते हैं कि; अनन्यभक्त प्रेमी होकर जो कोई जिस भावसे मेरा भजन करता है, मैंभी उसी भावसे प्रगट होकर भक्तकी भावनाको पूर्ण करता हूं. गीतामें इसका प्रमाण भली प्रकार लिखा है.

सुदामाजीकी कथा २.

सुदामाजीकी कथा भागवतमें विस्तारपूर्वक लिखी है और भाषामें अनेकों कवियोंने सुदामाचरित्र बनाया है; इस कारण कुछ संक्षेपसे सुदामाजीकी कथा यहांपरभी लिखता हूं. सांदीपन नाम गुरुके यहां जब श्रीकृष्ण चारों वेद और समस्त विद्या पढते थे उसी समयकी मित्रता सुदामाजीसे थी. जब यह पढ चुके तब इनका उनका वियोग हो गया था. देखनेमें तो सुदामाजी ऐसे दरिद्री थे कि इनके घरमें न भोजन था न वस्त्र था. एक दिन सुशीला नामवाली इनकी स्त्रीने सुदामाजीसे कहा स्वामी! बड़ा आश्चर्य है कि जिनकी मित्रता श्रीकृष्णमहाराजसे है और वह लक्ष्मीके पति हों; सो उसका मित्र ऐसा दरिद्री हो यह बडेही आश्चर्यकी वार्ता है; इस कारण तुम श्रीकृष्ण महाराजके निकट जाओ और अपनी दशाको उनसे वर्णन करो

वह दीनानाथ हैं अवश्यही तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे. सुदामाजीने कहा कि; प्रिये ! मित्रके पास इस दशासे जाना मेरा कदापि योग्य नहीं सुशीलाने इनको भली भांति समझाया और कहा कि स्वामी ! इस समय तुम अवश्यही जाओ. सुदामाजीने बहुतही जानेको मना किया परन्तु इनकी स्त्रीने एक न माना. निदान सुदामाजी चलने लगे तो इनकी स्त्रीने सांठीके कुछ दो तीन मुट्ठी चावल कहींसे लाकर इनके महा मैले जीर्ण अंगोछेमें बांध दिये और कहा कि इनको श्रीकृष्णको भेंट करना. सुदामाजी उन चावलोंको लेकर भगवान्के दर्शनोंकी इच्छासे द्वारिकाको चले. मार्गमें इनको चलते हुए रात्रि हो गई तो जाकर किसी गांवमें निवास किया, इधर भगवान् श्रीकृष्णकोभी अपने मित्रसे मिलनेकी अभिलाषा हुई, सो उसी रात्रिमें सुदामाजीको द्वारिकाजीके निकट ले आये. प्रभात होतेही सुदामाजी चले तो थोडीही दूरपर इनको द्वारिकानगरी दृष्टि आई तो इन्होंने वहांके लोगोंसे पूछा कि भाई ! इस नगरीका क्या नाम है ? तो उन्होंने इस नगरीका नाम इनको द्वारिका बताया; तब तो यह बडे प्रसन्न हुए और स्नान पूजा आदि कर पूछते २ श्रीकृष्ण महाराजकी राजधानीमें आये. द्वारपालोंने इनको देखकर दंडवत् करी और पूछा कि महाराज ! तुम्हारा आगमन कहांसे हुआ ? इन्होंने कहा कि तुम श्रीकृष्णमहाराजसे कह दो कि तुम्हारा बालसखा सुदामा द्वारपर खडा है. यह सुनकर द्वारपालोंने इनका समस्त वृत्तान्त श्रीकृष्णजीसे कह सुनाया और कहा कि महाराज ! एक ब्राह्मण अत्यन्तही दुर्बल शरीर, फटे वस्त्र पहरे हुए आपका स्थान पूछता २ यहां आया और अपना नाम हमको सुदामा बताता है श्रीकृष्ण महाराज अपने परम मित्र सुदामाका नाम सुनतेही जैसे बैठे थे वैसेही उठ खडे हुए और जाकर सुदामाजीका हाथ पकडकर छातीसे लगा लिया और बडे प्रेमसे मिले. दोनों मित्र

जो बहुतही दिनोंके पीछे मिले थे इस कारण परस्पर ऐसे मिले कि मानो एकही तन हो गये. इसके पीछे भगवान् अपने हाथमें हाथ पकडकर रंगमहलमें सुदामाजीको ले गये और अपने बिछे हुए पलंगपर अतिप्रीतिसहित इनको बैठाया और फिर हास्य भावसे इनसे संभाषण करने लगे. इतनेहीमें श्रीरुक्मिणीजी पूजाका उपस्कर लेकर आई तो भगवान् श्रीकृष्ण महाराज स्वयं सुदामाजीके चरण अपने हाथसे धोने लगे.

कवित्त ।

ऐसे बेहाल बिवाइनसों पग कंटक जाल गडे पुनि जोये ।
हाय सखा दुख पाये महा तुम आये इतै न किते दिन खोये ॥
देख सुदामाकी दीन दशा करुणा करके करुणामय रोये ।
पानी परातको हाथ छुयो नहीं नैननके जलसों पग धोये ॥ १ ॥

इसके पीछे फिर श्रीकृष्ण भगवान्ने सुदामाजीके चरण धोकर अपने पीताम्बरसे उनके चरणोंको पोंछा और फिर बोला कि हमारी भाभीने कुछ हमारे लिये दियाभी है? तुममें अब और तरहकी आदत हो गई है; सो कभी तुम्हारे चित्तपर आ जाय तो तुम्हीं भक्षण कर जाओ और हम देखते देखते रह जांय यह सुनकर सुदामाजी लज्जित हुए और जो उनकी बगलमें तंदुलकी गांठ बंध रही थी उसको आप छिपाने लगे. श्रीकृष्णने विचारा वास्तवमें कोई वस्तु इनके काखमें अवश्यही है सो एक ओर तो भगवान् उस वस्तुके लेनेकी चेष्टा करने लगे और एक ओर सुदामाजी लज्जाके मारे छिपाने लगे; इसी झगडेमें जिस वस्त्रमें तंदुल बंध रहे थे सो अत्यन्त जीर्ण होनेके कारण फट गया तो उसमेंके सब चावल बिखर गये. श्रीकृष्णने अतिशीघ्र उनमें एक मुट्ठी चावल लेकर अपने मुखमें डाल लिये और फिर अतिशीघ्र दूसरी मुट्ठीभी भरी

रुक्मिणीजीने अतिशीघ्र श्रीकृष्णका हाथ पकड लिया. किसी २ कविने हाथ पकड लेनेका यह अर्थ वर्णन किया है कि एक मुट्ठी चावलसे तो समस्त संसारकी लक्ष्मी सुदामाजीको दी. अब दूसरी मुट्ठीसे और क्या देनेकी अभिलाषा है ? और कोई २ ऐसाभी लिखते हैं कि, रुक्मिणीजीको यह चिन्ता हुई कि मैं लक्ष्मीका स्वरूप हूं सो दूसरी मुट्ठीके भक्षणसे कहीं स्वामी मुझे न दे दें और फिर किसी २ ने यहभी लिखा है कि, रुक्मिणीजीने यह विचारा कि स्वामी अल्पहारी और कोमल शरीर उत्तम २ पदार्थोंके खानेवाले हैं; सो ऐसा न हो कि कच्चे चावलोंके खानेसे इनको पीडा हो, परन्तु वास्तवमें रुक्मिणजीके हाथ पकडनेका यही तात्पर्य है कि महाराज ! यह वस्तु तुम्हारे मित्रके घरकी है, इसको अकेले खाना योग्य नहीं, वरन यह हम सबको बाटनेकी है और जो यदि कहो कि यह हमारे मित्रने लाये हैं, इसमें दूसरेका क्या काम है तो आपके मित्र तो भूंखे बंगाली कोरे भिक्षुक होते हैं उनको किसी वस्तुके संग्रह करनेकी क्या सामर्थ्य है ? यह वस्तु तो मेरी जिठानीकी कृपासे आपकोभी प्राप्त हुई है. जो यह सबको न दी जायगी तो द्योरानी जिठानी मुझको सर्वदा ताना दिया करेंगी और कहेंगी कि यह किसीको वांटकर नहीं खाती. इतनेहीमें रसोइयेने आकर कहा कि महाराज ! रसोई तैयार हो गई भोजनके लिये चलिये; यह सुनकर श्रीकृष्णजीने सुदामाजीके सहित भोजन किया; इसी प्रकार सात दिन इनको अति प्रसन्नतासे व्यतीत हुए तो सुदामाजी श्रीकृष्णसे बोले कि भाई ! यदि अब आज्ञा दो दो तो मैं अपने स्थानको जाऊं. यह सुनकर श्रीकृष्णने इनको अति प्रीतिसे विदा किया और आप द्वारतक उनके पहुँचानेके निमित्त गये. फिर सुदामाजीने चलते २ विचार किया कि यह आखिरका तो ग्वालनींहीके घरसे पला है

अब यदि राजधानी मिल गई तो क्या हुआ यदि जो कुछ मुझको दे देता तो क्या इसके भंडारमें टोटा आ जाता और एक बात औरभी अच्छी हुई कि मैंने उससे कुछ मांगा नहीं. भगवान्‌ने यह बडी लज्जा रख ली, अब मैं स्त्रीसे जाकर कहूंगा कि तैंने मुझको हठ करके भेजा था, सो उन्होंने अपने द्रव्यको बडे यत्नसे रक्खा है. कारण कि उनको बडे परिश्रमसे मिला है, मुझे कुछभी नहीं दिया है, फिर विचार किया भगवान्‌ने इस कारणसे न दिया होगा कि जब इसके पास धन होगा तो भजन न हो सकेगा; इस प्रकारकी चिन्ता करते २ अपने ग्रामके निकट आये तो उस नगरीको द्वारिकासेभी अधिक सुसज्जित पाया. यह देखकर इनको बडा आश्चर्य हुआ और पूछा कि यह नगरी किसकी है और इस नगरीका क्या नाम है तो वहांके मनुष्योंने उत्तर दिया कि यह नगरी आपहीकी है और इसका सुदामापुर नाम है. इस प्रकारकी बातें परस्पर हो रही थी यह सुनतेही इनके दास और दासी उठ खडे हुए और अतिशीघ्र सुदामाजीको महलमें लिवाकर ले गये. उसी समय इनकी स्त्री सुशीला आनकर इनके चरणोंमें गिर पडी; तब सुदामाजीने जो भगवान्‌की ऐसी कृपा देखी तो आपने जो भगवान्‌को मार्गमें कटु वचन कहे थे उनकी चिन्ता करने लगे; फिर वह द्रव्यकी प्रसन्नतासे भगवान्‌के आराधनको न भूले, वरन दिन २ भगवान्‌में अधिक प्रीति होती गई; फिर ऐसी भगवान्‌की कृपा तथा भक्तवत्सलता मित्रताके भावको जैसा कि भगवान्‌ने निर्वाह किया, इसको पढ तथा सुनकर जो निर्भयानंदमें मग्न नहीं होता. उसने वृथाही अपनी माताके कोखमें जन्म लेकर उसके स्वरूपको बिगाडा और जिसके नेत्रोंमें प्रेमका जल न आता वह अंधे हैं.

ब्रजग्वालोंकी कथा ३.

नंदनंदन महाराज श्रीकृष्णके अनेक ग्वालबाल सखा हैं उनमें श्रीदामा, मधु, मंगल, सुबल, सुबाहु, भोज, अर्जुन, मंडल यह आठ सखा परम मित्र सर्वदा श्रीकृष्णके साथ रहा करते थे और सब सखाओंमें शिरोमणि हुए. जिस प्रकार राधिकाजीके साथ ललिता, विशाखा, श्यामलादि आठ सखी हैं; इनसे अधिक अगणित सखाओंके रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकंठ, मधुव्रत, रसाल, विशल, प्रेमकंद, मकरंद, आनंद, चंद्रहास, पयद, बकुल, सरसदान, शारदा, बुद्धि आदि जो सखाभाव रखते हैं, तौभी सेवाभक्तिमें घरमें क्या वनमें सर्वदा सबही जगह उपस्थित रहते हैं. सखाभाववालोंको कि जितने भाव पृथक् २ हैं, इन सबके आदि अधिकारमें ब्रजके ग्वालबाल सखाओंमें हैं कारण कि उनको उस अधिकारमें कुछ न्यूनाधिक नहीं होती है, यह भगवान्के नित्यविहारमें सर्वदा इनके साथ रहते हैं और सबही गोलोकके निवासी हैं. जब भगवान्का अवतार होता है तो वहभी उनके साथ २ आते हैं; फिर जो कोई भगवान् अथवा भगवान्के चरित्रोंकी महिमाको लिख सके तो उनकी महिमा लिखनेकोभी विचार करे; जैसी महिमा भगवान्की अपार है वैसीही उनकी महिमा है. उनके परम पवित्र चरित्रोंका यह माहात्म्य है कि जो कोई भ्रमसेभी उनके क्रीडा अथवा चरित्र हास्य गोष्ठी विहल आदि चरित्रोंको जो सुनता है या गान करता है तो भगवान् उसको बलसे अपनी भक्ति देकर उसके वशीभूत हो जाते हैं. इस प्रकारके सखाभावके चरित्र अगणित हैं; उनका शेष और शारदाभी वर्णन करनेको समर्थ नहीं सो इस पुस्तकके पवित्र होनेके लिये यहांपर एक दो चरित्र लिखता हूं; श्रीकृष्ण जब वनमें गऊ चरानेके लिये जाते तो दो पक्ष बनाकर क्रीडा किया करते थे एक दिन बलदेवजीका पक्ष तो जीता और

श्रीकृष्णका पक्ष हारा. सो वचनके अनुसार एक २ हारेहुए सखाने जीतेहुएको अपनी चड्डी चढाया तो श्रीदामाजीके बांटेमें श्रीकृष्णजी आये और जहां चढाकर ले जाते थे वह स्थान दूर था. सो थोडीही दूर चलनेके कारण श्रीकृष्णको पसीना आगया और चलते २ हार गये तो प्रथम तो श्रीदामाकी खुसामत करी और बोले कि मैं तो आधी दूरतक ले जाऊंगा. परन्तु वह न माना तो अपना क्रोधकर उससे बोले कि अच्छा मेरा कभी तो दाव पडेहीगा. कल मैंभी तुमको समझूंगा परंतु श्रीदामाने इसपरभी कुछ ध्यान न दिया तो आप चपलताई करने लगे पर श्रीदामाभी इनको ऐसा गुरु मिला कि उसने अपना एक पगभी न दिया. श्रीकृष्णमहाराजने उसी स्थानपर जाकर उतार दिया; फिर जब श्रीकृष्णमहाराजको मथुरामें कंसने बुलाया तो इन्होंने वहां जाकर बडे २ मल्ल बलवान् मस्त हाथीको विना परिश्रमही देखते २ मारडाला. फिर जब उसी रंगभूमिमें जब कुस्ती करनेकी वारी व्रजके ग्वालबालोंकी आई, सो कुस्ती करते २ कभी तो श्रीकृष्ण उनको पृथ्वीपर डाल देते थे और कभी वह इनकी ऐसी खबर लेते थे कि इन्हें भूमिसे उठनेकीभी सामर्थ्य नहीं रहती थी. धन्य है भगवान्की भक्तवत्सलता और प्रेमकी पूर्णताका ! जिस समय सूर्यग्रहण हुआ तो भगवान् द्वारिकासे कुरुक्षेत्रपर आये, तो इनके साथ सब व्रजवासीभी आये, परस्पर कोई दिनके पीछे मिले तो अपने २ प्रेमभावके अनुसारही मिले और भगवान्के सखा उसी अपने रंगमें रंगे हुए अपने दाव लेनेको सन्नद्ध हुए. श्रीकृष्ण सच्चिदानंद निराकारकोभी ऐसा रंग चढा कि उनके नेत्रोंसे प्रेमके आंसू बहकर चरणोंतक आये ।

दोहा–व्रजग्वालनके चरित अति, कैसे वरने पार ।
जिनके सँग विहरत सदा, मोहन नन्दकुमार ॥

गोविन्दस्वामीकी कथा ४.

गोविन्दस्वामी महाराजका सखाभावका चरित्र भगवद्भक्तोंको तो परमानंदका देनेवाला है और जो भक्त नहीं है उनकोभी भक्तिका देनेवाला है वही स्वामी उस भावकी आराधनासे थोडेही कालमें उस फलको प्राप्त हुए कि, सर्वदा गोवर्धननाथजीके साथ खेलमें लीन रह-कर अपने परम मित्रके रूप अनूपमें मग्न रहा करते थे. एक दिन दोनों जने गिल्ली डंडा खेल रहे थे. सो जब गोविन्दस्वामीका दाव आया तो नटनागर महाराज भागकर मंदिरमें जा छिपे, गोविन्दस्वामी इनके पीछे २ भागकर गये और गिल्ली भगवन्मूर्तिको फेंककर मारी तो उधरसे भगवान्के हिमायतीभी पुजारी लोग इनके पीछे दौडे और ऐसी मूढता गोविन्दस्वामीकी देखकर इनको धक्के देकर मंदिरसे बाहर निकाल दिया, तो गोविन्दस्वामी भगवान्को विमुख जानकर तालावके किनारे आकर बैठ रहे और गालियें देकर कहने लगे कि कभी तो मंदिरसे बाहर निकलेगा अब तो हिमायतियोंमें जा बैठा, ऐसी मार दूंगा कि जो तुझको कई दिनतक उसकी याद रहे. तब नंदकुमार श्रीकृष्णमहाराज चिन्ता करने लगे अब तो यह भली प्रकारसे मेरे निमित्त बैठा है, और मुझसेभी विना वनमें विहार किये रहा नहीं जाता और जो बाहर निकलूंगा तो न जाने यह क्या करेगा. इस चिन्तामें कुछभी भोजन न किया और गुसांई विठ्ठलनाथजी परम भक्त थे; सो उनसे बोले कि मुझसे गोवि-न्दस्वामीके डरसे कुछ खाया नहीं जाता. यदि जो तुम मुझको कुछ भोजन खिलाना चाहो तो गोविन्दस्वामीको प्रसन्न करो. गोविन्दस्वा-मीका दाव था सो विना दाव दिये मैं मंदिरमें चला आया; अब वह वैसेही विना अर्थ मुझे गालियें देता है और जब मैं बाहर जाऊंगा तो

न जाने वह मेरी क्या दशा करेगा. इसलिये जब उसका प्रथम क्रोध दूर हो जायगा तभी मुझको खाना पीना सुहावेगा; यह सुनकर विट्ठलनाथजी उसी समय गये और गोविन्दस्वामीकी विनती कर उनको मनाकर लाये और मंदिरमें भगवान्‌के पास भेज दिया; यहांपर दोनोंका क्रोध शान्त हो गया और परस्पर दोनों मित्र गले लगाकर मिले; इसके पीछे तब नंदलाल महाराज श्रीकृष्णने भोग लगाया. एक समय गोविन्दस्वामी मूत्रपुरीषके निमित्त वनमें गये थे; सो जब जाकर बैठे तो स्वयं महाराजने टेसूंके फलोंकी मार दी और ऐसे अनेक चरित्र किये कि गोविन्दस्वामीने उसी संज्ञासे उठकर ऐसे आकके फल मारे कि महाराज सकुचाकर भागने लगे बहुत दूर जाकर गोविन्दस्वामीकी माता ढूंढती २ आई तो गोविन्दस्वामी दुबकर घरको चले गये फिर लडाई समाप्त हो गई. एक वार भगवान्‌के मंदिरमें भोगके लिये थाल जाता था, और गोविन्दस्वामी मार्गमेंही प्रसाद लेनेके लिये बैठा था, सो पुजारीसे मांगा कि हमको भोजन दो पीछे नंदनंदन महाराजको देना. पुजारीने देनेको मना किया तो गोविन्दस्वामीने थाल छीन लिया और सब खा गये, तब पुजारी क्रोध करके गुसांईजीके पास आया और कहने लगा कि देखो भगवान्‌के भोगका थाल गोविन्दस्वामी लूटकर खा गया है. गुसांईजीने उसी समय गोविन्दस्वामीको बुलाया और बुलाकर पूछा कि यह क्या झगडा है? तो गोविन्दस्वामीने उत्तर दिया; कि तुम अपने लालाको तो अच्छे २ भोजन करा २ कर लडाईमें चतुर कर देते हो और वह प्रथमसेही चोकस होकर वनमें चला जाता है और मुझको जो पीछे भोजन मिलता है तो दुःखी हुआ ढूंढता फिरता हूं. फिर मैंभी पहलेहीसे खाकर क्यों न तैयार हो जाऊं? तब गुसांईजीने प्रसन्न हो भगवान्‌की भक्ति और गोविन्दस्वामीके सखाभावका प्रताप पुजारीसे

वर्णन किया और आगेको कह दिया कि इनकी इच्छासे तुम भगवा-न्की इच्छा जाना करो. गोविन्दस्वामीकी कविताको जो कोई पढता है उसका चित्त भगवान्में लग जाता है और अष्टछापमें इन महात्माकी गिनतीभी है. कीर्तननिष्ठामें नंददासजीकी कथामें अष्टछापके नाम लिखे हैं उसमें दोकी भूल है. गोपालसिंहनिर्मित तुलसीशब्दार्थप्रका-शमें सूरदास, कृष्णदास परमानंद, कुमनदास, वल्लभाचार्यके शिष्य चतुर्भुजदास, नंददास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी यह चारों वल्ल-भाचार्यके पुत्र विठ्ठलनाथजीके शिष्य थे. यह आठों वल्लभकुलके प्रभावसे भगवत्पदको प्राप्त हुए. उनके ग्रंथ गोकुल व वल्लभाचार्यकी संप्रदायमें मिलते हैं.

गंगाग्वालकी कथा ५.

ब्रजनाथजीके चेले गंगाग्वालजी सखाभावके परम भक्त और किसी सखीका अवतार हुए. जिन्होंने सब सखी और ब्रजके सखाओंका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया है; उन नंदनंदन श्रीकृष्णमहाराजके साथ क्रीडाका जो परमानंद है सो उसी रसमें यह मग्न रहते थे. इनको ब्रजकी भूमि अधिक प्यारी थी और भगवान्के चरित्रोंमें अधिक प्रेम रखते थे. यह भगवान्के कीर्तनमें ऐसे हुए कि उस समय ऐसा कोईभी नहीं था. एक समय वृन्दावनमें बादशाहका आगमन हुआ और इनके गानेकी प्रशंसा सुनकर इनको बुलाया तो इन्होंने आनेका हठ किया परन्तु जब वह न माने तो आप बादशाहके निकट गये तो इनके साथ उस समय वल्लभाचार्यजीभी थे; तो उनके सामने होनेसे सारंग राग गाया तो उसको सुनकर सब जने अत्यन्त प्रसन्न हुए. बादशाहने जब इनका ऐसा प्रताप देखा तो हाथ जोडकर खडा हो गया और बडी विनती करी फिर कहा कि तुम मेरे साथ चलो; इन्होंने उत्तर

दिया कि मैं व्रजभूमिको छोडकर कहींभी नहीं जाता तब बादशाहने इनसे बहुतही कहा परन्तु एक न माना तो फिर इनको वह जबरदस्ती पकडकर ले गया और दिल्लीमें ले जाकर नजरबंद करके रक्खा. राजा हरिदासको जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने इनको छुटा दिया, फिर यह वहांसे व्रजमें आये और फिर इन्होंने अपने परम मित्रको देखकर अपना पुनर्जन्म माना और ग्वालकी पदवी सखाभावसे विख्यात हुए.

सवैया ।

पगिया शिर लाल हरी कलँगी उर चंदन केशर खोर दिये ।
मनमोहन रामकुमार सखी अनुहार नहीं जग जन्म लिये ॥
पग नूपुर पीत कसे कछनी वनमालतिकी वनमाल हिये ।
विहरे सरयूतट कुंजनमें तहँ राम सखे चितचोर लिये ॥

अथ

तेईसवीं निष्ठा शरणागति और आत्मनिवेदनकी महिमा ।

(इसमें १० भक्तोंकी कथा है.)

श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी छत्रचमररेखाको दंडवत् करके मन्वन्तर अवतारको प्रणाम करता हूं, कि विठूरमें वह अवतार धारण करके सब धर्मोंको प्रगट किया. शरणागति और आत्मनिवेदनकी महिमा लिखनेसे पहले एक बात यह लिखनेके योग्य है कि जो भक्त वन्दनानिष्ठाके उपासक हैं वहभी यहां लिखे जांयगे.

कारण यह कि वन्दनका अभिप्राय न्योछावर हो जानेका है, वंदन और शरणागतिमें केवल इतनाही भेद है कि वन्दन तो बाहर न्योछावर और अर्पण होनेको कहते हैं और शरणागति बाहर और अन्तर दोनोंके अर्पण और भेंट करनेको कहते हैं जैसे कि कीर्तन और स्मरण, कीर्तन उसको कहते हैं कि जो भगवान्‌का नाम और भजन केवल मुखसे हो और स्मरण वह है जो मनसे हो वास्तवमें दोनों बातें एक हैं. मनसेही अथवा वचनसे स्मृति रहनेका आशय है, इस कारण स्मरणभी कीर्तननिष्ठामें लिखा गया है, इसी प्रकार वंदनिष्ठाकोभी शरणागतिसे मेलपूर्वक कहा है. यहभी जाने रहो कि शरणागति और आत्मनिवेदन एकही बात है, इसका वर्णन इसी निष्ठामें विस्तारसे होगा, कोई उपासक विशेषकर रामानुजसंप्रदायवाले भगवत्प्राप्तिका हेतु मुख्य कर शरणागति मानते हैं और कहते हैं भगवान्‌की प्राप्ति दो प्रकारसे है. एक भक्ति दूसरे शरणागति सो भक्तिके योग्य तो वह है कि जिनको अपने परिश्रम और उपायका दृढ भरोसा होय इस जन्ममें वा अनेक जन्मोंमें अपने पुरुषार्थसे भगवान्‌को प्राप्त होंगे, तथा भजनके विश्वाससे किसीका भय नहीं करते और यदि इस जन्ममें मनोरथ पूर्ति न हुई तो होनेवाले जन्मोंमें आगेको यह भय नहीं कि हमको भगवद्भक्ति न होगी. भगवद्गीताके वचनानुसार कि अनेक जन्ममें सिद्धिको प्राप्त होकर परम गतिको जाता है, दूसरा यह वचन है कि हे अर्जुन! मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता, ऐसे अनेक वचन हैं, शरणागति वह है कि जिस समय भगवान्‌में दृढ विश्वास करके शरण हुआ और इस लोक परलोकका भार भगवान्‌पर डाल दिया उसी समयसे उसको किसी उपाय और पुरुषार्थका प्रयोजन नहीं. यदि उपाय पुरुषार्थकाभी भरोसा हो तो शरणगातिमें न्यूनता है.

न उसका नाम शरणागति और न वह शरणागतिके फलको पाता है. जैसे जब मेघनादने महावीरजीको ब्रह्मफांससे बांधा तो कुछ उपाय न किया. यद्यपि वह पतली थी उसको विश्वास था कि यह ब्रह्मफांससे न छूटेंगे, उसके विश्वासके अनुसार महावीरजी बंधे रहे और जब वह विश्वास छूट गया मोटे २ रस्सोंसे महावीरजीको बांधा तो महावीरजी ब्रह्मफांस और रस्सोंको तोडकर निकल गये, इसी प्रकार भगवद्भक्ति व शरणागतिके वशीभूत होकर कुछ और भरोसा वा विश्वास समझा तो शरणागतिका रूप कहां रहा. भक्तिमार्गके चलनेवालोंका यह सिद्धान्त है कि श्रवण कीर्तन इत्यादि जो भगवद्भक्ति है उनमें प्रेम और स्नेहका होना विशेष चाहिये. जब वह प्रेम परिपक्व और दृढताको पहुँच जायगा, सोई फल है. उसके आगे फिर कुछ कर्तव्य शेष नहीं रहता न किसी साधनकाही उसको प्रयोजन है. अब इस बातका निर्णय कर्तव्य है कि शरणागति और आत्मनिवेदनमें क्या भेद है और जो भेद नहीं है तो शरणागति और भक्तिमार्गवालोंकी परस्पर बोलचाल क्या है, सो जाने रहो कि शरणागति और आत्मनिवेदन एक बात है. उसीको प्रपत्ति न्यास और त्याग कहते हैं, जिस प्रकार घडेके कई नाम कलश कुम्भ और घट हैं, इसी प्रकार ऊपर लिखे हुए शरणागतिके कई नाम हैं. केवल एक वचनका भेद उनमें यह है कि भक्तिमार्गवालोंने तो शरणागतिको भक्तिका एक अंग समझा है; अर्थात् यह कहते हैं कि भगवत् शरण होकर दास्य वा वात्सल्य अथवा शृंगार वा श्रवण कीर्तन आदि भक्तिका करना योग्य है. उस भक्तिसे उद्धार होगा और शरणागतिके उपासकोंमें शरणागतिहीको उद्धारके हेतु मुख्य समझा और कहते हैं शरणागति होनेपर फिर किसी बातका प्रयोजन नहीं. शरणागतिही दोनों

लोकका कार्य करती है, सो यह दोनों मार्गवालोंका सिद्धान्त निश्चय लिखा गया है, परन्तु जब कि शरणागतिके उपासनावालोंको शरणागतिके विना और उपाय नहीं है, तो बोलनेका भेद जो ऊपर लिखा है, सो नाममात्रका भेद विश्वास बढानेके निमित्त है. शरणागतिकी बडाई महिमा कौन वर्णन कर सकता है? सब प्रकारकी भक्तिका सार मेरी शरणागति है. भगवान्‌ने चौथे स्कंधमें कहा है कि सख्य और आत्मनिवेदनको मैं स्वयं शिक्षा करता हूं इससे निश्चय हुआ कि सब प्रकारकी भक्तिका सार व फल शरणागति अर्थात् आत्मनिवेदन है. जहांतक जो मंत्र देखनेमें आते हैं सबमें शरणागतिको मुख्य रक्खा है. विवरण उसका यह है कि किन्हीं मंत्रोंमें तो शरणागतिका खुला हुआ पद लिखा है कि मैं श्रीकृष्ण नारायण रामचन्द्रकी शरण हूं किन्हीं मंत्रोंमें नमः पद लिखा है. नमःके अर्थ दण्डवत् और वंदन करनेके हैं और वन्दनाका तात्पर्य अर्पण अथवा भेंट वा शरीरसे निवेदन करना है, कि जिसको बलिहारी वा न्योछावर होना कहते हैं, जब कि दण्डवत् शरणागति आत्मनिवेदन एकही बात है और एकही परिणाम है तो निश्चय है कि सब मंत्र भगवच्छरणागतिको वर्णन करते हैं और शरणागतिही सर्वत्र मुख्य वर्णन की गई है. जब कि सब प्रकारकी भक्ति उपासनाका निश्चय केवल मंत्रके ऊपर है और मंत्रोंसे शरणागतिकी बडाई दृढ हुई, तो शरणागतिको सब उपासना और सब भक्तिमार्गोंमें मुख्यतर होनेमें क्या संदेह रहा? सब उपासना और निष्ठाओंमें शरणागतिकी बडाई इससेभी दृढ हुई कि भगवान्‌ने गीतामें कहा है, कि जो मेरी शरण होते हैं वह मेरी मायाको तरते हैं. जब भगवान् ज्ञान भक्ति वैराग्य योग कर्मका उपदेश अर्जुनको कर चुके, तब फिर कहा जो सबसे अधिक गुप्ततम बात है सो मैं तुमसे कहता हूं. कारण कि तुम मेरे प्यारे सखा और बुद्धिमान् हो सब

धर्मोंको छोडकर मेरेही एक शरण हो मैं तुमको सब पापोंसें अवश्य छुटा दूंगा. किसी प्रकार शोच मत करो, इस शरणागति उपदेशके पीछे फिर कोई उपदेश भगवान्ने नहीं किया, इससे विदित हो गया कि सब धर्मोंका परिणाम पदवी और तात्पर्य शरणागति है इससें अधिक और कोई भगवद्धर्म नहीं. सब भक्ति आपसे आप शरणागतिसे प्राप्त हो जाती है अथवा उसके अंग हैं. जब बिभीषण भगवच्छरण आया तो सुग्रीवादिने उसको बन्दी करनेकी सम्मति प्रकाश की, तब रामचन्द्र बोले जो कोई मेरी शरण होकर यह कहता है कि मैं तुम्हारा हूं उसको मैं सब लोगोंसें निर्भय कर देता हूं, यह मेरी प्रतिज्ञा है. " अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येदद्व्रतं मम " वाल्मी० गीता और वाल्मीकिमें ये दो श्लोक " सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥" मंत्रोंमेंभी गिने जाते हैं इन वचनोंसे पूर्ण सिद्धान्त हो गया कि शरणागतिही उद्धार करनेको समर्थ है. लिखाभी है गजराज और बिभीषणने कोई साधन नहीं किया केवल शरणागतिके प्रभावसेही कृतार्थ हो गये. जगत्में यह रीति प्रसिद्ध देखी जाती है कि कैसाभी पापी नीच किसीकी शरणमें जाता है, उसके अवगुण और अन्यायपर कभी दृष्टि नहीं दी जाती. सबसे प्रथम उसके कार्यसिद्धिपर दृष्टि दी जाती है इसी प्रकार जब यह जीव सब भरोसेको त्यागकर भगवत्शरण होगा, तो वह परमात्मा जो सब व्यवहारोंका ज्ञाता है क्यौं न दोनों लोकका मनोरथ पूर्ण करेगा ? सो विचार दृष्टान्त रीति और प्रमाणसे यह भलीभांति निश्चय हो गया कि, भगवत्शरणागति उद्धारके निमित्त समर्थ और स्वतंत्र है दूसरे किसी साधनका प्रयोजन नहीं, सो उस शरणागतिका यथार्थ रूप यह है कि दोनों लोककी प्राप्तिकी चिन्ता और शोच दूर करके सब अपना भार भगवान्के ऊपर छोडकर

अपने आपको भगवान्के समर्पण कर दे और प्रतिक्षण यह विश्वास दृढ बना रहता कि भगवत् शरणागतिसे इस लोक और परलोकके सब काम स्वयं हो जांयगे. मेरी चिन्ता स्वयं भगवान्को है, जिस समय जो भगवत्शरण होता है अनेक जन्मोंके पाप उसी समय दूर हो जाते हैं; परन्तु कोई इस शरणागतिके छः भेद कहते हैं. प्रथम यह कि जो शरणागतिके समय भगवद्धर्म शास्त्रोंमें लिखे हैं. उनका आचरण करना, दूसरे भगवद्धर्मसे विरुद्ध शास्त्रनिषेध कार्योंका न करना, भगवद्भक्तोंकी प्रीति और सेवा करना, तीसरे दृढ विश्वास रखना कि मैं जो भगवत्शरणागत हूं भगवान् मेरे सब अपराधोंको अवलोकन न करके निश्चय क्षमा करेंगे. चौथे यह कि सिवाय एक भगवान्के दोनों लोकमें किसीको रक्षा कल्याणके निमित्त स्वप्न- मेंभी न समझना. पांचवां यह कि यह भगवान्की मूर्ति जैसे शालिग्राम इत्यादि अथवा मानसी स्वरूप भगवान्के आगे खडा होकर अपनी दीनता और अपराध वर्णन करना कि हे प्रभो! मैं अपरा- धी और दीन हूं. सिवाय आपके मेरा कहीं ठिकाना नहीं, सो आप पतितपावन दीनवत्सल हैं, तो यह एक सम्बन्धभी आपसे रखता हूं कि मुझसे अधिक पतित और दीन कोई नहीं. मेरा उद्धार आपसे होगा. छठा अपने आत्मा अर्थात् अन्तर बाहरकी ममता सब भग- वत् समर्पण कर देना; सो इस प्रकारकी शरणागति निःसन्देह विना दूसरे किसी साधनके इस संसारसागरसे एक क्षणमें पार उतार देगी. हे श्रीकृष्णस्वामी! हे दीनवत्सल! हे पतितपावन! हे अधमउद्धारन भगवन्! मैं जैसा हूं वैसा आपहीका हूं मेरे ऊपर कृपाकी दृष्टि हो कि आपका चिन्तवन दिनरात करता रहूं. जो स्वरूप वैकुंठका धाम निष्ठामें लिखा है, उसके मध्यमें निज धाम भगवान्के विहारका है, कि उसके सहस्र खम्भ हैं और सब भीतें प्रकाश-

मान मणियोंसे जडी हैं बीचमें सहस्रदल कमल और ये सब दल मंत्ररूप हैं अर्थात् जितने देवताओंके मंत्र उन दलोंपर चिह्नित अंकित हैं, उसके ऊपर शेषजी महाराज मसनदकी भांति हैं और शेषजीके ऊपर लक्ष्मीनारायण परम शोभा और माधुर्यके धाम विराजमान हैं, भगवान्के स्वरूप और प्रकाश परम देदीप्यमान के आगे करोडों सूर्य और चन्द्रमा जो एक संग उदय होकर एक बार प्रकाश करें तो करोडवें अंशकोभी नहीं पहुँचे. चरणकमलोंके नख कि जिनका शिव ब्रह्मादिक ध्यान करके कृतार्थ होते हैं और उनको शास्त्रोंने मुक्तिका स्थान लिखा है; इस प्रकार प्रकाश करनेवाले हैं, कि मानो भक्तोंके हृदयको प्रकाश करनेके निमित्त करोडों महामणियोंके पुंज हैं और चरणतलसे उन चरणोंको ऐसी लाली है, कि जितनी ज्योति और शोभा सब ब्रह्माण्डोंमें है उसीसे प्रगट हुई है और ऊपरसे ऐसी शोभा चरणोंकी है कि सब शोभा उसी सम्बन्धसे है. कडे घुंघरू विराजमान पीताम्बर धारण किये उसपर क्षुद्रघंटिका यज्ञोपवीत शोभायमान मणिगण तुलसी मंजरी फूलोंकी माला कौस्तुभमणि कंठमें धारे सौरभसे भँवर गुंजार रहे; चारों भुजाओंमें कडे पहुँची बाजूबंद आदि भूषण शंख चक्र गदा पद्म शोभायमान, मुखारविन्द देदीप्यमान भालपर तिलक शोभित मकराकृत कुण्डल कानोंमें पहरे शिरपर किरीट मुकुट, पीताम्बर आदिकी मनमोहनी पहिरन श्रीवत्सचिह्न वक्षस्थलपर और आप लक्ष्मीजी वामभागमें वैसी शोभासे विराजमान और विष्वक्सेनादि पार्षद कैंकर्यमें तत्पर हैं.

अक्रूरजीकी कथा १.

शास्त्रोंमें अक्रूरजीको वंदन निष्ठाके उपासकोंमें लिखा है यह सुफल्क यदुवंशीके पुत्र थे और इनका निवास कंसके राज्यमें था परन्तु यह भगवान्के चरणोंमें दृढ विश्वास रखते थे, इस कारण कंसकी

संगतिका कुछ फल नहीं हुआ. फिर जब कंसने अक्रूरजीको श्रीकृष्णके लानेके लिये मथुरामें भेजा, तो यह अत्यन्तही प्रसन्न हुए और विचारा कि इसी मिससे उन भगवान् श्रीकृष्ण महाराजके चरणकम-लोंके दर्शन करूंगा. जो भगवान् सम्पूर्ण देवतोंके स्वामी हैं. उनके चंद्रमुखको देखकर अपने नेत्र सफल करूंगा कि जिनके कारण समस्त व्रजकी सुन्दरियें चकोरकी समान उनके रूप अनूपके दर्शन कर तृप्त नहीं होतीं फिर जब उनके चरणोंमें जाकर दंडवत् करूंगा तो वह अपने कोमल करोंसे उठाकर मुझको अपनी छातीसे लगावेंगे जिनकी छाया कल्पवृक्षकी समान नित्य भक्तोंके मस्तकपर रहती है ऐसे मनोरथ करते हुए जब वृन्दावनके पास पहुँचे; तो व्रजभूषण महाराजके चरणोंका चिह्न पहँचानकर प्रेमसे व्याकुल हो गये और उन चिह्नोंको अपना इष्टदेव जानकर दंडवत् करी और प्रेममें भरे हुए जहां चिह्न देखते वहांही दंडवत् करते. इस प्रकार चलते २ नंद-जीके घरपर पहुँचे. श्रीभक्तवत्सल महाराजने इनके मनकी वांछा जानकर उनकी इच्छा पूर्ण करी और अत्यन्त प्रीतिसहित बलदेव-जीके साथ उनसे मिले; फिर जब प्रभात हुआ तो नंदजी बालगोपा-लोंसहित यमुनाजीपर गये तो अक्रूरजीको स्नेहके मारे यह भ्रांति हुई कि श्रीकृष्णमहाराज और बलदेवजी परम सुकुमार और शोभायमान बालक हैं. मुझसे यह कैसी विकट मूर्खता हुई है कि इनको ऐसे दुष्ट और योधा कंसके पास ले जाऊं श्रीकृष्णभगवान्‌ने उनके मनकी चिन्ताको अवश्यही दूर करना विचारा; इस कारण स्नानके समय अक्रूरजीको यह चरित्र दिखाया कि कई वार भगवान्‌को बलदेवजीके सहित यमुनामें और रथमें दोनों स्थानोंमें देखा और फिर यह देखा कि आप शेषशय्यापर श्यामसुन्दर स्वरूप और किरीट, मुकुट मकराकृत कुंडल और अनेक आभूषण पहरे योग्य २ स्थानपर कौस्तुभमणि

और पीताम्बर पहरे हुए, शंख चक्र गदा और पद्म हाथोंमें विराजमान हैं ब्रह्मा, शिव, यम, काल और यक्ष, राक्षस, गंधर्वादिक चारों ओर भयसे कांपते हुए स्तुति करते हैं; उसी समय अक्रूरजीका संदेह दूर हो गया और यमुनाजीसे बाहर निकले फिर अति प्रेममें भरकर दंडवत् करी और मथुराको गमन किया. फिर जब श्रीकृष्णजीने कंसको मारा तब आप स्वयं अक्रूरजीके गृहको पधारे और उनको भक्तिका वर देकर कृतार्थ किया फिर जब भगवान् मथुराको छोडकर द्वारिकाको गये तो यादवोंकी अक्रूरजीके साथ शत्रुता हो गई और स्यमंतक-मणि भगवान्के संकेतके अनुसार लेकर अक्रूरजी काशीको चले गये; तब उसी समय द्वारिकामें महादुर्भिक्ष काल पडा. कालके पडनेसे सम्पूर्ण द्वारिकावासी दुःखित हो गये फिर जब अक्रूरजीको लाये तभी काल निवृत्त हुआ. यहांपर भगवान्की भक्तिका एक औरभी प्रताप लिखनेके योग्य है कि, स्यमंतक मणि ऐसी थी कि यह जहां रहती सो आठ भार सुवर्णके सर्वदा आपही आ जाते और निर्धनता समीप नहीं आती थी परन्तु उसमें एक अवगुणभी ऐसा था कि जहां-पर रहती उसीका बिगाड किया करती. प्रथम तो सत्राजित मारा गया; फिर जब उसका भाई लेकर भाग गया तो वहभी मरा. फिर जब जाम्बवंतके पास गई तो वह भगवद्भक्तिके होनेसे जाम्बवंतके पास बहुत बिगाड तो न कर सकी परन्तु इतना तो अवश्यही करा कि उसकी हार हुई. फिर जब श्रीकृष्णके पास गई तो बलदेवजीको भगवान्की ओरसे संदेह हुआ फिर जब अक्रूरजीके पास गई तो उस-की सम्पूर्ण अशुभता दूर हो गई और पूर्ण फल हुआ. ऐसे चरित्रोंसे भगवान् अपनी भक्तिका प्रताप प्रगट करते हैं नहीं तो यह सबही जानते हैं कि; भगवान् एक क्षणमें करोडों ब्रह्मांडोंका नाश कर सक्ते हैं उनको बुरे भलेसे क्या प्रयोजन है ?

विंध्यावलीकी कथा २.

राजा बलीकी पटरानी विंध्यावली भगवान्‌की परम भक्त और पतिव्रता हुई, जिस समय भगवान्‌ने राजा बलीसे तीन चरण पृथ्वी मांगी थी और उस समय उसके गुरु शुक्राचार्यजीने उसको समझाया कि हे राजन् ! यह साक्षात् विष्णु नारायण हैं तू इनको दान मत दे; उस समय यह रानी प्रेममें मग्न हो गई और अपने भाग्यकी प्रशंसा करती हुई वार २ राजासे बोली कि तुम संकल्प करो मैं जलका पात्र ले आई ऐसी शीघ्रताका कारण यह था कि कहीं ऐसा न हो कि शुक्राचार्यजीके कहनेसे राजाका मन दानसे हट जाय. फिर जब राजा बलीने भगवान्‌को संकल्प दिया तो भगवान्‌ने दो पैरोंसे दोनों लोक नाप लिये तो राजासे बोले कि, बता तीसरे चरणसे क्या नापूं ? यह सुनकर राजा बलीने विचार किया कि अब क्या उपाय किया जाय ? भगवान्‌ने इतनेहीमें बलीको बांध लिया तो रानीको राजाके पकडनेका कुछभी शोच न हुआ वरन यह आनंद हुआ कि राजा बडा भाग्यशाली है जो उसको भगवान्‌ने अपने चरण तथा हस्तकमलोंसे स्पर्श किया और फिर हाथ जोड भगवान्‌के समीप स्तुति करने लगी कि हे कृपासिंधो ! हे दीनानाथ ! जो कुछ आपने कृपा इस राजापर करी वह किस प्रकारसे वर्णन हो सके ? कि अपने इस अत्यन्त अभिमानी राजाको आकर दर्शन दिये और इसके कुटुम्बको कृतार्थ कर दिया. फिर रानीको यह ज्ञान हुआ कि राजाका समस्त देश और द्रव्य तो सुफल हो गया परन्तु अभी मुझे और राजाको देहका अभिमान बाकी है, इस कारण जब राजाने भगवान्‌से अपने शरीरके नापनेको कहा तो रानी-नेंभी विनती करी और कहा कि, महाराज ! शास्त्रकी रीतिसे मेरा

आधा शरीरभी राजाका है सो इसको और राजाके शरीरको नाप लीजिये. जब भगवान्‌ने रानीका आत्मनिवेदनमें ऐसा प्रेम देखा और राजाके दृढ विश्वासपर दृष्टि करी तो भगवान्‌ने उसके ऊपर कृपा करी जिसका वर्णन नहीं हो सकता. निश्चयही रानी परमभक्त और पतिव्रता हुई सो आत्मनिवेदनके भाव होनेसे हुई.

बिभीषणजीकी कथा ३.

पुलस्त्यजीके पोते विश्रवाके पुत्र बिभीषणजी भगवान्‌के परम भक्त हुए और वह शास्त्रोंमेंभी परम भागवत लिखे गये. जो कोई प्रभातकोही जिनका नाम उच्चारण करता है उसके सम्पूर्ण विघ्न नाश हो जाते हैं सो उनको बालअवस्थासेही भगवान्‌के चरित्रोंमें स्नेह हुआ. जब इन्होंने रावण और कुंभकर्णके साथ तप किया और वरदानके समय इन्होंने ब्रह्मा और शिवजीसे भगवद्भक्तिका वरदान पानेकी अभिलाषा करी; जिनके चरण लंकामें द्रव्यके अर्थ और रावण आदि राक्षसोंके जीवनके अर्थ थे और जब बिभीषणजीने रावण और लंकाको त्यागन कर दिया तबही लंकापर यह आपत्ति आई और रावणादि समस्त राक्षस मृत्युको प्राप्त हो गये. थोडासा वृत्तान्त यह है कि जब श्रीरामचंद्रजीकी सेना समुद्रके तटपर पहुँची तो रावणने समस्त अपने मंत्रियोंसे मंत्र पूछा. बिभीषणजी धर्म और नीतिके जाननेवाले थे सो उन्होंने कहा कि सबसे उत्तम तो यह है कि सीताजी भगवान्‌के अर्पण कर दो और उनके चरण अति नम्रतासे जाकर पकडो नहीं तो लंकाकी अथवा तुम्हारी भलाई कुछभी नहीं. रावणको यह मंत्र अच्छा नहीं लगा और क्रोधित होकर राज्यसभामें बिभीषणजीके एक लात मारी और बोला कि जिसका तू पक्ष करता है उसीके पास जाकर रह. बिभीषणजीने फिरभी रावणको वही ज्ञान दिया, फिर जब भग-

वान्में सब प्रकारसे रावणको विमुख जाना तो उसका त्याग करनाही योग्य जाना और सम्पूर्ण त्रिलोकीके राज्यमेंभी केवल एक भगवच्चरणोंकी शरणकोही उत्तम जानकर वहांसे आप उसी समय चल दिये. चलते हुए मार्गमें यह संकल्प करते हुए आते थे कि मैं उन चरणकमलोंको दंडवत् करूंगा कि जिन चरणोंका योगीजन समाधि लगाकर ध्यान करते हैं और आज उन हस्तोंकी छाया मेरे ऊपर होगी कि जो शरणागतोंके शिरपर सहस्रों कल्पद्रुमोंसे विशेष छायाका देनेवाला होकर दोनों लोकका ताप दूर करता है और मैं आज भगवान्के मुखसे उन वचनोंको श्रवण करूंगा जो वेदोंका सार और मंत्रोंका परम मंत्र है. फिर जब समुद्रके पार आये तो अपने आनेकी खबर श्रीरामचंद्रजीको दी. रामचंद्रजीने उसी समय इनको आनेकी आज्ञा दी तब सुग्रीवने कहा कि महाराज ! वह शत्रुका भ्राता है न जानिये मनमें क्या विचार करके आया है. इससे यही उत्तम है कि इसको बंधनमें डाल दो. तब श्रीरामचंद्रजीने मुसकायकर उत्तर दिया कि जो तुमने राज्यनीतिकी बातें कहीं वह सत्य हैं परन्तु मेरा प्रण यह है कि जो मेरी शरण आता है उसको मैं अभय देता हूं. जो कोई दोनों लोकोंके अवगुणोंमें बंधा है और भयभीत होकर वह मेरी शरण आता है और कहता है कि मैं तुम्हारा हुं तो मैं उसी समय उसको बंधनसे छुटा देता हूं और जो यदि फिर बिभीषणजीको जो मैंने बंधनमें डाल दिया तो उस प्रणमें अंतर आ जायगा. यदि जो यह कपटबुद्धिसे आया है तोभी कुछ भय नहीं है, कारण कि लक्ष्मणजी एक क्षणमें करोडों ब्रह्मांडोंको नाश कर सकते हैं. उनका आना दोनों रीतिसे योग्य है; यह सुनकर अंगद तथा हनुमान् जांबवान् इत्यादि वानर दौडे और बडे आदर सत्कारसे बिभीषणजीको ले आये. बिभीषणजीके धनुष्य बाणधारी महाराज रामचंद्रजीके दर्शन

करतेही दोनों लोकोंके दुःख दूर हो गये. फिर साष्टांग दंडवत् करी और अति विनती कर यह वचन बोले कि हे शरणागतवत्सल ! मैं आपकी शरण हुआ हूं, शरणपालक कृपाल महाराज रामचंद्रजी इस शब्दको सुनतेही उठ खडे हुए और बिभीषणजीको छातीसे लगा लिया और फिर परस्पर बहुतही वार्ता हुई. फिर भगवान्ने सब प्रकारसे बिभीषणजीका अनन्यभाव समस्त संसारसे पृथक् जाना; परन्तु दर्शन करनेके प्रथम जो कुछ उनके मनमें अभिलाषा थी उस इच्छाको भगवान्ने अवश्यही पूर्ण करना विचारा; इस कारण वह लंकाका राज्य कि जिसको रावणने सहस्रों वार अपने शिर भेंट करके शिवजीसे पाया था, सो उसी समय समुद्रका जल मंगाकर राज्यतिलक कर दिया और रावणके मारे जाने पर जब बिभीषणजी लंकाका राज्य करने लगे तो जो लंका प्रथम पाप और अनर्थोंकी खान थी; सोही धर्म और भक्तिका रूप हो गई. बिभीषणजीको रामनाममें ऐसा विश्वास था कि थोडा उसका वृत्तान्त यह है कि एक जहाज किसी सोदागरका समुद्रमें चलते २ रुक गया तो जहाजके स्वामी अपने मंत्रियोंके मंत्रसे एक मनुष्यको बलिदान करनेके निमित्त समुद्रमें डाल दिया. गोते खाता हुआ लंकाके किनारे जा पहुँचा तब वहांके रहनेवाले उसको बिभीषणके पास ले गये. बिभीषणजीने उसको अपने स्वामीकी मूर्ति जानकर सिंहासनपर बैठाया और उसकी बडे आदर सत्कारसे सेवा तथा पूजा करी. वह मनुष्य मतिहीन मनुष्योंकी सत्संगतिसे बहुत दुःखित रहकर उनसे नित्य जानेकी आज्ञा मांगता तब बिभीषणजीने उसको बहुतसे रत्न देकर विदा किया और समुद्रसे पार होनेके निमित्त उसकी पीठपर रामनाम लिख दिया. वह मनुष्य रामनामके प्रभावसे समुद्रमें ऐसे सुखसे चला गया कि उसको जहाजमेंभी वह सुख नहीं

था. समय पाकर वह उसी जहाजके पास पहुँचा और उसको देखतेही जहाजके आदमियोंने सवार कर लिया, उसने रामनामकी महिमा और बिभीषणजीकी भक्ति जहाजके सम्पूर्ण मनुष्योंसे वर्णन की तब तो वह मनुष्य इसको मान्य करने लगे और सबने उसी रामनामका जपना प्रारंभ किया और उसको जपकर कृतार्थ हो गये. निश्चयही यह मेरे स्वामीका सच्चा नाम है कि जिसके प्रतापसे पाषाण समुद्रपर तर गये. दुष्ट स्वभाव और महापापी जितने इस संसारसमुद्रसे उतरे हैं उनकी तो कुछ गिनतीही नहीं और बिभीषणजीनेभी रामनाम लिखनेके समय यह बात जानी थी कि जिस रूपमें करोडों महापापी इस संसार-समुद्रके पार हो गये हैं तो एक मनुष्यका इस छोटेसे समुद्रके पार हो जाना कितनी बडी बात है.

गजग्राहकी कथा ४.

गजकी कथा महाभारत, भागवत और पुराणोंमें विस्तारपूर्वक लिखी है. गज और ग्राह पूर्वजन्ममें दोनों ब्राह्मण भगवद्भक्त थे. ऋषिके शापसे एकने गज और दूसरेने ग्राहका शरीर पाया. प्रथम जन्मकी शत्रुतासे यहांभी युद्धका संयोग हुआ एक दिन गजराज जल पीनेको सरोवरमें गया, उस समय ग्राहने गजका चरण पकड लिया. ग्राह अपनी ओर जलमें और गज अपनी ओर थलमें खींचता था इस प्रकार सहस्र वर्षतक युद्ध हुआ. अन्तमें ग्राह प्रबल होकर गजको भीतर ले चला. जब गज थोडाही डूबनेको रहा तब भगवान्-की शरण ली और एक कमल तोडकर और सूंडमें लेकर भगवान्के अर्पण किया और पुकारा हे भगवन् ! मैं आपकी शरण हूं. हे शरणागतभयहारी ! दीनदुखटारी भगवन् ! मेरी रक्षा करो. भगवान् यह दुःखभरी टेर सुनतेही विकल हो गरुडपर सवार हुए

चक्र फिराते शीघ्रतासे वैकुण्ठसे आये और शीघ्र पहुँचनेके कारण ऐसी विकलता हुई, कि मनकी समान वेगगामी गरुडकोभी बलहीन जानकर छोड दिया और शीघ्रतासे प्यादेही धावमान हुए और ग्राहके मुँहपर चक्र मारा. जिससे उसका मुख कट गया और गज उसकी फाँससे छूटा. यदि कहो भगवान् तौ सर्व व्यापक हैं इतनी शीघ्रताका क्या कारण, वहीं प्रगट हो जाते तो उत्तम था, तो इसका उत्तर यह है कि, गजने वैकुण्ठनाथका ध्यान मनसे करके पुकारा था, इस कारण उसके विश्वासके अनुकूल वैकुण्ठसे आये दूसरे इस विकलतासे यह बातभी दिखाई कि मैं भक्तोंके उद्धारके निमित्त इतनी शीघ्रता करता हूं और भक्तोंके भाव बढानेके निमित्त यह चरित विख्यात किया इस कारण वैकुण्ठसे आये. भगवान्‌के शीघ्र पहुँचनेमें कवीश्वरोंने अनेक श्लोक और कवित्तोंकी रचना की है उसमेंसे दो एक पद लिखते हैं.

"हाय ना मिटत पाई आये हरि आतुर है" अर्थात् पुकारकी कनकन मिटी तबतक वह आतुर हो आ गये. "रा कह्यो कदनमांहिं मा कह्यो मगनमें" जिस समय रामको पुकारा तो गजने रा तौ दुःखमें कहा भगवान् ऐसी शीघ्रतासे आये कि जब उद्धार हो गया तब मकार निकला. "पानीमें प्रगस्यो किधौं वानीमें गयन्दके" और "आयो चढ वाहीके मनोरथ महारथी" अर्थात् ऐसी शीघ्रतासे आये मानो उसकी अभिलाषापरही थे. जो गजने स्तुति की है वह गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्र कहाता है. उसके पाठ करनेसे भगवद्धामकी प्राप्ति होती है. भगवान्‌ने प्रसन्न हो गजको परम पद दिया और ग्राहकोभी चक्रस्पर्शसे परमपद मिला दोनों शापसे मुक्त हुए भागवतमें यह कथा विस्तारसे लिखी है.

ध्रुवजीकी कथा ९.

ध्रुवजीकी कथा अनेक इतिहास और पुराणोंमें विस्तारसे लिखी

है, सब लोग जानते हैं इस कारण संक्षेपसे लिखता हूं. इनका जन्म उत्तानपाद राजासे सुनीतीरानीमें हुआ. एक दिन राजा अपनी दूसरी रानीके पुत्र उत्तमको गोदीमें लिये बैठे थे, उस समय ध्रुवजीनेभी गोदमें बैठनेकी इच्छा की तब सुरुचि रानीने ध्रुवसे कहा; हे ध्रुव ! तुझे राजाकी गोदीमें बैठनेका अधिकार नहीं यदि तू मेरे उदरसे जन्म लेता तो राजाकी गोदीमें बैठने योग्य होता. ध्रुवजी उसी समय लज्जा और दुःखसे भगवान्‌की शरण ली और विचारा उनकी शरणके सिवाय और कोई शरण देनेवाला नहीं है और मातासे आज्ञा लेकर भगवद्भजन करनेको वनमें चले गये. मार्गमें नारदजी मिले और समझाया, परन्तु यह न फिरे तब नारदजीने इनको द्वादश अक्षरका मंत्र दिया और यह मथुरामें आकर मंत्र जपने लगे और भगवान्‌को प्रसन्न किया कि वह शरणागतवत्सल दीनबंधु भगवान् प्राप्त हुए और अपना कमलसा हाथ ध्रुवजीके शिरपर रखकर भक्तिवर देकर कहा कि ३६००० वर्षतक पृथ्वीका राज्य करके अचल लोकको प्राप्त होगे. अब तुम अपने घर जाओ ध्रुवजी भगवान्‌के दर्शन कर अपने घर आये नारदजीसे समाचार सुन राजा उत्तानपाद बडी भक्तिसे ध्रुवजीको अपने स्थानपर लिवा लाये और ध्रुवजीको राज्यतिलक दे आप भगवद्भजन करनेके निमित्त वनको गये. ध्रुवजीने ३६००० वर्षतक न्याय धर्मपूर्वक राज्य किया तथा भगवद्धर्मको संसारमें फैलाया. उत्तम नामक ध्रुवके भ्राताको कुबेरके अनुचरोंने मार डाला इनपर ध्रुवजीने कुबेरपर चढाई करके उसके १८०००० अनुचरोंका वध किया तब स्वायंभु मनुने कुबेरका अपराध क्षमा कराया, पीछे ध्रुवजी अपने दोनों माता तथा पिता समेत ध्रुवलोकको गये. महाप्रलयमें भगवान्‌में लय होंगे.

जटायुकी कथा ६.

जटायुकी कथा रामायणमें विस्तारसे लिखी है. जटायु पक्षियोंका राजा परम भक्त हुआ और अपने शरीरकोभी भगवान्पर न्योछावर कर दिया. जिस समय श्रीरघुनन्दन महाराज दण्डकारण्यमें आये और पंचवटीमें रावण जानकीको हरण करके ले गये, उस समय जानकी भगवद्विरहसे व्याकुल हुई विलाप करती जाती थी. जटायुने जानकीको पहँचानकर रावणके प्रताप और बलका कुछभी भय न किया और अधीर होकर धावमान हुआ और अपने चोंच और पंजोंसे रावणको मारकर गिरा दिया और सीता महारानीको छुडा लिया और एक स्थानपर बैठाकर रावणसे लडनेको सन्नद्ध हुआ और इस प्रकारसे युद्ध किया कि जिस रावणने देवता असुरोंको विना परिश्रम जीत लिया था. उसको मृतकी समान कर दिया. रावण चकित और भीत हो गया फिर क्रोध कर तलवारसे गृध्रराजके पंख काट डाले. यद्यपि ऐसी दशामेंभी बल और पराक्रम बहुत किया, परन्तु पंख विना पक्षी मृतकवत् होते हैं इससे फिर वह परिश्रम कुछ काम न आया, रावण दो चार तीक्ष्ण घाव देकर चला गया, सीताको ढूंढते २ रघुनन्दन महाराज और लक्ष्मण जटायुके पास पहुँचे, उस समय जटायुके शरीरमें कुछ प्राण शेष थे. रघुनन्दनमहाराजके दर्शन करतेही उसके सब दुःख दूर हो गये और रोम २ में भगवान्का रूप समा गया और रघुनंदन महाराजसे सब वृत्तान्त कहकर विदा मांगी. उस समय दयासागर भगवान्ने जटायुको अपनी गोदमें रखकर शरीरपर हस्तकमल फेरा उस समयके चरित्रमें एक कवित्त तुलसीदासजीके पिताका कहा लिखता हूं.

कवित्त–दीन मलीन अधीन है अंग विहंग पर्‌यो क्षिति खिन्न दुखारी ।
राघव दीनदयाल कृपालको देख दुखी करुणा भइ भारी ॥

गीधको गोदमें राख कृपानिधि नयनसरोजनमें भरि वारी।
वारहि वार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसे झारी॥

और शोकके दुःखसे व्याकुल हो आंसूं भरकर कहा; कि मैं तुमको अचल किये देता हूं शरीरमें प्राण धारण करो जटायुने कहा; जिसका नाम अनेक जन्मोंके पातकोंको दूर करके परम आनन्दको पहुँचा देता है, वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन मुझे अपनी गोदमें लेकर मेरे शिर-पर हाथ फेरते हैं और प्यार करते हैं और मैं उस स्वरूपको जो शिव-जीके ध्यानमेंभी कठिनाईसे आता है, देखकर आनंदमें मग्न होता हूं. इस घडीके सिवाय और कौनसी घडी उत्तम होगी कि इस अनित्य शरीरको त्यागकर भगवत्स्वरूपमें मग्न हूंगा. यह कहकर भगवच्चरणोंका चिन्तवन करता हुआ शरीरको त्याग मुक्तिको प्राप्त हुआ अर्थात् चार भुजा होकर विष्णुस्वरूप हो विमानपर चढ परमधामको गया. उसकी दाहक्रिया भगवान्ने अपने हाथसे की जिस प्रकार दशरथजीको तिलां-जलि दी थी इसी प्रकार उसको तिलांजलि दी. इस कृपालुता और दीनवत्सलताको धन्य है कि कैसे २ तुच्छ किस पदवीको पहुँचते हैं कि जहां मन और बुद्धिका प्रवेश नहीं है.

मामा भानजेकी कथा ७.

मामा भानजे दोनों ऐसे परम भक्त हुए कि भगवान्को अपनी सेवासे प्रसन्न किया और प्राणभी भगवान्पर न्योछावर कर दिये. पहले जब भगवत् शरण हुए तो घरवार सब त्यागकर तीर्थ यात्रा करते विचरने लगे. पण्डित और ज्ञानी थे यात्रा करते हुए किसी वनमें देखा कि वहां एक भगवान्की मूर्ति परम शोभायमान है, परन्तु मन्दिर नहीं है वहां मन्दिर बनवानेका विचार कर द्रव्यकी खोजके निमित्त फिरने लगे. कहीं कुछभी न मिला, एक किसी नगरमें सेवडोंके

देवताकी पारसकी मूर्ति थी, उसका वृत्तान्त सुनकर समझा कि अब मंदिर भली भांति बन जायगा. परन्तु सोच करने लगे कि जैनियोंके तो मन्दिरमें जानेका निषेध है कैसे जांय ? फिर यह विचार करा कि यह शरीर भगवत् शरण है. सो उनके प्रसन्न करनेको किसी बातका निषेध नहीं. भगवत् शरणागतोंने जो नरकादिका भय किया तो शरणागतिकी दृढता नहीं, निदान उनके मंदिरमें जाकर शिष्य हो गये और ऐसी सेवा उनकी की कि विश्वासमें आकर उन्होंने इन्हें सब कार्य सौंप दिया. जब सब कार्य वशमें आया तो इन्होंने मूर्तिके ले जानेकी चिन्ता की परन्तु मूर्ति ले जाकर निकलनेका मार्ग न था द्वार संकीर्ण था. कारीगरोंसे बातोंमें युक्तिपूर्वक इस बातका भेद लिया कि गुम्मजके ऊपर जो कलश है पेंच लगाकर दृढ किया गया है, वह पेच खुलकरही मूर्तिका जानेका मार्ग है, रातको दोनोंने सम्मति करके कलशको उतारा और भानजा उस मार्गसे निकलकर गुम्मज-पर चढ गया. मामाने मन्दिरके भीतर बैठकर उस मूर्तिको भली प्रकारसे दृढ रस्सीसे बांधा और भानजेने ऊपर खैंच लिया जब मूर्तिको मिलनेसे मन स्थिर हो गया तो मामानेभी उसी मार्गसे निकलनेकी इच्छा की परन्तु अतिहर्ष होनेके कारण शरीर ऐसा मोटा हो गया कि उस मार्गसे निकल न सका और उसीमें फँस गया अनेक उपाय करनेपरभी जब कुछ वश न चला, तब मामाने भानजेसे कहा यदि मेरा शरीर यहां रहे तो कुछ चिन्ता नहीं और न दुःखकी बात है जो मनोरथ था सो सिद्ध हो गया. उचित यह है कि तुम जाकर यथेच्छ भगवन्मंदिर बनाओ और मेरा शिर काटकर कहीं डाल दो कि जिससे मेरे कानोंमें साधुवेषकी निन्दा न सुन पडे. कारण कि साधुवेष अवश्यही भगवद्वेष है. भानजेने शोकसे दुःखी हो वैसाही किया, अर्थात् उसका शिर काट मूर्ति लेकर चला गया.

यद्यपि ज्ञान और भगवत्शरणागतिकी दृढतासे अपने मामाके मरनेका कुछ शोच न किया, परन्तु सत्संगको समझकर परम भागवतके बिछुडनेसे ऐसे शोकसागरमें पडा कि किसी भांति चित्तको चैन नहीं पडता था. कभी शोकमें दुःखी और कभी मन्दिरके बननेसे आनंद होता था. जहां मंदिर बनवानेका विचार किया था वहां पहुँचकर देखा कि कोई मन्दिर बनवानेकी तैयारीमें तत्पर है. मनमें जाना कि किसी दूसरे मनुष्यने मन्दिर बनवाना प्रारंभ किया है. यह विचार बहुत दुःखी हुए. जब निकट पहुँचे देखा तो मामा खडे हैं और मन्दिर बनवानेके काममें तत्पर हैं, अतिआनंदसे दौडकर दोनों मामा भानजे मिले और रंगनाथस्वामीका मंदिर ऐसी शोभा और तैयारीसे बनवाया कि वैसा दूसरा संसारमें नहीं है.

राघवानन्दकी कथा ८.

राघवानन्दजी रामानुजकी संप्रदायमें परम भक्त और हरिभक्तोंको आनंद देनेवाले हुए और यह जिस देशमें रहते थे उसको काशीजीकी समान कर दिया, चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चारों आश्रम ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासको भगवद्भक्तिमें दृढ कर दिया और रामानन्दजीको मृत्युके मुखसे निकालकर साढे सात सौ वर्षकी आयु दान कर दी. वह वृत्तान्त रामानन्दकी कथामें लिखा है. ऐसे उनके अनेक प्रभाव हैं उस महिमाको कौन वर्णन कर सकता है.

जगन्नाथकी कथा ९.

जगन्नाथजी रामदासजीके पुत्र पारीक ब्राह्मण कान्हडा कुलमें धर्म और भक्तिके मर्याद हुए. श्रीरामानुज सम्प्रदायके अनुकूल भगवत्शरण होकर मन लगाया और उपासनाके शास्त्रसे भली

प्रकार अपने अभिप्राय और उपासनाको समझा और सार असारको ऐसा पृथक् २ कर दिया कि जैसे हंस दूध और पानीको पृथक् पृथक् कर देता है. मुनीश्वरोंकी भांति आचार और धर्मका आचरण करते थे और अनन्य शरणागति और दश प्रकारकी भक्तिके करनेवाले दृढ हुए. पुरुषोत्तम अपने गुरुके प्रतापसे दोनों अंगमें कवच पहरे रहते थे. इसके अर्थ कई भांतिके हैं. प्रथम यह कि यह महाराज राजाके पुरोहित थे और शूरता वीरतासे विख्यात शरीरमें कवच पहना करते थे जैसे सिपाही लोग पहनते हैं. दूसरे अंग मनमें सहिष्णुता और क्षमाका वख्तर धारण किये थे कि किसीकी कठोर वाणीरूप शस्त्र न लगे. दूसरा यह कि दोनों अंगरूप दोनों भुजाओंमें शंखचक्रका चिह्न धारण किये थे. इससे कलियुगके पापरूपी जो तीर तलवार हैं, उससे शरीर रक्षित किया. अथवा यह कि प्रगट अंगमें भगवत्सेवाका ऐसा कवच पहना था कि संसारी कार्य जो तीर और तलवारसेभी अति तीक्ष्ण हैं, कभी नहीं काम कर सकते थे और हृदयमें भगवच्चिन्तवनरूप कवच पहरा था जिससे दूसरी चिन्तारूपी शस्त्र स्पर्श नहीं कर सकता था.

राग नट ।

हरिकी लीला कहत न आवे ।
कोटि ब्रह्माण्ड छिनहिंमें नाशै छिनहींमें उपजावे ॥
बालक वच्छ ब्रह्म हर ले गयो ताको गर्व नसावे ।
ऐसो पुरुषारथ सुन यशुमति खीझत पुनि समुझावे ॥
शिव सनकादिक अन्त न पावे भक्तवछल कहवावै ।
सूरदास प्रभु गोकुलमें सो घर घर गाय चरावै ॥

लक्ष्मणभट्टकी कथा १०.

रामानुजकी संप्रदायमें लक्ष्मणभट्टभी परम भक्त हुए. यह भक्तिका

आचार मुनीश्वरोंकी समान करते थे और यह हाव भगवद्धर्म तथा दश प्रकारकी भक्ति तथा भगवान्के भक्तोंकी सेवा करनेमें विख्यात हुए. यह मधुरभाषी और क्षमावान् थे और इनका मन कभी स्वप्न-मेंभी संसारी व्यवहारोंमें न जाता था. संतोष, क्षमा और प्रेमकी मूर्ति थे. परम धर्म जो शरणागति है उसको प्रतिपालन करके संसारको उपदेश किया और श्रीमद्भागवतको विचारकर सार और असारको पृथक् २ कर दिया और भगवत्कीर्तन तथा उनके भजनमें अद्वितीय थे.

राग काफी ।

धन धन धन मात गंग चाहत मुनिजन प्रसंग प्रगटी रघुनाथ चरन करन सुख विहारी ॥ १ ॥ दीनि विधि बूंद डार अरिअनंग शीश धार आई मृतमध्य लोक संतनको प्यारी ॥ २ ॥ पर्वत द्रुम लता तारे स्वर्ग औ पताल फोर भागीरथ करन धार सगरतनय तारी ॥ ३ ॥ अमित वारि अति उतंग चाहत अति रूप रंग दरस परस मज्जन कर पाप पुंजहारी ॥ ४ ॥ माता मैं याचौं तोहि रामभक्ति देहु मोहिं शरण गही तुलसिदास दीन हो पुकारी ॥ ५ ॥

अथ

चौईसवीं निष्ठा प्रेमवर्णन ।

(इसमें सोलह भक्तोंकी कथा है.)

अब मैं श्रीरघुनंदनस्वामीके चरणकमलोंकी साधु हृदयरेखाको दंडवत् करके फिर स्वामीके रामचन्द्र अवतारको प्रणाम करता हूं कि जो संसारके उद्धारके निमित्त अयोध्यापुरीमें अवतार धारण करके रावणादि राक्षसोंको मारा और धर्मकी मर्यादा स्थापित कर अनेक पवित्र चारित्र इस संसारमें किये सो यह प्रेमनिष्ठा भगवतही स्वरूप है और जितनी निष्ठा इससे प्रथम वर्णन की हैं, उनका सार आर तत्त्व यही निष्ठा है, इससे आगे और कोईभी आधिकार पदवी नहीं; कि उसको धारण करना पडे. जो विख्यात है वह उसी प्रेमके दृढ होनेको कहते हैं और कोई जो कैवल्य मुक्ति कहते हैं वहभी इसी प्रेम और उसके दृढ होनेको कहते हैं. प्रेमका कुछ अर्थ और विवरण करते हैं. शांडिल्य ऋषीश्वरने अपने सूत्रोंकी आदिमें यह सूत्र लिखा है कि " अथातो भक्तिजिज्ञासा" पहले इस सूत्रसे यह बात स्पष्ट और स्थापित कर चुके हैं कि भगवान्‌की जो भक्ति है सो चारों पदार्थोंकी अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी देनेवाली है, फिरभी स्पष्ट हुएके उपरान्त यह सूत्र लिखा है और इसका अर्थ यह है कि फिर इस निमित्त उस भक्तिको अवश्य जानना चाहिये कि यह क्या है ? "सापरानुरक्तिरीश्वरे " इसका इस सूत्रमें यह उत्तर है; कि परम अनुरक्ति ईश्वरमें होनी उसीका नाम भक्ति है और अनुरक्ति, राग, प्रेम, प्रीति, स्नेह ये सब एकही पर्याय हैं, वा प्रेमसे हो परन्तु सबका एकही अर्थ है और जो भक्तिको फिर अनुरक्ति

लिखा, तो भक्तिका अर्थ प्रेम वा स्नेहसे स्पष्ट हो गया. नारदपंच-रात्रमें लिखा है कि अनन्य स्नेह भगवान्‌में हो उसीको प्रेम कहते हैं और उसीका नाम भक्ति है, अब यहांपर दो संदेह हुए कि प्रथम तो यह कि जो प्रेम और भक्ति एकही बात है, तो भक्तिका वृत्तान्त तो परायमें लिख दिया, फिर दूसरा यहांपर किस कारणसे वर्णन होता है? दूसरा यह है कि अंत अधिकार सब निष्ठाओंका प्रेम निष्ठा है तो जो और निष्ठा और उनके गुण पहले लिखे गये वह निष्ठा फिर किस कारणसे लिखी गई. केवल यह प्रेमनिष्ठाही बहुत थी, सो प्रथम संदेहका तो उत्तर यह है कि परंपरामें जो भक्तिका रूप लिखा गया, वह महिमा भक्तिकी और उनका स्वरूप और उसकी रीति लिखी गई और निष्ठामें वह वृत्तान्त लिखा जाता है; कि उस भक्तिके प्राप्त हुए पीछे जो अवश्य किसी मनुष्यपर वर्तती है, वा उस भक्तिकी जो दशा होती है. दूसरे संदेहका उत्तर यह है कि जो श्लाघा और महिमा एक २ निष्ठाकी लिखी गई वह सब सत्य और सब श्रेष्ठ है परन्तु यह प्रेमनिष्ठा जो लिखी गई है यह सब निष्ठाओंकी परिणाम दशा है. जो यह सब निष्ठा लिखी न जाती तो इसको परिणामनिष्ठा लिखना कब होता, उससे अधिक निष्ठा बहुत हैं; परन्तु अन्तका वृत्तान्त सबका एक सार है. “ दृष्टान्त ” दासनिष्ठावाला जिस प्रकार अपनी उपासनापर दृढ होकर उस अधिकारको पहुँच गया है कि कभी गाता है, कभी नाचता है, कभी हँसता है और कभी रोता और कोई वस्तु अपने परायेकी नहीं रखता है और जब सखा वा वा-त्सल्य वा श्रवण पूजा आदि निष्ठावाला अंत अधिकारको पहुँचेगा तो उसकीभी ऐसीही गति होगी. इस स्वरूपमें सब निष्ठाओंका परिणाम और रूप एकही हुआ उस पारिणाम अवस्थाका वृत्तान्त जो एक २ निष्ठामें लिखा जाता तो ग्रन्थके विस्तारकी बात अलग रहे एक

प्रकारकी दशाका वृत्तान्त सब निष्ठाओंमें लिखना पडता; इस कारण यह प्रेमनिष्ठा लिखी सो और सब वस्तुका आदि अन्त सिद्ध है और जो प्रेमनिष्ठा न लिखी जाती तो अन्तकी पदवी न जानी जाती और प्रगट हो कि मुक्ति इस निष्ठा और सब निष्ठाओंका फल है और सब निष्ठाओंकी अंतिम पदवी प्रेम है औरभी जानो कि पराभक्ति और प्रेम एक अर्थ और एकही वार्ता है, परन्तु सब शास्त्रोंमें उस निश्चय किये हुए रूपको प्रेमशब्दसे विख्यात किया है कि जो प्रेमकी विकलता भक्तपर बीचती है सो दो प्रकारसे उत्पन्न होती है. एक तो ईश्वरकी ओरसे कि भगवान्‌ने एकादशस्कंधमें कहा है कि हे उद्धव ! गोपियों-ने न तो गुरुसे पढा और न तप किया और न यज्ञ इत्यादिक करा. केवल वह मेरीही कृपासे मुझे प्राप्त हो गईं. मीराबाई और करमेतीकी तुल्य आपसे आपही भगवत्की कृपासे स्नेह हुआ. दूसरा भावसे होता है कि भगवान् जो सच्चिदानंद स्वरूप हैं उसके गुण श्रवण करके स्नेह उत्पन्न हो और स्नेहसे द्रवीभूत होकर तदाकार और तन्मय हो जावे फिर विष्णुपुराणके वचनसे भगवान् अंतर्यामीके गुण सुननेसे भगवान्‌की ओर मन लगाने योग्य है; वह ऐसी है कि जिस प्रकार गंगाका प्रवाह दिनरात चलता रहता है और भाव दो प्रकारका है. एक तो भगवद्भक्तोंके प्रतापसे होता है जिस प्रकारसे नारदजीने प्रह्लाद और दक्ष प्रजापतिके पुत्रोंको वा दत्तात्रेयने राजा सुबाहुको वा भरतने रघुको उपदेश किया था और फिर उनको उसी समय भगवान्‌का स्वरूप प्राप्त हुआ और अबभी प्रवृत्त है कि कोई ऐसा सिद्ध भगवद्दास किसीको मिल गया तो घडीभरमें उस पदको पहुँचा दिया. दूसरा साधनसे प्रगट होता है जिस रीतिसे नारद-जीने भगवच्चरित्रोंको सुना और उसहीको माना वैसेही किया भगव-द्भक्त और प्रेमी हुए. इस भावके चार भेद तंत्रशास्त्रमें लिखे हैं. एक

ो वह कि जो नित्य सर्वदा मन भगवान्‌में लगा रहे, उसमेंभी दो भेद हैं. प्रथम तो जिनको कभी संसारके स्वादकी इच्छा नहीं होती, प्रह्लाद और सनकादिककी समान दूसरे वह जिनको संसारके पदार्थोंकी इच्छा होती है, जिस प्रकार अर्जुन इत्यादि. तीसरे वह कि प्रेमके समय समाधिकी दशा होती है जैसे शुकदेवादिक. चौथे वह कि बडा श्रम करके मनको लगाना तब प्रेमकी उत्पत्ति हो, अक्रूरादिक. पांचवें वह जो मनमें पश्चात्तापादि करते हैं कि हमारा मन गोपियोंकी समान भगवान्‌के प्रेममें पूर्ण न हुआ, जैसे उद्धव युधिष्ठिरादि. अब प्रेमकी दशा प्रकार लिखनेसे पहले अवश्य इस वार्ताका वर्णन करना हुआ कि स्नेहके दो रूप हैं एक तो संयोग और दूसरा वियोग. भगवान्‌के प्रेममेंभी वियोगकी दशा होती है या नहीं और जो होती है तो उसका क्या स्वरूप है? प्रगट है कि वियोग अवश्यही होता है; परन्तु विषयी पुरुषोंके सन्मुखी प्रेमकी भांति संसारी विषय भोगके सम्बन्धियोंके समान दुःखका देनेवाला नहीं होता और भगवान्‌के स्नेह और ध्यानका विशेष करनेवाला होता है. जिस प्रकार गोपिकाओंको व्रजचन्द महाराजके जानेके पीछे विरह हुआ था; परन्तु वह ऐसा प्रेमका बंधानेवाला हो गया कि तन्मय होकर भगवान्‌के नित्य संयोगको प्राप्त हो गई. इसमें यह पूछना है कि यह स्वरूप तो उन भक्तोंके विरहका है कि राम कृष्ण आदिके समीप रहनेके समय जिनको हुआ; परन्तु जिन मनुष्योंके ध्यानमें भगवान्‌के गुण और रूप सुननेसे प्रेम उत्पन्न हुआ वा होता है; उनकोभी विरह होता है या नहीं सो विचारो कि उनकोभी विरह होता है और उसके अनेक रूप हैं. एक तो यह है कि भगवान्‌के ध्यानके समय किसी समय गोपी या दशरथ महाराज या कौसल्या महारानी या नन्द यशोदा या और भक्तोंका वियोग आ गया या उनके वियोगकी कथा सुनी तो जो

अवस्था उनपर वियोगमें हुई थी; वही इस समय भक्तपर वर्तती है. यहां कथामें परीक्षा है और किंचितभी अंतर नहीं रहता और ऐसेही कथा और किसी चरित्र तथा वियोगके समय अवश्य विश्वास सबको होता है और जिस समय ध्यान दृढ होने लगता है उस समय अति चिन्तन और प्रेमकी झझकसे ध्येयरूपकी शोभाका जो विरह होता है सो दशा ज्यौंकी त्यौं प्रियवल्लभके वियोगकी भांति होती है और जब भगवान्‌का ध्यान सर्वदा रहता है तो साक्षात् भगवान्‌के दर्शन उस भक्तको होते हैं, या वह ध्यान स्वरूपका साक्षात् रूपकी तुल्य हो जाता है; उस समय प्रतिदिन सब कालमें संयोग वियोगकी दशा बीचा करती है अर्थात् आदिसे अंतदशातक संयोग और वियोग दोनों होते हैं. अब यहांपर यह लिखना उचित है कि कई २ मनुष्योंने वियोगकी पदवी संयोगसे विशेष कही है और निश्चयही जो कुछ आनन्द वियोगमें है वेसा संयोगमें नहीं; सो दोनों पदवीमें किसको बडा जानना योग्य है. जो तर्कसे लिखा जाय और वादानुवाद करे तो सेकडों पुस्तकोंमें लिखनेसेभी पूर्ण न हो और अन्तको झगडा और बखेडा श्रुति, न्याय, पातंजल और कर्मशास्त्र वा वेदान्ततक पहुँच जाता है और निर्णय नहीं होता कारण विस्तारको छोड संक्षेपसे यहांपर लिखता हूं कि प्रेममें वियोग और संयोग दोनों अन्योन्य सम्बन्धयुक्त हैं, कारण कि जो नित्य वियोग बना रहे और आशा संयोगध्यानमें संयोगकी अथवा प्रगट संयोगकी न होवे तो प्रेम कभी नहीं होता और इसी प्रकार जो संयोगकी व्यवस्था बनी रहे और वियोगका भय न होवे तोभी प्रेम कभी नहीं होता; सो प्रेम नाम उसीका है कि वियोगका अंत संयोग–संयोगके पीछे वियोग होते हैं. इस स्वरूपमें संयोग और वियोग दोनों आवश्यक और उचित हैं; दोनोंका सम्बन्ध है. परन्तु वियोगमें आनन्द विशेष है और

प्रेमकी दृढता वियोगसे होती है और मुख्य अभिप्राय मुक्ति है, वह वियोगके प्रतापसे शीघ्र प्राप्त होती है. बहुत मनुष्योंने उसको अधिक लिखा है और जो मूलपर दृष्टि की जाय तो सर्वशास्त्र और सर्व साधन भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि केवल संयोगके निमित्त हैं. अब प्रेमकी दशा वा प्रकाश लिखा जाता है सब दशा जो दृष्टांत और उपमामें लिखी उनके पढनेसे यह नहीं कि वे दशा अगले समयमें बीतती होगी; सब भक्तोंपर नित्यप्रति अबभी बीतती है और जैसा कि ध्यान भक्तको जिस समय होता है वैसाही समाजका तद्रूप हो जाता है. वे अवस्था बारह हैं और किसीने उनमेंसे तत्व बात निकालकर तीन दशा और अधिक की हैं. जिससे सब १५ हो गईं सो सबका वृत्तान्त लिखा जाता है. पहली दशाका नाम उत है. जब प्रीतमकी सुन्दरता और महिमाको सुना तो उसके मिलनेकी अत्यन्त अभिलाषा हुई, फिर किसी प्रकार जो वह मिला तो उसके सिवाय किसी और प्यारी वस्तुकी देखी सुनी सुन्दरता नेत्रोंमें न समानी और यह इच्छा होनी कि यह प्रीतम मेरे नेत्रोंसे क्षणभरकोभी अलग न हो. उस कालमें जो अवस्था सच्चे वांछा करनेवालेपर होती है उसका नाम उत है. जानकी महारानीकी समान जब कि श्रीरामचन्द्रजी जनकपुरको गये, या रुक्मिणीजीकी या गोपिकाका या अक्रूरजीकी या जैसी सुतीक्ष्णकी दशा हुई. दूसरी यह कोई मिस करके दूतसे अपने प्रीतमका वृत्तान्त पूछना और पूछनेके समय मन विह्वल और व्याकुल होता है अथवा प्यारेका वृत्तान्त सुनकर जो उसके देखनेकी इच्छा मनपर वर्तती है या अपने प्रीतम प्यारेका समाचार सुनकर जो व्यवस्था और प्रसन्नता होती है या प्रीतम आया है और जो प्रथम नहीं मिलनेके कारण मिलाप और संभाषण नहीं हुआ है और चरचा होना कि यह कौन और कहांसे आया है. उस समय जो अवस्था होती है; इन सब

अवस्थाओंमेंसे कोईसी अवस्था हो उसका नाम यत् है और यह दश प्रकारकी है; जल्प प्रजल्पादि और एककी २ नवीन २ बातें हैं. सो ग्रंथके बढनेके भयसे नहीं लिखते; इस यत् अवस्थाका दृष्टान्त है कि जिस समय ऊधोजी व्रजकिशोर महाराजका संदेशा लेकर आये उस समय जो संभाषण हुआ या भँवरके छलसे गोपियोंने व्रजचंद महाराजकी कठोरता आदिका वर्णन किया सो भ्रमरगीतमें विस्तारपूर्वक लिखा है या जिस समय श्रीरामचंद्रजी जनकपुरमें पहुँचे और वहांपर स्त्रियोंने इनका अत्यन्त सुन्दर स्वरूप देखकर परस्पर संभाषण किया सो जानना. तीसरी ललिता ललितका स्वरूप यह हैं कि प्रीतमके देखनेकी अभिलाषा और उसके हडबडाहटसे बडोंकी शासना और ताडनाकी चिंता मनमें न करना और वार २ देखनेके निमित्त इच्छा करना और लज्जाको त्याग देनेके पीछे छोड लेना और फिर जब नेत्र भरकर देख लिया तो उस समय गुरुजनोंसे और मित्रोंसे लज्जा करनी; जिस प्रकार गोपीजन व्रजमोहन महाराज वनसे आते थे तो लज्जाको त्यागन कर सास सुसरादिके विना भय किये देखनेको जाती थी वा जैसे स्वयंवरके समय धनुष तोडनेके पहले जो अवस्था जानकी महारानी पर वर्तती थी. चौथी दलित यह कि प्रीतमकी दृष्टिकी ओट रहनेसे उसके वियोगमें उसके रंगका बिगड जाना और न सोना, थोडा खाना और दुर्बल होना; उसकी चिंतामें व्याकुल होना, और किसी वस्तुका न सुहाना और रुदन विलापसे मूर्च्छित होना और प्रीतमका मनमें सोच करके उसके शरीरमें लय होना और उस काल मन शुद्ध होकर जो कुछ बीतता है उसको दलित कहते हैं. जैसे गोपिकाओंमेंसे प्रथम रासमें व्रजकुमार अंतर्ध्यान हो गये तब गोपिकाओंने अनेक प्रकारके विलाप किये, जब ढूंढकर हार गईं और मनमोहन न मिले तब उनके चरित्रोंका गानकर तन्मय हो गईं

और श्रीजानकी महारानीपर लंकामें जाने और अशोकवाटिकामें रहनेसे जो अवस्था बीची थी. पांचवीं मिलित, मिलितका स्वरूप यह है कि बहुत कालसे जो उनकी प्रीतिके मारे मिलनेका वियोग था और वियोगके दुःखसे व्याकुल होकर भांति २ के मनोरथ किया करता था. वह प्रीतम कितनेही समयसे नहीं मिला था सो आज मिला है उस समय जो अवस्था होती है उसका नाम मिलित है; जिस प्रकार श्रीव्रजचंद्र नटनागर महाराज रासलीलामें अंतर्धान हो गये थे और अचानक गोपिकाओंसे फिर मिले; या रघुनन्दन स्वामी अयोध्याजीमें लंकाको जीतकर फिर आये और भरत आदि बिछुडे हुओंको फिर जीवदान दिया था. कलित, कलितका स्वरूप यह है. जिस समय मन संयोगके आनन्दसे शुद्ध होकर प्रीतमके स्नेहमें मग्न होता है उसको कलित कहते हैं; वह दो प्रकारका है एक तो प्रीतमसे प्रगटही संयोग होकर उसके देखनेमें या संभाषणमें या लाड प्यारमें जो मिलनेसे आनन्द हो; दूसरा यह कि मनमें ध्यानका संयोग होकर जो इच्छा थी वह उस ध्यानमें जैसीकी तैसी प्राप्त हो, उसमें आनन्द हो. दोनों प्रकारका संयोग परमानन्द सुखका देनेवाला है. जिस प्रकारका किसी गोपीको श्रीव्रजचंद्र महाराजने वनमें अकेला पाकर अपना संभाषण और प्यारकी भरी हुई वाणी कहकर परस्परके लाड आदिसे जो वस्तु लेनी कठिन हो; उसको कहना और परस्पर हास्य चपलता और खैंचाखैंची आदि रूपसे परमानन्दको पहुँचाया और प्रीतिके रसमय उसको कर दिया; अथवा रासलीलाके समय ऐसी अवस्था विस्तारपूर्वक पंचाध्यायमें लिखी है. सातवें छिलित, प्रीतमपर अतिस्नेहके कारण क्रोध आ जाना और प्रीतमके अवगुण वर्णन करने और प्रेमके क्रोधसे ओष्ठोंका फडकना और शरीरका कांपना और दूसरी दशा क्रोधसे प्रीतमका तदाकार होना

उनको छिलित कहते हैं. जिस प्रकार गोपिका भ्रमरगीतमें अत्यन्त क्रोधसे कहती है, कि हे भ्रमर ! तू उसही कृष्णकी कीर्ति कहता है; जिसने रामावतारमें बालिको बधिककी समान होकर मारा, जिसका मांस और चर्म किसी अर्थकाभी न था और रावणकी भगिनी जो अतिप्रीतिसे आई थी उसको कुरूप कर दिया और अपने पास न रक्खा और न औरके कामकी रहने दी और फिर वामन अवतारमें राजा बलीका यज्ञभंग कर दिया वा जैसे लक्ष्मणको वनवासके समय रघुनाथपर क्रोध आया कि आप ब्राह्मणोंकीसी क्या बातें कहते हैं कि वनमें जाकर ऋषीश्वरोंके दर्शन और तप करेंगे. मैं आपका दास हूं यदि आज्ञा हो तो शत्रुओंको नरकतक प्राप्त कर दूं. इसही प्रकार चित्रकूटपर जब भरतजी गये तब अत्यन्त क्रोध आया था. आठवीं चलित; चलित वह कि देह त्यागके समय अपने प्रीतमका ध्यान करके प्रेमके कष्टकी दशामें यह मांगना कि दूसरे जन्ममेंभी मुझे उसका प्रेम हो और वह मिले उसीका नाम चलित है. जिस प्रकार पार्वतीजीने दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें देह त्यागनके समय इच्छा करी थी अथवा वालीने वा राजा दशरथ शरभंग आदिने कहा था. नवीं क्रांति; क्रांति यह कि प्यारेके चिंतवनसे जो रूप मनमें प्रगट हुआ है, मनकी वांछाके अनुसार शृंगार आदि करना और हँसना, खेलना, बोलना, बैठना और अपने मनकी वांछा पूरी करनी और प्रीतमके अतिरिक्त और किसीका शब्द नहीं सुनना और न औरोंको देखना और न किसीसे बोलना ऐसी जो अवस्था है उसको क्रांति कहते हैं. जिस प्रकार गोपिका भगवान्‌के चिंतवनसे प्रगट सब बातोंको भूल गई थीं और चिंतवनमें जो परमानन्द प्राप्त हुआ था; उसमें योगिजनोंकी समान ज्योंकी त्यों हो गई और जो दुःख वियोगका था सो समीप न रहा और पागलकी समान कभी आंख मीच लेती कभी खोल

लेती प्रगट हो कि वियोगी आसक्तको प्राणवल्लभके चिंतवनका सुख न होवे तो शोकके कष्टसे जीता न रहे और निरन्तर चिन्तवनमें मग्न रहे तबभी थोडे दिन जिये. विक्रांति एक भेद एक नवीं दशाका है; इस निमित्त गिनतीमें नहीं किया जिस समय रूपासक्त भक्त भगवद्भक्ति प्राप्त होनेसे अपने भाग्यकी बडाई करता है; या अपने इष्टदेव अर्थात् भगवान्‌की बडाई करता है और उसके मिलनेका आनन्द और उस आनन्दकी बडाई और उसके मिलनेकी दुर्बलता वर्णन करता है; या अपने इष्टदेवसे जो औरोंकी प्रीति और उनकी श्लाघा कहता सुनता है; या अपने प्रीतमके न मिलने और देखनेका शोच करता है; इन अवस्थाओंमेंसे एक अवस्था प्रगट हो वा कई उसीका नाम विक्रांत है. जिस प्रकार भारद्वाज और अत्रि और वाल्मीकादि ऋषीश्वरोंने रघुनन्दनस्वामीको देखनेके समय अपने भाग्यको सराहा वा ब्रह्मा शिव और ऋषीश्वरोंने भगवान्‌की महिमा वर्णन करी, वा ब्रह्माजीमें ब्रह्मस्तुतिमें बडाई व्रजचंद और व्रजगोपिकाओंकी और भगवान्‌के प्रेमकी दुर्लभताकी प्राप्ति; भगवान् और भगवान्‌का प्रेम वर्णन किया. गोपिकाओंने कहा कि वह नेत्र धन्य हैं कि जो नंदनंदन महाराजकी शोभाको देखते हैं. संक्रान्त क्रान्त और विक्रान्तका अंग है. दशवीं विहत, विहत दशाका रूप एक श्लोकके दृष्टान्तकी तुल्य है. कोई गोपी कहती है कि देखो पूर्वजन्ममें मुझे श्रीकृष्ण महाराजका प्रेम न हुआ, इस निमित्त यह देह पाई. जगत्‌के दुःख देखने पडे और कैवल्यमुक्तिमें जो श्रीकृष्णके प्रेमकी अधिकाई नहीं वह मुक्तिही मानो मृत्युही. आशय यह है कि जो मरनेके समय भगवान्‌का प्रेम हो जाय वह मृत्यु सहस्र जीवनकी समान है और जिस मुक्तिमें भगवान्‌का प्रेम नहीं वह मुक्ति सहस्र मृत्युसे बुरी है. कोई गोपी श्रीकृष्णमहाराजसे मान करके मनानेसेभी राजी न हुई जब श्रीकृष्ण महाराज चले

गये तब शोच करके घबडा गई और अपने शरीरको धिक्कार देकर दुःख और वियोगकी चिन्तासे व्याकुल हो गई, सुह्रत एक अवस्था विह्वतकी है. सुह्रत विस्तार कर लिखना आवश्यक नहीं ग्यारहवीं गलित प्रीतमके रूप स्वरूपका चिंतवन करके उसके स्वरूपको देखकर चांदी अथवा सुवर्ण गलाये हुएकी समान शुद्ध हो जाना उसको गलित कहते हैं. जिस प्रकार कोई गोपिका किसी सखीको देखकर कहती है कि देखो इस गोपिकाने एक वार श्रीव्रज- किशोरकी सुन्दर स्वरूप कान्ति और बोलने चालने आदिको कि- सीसे सुना है; इससे इसकी वह गति है कि जोगी राजोंकी समान मोन होकर बैठी है और न हिलती है न डोलती है. कभी रोती है कभी रोमांच खडे हो जाते हैं, कभी बकती, कभी नाचती और गाती है और वह कहती है कि कोनसा समय होगा कि जो मैं उस प्यारेको देखूंगी, फिर जब नंदनन्दन महाराजके स्वरूपके सुननेसे यह गति है तो न जाने मनमोहनके देखनेसे तो क्या गति होगी ? बारहवीं संतप्त यह कि सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा छबिसमुद्र शोभाधा- ममें ऐसा जिसका मन लगा है कि जहां तहां उसको देखता है और उस स्वरूपमें ऐसा मग्न है कि कभी दूसरेकी ओरको दृष्टितकभी नहीं करता. बाहर भीतरसेही प्रीतम दृष्टि आता है कि जिसके निमित्त अनेक जन्ममें नाना प्रकारके योग और अभ्यास और शुभकर्म किये थे इस दशाका नाम संतप्त है और सब उपासना और निष्ठा- ओंका सार मानो यही दशा है. इसहीकी श्लाघामें भगवद्गीतामें लिखा है कि वासुदेवस्वरूप सब स्थानमें है जो सब जगह देखता है सो वह परमात्माका भक्त दुर्लभ है; इसी अधिकार और व्यवस्थाकी श्लाघामें सब श्लाघा लिखी हुई भगवद्गीता और भागवतकी है, इस अधिकारको शांडिल्यसूत्रमें परानुशक्तिके नामसे लिखा है कि वह

सूत्र ऊपर लिखा गया है दृढ होना इस अधिकारका जीवन्मुक्ति है और फल उसका मुक्ति और परम पद है. प्रगट हो कि जो व्यवस्था सात्त्विक व्यभिचारी अर्थात् समान तृतीय और चतुर्थ जो कि इस भेदके वर्णनमें ग्रंथारंभमें लिखी है वहभी वर्णनमें है, प्रेमनिष्ठाके संबंधी व्यवस्था नई सुनने, ग्रंथारंभमें जो दशा रसभेदकी लिखी है और इस प्रेमनिष्ठाकी दशा सब मिलानेपर जो किसी प्रेमभक्तकी कोई नवीन दशा सुनने वा देखनेमें आवे उसको एक अंग उस दशाओंका समझ लेना. क्योंकि शास्त्रोंमें सबका मूल है विस्तारसे नहीं लिखते हैं. हे रघुनंदनस्वामी ! हे दीनवत्सल ! हे पतितपावन महाराज ! जिस प्रकार शेषभाव आपपर समाप्त हुआ है उसी प्रकार पतितपावन और अधम उधारण नामभी आपपर समाप्त है और जिस शेष नामपर होनेकी पदवी मुझपर समाप्त है, शेषभावका अन्त हुआ है उसी प्रकार अधम और पतित होने परन्तु बडा मंदभाग्य है कि शेषजीको तो सब काल समीप प्राप्त हुआ और मैं अबतक इस संसारके फंदमें पडा हुआ पुकार कर रहा हूं. गुण यह है कि मैं तो अपने कर्ममें सावधान हूं ऐसा जो कोई अवगुण और पाप नहीं है कि जो मैंने न किया हो; या न करता हूं और आपको कभी अपने नामका विचारभी नहीं होता सो कुछ चिंता नहीं; अब मैंने पुस्तकोंमें लिखना आरम्भ कर दिया है, कभी तो चिन्तवन होगा. यद्यपि ऐसी विनय करनी अनरीति है; परन्तु आपकी दयाने इस प्रकार कहा वा लिखा कि सब अपराध क्षमा हो इसमेंभी इतना विशेष यह है कि आपका दृढ वचन यहां प्रबन्ध है; कि जो आपकी शरण आता है उसको आप अमर कर देते हो सो मैं बहुत दिनोंसे आपके द्वारपर पडा हूं, यद्यपि ऐसा निश्चय और दृढ विश्वास नहीं है कि वादकरके ठहरा दें; परन्तु यह आपको भली प्रकार स्मरण होगा कि आपके द्वारके

अतिरिक्त और किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता. फिर जब जो उपकार मेरे ऊपर होगा सो आपहीसे हो सकेगा. केवल यह निवेदन है कि किसी प्रकार उस सुन्दर रूप अनूपमें मेरा मन सर्वदा लगा रहे जो पूर्वमें लिखा है.

अंबरीषकी रानीकी कथा १.

राजा अंबरीषकी कथामें लिखा गया था कि रानीका वृत्तान्त प्रेम-निष्ठामें लिखा जायगा; सो यहांपर उसी रानीका वृत्तान्त लिखा जाता है कि जब इस रानीका विवाह हुआ और राजासे उपदेश भगवत्सेवा तथा पूजा करनेका मिला तो इसका प्रेम भगवान्में ऐसा हुआ कि यह किसी समयमें भगवान्के ध्यानके अतिरिक्त और किसी ओर-कोभी मन नहीं लगाती थी, रानीकी यह वार्ता राजाकोभी ज्ञात हुई तो वह रात्रिके समय महलमें आये और आकर देखा कि रानीको भगवान्में इतना प्रेम है कि प्रथम अधिकारको उल्लंघित कर अंतके अधिकारको पहुँच गई है. कभी तो प्रीतिमें मग्न होकर गाती है और कभी हँसती है और कभी भगवान्के ध्यानमें चित्रकी मूर्तिकी समान हो जाती है, रानीके इस रूपको देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने भाग्यकी प्रशंसा करता हुआ रानीके पास पहुँचा रानी उस समय भगवान्के दर्शनमें मग्न थी. प्रथम तो उसको कुछभी ज्ञान नहीं हुआ और फिर जब बहुत कालमें चैतन्य हुई तो राजाको देखकर अतिआदर सत्कारसे उनके सन्मुख आई, इस कारण कि प्रथम तो पति है और दूसरे राजा और तीसरे गुरु कि, उसहीके उपदेशसे भगवत्सेवा प्राप्त हुई थी, फिर राजासे भगव-चरित्रोंके विषयकी वार्तालाप हुई; तब राजाने रानीको भगवान्के चरित्र कीर्तन करके और नृत्य करनेकी आज्ञा दी. राजाकी आज्ञाको

सुनकर रानीने नृत्य और गानेका प्रारंभ किया और गाते २ ऐसे प्रेममें मग्न हो गई कि अपने परायेका कुछभी ज्ञान न रहा. राजाको वह स्वाद कभी नहीं मिला था सो आज उसको प्राप्त हुआ, सो वह अपने भाग्यकी सराहना करता सर्वदा रानीहीके साथ रहने लगा और अंतमें रानीकी भक्तिका यह प्रताप हुआ कि समस्त नगर भगवद्भक्त हो गया.

सुतीक्ष्णऋषिकी कथा २.

अगस्त्यजीके चेले सुतीक्ष्ण ऋषि रामउपासक अतिप्रेमी हुए. जिस समय श्रीरामचंद्रजी दंडकवनको गये और सुतीक्ष्णके आश्रमके पास पहुँचे तो सुतीक्ष्णजीने अपने स्वामीका आना सुना उसी समय उनके लेनेके लिये गये. उनको रामचंद्रजीके आगमन और उनके दर्शनका ऐसा आनंद हुआ कि वह सर्वकामकी चिन्ताको भूल गये. उनको बाहर और भीतर वह मूर्ति दृष्टि आती थी. उनको यहभी ज्ञान नहीं था कि मैं कोन हूं और किस जगहपर हूं और किस ओरको जा रहा हूं जब कभी उनको ज्ञान आ जाता तो वह यह चिन्ता करते थे कि कोनसी शुभ घडी होगी कि जिस समयमें रामचंद्र महाराजका दर्शन करूंगा और कभी इस बातपर प्रसन्न होते थे कि मेरी बराबर आज कोन भाग्यवान् है, कि जिसको पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघनके दर्शन होंगे उनकी प्रसन्नताके कारण एक २ पग चलनाभी कठिन ज्ञात होता था. निदान चलते २ मार्गमें बैठ गये; वह इस प्रकारसे ध्यानरूपमें मग्न हुए कि जिस समय रामचंद्र लक्ष्मणजी और जानकीजीके सहित पधारे तब इनको कुछ ज्ञान हुआ और इनको हिलाया परन्तु तोभी उन्होंने कुछ न सुना तब श्रीरामचंद्रजीने अपना ध्यान और स्वरूप अंतर्ध्यान कर लिया और चतुर्भुज रूप

उनके हृदयमें प्रगट किया; फिर जब सुतीक्ष्ण ऋषीश्वरने वह मनोहर रूप अपने अर्थका न देखा तो फडफडाकर नेत्र खोल दिये और अपनी अभिलाषाको समीप देखकर अत्यन्त प्रेमसे व्याकुल होकर इनके चरण पकड लिये. तब श्रीरामचंद्रजीने अपने दोनों हाथोंसे इनको उठाकर छातीसे लगा लिया और फिर उनके आश्रममें गये. ऋषीश्वरने विधिपूर्वक उनकी पूजा करी परन्तु और स्तुति करने लगे. प्रेमके वशीभूत थे सो एक अक्षरभी जिह्वासे न निकला नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी, कंठ रुक गया; जब भगवान्‌ने उनका ऐसा बेप्रमाण प्रेम देखा तो बोले कि हे ऋषीश्वर ! जो तुम्हारी इच्छा हो वही वर मांगो. तुम्हारे सब मनोरथ सिद्ध होंगे. ऋषीश्वर बोले कि, स्वामी ! मैं क्या मांगूं मुझको तो भले बुरेकी कुछभी सुधि नहीं, जो आपको अच्छा लगे वही मुझको दीजिये और जो यदि मेरेही मांगनेसे दो तो मुझको यह दीजिये कि यह आपका जानकी महारानी और लक्ष्मणजीके सहित अत्यन्त मनोहर स्वरूप मेरे मनमें सर्वदा बसा रहे. भगवान्‌ने यही वरदान दिया फिर इसके उपरान्त जब रामचंद्रजी आगेको चले तो ऋषीश्वरको वियोगका असह दुःख हुआ और उन्होंने रामचंद्रजीसे कहा कि स्वामी ! मैंभी तुम्हारे साथ २ चलूंगा कारण कि मेरे गुरु अगस्त्यजीके दर्शनभी होंगे. यह कहकर उनके साथ २ आनंदसहित गये.

शबरीभीलनीकी कथा ३.

भीलनी शबरीकी महिमा किस मुँह और जिह्वासे वर्णन हो सकती है ? जिसकी भक्तिके विश्वासमें बडे २ ऋषीश्वर हुए. परिणाममें जब शबरीको भगवद्भक्ति प्राप्त हुई तो उसने अपना मन साधुओंकी सेवामें लगाया. यह रात्रिके समय दंडकवनमें पंपासरोवरके निकट मातंगादि

ऋषीश्वरोंके आश्रममें लकडियें डालनेके लिये जाती थी और जो ऋषीश्वरोंका आने जाने और स्नान करनेका मार्ग था उसको बुहार कर साफ कर देती थी. यह देखकर मातंगादि ऋषि अपने मनमें विचार करते थे कि ऐसा कौन साधु है जो हमारी ऐसी सेवा करता है और वह हमारे तप और भजनमें विभागी होता है; सो एक दिन रात्रिके समय दस वीस ऋषि इकट्ठे होकर छिपकर देखनेके लिये बैठ गये. जिस समय शबरी आई तो ऋषियोंने उसको पकड लिया और मातंगऋषिके समीप ले गये. शबरी ऋषीश्वरोंको देखतेही कंपित हुई और जब उनके समीप गई तो रुदन करने लगी और भयके मारे व्याकुल हो गई; तब ऋषीश्वरोंको यह ज्ञान हुआ कि यह शबरी नीच जातिकी है सो इसकी लाई हुई लकडियें जो हमने अपने काममें लगाई हैं सो न जानिये इस अपराधसे हमें कौनसा दंड मिलेगा ? परन्तु मातंगऋषि उसकी भक्ति भावको जानते थे; कि इसकी समान करोडों ब्राह्मणोंकेभी धर्म शबरीके धर्मोंकी तुलना नहीं कर सकते; तब मातंगऋषि उसको अपने आश्रममें ले आये और भगवन्मंत्रका उसको उपदेश दिया; फिर इसके उपरान्त जिस समय ऋषीश्वर परलोकको जाने लगे तो शबरीको यह शिक्षा दी कि किसी समय यहांपर पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदघन आवेंगे सो उनके दर्शन तुझको होंगे. तू इसी आश्रममें रहा कर; शबरीको अपने गुरुके वियोगका अत्यन्त दुःख हुआ; परंतु रघुनंदनस्वामीके दर्शनोंके विश्वाससे प्रसन्न होकर भजन और ध्यानमें रहने लगी. जिस घाटपर ऋषीश्वर स्नानको जाते थे उसी मार्गको शबरी शुद्ध किया करती थी. एक दिन शबरी मार्गको शुद्ध न कर सकी तो ऋषीश्वर शबरीको देखकर क्रोधित हुए और क्रोधताईके मारे ऋषीश्वरका वस्त्र शबरीसे स्पर्श हो गया तब तो ऋषीश्वर अत्यन्तही क्रोधित

हुए और शबरीको बुरे २ वचन कहकर फिर स्नान करनेके निमित्त गये तो उस सरोवरमें जो जल था सो रुधिर हो गया और बडे २ कीडे पड गये, तब तो ऋषीश्वर अत्यन्तही आश्चर्य करने लगे फिर विचारा कि यह जल शबरीकी अशुद्धतासे भ्रष्ट हो गया; फिर वहांसे उलटेही अपने आश्रमको चले आये. शबरीभी अपने आश्रममें चली आई और विचार करने लगी कि श्रीरामचंद्रजीके निमित्त कुछ प्रसाद ढूंढना चाहिये इस निमित्त अनेक वनोंके फूल पुष्पोंको ढूंढनेको गई तो वहांसे अत्यन्त सुन्दर २ बेर तोडे. प्रथम तो आपने चखकर देखा कि यह मीठे हैं वा खट्टे सो जो मीठे थे उनको तो रख लिया और जो खट्टे थे उनको फेंक दिया; फिर आप उन बेरोंको लेकर उस मार्गपर जा बैठी कि जिस मार्गसे श्रीरामचंद्रजी आवेंगे और अपने मनोहर नेत्रोंको मार्गका असना किया; फिर जब अपनी कुरूपता और अपनी हीन जातिपर विचार करती किसी स्थानमें जाकर छिप जाती. फिर जब अपने गुरुके वचन और श्रीरामचंद्रजीकी कृपालुतापर दृष्टि करती; तो सन्मुख लेनेका मनोरथ कर भागती और भगवान्के प्रेम तथा चिंतवनमें अपना समय व्यतीत करती थी; इसी प्रकारसे बहुत काल व्यतीत हुआ तो अधम-उधारण भक्तवत्सल महाराज श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीके सहित पधारे और अति प्रेमसे ऋषियोंसे पूछा कि परमभक्त शबरीका आश्रम कौनसा है ? ऋषीश्वरोंने शबरीका आश्रम बता दिया फिर जब श्रीरामचंद्रजी शबरीके आश्रमके निकट आये तो शबरीने देखतेही साष्टांग दंडवत् करी. श्रीरामचंद्रजीने शीघ्रही शबरीको पृथ्वीसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और उसका समस्त दुःख दूर कर दिया और शबरीकी तो यह गति हुई कि चकोर जिस प्रकार चंद्रमाके मुखको एकटक लोचनसे देखता है इसकी

समान शबरी श्रीरामचंद्रजीको एकटक दृष्टिसे देखने लगी और भगवत्रूपके आनंदमें मग्न हो गई और उसके नेत्रोंसे आनंदका जल वहने लगा. फिर श्रीरामचंद्रजीको अपने आश्रममें ले गई और जो बेर वनमेंसे तोडकर लाई थी उनको श्रीरामचंद्रजीके समीप धरे तब भक्तभावन महाराज श्रीरामचंद्रजी उन बेरोंको खाने लगे और ब्रह्मा शिवादिक संपूर्ण देवता भक्तभावन महाराजका यह चरित्र देखकर शबरीके भाग्यकी बडाई करने लगे. फिर श्रीरामचंद्रजी अपने मुखमें एक बेर डालते और फिर उसके स्वादकी प्रशंसा करते जाते थे और कहते थे कि हमने ऐसे मीठे फल कभी नहीं खाये; फिर दूसरा उठाया और अतिप्रीतिसे खा लिया. निदान इसी प्रकारसे समस्त फल भोजन कर गये फिर जब सब ऋषीश्व-रोंने शबरीके आश्रमपर रामचंद्रजीका आगमन सुना तो बडा आश्चर्य किया और फिर उनके दर्शन करनेके लिये आये फिर उनको जो अपने धर्म कर्म और जातिका अभिमान था सो दूर हो गया और भगवद्दर्शनोंसे कृतार्थ होकर परमानंदपदको प्राप्त हुए और जब संभाषण हुआ तो सरोवरके जलके बिगडनेका कारण पूछा, जिससे यह जल शुद्ध हो जाय ऐसा कारण पूछा तब भगवान् श्रीरामचंद्रजीने कहा कि जिस समय इस जलको शबरीके परम पवित्र चरणोंका स्पर्श होगा तबही जल शुद्ध हो जायगा तो ऋषी-श्वर शबरीकी स्तुति कर २ सरोवर पर ले गये, फिर शबरीके चरण छूते हुए वह जल इस प्रकार शुद्ध होगया कि जिस प्रकारसे भग-वद्भक्तोंका अंतःकरण. फिर इसके पीछे श्रीरामचंद्रजीने आगे जानेकी आज्ञा शबरीसे मांगी और यह शिक्षा दी कि जैसा हमने भक्तिका उपदेश तुमको दिया है तुम सर्वदा एकाग्रमनसे उसी प्रकार रहना. शबरीके अंतःकरण और नेत्रोंमें भगवान्का स्वरूप बस रहा था;

सो रामचंद्रजीके वियोगके दुःखसे प्राण त्याग कर दिये तब भगवान्‌ने अपने हाथसे उनका दाहकर्म किया; इस चरित्रसे भगवान्‌ने आवागमनसे छूटनेकी शिक्षा दी यह सत्यही है कि अंतमें प्रेमकी व्यवस्था यही है; प्रीतमके मिलनेके पीछे चाहनेवालेके प्राण जाते हैं.

विदुर और उसकी स्त्रीकी कथा ४.

विदुरजी और उनकी धर्मपत्नी स्त्री भगवान्‌की परम भक्त हुई यह विदुरजी धर्मअवतार थे, इन्होंने मांडव्यऋषिके शापसे यह मनुष्यकी देह पाई थी. इनकी कथा विस्तारपूर्वक महाभारतमें लिखी है; जिस प्रकार विदुरजीकी भक्ति भगवान्‌में थी उनसे अधिक भक्ति उनकी धर्मपत्नीकी थी. फिर जब भगवान् श्रीकृष्ण महाराज कौरव और पांडवोंका परस्परका द्वेष दूर करनेके लिये हस्तिनापुरको गये तो दुर्योधनने सेना और द्रव्यके अभिमानसे उनका मंत्र कुछभी न माना और जब उसने भगवान् श्रीकृष्णसे भोजनके निमित्त कहा तो भगवान्‌ने कहा कि दूसरेके घर भोजन तीन प्रकारका होता है; एक तो दीनतासे; दूसरा भोजनसंबन्धतासे, तीसरा हरिभक्तिसे अथवा शिष्यके आश्रमपर जो गुरु आ जाय, सो इन तीनोंमेंसे यहांपर एकभी नहीं. यह कहकर विदुरजीके आश्रमपर गये तो उस समय विदुरजी स्थानपर न थे और उनकी स्त्री स्नान करती थी; उसने जो भक्तवत्सल श्रीकृष्ण महाराजका आगमन सुना तो आनंदित हो शरीरमेंभी न समायी और इस प्रकारसे उनके प्रेम और आनंदमें मग्न हो गई कि विना वस्त्रही उठकर भाजी. श्रीकृष्णमहाराजने जब उसके प्रेमकी यह दशा देखी तो उसको अपना पीताम्बर उढा दिया उसने यह जाना कि भगवान्‌ने यह विचारा

होगा कि यह मेरी तद्रूपताको पहुँच गई; केवल पीताम्बरही नहीं है सो यह पीताम्बर उढाना चाहिये; या वह हो कि राजा जिस समय अनेक दासपर प्रसन्न होता है तब अपने शरीरके वस्त्र दे देता है या यह विचारा हो कि राजद्वारपर तो कुछ भेंट करना चाहिये तो विदुरपत्नीको राजतुल्य मानकर पीताम्बर भेंट कर दिया; इसके पीछे फिर भगवान्‌को अपने स्थानपर लाई और अत्यन्त प्रीतिसे सिंहासनपर बैठाया फिर जब कृपासिंधु महाराजने उसकी ऐसी व्याकुलता देखी तो आपने फिर बहुत वार्तालाप करनेके पीछे कहा कि कुछ भोजन हो तो ले आओ, तब वह यह सुनकर केलेके फलोंको ले आई और उनको अपने पास बैठाकर भोजन खिलाने लगी, उस समय वह ऐसे परमानंदमें मग्न थी कि छुलके तो भगवान्‌को खिलाती गई और बीचकी गिरीको पृथ्वीपर डालती गई जो कि पूर्णब्रह्म महाराज प्रेमके वशीभूत थे वह उन छुलकोंकी प्रशंसा कर २ खाने लगे उसी समयमें विदुरजी आ गये और श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें दंडवत् करके अपनी स्त्रीसे कहा अरी मूर्ख ! तू गिरीके बदले छुलके खवा रही है । तब आप भगवान्‌के समीप बैठ गये और उनको छील २ कर खवाने लगे; तब भगवान् बोले विदुरजी ! यद्यपि यह केलोंकी गिरी अत्यन्त मीठी और स्वादिष्ठ है परन्तु जो उन छुलकोंमें आनन्द था वह इसमें नहीं. इस कहनेसे भगवान् अपने भक्तोंको शिक्षा करते हैं कि जिस प्रकारसे जो कोई मेरी भक्ति करता है; अथवा जो मेरे अर्पण भोजन तथा भेंट करता है मैं उसको वैसेही स्वीकार करता हूं दूसरे यह ज्ञान है कि मेरे अगाडी कुछ बुद्धि और तर्क नहीं है. मैं केवल भक्तिके वशीभूत हूं फिर यह बातभी जानी गई कि विदुरजीको और उनकी स्त्रीको छुलके खानेसे जो लज्जा हुई थी सो वहभी दूर हो गई और फिर दोनों आनंदित हो परम प्रीतिसे सेवा और भक्तिमें लगे.

भक्तदासजीकी कथा ५.

कुलशेखर राजा भक्तदास भगवान्‌के भक्त और प्रेमी हुए. उनकी प्रेमभक्तिकी कथा प्रपन्नामृतमें विस्तारपूर्वक लिखी है. यहां जो मूल भक्तमालमें है सो लिखी जाती है, सो यह राजा श्रीरघुनंदनस्वामीके उपासक थे. यह प्रतिदिन श्रीरघुनंदनके चरित्र श्रवण किया करते और अत्यन्त प्रीतिसे लीला और उत्साह भगवान्‌का नित्य नये भावसे किया करते थे वह ब्राह्मण कथा सुननेवाला राजाके प्रेमको जानता था, फिर जब रामायणमें सीताहरणकी कथा आती तो उसको छोड देता था. एक समय ब्राह्मण तो रुग्ण हो गया और उसका पुत्र कथा सुनानेके निमित्त आया सो उसने वही कथा सुनाई कि जहांपर रावण सीताहरणके लिये आया था और जानकी महारानीको हरण करके ले गया, इस कथाको सुनतेही राजा नंगी तलवार हाथमें लेकर उसी समय घोडेपर सवार हुआ और मार २ करता हुआ लंकाकी ओरको चला गया और यह कहा कि इसी समय रावणको मारकर अपनी माता जानकीजीके दर्शन करूंगा. रावण महादुष्टका ऐसा साहस है कि जो मेरी माताको ले जाय फिर जब मार्गमें भयंकर समुद्रको देखा तो उसमें घोडेको डाल दिया और कुछभी भय नहीं माना सो भक्तभावन और भक्तोंकी रक्षा करनेवाले महाराज जानकी और लक्ष्मणजीके सहित उसी समय प्रगट हुए और इनसे बोले कि कुलशेखर ! तुम इस समय कहां जाते हो ? रावणका तो मैंने वध किया है और मैं जनकनंदिनीके सहित अयोध्याजीको जाता हूं यह सुनकर राजा इनके चरणकमलोंपर उसी समय गिर पडा और उसने उस युगलस्वरूपके दर्शन कर पुनर्वार अपना जन्म पाया और फिर अपनी राजधानीमें आकर भगवद्भक्ति करनेमें विख्यात हुआ.

विठ्ठलदासकी कथा ६.

चौबे विठ्ठलदासजी निरभिमान और दूसरोंके सन्मान करनेवाले सबसे प्रसन्नमन और संतोषी वृत्ति और परोपकारी हुए. यह किसीके अवगुणोंको नहीं देखते थे. जो गुण जिस मनुष्यमें होता उसीको प्रशंसा करते. माला और तिलक भगवद्भक्तोंकी महिमा और प्रीति भगवान्‌के मनमें बसी थी और हरगोविन्द २ ऐसे जिह्वासे सर्वकाल उच्चारण किया करते थे. इनके बाप और इनके चाचा दोनों राजाके यहांके पुरोहित थे. परस्परमें लडकर यह दोनों मारे गये; उस समय विठ्ठलदासजी बालक थे और जब विठ्ठलदासजी समर्थ हुए तो इन्होंने भगवद्भक्तिका विश्वास किया और राजाके आने जानेकी तर्क करी, तब एक दिन राजाने कहा कि हमारे यहां पुरोहितका लडका नहीं आता है, सो वह जहां हो उसको शीघ्रही बुलाकर लाओ. विठ्ठलदासजी तबभी न गये, तो फिर स्मरण किया; तो किसी शत्रुने जाकर कह दिया कि महाराज! वह तो सर्वदा रात दिन राग रंग कराया करता है और अपनी संगति वैरागियोंसे रखता है और अपने आपको भक्त गिनता है. तब राजाने विठ्ठलदासजीसे कहला भेजा कि आज रात्रिको हमारे स्थानपर जागरण करो; यह सुनकर विठ्ठलदासजी साधुओंको लेकर राजाके स्थानपर गये राजाने इन सबोंका बहुतसा आदर सत्कार किया और निज मंदिरमें समाज करनेके लिये ले गये. जिस समय भगवच्चरित्रोंका कीर्तन और भजन होने लगा तो विठ्ठलदासजी उन भगवान्‌के चरित्रोंमें व्याकुल हो गये और उनको अपने परायेकी कुछभी सुधि नहीं रही और भगवान्‌का गान करते नृत्य करते हुए तिमजलेपरसे गिर पडे. राजा यह प्रेमकी दशा देखकर अत्यन्तही दुःखी हुआ और जो उनकी निन्दा करते थे

उनको बहुतही दंड दिया. साधुलोग विट्ठलदासजीको उठाकर घरपर लाये राजाने रुपया और जिनस विट्ठलदासजीके घरपर भेजी. विट्ठलदासजीको तीन दिन पीछे चेत हुआ और उसकी माने कहा कि राजासे जाकर शत्रुओंने तेरी निन्दा की थी सो इस कारण राजाने तेरी परीक्षा लेनेके लिये तिमजलेपर जागरन कराया था. विट्ठलदासजी रात्रिके समय घरसे निकल गये और छटीकरा ग्राममें गये. जहांपर यशोदा महारानीने श्रीकृष्णकी छटी पूजी थी; वहांपर आकर गुरु गोविन्दकी सेवामें लग गये. राजाके सेवकोंने अनेक देशोंमें ढूंढा, परन्तु कहींभी पता न लगा फिर जब इनकी माता और इनकी स्त्रीको समाचार मिला तो वे इनके पास गई और अनेक प्रकारसे चलनेको समझाया परन्तु विट्ठलदासजीका तो मन गुरुगोविन्दके अर्पण हो चुका था, वह नहीं गये. जब इनकी माताने देखा कि अब किसी प्रकारसे नहीं चलते तो आपभी उसी ग्राममें रहने लगी इसके पीछे विट्ठलदास अधिक बीमार हो गये, तब भगवान्‌ने इनसे स्वप्नमें कहा कि तुम मथुराको जाओ. विट्ठलदासजीने विचारा कि मथुरा जायँगे तो गुरुगोविन्दका वियोग हो जायगा इस कारण आप न गये तब भगवान्‌ने तीन दिनतक बराबर कहा तो लज्जित होकर मथुरामें आये और अपनी जातियोंसे मिलकर देखा कि हरिभक्तिसे विरुद्ध है फिर एक भगवद्भक्त बढईके स्थानपर ठहरे, उसकी स्त्री गर्भवती थी, उसके द्रव्यका शोच और चिन्ता थी. विट्ठलदासजीको मट्टी खोदते २ एक मूर्ति और बहुतसा धन मिला तब विट्ठलदासजी वह मूर्ति और धन उस खातीको देने लगे. खातीने हाथ जोडकर प्रार्थना करी कि महाराज ! इस द्रव्यसे आपही साधुओंकी सेवा करना विट्ठलदासजीने भगवत्सेवामें ऐसा मन लगाया कि इनकी भक्ति और प्रेमको देखकर बहुतसे शिष्य हो गये. फिर इनके निकट भगवान्‌के

उत्साह और कीर्तनका ऐसा समाज रहने लगा कि मानो भगवान्‌के पार्षदोंका हो. दैवसंयोगसे एक नटनी आई और उसने भगवान्‌के समीप नृत्य गान किया उस समय विट्ठलदासजी भगवान्‌के प्रेममें ऐसे लीन हो गये कि अपने समस्त वस्त्र और आभूषण उसको दे दिये और उनको देकरभी तृप्ति न हुई तो रंगीरायने अपने पुत्रको भगवान्‌के अर्पण करके नटनीको दे दिया. रानीकी पुत्री रंगरायकी शिष्य थी तो उसने नटनीसे कहला भेजा कि जितना द्रव्य और वस्त्राभूषण तुझको चाहिये सो तू मुझसे ले जा और मेरे गुरु रंगीरायको दे जा. तब नटनीने कहला भेजा कि मुझको द्रव्यकी अभिलाषा नहीं; तब राजाकी लडकीने विट्ठलदासजीकी प्रार्थना करके फिर समाज कराया और जो गाने तथा नाचनेवाले भगवद्भक्त थे सो आये, फिर उनको बहुतसे वस्त्राभूषण दिये फिर भगवान्‌के प्रेममें मग्न हो आप भगवान्‌के समीप नृत्य करने लगी तब तो नटनी प्रसन्न हो गई और रंगीरायजीका शृंगार करके डोलेमें बैठाकर ले आई. रंगरायजीभी उस नटनीकी आज्ञानुसार नृत्य करने लगे उनके नृत्यको देखकर समस्त समाज भगवत्समाजसे व्याकुल हो गया. फिर नटनीने समस्त द्रव्य और आभूषण रंगरायजी सहित भगवान्‌की भेंट किये तब रंगरायजीने विट्ठलदासजीसे कहा कि आप मुझको नोछावर कर चुके हैं यह आपको उचित नहीं है कि फिर ले लें इस कारण विट्ठलदासजीने तो उनको न लिया परन्तु रानीकी पुत्रीने उनको ले लिया. तब रंगीरायजीने विचारा कि शरीर तो भगवान्‌के अर्पण हो चुका परन्तु प्राण नहीं हुए इस कारण अब इस पंच तत्त्वके देहको छोडकर प्राण भगवान्‌के अर्पण करना चाहिये. यह विचार कर शरीर त्याग दिया; यह पवित्र चरित्र प्रेमरसका देनेवाला है सो स्मरण रखना कर्तव्य है.

कृष्णदासजीकी कथा ७.

कृष्णदासजीभी भगवान्‌के परम भक्त हुए; उनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीरामचंद्रजीने उनको अपना नूपुर दिया था. यह भगवान्‌के कीर्तनकी रीति भली प्रकारसे जानते थे. स्वर और ताल, ग्राम, मूर्छना आदि जो संगीत रत्नाकरमें लिखे हैं उनको ऐसा पढा था कि उस समय इनसे बढकर कोई न था और उसका प्रभाव ऐसा हुआ कि राधिकावल्लभ महाराजको अपने वशमें कर लिया; यह जातिके सुनार थे इनके पिताका नाम खड्गसेन था. एक दिन राधाकृष्ण महाराजकी पूजा करके भगवान्‌के समीप नृत्य और कीर्तन करने लगे और गाते २ भगवान्‌के रूपको देखकर ऐसे मग्न हुए कि इनको अपनी शरीरकीभी सुधि न रही. उस समयमें एक पैरका घूंघरू खुलकर गिर पडा तो तालभंग हो गई; तब श्रीकृष्णमहाराजने जो उस समय तालका भंग देखा तो अपने हाथसे अपना नूपुर श्रीकृष्णदासजीको पहराया. फिर जब नाच चुके तो ज्ञात हुआ कि यह भगवान्‌हीकी कृपा हुई फिर अपने भाग्यकी बडाई करने लगे. इन्होंने इस प्रकार भगवद्भजन किया कि दिनरात उनकेही प्रेममें मग्न रहते थे और साधुओंकी सेवा करते थे कि इन्होंने भगवान् और हरिभक्तोंमें कुछ अंतर नहीं जाना. यहांपर जो किसीको यह संदेह हो कि भगवान्‌ने नूपुर किस कारणसे पहराया. उसीको सुधारकर क्यों न पहरा दिया; अब विचारना योग्य है कि यदि यह घूंघरू जो संभालकर पहराते तो देर होती इस कारण अतिशीघ्र अपनाही पहरा दिया और भक्तके मनमें अपनी प्रसन्नता प्रगट कर दी. इसमें यहभी जाना जाता है कि भगवान्‌ने प्रसन्न होकर यह घूंघरू पुरस्कारमें दिया था.

कात्यायनीकी कथा ८.

कात्यायनीजीके प्रेम भक्तिकी कथा कौन वर्णन कर सकता है जिस प्रकारसे श्रीकृष्ण महाराजमें गोपियोंका स्नेह हुआ था उसी प्रकार श्रीकृष्णजीमें कात्यायनीजीका हुआ, यह बात कहते २ भगवान्के रूप और उनके चिंतवनमें व्याकुल हो जाती थी फिर इनको कुछभी ज्ञान नहीं रहता था और संसारके दुःख सुखोंसे पृथक् रहती थी. मानो भगवान्के प्रेम और स्नेहका स्वरूप हुई और सब यह भगवद्भक्तोंका विश्वास है कि भगवान्के प्रेमकी अवधि कात्यायनीजी थीं, यह मार्ग चलते २ भी भगवान्के चरित्रोंमें तन्मय हो जाती थीं; कभी तो गाती और हँसती और कभी रोती थीं. एक समय भगवच्चरित्रोंसे व्याकुल और मग्न थीं; उस समय पवन प्रचंड चल रही थी उसके वेगसे वृक्षोंके शब्द सुनाई आने लगे तो कात्यायनीजीने यह विचार किया कि यह ताल मृदंग बजानेवाले हैं; सो मुझे नृत्य करती जानकर बाजे बजा रहे हैं, सो इनको कुछ द्रव्य देना चाहिये, यह विचारकर अपने शरीरके वस्त्र उतारकर वृक्षोंपर डाल दिये और फिर प्रियाप्रीतमके प्रेममें उन्मत्त हो गई.

माधोदासकी कथा ९.

कघागढके निवासी माधोदासजी भगवान्के ऐसे प्रेमी हुए कि यह जिस समय भगवान्के चरित्रोंका गान तथा कीर्तन सुनते तो भगवान्के माधुरी चिंतवनमें व्याकुल होकर लोटने लगते थे और अपने शरीरकी सुधबुध नहीं रहती थी और इसी प्रकारसे इनके पुत्र तथा पौत्रभी प्रेमी हुए. उनकोभी भगवद्भक्तोंमें अधिक प्रेम और विश्वास था; यह तनमनसे उनकी भक्ति किया करते थे; उस नगरीका राजा भगवान्से विमुख था, सो दुष्ट मनुष्योंने राजाके आगे इनकी निन्दा

करी और कहा कि माधोदास अपनी महिमा बढानेके लिये भक्तिका मिस लेकर वृथा पृथ्वीपर लोटता है. राजा तौ अज्ञानही थे उन्होंने झट इनकी परीक्षाके निमित्त अपने यहां समाज ठहराया और समाज करनेका तिमजलेपर विचार किया फिर जब समाज हुआ तौ माधोदासजीने अपने चरणोंमें नूपुर बांधकर ऐसा नृत्य और गान किया कि व्याकुल होकर लोटने लगे और नीचे पक्वान्न बनानेके लिये घीका भरा हुआ कडाह चढ रहा था उसमें गिर पडे; उस समय भगवान्ने अपने भक्तकी ऐसी रक्षा की कि माधोदासजीको किंचित् आंचतकभी नहीं आई; तब राजाके अंतःकरणमें जो अंधकार था सो जाता रहा; तब भयभीत तथा लज्जित होकर भगवद्भक्तोंका दास और भक्त हो गया.

नारायणदासकी कथा १०.

यह नाराणदासजी नृत्यके नट भक्त हुए. यह भगवान्के प्रेमके स्वरूप थे परन्तु उन्होंने जो भगवान्के प्रेमका निर्वाह किया सो किससे हो सकता है ? वह विष्णुपदोंमें गाते २ किस प्रकारसे भगवान्के रूपमें व्याकुल होकर नित्य विहारमें जा मिले; उनका यह नेम और वृत्त था कि भगवान्के विना और किसीके आगे नृत्य तथा कीर्तन नहीं किया करते थे. फिर तीर्थ या भवगन्मंदिरोंकी यात्रा करते हुए प्रयागराजसे छः कोस एक हंडियासराय है यहांपर पहुँचे और उनके नृत्य तथा कीर्तनकी धूम नगरमें पहुँची, वहांका हाकिम मुसल्मान था सो उसने इनको बुलानेके लिये भेजा तौ नारायणदासजीने यवनके समीप भगवान्के सिंहासनका ले जाना उचित न समझा और न जानेकाभी भय माना; फिर परवशताके कारण मनमें एक यत्न विचारा और गये; उस

ऊंचे सिंहासनपर तुलसीकी माला रक्खी; कारण कि नारायण और तुलसीमें कुछभी अंतर नहीं है. यह शास्त्रोंके वचनके अनुसार उसके समीप आप नृत्य करने लगे, परन्तु उस समय यवनकी ओर भूल करकेभी न देखा; फिर जब यह मीराबाईजीका विष्णुपद गाया कि " सांचो प्रीतिहीको नातो । कै जाने राधिका नागरीके मनमोहन रँगरातो ॥ " कीर्तन किया तो उसके हार्द और अर्थको विचारकर प्रियाप्रीतमके स्वरूपमें व्याकुल हो गये और उसी समय व्याकुलतासे जैसा कारण स्वरूप विष्णुपदमें कहा वैसाही स्वरूप नेत्र और मनमें समाया. व्रजमोहन महाराज वृषभानु-नंदिनी परस्परमें रास क्रीडा कर रहे हैं और नृत्यके समयमें तीक्ष्ण कटाक्ष और त्रिभंगी स्वरूप व्रजकिशोर महाराजने परम शोभा और शृंगार व्रजनागरीजीने ऐसा छटाका स्वरूप पकडा कि नारायणदास-जीने उस समयमें अतिप्रेमसे अपने प्राणोंको भगवत्पर न्यौछावर योग्य जाना तो तत्काल उस रूपकी न्यौछावर करके नित्य विहार और परमानंदमें जा मिले.

लीलानुकरणकी कथा ११.

जातिके ब्राह्मण लीलानुकरण पुरुषोत्तम पुरीमें ऐसे भक्त हुए कि यह भगवत्रूपमें व्याकुल होकर तन्मय हो जाते थे. एक समय नृसिंहजीकी लीलाके दिन परम पवित्र जानकर बहुतही प्रसन्नतासे लीलाकी तैयारी करी और ब्राह्मणको भगवान्का प्रेमी जानकर नृसिंहजीका स्वरूप बनाया, फिर जब चरित्रका कीर्तन होने लगा तो नृसिंहजीने अपने नखोंसे हिरण्यकश्यपका उदर फाडकर मार डाला तो लीलानुकरणने सत्यही तो हिरण्यकश्यप बनाया था उसका पेट नखोंसे चीर और फिर प्रह्लादजीको राज्य दिया और मनुष्योंमें

उसका मरना द्वेषसे जाना और भगवद्भक्तोंने कहा कि द्वेष नहीं; कारण कि नृसिंहजीका अंश इसके आ गया था. अंतमें यह निश्चय ठहरा कि रामलीलामें इस ब्राह्मणको दशरथजीका स्वरूप बनाना चाहिये उस समयमें निश्चयही द्वेष और प्रेमका जाना जायगा सो रामलीलामें ऐसाही किया; जब वह चरित्र आया कि श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण और जानकीके सहित वनको सिधारे और सुमंत सारथीने रामचंद्रजीके वन जानेकी खबर सुनाई; और राजाने सुनतेही प्राण त्यागन किये तो उस समय ब्राह्मणभी निश्चयही दशरथ हो गया था सो रामचंद्रजीके वनको चले जानेकी खबर सुनतेही प्राण त्याग दिये और महाराज दशरथजीसेभी अधिक विशेष अधिकारको प्राप्त हुआ; सत्यही है कि प्रेमका यही प्रताप है.

मुरारीदासकी कथा १२.

मारवाडदेशमें मुरारीदासजीभी भगवान्‌के प्रेमी भक्त हुए और भगवान्‌के उत्साह और हरिभक्तोंकी सेवा तथा भंडारा करनेमें इस समय इनकी समान कोई न था; कीर्तन करनेके समय श्रीरघुनंदन स्वामीके चरित्रोंमें लौलीन होकर प्रेमकी अन्तिम दशाको हरिभक्तोंको शिक्षा करी कि एक चमार भगवान्‌की पूजा और उनकी सेवा बडे विश्वास और प्रीतिसे किया करता था और पूजा करनेके समय पुकार २ कर कहा करता था कि जो भगवान्‌के चरणामृतका अधिकारी हो सो आनकर ले जाओ. मुरारीदासजीने जो मार्गमें चलते समय यह वार्ता सुनी तो आप उसके घरपर गये; वह चमार इनको देखतेही भयके मारे कंपित हो गया; तब मुरारीदासजीने उनको धीरज बंधाकरके कहा कि, तू किस कारणसे भयभीत होता है ? मैं केवल चरणामृत लेनेके लिये आया हूं. चमार हाथ जोडकर बोला

कि, महाराज ! मैं जातिका चमार हूं सो आप मेरे घरका चरणामृत नहीं पान कर सकते. मुरारीदासजीने उत्तर दिया कि, तू हमसे विशेष है और जो तू भय मानता है तो हम किसीसेभी न कहेंगे. यह कहकर प्रेमसे व्याकुल हो गये और नेत्रोंमेंसे जल जाने लगा. चमारने पूछा कि महाराज ! आप किस कारणसे रुदन करते हैं ? मुरारीदासजीने उत्तर दिया कि, हमारे नेत्र दूखते हैं फिर चमारने अति नम्रतासे प्रार्थना करी कि, महाराज ! मुझ नीचसे आपको चरणामृत लेना योग्य नहीं. मुरारीदासजीने न माना और हठ करके चरणामृत ले लिया और उन्होंने भगवद्भक्तिकोही मुख्य समझा और जातिकर्मको त्याग दिया. अब विचारना योग्य है कि, मुरारीदासजी इस चरित्रसे तीन प्रकारकी शिक्षा करते हैं. प्रथम तो यह कि, जो मनुष्य भगवत्प्रेम वा भक्तिके अंत अधिकारको पहुँच गये उनको तो यह कहते हैं कि, जो जाति आदिका बंधन उन मनुष्योंको है कि भगवत्प्रेमसे बहिर्मुख हैं तुम इसका दृढ निश्चय रक्खो कि, दूसरा साधक मनुष्योंको प्रेरणा है कि भगवद्भक्तिमें वह स्थान पाना चाहिये कि अभिमान और दुराचार दूर हो जांय. तीसरे जो भगवत्सेवासे विमुख हैं तिनसे तो चमारही उत्तम है, जो भगवान्‌की सेवा करते हैं. भागवतके एकादश स्कंधमें लिखा है कि जो ब्राह्मण जाति उत्तम है द्वादश कर्म वेदसंस्कार हुआ है और भगवद्भक्तिसे विमुख है तो उससे अधम भक्तही श्रेष्ठ है, फिर काशीखंडमें लिखा है कि, ब्राह्मण या क्षत्रिय अथवा वैश्य या शूद्र या नीच जाति जो भगवद्भक्तिमें परायण वही उत्तमोत्तम है और इसी प्रकारसे बहुतसे वचन लिखे हैं. इस चरित्रसे एक यह उपदेशभी जाना जाता है कि, तंत्रशास्त्रके अनुसार पांच बातें भक्तिसे विमुख करती हैं. एक तो जातिका अभिमान और दूसरे गुणका, तीसरे बडाई और द्रव्यादिका, चौथे रूपका, पांचवां बलका

जिस मनुष्यने इन पांचोंको जीत लिया वही भक्तिके देशको पहुँच गया. यह वार्ता मुरारीदासकी सब नगरमें विख्यात हो गई और मनुष्य इनके ऊपर आक्षेप करने लगे. होते २ यह समाचार राजातक पहुँचा; इसको सुनकर राजाको अत्यन्तही घृणा हुई और फिर उनसे विमुख हो गया. एक समय मुरारीदासजी राजाको देखनेके लिये आये और जो भाव राजाका इनके प्रति पूर्व था सो इस समय वह नहीं था. यह तो वैराग्यवान् थे सो राजाकी अभक्ति देख सर्वस्व त्यागन कर और स्थानपर जा बैठे. उनके चले जानेसे हरिभक्तोंका नामतक-भी न रहा और राजा जो वार्षिक उत्साह किया करता था और अनेक देश २ के साधु तथा भगवद्भक्त आते थे फिर उसमें कोईभी न आया और फिर उस नगरमें काल पडा अनेक उत्पात होने लगे; तब तो राजा चिन्तित होकर उनके लिवानेके लिये गया और जाकर नम्रतासहित साष्टांग दंडवत् करी. मुरारीदासजीने राजाकी ओरसे मुख फेर लिया और कहा कि जो मनुष्य भगवान्से विमुख है उसका दर्शन करना कदापि योग्य नहीं. भगवत्विमुखसे वार्ता करनेमें अपने गुरुकी निन्दा होती है. राजा लज्जित होकर हाथ जोडे हुए खडा रहा और फिर दंडवत् कर स्तुति करी कि आप मेरे अपराधोंको क्षमा कर जो इच्छा हो सोही दंड दीजिये और यहभी कहा कि मेरे बडे भाग्यमें निश्चय संदेह नहीं कि आपकी समान गुरु मुझको मिले; परन्तु इस समय आपहीकी कृपामें मुझको संदेह है कारण कि आपके चरणारविन्दोंमें मुझको विश्वास न रहा. यह सुनकर मुरारीदासजी प्रसन्न हुए और वाल्मीक श्वपचका प्रसंग कह सुनाया जो कि युधिष्ठिरके यज्ञमें श्रीकृष्णजीने सबसे ऊंचे अधिकारपर बैठाकर द्रौपदीजीके हाथसे भोजन कराया और शबरीका कि ऋषीश्वरोंने जिसके चरण पकडे और तालाव जिसके चरणोंकी कृपासे पवित्र हुआ और

रघुराजा भीलोंका कि जिसको वशिष्ठजी और भरतजीने अपनी बराबर बैठाया था और सुग्रीव, हनुमान, बिभीषण, गज, गणिकाको उपदेश किया और फिर उनके मनके अंधकारको दूर किया और उनको भगवान्‌की भक्तिका उपदेश दिया. इसके उपरान्त फिर उस राजाके नगरमें आये. फिर वैसाही समाज और भगवद्भक्तोंका सत्संग रहने लगा; फिर सम्पूर्ण उपद्रव और क्लेश निवृत्त हो गया; फिर मनुष्योंने भगवद्भक्ति धारण करी. एक समय फिर समाज हुआ और जो मनुष्य कीर्तन और भजनके प्रेमी और रसिक थे, सो उस समय आये, तो मुरारीदासजीसे बोले कि कुछ आपभी भजन करो तब उनकी आज्ञा पाकर मुरारीदासजी उठे और अपने चरणोंमें घूंघरू बांधकर नृत्य करने लगे. जो भगवद्भक्त थे, वह सब राग रागिनी और सातों स्वर, तीनों ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना उसी ठौर आकर खडी रहीं और ऐसी धूम धामसे समाज हुआ कि ऐसा कभी न हुआ था. फिर जब श्रीरामचंद्रजीके वनको जानेका प्रसंग भक्तोंने किया तो मुरारीदासजी भगवान्‌के विरहसे तन्मय हो गये और चित्रकी समान खडे रहे. उस समय उन्होंने यह वार्ता जानी होगी कि उस घोर निर्जन वनमें श्रीरामचंद्रजी व परम सुकुमार जानकीजी तथा लक्ष्मणजीकी सेवा कौन करेगा इस कारण यह प्राण उनकी सेवाके लिये भेजने योग्य हैं सो उन्होंने उसी समय प्राण त्यागन किये. इस चरित्रको देखकर समाज अत्यन्तही दुःखी हुआ और मुरारीदासजी परम पदको प्राप्त हो गये.

गदाधरभट्टकी कथा १२.

गदाधर भट्टजी प्रेमभक्तिके समुद्र और उत्तम जाति और उत्तम बुद्धिके और सर्वदाही प्रसन्न रहनेवाले, मधुरभाषी सर्वकाल निर्गुण भगवद्भजनमें आनंदित और मनुष्योंको भक्तिमार्गपर दृढ करनेवाले

हुए. यह किसीसे कुछभी इच्छा न रखते थे; इनको सबपर दय समान थी औ भगवद्भक्तोंकी ऐसी सेवा करते थे मानो उसी निमि उनका जन्म हुआ था, उनका यह विष्णुपद है " सखी हूं श्याम रँगी । देखवे विकाय गई वह सूरति मूरति माहिं पगी ॥" जीव गुसांइ जीने सुना तो पत्र लिखा और दो साधुओंके साथ पत्र भेजा. पत्रक मतलब यह था कि तुमको रैनीके विना रंग कैसे चढ गया. उस प्रेम भरे हुए पत्रको लेकर साधु भट्टजीके स्थानपर पहुँचे और कारणसे भट्टजी कुएँपर बैठे थे सो साधुओंने उनसे पूछा कि गदाधर भट्टका स्थान कौनसा है और किस ओरको है ? भट्टजीने कहा तुम कहांसे आये हो और कहां तुम्हारा निवास है. साधुओंने दिया कि जो सब धामोंका परम धाम वृन्दावन है वहां हम रहते और उसी स्थानसे आये हैं. भट्टजी उस परम अभिराम नामव श्रवण करतेही व्याकुल हो कह गिर पडे और कई क्षणमें उनको चे हुआ. फिर भगवद्रूपमें मग्न होकर चित्रकी पुतलीकी समान बैठ तब किसी और मनुष्योंने उनसे कहा कि गदाधर महाराजजी हैं. साधुओंने उसी समय वह पत्र उनको दिया; तो गदाधरजी अतिप्रीतिसे उस पत्रको लेकर पढा और श्रीवृन्दावनविहारीके रूप मग्न होकर वृन्दावनको चले और जाकर जीवगुसांईजीसे मिले दोनोंमें प्रेमका समुद्र ऐसा उमडा कि दोनों उसमें गोते खाने और परस्परके सत्संगसे अपना अहोभाग्य समझा; फिर भट्टजी गुसांईजीको सब ग्रंथ भगवच्चरित्र रसरास प्रियाप्रीतम तथा कुंजा हारीजीके पढकर सुनाये और फिर भगवान्‌के रंगरूपमें रंगे . भट्टजी श्रीमद्भागवतकी कथा प्रतिदिन कहा करते थे. कल्याणसिं क्षत्रिय उस कथाको बडी प्रीतिसे सुना करता था और उसने . घरका आना छोड दिया. सर्वदा भगवान्‌केही भजनमें लवलीन रहता

उसकी स्त्रीने विचारा कि जबसे स्वामीको भट्टजीकी संगति हुई है तबसे उन्होंने घरका आना जानाभी छोड दिया और उनकी कामकी वासनाभी जाती रही सो उनका विश्वास दूर करनेके लिये एक गर्भवती स्त्री भिक्षा मांगती फिरती थी उसको बुला लाई और उसको वीस रुपये देने करे कि हमारा काम करो. वह यह है कि जिस समय भट्टजी कथा कहते हों उस समय जो मैं सिखाऊं वह पुकारकर कह देना और अपनी दासी उसके साथ करी और कहा कि, इसको भट्टजीका स्थान बता आ. उस स्त्रीने लोभमें आकर वैसाही किया. जिस समय भट्टजी कथा वांच रहे थे उस समय उसने कहा कि महाराज! क्या तो मेरे साथ प्रथम आपका व्योपार था सो आपकी संगतिसे मैं गर्भवती हो गई हूं और अब आप ऐसे कठोर हो गये हैं कि खर्चतकभी नहीं देते. भट्टजीने उसी कथा कहतेमें कहा कि सत्य परन्तु मेरा क्या दोष है? तुमनेही तो दर्शन न दिये, कथाके श्रोताओंने विचारा कि यह बात झूंठ है और दुष्टनी दंड देनेके योग्य है. जब राधिकावल्लभ लालजीके गुसांईको यह समाचार ज्ञात हुआ तो बहुतही दुःख हुआ और उस स्त्रीको बुलाकर कहा कि, तू सत्यही कह कि यह बात झूंठ है वा सत्य? जो नहीं बतावेगी तो तुझको जीता नहीं छोडूंगा, उसने समस्त वृत्तान्त सत्यही सत्य कह सुनाया. जब कल्याणसिंहको अपनी स्त्रीका यह चरित्र जान पडा तो क्रोध कर तलवार लेकर उसके मारनेको चला तो भट्टजीने दया कर कहा कि स्त्रीको कदापि न मारना, उसको इतनाही दंड बहुत है कि उसको त्यागन कर दो फिर यही हुआ. फिर किसी देशका महंत कथा सुननेके लिये आया और भट्टजीने सबसे आगे उसको बैठाया. महंतने देखा कि सब श्रोता प्रेममें भरे हुए भगवच्चारित्रको श्रवण कर रहे हैं और सबके नेत्रोंसे प्रेमका जल बह रहा है और मेरे नेत्रोंसे एक

बूंदभी नहीं निकलती, इसका क्या कारण है ? मनुष्य मेरे इस कर्मपर अवश्य निन्दा करेंगे, फिर जब दूसरा दिन हुआ तो अपनी चादरके सिरेमें मिरच बांध ली और नेत्रोंसे लगाकर बहुत जल वहाया. एक साधु यह चरित्र देख रहा था उसने यह समस्त वृत्तान्त भट्टजीसे कह सुनाया; तब भट्टजीने उस साधुको समझाकर कहा कि महंतने मिरचें अपने नेत्रोंमें इस कारणसे लगाई थीं कि जिन नेत्रोंमेंसे प्रेमका जल न वहे उसमें मिर्चे लगानी उत्तम है. फिर जब कथा हो चुकी तब भट्टजी अत्यन्त प्रसन्न होकर महन्तजीसे मिले और यह मिलना उनका उसको ऐसा उत्तम हुआ कि, थोडेही समयमें वह दूसरे प्रेमियोंसेभी अधिक हो गया. एक समय गदाधरजीके घरपर चोर आया और उसने सब मालकी गठरी बांधी, परन्तु वह उससे भारी होनेके कारण उठ न सकी, तब भट्टजी आपही गये और उसको उठवा दिया. चोरने विचारा कि, यह मनुष्य कौन है कि जो पकडता नहीं है ? अपने हाथसे माल उठाये देता है. तब पूछा कि तुम कौन हो ? तब भट्टजीने अपना नाम बताया, तब वह सब असबाबको छोडकर भट्टजीके चरणोंमें गिर पडा और बडी विनती करने लगा. भट्टजीने उससे कहा कि तू निर्भय ले जा औरभी जो तुझको चाहिये सो ले जा सब उपस्थित है शीघ्रही चला जा क्योंकि प्रभात हो गया है. चोरने दोनों हाथ बांधकर विनती करी कि, अब तो वह द्रव्य अखण्ड मुझको दो कि जो मैं दोनों लोकके भयसे निर्भय हो जाऊं. यह कहकर रुदन करता हुआ उनके चरणोंपर गिर पडा तब भट्टजीको दया आई और उसको मंत्रका उपदेश दिया और उसको इस चोरीसे छुटाकर माखनचोरमें मिला दिया. भट्टजीका यह नेम था कि भगवान्की रसोईकी समस्त सेवा अपने हाथसेही किया करते थे. उनके सेवकभी बहुत थे परन्तु भगवत्सेवाका अधिकार किसीकोभी

न था. एक दिन भगवान्की रसोईका चोका दे रहे थे सो कोई राजा इनके दर्शनोंके निमित्त आया और भेंटके लिये बहुतसा रुपया लाया. एक सेवकने भट्टजीसे जाकर कहा कि, चोका छोड हाथ धोकर अति शीघ्र गद्दीपर आओ एक बडा सेवक आता है, इस बातसे भट्टजी अति क्रोधित हुए और बोले कि भगवत्सेवासे कोनसा काम पहले है जो उसके निमित्त सेवाको छोडकर जाऊं. गदाधर-भट्टजीके ऐसे अनेक चरित्र आनन्दके देनेवाले हैं.

रतवंतीकी कथा १४.

रतवंतीबाई परम भक्त और वात्सल्य उपासक हुई; वह भगवद्भजन और उनके भोगकी सामग्रीमें नित्य लगी रहती थी; किसी स्थानमें श्रीमद्भागवतकी कथा होती थी. सो यह नेमसहित नित्य वहां जाती थी. सो एक दिन भगवान्की रसोई तैयार कर रही थी सो उसको छोडकर कथामें पहले जाना योग्य न समझा और फिर अपने बेटेको कथामें भेज दिया. उस दिन कथामें वह प्रसंग था कि नंदनंदन महाराज माखनको चुराकर अपने ग्वालबालोंको खिला रहे थे और उस क्रीडा चरित्रमें मन लगा रक्खा था; सो यशोदाजीने यह काम अपने नेत्रोंसे देख लिया और श्रीकृष्णका यह खोटपन प्रथमही व्रजसुंदरियोंने यशोदाजीसे कह दिया था; इस कारण यशोदाजीने व्रजभूषण महाराजको ऊखलसे बांध लिया फिर जब रतवंतीजीका पुत्र कथाको सुनकर आया तो वह सम्पूर्ण कथा अपनी माताको कह सुनाई. जिस समय उनके पुत्रकी जिह्वासे यह वचन बाहर आया कि रस्सीसे श्रीकृष्णको बांधा तो आप अचेत हो गई और कहा कि यशोदा बडी कठोर है कि उन कोमल शरीर सुकुमार श्रीकृष्णजीको कैसे बांधा होगा?

हाय ! यह मेरा प्यारा मनोहर अत्यन्त कोमल बालक तो ऊखलसे बांधा हो; और मैं परम आनन्दसे बैठी रहूं यह कहकर उसी समय प्राण त्यागन कर दिये और नित्य परमानन्दको पहुँचकर उस अपने पुत्रको ऊखलसे छुटाया कि जिसकी मायाकी फांसीमें करोडों ब्रह्माण्ड बंध रहे हैं.

दोहा–प्रेमप्रीतिकी रीति बडी, कापै वरनी जाय ।
सो जाने जाके हिये, नेक प्रगट हो आय ॥

जस्सूधरकी कथा १९.

देवदासके वंशमें यह जस्सूधरजी ऐसे परम भक्त हुए कि पुत्र स्त्री आदि यह सब भगवत्परायण थे और जिस प्रकारसे इनको भक्ति भावमें प्रेम था यह उसी भावसे भक्तोंकी टहल करते थे. इनको श्रीरघुनन्दन स्वामीके चरित्रोंमें ऐसी प्रीति थी कि यह भगवच्चरित्रोंको सुनकर भगवद्रूपमें मग्न हो जाते थे. यह चरित्र जो रामायणमें लिखाहै कि जब विश्वामित्र ऋषीश्वर आये और दशरथ महाराजसे श्रीरामचन्द्रजीके ले जानेको कहा और भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी उनके साथ चलनेको तैयार हुए तो इस चरित्रके कहतेही उसी समय उस समाजमें तद्रूप हो गये और बोले कि महाराज ! मैंभी तुम्हारे संग चलता हूं, भगवान्ने प्रत्यक्षही होकर कहा कि तुम यहांही रहो; हम थोडेही दिनोंमें ऋषीश्वरके यज्ञको पूर्ण कर अति शीघ्र आते हैं; सो जस्सूधरजीने उस माधुरी स्वरूप अनूपको अपने समीप देख लिया था; वह स्वरूप कैसा है कि जिसकी शोभाकी कृपासे करोडों ब्रह्माण्डोंकी शोभा और स्वरूपता होती है फिर पीछेसे कहा, वियोग फिर कब सहा जायगा इस कारण उसी समय अपने प्राण भगवत्के धामको भेज दिये और आप परमानन्दको प्राप्त हुए.

दोहा–हरिभक्तिके कारणे, भक्त तजत हैं प्रान ।
ते पामर परि हैं नरक, जे न भजैं भगवान ॥

कृष्णदासजीकी कथा १६.

कृष्णदासजी ब्रह्मचारी सनातनजीके शिष्य हुए. जब श्रीमदन-मोहन दासजीका मंदिर तैयार हुआ. और भगवान्‌की मूर्ति उसमें विराजमान हुई तो सनातनजीने कृष्णदासजीको भगवत्सेवामें योग्य जानकर उस मंदिरकी सेवाका अधिकार उनको दिया तो बडी प्रीतिसे उनकी पूजा करने लगे; फिर कृष्णदासजीने नारायणभट्टको भक्त और प्रेमी जानकर अपना शिष्य किया. एक दिन कृष्णदासजीने भगवान्‌का शृंगार किया और भगवान्‌की छबिको देखने लगे. देखते २ भगवान्‌के रूपमें व्याकुल और मग्न हो गये और इस प्रकार प्रेम और स्नेहका वेग हुआ कि यत्न करने परभी बहुत देरतक अपने परायेकी सूरत न रही; यह जिस प्रेम और भक्तिसे शृंगार करते थे उनका वर्णन तो कब हो सकता है ?

दोहा–हरिभक्तकी कथाको, को कवि बरने पार ।
जिनके हित निर्गुण अलख, प्रभु धारत अवतार ॥ १ ॥
भक्तमालकी सब कथा, भक्तनकी सुखदान ।
भाषा सरल कही सकल, मिश्र सुमरि भगवान ॥ २ ॥

अब यहांपर किन्ही २ आवश्यक बातोंका वर्णन है. अब मैं अवधविहारी मुरारी श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी वंदना करता हूं कि जिन्होंने अपनी कृपासे मुझ महापापी और मंदबुद्धिको अपनी शरणमें रखकर दोनों लोकसे निर्भय कर दिया. अब विचारना योग्य है कि जिसकी माया करोडों ब्रह्माण्डोंको बनाकर फिर नाश कर

देती है; कि जिसको कोई सहस्र शिर पाद नेत्र और नासिकायुक्त कहते हैं. कोई स्वरूपसे रहित, निर्गुण, निराकार, निरंजन और कोई विश्वरूप और कोई योगका परिणाम और कोई प्रमाणका प्रमाण और कोई तत्त्वोंका परम तत्त्व और चिन्मात्र कोई कालकाभी काल और कोई सर्व कर्मोंका परम फल कहते हैं. जिनके चरणकमल ब्रह्माकेभी ब्रह्मा हैं और सब देवताओंकेभी देवता हैं; जिनका रूप अनूप शिवजीके मनका हंस है और भक्तोंका उद्धारक है; जिनका पवित्र नाम सब नामोंका नाम देनेवाला है और सब वेद तथा जा शास्त्रोंका सार है जिसकी महिमाके वर्णनमें शारदा गूंगी है और शेषजी तथा वेद जिसको नेति २ कहते हैं और बुद्धि वा विचार अनुमान और तर्कसे परे है और सत्यतासे कहां तो वह स्वामी और कहां मैं पापी कि जिसके कर्म सुननेसेभी नरक प्राप्त होता है सो मेरे ऊपरभी वह करुणा और दयालुता करी कि जिसका वर्णन नहीं, जिस भक्तमालका सुनना और पढना पूर्वजन्मके सहस्रों पुण्य और फलसे प्राप्त होता है. उसके एक २ अक्षरको विचारना और अक्षर २ के अर्थका समझना और फिर उसका उलथा करना या उसके रसमें आनन्दित होना, नेत्रोंमें जल, रोमांच, हृदयका द्रवीभूत होना तथा प्रेमके कारण कभी लेखनीका न उठना आदि जो सुख प्राप्त हुआ सो कौन कह सकता है ? इसके निमित्त बहुत सामग्रीकी आवश्यकता थी परन्तु मुझे परमात्माकी कृपासे सब एकही स्थानमें प्राप्त हुआ. स्थान, सामग्री और फिर ऊपर लिखे हुए मंगलाचरणके अनुसार किसीका सहाराभी न लेने दिया और उसको एक मेरीही लेखनीसे पूर्ण कर दिया; सो भगवत्की इस कृपापर भली प्रकार शोच विचार करकेभी यदि मेरा मन महाराजके चरणकमलोंमें न लगे तो उससे अधिक मंदभागी और पापी कौन है.

दोहा–समुझ मेरि करतूत कुल, प्रभु महिमा जिय जोय ।
जो न भजे रघुवीर पद, जग बड नीचक होय ॥

प्रगट हो कि यह भगवान् भक्तोंके चरित्र आप श्रीरघुनंदन स्वामीको जानकी महारानीकी समान तथा अपनी भक्तिकी समान प्यारे हैं और विना महाराजकी कृपासे किसीकोभी प्राप्त नहीं होते. दोनों लोकके धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका देनेवाला है और श्रीरघुनन्दन स्वामीके स्वरूपको शुद्ध मनपर चित्रकी समान प्रगट कर देनेवाला है; इस कारण उसके पूर्ण होनेमें भगवत्की कृपा वा धन्य मानना उचित न था कारण कि न जाने यह परमानन्द फिर मुझे प्राप्त हो या न हो; उस लिखनेके समय मेरे मनको निश्चयही दृढ विश्वास था कि जिस कृपा और दयासे श्रीमहाराजने यह सब सत्संग मुझे दिया और बहुत समयतक मैंने उसमें अपना मन लगाया और फिर मेरे मनकी इच्छातक मुझको पहुँचा दिया; मेरे अवगुणोंपरभी दृष्टि न करी; फिर इससे विशेष और उनकी कृपा क्या होगी और यदि जो रहीभी तो क्या नित्य वह सत्संग मुझको प्राप्त न होगा; वह तो स्वयंही होगा. एक कारणसे मुझको विशेष कृपाकी आशा है कि महाराजके मित्र और संबन्धियोंका चरित्र मनसे वर्णन किया है. यदि वह अपने चरित्रोंको वर्णन करनेकी आज्ञा न दें तो समर्थ हैं; परन्तु यह नहीं कि उनके मित्र तथा हरिभक्तोंके चरित्र कहनेकी आज्ञा न मिले. मुझे इस बातमें दृढ विश्वास है कि निश्चयही रूप, अनूप, दृढ चिंतवन और स्मरण भजनका धन मुझे मिलेगा. यदि जो यह भ्रम मेरे मनको हो कि शब्दरचना उत्तम नहीं है यह इस उलथेका लिखना सब अधिकारसे बाहर है और इस कवितासे स्वामी इसपर नहीं रीझ सकते; मुझे क्या आशा भक्तिकी हो सकती है तो यह संदेह योग्य

नहीं कारण कि यह भक्ति भाषा सुनकर हँसेंगे और जब हँसनेकी इच्छा होगी तब इसको सुनेंगे और प्रसन्न होंगे; तब जिस धनकी मुझे इच्छा है सो मिलेगा और हरिभक्तोंकी रीति है कि हरिभक्तियुक्त कुकाव्यकोभी उत्तम समझते हैं. चाहे उसमें कितनेही अवगुण हों इससे वे इस मेरी वाणीको हरिभक्तोंके चरित्रवाली जानकर अवश्य मेरी सहाय करेंगे और मेरी सही उनके द्वारा भगवान्से होकर मनोकामना पूरी होहीगी फिर मुझको भगवान्के रूपका चिंतवन और भजन प्राप्त हो जायगा, इसके अतिरिक्त यह भक्तमाल एक वृक्षकी समान है कि उसका मूल भगवद्भक्ति दृढ है और जो चौवीस निष्ठा वर्णन हुई हैं. यह डालियोंके समान हैं. भगवद्भक्तोंकी कथा इसके पत्ते हैं और जो काव्यका अर्थ अक्षरोंकी संधिसे नई वार्ता उत्पन्न होती है सो मानो इसके पुष्प हैं और भगवान्के स्वरूपका भजन तथा चिंतवन प्राप्त होना फलकी समान है. जिस स्वरूपमें मैंने उस अखण्ड कल्पवृक्ष अनित्यको सेवन किया है तो उसका फल मुझे क्यों नहीं मिलेगा ? और जो कोई बुरे कर्म मेरे ऐसे आगे आये कि एक ओर तो इस सत्संगसे वियोग हुआ और दूसरी ओर भगवद्भजन और चिंतवनमें मन न रहे तो निश्चयही यह वार्ता सत्य हो जायगी कि यह शरीर मेरा श्वान, शूकर, खर, वीछू, सर्प इत्यादिकसेभी अधिक बुरा होगा कारण कि पशुओंको और मनुष्योंको भूख और तृष्णा समान है. शरीरधारी मनुष्यको भगवद्भजनके करनेकीही बडाई है. यदि शरीरसे भगवान्की आराधना नहीं हो तो वह सब शरीरसे बुरा अमंगलरूप है. जो मस्तक भगवान् और भक्तोंके चरणोंमें नमस्कार नहीं करता है; वह मस्तक जैसे बाजीगरके सूमका चरित झूंठ मनोहर होता है उसकी वा कडवी तूंबीकी समान है जो जिह्वा भगवत्कीर्तन नहीं करती वह मेंडककी जिह्वाके समान है और जो कर्ण भगवान्के

चरित्र नहीं सुनते हैं वह सर्पकी बांबीकी समान हैं और जो नेत्र भगवान्के दर्शन नहीं करते हैं वह मोरके पंखकी चंद्रिकाके समान हैं और जो हस्त भगवान्का पूजन नहीं करते हैं वह अधजली लकडीकी समान हैं और जो चरण तीर्थकी यात्रा नहीं करते वह सूखे हुए वृक्षकी जडकी समान हैं भगवद्भजनसे मनुष्य कहना कर्तव्य है और उसने वृथा जन्म लेकर पिताके पराक्रम और माताके रूपको भ्रष्ट किया; वह दोनों लोकके फलसे पृथक् रहकर हाय हाय करता मर जाता है; जो भजन नहीं करता और यह प्रगट है कि जो निष्काम भजनका अधिकार ऊंचेसेभी अति ऊंचा है. परन्तु जिन मनुष्योंने संसारके सुखके निमित्त भगवान्का स्मरण किया है उनको मनवांछित संसारका सुख प्राप्त हुआ और होता है और अन्तमें वह आवागमनके व्यवहारसेभी छूट जाते हैं कि वेद श्रुति गीता वा भागवत सम्पूर्ण पुराण उच्च शब्दसे यही कहते हैं और ध्रुव, बिभीषण, युधिष्ठिर, उग्रसेन, सुदामा आदि सहस्रों भक्तिकी साक्षी देते हैं और सबको यहभी आज्ञा देते हैं कि भगवान्से विमुख होकर किसीनेभी सुख नहीं पाया और न किसीका द्रव्यही अचल रहा. जरासन्ध और वेन, दुर्योधन, रावण, कंस, शिशुपाल आदिकी कथा साक्षी हैं और केवल द्रव्यकाही नाश होता तोभी कुछ न था पर अभक्तका कुलही संहार हो जाता है.

चौपाई—राम विमुख संपत प्रभुताई । जाय रही पाई विन पाई ॥

भगवद्भजनकी महिमाका वर्णन वर्तमान लोकके मनुष्यों और भगवद्भजनके विमुख पुरुषोंका आख्यान.

कहीं २ अच्छे मनुष्योंने यह संदेह किया कि भारतवर्ष देशपर एक

वर्षसे दुःख किस कारणसे आया है; इसको देखकर किसीने तो यह कहा कि परस्त्रियोंका संसर्ग होना और उसके पापोंसे अनेक प्रकारके दुःखोंका होनाही कारण है. किसीने कहा कि धर्म न रहा और किसीने कहा कि परिश्रम करके सत धान्यका भोजन उठ गया उद्यमी पुरुषोंने सत्कर्मके धान्यमें अधर्मका धान्य मिलाकर सबको नष्ट कर दिया और किसी किसीने झूंठ तथा छल मद्यपान और जुआ खेलना चोरी आदि बुरे कर्मोंका प्रचार होना प्रगट किया. किसीने कहा कि इस देशमें ऐसा वैरभाव हो गया कि सहोदर भाईभी परस्पर वैरभाव करते हैं; इस कारणसे दुःख है. कोई कहते हैं फूट फैलनेसे इस देशमें दूसरे लोगोंके प्रबल हो जानेसे वैर दुःख फैला है और विद्वान् मनुष्योंने कहा कि इस देशमें शास्त्रका प्रचार न्यून हो गया, लोग स्वच्छन्द मार्गपर चलने लगे, विशेष ज्ञान और धर्म तो अपने शास्त्रसे है. बडी जातिमें तो किंचित् पढनेका प्रचार है तो वह इतना है कि जिससे संसारका कार्य प्राप्त हो; परन्तु परलोककी कुछभी चिंता नहीं और बहुधा तो अब उदर पालनके निमित्त दूसरी विद्या पढकर नास्तिक हुए जाते हैं. हरिभक्ति आदिका उनमें लेश नहीं है उनको भूलकरभी अपने शास्त्रकी ओरकी रुचि नहीं होती; वह जैसे शास्त्रको पढते हैं उनको वैसाही ज्ञान होता है इसी कारणसे वह भगवान्के स्थानमें भ्रष्ट हो गये और बहुधा हो जाते हैं. अनेक प्रकारके दुःख औरोंके हाथसे पाते हैं; फिर किसीने कहा कि, राजा अपने धर्मसे भ्रष्ट हो गया है क्योंकि राजा धर्मशास्त्रके अनुसार धर्मशास्त्रका जाननेवाला न्यायकारी सूक्ष्मदर्शी कुलीन अकुलीनका ज्ञाता हो. देव ब्राह्मणयुक्त होना चाहिये. न्यायके समय मित्र तथा वैरीको समान जाने और १८ अवगुन मद्यपान १, सिकार करना २, विषयासक्त ३, अन्याय ४, दुर्वचन कहना ५, बहुत बोलना ६, बिना

अपराध मारना ७, प्रजासे वैर ८, खेल आदिसे सबसे बचा रहे ९
आठ स्थानोंसे सावधान रहे, १ गुरु, २ पुरोहित मंत्री, ३ कोटकिला, ४ खजाना, ५ कारवारी, ६ सेना, ७ मित्रको अच्छी तरह रखनेवाला, साम, दाम, भेद, दंडके अधिकारको जाननेवाला, ८ विचार करनेमें समर्थ हो और अपनी प्रजाको दूसरे राजों और ठगों तथा चोरों मूर्खों मद्यपी कुचाली तथा पापी जनोंके हाथसे बचाकर अपने प्राणकी संमान रक्षा करे एक २ को अपने २ धर्मपर दृढ रक्खें और कारवारी तथा खोटी स्त्रियोंके हाथसे अधिक प्रजाकी रक्षा करे यह दोनों महाप्रेत हैं. राजाको मीठी २ बातोंसे अपने वशमें कर लेते हैं; इस कारण ज्ञानवान् तथा बुद्धिमान् मंत्रीका रखना शास्त्रोंमें कहा. जो कोई ऐसे राजा अपनी प्रजाकी रक्षा करके धर्मपर अचल रहते थे; सब देश आनन्दमें था और आजकलके तो राजोंकी वह दशा है कि वह कहनी उचित नहीं समझते. निदान जिस प्रकारसे धर्मशास्त्रमें लिखा है वह उसके विरुद्ध है वह रक्षा और पालनाके स्थानपर अन्याय और धर्मके स्थानपर अधर्म और गुणके स्थानपर मूर्खता करते हैं. चतुराईके स्थानपर मूर्खताके करनेवाले हैं; मंत्री तो विद्यावान् होने चाहिये परन्तु विद्यावान्की जगह धर्मका प्रचार तो नहीं करते वरन अधर्मका प्रचार करते हैं, और प्रजाकी पालना करनेकी जगह तीनों कामोंके बिगाडनेवाले हैं और उनकी बुद्धिकी तो यह दशा है कि चाहे राजाका राज तो जाता रहे, परन्तु उनको किसी प्रकारसे द्रव्यकी प्राप्ति हो. वह अपनाही स्वार्थ समझते हैं. जैसे किसी एक वनमें पशुओंका राजा बंदर था; सो परस्पर चूहे बिल्ली रोटीका बांट करानेके निमित्त उसके पास गये; बंदरने उस रोटीके दो टुकडे किये और तोला परन्तु उसमें एक बडा हो गया. उसमेंसे तोडकर आप खाने लगा

तो चूहे बिल्लीने पूछा कि स्वामी। रोटीके खानेका क्या प्रयोजन है? बंदरने उत्तर दिया कि यह टुकडा ज्यादे था सो इस कारण इस टुकडेकी बराबर करता हूं. निदान इसी प्रकारसे खाते २ वहभी छोटा हो गया तो दूसरेको खाने लगा और समस्त रोटीको खा गया, फिर जब राजोंकी ऐसी नीति और विचार है; तो भला फिर प्रजा क्यों न दीन दुःखी होगी ? जिस दशामें किसी एक गरीबकी हायसे बडा देश भस्म हो सकता है तो जहां लाखों गरीबोंकी हाय हो वहांके दुःखका क्या ठिकाना है ? भगवान् हमारे देशमें महारानीका अचल राज्य करे जिससे सब प्रजा आनंदमें रहे. इसके उपरान्त एक मनुष्यने कहा कि, धर्मके चार पाद हैं. सत्य, शौच, दान, दया ये धर्मशास्त्रमें लिखे हुए संसारमें प्रचलित थे, सो जब कलियुग आया तो इन चारों पदोंमें बडा विघ्न उत्पन्न हुआ और समस्त मनुष्य पापी और पाखंडी हो गये; इस कारण और मनुष्योंके हाथसे उन पापोंका दंड हुआ. अब मैं फिर कहता हूं कि इस प्रकारके बहुतसे मनुष्योंने अपनी बुद्धि और ज्ञानके अनुसार बहुतसी बातें कहीं फिर सबसे पीछे एक ज्ञानवान् भगवद्भक्तने कहा कि, इस समय जो यह अनेक प्रकारके दुःख उपस्थित हुए हैं उसका कारण यह है कि भगवान्का भजन और आराधना जाती रही. यदि यह बनी रहती तो किसीकीभी सामर्थ्य नहीं थी कि जो किसी बातमें विघ्न कर सकता, या कलियुग अपना प्रभाव दिखा सकता. यह कदापि नहीं और भजन और आराधनाके घटनेका यह कारण है कि कई मत तो लोगोंने ऐसे चलाये हैं कि वह वेद और शास्त्रोंसे विपरीत हैं और वह ऐसे हैं कि उनका निकलना तो शास्त्रसेही है परन्तु आगे २ ऐसे भ्रम पड गये हैं कि उनके चलानेवाले न इधरके हैं और न उधरके हैं. वरन वह कुटिलता और दुष्टताके आधीन हो गये और

किन्ही २ मनुष्योंने कलियुगके तथा बुरे कर्मोंके प्रभावसे नरकके भरनेके निमित्त शास्त्रोंका यह विपरीत् तात्पर्य समझ लिया और धर्मके मिससे जिन वस्तुओंके खाने पीनेका निषेध है उनका खाना पीना मान लिया और कामादिकके भोगनेके सुख उठाये. धन्य है, उस मार्गको और उस बुद्धिको; शोक तो केवल इतनाही है कि, इन लोगोंने शास्त्रके सिद्धान्तको किंचित्भी नहीं समझा है; इसके उपरान्त हमारे आचार्य अधिकारी आपही मौन हो गये हैं और जो शेष हैं वह थोडे हैं; उनके यहां कर्म और शिक्षा भजनका चर्चा चला आता है सो वह उससे क्या कर सकते हैं ? इसके उपरान्त एक बडा अनर्थ यह हुआ है कि कोई २ दुष्कर्मी जो आप संसाररूपी गर्तके गंभीर अधिकारमें विना हाथ पांवके पडे हैं वे किसी ऐसे पुरुषसे जो कि उनसेभी दीन हैं एक अलभ्य वस्तुकी महिमा सुनकर जो कि एक सतमहले स्थानपर है कि जहां पहुँचते २ गिरनेका डर है तथा पहुँचनेपरभी मिले या न मिले ऐसे स्थानपर जहां सहस्र जन्ममें पहुँचना कठिन है, विना सीढीके सहारे पहुँचनेकी इच्छा करते हैं और निकलना उस गढेसेभी नहीं होता आश्चर्य तो इतनाही है कि,आपको उस गढेमेंसे निकलनेकाभी अवकाश नहीं और वह सातों खनपर चढना चाहते हैं, उसके उपरान्त यह ऐसे मूर्ख होकर औरोंको अपना साथी बना लेते हैं. विष्णुपुराणमें उन लोगोंके लिये जो कुछ लिखा है वह सब सत्य है; ऊपर लिखे हुएके पीछे एक और पंथ है कि जिससे भजन और धर्म निर्मूल हो गये और उसका इतना प्रचार है कि जितना सतयुगमें भगवद्भक्तोंका था; उनका नाम नास्तिक दुष्ट और खल है; उनके गुण भगवद्भक्तोंके गुणोंसे दुगुने तथा चौगुने हैं; उनकी सूक्ष्म उपासना यह है कि शास्त्रोंके विपरीत करना तो उनकी धर्म कर्म निष्ठा है और भजन आराधनमें

भंग डालना भगवद्धर्मप्रचारक, भगवद्भक्त साधू संन्यासी ब्राह्मणोंकी निन्दा करना यह साधुओंकी सेवा है, दिनरात गान विषय और उनकी संगतिमें रहना, औरोंके अवगुण, दुष्ट कथा तथा दुष्टोंके चरित्र सुनना उनकी श्रवण निष्ठा है. मिथ्यावचन कहना गाली देना दिनरात्रीकी रटन और ऐसा वेष और वस्त्र रखना जिससे कि हिंदू न जाने जांय, यही उनकी भेषनिष्ठा है. मद्य बेचनेवाले, जुआ खेलनेवाले, दुष्ट, कुटिल, मिथ्यावादी, निर्लज्ज ये सब उनके गुरु हैं. वेश्या, परस्त्री, लडकोंका भगवन्मूर्तिसेभी उत्तम सेवन करते हैं; सत्यवादियोंके पास उसी रूपमें जाकर उनकोभी अपनी संगतिमें करना वह दूसरेकी हानि करनेमें अपने जीवकोभी दे देना, जीवकी हिंसा करना, कपट, मिताई, लडाई, क्रोध यह उनकी दया और अहिंसा है वर्जित कालमें कोई वेर खाना व्रत उपास है, मद्यपानवर्जित वस्तुका खाना यह उनका चरणामृत और महाप्रसाद है. मद्य पीने जुआ खेलने तथा भंग पीनेके स्थान, वेश्या और कुसंगतियोंके स्थान यह उनके तीर्थ और धाम हैं. भलोंको बुरा और बुरोंको भला कहना और सहस्रों व्यभिचारिणी स्त्रियोंके नाम स्मरण रखना यह उनकी नामनिष्ठा है. सत्यवार्ताको असत्य समझना भ्रमणीक रहना स्मृतिकी शिक्षामें कल्पित तर्क करना उसके अनुसार न आप करना न औरोंको कराना यह उनका ज्ञान है, भगवान् और भक्तोंके चरित्रसे इतना वैराग है कि कभी स्वप्नमेंभी ध्यान नहीं होता. रातदिन नाच, तमाशा, रंग, कुत्सित इतिहास पढना, खेल, कूद, चकलेकी सैर, गलियोंमें घूमना सत्संग है. हाथमें छडी, जेबमें घडी, पैरमें बूट, पीछे कुत्ता, मुखमें जलता हुआ पलीता कंठी माला है. चाहे खोटापन, लालच, कामोल्लास, गर्व, दम्भ, असत्यतासे मिताई है और जो उनके अनुकूल काम करे सोई उनका सम्बन्धी प्रिय है, विषयादिकोंको शृंगार जानते हैं; धन

द्रव्य उनके नेत्रोंका प्रकाश है, धनको इकट्ठा करना और उसको भले कर्मोंमें न लगाना यही उनका सिद्धान्त है और एक स्त्रीके ग्यारह पति कराना, विधवाव्याह, नियोग, गुरुनिंदा, सनातनधर्म नष्ट करना उनका शास्त्र है. जिससे कुछ मिले उनकी शरणागत हो बुरे कामोंमें प्रसन्न रहना और दूसरी ओर ध्यान न करना यह उनका प्रेम है. परम धाम अर्थात् मुक्ति उनका नरक है, वा कारागार है. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर उनके आदि आचार्य हैं और धनवान्, राज्यवान्, अधिकारवान् जिनको भगवद्भजनमें प्रीति नहीं वे उनके अधिकारी हैं, क्योंकि कर्म उन्होंने औरोंके देख वैसेही आपभी किये. भगवान्ने गीतामें कहा है कि मैं भले बुरे कर्मोंसे विरक्त हूं; परन्तु लोकसंग्रहके कारण सब कर्म करता हूं. यदि जो मैं कर्मोंको त्यागन कर दूं तो अन्य पुरुषभी मेरीही समान करने लगेंगे फिर सबका नाश हो जायगा इससे यह निश्चय हुआ कि ऊपर लिखे हुए चार पुरुषोंसे इन सब कर्मोंका प्रचार होता है. कोई निन्दा न समझे. शास्त्रके अनुसार पाया सो लिखा है, इस स्थानपर मैंने एक पंथकका वृत्तान्त लिखनेका विचार किया था, परन्तु एक ब्राह्मणकी शिक्षासे मैं चुपका हो रहा. स्मृति और शास्त्रकी शिक्षा लिख देनेमें कुछभी हानि नहीं समझी. एकादशस्कंधमें श्रीधरस्वामीने नीच और कुटिल पुरुषोंको छांटकर सबसे अधिक बुरा राजाके नौकरोंको लिखा है और स्मृतिका वाक्यभी उसीके अनुसार पाया और एक वाक्य संसारमें विख्यात है कि सबसे बुरी नौकरी और उत्तम खेती और मध्यम वाणिज्य यह समस्त कर्म इस कारण बुरे हैं कि सर्व शास्त्र और धर्मके मार्ग मनके एकाग्र करनेके कारण हैं. मनमें दयाका होना सबसे अधिक साधन है सो नौकरीमें तो दोनों बातें नहीं होतीं; न तो सेवासे निश्चिंतताई होती है और स्वामीसे इतनी बेविश्वासता है कि मन स्थिर नहीं रहता

ऐसा और वृत्तिमें नहीं है और निर्दयता इतनी है कि औरोंको दुःख और संताप देना सरकारी नोकर अपने स्वामीके प्रबन्धकी रीति और पद्धति तथा धर्म जानते हैं फिर उस वृत्तिके प्रभावसे जब भगवत्प्राप्तिकी वे मुख्य बातें जो कि भगवान्के मिलनेका दृढ साधन है जाती रहती हैं तो फिर सब कर्मोंसे यह वृत्ति क्या न नष्ट निकृष्ट गिनी जाय. फिर शास्त्र इसकी निन्दा क्यों न करें ? इस लिखनेका अभिप्राय यह है कि एक तो यह वृत्ति नष्ट है दूसरे इस उद्योगवाले भगवद्भजन करें तो अपने अंतकालको विचार ले कि क्या होनहार है और जो इस अत्यन्त नष्ट उद्यममें पडकरभी भगवद्वर्णन करेंगे तो उसका यह फल है कि सबसे उत्तम पदवी मिलेगी. अब मेरा प्रयोजन यह है कि जब ऐसे २ विघ्न हों जो एक २ भगवद्भजन चन्द्रमाके लिये कृष्णचतुर्दशी समान है तो फिर भगवद्भजनमें विघ्न क्यों न हो और फिर क्यों न उस परम धर्मकी प्रणाली टूटे और फिर क्यों न अन्य पुरुषोंके हाथसे नाना प्रकारके संताप प्राप्त हों. निदान भगवद्भजन सब शास्त्रोंका सार है, जिससे हो सके वह भजनमें मन लगावे और भजनके विना ब्रह्माभी इस समुद्रसे नहीं उतर सकते.

मुक्तिके स्वरूपका आख्यान.

इस पुस्तकमें कई जगह वर्णन हुआ है कि भगवत् आराधन और सर्व मार्गोका फल मुक्ति है उसीके हेतु सब परिश्रम करते हैं. अब यह बताना चाहिये कि मुक्ति किसको कहते हैं और वह क्या वस्तु है ? सो जानना चाहिये कि जैसे ज्ञानपदके अर्थमें सब मार्ग और शास्त्रोंकी पृथक् टीका है, वैसेही मुक्तिके वर्णनमें अनेक भेद हैं, पर अन्तमें सबका तात्पर्य एक निकल आता है. किसीने संसार अर्थात् आवागमनका न होना मुक्तिका स्वरूप बताया है; किसीने कहा कि सब

दुःख निवृत्त होनेको मुक्ति कहते हैं; किसीने मायाके गुणोंसे विरक्त होना और किसीने सुख दुःख दोनोंका न होना, किसीने दूसरेके वशसे निकल स्वेच्छानुसार होना और किसीने देह और आत्मा दोनोंका न रहना और किसीने इन्द्रिय और तत्त्वोंका ईश्वरमें मिल जाना कहा है. जो सत्य बात शास्त्रोंके सिद्धान्तसे जानी गई वह यह है कि ब्रह्मस्वरूप होनेका नाम मुक्ति है मुक्तिपदका अर्थ छूटना है, परन्तु जबतक ब्रह्मस्वरूप होगा तबतक छुटकारा कब हो सकता है; इस कारण ब्रह्म होना सिद्धान्त और सार है; और ब्रह्मस्वरूप वह होता है जो भगवत्कृपासे मायाकी फांसीसे छूट जाता है. अब यह शंका हुई कि शास्त्रोंमें मुक्तिके चार नाम लिखे हैं और इस आख्यानसे केवल एक मुक्तिही ब्रह्मस्वरूप होनेका नाम है. इसमें विरुद्धता नहीं है वास्तवमें तो मुक्ति इस ब्रह्मरूप होनेका नाम है कारण केवल ब्रह्मस्वरूप होनेहीका नाम है; परन्तु शास्त्रोंने जो चार नाम रक्खे हैं उसका यह कारण है कि भगवान् सब प्रकारसे भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करते हैं और वह भक्त वहांभी उसी अपने भावपर दृढ रहते हैं कि जिस भाव और कैंकर्यके प्रतापसे ब्रह्मस्वरूपकी पदवी उनको मिलती है, इस कारण एक २ मुक्ति अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होनेके शास्त्रमें चार भेद लिखे हैं. प्रथम सालोक्य, उस परमात्माके लोकमें रहना; दूसरा सारूप्य, उस परमात्माके रूपको धारण करके रहना; तीसरे सामीप्य, भगवान्के समीप रहना, चौथे सायुज्य, भगवान्में मिल जाना और इसका नाम सार्ष्टिभी है; इसमें कहीं तो यह विश्वास है कि भगवान्में मिल जाना और फिर जीवका खोज न होना, उसका नाम सायुज्य है और किसीका यह वचन है कि भगवान्में जीव मिल जाता है परन्तु उस जीवको भगवान्से मिल जानेका ज्ञान रहता है. जिस प्रकार कोई पुरुष पानीमें गोता लगावे तो और किसीको ज्ञात नहीं होता परन्तु उस गोता

लगानेवालेको अपने गोता लगानेकी दशा विदित रहती है और कोई २ कहते हैं कि, वस्त्र आभूषण और फूलके आदिके रूपसे भगवत्के निज शरीरमें रहना यह सायुज्य है. जिस समय उपासककी उपासना परम पदवीको पहुँचती है उस समय जीवन्मुक्त कहलाते हैं और परम धामको जानेका मनोरथ करनेके समय इस देहको त्यागनकर लिंग-शरीर धारण करता है, फिर भगवत्पार्षदोंके साथ उस मार्गसे कौशी-तकी उपनिषद् और आठवें अध्याय गीतामें अग्नि सूर्य और शुक्ल-पक्षके छः महीने उत्तरायणके देवताओंका वृत्तान्त लिखा है. चलकर जो मायाके गुण जैसे मृत्तिका, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व है. उनको एक २ आवरणमें त्यागता हुआ अर्थात् मृत्तिका-का आवरण जब भेदन कर चुका तब पृथ्वीके सब तत्त्वोंको वहीं छोड दिया और जलके आवरणमें जा मिला और इसी प्रकार अन्य आवरणोंको छोडता हुआ इन्द्र ब्रह्मादिक देवतों तथा ऋषियोंसे पूजा और सत्कारको पाता हुआ इस ब्रह्मांडसे बाहर होता है. अब जानना चाहिये कि भूमिके कनकों और जलके कणोंकी गिनती चाहे हो जाय परन्तु ब्रह्मांडोंकी गिनती नहीं हो सकती. सो सब आवरणों-को भेदन करनेके उपरान्त पूर्णब्रह्म सच्चिदानंदके प्रकाश सम्मिलित विरजानदीपर पहुँचता है, उसमें स्नान कर लिंगशरीरका त्याग कर देता है और दिव्य शरीर निर्विकार प्रकाशवान् ज्ञानानंद ब्रह्मस्वरूप धारण करके मायाके गुणोंसे विरक्त होता है और फिर उन गुणोंसे संबन्ध नहीं रखता. वहांसे आगे जो अन्य स्थान नित्यमुक्ति आदि भगवद्भक्त और पार्षदोंको हैं उनके वहांके निवासियोंके दर्शन करता हुआ अपने स्वामीके निज स्थानके द्वारपर पहुँचता है. किसीके ज्ञानमें वह वैकुण्ठ है और किसीकेमें गोलोक और किसीकेमें साकेत है, तब पार्षद और द्वाररक्षक उसको दण्डवत प्रणाम कर २

भीतर ले जाते हैं, वहां पूर्णब्रह्मके तेज और प्रकाशकी प्रभा कि जिससे सब स्थान वाटिका फुलवारी जलयंत्र नहर कूप आदि जो कुछ मनके चिंतवन और बुद्धिके विचारमें आवे वह सब हैं. उनको देखता हुआ अपने स्वामीके समीप पहुँचता है और वहां पूर्णब्रह्म परमात्मा सच्चिदानंदघन स्वामी और उनकी परम प्रिया और उनके निकट निवासी जनोंकी ओरसे सब प्रकारकी कृपा और अनुग्रहको प्राप्त हो. फिर वार्तालाप करके यह पुरुष कहता है कि मैं नित्य निर्विकार ज्ञानानंदस्वरूप प्रकाशवान् ब्रह्म हूं जो अबतक मायाके जालमें फँसा हुआ था सो अब आपकी कृपासे छुटा और अब अपने स्वरूपको प्राप्त हो गया. इसके पीछे चाहे तो भगवान्‌में मिल जाता है, अथवा वहीं अधिकार और सेवा उसको मिलती है, जिस ओरको इसकी इच्छा होती है, निश्चयही वह परमानंदमें निश्चल और मग्न उस परम पदमें निवास करता है. यद्यपि उसमें इतना बल और सामर्थ्य होती है कि, अनंत ब्रह्मांडोंको उत्पन्न करके पालन और नाश कर दे; परन्तु उस महापरमानंदके स्वादमें ऐसा मग्न रहता है, दूसरी ओरको वांछा नहीं करता. जो कुछ वेद और शास्त्र तथा सम्प्रदायोंके सिद्धान्तसे जाना गया सो लिखा गया और कोई २ विशेष निर्णय इस कारण न किया गया कि, वह किसी एक संप्रदायके सम्बन्धमें हो जायगा. ज्ञानियोंमें अभेद और दूसरोंकी इच्छानुसार निश्चय कर सम्प्रदायवाले अपना अर्थ सिद्ध कर लें ऐसे अक्षरोंमें लिखा है.

निर्गुण और भक्तिमार्गमें कौन विशेष है इसका वर्णन कि कौनसा अधिक है.

अब यहांपर संदेह हुआ कि, कितनेही पुरुष भक्तिमार्गसे ज्ञानमार्गको उत्तम बनाकर श्रुति और शास्त्रके वाक्यसे निर्गुण ब्रह्मका

ज्ञान होनेसे मुक्तिका होना लिखते हैं और इस भक्तमालमें आदिसे अंततक भगवद्भक्ति सगुण ब्रह्मकी महिमा और बडाई वर्णन होकर उसीके प्रतापसे गति होना लिखी है सो इन दोनों मार्गोंमेंसे निःपक्ष अधिकता किसको है और किसीसे मुक्ति प्राप्त होती है इसका निर्णय करना है. इस लिखनेसे प्रथम जानना चाहिये कि, ज्ञानपदका अर्थ ईश्वर माया और जीवका यथार्थ स्वरूप जानना है और निर्गुण ब्रह्म उसको कहते हैं कि, मायाके गुणोंसे वह परमात्मा पृथक् और श्रेष्ठ है, परन्तु कितनेही पुरुष ज्ञानपदका अर्थ यहभी कहते हैं कि, जीव और ईश्वर एकही है और वह ईश्वरको अव्यक्त मानते हैं. उसको स्वरूपवान् नहीं मानते, वरन उसको निर्गुण ब्रह्म कहते हैं, सो इस स्थानपर उसकी श्रद्धाके अनुसार निर्गुण पदके दोनों अर्थ समझने चाहिये और सगुणपदका अर्थ उपासक और भक्तोंके इष्टदेवसे और मुख्य अर्थ सगुणस्वरूपका आगे लिखा जायगा. जो संदेह ऊपर लिखा है, इस शंकाका उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज गीतामें अर्जुनसे कह चुके हैं अर्थात् अर्जुनने भगवान्से पूछा कि महाराज ! सद्गतिके हेतु दोनों मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग श्रेष्ठ है ? तब भगवान्ने कहा कि जो मुझसे मन लगाकर श्रद्धासे मेरी उपासना अर्थात् भक्ति करता है वह युक्ततम है और जो निर्गुण अर्थात् अव्यक्त जानकर उपासना करते हैं वहभी मुझको प्राप्त होते हैं परन्तु उनको अधिक क्लेश होता है, क्योंकि अव्यक्त अर्थात् स्वरूपरहितकी प्राप्तिमें दुःख और परिश्रम बहुत है. फिर ब्रह्मस्तुतिमें ब्रह्माजीका वाक्य है कि हे महाराज ! जो पुरुष अपने आपको मुक्ति होनेका अधिकारी मानकर आपकी भक्ति नहीं करते और व्यर्थ संभाषणमें निपुण हैं जो वह अत्यन्त परिश्रमसे किसी उत्तम पदको पहुँचभी जाय तो फिर गिर पडते हैं, कारण

कि वह अपने चरणकमलोंसे विमुख है और जिन पुरुषोंने आपके चरणकमलोंमें मन लगाया है वह बडे देवताओंके ऊपर होकर वहां पहुँचते हैं कि जहांके गये हुए फिर लौटकर नहीं फिरते. तीसरे स्कंधमें कपिलदेवजीने अपनी माताको उपदेश दिया कि भगवद्भक्ति सिद्धि अर्थात् ज्ञानसे अधिक है परन्तु निष्काम हो कि इन्द्रिय और उनके देवता और मन भगवान्में लगजाय. पद्मपुराणमें लिखा है कि ज्ञान और योग आदिमें क्या है केवल भगवान्की भक्तिही मुक्तिकी देनेवाली है. भागवतका वाक्य है, हे महाराज! जो तुम्हारी भक्तिको त्यागनकर केवल निर्गुण ज्ञान प्राप्त करनेके हेतु दुःख और परिश्रम उठाते हैं उनको केवल दुःखही शेष रहता है; जिस प्रकार भूसके कूटनेसे कुछभी प्राप्त नहीं होता और जिन्होंने अपने सर्वकर्मोंको आपके अर्पण किया है और आपके चरित्र सुनते हैं, वह तुम्हारी भक्तिको पाकर मुक्त हो जाते हैं. इन वचनोंसे ज्ञानमार्गसे भक्तिमार्गकी अधिकता निश्चय हो गई; परन्तु मनको यह उमंग हो गई कि सूक्ष्म वृत्तान्त कुछ औरभी लिखा जाय सो यहांपर संक्षेपसे लिखता हूं. सब पुराणोंमें श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है इस कारण उसीके वाक्य साक्षीके हेतु लिखे जांयगे और उसके समीप अन्य पुराणोंके वाक्योंका लिखना आवश्यक नहीं है. अब यह विचारना योग्य है कि चारों वेदोंका सार उपनिषद् और सब उपनिषदोंका सार गीता उपनिषद् है. निर्गुण और सगुणके सब मार्गोंके उपासकोंने उसके वाक्योंको पूर्ण साक्षी माना है; इस कारण कि जैसे वेद भगवान्के मुखसे उत्पन्न हुए हैं इसी प्रकार यह गीताभी है; सो उसके निज सिद्धान्तको कोई २ वाक्यके उल्थेसे लिखूंगा. भागवतमें भगवान्का वाक्य है कि भक्तियोग जो विख्यात है वह मैंने वर्णन किया है उसीके प्रतापसे तीनों गुणों अर्थात् मायासे विरक्त

होकर जीव मेरे भावको प्राप्त हो जाता है, दूसरा वाक्य यह है कि मेरे भक्त सारूप्य आदि मुक्तिको तो मैं देता हूं तोभी नहीं चाहते. केवल मेरी भक्तिके अभिलषित रहते हैं. तीसरा वाक्य यह है कि मेरे भक्त स्वर्ग और पृथ्वीके समस्त सुख नहीं चाहते; परन्तु केवल मेरी भक्तिकी इच्छा करते हैं. चौथा वाक्य है कि मेरे भक्त केवल-मुक्तिको नहीं चाहते यद्यपि मैं देता हुं. पांचवें वाक्य दूसरे वाक्यके अनुसार है. छठा वाक्य भगवान्‌ने गोपियोंसे कहा कि अच्छा है. जो तुम्हारी प्रीति मुझमें हुई क्योंकि मेरी भक्ति निश्चयही मुक्तिको देनेवाली है. सातवां वाक्य वेद करके क्या है बडे शास्त्रोंसे क्या है और तीर्थसेवनसे क्या है मेरी भक्ति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी देनेवाली है. आठवां वाक्य कि भले कर्म और योग आदिका यह फल है कि, भगवान्‌में भक्ति हो और वह भक्ति मुक्ति आदि समस्त पदार्थोंको देती है और इसी प्रकारके सैकडों हजारों वाक्य हैं. गीताके प्रथम अध्यायमें गीताशास्त्रके आख्यानका कारण लिखा है. दूसरे अध्यायमें जीवका स्वरूप सांख्य योग लिखा है. तीसरे अध्यायमें कर्मयोगका वर्णन किया है. चौथेमें ब्रह्मयज्ञका आख्यान है. पांचवेंमें संन्यासयोग लिखा है. छठेमें मन और आत्माको और इन्द्रियोंको इकट्ठा करनेका योग है, फिर योग अध्यायको कहकर छठे अध्यायके अंतमें भगवान्‌ने आज्ञा दी है कि, जिस पुरुषका मन मुझमें लगा है और वह एकाग्र मनसे मेरा भजन करता है, वह पुरुष संपूर्ण योगियोंसे उत्तम है. इससे निश्चय हो गया कि छः अध्यायके लिखे हुए सब भागोंसे भगवद्भक्तिही अधिक है. सातवें अध्यायमें लिखा है कि जन्मोंके पीछे सब ज्ञानवान् होकर जो शरण होता है. इससे यह बात निश्चय हुई कि ज्ञानभी भक्तिका एक अंश है. फिर उसी अध्यायमें लिखा है कि

जो मनुष्य मुक्तिके लिये मेरी शरण होकर मेरा सेवन करते हैं वही ब्रह्म, वही ज्ञानी, वही अध्यात्मज्ञानी, वही सर्व कर्मोंके जाननेवाले हैं और फिर यह लिखा है कि जो पुरुष मुझको अनन्य जानकर मेरा भजन करते हैं, मैं उन योगियोंको सुगमतासे प्राप्त होता हूं. आठवें अध्यायमें भगवान्‌ने कहा है, कि वह परम पुरुष अर्थात् भगवान् अनन्य भक्तिसे जाना जाता है, नवें अध्यायकी आदिमें भगवान्‌ने कहा है कि, ज्ञान और विज्ञान यह सब तुझसे कहता हूं और उस सारे अध्यायमें अपना ईश्वरताका स्वरूप वर्णन करके अपनी भक्तिके द्वारा प्राप्त होना वर्णन किया और अपनी प्रीतिकी रीति बताकर लिखा है कि, मेरी शरण होनेसे शूद्र वैश्य अथवा स्त्रियेंभी तर जाती हैं; फिर ब्राह्मणोंका तो कहनाही क्या? इस कारण हे अर्जुन! तू मुझमेंही मन लगा और मेराही भक्त हो और मेरेही लिये यज्ञ जप कर और मुझकोही दण्डवत् कर मुझहीको प्राप्त होगा यह मैं सत्यही कहता हूं फिर इस अध्यायसे यह निश्चय हो गया कि ज्ञान और विज्ञानसे केवल भगवद्भक्तिही श्रेष्ठ है. दशवें अध्यायमें भगवान्‌ने अपनी विभूति स्वरूपका वर्णन करके, ग्यारहवें अध्यायमें अपना स्वरूप अर्जुनको दिखाया और आज्ञा दी कि मैं न वेदसे, न तपसे, न दानसे, न यज्ञसे देखा जाता हूं. हे अर्जुन! जैसा तैंने देखा है सो भक्तिसे देखा है और यहभी कहा कि अनन्यभक्तिसे प्राप्त होता हूं, जैसा मैं हूं. इस अध्यायसेभी यही जाना गया कि भगवान् केवल भक्तिसे जाने जाते हैं. बारहवें अध्यायमें केवल भक्तिका वर्णन हुआ दूसरा और कुछ आख्यान नहीं है और उसका तात्पर्य इस आख्यानमें वर्णन कर चुका हूं. तेरहवें अध्यायमें एकही स्थानपर भक्तिका आख्यान है परन्तु वह अध्याय आद्योपान्त ईश्वर माया जीव और अन्य इंद्रियोंका वर्णन करता है. चौदहवें अध्यायमें भगवान्‌ने

माया और तीनों गुणोंका वर्णन करके अन्तमें आज्ञा दी कि जो मुझको दृढ भक्तिसे सेवन करते हैं, वे उन गुणोंसे विरक्त होकर ब्रह्मस्वरूप होनेके योग्य समझे जाते हैं. पंद्रहवें अध्यायमें भगवान्ने अर्जुनको शरणागति मंत्रका उपदेश दिया और जीव तटस्थसे अपने आपको पुरुषोत्तम नामसे बताकर आज्ञा दी कि जो मुझे पुरुषोत्तम जानता है सो सब प्रकार मेरा भजन करता है यह अतिगुप्त वार्ता है सो मैंने तुमको बताई, इसको जानकर हे अर्जुन ! कृतकृत्य हो जायगा. अब भगवान्के इस वचनको विचारना योग्य है कि, निर्गुण मार्ग कहां रहा अर्थात् जब ईश्वर जीव तटस्थसे पृथक् हैं और कृतकृत्यका होना पुरुषोत्तम जाननेके आश्रय है तो यह प्रत्यक्षही निश्चय हुआ कि ईश्वर सगुण स्वरूप है और भक्तिसे जाना जाता है. सोलहवें अध्यायमें नास्तिकोंका वर्णन है. सत्रहवें और अठारहवें अध्यायमें सब भांतिके धर्म कर्म वर्णन करके अन्तमें भगवान्ने कहा कि जैसे ब्रह्मको प्राप्त होता है वह ज्ञाननिष्ठा सूक्ष्म कहता हूं. बुद्धिसे मनको एकाग्र करके इन्द्रियोंके स्वाद और दुःख, सुख, प्रीति, शत्रुता आदिको त्यागन करके एकान्तमें बैठकर कर्म और इच्छासे छूटा हुआ ब्रह्म होनेके योग्य समझा जाता है. वह फिर ब्रह्ममें मिलकर कुछ वांछा नहीं करता वह सब जीवोंको समान देखता है; वह मेरी परम भक्तिको पहुँचता है. मैं भक्तिहीसे जाना जाता हूं. निश्चयही मैं जैसा हूं उसी भक्तिसे मुझको जानकर वह पुरुष मुझमें निवास करता है अर्थात् मुझको प्राप्त होता है और फिर सबके अन्तमें आज्ञा है कि सबसे महा उत्तम परम वचन सिद्धान्त और सारको श्रवण कर. तू मेरा प्रिय है, तेरी बुद्धि उत्तम है, सुन सब धर्मोंको छोडकर एक मेरी शरणागतिरूप धर्ममें आरूढ हो. मैं तुझको सब पापोंसे छुटा दूंगा, तू किसी बातकी चिन्ता मत कर; इस उपदेशके पीछे भगवान्ने कुछभी नहीं कहा. केवल इस

अध्यायसे भगवद्भक्तिही मूल सार और सिद्धान्त निश्चय हुआ और यह श्लोक कि मुझसे मन लगा और मेरा भक्त हो भगवान्‌ने दो जगह प्रथम नवें अध्यायमें दूसरे अठारहवेंमें कहा है तो उसके दो कारण हैं. प्रथम यह कि जो आवश्यक कर्म होता है उसको कई वार कहते हैं; सो दो वार कहनेसे भगवान्‌ने दिखाया है कि भक्ति मुख्य है. दूसरे भगवान्‌ने ज्ञान और विज्ञान नवें अध्यायमें कहना था सो भगवद्भक्तिसे विशेष ज्ञान और विज्ञान और कुछ नहीं; इस कारण वहां एक वार तो इस श्लोकको कहा और अठारहवेंमें भगवान्‌को सब गीताका सार और सिद्धान्त कहना था; सो जब कि भगवद्भक्ति सब शास्त्र वेद और उपनिषद् आदिका सिद्धान्त और निज अभिप्राय है इस कारण वहां-भी वही श्लोक जो ज्ञान विज्ञानकी स्थितिके निमित्त नवें अध्यायमें कहा था सो वर्णन किया. सो इसीसे निश्चय कि ज्ञान और विज्ञानभी भगवद्भक्ति है और सार सिद्धान्तभी भगवद्भक्ति है. निदान गीताशास्त्रका आद्योपान्त तात्पर्य यही है कि भगवद्भक्ति सार और समस्त सिद्धान्तोंका निचोड है. जब भगवान्‌के वाक्योंसे सब शास्त्रोंका सिद्धान्त भगवद्भक्तिही निश्चय हुई और पुराण तथा वेदभी भगवद्भक्ति-को सब मार्ग और धर्म व कर्म आदिका सार और सिद्धान्त बताते हैं और भगवत्प्राप्ति कि जिसका नाम मुक्ति है केवल भक्तिसे शीघ्र होती है तो इससे विशेष और किस मार्गको उत्तम समझा जाय और फिर कौनसा मार्ग ऐसा है कि जिसको अधिक माने. भक्तिही भगवान् मिलनेके हेतु सब वेद शास्त्रोंका सार और सिद्धान्त है. विना भक्तिके प्रथम भगवान् न किसीको मिले और न मिलेंगे. ज्ञानपदका अर्थ इस लेखकी आदिमें लिखा गया फिर जो निर्गुण उपासनावाले यह हठ करे कि इस पदसे एकत्वताको बोलते हैं तो इसमेंभी भक्तिका पक्ष है, क्योंकि जबतक ईश्वरके अनन्य होनेका ज्ञान न होगा तबतक

मुक्ति कब हो सकती है? अनन्यभक्तिकाभी कई स्थानपर वर्णन हुआ है. निर्गुण उपासक तत्वमसि सोहं आदि महावाक्यको अपने मार्गकी साक्षी समझते हैं और आपही उन वाक्योंका अर्थ प्रगट करते हैं कि ईश्वर सगुण है; क्योंकि सःपद ईश्वरका अर्थ बताता है और अहंपद अपनी अर्थात् जीवकी ओर सम्बोधन है फिर क्या संदेह रहा कि ईश्वर और जीव पृथक् है. इसी प्रकार त्वंपद तत्पदसे पृथक् है और जो यह सब महावाक्य और ज्ञानपद जीव ईश्वरके एक होनेको निर्गुण उपासकोंके वचनसे समझे जांय तबभी भगवत् उपासकोंके सिद्धान्तको अधिकाई है, क्योंकि किन्ही २ उपासकोंने जीव ईश्वरका एक हो जाना माना है और सायुज्यमुक्ति उनका मुख्य निश्चय है. अब यह शंका हुई कि वेदान्तशास्त्र वेदका अंग है और उस शास्त्रके बडे २ ग्रंथ देखनेमें आते हैं उनमें निर्गुण उपासना लिखी है; इसका क्या कारण है सो जानना चाहिये कि वेदान्त वेदके अंग भाग अर्थात् उपनिषदोंको कहते हैं और जो उपनिषदोंमें लिखा है वही गीता और सूत्रोंमें लिखा है. तीनों ऊपर लिखे हुए ग्रन्थ निज वेदांतशास्त्र हैं निर्गुण उपासकोंने उनकी टीका अपनी रीतिसे करी है और उसके पक्षमें बडे २ ग्रन्थ बनाये, फिर उसका वेदान्त नाम रख लिया; नहीं तो उपनिषद्, गीता सूत्रोंका सिद्धान्त और तात्पर्य भक्तिही है और भगवद्भक्तिके सम्बन्धी जो टीका और भाष्य ग्रंथ हैं, वे निज वेदान्त हैं और भगवत् उपासकोंमें विख्यात हैं. अभिप्राय यह है कि तर्क और शंकाके विना भगवद्भक्तिही सब मार्गोंका शिरोमणि और राजा है. सब शास्त्रोंका यह सिद्धान्त विना पक्ष लिखा गया, जो इसपरभी निर्गुण उपासकोंके वचनको मानो तोभी भक्तिको वडाई है, वही कहते हैं कि वही निर्गुण ब्रह्म सगुण होता है. अब यह प्रश्न है, कि वह सगुण स्वरूप जो निर्गुण ब्रह्मने प्रगट किया है वह ईश्वर है या

आवागमनके बन्धनमें है जो जन्म ले और मरे, उसको ईश्वर कहना उचित नहीं और जो ईश्वर है तो उसके सेवनसे मुक्ति क्यों न होगी. तिसके उपरान्त इसी तर्कमें यह बात है कि निर्गुण मार्गके अनुसार वेद और श्रुतिने आज्ञा करी है कि निर्गुण परमात्मा अपने भक्तोंके निमित्त सगुणरूप हो जाता है. इसमें यह बात है कि जो उस सगुण रूपकी भक्तिसे मुक्ति नहीं होय तो उस निर्गुण ब्रह्मने कृपाही क्या करी. वरन वह कृपाही एक दुःख हो गई. क्योंकि सहस्रों जन्मोंतक एक जीव बिचारेने श्रम किया और अन्तमें यह ईश्वर उस कामको समर्थ न निकला तो वह निर्गुण ब्रह्म एक धोखा देनेवाला और कपटी है, कि वह लोगोंको बहका देता है; और उसी श्रुतिके अनुसार दूसरा यह तर्क है कि जो वेद श्रुति सत्य है और उनका यहभी वचन है कि निर्गुण मार्गसे मुक्ति होती है तो फिर उस भगवद्वाक्यका क्या अर्थ लिखा जावे कि हे अर्जुन ! जन्म और कर्म मेरे जो जानता है अर्थात् मेरे चरित्रमें जो मन लगाता है तो फिर वह देह त्यागकर जन्म नहीं पाता और मुझको प्राप्त होता है इस लिखनेका यह तात्पर्य है कि जो मुक्तिका होना भगवद्भक्तिसे मानते हैं तो इस सिद्धान्तमें दोष होता है कि निर्गुण मार्गके विना मुक्ति नहीं और जो यह सिद्धान्त है तो इस वेद श्रुति और भगवद्वचनका उत्तर देना उचित है कि सत्य है वा असत्य ? तिसके उपरान्त धर्मकी बात है जो जिसका चिंतवन करता है वह वही हो जाता है. इस सिद्धान्तके अनुसार जिस किसीने भगवान्‌को पूर्णब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानंदघन, व्यापक, मायाधीश, अगणित ब्रह्माण्डोंका स्वामी जानकर उसके रूप अनूपका चिंतवन किया वह कहां जायगा ? यदि जो यह कहोगे कि अपने स्वामीका रूप हो जायगा तो यही कहना चाहिये कि उसके स्वामीमें वह गुण जैसा जानकर उसने ध्यान किया है या नहीं, जो है तो वह

चिन्तन करनेवाला मुक्त हो गया; क्योंकि सिद्धान्त यही है और जो वह गुण नहीं तो वैसे गुणवाला कोई पुरुष निश्चय करना चाहिये, नहीं तो फिर सिद्धान्तमें महाविघ्न पडेगा. निर्गुण मार्गवाले इन तर्कोंको सुनाकर यह बात बताते हैं कि निश्चय भक्तिकरके अपने स्वामीको पहुँच गया है फिर उसको आवागमनही होगा, परन्तु निज मुक्ति अर्थात् निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति जबही होगी. जब अपने स्वामीके साथ अन्तर्ध्यान होकर मिल जायगा. उनका सिद्धान्त यह है कि भक्ति निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है उसका उत्तर मुझसे मतिमंद और बलहीन श्रद्धावालोंका तो यह है कि हमको तो आम खाने पेड गिन-नेसे हमारा क्या प्रयोजन है, प्रयोजन सो केवल आवागमनसे छूटनेका है, सो कृपासे आप प्राप्त हो गया. फिर विशेष विवाद करनेसे क्या काम है और अपने स्वामीसे छूटकर हम अपना ईश्वर किसीको क्यों मानें; परन्तु जो वेद और शास्त्रोंके सिद्धान्तको जानते हैं वह निर्गुण वालोंके उस मार्गको व्यर्थ बताकर उत्तर देते हैं कि वह वचन उनका तब निश्चयके योग्य होता जो सगुण ब्रह्म निर्गुण ब्रह्मका एक अंग होता और जब निर्गुण ब्रह्म एक अंग सगुण ब्रह्म कहे तो यह सिद्धान्त उसका माननेके योग्य कब है ? वरन विपरीत है, उसका संक्षेपसे वृत्तांत यह है कि पंद्रहवीं निष्ठामें शास्त्रोंके सिद्धान्तके अनुसार जहां ईश्वरका वर्णन हुआ है, वहां पांच प्रकारका निरूपण लिखा गया है उनमेंसे चौथेमें यह लिखा गया कि यह स्वरूप चौथा उस सगुण ब्रह्मका अन्तर्यामी अव्यक्त अर्थात् देहरहित ज्ञानानंद अलख अविनाशी निरञ्जन निर्गुण ब्रह्म सर्वव्यापक है इससे निश्चय हुआ कि निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्मकी शाखा है और निर्गुण मार्गवाले उस चौथे स्वरूपके उपासक हैं, उसके उपरान्त वाराहीसंहितामें लिखा है कि निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्मका प्रतिबिंब है और भगवान्‌का निज रूप सगुण

है. इस लेखसे पंद्रहवीं निष्ठाके चौथे प्रकरणका आख्यान मिलता है. निदान निर्गुण ब्रह्म निःसंदेह सगुणकी शाखा है. शंका निवृत्त करनेके हेतु इस संभाषणके आदिमें निर्गुण ब्रह्मका अर्थ लिख आया हूं कि जो ईश्वर मायाके गुणोंसे विरक्त है; उसको निर्गुण ब्रह्म कहते हैं. कुछ अव्यक्त अर्थात् देहरहितको नहीं कहते; इसी प्रकार ज्ञानपदका अर्थ लिखा गया कि ईश्वर माया जीवके जाननेका नाम ज्ञान है और वह भगवद्भक्तिका एक साधन है. गीताके पूर्व लिखे श्लोक इसके पूर्ण साक्षी हैं और यहांभी एक दो वचन लिखता हूं. गीतामें आज्ञा दी है कि जो मुक्तिके हेतु मेरी शरण होते हैं वेही ब्रह्मके जाननेवाले हैं और वही अध्यात्म ज्ञान और कर्मोंके जाननेवाले हैं. शांडिल्यसूत्रमें कहा है कि ब्रह्मकाण्ड अर्थात् ज्ञान भगवद्भक्ति जाननेके लिये है. निदान ज्ञान एक साधन भक्तिका है और भगवद्भक्तिमें दृढ होना विज्ञान है. अब जो यह शंका है कि निर्गुण पदका अर्थ उपासकोंके इष्टदेव सम्बन्धका हुआ तो सगुण स्वरूपका क्या अर्थ कहा जायगा सो प्रगट है कि जब निर्गुण ब्रह्मका अर्थ मायासे रहित हुआ तो सगुण पदका अर्थ उस भगवत्स्वरूपका हुआ कि जो अपनी मायाके आश्रय होकर अपने भक्तोंके कार्यके हेतु प्रगट होता है और जिसके चरित्र संसारसमुद्रके पारको सेतुकी समान है जो कोई संसारसमुद्रसे उतरा सो उन्हीं चरित्रोंकी कृपा है. उन चरित्रोंके सिवाय साधन न कोई पहले हुआ और न होगा. इस बातको वेद और शास्त्र ऊंचे स्वरसे पुकारते हैं. निदान सब तर्कोंसे निवृत्त होनेके पीछे भगवद्भक्तिही मुख्य रही, उसके अतिरिक्त कोई मार्ग भला और सूधा नहीं है और ईश्वरका स्वरूप जो निर्गुणवाले मानते हैं, भगवद्भक्तोंके माने हुए ईश्वर परमात्माकी एक शाखा है. इसमें यह शंका हुई कि जो वह निर्गुण ब्रह्म भगवत् अंतर्यामी और व्यापकके रूपोंमेंसे है तो

उसकी उपासनामें क्या दोष है; क्योंकि भगवत् उपासकोंके सिद्धान्तसे भगवान्के किसी रूप अथवा धाम वा नाम अथवा चरित्रकी उपासना पूर्ण होनी चाहिये. निश्चयही सद्गति होगी इसका उत्तर यह है कि. इस संभाषणके आदिसे यहांतक कहीं नहीं लिखा कि उनका मार्ग असत्य है, केवल भगवद्भक्ति और सगुण स्वरूपका वर्णन किया है. जो वह सत्य बातको समझकर निर्गुण ब्रह्मका आराधन करे तो निश्चयही भगवान् सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्मका निज स्वरूप उनके मनमें प्रगट होगा और वे गतिको पहुँच जायंगे, परन्तु विचार करना योग्य है कि; वह मार्ग कितना कठिन है? प्रथम तो भगवान्ने गीतामें आज्ञा दी है कि अव्यक्तकी प्राप्ति अति कठिन है. यदि किसीने वर्णन करा तो समझना अत्यन्त कठिन है और जो किसी प्रकार समझभी लिया तो उसमें चलना आतिकठिन है कि पूर्वकालमें तो कोई उसका करनेवाला हुआ होगा क्योंकि जो वस्तु बुद्धि और विचारसे बाहर है उसमें कैसे मन लगे और मनकी एकत्वका विना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती इस कारण मन वांछित पदवीको पहुँचना कठिन है और अगणित जन्मोंमें अत्यन्त कठिनतासे कोई उस पदवीको पहुँचा तो फिर स्थिर रहना कठिन है. और गिरना सुगम है, क्योंकि इन्द्रियोंका बल सबको ज्ञात है. निदान आद्योपान्त कठिनताके अतिरिक्त और कोई बात दृष्टि नहीं आती, भगवद्भक्ति शीघ्र प्राप्त होनेका वृत्तान्त है कि किसी प्रकारसे थोडी प्रीति भगवच्चरणोंमें होनी चाहिये. वे चरित्रही भजन और कीर्तनमें लगाकर भगवत्स्वरूपको मनपर प्रगट कर देते हैं. उस स्वरूपका यह प्रताप है कि दिन पर दिन साधकके मनमें अपना प्रवेश करता हुआ पूर्ण श्रद्धा और विश्वास द्वारा कृपाकर मनसे कामादिककी इच्छाको दूर कर ज्ञान और वैराग्यका प्रकाश कर भजन और

कीर्तनकी सहायतासे प्रथम करुणा, क्षमा, तितिक्षा आदि भक्तके मनमें उत्पन्न कर देता है फिर अपना यथार्थ स्वरूप मनके नेत्रोंको दिखाकर ऐसा मन हरण कर लेता है कि, उस स्वरूप अनूप और माधुरी छबिके सिवाय दूसरी ओरको वह मन नहीं जाता, फिर वह पुरुष कृतकृत्य और कृतार्थ होकर उस रूपमें स्थिर और दृढ हो जाता है; उसका नाम जीवन्मुक्ति है, इसके पीछे मुक्ति होती है. निदान आदिसे अंततक सुगमताके मार्ग इससे अधिक और कोई नहीं है. जन्म मरणके संतापोंसे भय करके इस ओर ध्यान करनेकी देर है. भगवान् अपनी करुणा और दयालुता दीनवत्सलतामें कुछ विलम्ब नहीं करते, वह अपनी प्राप्तिकी सामग्री आपही कर देते हैं; प्रत्यक्षमें बहुत स्थानोंपर सुना और कई २ स्थानोंपर देखनेमेंभी आया कि झूंठे और पापी प्रीतमोंके मनका मोह मूर्ख पापोंके भरे स्त्रियोंके मनमें पहुँचकर उनके मनको प्यारोंकी ओर खैंचती हैं; फिर वह परमात्मा शुद्ध सच्चिदानंदघन ज्ञाता और प्रीतिकी रीतियोंका उत्पन्न करनेवाला है; वह अपने सच्चे प्रेमीपर दया न करके किस कारण शीघ्र न मिलेगा; नहीं तो उसीके बनाये हुए धर्मोंको दूषण लगेगा; इसका अभिप्राय यह है कि जो पुरुष ऐसे सुगम और निज मार्गको त्यागनकर भगवत्प्राप्तिके हेतु कठिनता और शाखाकी ओर झुकते हैं, वह निःसंदेह भूलते हैं. वह अपने हाथसे रत्नोंको गेरकर कंकड उठाते हैं; मुझको इस समय एक चुटकुला स्मरण हो आया वह यह है कि, निर्गुण पतिको स्त्रीभी स्वीकार नहीं करती; फिर जो बुद्धिमान् मनुष्य हैं वह अपने स्वामीको निर्गुण कैसे माने जिस प्रकार गोपियोंने भगवान्के परम प्रिय ऊधोजीसे कहा था " सूरश्याम गुणधाम सांवरो को निर्गुण निर्वाहै. " फिर एक यहभी विचारनेके योग्य है कि प्रेम स्वरूपके विना नहीं होता और जबतक प्रेम नहीं

तबतक भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती. उस रीतिवालोंका यह सिद्धान्त है कि जबतक वर्णाश्रमके धर्मोंको करके मनकी निर्मलता प्राप्त नहीं तबतक वह पुरुष ज्ञान उपदेशका अधिकारी नहीं होता. अब वह ब्रह्मज्ञान गली और कूंचोंमें ऐसा बहा २ फिरता है कि, उसका थोडासाभी वृत्तान्त लिखूं तो ग्रंथ बहुत बढ जायगा और फिर पक्ष-पातका दोष लगेगा, इस कारण नहीं लिखा और यह निश्चय हुआ कि विष्णुपुराण भागवत आदिमें जो कलियुगकी बुराईका वृत्तान्त लिखा है और यहभी वर्णन हो चुका है कि कलियुगमें ऐसे मनुष्य होंगे जो ब्रह्मज्ञान छूट और कुछभी नहीं कहेंगे और उनके कर्म ऐसे होंगे कि थोडेसे लोभमें आकर ऐसे कर्म करेंगे कि जिनसे चाण्डालकाभी मन कांप जायगा सो वह समय अब आ गया है. अब विचारको समाप्त करके अति नम्रतासे प्रार्थना करता हूं कि जो सूर्य पश्चिमसे उदय हो और ससाके सिरपर सींग निकल आवे, आकाशमें फुलवारीका बाग लग जाय, जल अग्निका काम देने लगे तब यह हो सकता है; परन्तु यह कदाचित् नहीं हो सकता भगवान् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा मेरे स्वामीके भजनके विना संसार पार हो जाय. यह प्रताप भगवान्‌के सेवन भजनकाही है कि वह समुद्र गोपद जलकी समान हो जाता है; यही वेद और शास्त्रोंका सिद्धान्त और सार है.

दोहा—वारि मथे बरु होय घृत, सिकताते बरु तेल ।
विनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

चारों सम्प्रदायोंके अंतर और परिणाममें उनके एक होनेका वृत्तान्त.

अब यह लिखना उचित हुआ कि एक २ संप्रदायवाले अपनी संप्रदायको अधिक और दूसरेकीको न्यून जानकर सद्गतिके हेतु

सबसे उत्तम और सत्य समझता है और उसीको सत्य और सिद्धान्त जानते हैं; सो इन चारों संप्रदायोंमें अच्छी और विशेष कौन है, जानना चाहिये कि संसारसमुद्रसे पार उतारनेके लिये चारों संप्रदाय समान हैं; किसीकोभी न्यूनाधिक नहीं. सब संप्रदायवालोंने भगवान्की एकत्वता लिखी है और सब संप्रदायोंमें श्रुति आदि साक्षीके वाक्य सब एकही हैं; इस बातपर चारोंको समान निश्चय है कि भगवान्के शिवाय और कोई मुक्तिका देनेवाला नहीं है. उनके आतिरिक्त किसी देवताके साधनकी आवश्यकता नहीं इसी प्रकार भगवान्के धर्म और विग्रहमें सबका समान विश्वास है. केवल मोटी बातमें झगडते हैं; प्रथम तो माया और जीवके वर्णनमें विरुद्ध है, कोई अनादि सांत कहता है, कोई ईश्वरको मायाके प्रेरक बताता है, कोई तटस्थ ठहराता है और कोई ईश्वरके देहमें विशिष्ट कहता है, परन्तु जब सबका यह निश्चय है कि मायाके निवृत्त होनेके पीछे मुक्तिं होती है तो विरुद्ध तो यह तुच्छ रहा अंत सबका समान है और इसी प्रकार जीवके वर्णनमें विरुद्ध है. कोई द्वैत कहता है, कोई अद्वैत, कोई द्वैताद्वैत और कोई विशिष्टाद्वैत. परन्तु इसपर सबोंका विश्वास है कि नित्य निर्विकार प्रकाशवान् ज्ञानानन्दस्वरूप है और मुक्तिका होना जैसे मुक्तिके स्वरूपमें वर्णन हुआ उसी प्रकार मानते हैं फिर जब स्वरूप और आदि अंत एकसेही हैं तो यह विरुद्धभी नामहीके लिये है. इसके उपरान्त तिलक और मुद्राके बनाने और धारण करनेमें विरुद्ध है, इसका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त भेषनिष्ठामें लिखा गया है इससे विशेष एक २ संप्रदायवाले अपने इष्टदेवको अवतारी निजस्वरूप और अन्यको अपने स्वामीकी विभूति और अंश मानते हैं सो यह भेदभी उसी समयतक है कि जबतक वह पुरुष अपने स्वामीके ध्यानमें स्थित और दृढ नहीं

होता न्यून और मध्य पदवीपर तो दूसरे इष्ट और अवतारका चरित्र सुनकर उस रूपमें अपने स्वामीकी विभूति और अवतारका चिंतवन करता है और जबतक वह चिंतवन अधिक और अंतपदको पहुँच जाता है तो अपने स्वामीकी माधुरी मूर्तिके अतिरिक्त और कोई स्वरूप दृष्टिमें नहीं आता. निदान पूर्व लिखे हुए भेद सब अपने मार्ग और अपने स्वामीकी प्रीति और श्रद्धा बनानेके हैं चारों संप्रदायोंका अंत सार समान और एकसा है. कुछ अंतर नहीं; रामानुजस्वामीकी संप्रदायमें कैंकर्यनिष्ठा है. वे ईश्वरको चिदचित् विशिष्टाद्वैत मानते हैं. अर्थात् माया और जीव उसी ईश्वरसे मिले और नित्य हैं. निम्बार्क संप्रदायमें अनन्यताकी निष्ठा है, जीव ईश्वरमें भेदाभेद द्वैताद्वैत अर्थात् एकभी और दोभी तथा व्याप्य व्यापक संबंध करके मानते हैं. तात्पर्य यह कि जो जिससे व्याप्य है सो सो तद्रूप है और माध्वसंप्रदायवालोंकी निष्ठा कीर्तनकी है, द्वैत सिद्धान्त है, विष्णुस्वामीकी संप्रदाय आत्मनिवेदनकी निष्ठा और शुद्ध अद्वैत सम्मत है सो इनपर विचार किया जाय तो भेद नहीं एकही है, कारण कि सब निष्ठाओंकी वास्तव वस्तु एकही प्रकारकी है. जो वाद दीखता है वह अपनी संप्रदायमें विश्वास और प्रीति बढानेके निमित्त है वास्तवमें भेद नहीं है.

अनन्य पदका व्याख्यान और स्मार्तोंके मार्गका सूक्ष्म वृत्तान्त.

अब यहभी लिखना अवश्य हुआ कि भक्तमालमें स्मार्त संप्रदाय-काभी वर्णन हुआ है. उन संप्रदायवालोंका क्या मार्ग है और किस देव-ताका आराधन करते हैं; सो जानना चाहिये कि स्मृति अर्थात् धर्मशा-स्त्रके अनुसार चलना और गर्भसे मृत्युतक सोलह कर्मोंको मुख्य

जानना. उसका परम्पराधर्म है. जिसने प्रथम यज्ञोपवीत दिया अथवा जिससे विद्या पढी उसीको गुरु जानते हैं. ऋषि अर्थात् मनु और याज्ञवल्क्यादिकको आदि आचार्य समझते हैं. ऋषि बहुत हुए हैं; इस कारण कोई उस मार्गका मुख्य आचार्य और ऋषि नहीं कहा जाता, परन्तु बौद्धोंके तथा १०३२ मतोंके विशेष उन्मूलन करनेसे इस समय शिवावतार भगवान् शंकराचार्यही इसके मुख्य प्रवर्तक हैं. स्मार्तसम्प्रदाय अपने धर्मका सिद्धान्त निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति समझते हैं, इस कारण शंकरस्वामीको इस संप्रदायका अंत आचार्य समझना चाहिये. पूजा आदिके हेतु धर्मशास्त्र जानते हैं. पंचाङ्ग पूजा करते हैं अर्थात् गणेश, शिव, विष्णु, दुर्गा, सूर्यकी मूर्ति एक सिंहासनपर विराजमान करके सबको पूजते हैं और जिस देवतापर विशेष श्रद्धा हो उसको मध्यमें और जो शेष हैं उनको चारों ओर कोनेपर बैठाते हैं. वैष्णवी चारों सम्प्रदायमेंसे किसीके शिष्य नहीं होते. उनमेंसे बहुधा ऐसेभी हैं कि वह किसी एकही देवताका पूजन करते हैं और आपको स्मार्त कहते हैं. देवताकी पूजाकी पद्धति और स्तोत्रपाठ आदिके रखते हैं; परन्तु किसी एक देवताकी उपासनाके ग्रंथ जैसे चार संप्रदायमें अपने ईश्वरको स्वामी सिद्ध किया है, वैसे उस संप्रदायका ग्रंथ नहीं है. वेद, शास्त्र, पुराणही इनके माननीय हैं और कोई नई पद्धतिके ग्रंथ दक्षिणमें सुने जाते हैं चारों संप्रदायवालेभी स्मृतिकी आज्ञाको उतनाही मानते हैं कि जितना स्मार्त मानते हैं और सोलह कर्मोंके विषय वैसाही करते हैं, वरन किसी कर्ममें उनसेभी विशेष हैं; परन्तु चारों संप्रदायमें उपनिषद् और वेदकी आज्ञाको श्रेष्ठताई है. स्मृतिमेंसे केवल उन वचनोंको मानते हैं जो भगवत्प्राप्तिके सम्बंधी हो, इस कारण यह लोक तो वैष्णव कहलाते हैं और वह स्मार्त कहाते हैं, इसके उपरान्त चारों संप्रदायोंमें पंचाङ्गपूजनका

चार नहीं; मानसी पूजन अपने इष्टदेवका और प्रत्यक्ष शालिग्रामका कहते हैं, तिलक और मालाका वृत्तान्त भेषनिष्ठामें लिखा गया. स्मार्तोंमें आदि मंत्र तो गायत्री है और उससे विशेष यह मंत्रभी जपते हैं जिस मंत्रपर जिसकी इच्छा हो और चारों सम्प्रदायोंमें गायत्रीमंत्रके उपरान्त वह मंत्रभी मुख्य है, वेद वेदान्त और ज्ञान निष्ठामें स्मार्तही सर्वोत्तम हैं, कारण कि आत्मज्ञान इसी सम्प्रदायमें विशेषकर कहा है. जिस देवताके सम्बन्धमें वह संप्रदाय हो; वहीं श्रेष्ठ है इस भक्तमालमें जो कई स्थानोंमें स्मार्त सम्प्रदायका वर्णन हुआ है तो उसका यह कारण है कि उन लोगोंमें किसी २ को ऐसा भगवत् आराधन करते देखा कि उनका भूलकरभी दूसरी ओरको ध्यान नहीं जाता है यह तो प्रत्यक्षही है कि भगवान्को अपना अनन्य दास प्रिय है. जो कोईभी हो, भगवान्का वही भक्त है. भगवान्की दृष्टि जाति, गुण, विद्या, बडाई और धनपर कुछभी नहीं उनको तो केवल अनन्य भक्ति चाहिये, उसीसे तरते हैं. वाल्मीकि, श्वपच, शबरी, गज, गणिका, सुग्रीव, हनुमान्, बिभीषण, प्रह्लाद आदि सहस्रों भक्तोंकी कथा इसकी साक्षी है और फिर गीतामें कहा है कि अनन्य चित्तसे भजन करनेवालेको मुक्ति देता हूं. अनन्यशब्दका अर्थ साधन अवस्थामें तो यह है कि अपने स्वामीके अतिरिक्त किसीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है और मध्यम यह है कि किसीसे द्वेषादि न रक्खे; सिवाय अपने स्वामीकी छबि चरणकमलोंकी सेवाके अगाडी ब्रह्मलोकतकके पदार्थोंकोभी तुच्छ समझे और भक्तिकी दृढतासे नरक इत्यादि आपत्तियोंका भय जाता रहे. सिद्धा अवस्था यह है कि अपने स्वामीके रूपके सिवाय बाहर भीतर और कोईभी न दीखे. तीनों अवस्थाओंमें एकके अतिरिक्त दूसरेकी पूजा और श्रद्धा योग्य नहीं और नियमकी बात है कि दो

सुन्दर मनोहर मूर्तियोंका प्रेम एक पुरुषको नहीं हो सकता. जिस प्रकार एक कुटिल पुरुषने किसी सुन्दर स्त्रीसे जाकर कहा कि मैं तेरा प्रेमी हूं; उसने उत्तर दिया कि अमुक स्त्री अत्यन्त सुन्दर है वह पुरुष उससे प्रेम कर उसे ढूंढनेके लिये गया और फिर आकर कहा कि वह स्त्री न मिली, तब उसने उत्तर दिया कि मैं तेरी परीक्षा करती थी. यदि जो तू निश्चयही मेरा प्रेमी होता तौ ढूंढनेको क्यों जाता; इस प्रकार जिनकी श्रद्धा एक नहीं कई ओर है और जो निज पदार्थका देनेवाला है उसकी पूजा करते हैं और उसके अतिरिक्त दूसरेको वैसाही मानते हैं उनका प्रेम इष्टदेव किस प्रकारसे अचल होगा और वह अपने मनवांछित पदार्थोंको कैसे प्राप्त होंगे ? ऐसी श्रद्धा होनेपरभी जो पुरुष शास्त्रोंकी रीतिसे एक ओर मन लगाता है उनको दूसरे पुरुष अपनी बुद्धिसे द्वेष और अविश्वासीका दोष लगाते हैं, परन्तु यथार्थ ज्ञानीको किसिसेभी द्वेष नहीं. यथार्थमें जैसा जिस देवताका अधिकार है अथवा पदवी है तौ उनकी श्रद्धामें उनको वैसाही मानते हैं, सबको ईश्वर नहीं मानते; इस कारण कि ईश्वर शास्त्रोंके वाक्यसे एक है दो चार नहीं. इसका यह अभिप्राय है कि द्वारपर दृढतासे बैठना चाहिये. जो कुत्ता घर घर फिरता है उसका पेट नहीं भरता और जो संतोषकरके एक द्वारपर बैठा रहता है, उसका पेट भर जाता है. यदि वह अपवित्र है तोभी वह अपने स्वामीको प्रिय होता है और वह उसकी पालना करता है और फिर यहभी विचारना चाहिये कि, व्यभिचारिणी स्त्रीका पुत्र किसको पिता कहे.

भगवान्‌को अवतार लेने और भक्तोंकी इच्छाके अनुसार चरित्र करनेका कारण.

अब यह प्रश्न है कि इस पुस्तक और शास्त्रोंमें भगवान्‌की

महिमा लिखी गई है कि वह अच्युत, अनन्त, व्यापक, सच्चिदानंद-घन, परमात्मा है कि वेद जिसको नेति २ कहते हैं और उसीका यह वर्णन हुआ कि किसी भक्तके हेतु स्वामी और कहीं सेवक, कहीं चखाया, कहीं मसालची, कहीं सुनार, कहीं चोर, कहीं साहुकार, कहीं बेटा, कहीं बाप, कहीं प्रीतम, कहीं प्रिया, कहीं सम्बन्धी हुआ है फिर इस महिमापर ध्यान करके जो ऐसे चरित्रोंपर दृष्टि होती है तो अत्यन्त आश्चर्य होता है. वह अवतारधारी क्यों होता, इसका यह वृत्तान्त है कि जो भगवान् और शास्त्रके जाननेवाले हैं, उनकी तो यह शंका हेही नहीं और न उनको उत्तरकी आवश्यकता है; उनको तो यह चरित्र परम आनन्दके देनेवाले और सर्वसंदेहके निवृत्त करनेवाले तथा भगवद्भक्ति देनेवाले हैं. वरन उनको भगवच्चरित्रोंके अतिरिक्त और किसीपर कदाचित् ध्यान नहीं होता; कारण कि उन चरित्रोंका वह सामर्थ्य है कि रूप अनूप और माधुरी छबि भगवान्की मनपर प्रगट करके भगवत्परायण कर देते हैं; शेष जो रहे वह अज्ञान पुरुष सो उनसे यह प्रार्थना है कि इस प्रश्नका उत्तर कई स्थानोंपर और भक्तोंकी इच्छापूर्वक करुणा और दयालुता भगवान्के मिससे लिखा गया है और यहांपरभी सूक्ष्म लिखता हूं वे श्रुतिकी आज्ञा है कि भगवान् पूर्णब्रह्म परमात्मा अपने भक्तोंपर करुणा और दया करके आविर्भाव होते हैं. शांडिल्यसूत्रमें लिखा है कि भगवान्के स्वरूप धारण करनेमें केवल भक्तोंके ऊपर करुणा और दयालुताही कारण है. भगवान्ने गीतामें कहा है कि भक्तोंकी रक्षा करनेको और धर्मके स्थिर रखनेको कई स्थानोंपर अवतार लेता हूं. उनमें मेरे जन्म और कर्मोंके जाननेसे फिर जन्म नहीं होता, फिर उन्हीं वचनोंके अनुसार जब भगवान् अपने परम धामको त्यागकर प्रगट होते हैं तो जो चरित्र कहते हैं वह भक्तोंपर दया और करुणाका है, इस कारण कि

वह भक्त अपने उन चरित्रोंका कीर्तन करके अपने स्वामीकी करुणा और दयालुता देखकर उसी ओर लगे रहे; वह दूसरी ओरको मन नहीं लगाते. उनके प्रतापसे औरोंकीभी संगति हो जाती है, उसके अतिरिक्त भगवद्भक्तोंको सर्वदा अपने स्वामीका ध्यान और चिंतवन रहता है और जब भीड पडती है तो उसके अतिरिक्त और किसीकी प्रार्थना नहीं होती, धर्मकी रीति तथा भीडके समय उसीका आना उचित है; जिसका ध्यान भक्तको होता है और जो यह संदेह होय कि भगवान्को सब सामर्थ्य है क्या और किसी रीतिसे वह काम नहीं कर सकता ? आप आनेका क्या प्रयोजन है तो जानना चाहिये कि इस संदेहसे प्रथम तो धर्ममें हानि होती है कि ध्यान तो किया किसी और स्वरूपका और काम निकले और भांतिसे, यह कब हो सकता है फिर दूसरे उन वचनोंके अनुसार दया और करुणामें विघ्न पडता है क्योंकि जिस समय भक्तोंपर संकट हुआ और आप न आया और फिर अन्य प्रकारसे काम निकला तो भगवान्की वह आज्ञा और दयालुता कहां रही ? क्योंकि उन वचनोंमें यह बात लिखी है कि आप आता हूं, यह नहीं लिखा कि कार्य सिद्ध करता हूं, इसी शंकाके उत्तरमें यह दृष्टान्त है कि किसी राजाने किसी महापुरुषसे पूछा कि ईश्वरको सब सामर्थ्य है. फिर अवतार लेनेसे क्या प्रयोजन है ? वह किसी और प्रकारसे भक्तिका कार्य सुधार देता; महापुरुषने उस समय कुछभी उत्तर न दिया और उसके बालक बेटेकी एक छवि ऐसी बनवाई कि उसके स्वरूप और छविमें कुछभी अंतर नहीं रहा और अपने नौकरको समझा दिया कि जब हम और राजा यमुनाजीकी सैरके लिये नावपर चढे तो उस समय ले आना, नौकरोंने ऐसाही किया. महापुरुष उस छविको लेकर राजाको देने लगे परन्तु वह हाथसे छूटकर यमुनाजीमें गिर पडी.

राजाने उस छविको अपना बेटा समझा और व्याकुल होकर तत्काल यमुनामें कूद पडा. उसने अपने जीव जानेकी कुछभी चिन्ता न करी तब महापुरुषने उसको निकलवाया और पूछा कि तुम्हारे सैकडों नौकर और मल्लाह थे फिर तुम किस कारणसे आपही यमुनामें कूद पडे. राजाने उत्तर दिया कि मुझको उस बालककी प्रीतिसे सुध और संतोष नहीं रहा, कि जो मैं किसीसे कुछ कह सकता. इस कारण आपही कूद पडा. महापुरुषने उत्तर दिया कि यही भगवान्‌की प्रकृति है वह जब अपने भक्तको दुःखी देखता है तो करुणा और दयालुतासे व्याकुल होकर आप चला आता है, इसके उपरान्त पूर्वलिखित संदेहोंसे भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा है कि मैं अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करता हूं और श्लोकोंका अर्थ इस पुस्तकमें लिखा है. उसी प्रतिज्ञा अनुसार जैसी भक्तको इच्छा हुई वही आकर भगवान्‌ने पूर्ण करी इसके सिवाय भगवान् और उसके चरित्र कल्पवृक्षकी समान हैं: जैसा जिस किसीका विश्वास है उसको वैसाही फल देते हैं. जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी स्वामी जानकी महारानीके स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्ण-स्वामी मथुरामें रंगभूमिमें राजाको राजा राक्षसोंको कालरूप स्त्रियोंको स्वरूपवान् मनुष्य दृष्टि आये, ऐसेही और स्थानमेंभी सबको इच्छानुसार दिखाई देते हैं. इससे निश्चय हुआ कि जिस भक्तने जिस भावसे मेरा चिन्तवन किया, उसको मैं उसी भावसे दिखाई देता हूं और वैसाही फल देता हूं. फिर उसी प्रकारके चरित्र किये. एक चरित्र तो मैंने अपने नेत्रोंसे देखा; जब व्रजयात्राकी समय श्रीराधिका महारानीकी जन्मभूमिमें वरसाने जाना हुआ तो वहांकी स्त्रियां यात्रियोंसे पैसा कौडी मांगने लगीं, किसीने कहा कि जब यह बात कहोगी व्रजनंदनंदन महाराज व्रजकिशोर हमारा बहनोई है तब तुमको कुछ देंगे यह स्त्रियां उस संबन्ध और भावसे उस राधिकाव-

लुभ और उसके साथियोंको गालियां देंगी; तब भगवद्भक्तों और रसिकोंके मनमें प्रियाप्रीतमके रूपका एक समाज प्रगट हुआ उसी समय एक दोकी तो यह दशा हुई कि प्रेमका प्रवाह नेत्रोंसे बहने लगा, वह भगवान्‌की छबि और माधुरीके चिंतवनमें मग्न और उन्मत्त हो गये और उन स्त्रियोंको भगवान्‌की सखी जानकर प्रणाम करते थे और मूर्ख कुटिल मनुष्य उन स्त्रियोंको बुरी दृष्टिसे देखकर गाली देते थे और हास्य करते थे. अब विचारना चाहिये कि; पहलेको तो गालियोंने महामंत्रका फल दिया और दूसरोंको वही स्त्रियां और उनकी बातें नरकका कारण हो गईं. निदान जिस किसीको भगवान् और उसके चरित्रोंमें जैसा भाव है उसको वैसाही दीखता है और शास्त्रोंमेंभी स्पष्टही लिखा है कि भगवान्‌के चरित्र भक्तोंको तो आनन्दके देनेवाले हैं जिस प्रकार सूर्यको देखकर कमल तो खिल जाता है और कुमुदिनी सूख जाती है और समस्त संसारमें तो प्रकाश होता है और उल्लू और चिमगादर अंधे हो जाते हैं. इससे यह निश्चयही विश्वास है कि परमेश्वर समर्थ स्वामी और अपनी प्रतिज्ञाका सच्चा है और अपने भक्तोंपर दयालु है. जो चरित्र उसने किये और आगे करेगा वे सब सत्य २ हैं उनमें शंका करनेको जगह नहीं प्रेमी और श्रद्धावालोंको तो वे चरित्र निःसंदेह परमानंद और ब्रह्मपदके देनेवाले हैं और श्रद्धाहीन मनुष्योंको नरकके देनेवाले हैं क्योंकि कल्पवृक्षसे सुखके चाहनेवालेको सुख मिलता है और दुःखके चाहनेवालेको दुःख मिलता है. यह वृत्तान्त पहलेभी लीलानुकरण-निष्ठामें लिखा है मुझको यह शंका करनेवालोंके प्रश्नपर अत्यन्तही आश्चर्य है कि उन्होंनें समझे विना और विना विचारे ऐसा अंधाधुंद प्रश्न क्यों किया ? क्योंकि जिन भक्तोंको मनके नेत्रोंसे स्वामीके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता और न प्रत्यक्षमें किसीको कुछ

जानते हैं तो जो उनकी इच्छा हो उसको पूर्ण करनेवाला उसके अतिरिक्त कौन हो सकता है और उन भक्तोंको प्रगट और गुप्त दृष्टिसे उसके आतिरिक्त और कोई नहीं दीखता.

कुसंगकी हानि और सत्संगके लब्धिका वर्णन.

अब यह लिखना रहा कि तत्काल त्यागनेके योग्य कौनसी वस्तु है और ग्रहण करनेके योग्य क्या है सो ध्यान रखना चाहिये कि दुष्ट और विमुखोंकी संगतिको शीघ्रही त्यागना अति आवश्यक और उचित है. उनके लक्षण लिखनेको तो कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि थोडा २ कई निष्ठाओंमें और इसके अंतमें लिख आया हूं; उनके संगको एक सिद्धता समझना चाहिये कि पृथक् रीतिसे लोगोंको बिगाडते हैं. कोई संगत तो बिच्छू काले भौंरेकी समान है और किसीको पागल कुत्तेकी समान है और किसीको मदिराका रंग दिखाती है और किसीके लिये हलाहल विष हो जाती है. गुसांई तुलसीदासजीने इन लोगोंका संग त्यागनेके लिये उत्तरकाण्डमें कहा है " उदासीन नित रहिये गुसांई। खल परिहरिये श्वानकी नाई ॥ " नित्त उदासीन रहे खल और दुष्टोंको कुत्तेकी समान त्यागना उचित है. समान रहनेका यह तात्पर्य है कि श्वानसे यदि प्यार किया जाय तो वह देहको स्पर्श कर चाटकर अशुद्ध कर दे और जो मारकर निकाल दिया जाय तो खौं खौं करे और काट खाय. " दोहा–व्यास बडाई जगत्की, कुत्तेकी पहिचान। प्यार किये मुँह चाटई, वैर किये तन हान ॥ " फिर दोनों बातोंमें हानि है और सामान्य रहनेमें कुछ हानि नहीं और टुकडा डाल देनेमेंभी कुछ दोष नहीं इस दृष्टान्तसे उपकार देनेकीभी कुछ मनाई नहीं है और सामान्य रहनेकी आज्ञा है. किसीने एक दो पुरुषोंकी शिक्षासे जो इस चौपाईके

अनुसार कर्म किया तो वह रहा. निदान विमुख और दुष्ट मनुष्यों की संगति त्यागना अवश्यही कर्तव्य है भूलकेभी इनके समीप न जाय. जैसा विमुख और दुष्टोंके संगका त्यागना अवश्य है वैसेही सत्संगका अंगीकार करना अवश्य है. सत्संगति वह पदार्थ है कि जिन अधिकारोंका मिलना ध्यानमें नहीं आता वह सुगमतासे मिल जाता है. इस संसार और वैकुण्ठके सुख तो तुच्छ हैं. ब्रह्मानंदका सुखभी सत्संगकी बराबरी नहीं कर सकता, वरन वे सब सत्संगके दास हैं. उनके आगे सम्पूर्ण सुख हाथ बांधे हुए खडे रहते हैं और जब पूर्णब्रह्म परमात्मा सत्संग प्रतापसे सुगमतासे मिल जाता है तो फिर सत्संगको वह प्रताप हो तो क्या आश्चर्य है कि अजामेलसा पापी यमदूतोंको मार पीटकर उस स्थानपर पहुँचा कि जो स्थान योगियोंको कठिन है. फिर उसकी समान पापी गणिकाको वह पदवी मिली है कि रंगनाथस्वामी और नाथजी महाराज मोहित हो गये और अपने समीप नित्यके विहारमें उनको स्थान दिया. वाल्मीकि और नारदजीको विचारना योग्य है कि प्रथम वह क्या थे और अब उसी संगतिके प्रतापसे क्या है. निदान किस २ के नाम बताये जांय जो कोईभी जिस पदवीको पहुँचता है सो संगतिके प्रतापसे जिस किसीको संसारसमुद्रसे उतरना है सो सत्संग करे. सत्संगतिके विना न तो कीर्तनका नाम प्राप्त होता और न भगवान्‌की भक्ति मिलती है.

बहुतसी निष्ठाओंके कारण और उसके अंतमें नामकीर्तनका माहात्म्य.

इस भक्तमालप्रदीपमें चोवीस निष्ठा लिखी गईं और एक २ निष्ठाकी महिमामें यह लिखा गया है कि इसी निष्ठासे भगवान् प्राप्त

होता है. अब मन चलायमान है कि उनमेंसे किसके अनुसार कर्म करने योग्य हैं और जो किसी एक निष्टासे भगवान् प्राप्त होता है तो इतनी निष्ठा लिखनेका क्या प्रयोजन था? केवल एक निष्ठाही लिख देनी उचित थी और जो पूछें कि चौवीसों निष्ठा सुन्दर हैं तो यहभी कहना चाहिये कि उनमेंसे कौनसी निष्टा ऐसी है कि जिससे शीघ्रही मनोरथ सिद्ध हो. उसका उत्तर यह है कि, सब निष्ठाओंकी जो कुछ महिमा लिखी है वह सब सत्य है; उनमेंसे किसी एक निष्ठापर मन दृढतासे लग जाना कर्तव्य है. वही एक निष्ठा इस संसारसमुद्रसे पार उतार देगी, फिर दूसरी निष्ठासे प्रयोजन न होगा और उसी एक निष्ठाकी श्रद्धाका यह प्रताप है कि, शेषनिष्ठाओंमें आपही महत् पदवी प्राप्त हो जाती है. जिस प्रकार एक दीपकके प्रकाशसे घरकी समस्त वस्तुएँ दीख जाती हैं. ऐसेही जिस निष्ठापर जिस मनुष्यका मन लगेगा उसी निष्ठाके अतिरिक्त भगवत्प्राप्तिके हेतु उसे दूसरा साधन नहीं. आदिमें वह निष्ठा साधनरूप है. दिन प्रतिदिन बढकर श्रेष्ठ पदको पहुँचा देती है. बहुतसी निष्ठाओंके होनेका यह कारण है कि, सब मनुष्य पृथक् २ स्वभावके हैं. किसीका मन बालचरित्रोंमें लगता है; किसीका माधुर्य शृंगारमें, कोई हँसी खेल सखाभावके चरित्रोंमें मन लगाता है और कोई ईश्वरता और कृपालुताके चरित्रोंपर झुका है. इसी प्रकार एक २ उपासक अपने मनकी इच्छानुसार भगवत्स्वरूपका चिंतवन करता है, जो शास्त्रोंमें उनके पृथक् २ भागकी निष्ठा न होती तो उस निष्ठाके आराधनकी रीति न होनेसे भगवत्प्राप्तिमें बहुत हानि होती. यह लेख भगवच्चरित्रोंहीसे निश्चय होता है कि भगवान्ने सब निष्ठाओंके अनुसार अपने चरित्र किये कि जैसे चरित्रोंपर जिस किसीकी रुचि हो वैसेही चरित्रोंमें मन लगाकर भगवत्परायण हो जाय, इस कारण चौवीस

निष्ठा जो लिखी गई हैं सो उनका लिखना उचितही था; वरन जितनी विशेष लिखी जातीं उतनेही स्पष्टता होती. यही वार्ता मंगलाचरणमें जहां भक्ति कई प्रकारकी होनेका उत्तर लिखा गया है, प्रथम प्रकरणमें रीतिके नामसे लिखी है और यहां उनको विस्तारपूर्वक लिखा है. यह तो नहीं कह सकता कि उन निष्ठाओंमें कोनसी निष्ठासे भगवान् शीघ्र प्राप्त होता है और कोनसीसे विलम्बसे क्योंकि चौबीसों निष्ठा आवागमनके समुद्रसे पार होनेके लिये जहाजकी समान हैं. जिस जहाजपर चढेगा निःसंदेह पार हो जायगा. जहाजमें बैठने अर्थात् श्रद्धा और धर्म करनेकी देर है. मल्लाहको कृपा करके पार लगानेमें कुछ देर नहीं होती. परन्तु इस कलियुगके लिये जो कुछ शास्त्रोंमें लिखा है, वह मैं लिखता हूं. पराशर-स्मृतिमें जो केवल कलियुगके लियेही बनी है लिखा है. सतयुगमें भगवान्का ध्यान और त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमे भगवान्की पूजा करनेसे उद्धार होता था, अब कलियुगमें केवल भगवान्का नाम मुख्य है और भागवत, स्कंद और पद्मपुराणभी इसी वाक्यकी साक्षी देते हैं. रामतापिनीमें वेदश्रुतिकी आज्ञा है कि नामके प्रतापसे पूर्णब्रह्म प्राप्त होता है और नाममाहात्म्यकौमुदीग्रंथमें सूत्र स्मृति पुराणोंमें वेद आदिसे निश्चय मुक्तिकी प्राप्ति केवल भगवन्नामसे होनेके विषयमें लिखा है. यह ग्रन्थ पढने और सुननेकेही योग्य है. जितने धर्म और मार्ग देखे और सुने उनके चलानेवाले अपने २ धर्मको उत्तम कहकर लडते और झगडा करते हैं, परन्तु भगवन्नामकी बडाईमें सब समान हैं. यह नाम दोनों लोकोंके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर देता है. परीक्षाकी वार्ता है कि एक स्थानपर दश आदमी सोते हैं और सबोंकी बराबर निद्रा है, उनमेंसे जो किसीने एकका नाम लेकर पुकारा तो वही जागता है कि जिसका नाम लेकर पुकारा था. औरोंको इसका समाचार कुछभी

नहीं होता. इससे नामकी बडाईकी दो बातें निश्चय हुईं. एक यह कि जब अचेत पुरुष नामको पुकारनेसे चेतमें आ जाता है तो वह भगवान् जो सदा चेतमें रहता है पुकारनेसे कैसे सन्मुख न आ जायगा ? दूसरे यह कि इससे नाम और नामीको अभेदता निश्चय हुई, जो नाम है वही नामवाला है फिर जब भगवान्का नाम जो कि वास्तवमें भगवान् है नित्य समयपर जिह्वापर रहेगा. शास्त्रोंका जो यह वचन है कि नामके लेनेसे पहले अबके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; उसका निर्णय नाममाहात्म्यकौमुदीमें भली प्रकारसे हुआ है. किसी वादीने यहांपर शंका करी कि धोखे और भूलसे एक बार नामके लेनेसे सब पाप पहले और पिछले नष्ट हो जाते हैं, तो लोग संसारमें और परलोकमें वृथा क्यों दुःख संताप पाते हैं ? उत्तर यह है कि उस एकवार नाम लेनेके पीछे जो नाम नहीं लेते तो नाम न लेनेके पापसे नाना प्रकारके संतापोंमें रहते हैं और जो निरन्तर नाम लेते हैं तो कोईभी पाप नहीं होता और फिर ब्रह्मस्वरूप हो जाय. जिस प्रकार श्वेत वस्त्रमें कलौंच शीघ्रही चढती है तो जिनकी जिह्वासे एकवार नाम निकलता है और वह फिर नाम नहीं लेते तो उनको नामके न लेनेका पाप विशेष होता है. इसका अभिप्राय यह निकला कि भगवान्का नाम एक २ क्षणमें एक २ श्वासके साथ जिह्वासे निकलता रहे, जिससे फिर कोई पाप समीप न आवे और जिन लोगोंने एक वारभी किसी प्रकार वह नाम लिया है उनको तो अवश्यही यह सिद्धान्त ऐसा है कि इसमें किसी प्रकारभी शंका नहीं हो सकती और जो किसीको संदेह हो तो अजामेलकी मुक्तिको विचारले कि जिसने समस्त आयुभर तो पाप किया और पुत्रका नाम नारायण लेनेसे मुक्त हुआ. इसके वृत्तान्तपरही विश्वास कर लें. निदान इस कलियुगमें मेरे स्वामीके नामके अतिरिक्त ऐसा उत्तम उपाय और कोई नहीं है जिससे कि शीघ्रही

मनवांछित पदको पहुँच जाय और न उसका कर्म कठिन है न कुछ द्रव्यही लगता है; केवल एक जिह्वासे कहना पडता है. जिसने एकाग्र मन होकर उस नामकी शरण ली है, वेही भक्त होते हैं. वेही भजनानंद और वेही साधु तथा वेही वैष्णव हैं वेही जीवन्मुक्त हैं.

भगवद्भक्तोंके आगे विनय और भगवान्के चरणारविंदमें निवेदन.

भगवद्भक्त उपासकों और महात्माओंके चरणकमलोंमें प्रणाम करके प्रार्थना करता हूं कि यह भगवच्चरित्र अनेक प्रकारके पाप और दुःखोंका दूर करनेवाला भगवच्चरणोंमें रति बढाकर दोनों लोकका सुखकारी तथा ब्रह्मानंदका देनेवाला है. जैसी कुछ मेरी मति थी वैसा लिखकर आपके सन्मुख कथन किया है. यह ग्रंथ आपके प्रीतमके चरित्रोंसे पूर्ण है इस कारण मेरे बुरे कर्मोंकी ओर न देखकर अवश्य अंगीकार करने योग्य है, कारण कि यह सम्पूर्ण सम्प्रदायोंको आनन्दका देनेवाला है, इसमें सब सम्प्रदायोंकी रीति परम्पराका वृत्तान्त पक्षपातरहित हो, बडाईके सहित लिखा है जो कुछ चूक होगी सो मेरी अज्ञता है. आदिसे अन्ततक केवल एकही सिद्धान्तपर दृष्टि रक्खी है, कि जैसेही वैसे यह मन सच्चिदानंदघन भगवान्के चरणारविंदमें लग जाय और कहीं सामायिक पुरुषोंका जो वृत्तान्त है सो मेराही है. कारण कि सब अवगुणोंकी खान मैं हूं और वह चरित्र मेराही है, कहीं जो भेदभाव लिखे गये हैं वह सम्प्रदायोंके भेदके अनुसार है और इसका आशय यह है कि जो रसभाव और इतिहासकी भांति इस ग्रंथको अवलोकन करेंगे इस मिससे उनकी प्रीति इस ओर लगेगी. हे नन्दनन्दन विहारी ! हे शोभा-

धाम ! प्रणतारातिभंजन ! करुणाकर ! दीनबंधु ! यशोदानंदन ! पतितपावन ! अधमउधारण ! दयासागर ! मैं अपने वृत्तान्तको आपसे किस प्रकार निवेदन करूं ? कारण कि विना निवेदन कियेभी आप सब जानते हैं. मेरी समान अवगुणोंकी खान कोई नहीं है. " पापिनामहमेकाग्रो दयालूनां त्वमग्रणीः । " मैं पापियोंमें एकाग्र और आप दया करनेवालोंमें शिरोमणि हो इससे यदि मेरे ऊपरही आप दया करोगे तौ आपका नाम सार्थक होगा मैं आपका विना मोलका चेला दास और किंकर हूं क्या कहूं. मेरा मन आपके चरणोंमें नहीं लगता मेरी यह दशा हो रही है कि " भजन विना जीवत जैसे प्रेत । भजन विन मिथ्या जन्म गँवायो दोउमें एको नाहीं भई सबै दिन गये विषयके हेतु जन्म गयो वादहि-पर बीते ।।" इस प्रकार अपने बुरे आचरणोंपर दृष्टि करके जो शोचता हूं, तो अपना कहीं ठिकाना नहीं देखता, न कहीं सहारा है परन्तु एक आपके श्रीवचनका आधार है जो कहा है कि एकवार मेरी शरण होकर कहे कि मैं तुम्हारा हूं, यों कहकर जो मुझसे मांगता है तौ मेरा यह प्रण है कि उसके मनोरथ पूर्ण कर उसको अभय कर देता हूं और इसमें यह नियम नहीं कि वह साधु हो अथवा असाधु अथवा मान अपमान किसी प्रकारसे शरण हो जैसे हो वैसे भावसे कुभावसे अनखसे आलस्यसे कहे कि मैं तुम्हारा हूं. उच्च २ स्वरसे पुकारकर यह भिक्षा मांगता हूं कि किसी शरीरमें जाऊं किसी लोकमें रहूं मेरे हृदयमें रातदिन यह ध्यान बना रहे कि श्रीयमुनाजीके किनारे परम शोभायमान चोरासी कोश व्रजमण्डल, बारह वन, बारह उपवनसे शो-भायमान है. जिसकी रजका ब्रह्मादिक तिलक लगाकर चोरासी को-सकी परिक्रमा कर शुद्धतासिद्धताको पहुँचते हैं. जिसके एकवार दर्शन करनेसे अनेक जन्मोंके पाप दूर होकर प्राणी कृष्णपरायण हो जाता

है, विराजमान है, जिसके मध्यमें अनेक विहारस्थान और उसके मध्यमें कमलकर्णिकाकी समान निजविहारस्थल वृन्दावन शोभित है, उसके मध्यमें गऊ, गोप सखा गोपियोंकी सभा, पांच आवरण जिसके कमलाकार हैं. छठे आवरणमें युगलमूर्तिके विराजमान होनेका रत्नसिंहासन शोभायमान है, जिसकी ज्योति और सुन्दरता वर्णन कौन कर सकता है. जिसके आगे अनेक चंद्रमा और सूर्यकी ज्योति फीकी है, उस परम शोभायमान चंदोवा तना हुआ, कि जिसकी जगमगाहट और झलकसे मन और नेत्र चमत्कृत हुए जाते हैं. मोती और दूसरे रत्नोंकी झालर लगी हुई और भूमि, लता, द्रुम, फल, फूल, मृग, मयूर, हंस, सारस, कोकिल, भ्रमर सब मणिमय नानारंगके चैतन्यवत् भासते हैं. सिंहासनके तुल्यही उनकी कान्ति और शोभा है, सिंहासनके ऊपर श्रीनन्दनन्दन ब्रजचन्द राधारमण बांकेविहारी ब्रजराज मदनमोहन विराजमान हैं कि जिनका वर्णन शेष शारदाभी नहीं कर सकते. निगमागमने कहते २ अन्तमें नेति शब्द कहा दिया है कि हमसे वर्णन नहीं होसकता. उनके चरणकमलोंकी द्युति योगीश्वर और ब्रह्माजीकेभी मनको प्रकाश करनेवाली है. चरणकमलकी शोभा अरुणकमल और नीलमणि पद्मरागमणिकी शोभाको लज्जित करती है. तिसपर सखियोंने कहीं मेंहदी, कहीं महावर रचा है. उन चरणोंके अंगूठोंमें जडाऊ छल्ले, उसपर कडे, पाजेब आदि अनेक भूषण शोभायमान हैं पीताम्बरी धोती विद्युत छबिहारी पहने हुए, नाभि गंभीर मनोहरके ऊपर ललित त्रिवली, चौडी छाती उसपर धुकधुकी, वनमाल, वैजयन्ती माला, गजमोतियोंका हार, बागा महीन जरतारी धानी रंगकी मनोहर सुकुमार श्रीअंगपर सजे जरीका दुपट्टा कमरपर कसे छोरमें मणिमुक्ता गुंथे हुए छोटे २ मोतियों और माणिककी कण्ठी गलेमें पडी हाथोंमें अंगूठी छल्ले पहुँची बाजूबंद

नवरत्न पहने करोडों चन्द्रज्योतिको तिरस्कार करनेवाली अतुल अनिर्वचनीय मुखकी शोभा धारण किये जिसकी चिक्कनता और कोमलताके आगे नीलमणि और गुलाब लजाते हैं शिरपर मोरमुकुट धारे जिसमें मोती चुन्नी पन्नोंकी लडी लटक रही है. जहां फूल गुंथे, भालपर केशरका तिलक लगाये, कानोंमें कुण्डल, झूमके तथा फूलोंके गुच्छे शोभायमान, रसीले नेत्रोंमें काजर लगा हुआ, गोल अमोल कपोलोंपर घुंघरारी अलकें, झुकी हुई होठोंपर पानकी लाली सखियोंके हासविलाससे मुसकाते हुए विराजमान हैं. दीठ न लगनेके निमित्त यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और कोटि कामदेवभी न्योछावर किये जांय तो उसके सामने तुच्छ है. वाम ओर श्रीराधिका महारानी विराजमान हैं. यह प्रियाप्रीतम अभेदरूप हैं. इनमें कोईभी भेद नहीं है " राधिकाके हिये झुलति सांवरो सांवरेके हिये झुलति राधा " हैं एकही परन्तु अपने चरित्रसे भक्तोंके उद्धारके निमित्त प्रगटमें दो रूप धारण किये हैं इसी कारण माधुर्य और शृंगारनिष्ठा सब निष्ठाओंमें अग्रवर्ती और मुख्य है. इसके प्रभावसे भगवत्की प्राप्ति बहुत शीघ्र होती है. इन दोनोंके मुखकी ज्योति और भूषणोंकी जगमगाहट एक दूसरेपर इस प्रकार पड रही है कि जिससे विदित नहीं होता कि इसमें कौन राधिका और कौन श्याम है, प्रियाके हृदयमें प्रीतम और प्रीतमके हृदयमें प्रिया विराज रही है. शब्दअर्थकी समान दोनों एक हैं. प्रियाप्रीतमके विषयमें " उपमा मोहिं सकल लघु लागी । प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥ " प्रियाजीकी शोभासेही प्रीतमकी शोभा है. ललिता विशाखा आदि सखी छत्र चँवर लिये चन्द्रावली श्यामला सेवामें उपस्थित हैं. वीणा, वेणु, सारंगी बाजे बज रहे. महाराजको सखियां गाय बजायके रिझाय रहीं हैं. नृत्यके समय घूंघरू किंकिणी गतिपर छमाछम छमकि रही हैं, सब रागिणी और छहों ऋतुरूपी सखी

मूर्तिमान् सेवामें खडी हैं; वह शोभासमाज सुख अनन्यभक्तोंके हृदयमें समा रहा है जिसके ऊपर प्रियाप्रीतमकी कृपा होती है उसीके उरमें यह चरित्र प्रकाशित होता है.

दोहा-प्रियासहित राजत सुघर, कुंजन राधेश्याम ।
भक्तन मन रंजन करन, पूरण कारण काम ॥ १ ॥
या छबिसों व्रजराज प्रभु, भक्तनके सुखदाय ।
जन ज्वालाप्रसादके, हिये विराजो आय ॥ २ ॥
कृपादृष्टिकी वृष्टि कर, प्रभु निज ओर निहार ।
निज किंकर मोहिं जान भव, सागर कीजे पार ॥ ३ ॥
भक्तमालमें यश विमल, कछु भक्तनको गाय ।
फल तब भक्ति अखण्ड प्रभु, जो कदापि मिल जाय ॥ ४ ॥
तो सब जीवनके लहे, लाभ मनहु जग आय ।
एहि जग नरतन पायकर, सुमिरे यादवराय ॥ ५ ॥
जो मन वच कर ध्यावहीं, सुमिरहिं राधेश्याम ।
भक्तमालके पाठसे, सिद्ध होहिं सब काम ॥ ६ ॥
भक्तमालकी तुल्य नहिं, भक्ति बढावनहार ।
कृष्णचरणरति मिलत है, देखो हृदय विचार ॥ ७ ॥
पढहिं सुनहिं समुझहिं सुनहिं, पावहिं मन विश्राम ।
करहिं हिये विश्वास जो, मिलहिं भक्ति निष्काम ॥ ८ ॥
ह्यां शंका और नेमकी, गति नहिं चलत सुजान ।
जहां प्रेम तहँ नेम नहीं, हैं बहु ग्रंथ प्रमान ॥ ९ ॥
अधिकारी जनको तुरत, हरिको पंथ लखाय ।
अनअधिकारीको पढे, देहै योग्य बनाय ॥ १० ॥
यासे सब विधि जननको, भक्तभाव सुखदान ।
चार पदारथ देत हैं, पढो याहि मति ठान ॥ ११ ॥

श्रीयुत गंगाविष्णु श्री, कृष्णदास जग जान ।
कल्याणीमें बसत है, विष्णुभक्त सज्ञान ॥ १२ ॥
श्रीवेंकटेश्वरके चरण, कमल अमल अनुराग ।
मुद्रणयंत्राध्यक्ष जग, जानत भक्त विराज ॥ १३ ॥
तिन आज्ञासों ग्रन्थ यह, कृत भाषा विस्तार ।
शोधित परिवर्द्धित कियो, भाषा सरल विचार ॥ १४ ॥
जहँ तहँ उपयोगी भजन, पद और राग मिलाय ।
सुगम अर्थ भाषा करी, पढहिं सुजन मन लाय ॥ १५ ॥
भाषा सरल सुधार कर, सबके समझन योग ।
अर्पन है पुनि तिन्हीके, पढ सुख पावहिं लोग ॥ १६ ॥
भक्तनकी मन प्रान यह, रसिकनकी शिर मौर ।
चार पदारथ पढेसे, पावहिं जन सब ठौर ॥ १७ ॥
हे नँदनंदन कृष्ण प्रभु, भक्तन जीवनप्रान ।
सुत वित गंगाविष्णुके, दीजे करि कल्यान ॥ १८ ॥
तुम्हरी कृपाकटाक्षसे, अनहोनी प्रभु होय ।
कौन बडी यह बात है, करत विलम तुम जोय ॥ १९ ॥
राधावर गोविन्द हरि, मनहर नन्दकुमार ।
जन ज्वालाप्रसादपर, द्रवहु सुकृपा अगार ॥ २० ॥
संवत् शर शर अंक विधु, माघ शुक्ल पख जान ।
हरिवासर मंगल दिवस, पूर्ण भयो सुखदान ॥ २१ ॥
बसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद ।
भजन करत हरिको सदा, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥ २२ ॥
चाहत यह कर जोरकर, हे प्रभु दीनदयाल ।
प्रेमभक्ति अनपावनी, देकर करहु निहाल ॥ २३ ॥

नारायण गोविन्द प्रभु, व्रजवनितन सुखदान ।
माखनचोर मुरारि अब, देहु भक्ति रसखान ॥ २४ ॥
जापर नेक दया करहु, सो सुख पाय अघाय ।
जन ज्वालाप्रसादकी, करहु सहाय सदाय ॥ २५ ॥

इति भक्तमाल हरिभक्तिप्रकाशिका समाप्त ।
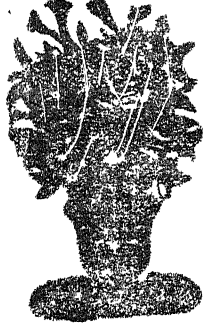
पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.